हिन्दी काव्य : व्याख्या खंड

(संघ लोक सेवा आयोग द्वारा निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अनुसार)

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	कबीर : गुरुदेव को अंग	1–9
2.	कबीर : सुमिरन को अंग	10–16
3.	कबीर : बिरह को अंग	16–21
4.	जायसी : सिंहल द्वीप खण्ड	22–24
5.	जायसी : नागमती वियोग खण्ड	25–37
6.	सूरदास : भ्रमर गीत-सार	37–97
7.	तुलसीदास : श्रीरामचरितमानस (सुंदरकाण्ड)	98–155
8.	तुलसीदास : कवितावली (उत्तरकांड)	156–206
9.	बिहारी-रत्नाकर (मूल पाठ व व्याख्या)	207–233
10.	प्रसाद : कामायनी (चिंता सर्ग) : मूल पाठ	234–237
11.	प्रसाद : कामायनी (श्रद्धा सर्ग) : मूल पाठ	238–241
12.	प्रसाद : चिंता-सर्ग (व्याख्या)	242–266
13.	प्रसाद : श्रद्धा-सर्ग (व्याख्या)	267–289
14.	निराला : राम की शक्ति-पूजा (मूल पाठ)	290–295
15.	निराला : राम की शक्ति-पूजा (व्याख्या)	296–313
16.	निराला : कुकुरमुत्ता (मूल पाठ)	314–317
17.	निराला : कुकुरमुत्ता (व्याख्या भाग)	318–322
18.	मुक्तिबोध : ब्रह्मराक्षस (मूल पाठ)	323–327
19.	मुक्तिबोध : ब्रह्मराक्षस (व्याख्या)	328–331
20.	अज्ञेय : असाध्य वीणा (मूल पाठ)	332–338
21.	अज्ञेय : असाध्य वीणा (व्याख्या)	339–348
22.	नागार्जुन की कविताएँ (मूल पाठ)	349–355
23.	नागार्जुन : व्याख्या भाग	356–359

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

गुरुदेव को अंग

सतगुरु सवाँ न[1] को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँ न[2] को हितू, हरिजन सईं न ज़ाति[3] ।। १ ।।

शब्दार्थ—सगा = सं० स्वक (यहाँ 'रु' स्वार्थे है) अपना। सवाँ = समान, सोधी = शुद्धि। दाति = दान 'दाति' शुद्ध संस्कृत शब्द 'दान' के अर्थ में वैदिक काल से चला आ रहा है। देखिए—हव्यदाति = हव्य का दान। सईं = समान।

व्याख्या—सद्गुरु के समान कोई सगा या अपना नहीं है। शुद्धि (हृदय की) के समान कोई दान नहीं है। सद्गुरु ही हृदय की शुद्धि करता है। यही उसका सबसे बड़ा दान है। इस शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं हो सकता। सद्गुरु अपनी दृष्टि द्वारा अथवा वचन द्वारा शिष्य में ऐसे मानस-तरंग उत्पन्न करता है जो उसकी नाड़ियों में प्रवाहित होते हुए उसके रक्त और चित्त दोनों का शोधन करते हैं। कबीर के कहने का भाव यह है कि इस शुद्धि से बढ़कर कोई दूसरा दान नहीं है।

हरि के समान कोई हित करने वाला नहीं है और हरिसेवक के समान कोई जाति नहीं है। कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ जाति नहीं है, जो प्रभु का भक्त है, उसी की जाति सर्वश्रेष्ठ है।

*बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।[4]
मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।। २ ।।

---

१. ना० प्र०—सवाँन।

२. ना० प्र०—सवाँन।

३. (अ) सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को है हितू, हरिजन सम को जात ।। ३ ।।—सतगुरु को अंग—विचारदास
(आ) हनुमान दासजी की प्रति (सतगुरु का अंग।। ३ । १) में भी यही पाठ है।
(इ) कुछ ग्रन्थों में सभी दोहों के प्रारम्भ में 'कबीर' शब्द लगा मिलता है।

४. ना० प्र० का पाठ—
बलिहारी गुरु आपणैं, द्यौं हाड़ी कै बार। जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ।। २ ।।

* गुरु ग्रन्थसाहब में यह साखी नानक देव के नाम से मिलती है—पाठ इस प्रकार है—
बलिहारी गुरु आपणे दिउहाड़ी सदबार। जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी बार ।। १ ।।
—मिशन संस्करण, पृ० ४६२।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—बार = विलम्ब, दफा या मर्तबा, द्वार । बलिहारी = न्यौछावर, 'बलि' शब्द 'देय' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु विशेषतः 'देवताओं के प्रति जो दिया जाय' — इस अर्थ में 'बलि' का प्रयोग अधिक देखने में आता है। 'बलि' के साथ 'हृ' धातु का प्रयोग संस्कृत में भी मिलता है। इसका अर्थ होता है—ले जाना। 'बलिहारी' शब्द का संस्कृत में अर्थ होता है—बलि को ले जानेवाला, बलि को देनेवाला। हिन्दी में यह शब्द भाववाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ होता है—बलि देने के भाव अर्थात् उत्सर्ग।

व्याख्या—मैं अपने गुरु पर घड़ी-घड़ी सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ जिसने हमको मनुष्य से दिव्य कर दिया और जिसको ऐसा करने में विलम्ब न लगा।

इस साखी की प्रथम पंक्ति का एक अन्य पाठ अधिकांश प्रतियों में इस प्रकार है— 'बलिहारी गुरु आपणे द्यौहाड़ी के बार।' इसमें 'द्यौहाड़ी' शब्द ही अधिक दुर्बोध है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'द्यौहाड़ी' का अर्थ 'दिवस' किया है। किन्तु यह अर्थ किस आधार पर लिया गया है, इसको बतलाने की उन्होंने कृपा नहीं की है।

'द्यौहाड़ी' शब्द 'द्योहर' का विकृत रूप है। द्योहर > देवघर > देवगृह का तद्भव है। इसका अर्थ है—देवालय। उसके साथ 'बार' का अर्थ होगा—द्वार। इस प्रकार 'साखी' का भाव यह होगा कि मैं अपने उस गुरु पर न्यौछावर जाता हूँ, जो कि देवालय का द्वार है अर्थात् जिसके माध्यम से मैं देव का साक्षात्कार कर सकता हूँ। 'द्यौहाड़ी के बार' अर्थात् 'देवगृह का द्वार' गुरु का समानाधिकरण है। 'साखी' की दूसरी पंक्ति में अर्थ-भेद नहीं है।

ना० प्र० स० की प्रति में 'द्यौं हाड़ी के बार' पाठ है। इसका अर्थ होगा कि मैं कितनी ही बार या दफा हड्डी तक समर्पित कर दूँ तो भी उऋण नहीं हो सकता।

सतगुरु की महिमा अनँत अनँत, किया उपगार[1]।
लोचन अनँत उघारिया[2], अनँत दिखावनहार[3]।। ३।।

शब्दार्थ—अनँत = अपार, असीम, जिसका कोई आदि-अंत नहीं है अर्थात् काल से परे। उपगार = उपकार। लोचन = दृष्टि। उघारिया = खोलकर। दिखावनहार = दिखलानेवाला।

व्याख्या—सद्गुरु की महिमा अपार है। उसका उपकार असीम है। उसने अनँत दृष्टि खोलकर, उस प्रभु को, जिसका कोई आदि-अंत नहीं है अर्थात् जो काल से परे है, दिखलाने की कृपा की है।

'अनँत दृष्टि' के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) अनँत की दृष्टि। (२) वह दृष्टि जिसका अन्त नहीं अर्थात् जिसमें घट-बढ़ नहीं होती। ये दोनों अर्थ यहाँ लग सकते हैं।

राम नाम के पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या[4] लै गुरु संतोषिए,[5] हौंस[6] रही मन माँहि।।४।।

१. हनु०, वि०—उपकार।
२. ना० प्र०—उघाड़िया।
३. ना० प्र०—दिखावणहार।
४. हनु०—कह।
५. तिवारी—संतोखिए।
६. हनु—हवस।

शब्दार्थ—पटंतरै = बराबरी। देबेकौं-देबेको = देने के लिए, देने योग्य। हौंस = हौसला, उत्साह, उमंग। क्या लै = (मुहाविरा) किस वस्तु से।

व्याख्या—गुरु ने मुझे राम नाम दिया है। उसके बराबर बदले में संसार में देने को कुछ नहीं है। तो फिर मैं गुरु को क्या देकर सन्तुष्ट करूँ? कुछ देने की अभिलाषा मन के भीतर ही पिहित (बंद) रह जाती है।

भाव यह है कि गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसके अनुरूप कोई दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै[1] सदकै करूँ[2], दिल अपनीं[3] का साछ[4] (साँच)।
कलिजुग हम सौं[5] लड़ि पड़ा,[6] मुहकम मेरा बाछ[7] (बाँच)।। ५।।

शब्दार्थ—सदकै = (अ०) न्यौछावर। साछ = साक्ष्य। मुहकम = (अ०) दृढ़, मजबूत, टिकाऊ। बाछ = वांछा, आकांक्षा, (बाँच) = बचा हुआ।

व्याख्या—अपने दिल के साक्ष्य से अर्थात् सच्चे हृदय से मैं सद्गुरु के चरणों में अपने को न्यौछावर करता हूँ। कलियुग मुझे विचलित करने के लिए लड़ पड़ा। किन्तु सद्गुरु की कृपा से मेरी वांछा अर्थात् प्रभु-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा दृढ़ है। वह मेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

यदि 'दिल अपनों का साँच' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—'मैं अपने सच्चे दिल से सद्गुरु की न्यौछावर करता हूँ। दूसरी पंक्ति में 'मुहकम' अर्थात् दृढ़ विशेषण शब्द है, किन्तु यदि 'मुहकम मेरा बाँच' पाठ लिया जाय तो 'मुहकम' का प्रयोग विशेष्य के रूप में माना जायगा तब अर्थ होगा कि मेरी दृढ़ता बची हुई है अर्थात् कलियुग के प्रहार से भी मैं अपने पथ से नहीं डिग सकता।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।
एक जु बाहा प्रीत सौं, भीतर बिंधा शरीर।। ६।।

शब्दार्थ—कमान = धनुष। बाहन = फेंकना। बाहा = चलाया।

व्याख्या—सद्गुरु ने शब्दरूपी धनुष लेकर आत्म-ज्ञानरूपी बाण चलाया। एक तीर जो उसने प्रेम से चलाया, वह मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट होकर बिंध गया।[8]

ना० प्र० स० की प्रति में पाठ है—सतगुरु लई कमाँण करि! यहाँ 'करि' 'कर' का सप्तमी है, जिसका अर्थ है—कर में, हाथ में। इस प्रकार का प्रयोग प्राचीन हिन्दी में प्रायः मिलता है।

अलंकार—रूपक

१. हनु०—से।
२. तिवारी, हनु०—किया।
३. ना० प्र०—अपणीं, हनु०—अपने को साँच।
४. तिवारी—साँच।
५. ना० प्र०—स्यूँ।
६. ना० प्र०—पड्या।
७. तिवारी, हनु०—बांच।
८. सतगुरु लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।। ६।।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सवद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं[1] मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक।। ७।।

शब्दार्थ—सूरिवाँ = सूरमा, शूर। सबद = शब्दरूपी शक्तिपात (शक्तिपात तीन प्रकार से होता है—स्पर्श, दृष्टि और शब्द से। यहाँ भाव है कि गुरु ने शब्द का शक्तिपात किया)। बाह्या = फेंका। भैं = भर में। छेक = छेद।

व्याख्या—सद्गुरु सच्चा शूर है। उसने ऐसा शब्द फेंककर मारा कि वह लगते-भर में ही मेरे भीतर प्रविष्ट कर गया और कलेजे को छेदकर पार कर गया अर्थात् उसके लगते मात्र ही मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ गया।

कहीं-कहीं पाठ है 'भय मिटि गया'। इसका अर्थ होगा कि शब्दरूपी बाण लगते ही मेरा भय मिट गया।

यदि 'भ्वैं या भुईं' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा कि शब्द-बाण के लगते ही मैं भूमि में मिल गया, धराशायी हो गया। परन्तु इस पाठ में 'मिलि गया' का कर्त्ता 'मैं' अलग से लगाना होगा। ऊपरवाले पाठ में 'मिलि गया' का कर्त्ता उसके पूर्व प्रयुक्त 'सबद' है।

सतगुरु मार्‌या बाण भरि, धरि करि सूधी[2] मूठि।
अंगि उघारै[3] लागिया, गई दवा[4] सूँ फूँटि।।८।।

शब्दार्थ—सूधी मूठि = सीधी मूठ, सीधी मुट्ठी में पकड़कर अर्थात् ठीक लक्ष्य करके। दवा = दावाग्नि। सूँ = समान, तरह। उघारै = खुले हुए।

व्याख्या—सद्गुरु ने सीधा लक्ष्य करके पूरी शक्ति से शब्द-बाण मारा। वह मेरे (शिष्य के) नंगे अंग पर लग गया अर्थात् आर-पार हो गया और मेरे भीतर दावाग्नि जैसी फूट पड़ी।

भाव यह है कि जैसे कवचरहित नंगे अंग पर बाण लगने से वह आर-पार हो जाता है। उसका निशाना चूकता नहीं, वैसे ही सद्गुरु का शब्द-बाण मेरे आर-पार हो गया अर्थात् मेरे ऊपर उसका पूर्णतः प्रभाव पड़ गया। और मेरे भीतर परमब्रह्म के साक्षात्कार के लिए विरह की आग फूट निकली।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति

हँसै न बोलै उन्मनी, चंचल[5] मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिधा,[6] सतगुरु कै हथियार।। ९।।

१. गुप्त, तिवारी भुईं, हनु०। भय मिटि। विचार०—भय मिटि, युगला० भय मिटि।
२. वि० यु०—धीरो।
३. ना० प्र०—उघाड़ै।
४. हनु०, दु०—दुवाँसो, तिवारी—दवा सीं।
५. हनु० भेला।
६. युगला० विंधा।

शब्दार्थ—उन्मनी = (i) जहाँ प्राण और मन एक हो जाते हैं। मन स्थिर हो जाता है। आत्म-साक्षात्कार की अवस्था। (ii) मन की गति समाप्त हो जाती है। उसका संकल्प-विकल्पात्मक स्वभाव बदल जाता है। चंचल =(प्र० अ०) मन। मेल्ह्या = (मेल्हना क्रिया) = बेचैन करना।

व्याख्या—कबीरदास कहते हैं कि सद्गुरु का शब्द-बाण इस प्रकार भीतर विंध गया कि उसने चंचल मन को मार डाला अर्थात् अमनस्क कर दिया ('मन को मारना' एक अवस्था है जिसमें संकल्प-विकल्पात्मक मन की स्वाभाविक चंचलता समाप्त हो जाती है और मन में स्थैर्य-भाव आ जाता है।) और उन्मनी स्थिति प्राप्त हो गयी। परिणामस्वरूप वह न हँसता है, न बोलता है। यहाँ 'हँसै न बोलै' लाक्षणिक प्रयोग है। इसका भाव यह है कि मन का स्वाभाविक व्यापार समाप्त हो जाता है और वह एक विचित्र शान्ति का अनुभव करता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इसमें व्यञ्जना यह है कि वह एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जिसका वर्णन वह शब्दों में नहीं कर सकता।

टिप्पणी—उन्मनी—

उन्मनी और मनोन्मनी पर्यायवाची शब्द हैं। इस स्थिति का 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते। यो मनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी। (२/४२)

अर्थात् जब प्राणवायु का मध्यनाड़ी अर्थात् सुषुम्ना में सम्यक् रूप से संचार होने लग जाता है, तब मानव का संकल्प-विकल्पात्मक मन, जो स्वभावतः चंचल है, स्थिर हो जाता है। मन के इस सुस्थिर भाव को मनोन्मनी या उन्मनी अवस्था कहते हैं।

उन्मनी अवस्था में तत्व का साक्षात्कार हो जाता है। तत्व का साक्षात्कार तब तक नहीं हो सकता, जब तक संकल्प-विकल्पात्मक मन की चंचलता समाप्त नहीं हो जाती। यह ऐसी स्थिति है जहाँ मन का स्वाभाविक कार्य समाप्त हो जाता है। इसलिए मन के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए इसे 'अमनस्क अवस्था' कहते हैं और इस अवस्था में साक्षात्कार की जो नयी स्थिति प्राप्त होती है, उसे 'उन्मनी' कहते हैं। यह मन के ऊपर की स्थिति है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति

गूँगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
[1]पाऊं तैं[2] पंगुल भया, सतगुरु[3] मारा बान[4]।। १०।।

शब्दार्थ—पाऊँ = पैर। तैं = से। पंगुल = लँगड़ा।

१. हनु०, वि०, यु०—पावन ते।
२. ना० प्र०—थे।
३. ना० प्र०-मार्‌या
४. ना० प्र०—बाण।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या—सद्गुरु का शब्द-बाण लगने पर शिष्य गूँगा और बावला-सा हो जाता है और कान से बहरा तथा पैर से पंगु-सा हो जाता है। शब्द-बाण मारने का अर्थ है—शब्द द्वारा शक्तिपात करना।

गूँगा, बावला, बहरा, पंगु आदि का भाव है—ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का विषय से विरत हो जाना। गूँगा, बावला और बहरा ज्ञानेन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति की समाप्ति के द्योतक हैं। 'पाऊँ तै पंगुल भया' कर्मेन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति का द्योतक है। विषयों की ओर प्रवृत्त न होने से वह लौकिक दृष्टि से गूँगा, बावला, बहरा और पंगु-सा लगता है।

*पीछै लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं[1] थै सतगुरु मिल्याँ, दीपक दीया[2] हाथि।। ११।।

शब्दार्थ—दीपक (प्र० अ०) = ज्ञान। थै = से।

व्याख्या—मैं लोक और वेद के पीछे लगा हुआ था अर्थात् साधारण लौकिक और वैदिक मान्यताओं के बन्धन में पड़ा हुआ था। उनके साथ पीछे-पीछे घूम रहा था। इतने ही में सद्गुरु ने मुझे अज्ञानरूपी अंधकार में भटकते देखकर आगे से आकर अर्थात् बढ़कर हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया।

इसमें गुरु के अनुग्रह की व्यञ्जना है। शिष्य को भटकते देखकर उसने बचा लिया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति।

दीपक दीया[3] तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना[4], बहुरि न आँवौ हट्ट।। १२।।

शब्दार्थ—अघट्ट = न घटनेवाली। बिसाहना = क्रय-विक्रय। हट्ट = हाट, बाजार, (प्र० अ०)-संसार।

व्याख्या—गुरु ने ज्ञानरूपी दीपक प्रेमरूपी तेल से भरकर दिया और उसमें कभी न घटनेवाली सुरति की बत्ती डाल दी जिसके द्वारा मैंने संसाररूपी बाजार में अपना सब प्रारब्धजन्य कर्म समाप्त कर लिया और पुनः अब इस बाजार में नहीं आऊँगा अर्थात् अब मैं जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो गया हूँ।

तुलनीय—सुरति निरति का दिवला सँजोले,
मनसा की कर ले बाती।
प्रेम हटी ते तेल मँगा ले,
जल रहा दिन राती।।

—मीरा

* हनु० की प्रति में—यहे बहाने जात थे, लोक वेद के साथ।
बीचहि में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ।। (सतगुरु का अंग—७)
१. तिवारी—पैंडे मैं।
२. युगलु०—दीन्हा।
३. यु०—दीना, हनु०—दीन्हा।
४. ना० प्र०—बिसाहुणाँ, तिवारी-बिसाहुना।

प्रस्तुत साखी लालदास के नाम से भी मिलती है—

लाल जी दीपक जोरा तेल भरि, वार्ता करी सुघाट।
पूरा किया बिसावनां, बहुरि न आवै बाट।।

—याज्ञिक संग्रह

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

ग्यान प्रकासा[1] गुरु मिला[2], सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविंद क्रिपा[3] करी, तब गुर मिलिया आइ।। १३।।

शब्दार्थ—प्रकासा = प्रकाशित हुआ। बीसरि = भूलना।

व्याख्या—जब गुरु मिला, तब ज्ञान प्रकाशित हो गया। मुझे अब यही प्रयत्न करना है कि जिस गुरु के द्वारा मेरे भीतर ज्ञान प्रकाशित हुआ है, उसको मैं किसी प्रकार भुला न दूँ। जब प्रभु ने अनुग्रह किया, तभी गुरु आकर मिला।

'सो' सर्वनाम गुरु और ज्ञान दोनों के लिए हो सकता है। प्रस्तुत साखी 'गुरुदेव को अंग' के अन्तर्गत है, जिसमें गुरु की महिमा का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। इसलिए 'सो' को गुरु के लिए ही लेना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि हम 'सो' को ज्ञान के लिए लें तो अर्थ होगा—अब हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जो ज्ञान गुरु के द्वारा प्राप्त हुआ है, उसे हम अपनी सावधानता और साधना से सुरक्षित रखें, जिससे वह क्षीण न होने पावे।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटै लौन[4]।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौन[5] ।। १४।।

शब्दार्थ—रलि गया = घुल-मिल गया। लौन = नमक। गुर गरवा = गुरुत्व युक्त गुरु।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि प्रभु की कृपा से मुझे गौरवशाली गुरु मिल गया। उसकी कृपा से मैं प्रभु में उस प्रकार एकमेक हो गया, जिस प्रकार आँटे में नमक मिलकर एकमेक हो जाता है। जैसे नमक अपने पृथक् अस्तित्व को खो देता है, वैसे ही नाम-रूप समाप्त हो जाने से मेरा पृथक् अस्तित्व मिट गया। जाति-पाँति और कुल आदि नाम-रूप पर ही आश्रित है। जब नाम-रूप के साथ मेरा आपा ही समाप्त हो गया, तब मेरे लिए जाति-पाँति या कुल निरर्थक हो गये। अब मुझे कोई किस नाम से अभिहित कर सकेगा?

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा[6] निरंध।
[7]अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों[8] कूप पडंत।। १५।।

१. ना० प्र०—प्रकास्या।
२. ना० प्र०—मिल्या।
३. ना० प्र० कृपा।
४. ना० प्र०—लूँणं।
५. ना० प्र०—कौण।
६. गुप्त — है जा धंध।
७. वि०, यु०—अन्धे को अन्धा मिला, पड़ा काल के फन्द।
८. ना० प्र०—दूँयूँ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—निरन्ध = घोर अंधा।

व्याख्या—जिसका गुरु अन्धा है अर्थात् अज्ञानी है, उसका चेला तो और घोर अन्धा अर्थात् महाअज्ञानी होगा। अन्धे को जब दूसरा अन्धा ढकेलकर आगे ले चलता है, तब दोनों कुएँ में जा गिरते हैं अर्थात् भव-कूप में पड़कर नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ 'ठेलिया' शब्द बहुत व्यञ्जक है। ज्ञानी गुरु तो आगे चलकर मार्ग-दर्शन करता है किन्तु जो स्वयं अन्धा है, वह शिष्य को पीछे से ठेलकर आगे बढ़ाएगा। परिणाम यह होगा कि दोनों ही कूप में गिरकर विनष्ट हो जाएँगे।

तुलनीय— जावण अप्पा जाणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
अंधे अंध कढ़ावइ, तिम वेण्ण वि कूव पड़ेइ।।
—सरहपा-दोहाकोष

x x x

अन्धे अन्धा मिलि चले, दादू बाँधि कतार।
कूप पड़े हम देखता, अन्धे अन्धा लार।।
—दादू

नाँ गुर मिल्या न सिष[1] भया, लालच खेल्या डाव।
दोनों[2] बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव।। १६।।

शब्दार्थ—डाव = दाँव। सिष = शिष्य।

व्याख्या—साधना तभी सफल होती है, जब वास्तविक ज्ञानी गुरु मिले और सच्चा निष्ठावान शिष्य मिले। यदि सच्चा गुरु नहीं मिलता है और न सच्चा निष्ठावान शिष्य मिलता है तो दोनों लालचवश केवल अपने-अपने दाँव अर्थात् स्वार्थ-सिद्धि में लगे रहते हैं। गुरु इस दाँव में लगा रहता है कि वह अपने महत्त्व प्रदर्शनार्थ शिष्यों की संख्या बढ़ाए और उनसे धन-मानादि प्राप्त करे। शिष्य इस दाँव में लगा रहता है कि किसी गुरु का शिष्य कहलाकर वह अपनी गणना सन्तों में करवाकर मान प्राप्त करे। यही दोनों का दाँव खेलना है। किन्तु सच्चे गुरु-शिष्य के अभाव में साधना की दृष्टि से दोनों भव-सागर में वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे पत्थर की नाव पर चढ़नेवाले नदी की धार में डूब जाते हैं। 'पाथर की नाव' में व्यञ्जना यह है कि अपने बोझ के कारण वह धार के तल पर रह नहीं सकती, डूब जाती है। ऐसे ही दिखावा मात्र के लिए झूठी साधना भी आगे चल नहीं सकती। उसका अवलम्ब करनेवाले विनाश को प्राप्त होते हैं। अपनी झुठाई के बोझ से वह 'पाथर की नाव' के समान शिष्य-गुरु दोनों को ले डूबती है।

ऐसे ही गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में तुलसीदास ने लिखा है :—

गुरु सिस बधिर अंध कर लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा।।

---

१. तिवारी—सिख मिला।
२. ना० प्र०—दुन्यूँ।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घर किसकौ चाँन्दना,[1] जिहि घर गोविंद[2] नाँहि।। १७।।

शब्दार्थ—जोइ = सँजोकर। चौसठ दीवा = ६४ दीपक—(प्र० अ०) चौसठ कलाएँ। चौदह चंदा = द्वितीया से पूर्णिमा तक १४ दिन, (प्र० अ०) १४ विद्याएँ। चाँदना = प्रकाश, उजाला।

व्याख्या—जैसे किसी घर में चाहे चौसठ दीपक जलाये जायँ और चन्द्रमा अपनी चौदह कलाओं से प्रकाशमान हो, परन्तु यदि उसमें कोई निवास करनेवाला नहीं है तो वहाँ किसका प्रकाश होगा? अर्थात् सारा प्रकाश व्यर्थ है। उसी प्रकार जिस हृदय-मन्दिर में प्रभु का वास नहीं है अर्थात् जो भगवद्भक्त नहीं है, उसने चाहे चौसठ कलाओं और चौदह विद्याओं का भलीभाँति परिशीलन कर लिया हो, फिर भी उसका हृदय अन्धकारमय ही रहेगा। वास्तविक प्रकाश प्रभु का प्रेम है। कलाओं और विद्याओं की निपुणता वास्तविक प्रकाश नहीं है।

टिप्पणी—(i) यहाँ ६४ दीपक, ६४ कलाओं का प्रतीक है और १४ चन्दा, १४ विद्याओं का प्रतीक है।

(ii) द्वितीया से पूर्णिमा तक १४ दिन चाँदनी के होते हैं।

(iii) ६४ कलाएँ निम्नलिखित मानी गयी हैं:—

१. गीत, २. वाद्य, ३. नृत्य, ४. चित्रकारी, ५. भोजपत्र के पत्तों को तिलक की आकृति में काटना, ६. पूजन के लिए चावल और रंग-बिरंगे फूलों का सजाना, ७. घर या कमरों का फूलों से सजाना, ८. शरीर, कपड़ों और दाँतों पर रंग चढ़ाना, ९. फर्श पर मणियों को बिछाना, १०. शय्या की रचना, ११. उदकवाद्य, १२. जलघात, १३. मन्त्र-तन्त्रों के प्रयोग, १४. माला गूँथना, १५. शिर के आभूषणों को उचित स्थान पर धारण करना, १६. अपने को या दूसरों को वस्त्रालंकार से सजाना, १७. हाथी दाँत, शंख से अलंकारों को बनाना, १८. सुगन्धित द्रव्य तैयार करना, १९. आभूषणों से मणियाँ सजाना, २०. इन्द्रजाल की क्रीड़ाएँ करना, २१. बाजीकरण प्रयोग, २२. हाथ की सफाई, २३. भोजन बनाने का कौशल, २४ पेय पदार्थों के बनाने का कौशल. २५. सिलाई, २६. सूत से चित्र बनाना, २७. वाद्य-वादन, २८. पहेलियों को बुझाना, २९. अन्त्याक्षरी, ३०. कठिन श्लोक कहना, ३१. पुस्तक वाचन, ३२. नाटकादि का ज्ञान, ३३. कविता द्वारा समस्यापूर्ति, ३४. बेंत और सरकण्डे की वस्तुएँ बनाना, ३५. मीनाकारी व पच्चीकारी, ३६. बढ़ईगीरी, ३७. गृह-निर्माण कला, ३८. मणियों और रत्नों की परीक्षा, ३९. धातु शोधन, ४०. मणियों को रंगना, ४१. वृक्षायुर्वेद, ४२. भेड़ा-मुर्गा आदि लड़ाना, ४३. तोता-मैना पढ़ाना, ४४. शरीर की मालिश की कला, ४५. सांकेतिक अक्षरों का अर्थ-ज्ञान, ४६. गुप्त भाषा विज्ञान, ४७. विभिन्न देशों की भाषाओं का ज्ञान, ४८. फूलों से रथ-गाड़ी आदि बनाना, ४९. शकुन-विचार, ५०. स्वचालित यन्त्रों को बनाना, ५१. स्मरण-शक्ति बढ़ाने की कला, ५२. याद किये श्लोकों को दुहराना, ५३. विक्षिप्त अक्षरों से श्लोक बनाना, ५४-५५. शब्दकोशों और छन्दों का ज्ञान, ५६. काव्यालंकार का ज्ञान, ५७. बहुरूपियापन, ५८. वस्त्र-धारण की कला, ५९. द्यूत-क्रीड़ा की कला, ६०. पासा खेलना, ६१. बच्चों के खेलों का ज्ञान, ६२. आचार शास्त्र, ६३. विजय दिलानेवाली विद्याएँ, ६४. व्यायाम विद्या।

---

१. तिवारी—चांदिनी, ना० प्र०—चानिणाँ।
२. तिवारी, हनु०—सतगुर।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

१४ विद्याएँ निम्नलिखित हैं:—

ब्रह्मज्ञान, रसज्ञान, कर्मकाण्ड, संगीत, व्याकरण, ज्योतिष, धनुर्विद्या, जलतरन, न्याय, कोक, अश्वारोहण, नाट्य, कृषि, वैद्यक।

अथवा

६ वेदांग = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, छन्द, ज्योतिष।

४ वेद = ऋक्, यजु, साम, अथर्वण तथा मीमांसा: न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

> निस अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद।
> [1]अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि [2]नहिं मंद।। १८।।

शब्दार्थ—कारणैं = अन्धकार दूर करने के लिए। निस अँधियारी = अज्ञानरूपी अन्धकार। मन्द = मूर्ख। आतुर = वेग से, जल्दी-जल्दी। ऊदै किया = उदित किया।

व्याख्या—जैसे रात्रि के घोर अन्धकार को दूर करने के लिए चाहे बड़ी आतुरता से ८४ लाख चन्द्रमा उदित किये जायँ अर्थात् उनका प्रकाश पुंजीभूत किया जाय, तब भी जो निसर्गतः मन्द-दृष्टि है, उसको दिखलायी नहीं दे सकता, ठीक उसी प्रकार प्रकृति से ही (मन्द) अज्ञानी जीवों को चाहे लाखों शास्त्रों के उपदेश मिलें, तब भी उनकी आन्तरिक दृष्टि नहीं खुलती।

इसमें व्यञ्जना यह है कि आन्तरिक दृष्टि केवल गुरु के द्वारा खुल सकती है, शास्त्र के द्वारा नहीं।

अंलकार—विशेषोक्ति।

> भली भई जु गुर मिल्या, नातर[3] होती हानि[4]।
> दीपक जोति[5] पतंग ज्यूँ, पड़ता[6] आप निदान[7]।। १९।।

शब्दार्थ—निदान = अन्ततः।

व्याख्या—यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे गुरु मिल गया, अन्यथा मेरी बड़ी हानि होती अर्थात् मेरा आध्यात्मिक पतन हो जाता। जैसे दीपक की ज्योति से आकृष्ट होकर अन्ततः पतंग जल मरता है, वैसे ही माया की चकाचौंध से आकृष्ट होकर मैं भी अन्ततः विनष्ट हो जाता। इस साखी की दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार है:—

> 'दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणि।'

इसका अर्थ होगा—जैसे पतंग की दृष्टि में दीपक ही अत्यन्त आकर्षक वस्तु होती है, वैसे ही मैं भी मायारूपी दीपक के आकर्षण से विनष्ट हो जाता। इसको अच्छी तरह से जान लो अर्थात् इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

---

१. तिवारी—गरु बिनु अति ऊदै भये, विचार० गुरु बिन येते उदय ह्वै।
२. तिवारी—रहि, विचार०—सुदिष्टि हि।
३. ना० प्र०—नहीं तर।
४. ना० प्र०—हाँणि।
५. ना० प्र०—दिष्टि।
६. ना० प्र०—पड़ता पूरी जाँणि।
७. तिवारी—जाँनि।

अलंकार—उपमा।

> माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि इवैं पडत,[1]।
> कहै कबीर गुर ग्यान तैं,[2] एक आध उबरंत।। २०।।

शब्दार्थ—इवैं = इसी में। तैं = से। उबरंत = उबरता है, बचता है। भ्रमि-भ्रमि = मँडराकर, भ्रम में पड़कर।

व्याख्या—माया दीपक के समान है और नर पतंग के समान। जैसे पतंग दीपक के चाकचिक्य से आकृष्ट होकर, भ्रमवश मँड़रा-मँड़राकर उसमें निमग्न होकर विनष्ट हो जाता है, वैसे ही मनुष्य माया के आकर्षण से भ्रमवश विषयों को प्रिय समझकर उनकी ओर चक्कर काटते हुए, उनमें निमग्न होकर नष्ट हो जाता है। कबीर कहते हैं कि माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई एक-आध ही गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से उससे बच सकता है।

तुलसीदास ने भी कहा है—

> दीप सिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
> भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसंग।।
> (मानस—३।४६)

अलंकार—सांगरूपक

> सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषडी माँहै चूक।
> भावै त्यौं[3] परमोधिए, ज्यूँ बंसि[4] बजाई फूक।। २१।।

शब्दार्थ—बपुरा = बेचारा। जे = यदि। चूक = भूल, त्रुटि। बंसि = वंशी, बाँसुरी। भावै = जैसा चाहे। परमोधिए ले = अर्थ निकाल ले।

व्याख्या—सद्गुरु के साथ-ही-साथ शिष्य को भी एकनिष्ठ और श्रद्धालु होना चाहिए। बेचारा सद्गुरु क्या कर सकता है, यदि शिष्य में ही खोट है। ऐसा शिष्य अपने पूर्वग्रहों और वासनाओं के कारण गुरु के उपदेश से मनमाना अर्थ निकाल लेता है। जैसे वंशी में कोई इच्छानुसार राग बजा लेता है, वैसे ही वह शिष्य गुरु के उपदेश से मनचाहा अर्थ निकाल लेता है। गुरु का वास्तविक प्रभाव दोषग्रस्त शिष्य पर नहीं पड़ता।

अलंकार—उदाहरण।

> संसै खाया सकल जग[5] संसा[6] किनहूँ न खद्ध।
> जे बेधे[7] गुरु अष्षिरां,[8] तिनि संसा चुनिचुनि[9] खद्ध।। २२।।

---

१. तिवारी, माँहि।
२. ना० प्र०—थैं।
३. ना० प्र०—त्यूँ प्रमोधि ले, गुप्त—परमोधि ले।
४. तिवारी, गुप्त—बाँसि।
५. ना० प्र०—जुग।
६. हनु०-संशय काहु।
७. हनु०—बंधे।
८. हनु०—अक्षरा।
९. ना० प्र०—चुणि-चुणि।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—संसा = संशय। अष्पिरां = उपदेश द्वारा।

व्याख्या—आध्यात्मिक जीवन में श्रद्धा का प्रथम स्थान है। जो प्रत्येक विषय में संशय रखता है, वह आध्यात्मिक जीवन में उन्नति नहीं कर सकता।

कबीर कहते हैं कि संशय ने समस्त जगत् को खा लिया है अर्थात् उससे कोई नहीं बचा है, किन्तु संशय को कोई न खा सका अर्थात् कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो संशय पर पूरा अधिकार प्राप्त कर ले। जो गुरु के उपदेशों से विद्ध हैं, वे ही संशय को चुन-चुनकर खा डालने में समर्थ होते हैं।

टिप्पणी—'जे बेधे गुरु अष्पिरां' में प्राचीन कर्मवाच्य प्रयोग है। इसका अन्वय है—'जो गुरु अष्पिरां बेधे' अर्थात् जो गुरु के अक्षरों से बेधे गये हैं, विद्ध हुए हैं।

गीता में भी कहा गया है—'संशयात्मा विनश्यति।'

चेतनि चौकी बैसि[1] करि, सतगुर दीन्हीं[2] धीर।
निरभै होइ निसंक भजु,[3] केवल कहै कबीर।। २३।।

शब्दार्थ—चेतनि = ज्ञान। बैसिकरि = बैठकर।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि ज्ञान की चौकी पर बैठकर सद्गुरु ने धैर्य बँधाया और यह कहा कि निर्भय और निःशंक होकर तू अकेले परमात्मा को भज।

अलंकार—अनुप्रास

सतगुरु मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी[4] भोल।
[5]पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।। २४।।

शब्दार्थ—चोल = मजीठ। विनंठा = विनष्ट। भोल = भूल, भ्रम। मनि = मन में (प्राचीन सप्तमी प्रयोग)। पांसि = (सं० पांशु) = धूल।

व्याख्या—सद्गुरु मिला भी तो क्या हुआ, यदि मन में (मौलिक) भूल पड़ी हुई है अर्थात् यदि मन अत्यन्त मलिन है। यदि पांशु अर्थात् धूल से कपड़ा मलिन होकर नष्ट हो गया है तो मंजीठ बेचारी क्या कर सकती है अर्थात् उस पर रंग कैसे ला सकता है ?

टिप्पणी—मंजीठ एक प्रकार की लता होती है, जिसकी जड़ों और डंठलों को उबालकर लाल रंग निकाला जाता है।

अलंकार—दृष्टान्त।

बूड़ा[6] था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि[7]।
भेरा[8] देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि।। २५।।

---

१. विचार, युगला०—बैठि के।
२. युगला०, ना० प्र०—दीन्हीं।
३. ना० प्र०—भजि।
४. विचार०—मन परिया।
५. विचार०—कपास विनाथा कापड़ा।
६. ना० प्र०—बूड़े थे परि ऊबरे।
७. विचार, हनु०, युगला०—चमक्क।
८. तिवारी—जब भेरा देखा, हनु०, विचार०—बेड़ा देखा झांझरा, उतरी भया (भयो) फरक्क।

शब्दार्थ—लहरि = कृपा, मौज, ज्ञान की तरंग। चमंकि = चमकी, प्रकाशित हुई। भेरा = एक तरह की नाव, भेला। जरजरा = जीर्ण। फरंकि = अलग होकर, फड़ककर। पै = किन्तु।

व्याख्या—मैं बाह्याचार तथा कर्मकाण्डरूपी नाव पर चढ़कर भवसागर को पार करना चाहता था। इससे मैं डूबनेवाला ही था, किन्तु गुरु की अनुग्रह-तरंग चमकी या प्रकाशित हुई, जिससे मैं बच गया। मैंने यह देख लिया कि मेरी कर्मकाण्डरूपी नौका जर्जर है। यह हमें भवसागर के पार नहीं ले जा सकती। यह तो हमें डुबो ही देगी। बस, फड़ककर उस नाव से उतर पड़ा अर्थात् कर्मकाण्डरूपी साधन को छोड़कर गुरु के द्वारा बताये गये मार्ग का अनुगमन किया।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

गुरु गोविंद तौ[1] एक है, दूजा यहु[2] आकार।
[3] आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।। २६।।

शब्दार्थ—आकार = उपाधि, शरीर। आपा = अहंता, खुदी। करतार = ईश्वर, कर्ता।

व्याख्या—गुरु और प्रभु (गोविंद) वस्तुतः एक ही हैं। दोनों में केवल उपाधि-भेद है अर्थात् नाम-रूप का भेद है। यदि अपनी अहंता (खुदी) को मिटाकर कोई जीते ही मर जाय तो प्रभु का साक्षात्कार कर सकता है। जीव का अज्ञान की अवस्था में अहंता (मैं-मेरा) भाव ही जीवन है। शरीर रहते हुए 'मैं-मेरे' भाव का समाप्त हो जाना ही 'मरण' है। 'जीवति ही मरि जाय' का भाव यह है कि शरीर-प्राण रहते हुए 'मैं-मेरे' का भाव समाप्त हो जाय। कबीर ने अन्यत्र भी इसी प्रकार कहा है:—

ऊँचा तरुवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।
वा फल को तो वो चखे, (जो) जीवत ही मरि जाय।।

अलंकार—विरोधाभास।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख[4]।
स्वांग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगै भीख[5]।। २७।।

शब्दार्थ—सीख = शिक्षा। जती = (सं० यती), साधक, साधु। स्वाँग = वेश।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि यदि सद्गुरु नहीं मिला और शिक्षा अधूरी रह गई, तब शिष्य केवल साधु या संन्यासी का वेश बनाकर घर-घर भीख माँगता फिरता रहता है।

सतगुरु साँचा[6] सूरिवाँ[7], तातैं लोहि लुहार।
कसनी[8] दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार।। २८।।

---

१. हनु०, विचार०, युगला०—दोउ।
२. तिवारी, हनु०, विचार०, युगला०—सब।
३. अन्य प्रतियों में—आपा मेटै हरि भजै, तब पावै दीदार।
४. ना० प्र०—सीष।
५. ना० प्र०—भीष।
६. तिवारी—मेरा।
७. हनु०, विचार०—सतगुरु तो ऐसा मिला।
८. ना० प्र०—कसणीं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—सूरिवाँ = शूरवीर। तातै = तप्त, गरम। कसनी = कसौटी तत्सार = सारतत्व । ताइ लिया = मूँदकर रखा, सुरक्षित रखा।

व्याख्या—इस साखी में सद्गुरु के लिए दो दृष्टान्त दिये गये हैं। पहले चरण में लोहार का और दूसरे चरण में सोनार का। लोहार लोहे को तप्त करके पीटकर इच्छानुसार मोड़ लेता है। कबीर कहते हैं, कि सद्गुरु सच्चा शूर है, जो कि शिष्यरूपी लोहे को साधनारूपी अग्नि में तप्त करके जैसा चाहता है, वैसा मोड़ लेता है। दूसरे चरण में सोनार का दृष्टान्त है। सोनार कसौटी पर कसकर सोने को परख लेता है, ठीक वैसे ही सद्गुरु शिष्य को साधना या नियमों की कसौटी पर कसता है और उसके भीतर जो सारतत्व निहित है, उसको प्रलोभनों और उपद्रवों से बचाकर सुरक्षित रखता है।

टिप्पणी—'ताइ लेगा' का अर्थ है—किसी वस्तु को घड़े आदि में मूँदकर सुरक्षित रखना, जिससे वह बाहर की वायु—धूल आदि से बंचा रहे। यहाँ 'ताइ लिया' का लक्ष्यार्थ है—सुरक्षित रखना।

अलंकार—दृष्टांत।

थापनि[1] पाई थिति भई[2], सतगुरु दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा बनिजिया[3], [4]मानसरोवर तीर।। २६।।

शब्दार्थ—थापनि = स्थापना, गुरु द्वारा शिष्य की पुष्टि। थिति = शांति, स्थिरता। धीर = धैर्य। बनिजिया = व्यापारी।

व्याख्या—सद्गुरु ने अपने अनुग्रह और उपदेश से धैर्य प्रदान किया, जिससे स्वरूप में निष्ठा दृढ़ हो गयी। कबीर अब मानसरोवर अर्थात् चैतन्य के तट पर ज्ञान-रत्न का संग्राही व्यापारी हो गया है। वह बाहरी साधनाओं से हटकर अन्तर्मुखी साधना करने लगा है।

यदि 'हीरा बनिजिया' समस्त पद लिया जाय तो अर्थ होगा—हीरे का व्यापारी। यदि 'हीरा बनिजिया' अलग-अलग लिया जाय तो 'बनिजिया' क्रियापद हो जायेगा और अर्थ होगा—हीरे का व्यापार। इससे मूल भाव में कोई अन्तर नहीं आता है।

यहाँ 'हीरा' ज्ञान का प्रतीक है। 'मानसरोवर' में मानसरूपी सरोवर की व्यंजना है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति

निहचल[5] निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घना[6], बाँटि[7] नहीं कबीर।। ३०।।

शब्दार्थ—निहचल = अक्षय। निधि = कोष, (प्र० अ०)—परमानन्द। तत = तत्त्व, (प्र० अ०) जीवात्मा। निपजी = उत्पन्न हुआ। साझी = भागीदार। घना = अनेक। मैं = में।

---

१. ना० प्र०—थापणि।
२. युगला०—थिर भया।
३. ना० प्र०—बणिजिया।
४. युगला०—मीन सरोवर।
५. विचार०, युगला०—निश्चय निधी।
६. ना० प्र०—घणाँ।
७. विचार०, युगला०-बाँटनहार।

व्याख्या—सद्गुरु ने साधना में साहस और धैर्य देकर जीवात्मारूपी तत्त्व को अक्षय परमानन्द में संयुक्त कर दिया। उस उत्पन्न हुए आनन्द को बाँटने के लिए अनेक भागीदार खड़े हो गये। किन्तु कबीर उसे बाँट नहीं सकते, क्योंकि साक्षात्कार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी अनुभूति का विषय है। वह अविभाज्य है, दूसरों को बाँटा नहीं जा सकता।

बौद्ध साधक नागार्जुन ने भी 'तत्त्व' का लक्षण बताते हुए उसे 'अपर प्रत्यय' कहा है, जिसका अर्थ है—वह प्रत्यय या अनुभूति जो दूसरों को कोई दे नहीं सकता।

चौपड़ि माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार[1]।
कहै[2] कबीरा राम जन, खेलौ सन्त विचार।। ३१।।

शब्दार्थ—चौपड़ि = चौसर (सं० चतुस्सारि) एक प्रकार का खेल जो बिसात पर चार रंगों की चार-चार गोटियों और तीन पासों से दो मनुष्यों में खेला जाता है। माँड़ी = मंडित किया, सजाया। चौहटे = चौराहे पर। अरध = अधः, नीचे। उरध = ऊर्ध्व, ऊपर।

व्याख्या—यहाँ त्रिकुटी को 'चौहट' कहा है जो कि दोनों भौंहों के मध्य में है। उससे ऊपर के चक्रों को 'उरध' कहा गया है और नीचे के चक्रों को 'अरध' द्वारा संकेतित किया गया है। इस त्रिकुटी में आज्ञाचक्र है। आज्ञाचक्र के खुलने पर ऊपर-नीचे के मार्ग खुल जाते हैं। कबीरदास कहते हैं कि इस त्रिकुटी पर साधनारूपी चौसर बिछायी गयी है और उसके ऊपर-नीचे बाजार लगा हुआ है। 'बाजार' जीवनोपयोगी वस्तुओं के क्रय-विक्रय का स्थल होता है। इन चक्रों के खुलने से परिपूर्ति अथवा सिद्धि का मार्ग खुल जाता है। परन्तु रामजन अर्थात् रामभक्त कबीर ने अपने शिष्यों को यह संकेत दिया है कि इस चौसर को सावधानी से खेलो अर्थात् हठयोग द्वारा प्रतिपादित कुंभक आदि कष्टसाध्य साधानाओं के चक्कर में न पड़कर सरल मार्ग 'सुरति शब्द योग' की डोर पकड़ो तो तुममें वही सिद्धि आ जाएगी, जो कुंभक, प्राणायाम आदि द्वारा प्राप्त होती है।

यहाँ 'राम जन' कबीर का भी विशेषण हो सकता है और 'सन्त' का भी। यदि 'सन्त' का विशेषण लिया जाए तो अर्थ होगा—राम के भक्त संत जन विचार कर खेलो। किंतु 'खेलो सन्त विचार' पृथक् वाक्यांश है, इसलिए 'राम जन' को कबीर का विशेषण मानना अधिक समीचीन होगा।

टिप्पणी—गोरखनाथ ने तांत्रिक साधना द्वारा इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस प्रकार उपदेश दिया है:—

अरध उरध बिचि धरी उठाई, मधि सुंनि मैं बैठा जाई।
मतवाला की संगति आई, कथंत गोरखनाथ परम गति पाई।। ७८।।

(गोरखबानी, पृ० २८)

इसका भाव यह है कि अधः अर्थात् नीचे जानेवाली अपानवायु और ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर जानेवाली प्राणवायु को बीच में उठाकर रखा अर्थात् केवल कुंभक किया और 'मधि सुंनि (मध्य शून्य) अर्थात् ब्रह्मरंध्र में जा बैठा। वहाँ मतवाले शिव की संगति मिली। गोरखनाथ कहते हैं कि इस प्रकार हमें परमगति प्राप्त हो गयी।

---

१. तिवारी—बाजारि।
२. तिवारी—सतगुर सेती खेलता, कबहुँ न आवै हारि।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कबीर ने भी ऊपर-नीचे के चक्रों की बात कही है, किन्तु कबीर की विशेषता यह है कि सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों की तान्त्रिक साधना द्वारा जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे कबीर के अनुसार उनके भक्तिपूर्ण 'सुरति शब्द योग' से ही प्राप्त हो सकती हैं, जिसमें कुम्भक आदि कष्टसाध्य साधनाओं की आवश्यकता नहीं रहती।

पासा पकड़ा[1] प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दाँव बताइया, खेलै दास कबीर।। ३२।।

शब्दार्थ—सारी = चौसर, यहाँ 'सारी' चौसर के उस कपड़े के लिए आया है, जिसे बिसात कहते हैं। इसी पर चौसर खेला जाता है। पासा = हाथीदाँत या हड्डी के उँगली के बराबर छः पहले टुकड़े, जिनके पहलों पर बिन्दियाँ बनी होती हैं और जिन्हें चौसर के खेलने में खेलाड़ी बारी-बारी फेंकते हैं। जिस बल से ये पड़ते हैं उसी के अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अन्त में हार-जीत होती है।

व्याख्या—३१ वीं साखी के भाव के क्रम में कबीरदास कहते हैं कि कबीर ने प्रेम की गोटी पकड़ी है और शरीररूपी बिसात पर वह सद्गुरु द्वारा बताये गये दाँव से चौसर खेल रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि सद्गुरु का मार्ग प्रेम का मार्ग है।

अलंकार—सांगरूपक।

सतगुर हम सूँ[2] रीझि करि, कहा[3] एक परसंग[4]।
बरसा[5] बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।। ३३।।

शब्दार्थ—परसंग = प्रसंग, रहस्य की बात।

व्याख्या—सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भीग गये।

अलंकार—रूपक।

कबीर बादल प्रेम का[6], हम परि बरस्या[7] आइ।
अंतरि भीगी[8] आतमाँ, हरी भई बनराइ।। ३४।।

शब्दार्थ—बनराइ = वनराजि।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारा अन्तरात्मा भीग गया और जीवनरूपी वनराजि हरी हो गयी।

१. ना० प्र०—प्रकड़्या
२. तिवारी, विचार०, युगला०—सौं।
३. ना० प्र०—एक कह्या, विचार० युगला०—कह्यो एक।
४. ना० प्र०—प्रसंग।
५. ना० प्र०—बरस्या।
६. युगला०—कौ।
७. ना० प्र०—बरष्या।
८. युगला०—भीजी।

अलंकार—रूपक।

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्ही आत्माँ, तार्थ सदा हजूरि।। ३५।।

शब्दार्थ—मेल्या = फेंक दिया, निकल गया। तार्थ = इस कारण। हजूरि = उपस्थिति, विद्यमानता, साक्षात्, आमना-सामना। पूरे = पूर्ण, ब्रह्म। परचा = परिचय।

व्याख्या—गुरु-कृपा से मेरा पूर्ण अर्थात् ब्रह्म से परिचय हो गया और मैंने अपने सब दुःख झाड़कर दूर फेंक डाले अर्थात् मेरे सभी कष्ट जाते रहे। मेरी आत्मा निर्मल हो गयी। मेरी पूर्ण शुद्धि हो गयी। इसलिए अब मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार सदैव विद्यमान रहता है।

■ ■ ■

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

२

सुमिरन को अंग

कबीर कहता जात है,[१] सुनता[२] है सब कोइ।[(अ)]
राम कहें भल होइगा, नहिं[३] तर भला न होइ।। १।।

शब्दार्थ—नहिं तर = नहीं तो, अन्यथा।

व्याख्या—कबीरदास कहते है कि मै कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये[४] ब्रह्म महेस।
राम नाम[५] ततसार है, सब काहू उपदेस।। २।।

शब्दार्थ—कथि = कह। ततसार = सारतत्व।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है। यह उपदेश सबके लिए है अर्थात् बिना वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और लिंग के भेद के राम की भक्ति का अधिकार सबको है।

तत्त तिलक तिहूँ लोक मैं, रामनाम[६] निज सार।
जन कबीर मस्तक[७] दिया, सोभा अधिक[८] अपार।। ३।।

शब्दार्थ—तत्त = तत्त्व। तिलक = श्रेष्ठ। सार = निचोड़। जन = भक्त।

व्याख्या—तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

'तिलक' शब्द में यह व्यञ्जना है कि वह सर्वश्रेष्ठ है और सारे जीवन की शोभा भी उसी रामनाम से है। उसके बिना जीवन निस्सार है। तिलक मस्तक के शोभा की वस्तु है और वह अपने विश्वास का प्रतीक भी।

---

१. ना० प्र०—हूँ।
२. ना० प्र०—सुणता।
(अ) —कहता हूँ कहि जात हूँ, सुनता है सब कोय।
सुमरिन से भल होयगा, ना तर भला न होय।। १३२। K (हनु०)—(युगला० ९८)
३. तिवारी—नातर।
४. ना० प्र०—गया।
५. ना० प्र०—नाँव
६. ना० प्र०—नाँव।
७. तिवारी—मस्तकि।
८. तिवारी—अनंत।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना,[१] कबीर सुमिरन[२] सार।। ४।।

शब्दार्थ—कर्मना = कर्म से। मनसा = मन से। वाचा = वचन से।

व्याख्या—प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

अलंकार—यथासंख्य।

कबीर सुमिरन[३] सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत सब[४] सोधिया, दूजा देखौं[५] काल[६]।। ५।।

शब्दार्थ—सोधिया = शोध किया, खोजा।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है और सब बातें बन्धन में डालने वाली हैं। मैंने आदि-अन्त सब कुछ छानकर देख लिया है। प्रभु के नाम के अतिरिक्त, अन्य सभी वस्तुएँ विनाशकारी काल ही हैं।

चिंता[७] तौ हरि[८] नाँव की, और न चितवै[९] दास।
जे कछु चितवैं राम[१०] बिन, सोइ काल की पास[११]।। ६।।

शब्दार्थ—चिंता = चिंतन। चितवै = चिंतन करना। पास = पाश, बंधन।

व्याख्या—दास कबीर कहते है कि मैं तो केवल हरि-नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वह चिन्तन काल के जाल के समान बन्धन और मृत्यु में फँसाने वाला होता है।

पँच[१२] सँगी पिव पिव[१३] करैं, छठा जु सुमिरै मन[१४]।
आई सूति[१५] कबीर की, पाया राम रतन[१६]।। ७।।

---

१. ना० प्र०—कमनाँ।
२. ना० प्र०—सुमिरण।
३. ना० प्र०—सुमिरण।
४. हनु०—मध, विचार०, युगला०—मधि।
५. हनु०, विचार०—देखा।
६. युगला०—ख्याल।
७. ना० प्र०—च्यंता।
८. हनु०, विचार०—सतनाम।
९. ना० प्र०—चिंता।
१०. हनु०, विचार०, युगला०—नाम।
११. हनु०, विचार०, युगला०—फांस।
१२. तिवारी, विचार०—पाँच संगि, हनु०—पाँच सखी।
१३. तिवारी—पिउ पिउ, हनु०—पिय पिय।
१४. हनु०—मन्न।
१५. हनु०, विचार०, युगला०—सुरति।
१६. हनु०—रतन्न।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—पंच सँगी = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, जो जीव की संगिनी हैं। जु = जो। सुति = स्वाति। रतन = मुक्ता रूपी रत्न।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि मेरी पाँचों इन्द्रियाँ उसी प्रकार से अपने प्रिय प्रभु की रट लगाये हुए हैं, जैसे चातक स्वाति नक्षत्र की आशा में 'पिउ पिउ' रटता रहता है और मेरी जो छठी इन्द्रिय मन है, वह उसी प्रभु का निरन्तर स्मरण करता रहता है। कबीर सीप के समान हैं, जिसमें स्वाति के बूँद गिरते हैं, तब वह राम रूपी मुक्ता-रत्न को पाकर निहाल हो जाते हैं।

टिप्पणी—(१) भारतीय दर्शन के अनुसार इन्द्रियाँ छः हैं—पाँच बाह्येन्द्रियाँ—नेत्र, कर्ण, घ्राण, स्पर्श और रसना तथा छठवाँ मन है। इनमें से कबीर ने पाँचों इन्द्रियों को 'पंच सँगी' बताया है और छठवें के लिए कहा है—'छठा जु सुमिरै मंन'। पाँच इन्द्रियाँ चातक के समान 'पिउ पिउ' करती रहती है और मन जो आन्तरिक इन्द्रिय है, वह प्रिय का स्मरण करता रहता है। यह एक सुन्दर रूपक है जिसमें इन्द्रियों को चातक के समान बताया गया है, कबीर अपने को सीप के समान बताते हैं और राम की प्राप्ति मुक्ता के समान बतायी गयी है। चातक 'पिउ पिउ' की रट लगाये रहता है, वैसे ही पाँचों इन्द्रियाँ अपने प्रिय प्रभु की रट लगाये रहती हैं और छठी इन्द्रिय मन प्रभु का स्मरण करता रहता है। हृदय सीप के समान है। उस स्मरण से स्वाति का बूँद कबीर के हृदय रूपी सीप में गिरता है और वह राम रूपी मुक्ता-रत्न में परिणत हो जाता है। कबीर उसको पाकर निहाल हो जाते हैं।

(२) साँगरूपक अलंकार।

(३) तुलनीय—

बिरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारै पीव।। (दादू)

मेरा[1] मन सुमिरै राम को,[2] मेरा[3] मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रहा,[4] सीस नवावौं[5] काहि।। ८।।

व्याख्या—मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ ? भाव यह है कि जीव और परमात्मा का, साधक और साध्य का भेद समाप्त हो गया है तो नमस्कार किसको किया जाय ?

अलंकार—तद्गुण।

तूँ तूँ करता[6] तू भया, मुझ[7] मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई,[8] जित देखौं[9] तित तूँ।। ९।।

---

१. हनु०—मम।
२. मा० प्र०—कूँ।
३. हनु०—मम।
४. ना० प्र०—रह्या।
५. हनु०—नमाऊँ, युगला०—नवाऊँ।
६. हनु०—करते।
७. हनु०—तुझमें रहा न हूँव, युगला०—तुझमें रही न हूँ।
८. तिवारी—वारी तेरे नाऊँ परि, हनु०—विचार०—वारी तेरे नाम पर, युगला०—वारी तेरे नाम की।
९. विचार, युगला०—देखूँ।

शब्दार्थ—वारी = वारना, बलिहारी जाना। फेरी = भाँवरी, चक्कर। बलिगई = न्यौछावर होना।

व्याख्या—'तू तू' याद करते हुए मैं स्वयं 'तू' हो गया। मुझमें मेरापन न रह गया अर्थात् मेरा अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।

दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार मिलता है—'वारी तेरे नाउँ पर'। इसका भी अर्थ वही है कि मैंने तेरे नाम पर अपने को न्यौछावर कर दिया।

'वारी फेरी बलि गई' का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—वारी फेरी अर्थात् संसार में चक्कर काटते रहना, आवागमन, 'बलिगई' बल गया, जल गया, नष्ट हो गया। मेरा पृथक् भाव जाता रहा। संसरण समाप्त हो गया। अब जिधर देखता हूँ, तू ही तू दिखलाई देता है।

अलंकार—तद्गुण।

कबीर[1] निरभै राम जपु[2], जब लगि दीवै बाति।
तेल घटै[3] बाती बुझै[4], (तब) सोवगा[5] दिन राति।। १०।।

शब्दार्थ—निरभै = निर्भय, निडर। दीवै = दीपक में (प्र० अ०) शरीर। बाति = वर्तिका, बत्ती (प्र० अ०) प्राण। तेल = (प्र० अ०) सामर्थ्य।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि जब तक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जाएगी अर्थात् शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन समाप्त हो जाएगा, तब तो तू दिन-रात सोएगा ही अर्थात् मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जाएगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

अलंकार—अन्योक्ति।

कबीर सूता क्या करै, जागि[6] न जपै मुरारि।
इक दिन[7] सोवन होइगा, लम्बे पाँव[8] पसारि।। ११।।

शब्दार्थ—मुरारि = मुर + अरि, मुर नामक दैत्य को मारनेवाले कृष्ण अर्थात् भगवान्। सूता = अज्ञान रूपी निद्रा। जागि = प्रबुद्ध होकर।

व्याख्या—कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है ? जाग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान् का स्मरण कर ! एक दिन तो तुझे पैर फैलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

अलंकार—वक्रोक्ति, पर्यायोक्ति।

---

१. हनु०-विचार०—कबिर, युगला०—कबिरा।
२. हनु०-विचार०—नाम जपु, ना० प्र०-राम जपि
३. ना० प्र०—घट्या हनु०—घटै
४. ना० प्र०—बुझी
५. हनु०-विचार—सोवोगे, युगला०—तब सोवेंगे।
६. युगला०—जागे जपो, हनु०-विचार०—जागी जपो
७. अन्य प्रतियों में—दिना है सोवना, ना० प्र०—एक दिना भी सोवणा
८. तिवारी—लम्बे गोड़

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।
जाका सँग[1] तै बीछुरा[2], ताही के संग लागि।। १२।।

शब्दार्थ—बीछुरा = बिछुड़ गया, वियुक्त हो गया। तै = तू।

व्याख्या—कबीरदास कहते हैं कि हे जीव! मोह-निद्रा में अभिभूत होकर तू क्या कर रहा है? जागकर तू तथ्य को क्यों नहीं देखता? जिस प्रभु के साथ से वियुक्त होकर तू जीव बन गया है, पुनः उसी के साथ क्यों नहीं लगता? अर्थात् पुनः उसी से क्यों नहीं संयुक्त हो जाता? अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए अज्ञानवश जीव का प्रभु से वियोग हो जाता है। वह अपने को उनसे पृथक् समझने लगता है। ज्ञान रूपी जाग्रतावस्था के आने से जीव पुनः अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

टिप्पणी—ईश्वर और जीव के सम्बन्ध में गो० तुलसीदास के विचार तुलनीय हैं:—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायाबस भयो गोसाईं। बँध्यो कीर मर्कट की नाईं।।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

कबीर सूता क्या करै, उठि[3] किन[4] रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर मैं[5], सो क्यौं सोवै[6] सुक्ख।। १३।।

शब्दार्थ—गोर (फा०) = कब्र। बासा = निवास।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि तू अज्ञान-निद्रा में सोता हुआ क्या कर रहा है? जागकर अपने स्वामी के समक्ष अपना दुःख क्यों नहीं रोता? एक दिन जिसको कब्र में रहना ही है, वह क्यों चैन से सो रहा है? उसे सचेत होकर प्रभु की शरण में जाना चाहिए।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के[7] गाइ।
तेरे सिर पर[8] जम[9] खड़ा, खरच[10] कदे का खाइ।। १४।।

शब्दार्थ—कदे = (सं०) कदा, कभी का, बहुत दिनों से। जम = मृत्यु, यमराज। खरच खाइ = खाना खरचना एक मुहाविरा है।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु

१. युगला०-हनु०-विचार०—संगते।
२. ना० प्र०—बीछड़िया।
३. युगला०-हनु०-विचार०—ऊठि न रोवो
४. ना० प्र०—न
५. युगला०-हनु०-विचार०—मैं।
६. युगला०—क्या सोवै, ना०—प्र० क्यूँ सोवै।
७. युगला०—गुण गोविंद का, हनु०-विचार०—गुन सतगुरु का।
८. ना० प्र०—परि
९. हनु०—यम।
१०. युगला०—खुरच।

का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। वह न जाने कब से धीरे-धीरे मृत्यु-लोक के सभी प्राणियों की आयु को खर्च करके खाता जा रहा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान् का स्मरण कर।

टिप्पणी—एक अन्य साखी में कबीर ने ठीक यही बात इस प्रकार कही है:—

झूठे सुख कौ सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
खलक चबीणां काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद।।

कबीर सूता क्या करै, सूतौं होइ[1] अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा,[2] सुनत[3] काल की गाज।। १५।।

शब्दार्थ—सूतां = सोने से। गाज = गर्जन।

व्याख्या—कबीर चेतावनी देते हैं कि हे मनुष्यों! तुम मानव जीवन पाकर भी चेतते नहीं और परम पुरुषार्थ के प्रति जागृत नहीं होते। तुम सोते हुए क्या कर रहे हो? इसका भाव यही है कि अपने भीतर जो प्रत्यक् चैतन्य है, उसके प्रति उदासीन रहना ही सोना है। सोने से अर्थात् परम पुरुषार्थ के लिए प्रयत्नशील न होने से तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि मानव योनि ही ऐसी है जिसमें जीव साधना के द्वारा परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। काल तुम्हारे सिर पर नाचता है। तुम व्यर्थ में साधना को टालते जाते हो। सोचते हो कि वृद्धावस्था में भजन करेंगे। तुम्हें यह पता नहीं है कि काल के चक्कर में कब आ जाओगे? काल के गर्जन से तो ब्रह्मा का भी आसन डिग जाता है।

टिप्पणी—प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक अधिष्ठाता ब्रह्मा होता है और उसके अधिष्ठातृत्व की भी एक निश्चित अवधि होती है। वह भी काल के ग्रास में आ जाता है। फिर मानव की क्या बिसात है?

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय[4] असरार।
राति[5] दिवस कै कूकनै,[6] कबहुँक[7] लगै पुकार।। १६।।

शब्दार्थ—असरार = (अरबी-इसरार) हठपूर्वक। कूकनै = पुकारना। कबहुँक = सम्भवतः कभी। केसौ = केशव, प्रभु।

व्याख्या—प्रभु को निरन्तर आर्त्त स्वर से पुकारते रहो। हठपूर्वक लगातार घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाए और तुम्हारी पुकार लग जाये।

'असरार' शब्द अरबी के 'इसरार' का तद्भव है। इसका अर्थ है—हठ यहाँ हठपूर्वक। सम्भव है यह शब्द 'असराढ़' का अपभ्रंश हो जिसका अर्थ होता है—घोर, भयानक। कहीं-कहीं 'मत कबहूं लगै पुकार' पाठ मिलता है। इसमें 'मत' 'मकु' का बिगड़ा रूप है, जिसका अर्थ है—शायद।

१. युगला०-हनु०-विचार०—सूते होय
२. ना० प्र०—आसण खिस्या, युगला०-हनु०-विचार०—को आसन डिगो।
३. ना० प्र०—सुणत, युगला०—हनु० विचार—सुनी।
४. ना० प्र०—सोइये।
५. ना० प्र०—रीति।
६. ना० प्र०—कूकणै, हनु०, विचार०—कूकते।
७. ना० प्र०—मत कबहूँ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—'कबहुँक लगै पुकार' में एक सुन्दर व्यञ्जना है। कचहरी में जो प्रार्थी होता है उसके मुकदमे की पेशी के समय चपरासी द्वारा पुकार लगायी जाती है कि अमुक व्यक्ति उपस्थित हो तो आ जाये। अतः यहाँ 'पुकार' में बुला लेने की व्यञ्जना है।

जिहि[1] घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि[2] रसना नहिं[3] राम।
ते नर इस[4] संसार में, उपजि षये[5] बेकाम।। १७।।

शब्दार्थ—घटि = घट में, हृदय में, शरीर में। फुनि = पुनि, पुनः। षये = क्षये, नष्ट हो गये। रसना = रस लेनेवाली इन्द्रिय अर्थात् जिह्वा। बेकाम = व्यर्थ।

व्याख्या—जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुनाँ[6] ज्यूँ आया त्यूँ जाव।। १८।।

शब्दार्थ—साव = स्वाद। पाहुना = अतिथि।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि जिसने प्रेम नहीं चखा अर्थात् प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया और चखकर उसका स्वाद नहीं लिया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है। जैसे कोई मेहमान यदि ऐसे घर पर आता है। जिसमें कोई रहता ही नहीं तो वह जैसे आता है वैसे ही उल्टे पाँव वापस जाता है। उसे न कुछ खाने को मिलता है, न उसका स्वागत-सत्कार होता है, उसी प्रकार जो ईश्वर से प्रेम नहीं करता है, वह इस संसार में जैसे आया है वैसे ही चला जाता है। मानव जीवन से कुछ लाभ नहीं उठाता।

अलंकार—दृष्टान्त।

पहिलै[7] बुरा कमाइ करि[8], बाँधी विष[9] की पोट।
कोटि[10] करम फिल[11] पलक मैं, (जब) आया[12]
हरि की ओट[13]।। १९।।

1. हनु०, विचार०—जा घट।
2. हनु० विचार—पुनि।
3. ना० प०-नहीं।
4. तिवारी—आस, हनु०, विचार०-पसु।
5. तिवारी०—खये, हनु०, विचार-मरे।
6. ना० प्र०—पाहुणों।
7. ना० प्र०-पहली, युगला०—पहले।
8. हनु०—के, युगला०—कै।
9. युगला०—विषय।
10. हनु०—कटै।
11. हनु०-फल फिरे।
12. युगला०—आयो।
13. ना० प्र०—वोट।

शब्दार्थ—पोट = पोटली, गठरी। ओट = शरण। फिल= फेंक देना, ढकेल देना।

व्याख्या—पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है, चाहे वे कर्म करोड़ों की संख्या में क्यों न हों। कर्म तीन प्रकार के होते हैं—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। संचित कर्म का जो परिणाम इस जीवन में प्रारम्भ हो गया है उसे प्रारब्ध कर्म कहते है। प्रारब्ध कर्म भोगने से ही नष्ट होते हैं। संचित कर्म में अनेक ऐसे दुष्कर्म पड़े हुए हैं जिनका परिणाम अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है। वे सब प्रभु की शरण में आने पर नष्ट हो जाते हैं। इसी भाव को कबीर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—'कोटि करम फिल पलक में।' उन संचित कर्मों का भोग अब जीव को नहीं करना पड़ेगा। क्रियमाण कर्म वह है जो मनुष्य इस जीवन में कर रहा है। संचित कर्म पूर्व जन्म के होते हैं, क्रियमाण इस जीवन के। प्रभु की शरण में आने से अवशिष्ट संचित कर्म तो नष्ट हो जायेंगे ही, वह बुरे क्रियमाण कर्म भी न करेगा, क्योंकि उसके जीवन का लक्ष्य ही बदल गया है।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं,[1] जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जो पुन्नि करै,[2] नहीं राम[3] बिन ठाउँ।। २०।।

शब्दार्थ—क्रम = कर्म। पेलै = फेंक देता है, ढकेल देता है। जे = यदि। रंचक = थोड़ा भी। पुन्नि = पुण्य। ठाउँ = स्थान।

व्याख्या—यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु प्रभु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

'नहीं राम बिन ठाउँ' का साधारण अर्थ ऊपर दिया गया है। किन्तु इसमें एक सुन्दर व्यञ्जना भी है कि पुण्य करने से जीव में शुद्धता आ सकती है। उसके फलस्वरूप उसे स्वर्ग आदि प्राप्त हो सकता है, किन्तु 'ठाउँ' अर्थात् स्वरूप में स्थिति राम की भक्ति के बिना नहीं प्राप्त हो सकती।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति।

जिहि[4] हरि जैसा जानिया[5], तिनकौं[6] तैसा लाभ।
ओसौं[7] प्यास न भाजई[8], जब लगि धसै न आभ।। २१।।

शब्दार्थ—ओसौं = ओसे से। भाजई = भागता है, चला जाता है। आभ = (सं०—आप) जल, पानी।

व्याख्या—प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

1. तिवारी—कोटि करम फिल फलक मैं, युगला—कोटि कर्म फिरे पलक मैं, हनु०—कोटि कर्म पल-पल कटे।
2. तिवारी—जुग अनेक जो पुनि करै, हनु०—अनेक जन्म जु पुण करै।
3. तिवारी, हनु० युगला०—नाम।
4. तिवारी—जिन।
5. ना० प्र०—जाणियां।
6. ना० प्र०—तिनकूं, हनु०-ताको।
7. तिवारी—ओसां, हनु०-ओसे, गुप्त-ओसा।
8. हनु०-भगई।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

इस साखी में व्यञ्जना यह है कि नाना प्रकार के देवताओं के रूप में जो प्रभु को जानता है उसको जीवन में पवित्रता का लाभ हो सकता है, किन्तु उसके भीतर जो अविद्या की ग्रन्थि है जिसके कारण उसमें वासना या तृष्णा पैदा होती रहती है जो कि उसे कोटि-कोटि योनियों में भ्रमण कराती रहती है, वह अविद्या की ग्रन्थि और उसके परिणामस्वरूप तृष्णा नहीं जा सकती। जिसने प्रभु को सर्वव्यापी राम या ब्रह्म के स्वरूप में पहचाना है उसी की अविद्या-ग्रन्थि छिन्न होती है और उसके फलस्वरूप तृष्णा नष्ट होती है।

विभिन्न देवताओं की उपासना ओस चाटने के समान है। सारशब्द के रूप में प्रभु को पहचानना अगाध जलपान के समान है। इसी से तृष्णा नष्ट होगी।

अलंकार—निदर्शना।

राम पियारा[1] छाँडि करि, करै आन का जाप।
बेस्या[2] केरा पूत ज्यौं[3], कहै कौन सौं[4] बाप।। २२।।

शब्दार्थ—पूत = पुत्र। कौन सौं = कौन-सा।

व्याख्या—जो परम प्रिय परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता। वस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

अलंकार—उपमा।

कबीर आपन[5] राम कहि, औरन[6] राम कहाइ।
जिहि[7] मुखि राम न ऊचरै,[8] तिहि मुख फेरि[9] कहाइ।। २३।।

शब्दार्थ—ऊचरै = उच्चारण होना, कहना।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिये, उसे औरों से भी राम कहलवाना चाहिये। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिये। वह कभी न कभी इसके महत्त्व को समझेगा और राम का जप करने लग जायेगा।

जैसे माया मन रमै, यौं[10] जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल बेधि कै,[11] जहाँ[12] के सो तहँ जाइ।। २४।।

---

१. हनु०—नाम पियू का।
२. ना० प्र०—बेस्याँ।
३. ना० प्र०—ज्यूँ।
४. ना० प्र०—सूँ।
५. ना० प्र०—आपणँ।
६. ना० प्र०—औराँ।
७. अन्य प्रतियों में—जा।
८. अन्य प्रतियों में—नीसरै।
९. अन्य प्रतियों में—राम।
१०. ना० प्र०—यूँ।
११. ना० प्र०—छाँड़िकरि।
१२. तिवारी—सो अमरापुर जाइ।

व्याख्या—जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह नक्षत्र खचित आकाश को भी भेदकर जहाँ से आया है वहीं पहुँच सकता है अर्थात् ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि[1] लै, राम नाम की[2] लूटि।
फिर पाछे[3] पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि[4]।। २५।।

शब्दार्थ—तन = शरीर।

व्याख्या—मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है जिसमें साधना संभव है। मानव के भीतर सब तत्व विद्यमान हैं। यहाँ यह अवसर मिलता है जिससे वह तन, प्राण, मन सबसे प्रभु का स्मरण और साधना कर सकता है। इसी योनि में राम नाम की लूट है। कबीर कहते हैं कि इस योनि को पाकर राम नाम को लूटो अर्थात् उनका निशिदिन स्मरण करो। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ,[5] राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं[6] गहेगा, रूँधे दसौं दुवार[7]।। २६।।

शब्दार्थ—भंडार = निधि। रूँधे = अवरुद्ध।

व्याख्या—राम नाम का अक्षय भाण्डार अवश्य यथाशक्य लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य हो जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे?

टिप्पणी—दस द्वार से तात्पर्य शरीर के दस छिद्रों से है। वे हैं—ब्रह्मरंध्र, दो कान, दो नेत्र, दो नासिका विवर, एक मुख, गुदामार्ग, मूत्रमार्ग।

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार[8]।
कहौ संतौ[9] क्यों[10] पाइए, दुर्लभ हरि[11] दीदार।। २७।।

शब्दार्थ—विकट = दुस्तर। मार = बटमार, डाकू। दीदार (फा०) = दर्शन।

व्याख्या—इस साखी में कबीर ने एक सुन्दर रूपक के द्वारा अपने भाव को व्यक्त किया है। पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं है, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार

---

१. ना० प्र०—लूटियो।
२. ना: प्र०—है।
३. ना० प्र०—पीछे हो।
४. अन्य प्रतियों में—प्राण जाहिंगे छूटि।
५. हनु०, विचार०—कहै कबिर तूँ लूटि ले, युगला०—कहै कबीर लूटि ले।
६. हनु०, विचार०—को जब गरे, युगला०—जब गहेगा।
७. अन्य प्रतियों में—रोकै दसहूँ द्वार।
८. हनु०—भार।
९. विचार०, युगला०—संत।
१०. ना० प्र०—क्यूँ।
११. विचार०—गुरु।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। घर पहुँचने के समान प्रभु का प्राप्ति अपना लक्ष्य है। अनेक योनियों में भ्रमण करने पर कहीं जीव को यह अवसर मिलता है कि वह प्रभु की ओर अग्रसर हो। इसलिए मार्ग को लम्बा कहा गया है। माया के कारण यह मार्ग अत्यन्त दुस्तर भी है। राग-द्वेष, लोभ, मोह आदि बटमार हैं जो साधक-पथिक की आध्यात्मिक-यात्रा में अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं। कबीर कहते हैं। कि हे संतो ! कहो, ऐसी स्थिति में कोई अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँचेगा ? ऐसी दशा में प्रभु का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए चेत जाओ और गुरु की सहायता से सरल मार्ग से विघ्नों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

अलंकार—तृतीय विभावना की ध्वनि।

गुन[1] गाए, गुन[2] ना कटै, रटै न,राम बिवोग[3]।
अह[4] निसि हरि ध्यावै[5] नहीं, क्यों[6] पावै दुलभ[7] जोग।। २८।।

शब्दार्थ—गुन = कीर्तन-भजन। गुन = त्रिगुणात्मक बन्धन। बिवोग = वियोग। अहनिसि = दिन-रात। ध्यावै = सुरति लगाना। दुलभ = दुर्लभ, कठिन।

व्याख्या—प्रभु का केवल गुणगान करने से अर्थात् केवल यह कहने से कि वह सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि व्यक्ति हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो राम अर्थात् प्रभु से वियोग बना रहेगा। जो उसमें दिन-रात सुरति नहीं लगाता, वह प्रभु से उस संयोग को कैसे प्राप्त कर सकता है, जो अत्यन्त दुर्लभ है।

अलंकार—यमक, वक्रोक्ति।

कबीर कठिनाई खरी, सुमरिताँ[8] हरि नाम[9]।
सूली ऊपरि नट[10] विद्या[11],गिरै[12] त नाहीं ठाम[13] ।। २९।।

शब्दार्थ—खरी = बड़ी, अधिक। विद्या = कला। ठाम = स्थान, सहारा।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि प्रभु के नाम स्मरण करने अर्थात् वास्तविक भक्ति के मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है जैसे सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह वहाँ से गिरा तो फिर उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

इस साखी में कबीर ने भक्ति की साधना में जो सबसे बड़ी कठिनाई है, उसकी ओर संकेत किया है। यों तो तन्त्र हठयोग आदि की साधानाओं के समान भक्ति में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि की यन्त्रणा नहीं है। ज्ञानयोग के समान प्रखर बुद्धि की भी भक्ति में आवश्यकता नहीं है। परन्तु सच्ची भक्ति की सबसे बड़ी शर्त है—अहं का पूर्णरूपेण त्याग, खुदी का खात्मा। यह नहीं हो पाता और इसके न होने से यदि केवल नाम जप होता रहे तो भक्ति का वास्तविक ध्येय नहीं प्राप्त होता। इसीलिए कबीर कहते हैं कि भक्ति नट के शूली पर खेलने के समान है। 'शूली पर खेल' में अहं के विनाश की ओर ही संकेत है। इसी खेल का जो पूर्णरूप से निर्वाह नहीं कर पाता, वह भक्ति के चरम लक्ष्य से पतित हो जाता है।

तुलसीदास ने भी कहा है:—

रघुपति-भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई।
(विनय पत्रिका-पद १६७)

अलंकार—दृष्टान्त।

कबीर राम ध्याइ[1] लै, जिभ्या[2] सौं करि मंत[3]।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत[4] ।। ३०।।

शब्दार्थ—मंत = मन्त्र। छीलर = छिछला तालाब, पोखरा।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और चित्त से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया है। प्राण और मन दोनों प्रभु में लगा दो। प्रभु सागर के समान हैं, अन्य अनन्त देव-देवियाँ छिछले तालाब के समान हैं। छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो। राम अन्य देव-देवियों की तुलना में सागर के समान हैं।

अलंकार—रूपक, दृष्टान्त।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।[5]
फूटा नग ज्यौं[6] जोड़ि मन, संधिहि[7] संधि मिलाइ।। ३१।।

शब्दार्थ—मुखि = मुख से। अमृत = (i) जो मृत नहीं है अर्थात् अमर। (ii) जो दूसरों को अमर कर देता है। नग = मणि। संधि = अवकाश, दरार, मिलने की जगह।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान

---

१. ना० प्र०—गुण।
२. ना० प्र०—गुण।
३. विचार०, युगला०—नाम वियोग।
४. विचार०, युगला०—अहि।
५. विचार०, युगला०—ध्यायो।
६. ना० प्र०—क्यूँ।
७. विचार—दुरलभ।
८. युगला०, विचार०-सुमिरत हरि को नाम।
९. तिवारी—नाउँ
१०. तिवारी—खेलना।
११. युगला०, विचार०— विधा, साथरा।
१२. ना० प्र०—गिरै।
१३. तिवारी—ठाउँ।

१. युगला०—रिझायले।
२. हनु०—मन करि प्रेम प्रतीत, युगला०—जिह्वा।
३. युगला०—मित्त।
४. युगला०—अनित्त, हनु०—अनीत।
५. हनु०—मन ही में गुण गाइ।
६. ना० प्र०—ज्यूं जोरि।
७. ना० प्र०—संधे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

औरों को भी अमर कर देता है। इस प्रकार उस प्रभु का गुण गाकर तू उसे अपनी ओर आकृष्ट कर ले। अपने मन को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि मिलाकर जोड़ देता है।

टिप्पणी—यहाँ नग या मणि की उपमा में सिद्धों की परम्परा के एक अवशेष की झलक है। सिद्धों की साधना में परमतत्त्व को 'वज्र' और चित्त को 'मणि' के समान माना गया है।

अलंकार—उपमा।

कबीर चित्त चमंकिया[1] चहुँ[2] दिस लागी लाइ।
हरि[3] सुमिरन[4] हाथौं घड़ा, बेगे[5] लेहु बुझाइ।। ३२।।

—(६७)

शब्दार्थ—चमंकिया = चमक गया अर्थात् तप्त हो गया। लाइ = आग।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि इस संसार में चारों ओर विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। हे जीव ! उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु तू घबड़ाता क्यों है ? प्रभु के स्मरण रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही बुझा ले।

अलंकार—सांगरूपक।

■ ■ ■

१. युगला०—चंचल किया, विचार०—चंचल भया।
२. तिवारी०—दहूँ।
३. विचार०—गुरु।
४. ना० प्र०—सुमिरण हार्यूं।
५. हनु०, विचार०, युगला०—लीजे वेगि।

बिरह को अंग

संदर्भ—साधारणतः जीव अपने को अपने में ही पूर्ण समझता है। परन्तु एक ऐसी स्थिति आती है, जब वह अपने को अपूर्ण अनुभव करने लगता है। उस स्थिति में अपूर्ण पूर्ण के लिए व्याकुल हो उठता है, अंश अपने को अंशी से वियुक्त देखकर आतुर हो उठता है। यही बिरह की स्थिति है। बिरह का अर्थ है—विशेष रूप से रहित होने की अनुभूति। तब उसके हृदय में अंशी या पूर्ण से मिलन की आग भड़क उठती है। उसी स्थिति का वर्णन इस 'अंग' में किया गया है। यहाँ 'जीव' को बिरहिणी नायिका माना गया है।

राती[1] रूनी बिरहिनी,[2] ज्यौं बच्चों को[3] कुंज।
कबीर अन्तर प्रगट्यो, बिरह अग्नि को पुंज[4]।। १।।

शब्दार्थ—रांती = रात भर। रूनी = रोती रही। कुंज = क्रौंच पक्षी। पुंज = ढेर या समूह।

व्याख्या—इस साखी में जीव की उपमा बिरहिणी से दी गई है। बिरहिणी अपने प्रिय के वियोग में रात भर उसी प्रकार रोती रही, जैसे क्रौंच पक्षी अपने बच्चों के वियोग में रोता रहता है। कबीर कहते है कि बिरह रूपी अग्नि-पुंज अपने भीतर भभक उठा अर्थात् बिरह वेदना जग गई।

टिप्पणी—(i) कहीं-कहीं 'बच्चों को' के स्थान पर 'बंचौ को' पाठ मिलता है। इसका अर्थ होगा—जैसे क्रौंच पक्षी अपने प्रिय से वंचित होने पर रोता है।

(ii) दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार है :—

'कबीर अन्तर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज।' इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता।

अलंकार—उपमा, रूपक।

अम्बर कुंजाँ कुरलियाँ[5] गरजि भरे[6] सब ताल।
जिने ते[7] गोविंद बीछुटे[8], तिनकौं[9] कौन हवाल।। २।।

शब्दार्थ—अम्बर = आकाश। कुंजा = क्रौंच पक्षी। कुरलियाँ = चीखने लगे। गरजि = गुंजायमान करते हुए। जिन तें = जिनसे।

१. ना० प्र०—रात्यूं।
२. ना० प्र०—बिरहनी।
३. ना० प्र०—ज्यूं बंचौ कूं, गुप्त०—ज्यूं बच्या कौ, युगला०—ज्यूं रवियांकू।
४. ना० प्र०—कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्याबिरहा पुंज।
५. हनु०-विचार०-कुंज कुरलाइया, युगला०—अमर कुंज उर लाइया।
६. हनु०—विचार०—युगला०—भरा।
७. ना० प्र०—जिनियैं।
८. तिवारी—जिनतें साहिब बीछुरा, युगला०—विचार०—बीछुरा।
९. ना० प्र०—तिनके कौण, हनु०—विचार०—तिनका कौन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या—आकाश में क्रौंच पक्षी अपनी प्रिया की विरह-वेदना से रो रहा है। इस व्यथा से उसने सब तालों को गुंजायमान करते हुए अपने अश्रुजल से उनको भर दिया है। जब केवल एक रात्रि के वियोग से एक पक्षी की यह अवस्था हो जाती है तो उस जीव का क्या हाल होगा, जो अनेक जन्मों से प्रभु से बिछुड़ा हुआ है।

टिप्पणी—क्रौंच पक्षी को हिन्दी में 'कुंजा', 'कुंज', या 'कुररी' कहते हैं। विरह वेदना के आधिक्य की व्यञ्जना अथवा विलाप के लिए इसका क्रन्दन साहित्य में कविरूढ़ि जैसा बन गया है। तुलसी ने सीता के विलाप की मर्म-वेदना को व्यक्त करने के लिए क्रौंच को ही उपमान रूप में प्रस्तुत किया है—'विलपत अति, कुररी की नाईं।' कबीर की इस साखी से बिलकुल मिलता-जुलता एक दोहा 'ढोला मारु रा दूहा' में भी मिलता है—

राति जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल।। ४३।।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।

चकई बिछुरी रैनि की,[1] आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सौं,[2] ते दिन मिलें न राति[3]।। ३।।

शब्दार्थ—परभाति = प्रभात, प्रातःकाल।

व्याख्या—कवि समय है कि चकवा-चकवी रात को अलग रहते हैं और दिन होने पर मिल जाते हैं। कबीर कहते हैं कि चकवी जो रात्रि में चकवे से वियुक्त रहती है, प्रातःकाल होते ही अपने प्रिय से मिल जाती है। परन्तु बेचारा जीव जो प्रभु से वियुक्त हो गया है, वह न तो रात को मिल पाता है और न दिन को।

इसमें व्यञ्जना यह है कि चकवी में तो वियोग की वेदना रहती है, परन्तु अज्ञानी जीव में वियोग की वेदना ही नहीं होती। फिर संयोग कहाँ से हो?

अलंकार—व्यतिरेक

बासुरि[4] सुख नाँ रैनि[5] सुख, ना सुख सुपिनै[6] माँह।
कबीर[7] बिछुड़े[8] राम सौं[9],नाँ[10] सुख धूप न छाँह।। ४।।

शब्दार्थ—वासुरि = वासर, दिन। रैनि = रात्रि। सुपिनै = स्वप्न में।

१. ना० प्र०—चकवी बिछुटो रैणि की
२. तिवारी-बिचार०-युगला०—जो नर बिछुरे राम सौं।
३. बिचार—दिवस मिले नहि राति।
४. हनु०-विचार०-युगला०—बासर।
५. ना० प्र०—ना रैणि, अन्य प्रतियों में—नहिं रैनि।
६. हनु०-विचार०-युगला०—सपना।
७. हनु०-बिचार०-युगला०—जो नर बिछुरे राम सों।
८. ना० प्र०—बिछुटया।
९. ना० प्र०—सूँ।
१०. हनु०—तिनकै।

व्याख्या—अंश जब अंशी से वियुक्त हो जाता है, जुज़ जब कुल से अलग हो जाता है तो स्वभावतः उसे तब तक चैन नहीं मिल सकता, जब तक अंश अंशी से, जुज़ कुल से मिल न जाय। कबीर कहते हैं कि जीव जो अंश है और राम जो अंशी हैं, उसकी यही गति है। राम से बिछुड़ने पर उसे न दिन में चैन है, न रात में। उसे स्वप्न में भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। उसे न धूप में सुख है और न छाया में। जीव अपने अंशी से बिछुड़कर इधर-उधर सुख को टोहता रहता है। परन्तु उसे सुख मिलता नहीं। वह जिसे सुख समझता है वह भी दुःख में परिणत हो जाता है। उसे वास्तविक सुख अपने अंशी या राम से मिलने पर ही मिल सकता है।

बिरहिनि ऊभी पंथ सिरि,[1] पंथी बूझै[2] धाइ।
एक सबद[3] कहि पीव का, कबर[4] मिलैंगे आइ।। ५।।

शब्दार्थ—ऊभी = खड़ी है। पंथ सिरि = पंथ के सिरे पर, रास्ते के छोर पर। पंथी = पथिक। कबर = क + बर (वार)—किस दिन।

व्याख्या—इस साखी में विरहिणी जीवात्मा का प्रतीक है और पंथी साधक या गुरु का प्रतीक है। जैसे विरहिणी रास्ते के छोर पर खड़ी हुई प्रत्येक पथिक से पूछती है कि मेरे प्रियतम का कोई संदेश बता दे। वह कब आकर मिलेंगे? वैसे ही जीव संसाररूपी पथ पर खड़ा हुआ प्रत्येक साधक या संत से पूछता रहता है कि मेरे प्रियतम राम का कोई संदेश बता दे कि उनसे मेरा मिलन कब होगा?

टिप्पणी—जीव की सांसारिक स्थिति में, चाहे वह कितना ही सुख-ऐश्वर्य से सम्पन्न क्यों न हो, एक विचित्र अभाव तथा अपूर्ति की टीस बनी रहती है। जिनमें यह वेदना अधिक होती है, वे शास्त्र, शास्त्री, साधक, संत आदि से पूछते रहते हैं कि इस वियोग का अंत कब होगा? जिनमें वेदना तीव्र नहीं होती, वे भी एक अनंत, अक्षय आनन्द की खोज में लगे रहते हैं। सांसारिक भोग से उनकी भी पूर्ण तृप्ति नहीं होती। वे एक भोग के अनन्तर दूसरे भोग से चिपटते रहते हैं। परन्तु उन्हें यह पता नहीं चलता कि अक्षय सुख कैसे मिलेगा? चाहते वे भी अक्षय सुख ही हैं। यही अक्षय आनन्द प्रियतम का संदेश है।

बहुत दिनन की जोवती,[5] बाट तुम्हारी राम।
जिव[6] तरसै तुझ[7] मिलन कौं[8],मन नाहीं बिसराम[9]।। ६।।

शब्दार्थ—जोवती = प्रतीक्षा करती। बाट = (सं०-वाट) = मार्ग।

व्याख्या—हे प्रभु! मैं बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मेरा हृदय तुमसे मिलने के लिए

१. बिचार०, युगला०—सिर।
२. विचार०, हनु०, युगला०—पूछै।
३. विचार०-युगला०—सबद कहा।
४. विचार०—कबहिं।
५. बिचार०—जोहती, युगला०—जो हती।
६. अन्य प्रतियों में—जिय।
७. अन्य प्रतियों में—तुम।
८. तिवारी—कौ, ना० प्र०—कूँ।
९. ना० प्र०—मनि नाहीं विश्राम।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याकुल है और मन में चैन नहीं है।

प्रत्येक जीव को एक विचित्र अभाव का अनुभव होता है। साधारण जीव इस अभाव को समझ नहीं पाते। प्रौढ़ जीवों की ही समझ में आता है कि यह अभाव अपने केन्द्र या मूल से वियुक्त होने का परिणाम है। वे ही विरह की वेदना का अनुभव करते हैं। विरह का अर्थ ही है—विशेष प्रकार से रहित हो जाना।

बिरहिन ऊठै भी पड़े,[1] दरसन कारनि[2]राम।
मूवाँ पीछै देहुगे[3],सो दरसन किहि काम[4] ।। ७ ।।

शब्दार्थ—मूवाँ = मरने पर। कारनि = लिए।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि हे राम ! तुम्हारे दर्शन के लिए तुम्हारे वियोग में विरहिणी उठने का प्रयत्न करती है, किन्तु वियोगजन्य दुःख से वह इतनी कृश एवं दुर्बल हो गई है कि उठने का प्रयत्न करने पर भी बार-बार पृथ्वी पर गिर पड़ती है। इसलिए यदि तुम उसके मरने के बाद दर्शन दोगे तो वह दर्शन किस काम का होगा ?

टिप्पणी (१) 'उठै भी पड़े' में 'भी' शब्द द्वारा एक विशेष बल (force) लाया गया है। भाव यह है कि विरहिणी की व्यथा इतनी तीव्र है कि वह बिरह-वेदना में पृथ्वी पर पड़ी हुई पूरे तौर से उठ भी नहीं पाती। वह उठने का प्रयत्न करती है कि फिर गिर पड़ती है। इस प्रकार कबीर ने विरह की तीव्रता को सुन्दर रूप से व्यक्त किया है।

(२) इसमें एक व्यञ्जना यह भी है कि यदि जीते-जी प्रभु से मिलन हो जाय तो श्रेयस्कर है, यदि मरने के बाद मिलन हुआ तो किस काम का ? कबीर की दृष्टि में जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति से अधिक श्रेयस्करी है।

अलंकार—वक्रोक्ति।

मूवाँ पीछै जिनि मिलै[5],कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब[6], (तब) पारस कौने[7] काम ।। ८ ।।

शब्दार्थ—मूँवा पीछे = मरणोपरान्त। जिनि = मत। घाटा = घटित हो गया अथवा घट गया, समाप्त हो गया।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि हे राम ! मरणोपरान्त मत मिलो अर्थात् मरने के बाद तुम्हारे मिलने से क्या लाभ ? जब सब लोहा ही पत्थर हो जाय तो फिर पारस मिलने से क्या लाभ है ? ठीक इसी प्रकार जब साधक साधना-तपस्या करते-करते बिल्कुल निष्प्राण हो जाय, तब हे प्रभु ! यदि आप मिले भी तो क्या लाभ ? क्योंकि जो साधक तुम्हारे मिलन का इच्छुक था, वह ही अब केवल

१. तिवारी, हनु०, युगला०—बिरहिन उठि उठि भुइं परे।
२. तिवारी, हनु०—कारन।
३. तिवारी—मूएँ दरसन देहुगे, हनु०—मूये पीछे देहुगे।
४. तिवारी—सो आवै कौने काम।
५. तिवारी-हनु०, विचार०—मूएँ पीछे मति मिलौ।
६. अन्य प्रतियों में—लोहा माटी मिलि गया।
७. ना० प्र०—कौणे, अन्य प्रतियों में—किहि।

अस्थि-मांस का ढेर रह गया है। जैसे यदि लोहा अपना सार-तत्त्व खो दे और पाषाणवत् हो जाय तो पारस से मिलने पर भी वह सुवर्ण नहीं हो पायेगा। इसलिए हे प्रभु ! इस जीवन में ही अपने दर्शन देने की कृपा करो।

टिप्पणी—(१) इस साखी की दूसरी पंक्ति के दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ में अन्वय इस प्रकार होगा—सब लोहा पाथर घाटा अर्थात् सारा लोहा पत्थर रूप में घटित हो गया अर्थात् उसमें लोहापन न रह गया। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह हो सकता है—यदि सब लोहा पत्थर पर घिसते-घिसते घट जाय अर्थात् निःशेष हो जाय तो फिर पारस मिला भी तो किस काम का ? यदि लोहा ही समाप्त हो गया तो पारस किसे स्वर्ण बनायेगा। इस अर्थ में 'पर' शब्द की योजना करनी पड़ती है—सब लोह पाथर (पर) घाटा। दोनों अर्थों से भाव में कोई अन्तर नहीं आता है।

(२) इसमें विरह वेदना की अतिशयोक्ति व्यञ्जित है। यदि बिरहिणी बिरह में प्रतीक्षा करते-करते प्राण खो बैठे तो फिर प्रिय मिला भी तो क्या लाभ ? ठीक इसी प्रकार यदि साधक का सारा जीवन साधना में समाप्त हो गया और प्रभु का साक्षात्कार न हो सका तो बाद में प्रभु के साक्षात्कार का मूल्य ही क्या रह जायेगा ?

अलंकार—दृष्टांत।

अंदेसौ नहिं[1] भाजिसी[2], संदेसौ कहियाँ[3]।
कै हरि[4] आयाँ भाजिसी[5],कै हरि ही पासि गयाँ[6] ।। ९ ।।

शब्दार्थ—अंदेसौ = आशंका, चिंता। कहियाँ = कहने से। कै = या तो। आयाँ = आने से। भाजिसी = भाग सकती है। गयाँ = जाने से।

व्याख्या—बिरहिणी की आशंका, चिंता और व्यथा केवल प्रिय का संदेश कहने से नहीं जा सकती। वह या तो प्रभु के आने से अथवा उस बिरहिणी के प्रभु के पास जाने से ही जा सकती है अर्थात् जीव का बिरहजन्य दुःख केवल प्रभु-मिलन से ही जा सकता है, बातों से नहीं।

आइ न सक्कौं[7] तुझ पै, सकूँ न तुज्झ[8]बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ।। १० ।।

व्याख्या—बिरहिणी कहती है कि हे प्रभु ! मेरे में यह सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुम तक पहुँच सकूँ और न तो यही शक्ति है कि मैं तुम्हें अपने पास बुला लूँ। ऐसी स्थिति में यदि तुम स्वयं मुझसे न मिलोगे तो यह बिरह-व्यथा वैसी ही बनी रहेगी और इस बिरहाग्नि में तपा-तपाकर तुम मेरा प्राण ले लोगे।

१. ना० प्र०—अंदेसड़ा न।
२. विचार०—भागसी।
३. तिवारी—कहियाँह, हनु०—कँह आय, विचार०, युगला०—कहियाय।
४. हनु०—आए हरि।
५. विचार०, युगला०—भाग सों।
६. तिवारी०—गयांह, युगला०—गयाय, हनु०—पासे जाय। ना० प्र०—सकौ तुझ पै, युगला०—सकिहौं तोहि पै, हनु०—सकौ ना तूझ पै।
७. ना० प्र०—तुझ बुलाइ, हनु०, युगला०—तुझे बुलाय।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

यह[1] तन जारौं[2] मसि करौं[3], ज्यूँ[4] धूवाँ जाइ सरग्गि[5]।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि[6] ।। ११ ।।

शब्दार्थ—जारौं = जला दूँ। मसि = स्याही, भस्म। ज्यूँ = जिससे। सरग्गि = स्वर्ग। मति = मकु, शायद संभव है।

व्याख्या—बिरहिणी कहती है कि अब बिरह-व्यथा सही नहीं जाती। जी में आता है कि इस शरीर को जलाकर भस्म कर डालूँ जिससे धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाय। संभव है उस धुएँ को देखकर प्रभु दया करें और अपनी दर्शन-वर्षा से इस बिरहाग्नि को बुझा दें।

तुलनीय—
यह तन जारौं मसि करूँ, धूवाँ जाइ सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावै अग्गि।। १८१ ।।
—ढोला मारू रा दूहा

अलंकार—अतिशयोक्ति।

यह तन जारौं[7] मसि करौं[8], लिखौं[9] राम का नाउँ।
लेखनि करौं[10] करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ।। १२ ।।

शब्दार्थ—लेखनि = लेखनी, कलम। करंक = खोपड़ी, सिर की हड्डी।

व्याख्या—यह विरह-व्यथा सही नहीं जाती। जी करता है कि इस शरीर को जलाकर, उसकी भस्म से स्याही बनाऊँ और मस्तिष्क की हड्डी से लेखनी बना-बनाकर राम का नाम लिखकर उनके पास पहुँचाऊँ, जिससे वे समझ जायँ कि बिरहिणी की क्या दशा है?

कबीर पीर पिरावनी, पंजर[11] पीर[12] न जाइ।
एक जु पीर पिरीत की[13], रही कलेजे[14] छाइ ।। १३ ।।

शब्दार्थ—पिरावनी = पीड़ा देने वाली। पंजर = शरीर। जु = जो। पिरीत = प्रीति।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि सामान्यतया कोई भी पीड़ा कष्टकारक होती ही है और शरीर से

---

१. विचार०, युगला०—या।
२. ना० प्र०—जालौ।
३. ना०, प्र०—करूँ।
४. हनु०—करौ धुआँ सो रंग:
५. विचार०, युगला०—सुरंग।
६. हनु०, विचार०, युगला०—अंग।
७. ना० प्र०—जालौं।
८ हनु०, विचार०—करूँ।
९. युगला०—लिखूँ।
१०. ना० प्र०—लेखणि करूँ।
११. विचार०—पिंजर।
१२. ना० प्र०—पीड़।
१३. ना० प्र०—एक ज पीड़ परीत की। विचार—पीर जो प्रीति।
१४. ना० प्र०—कलेजा।

वह पीड़ा जल्दी जाती नहीं, किन्तु प्रेम की पीड़ा अनूठी होती है। उसकी कसक कलेजे के अन्दर छा जाती है।

टिप्पणी—इसमें अन्य पीड़ाओं से प्रेम की पीड़ा की एक विशेषता को व्यञ्जित किया गया है। प्रेम की पीड़ा में अनूठापन यह है कि वह प्रिय लगती है।

संत चरनदास ने भी कहा है :

वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोई भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद।।

अलंकार—व्यतिरेक।

चोट सताँनीं[1] बिरह की, सब तन जरजर[2] होइ।
मारनहारा जानिहै,[3] कै जिहिं[4] लागी सोइ।। १४ ।।

शब्दार्थ—सताँनी = सताने वाली, कष्टदायिनी।

व्याख्या—बिरह की चोट अत्यन्त कष्टदायिनी होती है। इससे समस्त शरीर जर्जर हो जाता है। इस चोट को चोट देने वाला अर्थात् प्रिय समझता है या जिसको वह चोट लगी है अर्थात् प्रेमी ही समझता है।

टिप्पणी—आध्यात्मिक प्रेम की एक बड़ी विचित्रता है। अपने भीतर जो साक्षि-चैतन्य है, कबीर ने जिसे 'राम' कहा है, वह जब यह देख लेता है कि जीव अब इस अवस्था में पहुँच गया है कि उसमें प्रेम उत्पन्न करने से वह दिन-प्रतिदिन प्रभु की ओर अग्रसर होता जायेगा, तब वह उसके भीतर बिरह उत्पन्न कर देता है। कबीर ने उसी ओर संकेत किया है कि जिसने चोट लगायी है वह जानता है अथवा जिसे चोट लगी है, वह जानता है।

तुलनीय—
हिरदय भीतर दौ बलै, धुवाँ न परगट होइ।
जाके लागी सो लखै, की जिन लाई सोइ।।
—कबीर

कर कमान[5] सर साँधि करि, खैंचि जु मार्‍या[6] माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै जीवै कि जीवै नाँहि।। १५ ।।

शब्दार्थ—कमान = धनुष। साँधि करि = संधानकर, निशाना लगाकर। माँहि = मध्ये > मँझ > माँहि, भीतर। सुमार = सु + मार = अच्छा निशाना, सफल चोट।

व्याख्या—प्रियतम प्रभु ने हाथ में धनुष लेकर तीर का निशाना साधकर भीतर अथवा हृदय में जो चोट की है, वह सफल निशाना मर्म में समा गया है। इस चोट से आहत जियेगा या नहीं, इसमें सन्देह है अर्थात् इस चोट से उसका बचना कठिन है।

---

१. ना० प्र०—संताणीं, विचार० युगला०—सतानै।
२. युगला०—जंजर।
३. ना० प्र०—मारणहारा जाँणिहै।
४. विचार, युगला०—जिस।
५. ना० प्र०—कमाण।
६. ना० प्र०—मार्‍या।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—प्रभु की यह चोट 'अहंता या खुदी' पर है, जिसको वह समाप्त करना चाहता है। 'अहं' के विनाश से ही प्रभु का वास्तविक साक्षात्कार हो सकता है। कबीर ने एक अन्य साखी में भी कहा है :—

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान।।

अलंकार—अन्योक्ति, संदेह।

जबहीं मारा[1] खैंचि करि, तब मैं पाई जाँनि[2]।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजे छाँनि[3]।। १६।।

शब्दार्थ—मरम्म = मर्म। छाँनि = छेदकर।

व्याख्या—जब प्रियतम प्रभु ने प्रेम रूपी बाण खींचकर मारा, तब यह भान हुआ कि अब मुझे प्रभुमुखी अथवा प्रत्यङ्मुखी होना है। वह चोट मर्मभेदी है और कलेजे को छेदकर आरपार हो गयी है।

सोरठा—

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं।। १७।।

शब्दार्थ—सरि = सर या बाण से। सच = सुख, शान्ति, सत्य।

व्याख्या—जो प्रेम-बाण आपने कल मारा था, वह मेरे मन में जगह कर गया। वही बाण आज फिर मारिये। मेरा हृदय उस प्रेम-बाण के बिना सुख-शान्ति नहीं पाता। मेरी यही आकांक्षा है कि मेरे भीतर बिरह-वेदना बनी रहे। उसके बिना मैं शान्ति-लाभ नहीं कर सकता।

'सच' सत्य का भी तद्भव हो सकता है। उस स्थिति में अर्थ होगा कि बिरह-वेदना के बिना सत्य का लाभ नहीं हो सकता।

अलंकार—उल्लास।

बिरह भुवंगम तन बसै[4] मन्त्र न लागै[5] कोइ।
राम[6] वियोगी ना जिऔ[7], जिऔ[8] त बौरा[9] होइ।। १८।।

शब्दार्थ—भुवंगम = सर्प। त = तो।

व्याख्या—बिरह रूपी सर्प शरीर के भीतर निवास करता है। उस पर किसी मन्त्र का उपचार सफल नहीं हो सकता। राम से वियुक्त जीव बिरह-वेदना के कारण प्राण छोड़ देता है या जीवित रहता है तो पागल-सा ही रहता है अर्थात् संसार की दृष्टि में वह पागल-सा हो जाता है। विषयों के प्रति उसकी कोई आसक्ति नहीं रह जाती।

१. ना० प्र०—जबहूँ मार्‌या।
२. ना० प्र०—जाँणि।
३. ना० प्र०—छाँणि।
४. युगला०—हसा, हनु०—हँसा।
५. तिवारी—मानै।
६. युगला०—बिरह।
७. ना० प्र०—जिवै।
८. ना० प्र०—जिवै।
९. तिवारी—बउरा।

अलंकार—रूपक।

बिरह भुवंगम पैसि करि[1] किया कलेजै[2] घाव।
साधू[3] अंग न मोड़ही[4], ज्यौं[5] भावै त्यौं[6] खाव।। १९।।

शब्दार्थ—पैसि करि = पैठकर, घुसकर। मोड़ही = मोड़ना, हटाना। ज्यौं भावै = जैसा चाहे।

व्याख्या—बिरह रूपी सर्प ने भीतर घुसकर कलेजे में घाव कर दिया है। फिर भी प्रेमी-भक्त मुड़ता नहीं अर्थात् बिरह से अलग नहीं होना चाहता। उस सर्प की जैसी इच्छा हो, वैसे ही खाता रहे अर्थात् प्रेमी को बिरह प्रिय होता है। ज्यों-ज्यों बिरह बढ़ता है, त्यों-त्यों वह मिलन के लिए उत्सुक होता है। इसलिए बिरह इष्ट है, अनिष्ट नहीं।

अलंकार—रूपक, उल्लास।

सब रग तंत[7] रबाब तन, बिरह बजावै नित्त[8]।
और न कोई सुनि[9] सकै, कै साईं कै चित्त[10]।। २०।।

शब्दार्थ—रग = रगें। तंत = तन्त्री। रबाब (फा०) = वाद्य विशेष।

व्याख्या—बिरही का शरीर रबाब वाद्य जैसा होता है और उसकी सारी रगें तन्त्रियों जैसी होती हैं। बिरह उसको नित्य बजाता रहता है। परन्तु उस धुन (Tune) को दूसरा कोई नहीं सुन सकता। उसे प्रभु सुनते हैं, जिसके बिरह में बिरही व्याकुल होता है या बिरही का चित्त ही सुन सकता है।

भाव यह है कि जीव को जब यह अनुभव होता है कि वह तत्त्व से पृथक् हो गया है, तब उसके हृदय में मिलन की एक विचित्र व्यग्रता उत्पन्न होती है। इस व्यग्रता से उसके सारे शरीर में एक वेदना का स्पन्दन होता रहता है जिसका अनुभव केवल वह बिरही कर सकता है अथवा जिसके लिए वेदना होती है, वह जानता है।

रबाब—रबाब आधुनिक सरोद और सारंगी के मध्य का बाजा है। इसमें लगभग चार तार होते हैं। यह दो प्रकार का होता है—एक तो सारंगी के समान गज से बजाया जाता है, दूसरा जवा या त्रिकोण से बजाया जाता है। यह बाजा भारत में मुसलमानी काल में ईरान से आया।

अलंकार—सांगरूपक, विशेषोक्ति।

१. तिवारी, हनु०—पंटिके, युगला०—परसि करि।
२. तिवारी—करेजे।
३. हनु०, युगला०—बिरही।
४. तिवारी, हनु०, युगला०—मोरही।
५. ना० प्र०—ज्यूँ।
६. ना० प्र०—त्यूँ।
७. तिवारी—तांति, हनु०, युगला०—ताँती।
८. हनु०, युगला०—नीत।
९. ना० प्र०—सुंणे।
१०. युगला०—की साईं की चीत।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बिरहा बुरहा जिनि[1] कहौ, बिरहा है सुलतान[2]।
जा[3] घट बिरह न संचरै[4], सो घट सदा[5] मसान।। २१।।

शब्दार्थ—बुरहा = बुरा। सुलतान = राजा, श्रेष्ठ। मसान = श्मशान।

व्याख्या—बिरह को बुरा मत कहो। विरह तुच्छ नहीं, श्रेष्ठ है। जीवन का राजाधिराज है। जिस हृदय में बिरह का संचार नहीं होता, वह सदा श्मशान के समान है अर्थात् जिस व्यक्ति में विरह का भाव नहीं है, वह मृत समान है, निर्जीव है।

तुलनीय—

बिरहा बिरहा आखिये, बिरहा है सुलतानु।
फरीदा जिनु तनि विरह न उपजे, सो तणु जाणु मसाणु।।
—शेख फरीद-गुरु ग्रन्थ साहब, पृ० १३७६।

अँखियन तौ झाँई परी,[6] पंथ निहारि निहारि[7]।
जिभ्या मैं छाला परा[8], राम पुकारि पुकारि[9]।। २२।।

शब्दार्थ—झाँई = अंधकार।

व्याख्या—अपने प्रियतम की बाट देखते-देखते आँखों में अँधेरा छाने लगा है अर्थात् दृष्टि मंद पड़ने लगी है। राम को पुकारते-पुकारते जिह्वा में छाले पड़ गये है, पर अभी तक अपने स्वामी से मिलन नहीं हुआ है।

या तन का दिवला करूँ,[10] बाती मेलों[11] जीव।
लोहू सींचूँ तेल ज्यौं,[12] कव[13] मुख देखौं[14] पीव।। २३।।

शब्दार्थ—दिवला = दीपक। लोहू = रक्त।

व्याख्या—प्रिय के दर्शन के लिए एक दीपक चाहिए। दीपक में बत्ती और तेल की आवश्यकता होती है। मैं अपने प्रियतम के दर्शन के लिए इस शरीर का दीपक बनाऊँगा, जिसमें जीव बत्ती का काम करेगा और उस बत्ती को सींचने के लिए तेल के स्थान पर सारे शरीर का रक्त होगा। इस प्रकार इस दीपक को लिए हुए अपने प्रियतम की इस प्रतीक्षा में रहूँगा कि उसके दर्शन कब हो सकेंगे ?

अलंकार—सांग रूपक।

नैना नीझर लाइया[1], रहट बहै निस घाम[2]।
पपिहा[3] ज्यौं पिउ पिउ करौं[4], कवरे[5] मिलहुगे राम।। २४।।

शब्दार्थ—नीझर = झरना। रहट = कुएँ से पानी निकालने का यंत्र, जिसमें बाल्टियों की एक माला पड़ी रहती है, ज्यों-ज्यों घरखी घूमती है, क्रमशः एक-एक बाल्टी से जल भर कर आता रहता है। घाम = धूप, यहाँ दिन का प्रतीक।

व्याख्या—नेत्रों से झरने के समान आँसुओं की अविरल धारा बहती रहती है। रात-दिन लगातार उमड़-उमड़कर आँसू का प्रवाह उसी प्रकार चलता रहता है जिस प्रकार से रहट से जल का अजस्र निष्क्रमण होता रहता है। पपीहे के समान मैं अपने प्रिय का 'पिउ पिउ' शब्द द्वारा स्मरण करता रहता हूँ। हे राम ! कब मिलोगे ?

कहीं-कहीं पर 'निस जामे' पाठ है। तब अर्थ होगा—रात के पहर में। परन्तु 'निस घाम' पाठ अधिक समीचीन है, क्योंकि बिरही का बिरह दिन में बन्द नहीं रहता।

अलंकार—उपमा

अँखियाँ[6] प्रेम कसाइयाँ, लोग[7] जानै दुखड़ियाँ[8]।
राम[9] सनेही कारने, रोइ[10] रोइ रतड़ियाँ[11]।। २५।।

शब्दार्थ—कसाइयाँ = कषाय वर्ण, गेरुए रंग की अर्थात् रक्त वर्ण। दुखड़ियाँ = दुःख रही है। रतड़ियाँ = रक्त वर्ण, लाल हो जाना।

व्याख्या—मेरी आँखें प्रभु के प्रेमजन्य वियोग के कारण कषाय वर्ण अर्थात् लाल हो गई है। लोग समझते है कि आँखें आ गई हैं या दुःख रही है, इसीलिए लाल है। दूसरे लोगों को मेरी आन्तरिक वेदना का क्या पता ? वस्तुतः राम से स्नेह के कारण वियोग में रो-रोकर आँखें लाल हो गई है। यदि 'साई अपणें कारणें' पाठ लें तो अर्थ होगा—हे स्वामी ! आपके ही कारण ये आँखें रो-रोकर लाल हो गई है।

---

१. हनु०—बूरा जनि, विचार०—बिरहा मति।
२. ना० प्र०—सुलितान।
३. ना० प्र०—जिह।
४. हनु०—हरि बिरहा नहीं।
५. विचार—जान।
६. ना० प्र०—अँषड़ियाँ झाँई पड़ी।
७. विचार०—निहार निहार।
८. ना० प्र०—जीभड़ियाँ छाला पड़्या, विचार०—जिभ्या तौ छाला पड़ा।
९. विचार०—नाम पुकार पुकार।
१०. ना० प्र०—इस तन का दीवा करौं, गुप्ता०—या तन का दीवल करौं।
११. हनु०, विचार०—मेलूँ, ना० प्र०—मेल्यूँ।
१२. ना० प्र०—लोही सींचौं तेल ज्यूँ।
१३. हनु०, विचार०—तब।
१४. हनु०, विचार०, गुप्ता०—देखूँ

---

१. विचार०- नैनन तो झड़िलाइया।
२. ना० प्र०—जाम विचार०—निसुवास।
३. ना० प्र०—पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं।
४. विचार०—रटै।
५. ना० प्र०—कबरु, विचार०—पिया मिलन की आस।
६. ना० प्र०—अंषड़ियाँ।
७. तिवारी—जग जानै दुखड़ियाह, हनु०, गुप्ता०—जिन जानौ दुखड़ियाँ।
८. विचार०—दुःखदाय।
९. ना० प्र०—साई अपणे कारणें, विचार०—नाम सनेही कारने।
१०. विचार०—रो रो रात बिताय।
११. तिवारी—रातड़ियाँह।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तुलनीय—

विरहिन कुरलै कुंज ज्यूँ, निस दिन तलपत जाइ।
राम सनेही कारनै, रोवत रैनि बिहाइ।। ३/६।।

—दादू

अलंकार—भ्रान्तिमान्।

सोई आँसू साजना[1], सोई लोक बिड़ाँहि[2]।
जो लोइन[3] लोंही चुवै, तौ जाँनौं[4] हेत हियांहि[5]।। २६।।

शब्दार्थ—साजनां = (सं० स्वजन) साजन, प्रिय, अपना खास, परम प्रिय प्रभु। बिड़ांहि = बाहर निकलता है, व्यक्त होता है। लोइन = लोचन, नेत्र। लोहीं = रक्त। हेत = प्रेम। हियांहे = हृदय में।

व्याख्या—आँसुओं से हृदय की आन्तरिक स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। आँसू तो अपने स्वजन या प्रिय (प्रभु) के लिए भी निकलता है और वही आँसू लोक में साधारणतः अन्य किसी कारणवश भी निकलता है। यदि बिरह की वेदना से आँखों से रक्त के आँसू बहें, तब समझो कि हृदय में सच्चा और घनिष्ठ प्रेम है।

कबिरा हँसनां[6] दूरि करि[7], रोवन सो करु चित्त[8]।
बिन रोए क्यों[9] पाइए, प्रेम पियारा[10] मित्त[11]।। २७।।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि तू हँसना दूर कर, रोने में मन लगा। बिना रोये प्रियतम मित्र कैसे मिल सकता है?

'हँसने' में साधारण जीवन के हास-उल्लास की व्यञ्जना है और 'रोने' में विरह की व्यथा की व्यञ्जना है। बिरही किसी प्रिय की याद में ही रोता है। इसलिए यह रोना प्रिय की अभीप्सा और अध्येषणा का परिचायक है, जो कि साधना में नितान्त सहायक होता है।

अलंकार—काव्यलिंग।

जौ[12] रोऊँ तो बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरनाँ, ज्यूँ घुन काठहि खाइ।। २८।।

---

१. ना० प्र०—सजणां।
२. युगला० विचार०—दिडाय, गुप्त—दिहां।
३. ना० प्र०—लोइण, युगला०, विचार—लोचन।
४. ना० प्र०—जाणौं।
५. युगला० विचार०—हित भाय।
६. ना० प्र०—कबीर हसणां।
७. अन्य प्रतियों में—करु।
८. ना० प्र०—करि रोवण सौ चित्त, विचार०—रोने से करु चीत।
९. ना० प्र०—रोया क्यूँ।
१०. युगला०—पियारे।
११. विचार०—मीत।
१२. अन्य प्रतियों में यह दोहा इस प्रकार है:—
हसूँ तो दुःख न बीसरै, रोऊँ तो बल घटि जाय।
मन ही माँहि बिसूरना, ज्यों घुन काठहिं खाय।।

शब्दार्थ—बिसूरना = (सं०—निस्सूरण वि (उपसर्ग) + सूर (धातु)—'सूर' और 'शूर' दोनों धातुएँ एक ही अर्थ में मिलती हैं। इनका अर्थ है—शोक करना, दुःखित होना या करना। 'वि' का अर्थ है—विशेष रूप से।) हिन्दी में 'बिसूरना' शब्द सिसक-सिसक कर भीतर ही भीतर दुःख का अनुभव करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

व्याख्या—यदि रोता हूँ तो शक्ति क्षीण होती है। यदि हँसता हूँ तो अपना प्रियतम खिन्न होता है। इसलिए अच्छा तो यही है कि भीतर ही भीतर दुःख का अनुभव करता रहूँ। दुःख ऊपर से किसी पर प्रकट न हो जैसे घुन (कीड़ा) भीतर ही भीतर काठ या लकड़ी को खा जाता है, ऊपर से किसी को पता नहीं चलता है।

टिप्पणी—(१) कबीर ने पहले कहा है कि रोने से मन लगाओ। यहाँ यह कहते हैं कि रोने से शक्ति, क्षीण होती है। आपाततः इन दोनों में विरोध प्रतीत होता है, किन्तु कबीर का 'रोने' से तात्पर्य केवल बिरह की तीव्र अनुभूति से है, दहाड़ मारकर चिल्लाने से नहीं। बिरह की अनुभूति जितनी ही तीव्र होती है वह उतनी ही आन्तरिक होती है, उसकी बाहरी अभिव्यक्ति कम होती है।

(२) 'हँसौं तौ राम रिसाइ' में व्यञ्जना यह है कि यदि साधारण लोगों के समान हास-उल्लास में पड़ा हुआ विषयों में अनुरक्त रहूँ तो अपना प्रियतम यह देखकर खिन्न होगा कि मैं अभी उसकी ओर उन्मुख नहीं हुआ।

अलंकार—उपमा।

हँसि हँसि कंत[1] न पाइए[2], जिनि पाया तिनि रोइ।
जो[3] हाँसेही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ[4]।। २९।।

शब्दार्थ—दुहागनि = दुर्भाग्यवती (सुहागिनि का विलोम)।

व्याख्या—हँसते-हँसते अर्थात् मौज उड़ाते हुए किसी ने अपने प्रियतम को नहीं पाया है। उसे जिस किसी ने पाया है उसने रोकर अर्थात् वियोग की व्यथा का अनुभव करके ही पाया है। यदि हँसने से ही प्रिय मिल जाय तो फिर संसार में कोई अभागिनी ही नहीं रह जायेगी अर्थात् प्रिय के प्रेम से वञ्चित नहीं रहेगी, क्योंकि मौज उड़ाने में या विषय-वासना में तो सभी जीव लगे रहते हैं। दुर्भागिनी वह है जिसका अपने प्रिय से मिलन न हो सके।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

हाँसी खेलौं[5] हरि[6] मिलै, कौन[7] सहै खरसान[8]।
काम क्रोध त्रिष्णाँ[9] तजै, ताहि मिलै भगवान।। ३०।।

---

१. युगला०—केवन।
२. युगला०, हनु०, विचार—पाइया।
३. गुप्त—ज, तिवारी—हाँसी खेला पिउ मिले, युगला०—हाँसी खेलत हरि मिले।
४. युगला०—होय।
५. हनु०, विचार०, युगला०—खेलौ।
६. विचार०—पिव।
७. ना० प्र०—कौण।
८. अन्य प्रतियों में—सुरसान, ना० प्र०—षरसान।
९. अन्य प्रतियों में—तृष्णा।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—खर = तीक्ष्ण। सान = (सं० = शाण) वह पत्थर जिस पर अस्त्रादि तेज किये जाते है।

व्याख्या—यदि हँसते-खेलते, विषय-वासनाओं में रमण करते हुए प्रभु मिल जायें तो विरह-व्यथा की तीक्ष्ण सान पर कौन चढ़ेगा ? परन्तु वास्तविकता तो यही है कि वियोग की तीव्र अनुभूति के बिना संयोग की ओर कोई जाता नहीं। विरह-व्यथा इसलिए आवश्यक है कि उससे मिलन की उत्कण्ठा बढ़ती है। प्रभु उसे ही मिल सकते हैं जो काम, क्रोध और तृष्णा को त्याग देता है, न कि उसे जो इनमें अनुरक्त रहता है। 'हाँसी खेलौं' का भाव इन्हीं में अनुरक्त रहना है।

पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपन गया भुलाइ।। ३१।।

शब्दार्थ—गौंहनि > गोहन = साथ, पास। आपन = अपनापन, सच्ची स्थिति।

व्याख्या—पिता का प्रिय पुत्र उसके साथ दौड़कर लग गया। पिता ने लोभ रूपी मिठाई उसके हाथ में देकर बहका दिया। परिणाम यह हुआ कि बालक उसी मिठाई में रम गया और अपने आपको भूल गया।

टिप्पणी—इस साखी में कबीर इस तथ्य का संकेत कर रहे हैं कि पिता परमात्मा है, पुत्र जीव है, मिठाई सांसारिक सुख का प्रलोभन है। जिस प्रकार पुत्र पिता से मिठाई पाकर भुलावे में आ जाता है, उसी में रम जाता है और पिता के साथ जाना भूल जाता है, उसी प्रकार जीव सांसारिक विषयों के भोग में अनुरक्त होकर अपनापन अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। वह अपने स्वरूप में नहीं रहता है। अपने स्वरूप में रहना ही पिता के साथ रहना है और विषयों में अनुरक्त रहना पिता से, अपने स्वरूप से अलग हो जाना है।

अलंकार—अन्योक्ति।

डारी खाँड पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ।। ३२।।

शब्दार्थ—खाँड = मिठाई। उपाइ = उत्पन्न करके।

व्याख्या—जब पुत्र को यह बोध हुआ कि इस मिठाई के लोभ में पिता का साथ छूट गया है तो उसके भीतर खीझ उत्पन्न हुई और उसने झटककर मिठाई फेंक दिया और रोते-रोते पिता की ओर चला और उससे मिल गया।

टिप्पणी—जब जीव के भीतर यह भाव जगता है कि विषय-सुख के कारण ही उसका अपने प्रिय पिता से वियोग हो गया है, वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है तो वह विषयों से सर्वथा पराङ्मुख हो जाता है, वियोग की व्यथा का अनुभव करता है और अपने प्रिय पिता की ओर मुड़ता है तथा उससे मिल जाता है, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

नैनाँ अंतरि आव तूँ[1], निस दिन निरषौं[2] तोहिं।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं।। ३३।।

१. ना० प्र०—आँवरुँ।
२. गुप्त—राखौं, अन्य प्रतियों में—निरखूँ।

शब्दार्थ—निरषौं = देखूँ।

व्याख्या—हे प्रिय ! तू मेरी आँखों के भीतर समा जा, जिससे मैं तुझे दिन-रात देखता रहूँ ! हे प्रभु ! वह दिन कब आयेगा, जब तुम मेरे लिए प्रत्यक्ष होगे ?

ना० प्र० की प्रति में 'नैनाँ अंतरि आँचरुँ' पाठ है। इसका अर्थ होगा—मैं अपनी आँखों के भीतर व्यवहार करता हूँ अर्थात् ध्यान करता हूँ। यह पाठ अधिक अच्छा नहीं है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

16. सिंहल द्वीप खण्ड

पूंछा राजैं कहु गुरु सुवा । न जनौं आजु कहां दिन उवा ।1।
पवन बास सीतल लै आवा । कया डहत जनु चंदन लावा ।2।
कबहुं न अैस जुड़ान सरीरू । परा अगिनि महं मलै समीरू ।3।
निकसत आव किरिन रबि रेखा । तिमिर गए जग निरमर देखा ।4।
उठे मेघ अस जानहुं आगें । चमकै बीजु गंगन पर लागें ।5।
तेहि ऊपर जस ससि परगासू । औ सो कचपचिन्ह भएउ गरासू ।6।
और नखत चहुं दिसि उजिआरे । ठांवहिं ठांव दीप अस बारे ।7।
और दछिन दिसि निअरें कंचन मेरु देखाव।
जस बसंत रितु आवै तैस बास जग पाव॥ 16 / 1 ॥

शब्दार्थ – उवा=निकला। बास=सुगंधि। कया=शरीर। डहत=जलती हुई। जनु=मानो। लावा=लगा दिया है। अैस=ऐसा। जुड़ान=शीतल हुआ। निरमर=निर्मल। कचपचिह्न=कृत्तिका नक्षत्र। गरासू=ग्रास। निरमर=पवित्र। बारे=जलाना। निअरें=समीप।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियों में रत्नसेन हीरामन से सिंहलद्वीप के विषय में बातें करता है।

भावार्थ – राजा ने अपने गुरु हीरामन शुक से पूछा कि न जाने आज का दिन कहां उदित हुआ है। न जाने हम कहां आ गए हैं। यह कैसा विचित्र स्थान है कि यहां की वायु सुशीतल और सुगन्धित है। यह शीतल और सुगन्धित वायु मेरे जलते हुए शरीरांगों को चन्दन की भांति शीतल कर रही है। मेरा शरीर कभी भी इतना शीतल नहीं हुआ था। इसे प्राप्त करके ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों अग्नि में मलयगिरि की हवा लग रही हो। यहां सूर्य की किरणों से एक रेखा-सी निकल रही है जिसके द्वारा सारे संसार का अंधकार विनष्ट हो गया है। यहां पर सभी ओर एक पवित्र संसार दिखाई दे रहा है। सामने ही बादल भी उठते हुए दिखाई दे रहे हैं। आकाश में बिजली चमकती दिखाई पड़ रही है तथा चारों ओर चन्द्रमा का भी प्रकाश आकाश में छाया हुआ है। चन्द्रमा के समीप कृत्तिका नक्षत्र भी है। चारों ओर से आकाश से प्रकाशित प्रतीत हो रहा है, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो स्थल-स्थल पद दीपक जला रखे हैं।

दक्षिण की ओर सोने का सुमेरु पर्वत-सा दिखाई दे रहा है। इसके साथ ही यहां सर्वत्र ऐसी मनोहर ऋतु छायी हुई है मानो बसंत ऋतु आ गई हो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. इन पंक्तियों में जिस विचित्र वातावरण का वर्णन किया गया है – जैसे आकश में बादल, चन्द्रमा, बिजली और तारों का दिखाई देना – वह योगी की साधना पूर्ण हो चुकने की ओर संकेत करता है। इसी अवस्था को कबीर ने अनहद नाद की संज्ञा प्रदान की है जिसमें साधक को समुद्र-गर्जन, शंख, घंटा आदि की ध्वनि सुनाई पड़ा करती है।

2. समासोक्ति और उत्प्रेक्षा अलंकार।

तूं राजा जस बिक्रम आदी । तूं हरिचंद बैन सत बादी ।1।
गोपिचंद तु जीता जोगां । औ भरथरी न पूज बियोगां ।2।
गोरख सिद्धि दीन्हि तोहि हाथू । तारे गुरू मछिंदर नाथू ।3।
जीता प्रेम तूं पुहुमि अकासू । दिस्टि परा सिंघल कबिलासू ।4।
वै जो मेघ गढ़ लाग अकासां । बिजुरी कनै कोट चहुं पासां ।5।
तेहि पर ससि जो कचपचिन्ह भरा । राजमंदिर सोनै नग जरा ।6।
और जो नखत कहसि चहुं पासां । सब रानिन्ह के आहिं अवासां ।7।
गंगन सरोवर ससि कंवल कुमुद तराईं पास।
तूं रबि उवा जो भंवर होइ पवन मिला ल बास॥ 16 / 2 ॥

शब्दार्थ –आदी=पहले। वैन=वचन। पुहुमि=पृथ्वी। कनै=सोना। कचपचिह्न=कृत्तिका नक्षत्र। नखत=नक्षत्र। आहिं=है। अवासां=निवास-स्थान। उवा=उदित होना। बास=सुगन्धि।

संदर्भ – रत्नसेन के पूछने पर हीरामन का बताना कि तेरी साधना पूरी हो चुकी है और तू सिंहलद्वीप आ पहुंचा है।

भावार्थ – चकित राजा को समझाते हुए हीरामन ने कहा कि हे राजन्। तुम पहले हुए राजा विक्रमादित्य के समान हो। तुम राजा हरीशचन्द्र के समान सत्यवादी हो। योग-साधना की दृष्टि से तुमने राजा गोपीचन्द को भी जीत लिया है। तुम्हारे वियोग की समता तो राजा भर्तृहरि भी नहीं कर सकते। गुरु गोरखनाथ ने तुम्हारे हाथ में सिद्धि प्रदान की है और गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने तेरा उद्धार कर दिया है। तूने अपने प्रेम की शक्ति से आकश और पृथ्वी दोनों को विजित कर लिया है। आज जो तुझे सामने दिखाई दे रहा है वह स्वर्ग-रूपी सिंहलद्वीप है। वह जो तुझे मेघ-घटा जैसा प्रतीत हो रहा है वह मेघ-घटा न होकर सिंहल के राजा का दुर्ग है। राजा का परकोटा चारों ओर से स्वर्ण-मण्डित है, जो अपनी चमक के कारण दूर से बिजली की तरह चमकता प्रतीत होता है। उसके ठीक-ऊपर जो कृत्तिका नक्षत्र से दिखाई पड़ रहे हैं वे राजा के महल हैं। राजा के स्वर्ण-महल में जड़े हुए हीरे-मोती ही तारों के रूप में चमकते हैं। यह आकाश मानसरोवर के तुल्य है। आकाश में चमकने वाला चन्द्रमा ही कमलवत् प्रतीत होता है, जबकि तारे रूपी अनेक प्रकार के कुमुद हैं। यह जो शीतल और सुगन्धित पवन चल रहा है यह उसी पद्मावती की गन्ध लेकर आया है। भौंरा भी तो सूर्य के उदय होने पर इसी प्रकार सुगन्धि लेकर आया करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. राजा गंधर्वसेन के राजमहल की सुन्दरता का प्रकारान्तर से सुन्दर वर्णन किया गया है।

2. सांगरूपक अलंकार।

सो गढ़ देखु गंगनु तें ऊंचा । नैन देख कर नाहिं पहूंचा ।1।
बिजुरी चक्र फिरै चहुं फेरी । औ जमकात फिरै जम केरी ।2।
धाइ जो बाजा कै मन साधा । मारा चक्र भएउ दुइ आधा ।3।
चंद सुरुज औ नखत तराईं । तेहि डर अंतरिख फिरैं सबाईं ।4।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पवन जाइ तहं पहुंचै चहा। मारा तैस टूटि भुइं बहा।5।
अगिनि उठी जरि बुझी निआना। धुआं उठा उठि बीच बिलाना।6।
पानि उठा उठि जाइ न छुवा। बहुरा रोइ आइ भुइं चुवा।7।
रावण चहा सौहं होइ हेरा उतरि गए दस मांथ।
संकर धरा ललाट भुइं औरु को जोगी नाथ॥16/3॥

शब्दार्थ – पहुंचा=पहुंचना। जमकात=यम की तलवार। धाइ=दौड़कर। बाजा=पहुंचा। साधा=अभिलाषा। दुइ=दो। सबाईं=समस्त। तैस=ऐसा। निआना=अन्त में। जरि=जलकर। बिलाना=अदृश्य हो गया। बहुरा रोइ=रोकर लौट आया। सौंह=सामने। जोगी नाथ=योगेश्वर।

संदर्भ – हीरामन द्वारा सिंहलगढ़ की ऊंचाई और विस्तार आदि का वर्णन किया गया है।

भावार्थ – हीरामन ने आगे कहा कि वह सामने दिखाई पड़ने वाला सिंहलगढ़ आकाश से भी ऊंचा है। उसे मात्र नेत्रों से ही देखा जा सकता है उस पर चढ़कर पहुंचना या वहां तक हाथ को पहुंचाना अत्यधिक कठिन है। वहां बिजली की तरह दिन-रात चक्र घूमता रहता है। वह घूमता हुआ चक्र यम की तलवार की भांति प्रतीत होता है। यह भयचक्र बड़ा कठोर है और इससे टकराकर तो यम का खड्ग भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। इसी चक्र के भय के कारण ही तो चन्द्रमा, तारे, सूर्य आदि आकाश में घूमते रहते हैं, भय से नीचे नहीं उतरते। हवा ने भी उसके समीप पहुंचने की बहुत चेष्टा की किन्तु उसे भी इस चक्र ने मात दे दी है और वह उसके भय से नीचे ही प्रवाहित होती रहती है, उसमें ऊपर पहुंचने का साहस ही नहीं है। अग्नि ने भी उसके सामने जलने का प्रयत्न किया किन्तु वह भी उसके भय से जल गई। धुआं भी ऊपर उठने का प्रयत्न करता रहा किन्तु उस तक नहीं पहुंच सका और बीच में ही विनष्ट हो गया। पानी ने भी मेघ बनकर उससे मिलने का प्रयास किया किन्तु वह भी उसके स्पर्श करने में असमर्थ रहा। इस कारण वह रोने लगा और उसके आंसू पृथ्वी पर गिरने लगे। कवि का अभिप्राय यह है कि जिसे हम वर्षा कहते हैं वह मेघ के रोने के कारण बहे हुए आंसू हैं।

रावण ने भी इस द्वीप के सम्मुख होकर इसको देखने का प्रयास किया था जिसके कारण उसके दसों सिर कट गए। शंकर ने भी उसके सामने हार स्वीकार कर ली और उसके सम्मुख अपना सिर झुका दिया। जब इतने महान् लोग भी इस सिंहल-दुर्ग के सम्मुख हार स्वीकार कर चुके हैं तो फिर योगी और संन्यासियों का तो कहना ही क्या है ?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. इन पंक्तियों में जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद पर प्रकाश डाला है और हठयोग की साधना की ओर संकेत किया है। सिंहलगढ़ की दुरूहता और अगमता में हठयोग की साधना प्रणाली सामने आ जाती है। योग-साधना सरल नहीं है अपितु सच्चा काम-विजेता ही योग-मार्ग में सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

हठ-योग की साधना-पद्धति की दृष्टि से इन पंक्तियों का निम्नांकित अर्थ होगा–

"हठयोग साधना में सिद्धि पाना दुर्गम है। सिद्धि का निवास (गढ़), सिद्धि का चरमबिन्दु, परकोटे के समान कपाल की हठ अस्थियों के मध्य में स्थित है, वह आज्ञा-चक्र (भ्रू मध्य की अंतर्दृष्टि) से देखा जा सकता है। वह हाथों की पहुंच से दूर है। वहां चक्रों की विद्युत और यमकर्त्रिका रूपी प्राणधारा चारों ओर निरन्तर घूमती रहती है। केवल इच्छा-मात्र करने से वह योगसिद्धि नहीं मिल जाती। शीघ्रता से हठ करके दौड़ने वाले साधक की प्राणशक्ति विभक्त हो जाती है। किसी-न-किसी चक्र में पहुंचकर, उसकी साधना के दो टुकड़े हो जाते हैं अर्थात् उसकी

साधना खंडित हो जाती है। इसी भय से साधक रूपी चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि भ्रमण करते रहते हैं। प्राण ने वहां पहुंचने की इच्छा की, पर वह मार खाकर पृथ्वी पर लोटने लगा। हठयोग-साधना में साधक प्रायः असफल रह जाते हैं। सुषुम्ना की साधना और रेत का ऊर्ध्वगमन भी असफल रहता है। सच्चा योगी ही योगसाधना में सिद्धि प्राप्त कर सकता है। योग-खण्डित होने पर साधक के शरीर में प्राण सुषुम्ना और रेत सब पुनः असिद्धावस्था में आ जाते हैं। रेत ऊर्ध्वमुखी होकर भी फिर स्खलित हो जाते हैं। रावण ने बहुत तप किया। उसकी साधना खण्डित हो गई और सीता के कारण उसे दसों सिर काटने पड़े। सबसे बड़े योगीश्वर शिवजी को भी योगमार्ग में असफल होकर पार्वती के प्रेम के लिए मस्तक टेकना पड़ा।"

2. समासोक्ति अलंकार।

तहां देखु पदुमावति रामा। भंवर न जाइ न पंखी नामा।1।
अब सिधि एक देउं तोहि जोगू। पहिलें दरस होइ तब भोगू।2।
कंचन मेरु देखावसि जहां। महादेव कर मंडप तहां।3।
ओहिक खंड जस परबत मेरू। मेरुहि लागि होइ अति फेरू।4।
माघ मास पाछिल पख लागें। सिरी पंचमी होइहि आगें।5।
उघरिहि महादेव कर बारू। पूजिहि जाइ सकल संसारू।6।
पदुमावति पुनि पूजै आवा। होइहि एहि मिसु दिस्टि मेरावा।7।
तुम्ह गवनहु मंडप ओहि हौं पदुमावति पास।
पूजै आइ बसंत जौं पूजै मन कै आस॥16/4॥

शब्दार्थ – रामा=सुन्दरी। भंवर=लोलुप व्यक्ति। सिधि=सिद्धि। जोगू=योग्य। ओहिक=वह। फेरू=चक्कर। उघरिहि=खुलेगा। बारू=दरवाजा। मिसु=बहाने। दिस्टि मेरावा=नजरों का मिलना। आस=आशा।

संदर्भ – हीरामन द्वारा रत्नसेन को पद्मावती से प्रथम भेंट की युक्ति सुझाना।

भावार्थ – हीरामन ने कहा कि इस सिंहलद्वीप में ही पद्मावती नामक सुन्दरी निवास करती है। उसके समीप भ्रमर तक नहीं पहुंच सकते, पक्षियों का तो कहना ही क्या है। इस कारण मैं तुझे तेरे अनुरूप एक सिद्धि प्रदान कर रहा हूं। उसके द्वारा तुम पहले उसके दर्शन करोगे और तदनन्तर तुम्हें उसके साथ भोग-विलास का आनन्द मिल सकेगा। जहां तुम्हें यह सुमेरु पर्वत सा दिखाई पड़ रहा है उसी के समीप शिव-मण्डप है अर्थात् शिव-मन्दिर है। वह मन्दिर इतना विशालकाय है कि उसके खण्ड भी पर्वत के समान हैं। उस सुमेरु जैसे मन्दिर पर अथवा सुमेरु पर सीधी चढ़ाई नहीं चढ़ा जा सकता अपितु अनेक चक्कर काटकर चढ़ना पड़ता है। माघ के महीने में शुक्ल पक्ष में इस मन्दिर का दरवाजा खोला जाता है और उस दिन सम्पूर्ण संसार शंकर का पूजन करने आया करता है। ठीक उसी दिन पद्मावती भी शिव की पूजा करने इस मन्दिर में आएगी। इस बहाने से ही तुम दोनों की नजरें मिल सकती हैं – आंखें चार हो सकती हैं।

हे राजन् तुम तो उस शिव-मण्डप में पहुंच जाओ जबकि मैं पद्मावती के समीप जा रहा हूं। यदि वह वसन्त-पूजा करने आएगी तो तुम्हारी उसके दर्शन करने की अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'ओहिक .... मेरू' में – उपमा अलंकार।

राजें कहा दरस जौं पावौं। परबत काह गंगन कहं धावौं।1।
जेहि परबत पर दरसन लहना। सिर सौं चढ़ौं पाय का कहना।2।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मोहिं भाव ऊंचे सो ठाऊं। ऊंचे लेउं प्रीतम के नाऊं।3।
पुरुषहि चाहिअ ऊंच हिआऊ। दिन दिन ऊंचे राखं पांऊं।4।
सदा ऊंच सेइअ पै बारू। ऊंचे सौं कीजै बेवहारू।5।
ऊंचे चढ़े ऊंच खंड सूझा। ऊंचे पास ऊंचि बुधि बूझा।6।
ऊंचे संग संग निति कीजै। ऊंचे काज जीव बलि दीजै।7।
दिन दिन ऊंच होइ सो जेहि ऊंचे पर चाउ।
ऊंचे चढ़त परिअ जौं ऊंच न छाड़िअ काउ॥ 16 / 5 ॥

शब्दार्थ – कहा=क्या, कहना ही क्या। लहना=प्राप्त करते हैं। हिआऊ=हृदय की भावनाएं। सेइअ=सेला कीजिए। बारू=दरवाजा। बेवहारू=व्यवहार। परिअ=गिर जाना।

संदर्भ – रत्नसेन द्वारा हीरामन से कहना कि पद्मावती के दर्शनों के लिए तो मैं सुमेरु पर पैरों के स्थान पर सिर से भी चढ़ सकता हूं।

भावार्थ – रत्नसेन ने कहा कि यदि मुझे पद्मावती के दर्शनों का सौभाग्य मिले तो मैं पर्वत का तो कहना ही क्या आकाश पर भी दौड़कर जा सकता हूं। जिस पर्वत पर मुझे पद्मावती के दर्शन उपलब्ध होंगे, वहां पर मैं पैरों का तो कहना ही क्या सिर के बल भी चढ़कर जा सकता हूं। मुझे वह ऊंचा स्थान अत्यधिक अच्छा लगता है और मैं ऊंचे स्वर में प्रियतम का नाम पुकारूंगा। व्यक्ति को अपने हृदय में ऊंची भावनाएं रखनी चाहिए और अनुदिन ऊंचाई की ओर ही कदम बढ़ाने चाहिए। व्यक्ति को सदा ऊंचे या महान व्यक्ति के द्वार पर ही सेवा करनी चाहिए और अपने से ऊंचे लोगों के साथ ही अपना व्यवहार रखना चाहिए। उच्च लोगों की बुद्धि भी उच्च होती है – उन्हें ऊंची बातें ही सूझा करती हैं। जो लोग ऐसे ऊंचे पुरुषों के संसर्ग में रहते हैं उनकी अपनी बुद्धि भी ऊंची हो जाती है। इसलिए व्यक्ति को सदैव ऊंचे लोगों की संगति में रहना चाहिए और उच्च कार्यों के लिए पुरुष को अपना जीवन न्यौछावर करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

जिसे ऊपर उठने की आकांक्षा होती है वह नित्य-प्रति ऊंचा ही उठता जाता है। यदि ऊंचाई की ओर बढ़ते हुए अर्थात् ऊंचा चढ़ते हुए व्यक्ति गिर भी जाए तो भी उसे ऊंचे चढ़ने की भावना नहीं त्यागनी चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – रत्नसेन पद्मावती को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उस तक जा पहुंचना अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य स्वीकार करता है।

हीरामनि दै बचा कहानी। चला जहां पदुमावति रानी।1।
राजा चला संवरि सो लता। परबत कहं जो चला परबता।2।
का परबत चढ़ि देखै राजा। ऊंच मंडप सोनै सब साजा।3।
अंब्रित फर सब लाग अपूरी। औ तहं लागि सजीवनि मूरी।4।
चौमुख मंडप चंहू केवारा। बैठे देवता चहूं दुआरा।5।
भीतर मंडप चारि खंभ लागे। जिन्ह वै छुए पाप तिन्ह भागे।6।
संख घंट घन बाजहिं सोई। औ बहु होम जाप तहं होई।7।
महादेव कर मंडप जगत जातरा आउ।
जो हिंछा मन जेहि कें सो तैसे फल पाउ॥ 16 / 6 ॥

शब्दार्थ – बचा=वचन। कहानी=व्यवस्था। संवरि=स्मरण करता हुआ। लता=पद्मावती। परबता=तोता। अंब्रित=अमृत। अपूरी=परिपूर्ण। मूरी=जड़ी। जातरा=यात्रा। हिंछा=इच्छा।

संदर्भ – रत्नसेन के शिव-मण्डप पहुंचने का वर्णन।

भावार्थ – हीरामन तोते ने राजा को पद्मावती के समीप जाने का वचन दिया और पद्मावती के समपी चला गया। जैसे ही तोता पद्मावती की ओर गया रत्नसेन भी पद्मावती के नाम का स्मरण करते हुए शिवमण्डप की या पर्वत की ओर चल दिया। उस पर्वत पर चढ़कर राजा ने देखा कि वह ऊंचा शिवमण्डप पूर्णतः सोने से सज्जित है। वहां सभी प्रकार के अमृतफल लगे हुए थे और संजीवनी बूटी भी लगी हुई थी। शिवमण्डप चौमुखा था जिसके चारों द्वारों पर किवाड़ चढ़े हुए थे और चारों द्वारों पर देवता विराजमान थे (उनकी मूर्तियां लगी हुई थीं)। मण्डप के भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार खम्भे लगे हुए थे। इन स्तम्भों को जो भी छू लेता था उसके पाप विनष्ट हो जाते थे। वहां पर बहुत से शंख बज रहे थे तथा अनेक प्रकार के होम (हवन) और जाप हो रहे थे।

उस शिव मन्दिर की यात्रा के लिए विश्व के सभी भागों से लोग आते थे और उनके मन में जैसी भी इच्छा होती थी वह पूरी हो जाती थी।

साहित्यिक सौन्दर्य – इन पंक्तियों में कवि का प्रधान लक्ष्य आध्यात्मिक संकेत करना है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

25

30

नागमती वियोग खण्ड

(३०६)

नागमती चितउर पँथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।१।
नागरि नारि काहु बस परा। तेइँ बिमोहि मो सौं चितु हरा।२।
सुवा काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ।३।
भएउ नरायन बावन करा। राज करत बलि राजा छरा।४।
करन बान लीन्हेउ कै छंदू। भारथ भएउ झिलमिल आनंदू।५।
मानत भोग गोपीचँद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी।६।
लेइ कान्हहि भा अकरुर अलोपी। कठिन बिछोउ जिअहिं किमि गोपी ७।
सारस जोरी किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि।
झुरि झुरि पाँजरि धनि भई बिरह कै लागी अग्गि ॥३०।१॥

शब्दार्थ—चितउर=चित्तौड़। हेरा=देखने लगी। फेरा=लौटना। नागरि चतुर स्त्री। बिमोही=मोहित करके। बस=वश में। बावन करा=विष्णु का वामन अवतार द्वारा छल करना और राजा बलि को पाताल भेजना। भारथ=महाभारत। उपसवा=समीप ले गया। अकरूर=अक्रूर, जो श्रीकृष्ण को गोकुल से मथुरा लिवा ले गए थे। किमि=कैसे। पाँजरि=पिंजर, हड्डियों का ढाँचा। झिलमिल=कवच।

संदर्भ—इससे पूर्ववर्ती खण्डों में कवि ने रत्नसेन और पद्मावती सम्बन्धी

वृत्तान्त का चित्रण किया है प्रस्तुत खण्ड में वह कथानक को चित्तौड़ की ओर मोड़ता है और विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि उधर चित्तौड़ में नागमती रत्नसेन के प्रत्यागमन के मार्ग की ओर देखती हुई उसके लौटने की प्रतीक्षा करती रहती थी और सोचती रहती थी कि मेरे प्रियतम यहाँ से एक बार क्या गए कि उन्होंने लौटकर आने का नाम तक नहीं लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी चतुर नारी के वशीभूत हो गये हैं और उसने उनको मोहित करके, उनके हृदय को मेरी ओर से अपहृत कर लिया है—उनके हृदय से मुझको भुलाकर, उनके हृदय में वह स्वय बस गयी है। वह तोता (हीरामन) मेरे लिए काल तुल्य बनकर मेरे प्रियतम को मुझसे विलग करके अपने साथ लिवा गया है। उस तोते को मेरे प्रियतम को नहीं ले जाना चाहिए था चाहे उसके स्थान पर वह मेरी जान ले लेता। वह तोता तो मेरे प्रति उसी प्रका छली सिद्ध हुआ है, जैसे राजा बलि के साथ वामन ने छल किया था (उनको स्वर्ग के स्थान पर पाताल भेज दिया था)। उसने इन्द्र की भाँति छल करते हुए कर्ण से उसके अमोघ वाणों को छलपूर्वक लेने के तुल्य मेरे पति को छलपूर्वक मुझसे विमुक्त किया है और जैसे महाभारत के युद्ध में कर्ण को संत्रस्त देखकर इन्द्र प्रसन्न हुआ था, वह भी उसी प्रकार प्रसन्न हो रहा होगा। राजा गोपीचन्द राजसी वैभवों के उपभोग में निमग्न रहते थे, किन्तु जिस प्रकार उनको जालंधर योगी अपने साथ लिवा ले गए थे, उसी प्रकार राजसी भोगों में लिप्त मेरे प्राणेश्वर को हीरामन लिवा ले गया है। वह तोता मेरे प्रियतम को अपने साथ ले जाकर उसी प्रकार विलुप्त हो गया है, जैसे श्रीकृष्ण को अक्रूर अपने साथ मथुरा ले गये थे और अब मुझ विरहिणी का जीवित रहना उसी प्रकार दुष्कर हो गया है, जैसे कृष्ण के वियोग में गोपियों का जीवन दूभर हो गया था।

नागमती अंतर्विलाप-सा करते हुए कहने लगी कि अरे तोते! तूने हमारी सारसों की जैसी जोड़ी को भंग किया है, इससे अच्छा तो यह रहता कि तू खड्ग द्वारा मेरी हत्या कर देता। अब तो मेरी काया में ऐसी विरहाग्नि सुलगी रहती है कि उसमें जलकर मेरा शरीर झूर-झूर हो उठा है। उसमें रंचमात्र भी सत्व नहीं बचा है।

विशेष—(१) बावन करा—एक पौराणिक कथा के अनुसार राजा बलि महादानी थे और उन्होंने स्वर्ग का राज्य प्राप्त करने की कामना से ९९ यज्ञ पूर्ण कर लिए थे। यदि उनका एक यज्ञ और निर्विघ्न पूरा हो जाता तो वे स्वर्ग के राजा बन जाते। देवताओं में इस तथ्य को लेकर खलबली मच गई क्योंकि राजा बलि का दैत्य-कुल से सम्बन्ध था। देवों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर विष्णु ने वामन का रूप धारण करके राजा बलि से ढाई पग भूमि की माँग की थी और राजा बलि द्वारा इस माँग को स्वीकार कर लेने पर एक कदम में आकाश, दूसरे में पाताल को नाप लिया था। उनका तीसरा कदम सम्पूर्ण पृथ्वी से बढ़कर था अतः राजा बलि स्वयं

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

26

भी लेट गये थे कि आप मेरे शरीर को भी नापकर अपना कदम पूरा कीजिए। इस प्रकार विष्णु ने राजा बलि के साथ छल करके बलि को पाताल का राजा बना दिया था। इस विषय में एक कहावत भी प्रसिद्ध है—

"मन चाही ना होति है प्रभु चाही तत्काल
बलि चाहा था स्वर्ग को भेजि दिया पाताल।"

(२) करन बान लीन्हेउ कै छंदू—महाभारत सम्बन्धी एक प्रसंग के अनुसार सूर्य-पुत्र कर्ण का जन्म दिव्य कवच और कुंडलों के साथ हुआ था। इसके साथ ही उसके पास पाँच अमोघ बाण भी थे जिनसे कर्ण दुर्योधन की ओर से युद्ध करते हुए पाँचों पांडव-भ्राताओं को मारना चाहता था। अर्जुन के पिता इन्द्र इस बात को सोचकर बड़े दुःखी थे और उन्होंने अंततः छल का आश्रय लिया कि एक ब्राह्मण के वेश में कर्ण से उसके कवच-कुंडल और अमोघ बाणों को दान के रूप में माँग लिया और महादानी कर्ण ने इन वस्तुओं को प्राणाधिक मूल्यवान होते हुए भी इन्द्र को सौंप दिया। दान के भार से इन्द्र का रथ जब आकाश की ओर नहीं उड़ सका तो इन्द्र को एक अमोघ बाण कर्ण को देने के लिए विवश होना पड़ा। कर्ण संतुष्ट था कि इस बाण से मैं अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन की हत्या कर दूँगा, किन्तु श्रीकृष्ण की चाल के कारण कर्ण को अपने इस अमोघ बाण को भी भीमसेन और हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच पर छोड़ने को विवश होना पड़ा था और वह स्वयं अर्जुन के हाथों मारा गया था। नागमती का अभिप्राय यह है कि मेरे पति का महत्व मेरे लिए उसी प्रकार प्राणाधिक था जैसे कर्ण के लिए उसके बाणों और कवच का था।

अलंकार—दृष्टांत, रूपक।

(२०७)

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ।१।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लै सो गएउ पिय नामा।२।
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीझि भीजि तन चोली।३।
सखि हिय हेरि हार मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी।४।
खिन एक आव पेट महँ स्वाँसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा।५।
पौनु डोलावहिं सींचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला।६।
प्रान पयान होत केइँ राखा। को मिलाव चात्रिक कै भाखा।७।
आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हाँक।
हंस जो रहा सरीर महँ पाँख जरे तन थाक॥२०२॥

शब्दार्थ—बाउर=बावला। तस=उस प्रकार। दगधै=जलाता। रामा=स्त्री। मैन=कामदेव। खिन=क्षण। पयान=गमन। चात्रिक=चातकी।

व्याख्या—कवि कहता है कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में पद्मावती बावली-सी हो गई और उसके मुख से सदैव पपीहे की भांति पिउ-पिउ की ध्वनि निकलती

रहती थी। उस रमणी को काम अत्यधिक प्रपीड़ित करने लगा। हीरामन मानो उसके प्रियतम के रूप में उसके प्राणों को ही अपहृत कर ले गया था। उसे ऐसा विरह-रूपी बाण लगा हुआ था कि वह हिल-डुल भी नहीं सकती थी और रक्त के पसीजने के कारण उसकी चोली सदैव गीली रहती थी। उसको देखकर सखियाँ सोचने लगीं कि अब यह नारी कामदेव द्वारा परास्त की जा चुकी है—इस पर कामदेव ने विजय प्राप्त कर ली है और अब काँप-काँपकर अपने प्राण छोड़ देगी। उसे एक क्षण के लिए श्वास आता था और उसके उदर में स्पन्दन होता था, किन्तु क्षण भर में ही वह श्वास निकल जाता था जिससे उसकी समस्त सखियाँ निराश हो उठती थीं। उसको बेहोश हुई देखकर सखियाँ उस पर पंखे से हवा करते हुए, उसकी चोली पर जल छिड़कने लगीं, तब कहीं जाकर एक प्रहर के बाद नागमती कुछ सचेत हुई और यह समझते हुए कि मैं अपनी परेशान सखियों से घिरी हुई हूँ, उसके मुख से कुछ शब्द निकले। वह कहने लगी कि अपने प्राणेश्वर के वियोग में मेरे उड़ते हुए प्राण-पखेरुओं को किसने और क्यों उड़ने से रोक दिया है। अब मुझ चातकी का स्व-प्रियतम-रूपी मेघ से कौन सम्मिलन करायेगा।

कवि कहता है कि विरहिणी नागमती ने जब आह भरी तो उसकी आह के साथ-साथ आग निकलने लगी। उस विरहाग्नि के कारण नागमती के शरीर में जीव-रूपी जो हंस विद्यमान था उसके पंख जल उठे जिससे वह उड़ नहीं सका—उसका आत्मा-रूपी हंस पंख जल जाने के कारण उड़ने में असमर्थ होकर उसके शरीर में ही रह गया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा।

(३०८)

पाट महादेइ हिएँ न हारू। समुझि जीउ चित चेतु सँभारू।१।
भँवर कँवल सँग होइ न परावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा।२।
पीउ सेवाति सौं जैस पिरीती। टेकु पियास बाँधु जिय थीती।३।
धरती जैस गँगन कै नेहा। पलटि भरै बरखा रितु मेहा।४।
पुनि बसंत रितु आव नवेली। सो रस सो मधुकर सो बेली।५।
जनि अस जीउ करसि तूँ नारी। दहि तरिवर पुनि उठहिं सँभारी।६।
दिन दस जल सूखा का नंसा। पुनि सोइ सरवर सोई हंसा।७।
मिलहिं जो बिछुरे साजना गहि गहि भेंट गहंत।
तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अदरा ते पलुहंत॥२०३॥

शब्दार्थ—पाट महादेई=महारानी की पदवी वाली पटरानी। चेतु सँभारू=होश सम्हाला। सँवरि नेह=प्रेम का स्मरण करके। सेवाति=स्वाति नक्षत्र। पिरीती=प्रीति। टेकु=आश्रय। पियास=पिपासा, प्रियतम की आशा। जिय थीती=जीवन रूपी धरोहर। नेहा=प्रेम। मेहा=वर्षा। जनि=नहीं। दहि=जलकर। मिरगिसिरा=मृगशिरा नामक नक्षत्र। अदरा=आर्द्रा नामक

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

नक्षत्र । पलुहंत=पल्लवित, हरे-भरे ।

व्याख्या—नागमती को सुमाश्वासन देते हुए उसकी सखियाँ कहने लगीं कि हे रानी ! आप इस प्रकार हिम्मत मत हारिए अपितु हृदय में सोच-विचार कर अपने चैतन्य की रक्षा कीजिए अर्थात् अपने होशहवास मत खोइये। हे महारानी आप यह विश्वास रखिए कि जिस प्रकार भ्रमर कमल के समीप जाकर भी अंततः मालती के प्रेम का स्मरण करके उसके समीप लौट आता है उसी प्रकार आपके प्राणेश्वर भी पद्मावती-रूपी कमल के पास जाकर भी अततः आपके समीप लौट आएंगे। सुप्राणेश्वर रूपी स्वाति-नक्षत्र के प्रति आपका जैसा दृढ़ प्रेम-भाव है, उसको ध्यान में रखते हुए अपनी काम पिपासा को वशवर्तिनी रखिए, और प्रियतम के लौटने की आशा का सहारा लेकर अपने हृदय में धैर्य धारण रखिए। जिस प्रकार पृथ्वी आकाश के प्रेम-भाव में निमग्न रहती है तो आकाश उसको वर्षा ऋतु में जल से ओत-प्रोत कर देता है—उस पर स्नेह की वर्षा करता है, उसी प्रकार तुम भी अततः स्व-पति का स्नेह प्राप्त करोगी। इसी प्रकार तुम्हारे जीवन में पुनः वही वसन्त ऋतु आएगी, जिसमें समस्त प्रकार के सुख-भोग होंगे, और तुम्हारे पति-रूप भ्रमर द्वारा लता-रूप तुम्हारा मकरन्द पान किया जाएगा। हे महारानी ! आप अपना हृदय इस प्रकार क्यों दुखी और खट्टा कर रही है। आप यह सोचकर धैर्य क्यों नहीं धारण करतीं कि ग्रीष्म ऋतु में दग्ध हुए वृक्ष वसन्त ऋतु के आगमन से पुनः सम्हल उठते हैं—उनमें नयी-नयी कोंपल फूट उठती हैं। यदि दस दिवस तक जल सूख भी जाता है, अर्थात् यदि आपका स्व-पति से कुछ दिनों के लिए मिलन नहीं भी हो पाता है, तो क्या हुआ, क्योंकि बाद में तो वही सरोवर और वे ही हंस होंगे अर्थात् तुम्हारा मिलन होकर ही रहेगा।

हे महारानी आप इस तथ्य को भी विस्मृत मत कीजिए कि वियोग के पश्चात् मिलन की आशा बहुत अधिक बढ़ जाया करती है और बिछुड़े हुए पति बड़े ही उल्लास-पूर्वक मिलते और आलिंगन करते हैं। जो मृगशिरा नक्षत्र की कड़ी तपन को सहन करते हैं—विरह-ताप सहन करते हैं—वे ही आर्द्रा नक्षत्र की घोर वर्षा में पल्लवित-पुष्पित हुआ करते हैं—उन्हीं पर पति-प्रेम की घोर वर्षा हुआ करती है।

अलंकार—रूपक, अर्थान्तरन्यास, उपमा।

(२०९)

चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।१।
धूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए।२।
खरग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घन घोरा।३।
अद्रा लाग बीज भुइँ लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।४।
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी।५।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ।६।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा।७।

जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब ॥३०।४॥

शब्दार्थ—गाजा=गरजने लगे। दुंद=युद्ध। धूम=धुएँ के रंग के। धौरे=श्वेत। धुजा=ध्वजा। बगु=बगुला। बीज=बिजली। ओनै=झुक आई, उमड़ उठी। उबारु=रक्षा करो। दादुर=मेंढक। बेझ=बेध, निशाना लगाना। पुख=पुष्य। नाँह=पति। मन्दिर=भवन। गारौ=गौरव।

व्याख्या—आसाढ़ का महीना आया तो आकाश में बादलों की गर्जन होने लगी, जो नागमती को ऐसी प्रतीत हुई कि विरह ने युद्ध की तैयारी की है और उसकी सेना ने कूंच का नगाड़ा बजाया है। धुमैले, काले और भूरे रंग के बादल आकाश में दौड़ने लगे और उनमें उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियाँ उनकी ध्वजाओं जैसी प्रतीत होने लगीं। खड्ग रूपी बिजली चारों ओर चमकने लगी और वर्षा की बूंद-रूपी बाणों की घनघोर वर्षा होने लगी। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमककर भूमि को छूने लगी। नागमती सोचने लगी कि ऐसे विरहोत्तेजक वातावरण में प्रियतम की अनुपस्थिति में मुझको कौन समादर देगा—अर्थात् मेरी कुछ भी पूछ नहीं रही है जबकि पति के यहाँ होने पर ऐसे उन्मादक वातावरण में अवश्य ही काम के लिए मेरी मनुहार करते। चारों ओर उमड़ी हुई घटाएँ पृथ्वी पर झुकी-सी प्रतीत होती हैं, जिन्हें देखकर मेरी कामोत्तेजना और भी अधिक बढ़ उठी है। हे प्राणनाथ ! आप शीघ्र ही आकर मेरी रक्षा कीजिए क्योंकि मुझको कामदेव की सेना ने घेरा हुआ है। मेंढक, मयूर और कोयल के शब्द तो मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मेरे हृदय को बेधे डाल रहे हैं, और मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अब तो पुष्य नक्षत्र सिर पर आ गया है जो इस बात का द्योतक है कि और भी अधिक वर्षा होगी। मेरे तो पति भी यहाँ नहीं हैं अतः मेरे भवन पर छप्पर कौन छवाएगा।

स्व-प्रियतम की स्मृति में निमग्न होते हुए नागमती रुदन करने लगी कि हे प्राणेश्वर जिन स्त्रियों के पति उनके घर में हैं वे गर्व और गौरव की भावना से अभिभूत हैं, जबकि आपके परदेश में होने के कारण मेरा पति-प्रेम सम्बन्धी गर्व और गौरव तो मिट्टी में मिल ही गया है, मैं अपने समस्त प्रकार के सुखों को भी भूल चुकी हूँ।

विशेष—जायसी के वियोग-वर्णन की यह विशेषता ही कही जाएगी कि उनकी नागमती अपने रानीपन को भूलकर किसी सामान्य नारी की भाँति यह कहकर विषादमग्न हो उठती है कि इस घोर वर्षा-काल में, पति की अनुपस्थिति में मेरे भवन पर कौन छप्पर डालेगा।

अलंकार—सांगरूपक।

(२१०)

सावन बरिस मेह अतिवानी। भरि भरइ हौं बिरह झुरानी।१।
लागु पुनर्बसु पीऊ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा।२।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

रकत क आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।३।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइँ कुसुंभि तन चोला।४।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलाव देइ झँकोरा।५।
बाट असूझ अथाह गँभीरा। जिउ बाउर भा भवै भँभीरा।६।
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।७।
परबत समुंद अगम बिच बन बेहड़ घन ढंख।
किमि करि भेटौं कंत तोहि ना मोहि पाँव न पंख ॥३०।५॥

शब्दार्थ—प्रतिवानी=अत्यधिक। भरनि=मूसलाधार वृष्टि। पुनर्वसु=नक्षत्र, विशेष। बाउरि=बावली। सरेखा=समान। रक्त=रुधिर। असूझ=जहाँ कुछ दिखाई न दे। खेवक=मल्लाह। ढंखे=ढाक। किमि करि=किस प्रकार।

व्याख्या—बारहमास-वर्णन के अंतर्गत विरहिणी नागमती की विरहावस्था का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि सावन के महीने में जोरदार वर्षा होने लगी। एक ओर तो मूसलाधार वृष्टि हो रही थी जबकि बेचारी नागमती विरहाग्नि में झुलसती जा रही थी। नागमती सोचने लगी कि पुनर्वसु नामक नक्षत्र लग गया है किन्तु मैं अब तक स्व-पति के दर्शन प्राप्त करने में असफल रही हूँ। यह सोच-सोचकर मैं बावली हो चुकी हूँ कि न जाने मेरे चतुर प्रियतम कहाँ रह रहे हैं—अथवा यह कि प्रियतम के समान और कौन सुखदायक हो सकता है। मेरे नेत्रों से रक्त के आँसू भूमि पर टूट-टूटकर गिरते रहते हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो बीर बहूटियाँ रेंग रही हों। मेरी सखियों ने अपने-अपने प्रियतमों के साथ हिंडोले डाले हुए हैं। वसुन्धरा पर चारों ओर हरितिमा छाई हुई है जबकि उन्होंने भी कुसुम्भी रंग के चोले धारण किए हुए हैं। सखियों ने अपने प्रियतमों को साथ हिंडोलों पर झूलते देखकर मेरा हृदय भी विरह-भाव के हिंडोले पर झूमने लगता है और विरह मुझको झोंटे और झँकोरे देता हुआ इस झूले पर झुला रहा है। झँकझोर-झँकझोर कर झुला रहा है। झूलने वाले को ठीक प्रकार से झोंटे न देकर इस प्रकार के झोंटे देना कि वह झूले से गिर जाए झँकोरे देना कहलाता है। मुझे अपने पति से सम्मिलन का मार्ग बड़ा ही असूझ, अथाह और अत्यधिक गंभीर लग रहा है और मेरा हृदय बावला होकर भँभीरी की भाँति घूम रहा है। जहाँ तक भी पृथ्वी दिखाई पड़ती है, वह जल में डूबी हुई है। ऐसे घनघोर वर्षा-काल में जहाँ चारों ओर पानी-ही-पानी दृष्टिगत होता है मेरी जीवन रूपी नौका को पार लगाने वाला मल्लाह, पति के अभाव में और कौन हो सकता है।

स्व-प्रियतम को सम्बोधित करती हुई नागमती कहने लगी कि हे प्राणनाथ! मेरे और तुम्हारे मध्य अनेक अगम्य पर्वत और समुद्र तथा बीहड़ वनों और सघन ढाक के वनों का अन्तराल (दूरी) है। मैं आपसे कैसे आकर मिलूँ क्योंकि न तो मेरे पैर ही हैं और न पंख ही हैं जिनकी सहायता से मैं उड़कर आपसे आ मिलूँ।

विशेष—दोहे में व्यक्त विरह-भाव बड़ा ही मार्मिक और करुणोत्तेजक है।

अलंकार—(१) 'भरनि''''''झुरानी'—में विरोधाभास।
(२) 'रेंगि''''''बहूटी'—में उत्प्रेक्षा।
(३) 'हिय''''''मोरा'—में उपमा।
(४) 'मोर''''''थाकी'—में रूपक।

(२११)

भर भादौं दूभर अति भारी। कैसें भरौं रैनि अँधियारी।१।
मँदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।२।
रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।३।
चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।४।
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी।५।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।६।
धनि सूखी भर भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सींचति नाहाँ।७।
जल थल भरे अपूरि सब गँगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक ॥३०।६॥

शब्दार्थ—मँदिल=भवन। अनतै=अन्यत्र। तरासा=त्रस्त करता है। पुहुमि=पृथ्वी। नाहाँ=पति। औगाह=अवगाह, अगाध जल। ओरी=छप्पर के सिरे से टपकती बूंद।

व्याख्या—विरहिणी नागमती के लिए भाद्र माह की झर की लड़ी अर्थात् निरन्तर वर्षा अतीव कष्टकर सिद्ध हो रही है। वह इस चिन्ता में दुःखी है कि इस महीने की अँधेरी रात्रियों को मैं कैसे व्यतीत करूँ। मेरा गृह सुनसान है क्योंकि मेरे पति कहीं अन्यत्र रह रहे हैं। पति के वियोग के कारण मेरी शैया मुझ पर नागिन बन कर बार-बार काटने दौड़ती सी प्रतीत होती है। हे प्राणनाथ! तुम्हारी अनुपस्थिति में मैं अपनी चारपाई अथवा पलंग की पाटी पकड़े पड़ी रहती हूँ। आपके आने की प्रतीक्षा में मेरे नेत्र फटे के फटे रह जाते हैं जबकि मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो उठता है। बार-बार बिजली चमकती है जबकि बादल अपनी गर्जना से मुझे त्रस्त करते हैं। विरह तो काल-रूप होकर मेरे जीवन को हड़पना चाहता है। मघा नक्षत्र में घनघोर वर्षा हो रही है—वर्षा के झोंके पर झोंके आते रहते हैं और मेरे नेत्रों से भी आँसुओं की ऐसी झड़ी लगी रहती है, मानो ओलती टपक रही हो (वर्षा के उपरान्त छप्परों के सिरों से जो बूँदें टपकती रहती हैं उन्हें अलीगढ़ के समीपवर्ती भागों में ओलवाती कहते हैं) मघा नक्षत्र के बाद पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र लग गया है, जिसमें और भी अधिक वर्षा होने के कारण पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो उठी है। मेरा शरीर विरहाग्नि में उसी प्रकार सूखा जा रहा है जैसे वर्षा-काल में आक और जवासा सूख जाते हैं। हे नाथ आपकी स्त्री भरे भादों के महीने में भी सूखती जा रही है

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

आप अब भी आकर इसको सींचते क्यों नहीं हो—इसे अपनी उपस्थिति-रूपी जल से सूखने से बचा लीजिए।

हे प्राणेश्वर! भर-भादों के महीने में इतनी घनघोर वर्षा हुई कि चारों ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है तथा पृथ्वी और आकाश मिलकर एक हो गए हैं। आपकी प्रियतमा यौवन-रूपी अगाध जल में डूबती जा रही है, आप इस डूबती को शीघ्र ही आकर सहारा क्यों नहीं देते।

विशेष—वर्षा-ऋतु में आक और जवासे के पत्रहीन हो जाने का अर्थात् सूखने का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है।

"अर्क जवास पात बिन भयऊ।"

अलंकार—पुनरुक्ति, विरोधाभास।

(२१२)

लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुँ आउ पिउ परभुमि लटा।१।
तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया।२।
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।३।
चित्रा मित मीन घर आया। कोकिल पीउ पुकारत पावा।४।
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद मोति लै भरे।५।
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरर्हि खँजन देखाए।६।
भए अवगास कास बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले।७।
बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर ॥३०७॥

शब्दार्थ—परभुमि=दूसरे देश में। माया=दया। उए=निकलने पर। तुरै=घोड़ा। पलानि=भाग गए। सालैं=कष्ट देता है। अवगास=स्थान, मैदान। बाजहु=गरजो।

व्याख्या—कवि वर्णन करता है कि अब कुवार का महीना लग गया और जगत से पानी की मात्रा कुछ कम हो गई तो विरहिणी नागमती कातर स्वर में याचना करने लगी कि अरे मेरे परदेशी प्रियतम तुम अब भी लौट आओ। हे प्राणेश्वर! मेरा यह सूखकर अस्थिपंजर मात्र शरीर आपको देखकर ही पुनः हरा-भरा हो उठेगा। आपका मेरी ओर से इस प्रकार मन क्यों फिर गया है, आप मुझ पर पुनः अनुकम्पा कीजिए। अगस्त्य तारे के उदय होने पर हस्ति नक्षत्र मेघ-गर्जन करने लगा है अथवा मेघरूपी हाथी गर्जने लगे हैं और राजाओं ने अपने अश्वों पर सवार होकर युद्धों की तैयारी कर दी हैं—भाव यह है कि अब तो आने-जाने के मार्ग खुल गए हैं, अतः यदि आप वर्षा के जल के कारण नहीं आ पा रहे थे तो अब तो आ जाइए। हे प्राणेश्वर अब तो चित्रा नक्षत्र का स्वामी (मित्र) चन्द्रमा मीन राशि में आ गया है तथा कोयल भी पिउ-पिउ पुकारती हुई अपने स्वामी को पुकारती हुई उसको प्राप्त कर चुकी है—भाव यह है कि जब चित्रा का सम्मिलन चन्द्रमा से

और कोयल का सम्मिलन अपने प्रियतम से हो चुका है तो फिर आप भी मुझसे आकर क्यों नहीं मिलते। यही नहीं चातक के मुख में भी स्वाति-नक्षत्र की बूँदे पड़ गई हैं और सीपी का मुख भी स्वाति-नक्षत्र की बूँदें पड़ने के कारण मोती से भर गया है। पुराने सरोवरों को याद करते हुए वे हंस पुनः उन सरोवरों में लौट आए हैं जो वर्षाकाल में उनको छोड़ गए थे। सारस के जोड़े कुलेलें करने लगे हैं जबकि खंजन पक्षियों के भी जोड़े दिखाई पड़ने लगे हैं। जब सभी ओर मिलन की व्याप्ति है तो फिर आप भी आकर मुझसे क्यों नहीं मिलते हो। सभी ओर मैदानों में कास के वन फूल उठे हैं, फिर भी न जाने मेरे पति विदेश में रहते हुए मुझको भूलकर अभी तक क्यों नहीं लौटे हैं।

हे प्राणनाथ! विरह-रूपी हाथी मेरे शरीर को चूर-चूर करके कष्ट दे रहा है। आप शीघ्र ही शार्दूल के रूप में मेरे समीप आकर गर्जना क्यों नहीं करते, जिससे मुझे विरह-रूपी हाथी से छुटकारा मिल सके—शार्दूल-रूपी आपके आते ही विरह-रूपी हाथी डरकर पलायन कर जाएगा।

अलंकार—सांगरूपक।

(२१३)

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी।१।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जानहुँ जरें सब धरति अकासू।२।
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू।३।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाहिन कंत पियारा।४।
अबहूँ निठुर आव एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।५।
सखि झूमक गावहिं अँग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी।६।
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा।७।
सखि मानहि तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु तेहि रही छार सिर मेलि ॥३०८॥

शब्दार्थ—करा=कला। परगासू=प्रकाश। अगिडाहू=अग्निदाह। नाहिन=नहीं है। अंग मोरी=अंगों को मोड़कर। बिछुरी=बिछुड़ी। सवति=सौत। मानहि=मनाती है। छार सिर मेलि=सिर में धूल डाल रही हूँ।

व्याख्या—कातिक के महीने में दिवाली के त्योहार पर नागमती की विरह-व्यथा के और भी बढ़ जाने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कातिक के महीने में शरद-चन्द्र की उज्ज्वलता अर्थात् चाँदनी व्याप्त रहने लगी। विरहाकुल नागमती सोचती है कि एक ओर तो समस्त जगत में शीतलता परिव्याप्त है जबकि मैं विरह-अग्नि में झुलसी जा रही हूँ। चन्द्रमा अपनी चौदह-कलाओं से युक्त होकर चमक रहा है, किन्तु मुझे ऐसी अनुभूति होती है मानो चन्द्रमा की चाँदनी में पृथ्वी और आकाश दग्ध हो रहे हैं। मेरे शरीर, अंतर्मन और शैया सभी में अग्निदाह-सा प्रतीत

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

होता है । सारे संसार को ही चन्द्रमा की सुशीतलता आनन्दकर है जबकि मुझको राहु के समान कष्टकर सिद्ध हो रही है। मुझे तो चारों ही खंडों में अंधकार छाया लगता है, क्योंकि मेरे प्राणेश्वर गृह में विद्यमान नहीं हैं। अरे निष्ठुर प्रियतम ! तुम अब भी एक बार लौटकर आ जाओ। क्योंकि सम्पूर्ण जगत् में दिवाली का त्योहार मनाया जा रहा है। मेरी समस्त सखियाँ अपने अंगों को मरोड़ती हुई उल्लासपूर्वक झूमक गा रही हैं, क्योंकि मेरी जोड़ी बिछुड़ी होने के कारण, प्रियतम से विछोह के कारण मैं आनन्दित होने के स्थान पर विरह में झुलसती-झुरती रहती हूँ। जिन नारियों के गृह में उनके पति हैं वे मुनियों की पूजा कर रही हैं जबकि मेरे अंतर्मन को दुहरे कष्ट साल रहे हैं—एक ओर तो मुझको प्रियतम से विछोह का दुःख मारे डालता है जबकि उसके साथ ही सपत्नी (सौत) का दुःख तो मुझे मारे ही डाल रहा है।

मेरी समस्त सखियाँ (तथा अन्य नारियाँ) हँसते-खेलते हुए दिवाली का त्योहार मना रही हैं, जबकि अपने प्रियतम के अभाव में मैं इस प्रकार की खुशियाँ कैसे मना सकती हूँ, अतः अपने सिर में धूल डाल रही हूँ—मेरा दुःख पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है क्योंकि तभी व्यक्ति ऐसा आचरण करता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा।

(२१४)

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुखे सो जाइ किमि काढ़ी।१।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।२।
काँपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।३।
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लै गा नाहूँ।४।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई।५।
सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा ६।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।७।
पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग ॥३०।९॥

शब्दार्थ—किमि=कैसे। काढ़ी=निकालना, दूर करना। पलटि न बहुरा= लौटकर नहीं आया। सियरि=ठंडी।

व्याख्या—अगहन के महीने में जब दिन छोटे और रातें लम्बी हो गईं तो विरहिनी नागमती की व्यथा और भी अधिक बढ़ गई क्योंकि वह समझ नहीं पाती थी कि पति के विछोह के असह्य दुःख को कैसे दूर किया जाए—लम्बी रातों का काटना उसके लिए और भी अधिक कष्टकर हो गया था। अब तो विरह के कारण नागमती को दिवस भी रात्रि जैसा कष्टकर प्रतीत होता था और वह वियोग में दीपक की वर्तिका की तरह तिल-तिल करके जलती रहती थी। शीत के कारण उसका हृदय विकंपित रहने लगा था और यह कम्प तभी दूर हो सकता था जबकि

उसके प्राणेश्वर उसके समीप होते। प्रत्येक घर में नारियों ने शरद काल के अनुरूप नये-नये वस्त्रों की रचना कर ली थी, किन्तु नागमती ऐसा भी नहीं कर सकी क्योंकि वह सोचती थी कि मेरे तो रूप और रंग को मेरे प्राणेश्वर ही अपने साथ ले गये हैं—भाव यह है कि उसकी खाने-पहनने की ओर अभिरुचि ही नहीं रह गयी थी। वह बार-बार सोचती थी कि मेरे पति यहाँ से किसी ऐसी अशुभ घड़ी में गये हैं कि एक बार जाकर उन्होंने लौटने का नाम तक नहीं लिया है। यदि वे अब भी लौट आएँ, तो सुहावने दिवस लौट आएँगे। शीत आग बनकर उस विरहिणी के अंतर्मन को निरन्तर दग्ध करता रहता था और वह विरहाग्नि में सुलग कर जलकर राख हो चुकी थी। उसके अंतर्मन में टीस थी कि मेरी विरहावस्था के दुःख से मेरे प्रियतम सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उनकी इस अज्ञानता के कारण ही मेरा यौवन और जीवन जलकर भस्म होते जा रहे हैं—निस्सार होते जा रहे हैं।

विरहिणी नागमती भ्रमर और कागों को सम्बोधित करते हुए कहने लगी कि हे भ्रमरो ! अरे कागो ! तुम मेरे प्रियतम के समीप पहुँचकर उन्हें यह सन्देश (सूचना) पहुँचा देना कि आपकी प्रियतमा वियोगाग्नि में दग्ध हो-होकर मर गई है, और उसका धुआँ लगने के कारण ही हमारे शरीर काले पड़ गए हैं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों के अन्त में नियोजित दोहे की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि समीक्षकों ने मुक्त-कंठ से सराहना की है, क्योंकि इसमें विरहिणी नायिका की मनोव्यथा साकार हो उठी है।

(२) नागमती के शरीर में लगी विरहाग्नि के धुएँ से भ्रमरों और कागों का काला होना इस तथ्य का व्यंजक है कि वह विरहाग्नि में शीघ्र ही जलकर विरह-यातना से छुटकारा नहीं पा गई है अपितु लम्बे अंतराल तक घुट-घुट कर, सुलग-सुलग कर जलती रहती है। धुआँ तभी तक अधिक निकला करता है जब तक आग भभक कर जल नहीं उठती।

अलंकार—विरोधाभास और हेतूत्प्रेक्षा।

(२१५)

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सूरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।१।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। काँपि काँपि मरौं लेहि हरि जीऊ।२।
कंत कहाँ हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहि नियरें।३।
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।४।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।५।
रैनि अकेलि साथ नहि सखी। कैसें जिऔं बिछोही पँखी।६।
बिरह सँचान भँवै तन चाँड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहि छाँड़ा।७।
रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख ॥३०।१०॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—सुरुज=सूर्य। जड़ाइ=जाड़े से पीड़ित होकर। हियरे=हृदय से। नियरें=समीप। हिवंचल=हिमाचल, बर्फ में। बूड़ी=डूबी। बासर=दिन। पंखी=पक्षिणी, चिड़िया। सँचान=बाज। भँवै=चक्कर काटता है। मुएं=मरने पर। गरा=गल गया। ढ़रा=ढ़ल गया। ररि मुई=भर गई है। चाँडा=भयंकर।

संदर्भ—विगत छन्द की भाँति प्रस्तुत पंक्तियाँ भी जायसी के वियोग वर्णन की बड़ी ही मार्मिक पंक्तियाँ हैं, जिनमें विरहिणी नागमती की पूस के महीने में होने वाली दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि पूस के महीने में ठंडक इतनी अधिक बढ़ गई कि सभी नर-नारी थर थर काँपने लगे। यही नहीं स्वयं सूर्य भी जाड़े से पीड़ित होकर लंका की ओर तापने लगा (आग सेकने को तापना कहते हैं) अर्थात् वह उत्तरायण से दक्षिणायन हो गया। बेचारी नागमती की विरह-व्यथा और भी बढ़ गई और उसको शीत भयंकर प्रतीत होने लगा। अपने प्रियतम को स्मरण करते हुए वह सोचने लगी कि उनके अभाव में मैं काँप-काँप कर मरी जा रही हूँ और यह जाड़ा तो मेरी जान लेकर ही पीछा छोड़ेगा। हे प्राणनाथ! आप कहाँ हो? यदि आप यहाँ होते तो मैं आपके कंठ से लगकर इस मारक शीत से परित्राण पा जाती थी। आपके और मेरे मध्य तो असीम अगम्य मार्ग की दूरी है, आप कहीं समीप भी तो नहीं हैं जिससे मैं ही आकर आपसे मिल लेती। मुझे तो भय ऐसी जूड़ी आने लगी है कि कई-कई रजाइयाँ ओढ़ने पर भी मेरे अंतर्मन का जाड़ा नहीं मिट पाता। अपनी शैया मुझे इतनी ठंडी प्रतीत होती है, मानो उसको बर्फ में डुबो दिया गया है। मुझसे तो चकई बहुत अच्छी होती है जो प्रियतम से रात्रि को बिछुड़कर उससे प्रातःकाल मिल जाती है। इसके सर्वथा मैं अहिर्निशि आपके वियोग में कोयल की भाँति तड़पती रहती हूँ। रात्रि में मैं अकेली रह जाती हूँ। मेरे साथ कोई सखी तक नहीं होती, ऐसी दशा में मैं वियोगिनी पक्षिणी क्योंकर जीवित रह सकती हूँ? हे प्राणनाथ! विरह-रूपी भयंकर बाज मुझ पक्षिणी के चतुर्दिक चक्कर काट रहा है। यह मुझको जीवित ही खाना चाहता है और मरने पर तो मुझे किसी प्रकार भी नहीं छोड़ेगा।

सारस-सारसी की अटूट जोड़ी की भाँति साथ निभाने की याचना करती हुई नागमती स्व-प्राणेश्वर को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे प्राणनाथ! मेरे शरीर का सम्पूर्ण रुधिर ढुलक गया है। मेरे शरीरांगों का मांस गल गया है जबकि मेरी हड्डियाँ सूखकर शंख जैसी निष्प्राण-नीरस हो गई हैं, और आपकी पत्नी सारसी की भाँति आपका नाम रटते-रटते मर रही है—आप इतनी कृपा तो कीजिए कि उस मरी हुई के पंखों को समेट लीजिए।

विशेष—'रकत............पंख' में व्यक्त मार्मिक विरह की जितनी भी प्रशंसा की जाए वही कम है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक।

लागेउ माँह परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़ काला।।१।।
पहल पहल तन रुई जो झाँपै। हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै।।२।।
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ।।३।।
एहि मास उपजै रस मूलू। तूँ सो भँवर मोर जोबन फूलू।।४।।
नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू। तेहि जल अंग लाग सर चीरू।।५।।
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।।६।।
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गियँ नहिं हार रही होइ डोरा।।७।।
तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा डोल।
तेहिं पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।।३०।।११।।

शब्दार्थ—जड़ काला=जाड़े का समय। पहल-पहल=शरीर का प्रत्येक पहलू। हहलि-हहलि=थरथराना, कंपकंपी छूटना। रस मूलू=वनस्पतियों में रस उत्पन्न होने का मूलकारण अर्थात् वसन्त। माँहुट=माहौट, माह की वर्षा। पटोरा=रेशमी वस्त्र। गियँ=गर्दन में। हरुई=हल्की। तिनुवर=तिनके के समान। झोल=राख।

व्याख्या—माघ का महीना लग गया है और पाला पड़ गया है। विरहावस्था में तो जाड़ा काल बन गया है। शरीर के प्रत्येक पहलू को रूई से ढकने का प्रयत्न करने पर हृदय और भी थर-थर काँपने लगता है। अथवा जाड़ा इतना अधिक है कि जब शुरू शुरू में रूई के वस्त्रों से भी शरीर को ढकने का प्रयत्न करते हैं तो वस्त्रों के ठंडे होने के कारण शरीर और भी अधिक काँपने लगता है। अरे प्रियतम! तुम मेरे समीप सूर्य बनकर आ तपिए—अर्थात् यदि आप मेरे समीप आ जाओगे तो मुझे सूर्य के समान सुखद प्रतीत होगे। तुम्हारे अभाव में मेरा यह माघ महीने का शीत नहीं छूट सकता। इसी माह में वनस्पतियों में रस का उद्रेक होता है अर्थात् उनमें रस पड़ना प्रारम्भ होता है। तुम ही वह भ्रमर हो जो मेरे यौवन-रूपी रस का उपभोग कर सकता है। मेरे नेत्रों से माघ महीने की वर्षा अर्थात् माहौट की भाँति वर्षा की-सी झड़ी लगी रहती है—अश्रुपात होता रहता है। आँसुओं से भीगे हुए ठंडे वस्त्र मुझको बाणों की तरह चुभते और रीसते रहते हैं। तुम्हारे अभाव में मुझ माहौट की वर्षा की बूँदें ओलों की भाँति कष्टकर प्रतीत होती हैं, जबकि विरह-रूपी पवन के झोंकों के कारण मेरी व्यथा और भी बढ़ जाती है—भाव यह है कि हवा के झोंकों के कारण ओले और भी अधिक जोर से लगा करते हैं, उसी प्रकार आपके विरह में मुझे माघ की वर्षा की बूँदें और भी अधिक संतापित करती हैं। अब मैं किसके लिए शृंगार करूँ और किसके हेतु स्वयं को रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित करूँ? मैं अपनी ग्रीवा में हार भी नहीं धारण कर सकती क्योंकि मेरी गर्दन सूख सूखकर डोरे जैसी हो गयी है। डा० अग्रवाल के अनुसार—"मेरे कंठ में हार नहीं रहा। मैं उस हार का डोरा मात्र हो गई हूँ।"

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

हे प्राणनाथ ! आपके विरह में सूख-सूखकर मैं अत्यधिक हल्की रह गई हूँ और मेरा शरीर तिनकों के ढेर की तुल्य हो गया है। इस पर भी विरह की आग मुझको जलाकर राख की भाँति उड़ाने को तत्पर है।

अलंकार—रूपक, उपमा।

(२१७)

फागुन पवन झँकोरे बहा। चौगुन सीउ जाइ किमि सहा।१।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।२।
तरिवर झरै झरै बन ढाखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा।३।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।४।
फाग करहि सब चाँचर जोरी। मोहि जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।५।
जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।६।
राहितु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउँ तोरें।७।
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरैं जहँ पाउ ॥३०।१२॥

शब्दार्थ—किमि=कैसे। पियर=पीला पात=पत्र। अनपत्त=पत्रहीन। बनाफति=वनस्पतियाँ। भा=हो गया है। जसि=जैसे। मकु=शायद।

व्याख्या—हे प्राणेश्वर फागुन के महीने में हवा झकझोरों के साथ प्रवाहित हो रही है, जिसमें शीत का प्रकोप चौगुना हो उठा है. उसे मैं अकेली और विरहिणी किस प्रकार सहन करूँ ? मेरी काया पीले पत्ते के तुल्य हो गयी है। विरह के कारण यह पीले पत्ते जैसा शरीर भी सुरक्षित नहीं रह पाएगा, क्योंकि विरह के झकझोरे उसे तोड़ डालेंगे अर्थात् मेरे प्राणांत होने की आशंका है। अब सभी वृक्षों के पत्ते झड़ने लगे हैं, ढाक-वनों के ढाकों के भी पत्ते झड़ रहे। जितनी भी लताएं हैं वे फल-फूल और पत्रों से शून्य हो गयी हैं। हाँ अब वनस्पतियों से नई कोंपलें फूटने लगी हैं मानो वे इन कोंपलों के द्वारा अपना उल्लास व्यक्त कर रही हैं। एक ओर तो लताएँ हैं जो अपने प्रियतम वसन्त से मिलकर नवोल्लास से पूर्ण हो चुकी हैं, दूसरी ओर विरहिणी मैं हूँ, जो आपके न लौटने के कारण और भी अधिक उदास हो उठी हूँ। मेरी सभी सखियाँ चाँचरि जोड़कर फाग मना रही हैं। सखियों को स्व-प्रियतमों के साथ रास-रंग मनाते देखकर मेरे अंतर्मन में विरह की आग इस प्रकार भड़क उठती है मानो उसमें होली जला दी गई हो। हे नाथ ! यदि आपको मेरा इस प्रकार विरह की आग में जलना अच्छा लगता (भाता) है, तो मैं सहर्ष इस प्रकार जलते हुए मर जाऊँगी और मुझको क्रोध नहीं आएगा। हे प्रियतम मैं तो अहर्निशि यही सोचती रहती हूँ कि तुम्हारे थाल जैसे हृदय से लग जाऊँ—अथवा मैं स्वयं को तेरे समक्ष उस प्रकार भोग रूप में प्रस्तुत करूँ, जैसे उपभोक्ता (खाने वाले को) थाल में सामग्री सज्जित करके प्रदान की जाती है।

हे प्राणेश्वर ! मेरी अभिलाषा तो यह है कि मैं आपकी वियोगाग्नि में अपने शरीर को जलाकर राख कर दूँ और पवन से निवेदन करूँ कि वह मुझको उड़ा ले जाए। ऐसा करने पर शायद मेरी राख उस मार्ग पर भी गिर पड़े जहाँ पर आप अपने चरण रखेंगे—भाव यह है कि मैं तो राख बन कर भी आपके चरण चूमना चाहती हूँ।

विशेष—चाँचरि उस शृंगार-प्रधान नृत्य-गान को कहते हैं जिसकी योजना विशेषतः फागुन के महीने में होती है।

अलंकार—(१) 'तन.........मोरा'—में उपमा।
(२) 'लागौं.........तोरें'—में उपमा।
(३) दोहे में अभिलाषा-संचारी की बड़ी ही मनोरम व्यंजना की गई है।

(२१८)

चैत बसंता होइ धमारी। मोहि लेखें संसार उजारी।१।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।२।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बन राता।३।
मौरें आँव फरैं अब लागे। अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे।४।
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरै सँवरि मालती।५।
मो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे।६।
भर जोबन एहु नारँग साखा। सोवा बिरह अब जाइ न राखा।७।
घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि ॥३०।१३॥

शब्दार्थ—धमारी=एक राग विशेष। लेखें=लिए। उजारी=वीरान। पंच सर=पाँच बाणों वाला अर्थात् कामदेव। रकत=रक्त। बूड़ि=डूब। राता=लाल। मौरें=बौर से लदे। फरैं=फलों से युक्त होना, फलना। सँवरि=याद करके। बनफती=वनस्पती। मधुकर=भ्रमर। घिरिनि परेवा=लोटन कबूतर। नारि=स्त्री। सोवा=तोता।

व्याख्या—अपने परदेशी प्रियतम को स्मरण करती हुई नागमती कहती है कि चैत्र का महीना आ गया है जिसमें चारों ओर धमार का आयोजन हो रहा है। चारों ओर उल्लास और आनन्द छाया हुआ है जबकि मेरे लिए तो यह संसार प्रियतम के अभाव में वीरान और सुनसान लग रहा है। जब कोयल पंचम स्वर में कुहुकती है तो उसकी बोली मेरे हृदय में कामदेव के बाणों की भाँति लगती है और मेरे रुधिर के आँसुओं से सम्पूर्ण वन ओत-प्रोत हो गया है—वसंत-ऋतु में कोयल का रुदन उपयुक्त नहीं लगता यहाँ यही अर्थ अधिक उचित है कि नागमती के रक्त पूर्ण आँसू सारे वन में ढुलकते रहते हैं, अन्यथा इन पंक्तियों का अधिकांश टीकाकारों ने यह अर्थ किया है—"कोयल अपने पंचम राग में विरह के कारण पिउ-पिउ रटती हुई काम के पंच बाण मारती है। और रक्त के आँसू रोकर सारे वन में गिराती

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है (डा० वा० शरण अग्रवाल) । "कोयल अपने पंचम स्वर में विरह के कारण पिउ-पिउ रटती हुई कामदेव के पंचवाण मारती है और रक्त के आँसू रोकर सारे वन में गिराती है ।" (राकेश) । इन दोनों ही अर्थों में कोयल द्वारा कामदेव के बाण मारने का अभिप्राय ग्रहण किया गया है, जबकि कवि का अभिव्यंग्यार्थ यह है कि कोयल की कुहुक सुनकर नागमती के हृदय पर काम-बाणों का प्रहार होता है—उसकी कामोत्तेजना बढ़ उठती है। उन रुधिरमय आँसुओं में भीगकर वृक्षों के पत्ते लाल हो उठे हैं, जबकि मंजीठ और टेसू उनमें भीगकर लाल हो गये हैं। हे सभागे प्राणेश्वर ! अब तो बौर आए हुए आम्रवृक्षों पर फल भी लगने लगे हैं, अतः आप भी मुझको याद करके घर क्यों नहीं लौट आते। वसुन्धरा की समस्त वनस्पतियाँ सहस्रों रूपों में पुष्पित हो उठी हैं और भ्रमर अपनी मालती की स्मृति करके उसके चक्कर काटने लगा है। हे नाथ ! आपके अभाव में मेरे लिए पुष्प भी कंटक तुल्य बन गए हैं और जब मैं पुष्पों को देखती हूँ तो मेरे शरीर में उसी प्रकार का कष्टानुभव होने लगता है, जैसा चाँटे (चपत) मारने पर हुआ करता है। मेरे इस नारंगी के वृक्ष रूपी शरीर में यौवन भर उठा है—नारंगी वृक्ष पर नारंगियाँ आने की भाँति मेरी शरीर-लता भी यौवन से परिपूर्ण है (स्तन-रूपी फल लगे हुए हैं) किन्तु अब विरह-रूपी तोता इसको कुतरे डाल रहा है और मुझसे उसकी रक्षा नहीं हो पा रही है—भाव यह है कि आप स्वयं ही किसी प्रकार इसकी रक्षा कीजिए।

हे प्रियतम ! आप मुझसे अचानक ही उस प्रकार आ मिलिए जैसे लोटन कबूतर अचानक ही आकाश से टूटकर अपनी प्रियतमा से आ मिलता है। तुम्हारी स्त्री (अथवा मेरी नाड़ी) अब विरह-रूपी पर-पुरुष के हाथों फँसी हुई है, इसको आपके अतिरिक्त और कौन छुड़ा पाएगा।

विशेष—(१) दोहे की अंतिम पंक्ति में नियोजित "नारि पराए हाथ है"—बड़ी ही अर्थगर्भित है। इसके द्वारा नागमती प्रकारान्तर से इस तथ्य का आश्रय लेती है कि शायद मेरा पति ईर्ष्या से ही शीघ्र लौट आए कि उसकी स्त्री पर कोई अन्य व्यक्ति अधिकार करना चाहता है।

(२) 'नारि' शब्द का श्लेष से 'नाड़ी'। अर्थ लेने पर इन पंक्तियों का भाव यह है कि अब मेरी नाड़ी छूटने वाली है, मेरी नाड़ी यमराज के अधिकार में है अतः आप शीघ्रातिशीघ्र आकर मेरी प्राण-रक्षा कीजिए।

अलंकार—उपमा, रूपक और श्लेष।

(२१६)

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चँदन भौ आगी ।१।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहँ रथ हाँका ।२।
जरत बजागिनी होउ पिय छाँहा। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ ।३।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी ।४।
लागिउँ जरे जरे जस भारू। बहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू ।५।

सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ विहराई ।६।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवँगरा मेरवहु एका ।७।
कँवल जो बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुं बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सीचहु आइ ॥३०।१४॥

शब्दार्थ—हिवंचल = हिमाचल। बजागि = वज्राग्नि। सौहँ = सम्मुख। बहुरि = दुबारा। बिहराई = बिखर जाना, फैल जाना। टेका = सहारा। दिस्टि-दवंगरा = दृष्टि रूपी दौंगरा अर्थात् हल्की वर्षा। मेरवहु = मिलाओ, प्रदान करो।

व्याख्या—कवि वर्णन करता है कि बैसाख का महीना आ जाने के कारण चारों ओर भयंकर ताप पड़ने लगा है। विरहिणी नागमती को चन्दन चीर और चोला आग जैसा दाहक प्रतीत होता है। वह सूर्य जो इससे पूर्व लंका की ओर चला गया था अब तपते हुए हिमाचल की ओर ताकने (देखने) लगा है और उसने मेरी विरह-रूपी वज्राग्नि की ओर अपने रथ को हाँक दिया है अथवा "सूर्य जलता हुआ हिमालय की ओर जाना चाहता था। (वहाँ तो वह नहीं गया) विरह की वज्राग्नि में तपती हुई मेरी ओर ही उसने रथ हाँक दिया है (मैं और तपने लगी)। हे प्रियतम ! मैं विरह-रूपी वज्राग्नि मे प्रज्वलित हो रही हूँ आप इससे मेरी रक्षा कीजिए—मुझे अपने सम्मिलन की छाया प्रदान कीजिए। मैं विरहाग्नि के अंगारों में झुलसी जा रही हूँ, इनसे आप मेरी रक्षा कीजिए अपने आगमन-रूपी जल से इन अंगारों को बुझाइए। आपकी पत्नी आपके दर्शनों से ही सुशीतल हो सकती है। हे प्राणनाथ ! शीघ्र ही आइए और मुझको अंगारों से फुलवाड़ी में परिणत कर दीजिए। आपके विरह की आग में मैं सदैव भाड़ की तरह जलती रहती हूँ और यदि आप मुझको फिर भी जलाएँगे तो भी आपका द्वार (बारू) न छोड़ूँगी। अथवा जिस प्रकार भाड़ की आग में भूने जाने पर जौ की बौहरिया (भुने हुए जौ को लोक शब्दावली में बौहरी कहते हैं) जिस प्रकार तीव्र ताप के कारण बार-बार उछल-उछल कर भी बालू में ही आ गिरती है—तप्त बालू को नहीं छोड़ती—उसी प्रकार मैं भी आपके द्वारा नाना प्रकार के कष्ट-संताप दिए जाने पर भी आपका साथ नहीं छोड़ सकती। हे प्रिय ! मेरा सरोवर-रूपी हृदय नित्यप्रति घटता जा रहा है—जैसे गर्मी से तालाब का जल सूखता जाता है उसी प्रकार विरह-ताप के कारण मेरे हृदय की भावनाएँ शुष्क-नीरस होती जा रही हैं। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि मेरा हृदय पूर्णतः सूखकर छिन्न-भिन्न हो उठा है जैसे सूखे हुए तालाब का तल (मिट्टी) अनेक खंडों में विभक्त हो जाती है। हे प्राणेश्वर ! मेरे फटते हुए हृदय को सहारा दीजिए और अपनी दृष्टि-रूपी दौंगरे से उसके छिन्न-भिन्न टुकड़ों को मिलाकर एक कर दीजिए।

हे नाथ ! वह कमल जो मेरे हृदय-रूपी मानसरोवर में खिला हुआ था—अर्थात् मेरा प्रफुल्लित हृदय—आपके दर्शन-रूपी जल के अभाव में सूख-सूखकर मिट्टी में मिल रहा है। उसकी सूखी हुई बेल (कमलनाल) अब भी पुनः हरी-भरी हो सकती है यदि आप उसको अपनी दृष्टि रूपी जल (वर्षा) से सींचने की अनुकम्पा करेंगे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विशेष—जायसी ने देशज शब्दों का बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में प्रयुक्त दवँगरा शब्द ऐसा ही है। वर्षा होने से पूर्व ग्रामों में तालाब पूर्णतः सूख जाते है और उनकी चिकनी मिट्टी सूखकर बड़े-बड़े टुकड़ों में विभक्त हो जाती है, जिनको लोक शब्दावली में 'कीलें' कहते हैं। जब हल्की-सी भी वर्षा होती है और तालाब में ढुलककर पानी भर जाता है तो ये टुकड़े मिलकर एक हो जाते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में नागमती भी स्वपति से दृष्टि-रूपी दोंगरे की याचना करती है जिससे उसके भग्न हुए हृदय के टुकड़े मिलकर एक हो जाएँ।

अलंकार—रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा और सांगरूपक।

(२२०)

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।१।
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा।२।
चारिहुँ पवन झँकोरै आगी। लंका डाहि पलंका लागी।३।
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी।४।
उठै आगि औ आवै आँधी। नंन न सूझ मरौं दुख बाँधी।५।
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा।६।
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागा। अबहूँ आउ आवत सुनि भागा।७।
परबत समुंद मेघ ससि दिनअर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिअै जरै जो अस पिय लागि॥३०।१५॥

शब्दार्थ—लुवारा=लुएँ। धिकै=दहकने लगे। गाजि=गरजकर। डाह=जलाना। हनिवंत=हनुमान। कालिंदी=यमुना। दिनअर=दिनकर, सूर्य।

व्याख्या—ज्येष्ठ के महीने में सारी पृथ्वी जलने लगी। आँधी के बवंडर उठने लगे और तीव्र ताप के कारण पहाड़ भी दहकने लगे। विरह हनुमान की भाँति गर्जना करते हुए जागृत हो गया और लोगों के (नागमती के) शरीरों को लंका की भाँति दग्ध करने लगा। चारों पवन अपने झोंकों से इस विरह की आग को विवर्धित करने लगे और उससे लंका ही नहीं अपितु पलंका तक जल उठी। इस विरहाग्नि में जलकर ही यमुना नदी का जल काला हो गया है। विरह की अग्नि धीमी-धीमी सुलगती आग की तरह अत्यधिक दुस्सह हुआ करती है। आग भड़क उठी है, जबकि अंधड़ भी चल रहा है। नागमती कहती है कि ऐसे में मुझको हाथों-हाथ नहीं दिखाई पड़ रहा है और इस दुःख में ग्रस्त होकर मैं मरी जा रही हूँ। विरहाग्नि में जलकर मैं अधमरी (अधजली) हो उठी हूँ और मेरे शरीर का सारा मांस सूख गया है। विरह-रूपी काग मेरे मांस को उसी प्रकार खाए डालता है, जैसे बुभिक्षित कौआ मांस पर झपटा करता है। विरह-रूपी कौवे ने मेरे माँस का भक्षण करने के पश्चात् अब मेरी हड्डियों को खाना आरम्भ कर दिया है। हे प्राणनाथ ! आप अब भी आकर मुझे जीवित बचा लीजिए क्योंकि यह आपके आने का नाम सुनते ही भाग खड़ा होगा।

नागमती की यह विरहाग्नि जो ज्येष्ठ माह की लुओं के रूप में प्रकट हो रही है, इसको पर्वत, समुद्र, बादल, चन्द्रमा और सूर्य में से कोई भी नहीं सहन कर सकता। कवि मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि सती-साध्वी नागमती की सराहना करनी चाहिए जो अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में इस विरहाग्नि को सहन कर रही है।

विशेष—'लंका डाहि पलंका'—इस पंक्ति का डा० वासुदेवशरण ने यह अर्थ दिया है कि "वह अग्नि लंका को जलाकर अब पलंग में लग गई'—जो इस दृष्टि से अनुपयुक्त है कि इस पंक्ति में जायसी ने 'लंका छोड़कर पलंका जा पहुँचने' की लोकोक्ति का प्रयोग किया है और इसका भाव है कि वह दूर-दूर तक फैली हुई है।

अलंकार—उपमा और रूपक।

(२२१)

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।१।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।२।
साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा।३।
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।४।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।५।
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाहाँ।६।
कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।७।
अबहूँ दिस्टि मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ॥३०।१६॥

शब्दार्थ—भै=हो गई। मो कहँ=मेरे लिए। छाजनि=कुष्ठ का एक रोग विशेष। तिनुवर=तिनके के समान। आगरि=अर्गला। बंध=भाई, बंधु। कंध=कंधा। साँठि नाहिं=गाँठ की पूँजी नष्ट हो गई है। टेक=आश्रय, सहारे की लकड़ी। थंभ—स्तंभ, खम्बा। थूनी=छप्पर को साधने के लिए लगायी जाने वाली लकड़ी जो दीवार में गाड़कर बँडेरा में फँसा दी जाती है (बँडेरा उस मोटी बल्ली को कहते हैं जिस पर दो पहलू छप्पर का मध्य भाग टिका रहता है)। दिस्टि=दृष्टि। मया=दया। मंदिल=मंदिर, भवन। नव कै=नया करके।

व्याख्या—नागमती अपने परदेशी प्रियतम को याद करते हुए कहती है कि प्राणेश्वर अब मेरे शरीरांगों में विरह जेठ असाढ़ की तरह तपने लगा है और यह तपन मेरे शरीर को छाजन (एक रोग विशेष) की तरह व्यथित करने लगा है। मेरा शरीर सूख सूखकर काँटा हो गया है और मैं खड़ी झूरती रहती हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह की खान (आगरी) ही मेरे सिर पर टूट पड़ी है। अब मेरी गाँठ में पूँजी नहीं है अर्थात् मेरा पति-रूपी धन मुझसे दूर है अतः मेरी बात कौन पूछेगा ? अपने प्रियतम के अभाव में मेरा शरीर मूंज की भाँति निस्सार हो गया है (मूंज के बान से चारपाई बुनी जाती है)। इस समय न तो कोई मेरा बंधु-बांधव है

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

35

और न ही कोई कंधा अर्थात् सहारा देने वाला है। मेरे मुंह से शब्द ही नहीं निकल पाते अतः मैं किसको रोकर अपनी बातें सुनाऊं। रो-रोकर मैं अत्यधिक दुर्बल हो गई हूँ और सभी प्रकार के आश्रयों से विहीन हूँ। जब पति-रूपी स्तंभ ही न हो तो जीवन-रूपी छप्पर थूनियों (छोटे-छोटे सहारों) पर कैसे टिका रह सकता है। मेरे नेत्रों से अविरल रूप में आँसुओं की वर्षा होती रहती है जो घर में ही टपकते रहते हैं। हे नाथ! आपके अभाव में न तो मेरे भवन पर छप्पर (छाजन) ही है और न छाया ही है। अब कौन है जो नये ठाठ सजाएगा अथवा "अरे, कौन कहाँ अब नया साज सजाएगा?" हे नाथ आपके अभाव में तो अब वस्त्र अथवा छप्पर कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता।

हे प्राणेश्वर! आप अब भी मेरी ओर अपनी कृपा दृष्टि कीजिए और उस स्थान को छोड़कर जहाँ पर आप किसी अन्य को आश्रय प्रदान कर रहे हैं, अर्थात् जिस स्त्री के जीवन-रूपी घर में आपने अपनी उपस्थिति-रूपी छान छायी हुई है, उसे छोड़कर मेरे समीप लौट आइए। आपकी पत्नी का यह शरीर-रूपी घर उजाड़ होता जा रहा है आप आकर इसको नये रूप में बसा लीजिए।

विशेष—इन पंक्तियों का डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने निम्नांकित अर्थ दिया है—

"अब जेठ-असाढ़ी तपने लगी है। मेरे लिए छाजन दुखदायी हो गई है। इसका तान या फैलाव सिमिटकर ढेर हो गया है। मैं उसके नीचे खड़ी सूखती हूँ। उसकी अर्गला निकल गई है और द्वार खोलने वाले के सिर पर आ गिरती है। इसमें सेंठे नहीं लगे पत्ते का तो कहना ही क्या? डोरी के न रह जाने (लपेट खुल जाने) से मूंज की तानें छूँछी हो गई हैं। बंद भी नहीं रहे और दीवार (कंध) भी कोई नहीं है। घुड़िया (बोंक) भी नहीं है। किससे रोकर व्यथा कहूँ? यह दुपलिया छान (दूबरि) अपने स्थान से सरक कर (ररि) टेक विहीन हो गई है। इसमें जो थंभ था वह नहीं रह गया। सहारे के लिए थूनी भी नहीं लग सकती। इसके ऊपर धुआँ निकलने के लिए जो धमाले या धूमनेत्र बने थे, वे पानी बरसने पर अब घर में ही टपकते हैं। हे कंत, तुम्हारे बिना अब छाजन छाँह नहीं करती। पूरे बाँस (कोरे) कहाँ है जिनसे छान का ठाट नया बनाया जाय? हे कंत, तुम्हारे बिना छाजन नहीं छाई जा सकती।

अब भी कृपा दृष्टि करो और विजन छोड़ो, घर में आओ। यह राज मंदिर उजाड़ हो रहा है, आकर नया बसाओ।"

अलंकार—उपमा, रूपक।

(२२२)

रोइ गँवाएउ बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा।१।
तिल तिल बरिस बरिस बरु जाई। पहर पहर जुग जुग न सिराई।२।

सो न आउ पिय रूप मुरारी। जासों पाव सोहाग सो नारी।३।
साँझ भए झुरि झुरि पँथ हेरा। कोनु सो घरी करै पिउ फेरा।४।
दहि कोइल भै कंत सनेहा। तोला माँस रहा नहिं देहा।५।
रकत न रहा बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्हि ढरा।६।
पाव लागि चेरी धनि हाहा। चूरा नेहु जोरु रे नाहा।७।
बरिस देवस धनि रोइ कै हारि परी चित झाँखि।
मानुस घर घर पूँछि कै पूँछै निसरी पाँखि ॥३०।१७॥

शब्दार्थ—बस=समान। हेरा=देखा। दहि=जलकर। पाव लागि=चरण-स्पर्श करने के लिए। चेरी=दासी। निसरी=निकलकर।

व्याख्या—कवि कहता है कि पीछे वर्णित रीति से विरहिणी नागमती ने रो-रोकर बारह महीने जैसे-तैसे व्यतीत किए। उसको एक-एक साँस में भी उसको हजारों प्रकार का दुःखानुभव होता था। उसके लिए एक-एक क्षण का समय काटना वर्षों की भाँति लम्बा हो गया था। इसी प्रकार एक-एक पहर की कालावधि युगों के समान लम्बी प्रतीत होती थी। फिर भी उसका कृष्ण की भाँति सुन्दर पति लौटकर नहीं आया था जिससे उसको सौभाग्यवती कहलाने का सुअवसर मिल सकता। संध्या होते ही वह बड़ी उत्सुकतापूर्वक पति के प्रत्यागमन के मार्ग की ओर देखने लगती थी और सोचती रहती थी कि न जाने वह शुभ घड़ी कब आयेगी जब उसके पति उसके समीप आएंगे। वह अपने प्रियतम के प्रेम में जलकर कोयल की भाँति काली पड़ गई थी और उसके शरीर में एक तोला तक मांस अवशिष्ट नहीं बचा था। उसके शरीर में रक्त भी शेष नहीं बचा था और विरह ने उसके शरीर को गला दिया था। उसके शरीर का रुधिर उसके आँसुओं के रूप में रत्ती-रत्ती की मात्रा तक शरीर से निकल गया था। बड़े ही कातर स्वर में वह कहने लगी कि हे प्राणेश्वर मैं हा! हा खाते हुए आपके चरणों में गिरती हूँ। आप अपने उस स्नेह-सम्बन्ध को पुनः जोड़ लीजिए जो इस समय आपने तोड़ रखा है।

कवि कहता है कि इस प्रकार एक वर्ष तक नाना प्रकार से विलाप करती हुई नागमती अंततः झख मारकर रह गई, अर्थात् उसकी अभिलाषा सफल नहीं हो पाई। उसने स्व-पति के विषय में लोगों से घर-घर जाकर, पूछताछ की और जब उनसे कुछ भी पता न चला तो वह हारकर वन के पक्षियों से पूछने के लिए राजमहल से निकल पड़ी।

विशेष—'हा! हा! खाना', लोक-जीवन में दीनता की चरमावस्था होती है।

अलंकार—श्लेष, पुनरुक्तिप्रकाश।

(२२३)

भई पुछारि लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिल्हवाँसू।१।
कै खर बान कसै पिय लागा। जौं घर आवै अबहूँ कागा।२।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौनु परेवा।३।
धौरी पंडुक कहु पिय ठाऊँ। जौ चित रोख न दोसर नाऊँ।४।
जाहि बया गहि पिय कँठ लवा। करे मेराउ सोई गौरवा।५।
कोइलि भई पुकारत रही। महरि पुकारि लेहु रे दही।६।
पियरि तिलौरि आव जलहंसा। बिरहा पठि हिएँ कटनंसा।७।
जेहि पंखी कहँ अढ़वौं कहि सो बिरह कै बात।
सोई पंखि जाइ डहि तरिवर होइ निपात ॥३०।१८॥

शब्दार्थ—पुछारि=मोरनी, पूछने वाली। चिल्हवांसू=चिड़ियाँ फँसाने का एक फंदा। सवति=सौत। खर=तीव्र। परेवा=पक्षी। रोख=रोष। दोसर नाऊँ=किसी दूसरे का नाम लेना। गहि=पकड़कर। मेराउ=मिला। महरि=ग्वालिन नामक चिड़िया। तिलौरि=तेलिया मैना। कटनंसा=नीलकंठ, काटना और नाश करना। नियर=समीप। अढ़वौं=आज्ञा देना, काम में नियुक्त करना। डहि=जल। निपात=पत्रहीन।

व्याख्या—स्वपति की खोज में घर से निकली नागमती का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अब वह विरह में व्याकुल होकर मोरनी बनकर वन-बन में मारी मारी फिर रही थी। उसको उसकी सौत (पद्मावती) ने चिड़िया फँसाने के जाल रूपी विरह में फँसा रखा था। विरह की तीव्रता उसको जलाए डालती थी, जो उसके हृदय में तीव्र बाण की भाँति चुभ रहा था। कौवे को बैठा देखकर वह उससे कह उठती थी कि अरे कौवे! यदि आज मेरे प्रियतम घर लौट रहे हों तो तू उड़ जा। मैं लम्बे समय से हारिल बनी हुई स्व-प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हूँ और अब किस पक्षी को संदेश देकर अपने प्राणेश्वर के समीप प्रेषित करूँ। नागमती धौरी और पंडुक चिड़ियों से कहने लगी कि अरी तुम्हीं मुझको प्रियतम का स्थान बता दो। यदि मेरे प्रियतम अपने हृदय में मुझसे रुष्ट हुए हैं तो फिर मेरे लिए दूसरा स्थान ही कौन-सा है? हे बया पक्षी! तू ही जाकर मुझको कंठ से लगाने वाले प्रियतम को लिवाला। मेरे लिए तो उसी पक्षी का गौरवपूर्ण स्थान रहेगा जो मेरा स्व-प्रियतम से सम्मिलन कराएगा। मैं तो अपने प्रियतम को कोयल बनकर पुकारती हूँ। कवि कहता है कि वह नारी ग्वालिन नामक चिड़िया की तरह दही लो, दही लो चिल्लाती फिरती थी अथवा नागमती यह कहते हुए कि मैं विरहाग्नि में जली जा रही हूँ, दया के लिए (महरि) पुकारती फिर रही थी। बिना किसी ओर ध्यान दिए, एक वृक्ष पर तिलौरी, मैना पक्षी और सरोवर में हंस क्रीड़ा करते रहे। नागमती के हृदय में तो अब विरह-रूपी नीलकंठ का निवास हो गया है जो बराबर उसके शरीर को कचोटता रहता है।

कवि कहता है कि विरह-दग्धा नागमती जिस किसी भी वृक्ष के समीप पहुँचकर उस पर बैठे हुए पक्षियों को अपनी विरह-व्यथा सुनाने का प्रयास करती थी,

उसकी विरहाग्नि की लपटों से वही पक्षी जल जाता था और वृक्ष पत्रहीन हो जाते थे।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों के डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दो अर्थ दिए हैं उनमें से एक इस प्रकार है·

"पूछने वाली बनकर उसने वनवास लिया कि पक्षियों से प्रिय का समाचार पूछूँगी पर कोई पक्षी वहाँ पहुँचता ही नहीं क्योंकि, वैरिन सौत ने पक्षियों को फँसाने के लिए चिल्हवाँस लगा रखे हैं। इतने पर भी कोई कौवा यदि घर पहुँच जाता है, तो प्रियतम (भी उसी षड्यंत्र में मिलकर) तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर उसकी ओर खींचने लगता है। अथवा पहली दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार होगा—"पूछने वाली बनकर उसने वनवास लिया। वैरिन सौत ने पति को छल फंदे में फँसा रक्खा है (या अपने चुहल में फँसा रक्खा है)। प्रियतम ने पहले अपनी कंचन काया को तपाकर उत्तम वान लिया और अब उसको कसौटी पर कस कर देख रहा है। अब भी वह घर लौट आए तो क्या बिगड़ा ?"

(३) उस मार्ग पर चलती-चलती मैं थक गई हूँ। अब संदेशा पाने के लिए वहाँ किस पक्षी (या संदेश वाहक) को भेजूँ।

(४) श्वेत और पीली पड़ी हुई अब मेरे लिए प्रिय का ही ठांव है। यद्यपि चित्त में रोष है, फिर भी दूसरा नाम नहीं जानती।

(५) जो जाकर आए, प्रिय को कंठ पकड़कर ले आए और मुझसे मिला दे, वही गौरवशाली (बड़े पद वाला) है।

(६) आम की गुठली की कोइली (पपैया) जैसी बनकर मैं पुकारती रही। मेरी सास जी को बुलाओ। हाय मैं जली। पियरी और तिलोरी आती है, तो मेरा जी (हंस) जलता है। विरह हृदय में घुसकर क्यों मुझे काट और मार रहा है?

जायसी की श्लेषार्थक शब्दावली द्वारा विविध वस्तुओं का नाम गिनाने की शैली इन पंक्तियों में भी है।

अलंकार—मुद्रा, श्लेष और अतिशयोक्ति।

(२२४)

कुहुकि कुहुकि जसि कोइलि रोई। रकत आँसु घुँघची बन बोई।१।
पै करमुखी नैन तन राती। को सिराव बिरहा दुख ताती।२।
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघचिन्ह कै रासी।३।
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। कुंजा गुंजि करहिं पिउ पिऊ।४।
तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते।५।
राते बिंब भए तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ।६।
देखिअ जहाँ सोइ होइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता।७।
ना पावस ओहि देसरें ना हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा केहि सुनि आवहि कंत ॥३०।१९॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

37

भ्रमर गीत-सार

श्रीकृष्ण का वचन उद्धव-प्रति

राग सारंग

पहिले करि परनाम नंद सों समाचार सब दीजो।
और वहाँ वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो॥
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेंटियो।
सुख-संदेस सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो॥
मंत्री इक बन बसत हमारो ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान है मेरे हूतो ताही माथ नवाइयो॥
सुन्दर परम किसोर बयक्रम चंचल नयन बिसाल।
कर मुरली सिर मोर पंख पीताम्बर उर बनमाल॥
जनि डरियो तुम सघन बनन में ब्रजदेवी रखवार।
वृन्दावन सो बसत निरन्तर कबहूँ न होत नियार॥
उद्धव प्रति सब कही स्यामजू अपने मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रजरीति॥ 1 ॥

शब्दार्थ—मेरे हुतो = मेरी ओर से। मंत्री = यहाँ राधा से अभिप्राय है। सचु = सुख। बयक्रम = अवस्था। नियार = पृथक्, अलग। यहै सकल ब्रजरीति = श्रीकृष्ण ने बताया कि यही सब ब्रज की रीतियाँ (व्यवहार) हैं।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को छोड़कर मथुरा के राज-वैभव और वहाँ के तड़क-भड़क में थोड़े समय के लिए फँसे अवश्य लेकिन ब्रजवासियों की मधुर स्मृतियाँ रह-रह कर उन्हें कोंचती रहीं। इधर उनके परम मित्र उद्धव अपने ज्ञान-गर्व में चूर हैं और प्रेम और भक्ति की महत्ता को नगण्य समझते हैं। श्रीकृष्ण ब्रजवासियों का समाचार ज्ञात करने के बहाने उद्धव के हृदय में गोपियों की प्रेम-भक्ति को उत्पन्न करना चाहते हैं। अत: उद्धव के ज्ञान-स्फीत व्यक्तित्व को विगलित करने के उद्देश्य से उन्हें ब्रज भेज रहे हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति कृष्ण का कथन) हे उद्धव, तुम ब्रज में पहुँचकर सबसे पहले नन्दजी को प्रणाम करना, क्योंकि वे हमारे पूज्य पिता हैं और पिता के प्रति पूज्य दृष्टि रहनी चाहिए। पुन: बड़ों का सम्मान भारतीय मर्यादा और शिष्टाचार का अभिन्न अंग है। प्रणाम करने के पश्चात् उन्हें यहाँ का सब समाचार बता देना; इसलिए भी यह बताना आवश्यक है कि जब से मैं ब्रजमंडल से यहाँ आया हूँ उन्हें हमारा समाचार नहीं मिला—वे हमारा समाचार जानने के लिए व्याकुल मना हैं। इसके पश्चात् आप बरसाने जाना और वृषभानु गोप की (राधा के पिता) का भी समाचार ज्ञात करना (राधा के कारण वृषभानु से भी कृष्ण का अटूट सम्बन्ध है)। यही

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

नहीं, सुदामा इत्यादि मित्रों से मेरी ओर से भेंटना। बहुत दिनों से वियुक्त होने के कारण वे सब मेरे बिना दुखी होंगे। इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण की अपने मित्रों के प्रति सख्यानुभूति की मार्मिक व्यंजना व्यक्त हुई है।.इसके पश्चात् उन्होंने गोपियों के प्रति अपना संदेश प्रेषित करते हुए कहा कि हमारे कुशल-क्षेम का संदेश बताकर उनके कष्ट को दूर करना।

वहाँ जाने पर तुम्हें वन में हमारे एक मंत्री से भेंट होगी और उसे देखने पर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा। और तुम बहुत सजगतापूर्वक उसे हमारी ओर से नमस्कार करना। सजगतापूर्वक इसलिए कह रहा हूँ कि वह मंत्री तुम्हें हमारी वेशभूषा में मिलेगा और तुम्हें एक बार उसे देखने पर भ्रम होगा। अतः भ्रमरहित निश्चल मन से उसे प्रेमाभिवादन करना। वह मंत्री परम सुंदर है। कवि का अभिप्राय यह कि वह परम सुंदरी राधा है जो वियोग में कृष्णमय हो रही है। किशोरावस्था को वह प्राप्त है और उसके विशाल नेत्र अतिशय चंचल हैं। तात्पर्य यह है कि कृष्ण वेश में रहने पर भी वह अपने चंचल नेत्रों और अनुपम सौंदर्य के कारण अपने को छिपा नहीं पाएगी—वह आसानी से पकड़ में आ जाएगी। उसके पीताम्बर, मोरपंख, वक्षस्थल की वनमाला और मुरली के कारण भयभीत मत होना; क्योंकि सघन वन में वनदेवी वहाँ तुम्हारी रक्षा करेगी। वहाँ रक्षिका के रूप में सदैव वनदेवी विद्यमान रहती है। वह वृन्दावन में निरन्तर निवास करती है और वहाँ से कभी पृथक् नहीं हो पाती। व्यंजना यह है कि ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति के रूप में राधा ब्रह्म में तन्मय रहती है और उस वन को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती। इस प्रकार उद्धव से श्रीकृष्ण ने अपने मन की समस्त प्रीति (प्रेम स्वरूप की उदातता) का उल्लेख सहज रूप में किया। वास्तव में मित्र से ही अपने मन के सुख-दुख को कहा भी जा सकता है इस कारण श्रीकृष्ण ने अपने मन के सहज प्रेम भाव की व्यंजना उद्धव के समक्ष निस्संकोच भाव से की। सूरदास के शब्दों में उन्होंने कृपापूर्वक इस प्रकार की ब्रजरीतियों (ब्रज में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए) को समझाकर उद्धव को ब्रज भेज दिया। कृपा करने का आशय यह है कि भगवान की भक्ति और प्रेम भक्त को ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है—यहाँ उद्धव का यह परम भाग्य है कि भगवान श्रीकृष्ण उनके शुष्क और ज्ञान-दर्प मंडित मानस में प्रेम और भक्ति का प्रादुर्भाव करना चाहते हैं।

टिप्पणी—

(1) इसमें प्रेममूलक भक्तिभाव की व्यंजना की प्रधानता है।

(2) मंत्री शब्द के प्रयोग द्वारा प्रेम-भाव की गोपन चेष्टा का निरूपण।

(3) वात्सल्य, सख्य और रति भाव की मार्मिक व्यंजना का प्रयास।

(4) कृष्ण के दो रूपों—रस एवं ऐश्वर्य में रस रूप का प्राधान्य।

(5) कर मुरली सिरमोर पंख . . . . . में वस्तु से भ्रांतिमान अलंकार की व्यंजना।

(6) कृष्ण और राधा के अनन्य भाव की अभिव्यक्ति सूर के अन्य पदों में भी हुई है जहाँ राधा कृष्ण के रूप को धारण किए रहती थी—

ब्रज में एक अचंभौ देख्यो।
मोर मुकुट पीताम्बर धारे, तुम गाइनि सँग देखें।

x x x x

(7) हाव की दृष्टि से सातवीं और आठवीं पंक्ति में लीला हाव है।

राग सोरठ

कहियो नंद कठोर भए।
हम दोउ बीरै डारि पर घरै मानो थाती सौंपि गए॥
तनक तनक तैं पालि बड़े किये बहुतै सुख दिखराए।
गोचारन को चलत हमारे पाछै कोसक धाए॥
ये बसुदेव देवकी हमसौं कहत आपने जाए।
बहुरि बिधाता जसुमति जू के हमहिं न गोद खिलाए॥
कौन काज यह राज, नगर को सब सुख सो सुख पाए।
सूरदास ब्रज समाधान कर आजु काल्हि हम आए॥ 2 ॥

शब्दार्थ—बीरै = भाई (बलराम और कृष्ण से अभिप्राय है)। डारि पर घरै= दूसरे के घर। (वसुदेव और देवकी के गृह) छोड़ कर। थाती= दूसरे की अमानत। कोसक = एक कोस (दो मील)। धाए = चल पड़ते थे। जाए = पुत्र। हमहिं न गोद खिलाए = यशोदा की गोद में हमें खिलाने का अवसर ब्रह्मा ने नहीं दिया। फिर से भाग्य ने हमें यशोदा की गोद में नहीं खिलाया। यहाँ 'खिलाए' शब्द प्रेरणार्थ क्रिया के रूप में प्रयुक्त है। समाधान = धैर्य, सान्त्वना।

प्रसंग—नन्द के प्रति कृष्ण के उपालम्भ भाव की अभिव्यक्ति के साथ ही इसमें ब्रज की मधुर स्मृतियों की मार्मिक अवतारणा हुई है।

व्याख्या—(कृष्ण उद्धव से कह रहे हैं)। हे उद्धव ! नन्द से जाकर स्पष्टरूपेण कह देना कि हम दोनों भाइयों को दूसरे के घर में (यहाँ वसुदेव और देवकी के आवास से तात्पर्य है) छोड़ कर ऐसे चले आए मानो वे थाती (धरोहर) सौंप कर लौटे हों। तात्पर्य यह है कि वे इतने कठोर हो गये हैं कि हम लोगों के प्रति उनका आत्मीय भाव मानों नष्ट हो गया हो। पहले तो जब हम लोग छोटे-छोटे थे तो उन्होंने बड़े लाड़-प्यार के साथ पाल-पोष कर बड़ा किया और बहुत सुख दिया। उनके वात्सल्य और स्नेह की यही सीमा नहीं थी बल्कि जब हम गोचारण के लिए निकलते थे तो वे हमारे पीछे-पीछे कोसों चल पड़ते थे लेकिन अब तो उनकी निष्ठुरता कही नहीं जा सकती। तात्पर्य यह है कि अब उनके बचपन के वात्सल्य का स्रोत सूख गया! अब तो ये वसुदेव और देवकी मुझे अपना पुत्र बताते हैं। भला, मैं उन्हें क्या जानूँ—मैं तो आपका ही पुत्र कहलाता था। जब मैं पहले और अब की स्थिति का यह वैषम्य देखता हूँ तो मेरी मनोव्यथा अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। जब से मैं मथुरा आया हूँ विधाता ने मुझे यशोदा की गोद में खिलवाने का अवसर नहीं प्रदान किया। तात्पर्य यह है कि पुनः यशोदा की गोद में खेलने का सुयोग हमें नहीं मिला। स्पष्ट व्यंजना यह होगी कि माता यशोदा के मधुर प्यार से वे निरन्तर वंचित होते गये। यद्यपि मथुरा में उन्हें सभी प्रकार के राज्य और नगर के सुख प्राप्त हुए, लेकिन ब्रज के उस सहज और स्नेह-सिक्त व्यवहार के समक्ष इस कृत्रिम और अस्वाभाविक सुख से क्या प्रयोजन (लाभ) ?

सूरदास के शब्दों में श्रीकृष्ण पुनः अपनी मानसिक दशा का चित्रांकन करते हुए कह रहे हैं कि हम बहुत शीघ्र (अत्यल्प काल में) आवेंगे। उद्धव जी, तुम नन्द जी को पूरी तरह सान्त्वना दे देना कि अब हम मथुरा में बहुत नहीं रुकेंगे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) इसमें 'स्मृति' एवं 'चिन्ता' संचारी भाव की प्रधानता है।

(2) मानों थाती सौंपि गए में उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग हुआ है।

(3) तनक-तनक तैं पालि . . . . में वात्सल्य भाव की व्यंजना का उत्कर्ष विचारणीय है।

(4) 'कौन काज' . . . . में नागर संस्कृति की तुलना में ब्रज की ग्राम्य संस्कृति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः सूर काव्य का अधिकांश ब्रज की ग्राम्य संस्कृति की चित्रशाला का अन्यतम नमूना है।

(5) 'बहुरि विधाता' . . . . में मातृ प्रेम की सजीव व्यंजना हुई है।

(6) समानान्तर भाव की दृष्टि से रत्नाकर की ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं—

नन्द औ जसोदा के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़ भरे लालन की लालच लगावती।

राग विलावल

तबहिं उपँगसुत आय गए।
सखा सखा कछु अन्तर नाहीं, भरि-भरि अंक लए॥
अति सुन्दर तन स्याम सरीखो देखत हरि-पछताने।
ऐसे को वैसी बुधि होती ब्रज पठवैं तव आने॥
या आगे रस-काव्य प्रकासे, जोग वचन प्रगटावे।
सूर ज्ञान दृढ़ याके हिरदय, जुवतिन जोग सिखावे॥ 3 ॥

शब्दार्थ—उपँगसुत = उद्धव जी। भरि-भरि अंक लए = परस्पर छाती से लिपट कर मिले। सरीखे = समान, सदृश। वैसी बुधि होती = आकर्षक शरीर की भाँति यदि प्रेम और भक्ति की बुद्धि (भाव) मिली होती। आने = ले आने के लिए; वैसी बुद्धि ग्रहण करने हेतु। प्रकासे = चर्चा करने पर। याके हिरदय = इसके हृदय में।

सन्दर्भ—गोपियों की स्मृति में तन्मय श्रीकृष्ण उनका समाचार प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी को वहाँ भेजना चाहते थे, उसी समय उद्धव जी पहुँच गये। सूर ने इसमें श्रीकृष्ण और उद्धव के व्यक्तित्व की विशेषताओं का बड़ा ही सजीव और यथार्थ चित्रांकन किया है।

व्याख्या—ब्रजवासियों की स्मृति में तन्मय श्रीकृष्ण किसी को ब्रजमंडल भेजना चाहते थे, उसी समय उनके मित्र उद्धव जी आ गये। दोनों मित्रों में कोई अन्तर नहीं है—दोनों निष्कपट भाव से गले लगकर परस्पर मिले और कृष्ण के सदृश उद्धव का शरीर भी अत्यंत सुन्दर अर्थात् वे भी श्यामवर्ण और आकर्षक हैं, लेकिन दोनों में अन्तर की रेखा यदि खींची जा सकती है तो यही कि कृष्ण का हृदय जहाँ गोपियों की प्रेम-भक्ति से परिपूर्ण है, वहीं उद्धव जी का हृदय इससे काफी दूर है—प्रेम और भक्ति को स्पर्श तक नहीं कर सके हैं—इसे देखकर श्रीकृष्ण पश्चाताप करने लगे और वे कहने लगे कि यदि आकर्षक और लावण्यमय शरीर के साथ ही इन्हें प्रेम और भक्तिमय हृदय भी मिला होता तो क्या ही अच्छा होता। अब उत्तम यही होगा कि प्रेम और भक्ति का जो स्रोत इनके मानस में सूख गया है उसे प्राप्त करने के लिए इन्हें ब्रज भेज दिया जाय। वहाँ जाने पर ही इनके आकर्षक शरीर के अनुसार आकर्षक हृदय भी हो जाएगा।

यह तो ऐसा शुष्क मानस प्राणी है कि यदि इसके समक्ष किसी रसात्मक काव्य की चर्चा करते हैं तो यह अपने शुष्क दर्शन और योग-शास्त्र की जटिलताओं का विश्लेषण करने लगता है—दर्शन और योग की गहराई में ही उत्तरोत्तर प्रवेश करने लगता है। इसके हृदय में ज्ञान की ऐसी दृढ़ता है कि यदि इसे गोपियों के पास भेज दिया जाय तो यह उन्हें भी ज्ञान की ही शिक्षा देगा। व्यंजना यह है कि प्रेम और भक्ति के महत्व से अपरिचित उद्धव को ब्रज भेजना ही उत्तम होगा, जहाँ पहुँचने पर ही इनके ज्ञान विषयक गर्व का पतन अवश्यम्भावी है।

टिप्पणी—

(1) 'सखा-सखा कछु अन्तर नाहीं में प्रगाढ़ मैत्री भाव की सुंदर व्यंजना हुई है।

(2) इसमें गोपियों की भक्ति और उनके उदात्त प्रेम स्वरूप की मधुर अभिव्यक्ति हुई है।

(3) मध्यकाल में ज्ञान और भक्तिमार्ग के अनुयायियों में कितना मतभेद था, इसकी स्पष्ट झलक इस रचना से मिल जाती है।

(4) ज्ञान की दार्शनिक पृष्ठभूमि और भक्ति की भावात्मक एवं प्रेममूलक पृष्ठभूमि का संकेत भ्रमरगीत का अभीष्ट कथ्य है।

राग विलावल

हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपँगसुत मोहिं न बिसरत ब्रजवासी सुखदाई॥
यह चित होत जाउँ मैं अबहीं, यहाँ नहीं मन लागत।
गोप सुग्वाल गाय बन चारत अति दुख पायो त्यागत॥
कहँ माखन-चोरी ? कहँ जसुमति 'पूत जेंव' करि प्रेम।
सूर स्याम के वचन सहित सुनि व्यापत आपन नेम॥ 4 ॥

शब्दार्थ—प्रीति चलाई = ब्रजवासियों के प्रेम की चर्चा की। पूत जेंव = हे पुत्र, भोजन करो। सहित = प्रेमपूर्वक। व्यापत आपन नेम = उद्धव जी अपने योग के विधि-विधान और नियमों में ही डूब रहे हैं।

सन्दर्भ—ब्रज-स्मृति में तन्मय श्रीकृष्ण ने उद्धव जी के आने पर गोकुलवासियों के प्रेम की सरस चर्चा चला दी। उद्धव जी पर उनके प्रेम-प्रसंग का थोड़ा भी प्रभाव नहीं पड़ा और वे अपने ज्ञान और योग-शास्त्र की बातों में ही डूबे रहे।

व्याख्या—अपने मित्र ज्ञानी उद्धव के आने पर श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों की प्रीति का प्रसंग छेड़ दिया। इसी क्रम में उन्होंने कहा, हे उद्धव जी, मुझे सुख देने वाले वे समस्त ब्रजवासी भूलते नहीं जिन्होंने अतीत में हमारे जीवन में प्रेम और सहृदयता की धारा प्रवाहित की। अब तो यही मन में आता है कि मैं वहाँ इसी समय चला जाऊँ, क्योंकि उनके बिना हमारा मन यहाँ नहीं लगता। ब्रजमंडल में रहते समय मैं उन गोप-ग्वालों के साथ वन में गाय चराने जाया करता था और मुझे वन्य-जीवन की ऐसी मधुर अनुभूति से परम सुख मिलता था तब इसी से उन ग्वाल-गोपों का साथ छोड़ते समय मुझे अपार पीड़ा हुई थी। अब तो ऐसा सुख स्वप्न हो गया। अब माखनचोरी का आनन्द यहाँ कहाँ ? और वह सुख भी यहाँ कहाँ प्राप्त है जब यशोदा जी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बड़े प्रेम और वात्सल्य भाव के साथ कहा करती थीं कि 'हे पुत्र भोजन कर लो।' श्रीकृष्ण की ऐसी मधुर और प्रेमयुक्त वाणी को सुनकर भी उद्धव के मन पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और वे सूर के शब्दों में अपने योग और ज्ञान की विविध रीतियों और विधि-विधान में ही डूबे रहे।

टिप्पणी—

(1) इस प्रकार के भाव का एक अन्य पद भी सूर सागर में मिला है, यथा

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुन्दर कगरी और द्रुमन की छाँहीं।

x x x x

(2) कहँ माखन चोरी कह जसुमति 'पूतजेंव' में बाल्यावस्था की मधुर स्मृति और मातृ प्रेम की व्यंजना का एक सजीव चित्र है।

(3) इसमें परिस्थितियों की विषमता की मार्मिक अवतारणा हुई है।

(4) गोचारण लीला की सहज भावानुभूति भी इस पद में ध्वनित है।

(5) ऐसे भाव के कई चित्र रत्नाकर जी के उद्धवशतक में भी विद्यमान है—

ऊधौ ब्रजवासिनि दिवैया सुखरासिनि को नित प्रति हमकों बुलावन को आवती।

राग रामकली

जदुपति लख्यो तेहि मुसकात।
कहत हम मन रही जोई सोइ भई यह बात॥
बचन परगट करन लागे प्रेम-कथा चलाय।
सुनहु उद्धव मोहिं ब्रज की सुधि नहीं बिसराय॥
रैनि सोवत, चलत, जागत लगत नहिं मन आन।
नंद जसुमति नारि नर, ब्रज जहाँ मेरो प्रान॥
कहत हरि-सुनि उपँगसुत, यह कहत हौं रसरीति।
सूर चित तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति॥ 5॥

शब्दार्थ—लगत नहिं मन आन = मन अन्य विषयों में नहीं लगता। सुनि = सुनो। रसरीति = प्रेमरीति।

सन्दर्भ—उद्धव जी ने इस पद में श्रीकृष्ण के हृदय में जो गोपियों और ब्रजवासियों के प्रेम की धारा बह रही थी उसकी खिल्ली उड़ायी है। जब श्रीकृष्ण ब्रज के प्रति अपना अनन्य अनुराग व्यक्त करने लगे तो इसे सुनकर उद्धव जी मुस्कराने लगे। उनकी मुस्कराहट को श्रीकृष्ण ने भाँप लिया।

व्याख्या—श्रीकृष्ण ने देखा कि उनकी बातों पर उद्धव जी मुस्करा रहे हैं—इस मुस्कराहट में वास्तविक व्यंजना यह है कि श्रीकृष्ण पारब्रह्म होकर भी ब्रजवासियों के झूठे और लौकिक प्रेम में विह्वल हो रहे हैं। उद्धव की बातों पर विचार करते हुए श्रीकृष्ण ने मन ही मन यह कहा कि जो मैं सोच रहा था वही बात आज सत्य हो गयी, अर्थात् सोच यह रहा था कि ब्रजवासियों के प्रेम-प्रसंग को तो प्रस्तुत कर रहा हूँ, किन्तु इसका प्रभाव इस नीरस और ज्ञानी पुरुष पर कुछ

भी नहीं पड़ेगा। पुनः वाणी द्वारा वे प्रेम की चर्चा करते हुए अपनी मनःस्थिति को व्यक्त करने लगे और कहने लगे, 'हे उद्धव मुझे ब्रज की बातें भूलती नहीं और इनके कारण रात में सोते समय (सुप्तावस्था में) चलते समय और जागृत अवस्था में मेरा मन अन्य विषयों में नहीं लगता। वस्तुतः मेरा प्राण तो वहीं रहता है जहाँ नंद जी, यशोदा जी और ब्रज के नर-नारी रहते हैं—दूसरे शब्दों में मेरे मन में इनके प्रेम के अतिरिक्त अन्य विषयों में किसी भी प्रकार की रुझान या रुचि नहीं रहती मात्र इन्हीं में तन्मय रहता हूँ। इसके अनन्तर वे कहने लगे, हे उद्धव, मन लगाकर सुनो मैं तुमसे रस रीति (प्रेमतत्व) की चर्चा कर रहा हूँ—सूरदास के शब्दों में वह रसरीति यह है कि मेरे चित से राधिका का प्रेम किसी भी प्रकार से दूर नहीं हो रहा है—मैं उस प्रेम को भूलना चाहता हूँ, किन्तु वह कदापि भूलता नहीं (आशय यह है कि अन्यों के प्रेम को भले ही कुछ क्षणों को भूल जाऊँ लेकिन प्रेम-मूर्ति और ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति राधा को कैसे भुलाया जा सकता है)।

टिप्पणी—

(1) इसमें वात्सल्यमूलक रति के साथ ही अन्तिम पंक्ति में दाम्पत्य रति की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

(2) स्मृति संचारी की प्रधानता है।

(3) 'मुस्कात' में विशिष्ट व्यंजना का प्रयोग।

(4) रस रीति में प्रेमतत्व की महिमा का संकेत है।

राग सारंग

सखा ! सुनो मेरी इक बात।
वह लतागन संग गोपिन सुधि करत पछितात॥
कहाँ वह वृषभानु तनया परम सुंदर गात।
सुरति आए रासरस की अधिक जिय अकुलात।
सदा हित यह रहत नाहीं सकल मिथ्या-जात।
सूर प्रभु यह सुनौ मोसों एक ही सों नात॥ 6॥

शब्दार्थ—परम सुंदर गात = अतिशय सुंदर शरीर वाली (सुंदरी)। सुरति आए = स्मरण होने पर। रास रस = रास का आनन्द। हित = प्रेम (यह प्रेम क्षणभंगुर है)। सकल मिथ्या जात = सभी चीजें भ्रमजनित हैं। एक ही सों नात = एक मात्र पारब्रह्म से ही सच्चा नाता होता है (यह कथन कृष्ण-प्रति उद्धव का है)।

संदर्भ—इसमें उद्धव जी ने श्रीकृष्ण द्वारा कथित ब्रजवासियों की प्रेम महिमा का खण्डन किया है और यह स्पष्ट रूपेण घोषित किया है कि एक मात्र पारब्रह्म का ही सच्चा सम्बन्ध होता है, अन्य सभी चीजें भ्रम से उत्पन्न हैं।

व्याख्या—(श्रीकृष्ण का उद्धव-प्रति कथन) हे मित्र, मेरी एक बात सुनिये, (एक बात से आशय यह है कि अनर्गल और झूठी बातों को छोड़कर एक तथ्य की बात बतायी जा रही है—वह तथ्य है प्रेमोत्कर्ष का स्वरूप।) जब मैं कुंज की लताओं और उन लताओं में गोपियों के संग की गयी सरस क्रीड़ा का स्मरण करता हूँ तो पछताना पड़ता है—यद्यपि मथुरा में सभी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भौतिक सुख उपलब्ध हैं, परन्तु गोपियों के साथ क्रीड़ा करने में जो सुख मिलता था वह यहाँ कहाँ—इस अभाव को याद करके पश्चाताप करना पड़ता है। अब यहाँ उस सुंदरी राधा का दर्शन कहाँ और जब रासमण्डल की याद आती है—जिसमें राधा और गोपियों के साथ नृत्य में भाव-विभोर हो जाता था तो मेरा मन अति व्याकुल हो जाता है। श्रीकृष्ण की इस व्याकुलता भरी बातों को सुनकर उद्धव ने कहा—हे कृष्ण, यह लौकिक प्रेम सदैव नहीं रहता, यह क्षणभंगुर और असत्य है—और ये सब मिथ्या (भ्रम) जनित है। तात्पर्य यह है कि संसार से सम्बन्धित सभी बातें झूठी और भ्रमात्मक हैं। हे प्रभु, मुझसे यह सत्य-सत्य जान लो कि एक मात्र ब्रह्म का नाता सच्चा है, शेष मिथ्या है (जगन्मिथ्या)।

टिप्पणी—

(1) इसमें कृष्ण की वियोग-विह्वलता का सच्चा और मार्मिक चित्र अंकित हुआ है।
(2) संचारी भाव की दृष्टि से इसमें चिन्ता, विषाद और स्मृति संचारियों का प्रयोग हुआ है।
(3) अन्तिम पंक्ति में शंकर के अद्वैत दर्शन की झलक है जिसमें कहा गया है 'जगन्मिथ्या'।

राग टोड़ी

उद्धव यह मन निस्चय जानो।
मन क्रम बच मैं तुम्हें पठावत ब्रज को तुरत पठानो॥
पूरन ब्रह्म, सकल अविनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख, न रूप, जाति, कुल नाहीं जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु विरह-नदी में भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति॥ 7॥

शब्दार्थ—तुरति पठानो = शीघ्र प्रस्थान करो। भासति = डूब रही हैं। विरह नदी = विरह रूपी नदी में। आसति = आसक्ति, मुक्ति।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण उद्धव जी को ब्रज भेज रहे हैं। इस भेजने से दो प्रयोजनों की सिद्धि होगी—(1) उद्धव के ज्ञान-गर्व का पतन, (2) ब्रजवासियों को जो वियोग में जल रहे हैं आश्वासन एवं धैर्य मिलेगा।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति श्रीकृष्ण का कथन) हे उद्धव, तुम अपने मन में यह निश्चय जान लो कि मैं तुम्हें सच्चे मन से (मनसा-वाचा-कर्मणा) ब्रजमंडल भेज रहा हूँ। ब्रजमंडल भेजने का अभिप्राय यह है कि बहुत समय से ब्रजवासियों का समाचार नहीं मिला है और उनका ठीक-ठीक समाचार लाने में तुम्हारे समान मैं किसी अन्य को उपयुक्त नहीं समझता। अतः तुम निस्संकोच ब्रज के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दो। पुनः तुम तो पूर्ण, अखण्ड एवं अविनाशी ब्रह्म के ज्ञाता (मर्मज्ञ) हो—ब्रह्म ज्ञान के पूर्ण पंडित हो और ऐसे ब्रह्म के बारे में जानते हो जो मातृ-पितृविहीन है और रूप रेखा (आकाररहित) जाति-गोत्र से सर्वथा मुक्त है अर्थात् वह ब्रह्म जो निराकार सूक्ष्म, निरुपाधि और गुणातीत है। ऐसे ब्रह्म का मर्म तुम गोपियों को भी समझा आओ जो विचारी वियोगरूपी नदी में डूब रही हैं—अर्थात् जो वियोग की पीड़ा में दिवा रात्रि डूबी रहती हैं—वियोग के कष्ट से उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही हैं। सूर के शब्दों में उद्धव-प्रति श्रीकृष्ण का कथन है—हे उद्धव, इस कार्य के लिए तुम तुरन्त जाओ और उन्हें बतला देना कि बिना निर्गुण ब्रह्मोपासना के सांसारिक मुक्ति संभव नहीं अर्थात् ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) संभव है—प्रेम और भक्ति से नहीं।

टिप्पणी—

(1) 'विरह नदी में भासति' में निरंग रूपक और 'यह मत गोपिन दै आवहु' में पर्यायोक्ति अलंकार है। इसके साथ ही इसमें व्यंग्य गर्भित उक्ति की प्रधानता है।
(2) इसमें तत्कालीन सगुण और निर्गुणोपासना विषयक द्वंद्व का भी संकेत है।
(3) गोपियों के वियोग से संतप्त श्रीकृष्ण के व्यथित हृदय की मार्मिक व्यंजना भी हुई है।

राग नट

उद्धव बेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति सँदेस सुनाय मेटो बल्लभिन को दाहु॥
काम पावक तूलमय तन बिरह-स्वास समीर।
भसम नाहिंन होन पावत, लोचनन के नीर॥
अजौं लौं यहि भाँति ह्वैहै, कछुक सजग सरीर।
इते पर बिनु समाधाने, क्यों धरै तिय धीर॥
कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रवीन ?
सूर सुमति विचारिए क्यों जियें जल बिनु मीन॥ 8॥

शब्दार्थ—सुरति = प्रेम। बल्लभिन = बल्लभी (प्यारी)—यहाँ गोपियों से अभिप्राय है। दाहु = संताप, पीड़ा। काम पावक = कामाग्नि। तूलमय = रुई सदृश (अत्यंत कोमल)। लोचनन के नीर = आँसू। अजौं लौं = आज तक। सजग सरीर = जीवित शरीर। इते पर = इतने पर भी। समाधाने = धैर्य, आश्वासन। तिय = गोपियों से अभिप्राय है।

सन्दर्भ—गोपियों के प्रेम में व्यथित श्रीकृष्ण उद्धव से शीघ्र ब्रज प्रस्थान करने को कह रहे हैं इसके साथ ही इस पद में गोपियों की वियोगावस्था का एक मार्मिक स्मृति बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति श्रीकृष्ण का कथन) हे उद्धव, तुम शीघ्र ही ब्रज के लिए प्रस्थान करो और प्रेम संदेश सुनाकर गोपियों के वियोग-जनित पीड़ा को दूर करो—शीघ्र प्रस्थान करने का आशय यह है कि अब गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग-कष्ट को और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। प्रेम संदेश सुनने पर गोपियों की वियोग-ज्वाला का शमन निश्चय ही हो जाएगा। पुनः कृष्ण गोपियों की वियोगावस्था का कथन करते हुए कह रहे हैं कि उनका शरीर रुई के समान अत्यंत कोमल है, अतः कामाग्नि से वह शीघ्र भस्म हो सकता है और वियोग के स्वांस पवन से तो यह कामाग्नि अधिक प्रज्ज्वलित हो सकती है, किन्तु नेत्रों के जल (अश्रु) के कारण यह भस्म नहीं हो पा रहा है। मेरा अनुमान है कि अभी तक गोपियों का शरीर इसी अवस्था में कुछ जीवित (सुरक्षित) होगा और ऐसी दारुण दशा में भी यदि उन्हें किसी भी प्रकार का आश्वासन नहीं मिलेगा तो वे गोपियाँ कैसे धैर्य धारण कर सकेंगी ? हे उद्धव, तुमसे मैं बहुत बनाकर उनके

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सम्बन्ध में अधिक क्या कहूँ। उनकी मार्मिक दशा का वर्णन वाणी द्वारा संभव नहीं, वह तो प्रत्यक्ष देखने पर ही ज्ञात हो सकती है। पुनः तुम तो सज्जन और प्रवीण हो, व्यंजना यह है कि तुम्हें बहुत समझाने की आवश्यकता नहीं है तुम तो अनुभवी और समझदार हो—तुम्हारे लिए इतना संकेत ही काफी है। हे ज्ञानी उद्धव, भला विचार करो कि क्या पानी के बिना भी मछली जीवित रह सकती है अर्थात् गोपियाँ उन मछलियों के समान हैं जो मेरे प्रेम-जल के क्षीण होने पर कदापि जीवित नहीं रह सकतीं ?

टिप्पणी—

(1) काम पावक . . . . . बिरह स्वास समीर में सांगरूपक अलंकार, सारोपा लक्षणा
(2) 'क्यों धरै तिय धीर' में काकु वक्रोक्ति अलंकार।
(3) अश्रु, विषाद और चिन्ता संचारीभाव की प्रधानता है।
(4) 'प्रवीन' में चतुर और तत्वदर्शी की स्पष्ट व्यंजना है।
(5) वियोग शृंगार का यह एक मार्मिक चित्र है।

राग सारंग

पथिक ! सँदेसो कहियो जाय।
आवैंगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाय॥
याको विलगु बहुत हम मान्यो जो कहि पठयो धाय।
कहँ लौं कीर्ति मानिए तुम्हरी बड़ो कियो पय प्याय॥
कहियो जाय नंद बाबा सों, अरु गहि पकर्‌यो पाय।
दोऊ दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी गाय॥
यद्यपि मथुरा विभव बहुत है तुम बिन कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजवासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय॥ 9 ॥

शब्दार्थ—विलगु = बुरा। धाय = नौकरानी, दूध पिलाने वाली। पय प्याय = दूध पिलाकर। धूमरि = धुएँ के रंग का (श्यामवर्ण)। धौरी = (सं० धवल) उज्ज्वल। जुड़ाय = प्रसन्न होना।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण किसी पथिक से गोपियों के पास अपना संदेश भेज रहे हैं। 'पथिक' शब्द उद्धव के लिए भी हो सकता है। इस संदेश-प्रेषण में श्रीकृष्ण ने अपने मानस की उस प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है जिसमें माता यशोदा ने देवकी के पास इस प्रकार का संदेश दिया था कि 'हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियो।'

व्याख्या—(ब्रजमण्डल जाने के लिए प्रस्तुत उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण का संदेश) हे पथिक, तुम हमारा यह संदेश ब्रज जाकर कह देना कि हम दोनों भाई (बलराम और मैं) शीघ्र आएँगे और माता यशोदा घबराएँ नहीं (श्रीकृष्ण के लिए माता का हृदय व्याकुल था अतः उन्होंने यह संदेश इस आशय से दिया है कि वे दोनों भाई शीघ्र उनका दर्शन करेंगे और उनकी घबराहट को दूर करेंगे)। तुम यह भी कह देना कि देवकी के पास तुमने जो संदेश भेजा है उसमें अपने को 'धाय' माना है। हमें तुम्हारे धाय के प्रयोग से महान कष्ट हुआ है। व्यंजना यह है कि धाय जैसे नगण्य शब्द के प्रयोग से हमें बहुत बुरा लगा है। आप तो परम पूज्या माता हैं और धाय तो नौकरानी और सेविका का बोधक है दोनों में महान् अन्तर है। हम तो तुम्हारे उपकार के भार से दबे हुए हैं। तुम्हारे यश का वर्णन कहाँ तक करें, तुमने तो दूध पिलाकर हमें इतना बड़ा किया है। भला, जिसने दूध पिलाकर बच्चा से हमें तरुण बनाया है उसके उपकार को कैसे भूल सकते हैं ?

हे उद्धव, तुम नंद बाबा के पाँव पकड़ कर हमारी ओर से कहना कि हमारी दोनों गाएँ श्याम और उज्ज्वल—दुखी न होने पाएँ—उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। यद्यपि मथुरा में ऐश्वर्य और वैभव की कमी नहीं है (यहाँ राजकीय वैभव से घिरा हूँ)। किन्तु तुम्हारे बिना वास्तविक सुख नहीं मिलता। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हमारा हृदय तो ब्रजवासियों को भेंटने पर ही शीतल हो पाता है (वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है) कहने का तात्पर्य यह है कि उन ब्रजवासियों से मिलने पर ही हृदय की पीड़ा और दुख की ज्वाला दूर होगी।

टिप्पणी—

(1) मातृ-प्रेम की उत्कृष्ट व्यंजना की प्रधानता है।
(2) छठवीं पंक्ति में पशु-प्रेम के कारण श्रीकृष्ण के हृदय की विशालता व्यक्त हुई है।
(3) ग्राम्य जीवन की सहजता के प्रति श्रीकृष्ण के हृदय में सच्चा अनुराग है, इसकी व्यंजना सातवीं पंक्ति में हुई है।
(4) धाय शब्द का प्रयोग कृष्ण के लिए असह्य है।
(5) 'नन्द के पाँव पकड़ने' में कृष्ण के दैन्य और पिता नन्द के प्रति पूज्य भावना का संकेत मिलता है।
(6) अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त 'जुड़ात' में शब्द रूढ़ि लक्षणा है।

राग सारंग

नीके रहियो जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चार पाँच में हम हलधर दोउ भैया॥
जा दिन तें हम तुमते विछुरे काहु न कह्यो 'कन्हैया'।
कबहूँ प्रात न कियो कलेवा, साँझ न पीन्ही धैया॥
बंसी बेनु सँभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो॥
कहियो जाय नंदबाबा सों निपट निठुर जिय कीन्हो।
सूर स्याम पहुँचाय मधुपुरी बहुरि सँदेस न लीन्हो॥ 10 ॥

शब्दार्थ—नीके = निश्चिन्त, आनन्दपूर्वक। दिन चार-पाँच में = शीघ्र। धैया = धारोष्ण दूध (थन से सीधी छूटती हुई दूध की धारा)। बेनु = वंशी। अबेर सबेरो = देर या जल्दी। पीन्ही = पिया। मति = कहीं ऐसा न हो। निपट = बिल्कुल। मधुपुरी = मथुरा। सँदेस = खोज-खबर।

संदर्भ—इसमें श्रीकृष्ण ने मुख्यतया अपनी माता के प्रति संदेश प्रेषित किया है और पिता की निष्ठुरता का भी संकेत किया है।

व्याख्या—(यशोदा प्रति कृष्ण का संदेश) श्रीकृष्ण का उद्धव से कथन है—हे उद्धव तुम माता यशोदा से जाकर कह देना कि तुम कुशलपूर्वक (निश्चिन्त) रहो, हम दोनों भाई चार-पाँच

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दिन में (अति शीघ्र) आ जाएँगे। हाँ, यह अवश्य है कि जिस दिन से तुमसे अलग हुए हैं (ब्रजमण्डल छोड़कर मथुरा आए हैं) किसी ने हमें 'कन्हैया' कह कर नहीं पुकारा अर्थात् मथुरा आने पर 'कन्हैया' जैसा वात्सल्य भरा शब्द पुनः सुनने को नहीं मिला। यही नहीं, तुम जिस प्रकार प्रातःकाल होते ही कलेवा देती थी उस तरह यहाँ कभी कलेवा (मक्खन और रोटी का भोजन) नहीं किया। वास्तव में यह परिस्थितियों की विषमता ही है कि कलेवा का सुख यहाँ न मिल सका। प्रातःकाल के भोजन की यह दशा थी और सन्ध्या समय जो हमें धारोष्ण दूध-पान करने का अवसर ब्रज में मिलता था, वह भी यहाँ नहीं मिला। हे माता, मेरी वंशी बेणु को सँभाल कर रखना, क्योंकि वह मुझे अतिशय प्रिय है और कहीं ऐसा न हो कि किसी समय मौका पाकर मेरे कुछ खिलौनों को राधिका चुरा ले जाय। कुछ खिलौनों से आशय यह है कि वैसे तो मेरे सभी खिलौने अच्छे और मुझे प्रिय हैं किन्तु कुछ विशिष्ट-खिलौने ऐसे हैं जो मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। पुनः नन्द की निष्ठुरता का संकेत करते हुए श्रीकृष्ण का कथन है कि हे उद्धव, नन्द बाबा से जाकर कह देना कि तुमने तो अपने हृदय को अतिशय निष्ठुर बना लिया (तुम तो सर्वथा निष्ठुर हो गये), क्योंकि सूर के शब्दों में जब से मुझे मथुरा पहुँचा कर लौटे हैं कभी फिर से मेरी खोज-खबर नहीं ली। यह तुम्हारी निष्ठुरता का ज्वलन्त प्रमाण है।

टिप्पणी—

(1) इसमें गोपियों की प्रेम-व्यंजना के साथ ही कृष्ण के सहज प्रेम के उदात्त स्वरूप की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। श्रीकृष्ण मथुरा के राजा हो जाने पर भी अपनी बाल-स्मृतियों से जुड़े हुए हैं। खिलौनों और वंशी को वे तरुण हो जाने पर भी भूल नहीं सके हैं। वस्तुतः सूरदास का हृदय कृष्ण की बाल-लीला और उनकी सहज चपलता के चित्रण में जितना रमता था, उतना अन्य विषयों में नहीं।

(2) 'मति लै जाय चुराय राधिका' में माधुर्यभाव की सहज झलक देखी जा सकती है।

(3) पाँचवीं पंक्ति में सूर ने बंशी और वेणु का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। इसे कुछ लोगों ने पुनरुक्ति दोष माना है। मेरी समझ में यह युग्मक प्रयोग है और इसे बहुत से कवियों ने ग्रहण किया है। यथा—बैहर बतास लौं उसास अधिकाने में—रत्नाकर।

(4) अबेर-सबेर मुहावरे के रूप में प्रयुक्त है।

(5) 'काहू न कह्यो कन्हैया' में वात्सल्य भाव की उत्कृष्ट व्यंजना हुई है।

(6) स्मृति संचारी के माध्यम से भाव-बिम्बों को सूर ने बड़ी कुशलता के साथ उरेहा है।

राग कल्याण

उद्धव मन अभिलाष बढ़ायो।
जदुपति जोग जानि जिय साँचों नयन अकास चढ़ायो॥
नारिन पै मोको पठवत हौ कहत सिखावन जोग।
मन ही मन अब करत प्रसंसा है मिथ्या सुख-भोग॥
आयुस मानि लियो सिर ऊपर प्रभु-आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु पठवत गोकुल में क्यों कहौं कि आन॥ 11 ॥

शब्दार्थ—अभिलाष बढ़ायो = आनन्दोल्लास में झूमने लगे। जोग = योग-मार्ग, नयन अकास चढ़ायो = नेत्रों को आकाश की ओर घुमाया—ऊपर की ओर देखने लगे। परमान = प्रमाण। आन = अन्य बातें।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर उद्धव ज्ञान-गर्व से फूल उठे और ब्रज जाने के लिए प्रस्तुत हो गये।

व्याख्या—श्रीकृष्ण के प्रेम-भाव को जानकर उद्धव जी अपने मन में अनेक आनंद की अभिलाषाएँ बढ़ाने लगे। तात्पर्य यह है कि परोक्ष रूप में अपने ज्ञान की महिमा को जानकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। अब श्रीकृष्ण के द्वारा प्रतिपादित योग-मार्ग को ही मन में सच्चा समझकर वे आकाश की ओर देखने लगे (आकाश की ओर देखने से उनकी आनन्द और गर्व मुद्रा का संकेत मिलता है) तात्पर्य यह है कि उद्धव को यह आभास हो गया कि हमारा यह ज्ञान-मार्ग ही सच्चा है इसी से श्रीकृष्ण हमें गोपियों को योग की बातें सिखाने के लिए ब्रजमण्डल भेज रहे हैं। और वे इस बात की मन ही मन प्रशंसा करने लगे कि श्रीकृष्ण ने भी स्वतः संसार के सुख-भोग को मिथ्या मान लिया। उद्धव जी यह सोच कर श्रीकृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। चूँकि श्रीकृष्ण उनके सखा और स्वामी दोनों ही थे अतः स्वामी की आज्ञा को प्रमाण मान लिया। सूरदास के शब्दों में उद्धव का कथन है कि स्वामी श्रीकृष्ण यदि मुझे जान-बूझकर ब्रज भेजना चाहते हैं तो मैं उनकी बातों का खण्डन करके दूसरी बातें क्यों करूँ आशय यह है कि उद्धव ने यही समझा कि श्रीकृष्ण ज्ञान मार्ग के पोषक हैं और उन्हें ज्ञान का अधिकारी समझकर ही गोपियों के पास भेजना चाहते हैं।

टिप्पणी—

(1) 'नयन अकास चढ़ायो' में जहाँ मुहावरे का बोध होता है, वहीं सूर की चित्रात्मक शैली का भी आभास होता है।

(2) उद्धव-प्रति श्रीकृष्ण की व्यंग्यगर्भित शब्दावली का प्रयोग।

(3) तत्कालीन प्रेम-मार्ग की तुलना में ज्ञान मार्गियों द्वारा ज्ञानमार्ग की महत्ता का संकेत।

(4) द्वितीय पंक्ति में 'ज' वर्ण की क्रमशः आवृत्ति के कारण छेकानुप्रास है और 'नयन अकास चढ़ायो' में सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

उद्धव के प्रति कुब्जा के वाक्य

राग सारंग

सुनियो एक सँदेसो ऊधो तुम गोकुल को जात।
ता पाछे तुम कहियो उनसे एक हमारी बात॥
माता-पिता को हेत जानि कै कान्ह मधुपुरी आए।
नाहिन स्याम तिहारे प्रीतम, ना जसुदा के जाए॥
समुझौ बूझौ अपने मन में तुम जो कहा भली कीन्ही।
कहँ बालक, तुम मत्त ग्वालिनी सबै आप-बस कीन्ही॥
और जसोदा माखन-काजै बहुतक त्रास दिखाई।
तुमहिं सबै मिलि दाँवरि दीन्ही रंच दया नहिं आई॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अरु वृषभानु सुता जो कीन्ही सो तुम सब जिय जानो।
यही लाज तजी ब्रज मोहन अब काहे दुख मानो॥
सूरदास यह सुनि सुनि बातें स्याम रहे सिर नाई।
इत कुब्जा उत प्रेम ग्वालिनी कहत न कछु बनि आई॥ 12 ॥

शब्दार्थ—हेत = प्रेम। जाए = पुत्र। मधुपुरी = मथुरा। मत = मस्त। त्रास = भय, दुख। दाँवरि दीन्हीं = रस्सी से बाँधा। रंच = थोड़ा। नाई = झुकाए हुए।

प्रसंग—जब कुब्जा ने यह सुना कि उद्धव कृष्ण के कहने पर गोपियों को संदेश देने के लिए ब्रजमण्डल जा रहे हैं, तो उसने उद्धव को अपने महल में बुला लिया और कहा कि कृष्ण के सन्देश के बाद मेरा भी एक सन्देश दे देना।

व्याख्या—(कुब्जा का उद्धव से कथन) हे उद्धव, तुम तो गोकुल जा रहे हो, अतः एक संदेश मेरा भी लेते जाओ। जब तुम कृष्ण का सन्देश गोपियों को दे देना तब उनसे एक हमारी बात भी कह देना। उनसे यह कहना कि माता-पिता (देवकी और वसुदेव से अभिप्राय है) के प्रेम को जानकर ही श्रीकृष्ण मथुरा आये थे। तुम्हें जानना चाहिए कि श्रीकृष्ण न तो तुम्हारे प्रियतम हैं और न वे यशोदा के पुत्र ही हैं। यदि ऐसा तुम समझती हो तो यह तुम्हारा भ्रम है। जरा, तुम अपने मन में समझो और विचार करो कि तुमने श्रीकृष्ण के साथ क्या भला (अच्छाई) किया है ? (कौन-सा अच्छा व्यवहार किया है) कहाँ तुम वयप्राप्त मस्त अहीरिनी और कहाँ वे 'श्रीकृष्ण'। अबोध बालक, फिर भी तुमने उन्हें अपने वश में कर लिया था (तुम्हें इस प्रकार का अनुचित सम्बन्ध नहीं स्थापित करना चाहिए था)। यही नहीं, माता यशोदा ने तुच्छ मक्खन के लिए श्रीकृष्ण को बहुत कष्ट दिया और तुम सब गोपियों ने मिलकर उन्हें बाँधने के लिए रस्सी लाकर दी (उन्हें कष्ट देने में तुम्हारा भी बहुत बड़ा हाथ था)। जरा, विचार करो, तुम्हें ऐसा करने में थोड़ी भी दया नहीं आयी। छोटे बच्चे के प्रति दया प्रदर्शित करने के बजाय तुमने उन्हें रस्सी से बंधवाया। इसके साथ ही राधा ने उनके साथ जो व्यवहार किया उसे तुम अच्छी तरह जानती हो। तात्पर्य यह है कि राधा ने भी मानिनी के रूप में श्रीकृष्ण को काफी परेशान किया, मान करने पर जल्दी मानती नहीं थी। ये ही सब कारण थे जिससे लज्जित होकर श्रीकृष्ण ने ब्रज मण्डल को त्याग दिया। अब ब्रज त्याग देने पर तुम सब दुखित क्यों होती हो ? तात्पर्य यह है कि तुमने यदि उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार न किया होता तो श्रीकृष्ण ब्रजमण्डल छोड़कर यहाँ क्यों आते ? कुब्जा के इस प्रकार उपालम्भ की बातें सुन-सुन कर श्रीकृष्ण ने अपना मस्तक झुका लिया और दुविधा में पड़ गये। श्रीकृष्ण की मानसिक स्थिति ऐसी विचित्र हो गयी कि उनसे कुछ कहते न बना, क्योंकि इधर कुब्जा का प्रेम था उधर गोपियों का प्रेमाकर्षण। वास्तव में यह उनकी असमंजस की स्थिति थी।

टिप्पणी—

(1) इसमें कुब्जा के असूया संचारी भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।
(2) श्रीकृष्ण के अन्तर्द्वन्द्व (internal conflict) का इसमें अच्छा संकेत है।
(3) कुब्जा का यह प्रसंग कथा के अनुक्रम को जोड़ नहीं पाता। इसके पूर्वापर पदों को जोड़ देने से कथा के अनुक्रम में व्यवधान न उत्पन्न होता। 'भ्रमरगीत सार' में ऐसे कुछ पदों को छोड़ देने से इस प्रकार के पद कुछ अस्वाभाविक से लगते हैं।
(4) ब्रजवासियों के प्रति कुब्जा का यह उपालम्भ काफी तीक्ष्णता लिए हुए है।

उद्धव का ब्रज में आना

राग मलार

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेइ पट, वैसिय रथ-बैठनि, वैसिय है उर दाम॥
जैसी हुति उठि तैसिय दौरीं छाँड़ि सकल गृह-काम।
रोम पुलक, गद्गद भई तिहि छन सोचि अंग अभिराम॥
इतनी कहत आय गए उधौ, रहीं ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभु ह्याँ क्यों आवैं बँधे कुब्जा रस स्याम॥ 13 ॥

शब्दार्थ—दाम = माला। जैसी हुति = जिस मुद्रा में थी। तिहि ठाम = उसी स्थान पर। रस = प्रेम। तन स्याम = श्याम शरीर वाला। बैठनि = बैठने का ढंग। वैसिये = उसी प्रकार रोम-पुलक = रोमांच होना। अभिराम = सुंदर। पट = यहाँ पीताम्बर से तात्पर्य है।

सन्दर्भ—उद्धव को दूर से आते हुए देखकर गोपियों को ऐसा लगा मानो श्रीकृष्ण ही यहाँ पधार रहे हैं। लेकिन जब समीप से देखा तो प्रतीत हुआ कि ये कृष्ण नहीं हैं, उद्धव हैं। उद्धव को देखने पर उन्हें बहुत बड़ी निराशा हुई।

व्याख्या—कोई गोपी किसी गोपी से कह रही है—हे सखी, श्याम वर्ण का (श्याम शरीर वाला) कोई इधर आ रहा है (ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण पधार रहे हैं)। क्योंकि उसी तरह का इसका पीताम्बर है और रथ पर बैठने का ढंग भी उसी तरह का है। तात्पर्य यह है कि जब श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ रथ पर बैठ कर मथुरा गये थे तो इसी मुद्रा में वे रथ पर बैठे हुए थे। और क्या देखती हूँ कि उनकी छाती पर वैजयन्ती की माला भी उसी तरह की है अर्थात् कृष्ण की भाँति ये माला भी धारण किए हुए हैं। गोपियाँ उस व्यक्ति को देखकर जिस अवस्था (मुद्रा) में थीं, उसी अवस्था में अपने घर के सब काम-काज को छोड़ कर दौड़ पड़ीं। और उस व्यक्ति (उद्धव) के सुन्दर अंग को श्रीकृष्ण जैसा विचार कर (स्मरण करके) रोमांचित एवं गद्गद हो गयीं (हर्षातिरेक में डूब गयीं)। उद्धव को जब वे सब दूर से देखकर यही कह रही थीं कि श्रीकृष्ण पधार रहे हैं तो उसी बीच इतना कहते ही उद्धव जी आ गये। श्रीकृष्ण के स्थान पर उद्धव को देखकर गोपियों को इतनी अधिक निराशा हुई और उनका विषाद इतना बढ़ गया कि वे जड़वत जहाँ थीं उसी स्थान पर ठगी जैसी रह गयीं। और यही सोचने लगीं कि भला कुब्जा के प्रेम-पाश में बँधे श्रीकृष्ण यहाँ क्यों आने लगे ? निराशा की यह झलक सूर के कई पदों में दृष्टिगत होती है।

टिप्पणी—

(1) प्रथम एवं द्वितीय पंक्ति में भ्रांतिमान अलंकार है।
(2) तीसरी पंक्ति में हड़बड़ी का बहुत स्वाभाविक गत्यात्मक (Dynamic) चित्र अंकित किया गया है। इसके साथ इसमें औत्सुक्य संचारीभाव है।
(3) चौथी पंक्ति में हर्ष, रोमांच और स्मृति संचारीभाव की प्रधानता है।
(4) पाँचवीं पंक्ति में जड़ता संचारी भाव है।
(5) छठवीं पंक्ति में असूया संचारी भाव है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उद्धव का ब्रज में दिखाई पड़ना

राग मलार

है कोई वैसीई अनुहारि।
मधुबन तें इत आवत, सखि री ! चितौ तु नयन निहारि॥
माथे मुकुट, मनोहर कुण्डल, पीत बसन रुचिकारि।
रथ पर बैठि कहत सारथि सों ब्रज तन बाँह पसारि॥
जानति नाहिंन पहिचानति हौं मनु बीते जुग चारि।
सूरदास स्वामी के बिछुरे जैसे मीन बिनु वारि॥ 14॥

शब्दार्थ—अनुहारि = समान आकृति, बनावट। मधुबन = मथुरा। चितौ = देख। नयन निहारि = भर नेत्रों से। पीत बसन = पीताम्बर। रुचिकारी = रुचि, सुंदर। सारथि = रथ चलाने वाला। ब्रज तन = ब्रज की ओर। बाँह पसारि = हाथ फैलाकर। बारि = जल।

सन्दर्भ—रथारूढ़ मथुरा से आते हुए उद्धव को दूर से देखकर गोपियाँ अनुमान करती हैं कि मानों श्रीकृष्ण ही चले आ रहे हैं।

व्याख्या—(सखी का सखी-प्रति कथन) हे सखी, कोई उसी आकृति (बनावट का प्रतीत हो रहा है अर्थात् जैसी आकृति श्रीकृष्ण की थी ठीक उसी आकृति (बनावट) का यह भी है। यह मथुरा से इधर ही आ रहा है। उसे भर नेत्रों से ध्यानपूर्वक देखो। उसके मस्तक पर मुकुट, कानों में सुन्दर कुण्डल है और वह अपने शरीर पर सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए है। वह रथ पर बैठकर ब्रज की ओर अपने हाथ फैलाकर अपने सारथी से कुछ कह रहा है व्यंजना यह है कि वह हमी लोगों की चर्चा कर रहा है। हे सखी, यद्यपि मैं उसे जानती नहीं, परन्तु वह कुछ परिचित-सा लगता है और ऐसा लगता है कि इसे देखे चार युग (बहुत समय) बीत गये (इसी से आकृति को देखकर ही परिचित लगता है, परन्तु यह कौन है इसको विस्तृत रूप में नहीं जानती)। सूरदास के शब्दों में अपने स्वामी श्रीकृष्ण से बिछुड़ जाने पर गोपियाँ उसी प्रकार व्याकुलमना हैं जैसे जल के बिना मछली।

टिप्पणी—

(1) इसमें भ्रांतिमान और स्मरण अलंकार की प्रधानता है।
(2) स्मृति बिम्ब का यह एक सुन्दर उदाहरण है।
(3) 'मनु बीते जुग चारि', में उत्प्रेक्षा 'जैसे मीन बिनु वारि' में दृष्टान्त अलंकार है।
(4) वितर्क संचारीभाव की प्रधानता है।
(5) रथ पर बैठि . . . . . बाँह पसारि में चाक्षुप बिम्ब और अनुभाव विधान का सुन्दर चित्रण हुआ है।
(6) 'माथे मुकुट, मनोहर कुंडल . . . . . रुचिकर' द्वारा उद्धव की शारीरिक वेशभूषा और अलंकृति का एक मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है।
(7) कुछ लोगों ने 'रुचिकारि' शब्द को कारी रुचि करके श्याम वर्ण अर्थ दिया है।

राग सोरठ

देखो नंदद्वार रथ ठाढ़ो।
बहुरि सखि सुफलकसुत आयो पर्‌यो सँदेह उर गाढ़ो॥
प्रान हमारे तबहिं गयो लै अब केहि कारन आयो।
जानति हौं अनुमान सखी री ! कृपा करन उठि धायो॥
इतने अंतर आय उपँगसुत तेहि छन दरसन दीन्हो।
तब पहिचानि सखा हरिजू को परम सुचित तन कीन्हो॥
तब परनाम कियो अति रुचि सों और सबहिं कर जोरे।
सुनियत रहे तैसई देखे परम चतुर मति-भोरे॥
तुम्हरो दरसन पाय आपनो जन्म सफल करि जान्यो।
सूर ऊधौ सों मिलत भयो सुख ज्यों झख पायो पान्यो॥ 15॥

शब्दार्थ—बहुरि = पुनः। सुफलकसुत = अक्रूर। गाढ़ो = अतिशय। इतने अंतर = इसी बीच। उपँगसुत = उद्धव। सुचित = स्वस्थ। परनाम = प्रणाम। अति रुचि सों = प्रेमपूर्वक। चतुर मति भोरे = चतुर बुद्धि वाले और भोले। झख = मछली। पान्यो = पानी।

सन्दर्भ—उद्धव जी का रथ जब नंद के द्वार पर पहुँचा तो गोपियों को यह संदेह हुआ कि कहीं पुनः अक्रूर जी न आ गये हों, क्योंकि एक बार वे कंस के कहने पर ब्रजमण्डल आये थे और अपने साथ कृष्ण और बलराम को रथ पर बैठा कर मथुरा ले गये।

व्याख्या—(गोपियों का परस्पर कथन) हे सखी, देखो तो नन्द के दरवाजे पर एक रथ खड़ा है, लगता है पुनः अक्रूर जी आ गये हैं, क्योंकि वे पहले भी एक बार आए थे और कृष्ण और बलराम को अपने रथ पर बैठा कर ले गये थे।

आज मेरे मन में इस प्रकार का बहुत बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया है। उस समय तो वे हमारे प्राण ले गये (प्राण स्वरूप श्रीकृष्ण और बलराम को हमसे छीन कर हमें निष्प्राण बना गये।) और किस लिए आए हैं—अब हमारे पास क्या बचा है जो उसे लेने को पुनः पधारे हैं ? हे सखी, मैं अनुभव कर रही हूँ कि शायद वे मेरे ऊपर इस बार कृपा करने को दौड़ पड़े हैं (व्यंग्यार्थ यह है कि वे अब पुनः हमें चोट पहुँचाने के लिए यहाँ तक आए हैं), इतना परस्पर गोपियाँ सोच रही थीं कि उसी बीच तत्क्षण उद्धव ने आकर गोपियों को दर्शन दिया और गोपियाँ श्रीकृष्ण के मित्र उद्धव को पहचान कर मन और शरीर दोनों से प्रसन्न हुईं। भारतीय मर्यादा और शिष्टाचार के अनुरूप गोपियों ने उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक सबों ने अपने हाथ जोड़े (हाथ जोड़कर उनका सत्कार किया)। और कहने लगीं, जैसा हम लोग आपके सम्बन्ध में सुनती रहीं, वैसा ही आपको बुद्धि में कुशल और हृदय से भोले-भाले रूप में देखा। तुम्हारे दर्शन पा कर हम लोग धन्य हो गयीं और अपने जन्म को सार्थक और सफल समझा। सफल इसलिए समझती हैं कि आप हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण के मित्र हैं; सम्बन्ध भावना के कारण जो सुख उन्हें देखने पर मिलता था वही सुख आपको देखकर मिला। सूरदास के शब्दों में उद्धव से मिलकर गोपियों को उसी प्रकार का सुख मिला जैसे पानी के बिना संतप्त मछलियाँ पानी पाकर सुखी हो जाती हैं। कृष्ण के वियोग-ज्वाला में संतप्त गोपियों को उद्धव को देखने पर अपार सुख मिला (श्रीकृष्ण के मिलने की एक बलवती आशा मानस में उत्पन्न हुई)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) दूसरी पंक्ति में शंका संचारी भाव।
(2) 'कृपा करन उठि धाए में' अत्यन्त तिरस्कृत वाक्य ध्वनि।
(3) सातवीं पंक्ति में भारतीय मर्यादा के अनुसार उद्धव का सत्कार किया गया है।
(4) नवीं पंक्ति में सम्बन्ध भावना का निर्वाह किया गया है।
(5) ज्यों झख पायों पान्यों में उपमालंकार है।
(6) 'पान्यों' शब्द का प्रयोग चिन्त्य है। तुकाग्रह के कारण सूर ने पानी का पान्यों कर दिया।

राग सोरठ

कहौ कहाँ तें आए हौ।
जानति हौं अनुमान मनो तुम जादवनाथ पठाए हौ॥
वैसोई बरन, बसन पुनि वैसेइ, तन भूषन सजित्याए हौ।
सरबसु लै तब संग सिधारे अब का पर पहिराए हौ॥
सुनहु, मधुप ! एकै मन सबको सो तो वहाँ लै छाए हौ।
मधुवन की मानिनी मनोहर तहँहि जाहु जहँ भाए हौ॥
अब यह कौन सयानप ? ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्यामगात हैं जानि भले करि पाए हौ॥ 16 ॥

शब्दार्थ—जादवनाथ = श्रीकृष्ण। बरन = वर्ण, रंग। भूषन सजि त्याए हौ = भूषणों से सज्जित हो। का पर पहिराए हौ = किसे ले जाने के लिए भेजे गये हो। मधुप = भ्रमर (यहाँ उद्धव के लिए यह संबोधित है)। मधुबन = मथुरा। मानिनी मनोहर = कुब्जा के प्रति संकेत। सयानप = चतुराई। स्यामगात = श्याम शरीर वाले। जानि भले करि पाए हौ = अच्छी तरह समझ लिए गये हो। जहाँ लौं = जहाँ तक, जितने।

प्रसंग—इसमें गोपियों ने अपनी व्यंग्यगर्भित वाणी द्वारा यह व्यक्त किया है कि उद्धवजी कहाँ से आए हैं और यहाँ आने का उनका प्रयोजन क्या है ?

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, यह तो बताइए कि आप कहाँ से पधारे हैं ? हमें तो ऐसा लगता है कि तुम्हें यादवनाथ ने मानो यहाँ भेजा है। तुम्हारा वर्ण और वस्त्र (पीताम्बर) भी वैसा ही है जैसा की कृष्ण का है और तुम अपने शरीर पर आभूषण भी उन्हीं की भाँति सज्जित किए हुए हो (पहने हो)। आशय यह है कि इसी रूप-रंगवाले श्रीकृष्ण ने एक बार हम लोगों को धोखा दिया था। शायद उसी वेश में हमें दुबारा ठगने के लिए उन्होंने तुम्हें भेजा है। श्रीकृष्ण तो इसके पूर्व हमारा सब कुछ लेकर चले गये अब किसे ले जाने के लिए तुम भेजे गये हो—तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण हम सब के मन को तो पहले ही ले बैठे अब बचा ही क्या है जो दुबारा लेने के लिए तुम्हें भेजा है। हे भ्रमर, सच बात तो यह है कि हमारे पास तो एक ही मन था, उसे लेकर वे मथुरा छा गये (वहीं विराजमान हो गये) अब दूसरा मन हमारे पास कहाँ है ? अब ऐसी स्थिति में यहाँ तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न होगा, अतः उत्तम यही होगा कि तुम मथुरा की उन मानिनी मनोहर सुंदरियों के पास जाओ जिन्हें तुम प्रिय हो (यहाँ 'मानिनी मनोहर' कुब्जा के प्रति स्पष्ट व्यंग्य है)। अब तुम्हारी यह कौन-सी चतुराई है—कौन सी यह बुद्धिमानी है कि तुम ब्रज में दौड़े चले आए। भला, ब्रज में आने का तुम्हारा कारण क्या है ? सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, हम तो जितने श्याम शरीर वाले हैं सब को भली भाँति जानती हैं अर्थात् तुम धोखे में न रहो कि हम तुम्हारे स्वभाव से अनभिज्ञ हैं। सत्य तो यह है कि श्याम शरीर वाले अक्रूर, कृष्ण और तुम सभी धोखेबाज और प्रवंचक हैं।—तुम जैसे लोग विश्वसनीय नहीं हैं।

टिप्पणी—

(1) 'कापर पहिराए हो, मुहावरे के रूप में एक विशेष प्रयोग।
(2) 'एकैमन सबको' इस भाव का पद अन्यत्र भी मिला है यथा—
ऊधौ मन न भए दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम पै, को आराधै ईस॥
उर्दू में भी किसी कवि ने कहा है—
'काश दो दिल होता इश्क में,
एक रखता पास अपने, एक देता इश्क में।
(3) 'एक मन' से गोपियों की अटल प्रेम भक्ति का संकेत मिलता है। यह पातिव्रत धर्म की एक सशक्त व्यंजना है।
(4) 'मधुबन की मानिनी मनोहर' में विशेषतया कुब्जा के प्रति वस्तु से वस्तु रूप में व्यंग्य है और इसमें असूया संचारी की झलक मिलती है।
(5) 'जहाँ लौं स्याम गात' में कृष्ण अक्रूर और उद्धव तीनों श्याम वर्ण वालों के प्रति करारी व्यंग्योक्ति प्रस्तुत की गयी है। उद्धव को भ्रमर के रूप में संबोधित करके व्यंग्य को और अधिक उभारा गया है।
(6) 'मधुबन की मानिनी मनोहर' में पर्यायोक्ति अलंकार है—यहाँ अन्य उक्ति से कुब्जा की खबर ली गयी है।

राग नट

ऊधो को उपदेश सुनौ किन कान दै ?
सुन्दर स्याम सुजान पठायो मान दै॥ ध्रुव॥
कोउ आयो उत तायँ जितै नँदसुवन सिधारे।
वहै बेनु-धुनि होय मनो आए नँद प्यारे॥
धाई सब गल गाजि कै ऊधो देखे जाय।
लै आईं ब्रजनाथ पै हो, आनँद उर न समाय॥
अरध आरती, तिलक, दूब, दधि माथे दीन्ही।
कंचन-कलस भराय आनि परिकरमा कीन्ही॥
गोप-भीर आँगन भई मिलि बैठे जादवजात।
जलझारी आगे धरी, हो, बूझति हरि-कुसलात॥
कुसल छेम बसुदेव, कुसल देवी कुबजाऊ।
कुसल-छेम अक्रूर, कुसल नीके बलदाऊ॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पूछि कुसल गोपाल की, रहीं सकल गहि पाय।
प्रेम-मगन ऊधौ भए, हो, देखत ब्रज के भाय॥
मन मन ऊधो कहै यह न बूझिय गोपालहि।
ब्रज के हेतु बिसारि जोग सिखत ब्रजबालहि॥
पाती बाँचि न आवई रहे नयन जल पूरि।
देखि प्रेम गोपीन को, हो, ज्ञान-गरब गयो दूरि॥
तब इत उत बहराय नीर नयनन में सोख्यो।
ठानी कथा प्रबोध बोलि सब गुरू समोख्यो॥
जो ब्रत मुनिवर ध्यावहीं पर पावहिं नहिं पार।
सो ब्रत सीखो गोपिका, हो, छाँड़ि विषय-विस्तार॥
सुनि ऊधो के बचन रहीं नीचे करि तारे।
मनो सुधा सों सींचि आनि विष ज्वाला जारे॥
हम अबला कह जानहीं जोग जुगुति की रीति।
नँदनंदन ब्रत छाँड़ि कै, हो, को लिखि पूजे भीति ?
अबिगत, अगह, अपार, आदि, अवगत है सोई।
आदि निरंजन नाम ताहि रंजै सब कोई॥
नैन नासिका-अग्र है तहाँ ब्रह्म को बास।
अबिनासी बिनसै नहीं, हो, सहज ज्योति परकास॥
घर लागै औघूरि कहे मन कहा बँधावै ?
अपनो घर परिहरे कहो को घरहि बतावै ?
मूरख जादवजात हैं हमहिं सिखावत जोग।
हमको भूलो कहत हैं, हो, हम भूली किधौं लोग ?
गोपिहु तें भयो अंध ताहि दुहुँ लोचन ऐसे !
ज्ञान नैन जो अंध ताहि सूझै धौं कैसे ?
बूझै निगम बोलाइ कै, कहै बेद समुझाय।
आदि अंत जाके नहीं, हो, कौन पिता को माय ?
चरन नहीं भुज नहीं, कहौ, ऊखल किन बाँधो ?
नैन नासिका मुख नहीं, चोरि दधि कौने खाँधो ?
कौन खिलायो गोद में, किन कहे तोतरे बैन ?
ऊधौ ताको न्याव है, हो, जाहि न सूझै नैन॥
हम बूझति सतभाव न्याव तुम्हरे मुख साँचो।
प्रेम-नेम रसकथा कहो कंचन की कांचो॥
जो कोउ पावै सीस दै ताको कीजै नेम।
मधुप हमारी सौं कहो, हो, जोग भलो किधौं प्रेम॥
प्रेम प्रेम से होय प्रेम से पारहि जैए।
प्रेम बँध्यो संसार, प्रेम परमारथ पैए॥
एकै निहचै प्रेम को जीवन-मुक्ति रसाल।

साँचो निहचै प्रेम को, हो, जो मिलिहैं नँदलाल॥
सुनि गोपिन को प्रेम नेम ऊधो को भूल्यो।
गावत गुन-गोपाल फिरत कुंजन में फूल्यो॥
छन गोपिन के पग धरै, धन्य तिहारे नेम।
धाय-धाय द्रुम भेंटही, हो, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी, धनि गोप, धन्य सुरभी बनचारी।
धन्य, धन्य ! सो भूमि जहाँ बिहरे बनवारी॥
उपदेसन आयो हुतो, मोहि भयो उपदेस।
ऊधो जदुपति पै गए, हो, किए गोप को बेस॥
भूल्यो, जदुपति नाम, कहत गोपाल गोसाईं।
एक बार ब्रज जाहु देहु गोपिन दिखराई॥
गोकुल को सुख छाँड़ि कै, कहाँ बसे हौ आय।
कृपावन्त हरि जानि कै, हो, ऊधो पकरे पाय॥
देखत ब्रज को प्रेम नेम कछु नाहिन भावै।
उमड्यो नयननि नीर बात कछु कहत न आवै॥
सूर स्याम भूतल गिरे, रहे नयन जल छाय।
पोंछि पीतपट सों कह्यो, 'आए जोग सिखाय' ?॥ 17 ॥

शब्दार्थ—किन = क्यों नहीं। उततायँ = वहाँ से। गलगाजि कै = आनंदित होकर (यह ब्रजभाषा का एक मुहावरा है) जादवजात = उद्धव। जलझारी = जल-पात्र। ब्रजराज = नन्द जी। बूझति = पूछती हैं। भाय = भाव ; प्रेम। बूझिय = समझ में आना ; उचित। हेतु = प्रेम। बहराय = बहलाकर। सोख्यो = सुखा लिया। प्रबोध = समझाना, उपदेश देना। समोख्यो = सहेज कर कहा। तारे = पुतली, आँखें। भीति = दीवाल। अविगत = शाश्वत, अज्ञेय। बोलि = बुलाकर। गुरु = गुरु की भाँति। अगह = पकड़ में न आने वाला। आदि अवगत = सर्वप्रथम ज्ञात। रंजै = शोभित होते हैं। नासिका अग्र = नाक का अग्रभाग। घर लागै = ठिकाने लगता है। औघूरि = घूमकर। परिहरै = त्यागकर। किधौं = अथवा। निगम = शास्त्र। खाँधो = खाया (तुक के कारण विकृत प्रयोग)। काँचो = काँच, शीशा। सीस दै = प्राण देकर। सौं = सौगन्ध। परमारथ = स्वर्ग, मोक्ष। निहचै = निश्चय। रसाल = रसमय। नेम = नियम, योग। फूल्यो = प्रसन्न हुए, मगन हो गये। छाके = मस्त। सुरभी = गाय। बनचारी = जंगल में चरने वाली।

संदर्भ—इस बड़ी रचना में सूर ने कथात्मक शैली के अन्तर्गत संक्षिप्ततः भ्रमरगीत की पूरी बातें बता दी हैं। कथा का वर्णित सारांश यों है—

(1) प्रारम्भ में प्रेम और योग विषयक विवाद को लेकर उद्धव और गोपी संवाद।
(2) गोपियों के प्रेम और भक्ति की विजय और उद्धव की पराजय।
(3) प्रेम-मग्न उद्धव का मथुरा लौटना।
(4) उद्धव द्वारा कृष्ण के समक्ष गोपियों की भक्ति और प्रेम की महत्ता का गुण-गान।
(5) कृष्ण का उद्धव से व्यंग्य गर्भित शैली में यह पूछना कि क्या वे गोपियों को योग सिखा आए ?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या—(उद्धव के आगमन पर सभी गोपियाँ शोर मचाती हुई उनके पास पहुँच गयीं और ऐसे शोर गुल में उद्धव जी अपना जो ज्ञान आलापते थे वह सुनाई नहीं पड़ता था ; इस पर क़िसी गोपी ने कहा कि) हे सखियो, उद्धव जी जो कुछ कह रहे हैं, उसे ध्यानपूर्वक क्यों नहीं सुनती ? क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इन्हें श्यामसुंदर ने बहुत सम्मानपूर्वक यहाँ भेजा है। अरे, ये तो वहाँ से यहाँ आए हैं जिधर हमारे श्रीकृष्ण गये थे। बंशी की आवाज भी उसी तरह हो रही है, जैसे श्रीकृष्ण किया करते थे। ऐसा लगता है मानो प्रियतम श्रीकृष्ण आ गये हों। उसकी बातों को सुनकर सभी गोपियाँ आनन्दोन्मत होकर उधर की ओर दौड़ पड़ीं और जाकर देखा कि उद्धव जी आ गये हैं। वे सब उद्धव जी को नन्द जी के पास ले आयीं और उन्हें देखकर वे सब फूली नहीं समातीं। उन सबों ने उद्धव को अर्घ्य दिया, उनकी आरती उतारी और मस्तक पर दूब और दही का टीका लगाया। यही नहीं, स्वर्ण-घट को जल से भर करके उनकी परिक्रमा की (उनके चारों तरफ घूमी)। उद्धव के आगमन का समाचार मिलते ही नंद के आँगन में गोपों की बहुत बड़ी भीड़ हो गयी। गोपों के आने पर उद्धव जी सबसे भेंटते थे और भेंट कर बैठ गये। गोपियों ने उद्धव के समक्ष जल-पात्र रख दिया और उनसे कृष्ण का समाचार (कुशल-क्षेम) पूछने लगीं। वे सब वसुदेव, कुब्जादेवी, अक्रूर, बलराम और श्रीकृष्ण का सम्यक् रूपेण कुशल-क्षेम पूछकर उद्धव जी के चरणों को पकड़कर बैठ गयों। गोपियों की ऐसी प्रेम-विह्वलता और ब्रजवासियों के ऐसे भाव को देखकर उद्धव जी प्रेम-मग्न हो गये (क्योंकि उन्हें ऐसी आशा नहीं थी कि ब्रजवासियों का प्रेम इस कोटि का होगा)। वे मन ही मन कहने लगे कि श्रीकृष्ण की यह बात समझ में नहीं आती कि वे ब्रज-प्रेम को भुलाकर ब्रज-बालाओं को योग की शिक्षा देना चाहते हैं। उद्धव से पत्री पढ़ते नहीं बन रहा है, क्योंकि उनके नेत्र आँसुओं से भर गये हैं (नेत्रों में आँसू आ जाने के कारण पत्री पढ़ने में रुकावट उत्पन्न होती है)। गोपियों की प्रेम-दशा देख कर (उनकी अटल भक्ति और प्रेम के समक्ष) उनके ज्ञान का गर्व नष्ट हो गया। उन्होंने किसी प्रकार इधर-उधर की बातों द्वारा अपने को बहलाया और अपने नेत्रों के आँसुओं को सुखाया। इसके पश्चात् सब को बुलाकर गुरु की भाँति सहेज रखे ज्ञान के उपदेश को बताना आरम्भ किया। उद्धव ने कहा, हे गोपियो, तुम सब विषय वासना के प्रपंच को त्याग कर उस व्रत का (परब्रह्म के चिन्तन) का पालन करो (उस व्रत को सीखो) जिसे श्रेष्ठ मुनिगण सदैव मनन किया करते हैं। और जिसका (जिस ब्रह्म का) पार वे नहीं पाते। उद्धव की ऐसी बातों को सुनकर गोपियों की पुतलियाँ नीचे हो गयीं (उन सबों ने अपनी आँखों को झुका लिया)। उनकी मनोदशा ऐसी लता के समान हो गई जिसे पहले अमृत से सींच कर पुनः विष की ज्वाला से दग्ध कर दिया गया हो (तात्पर्य यह है कि उद्धव ने पहले तो मीठी-मीठी बातें कीं और ऐसी सुधोपम वाणी) द्वारा उन्हें शीतल किया अब ऐसी कटुताभरी वाणी (ज्ञानोपदेश की ऐसी बातों) से उनके मानस को सन्तप्त कर दिया। गोपियों ने उद्धव का उत्तर देते हुए कहा कि हम सब अबला (सामान्य स्त्रियाँ) हैं और योग की युक्तियों को क्या जानें (योगशास्त्र की गम्भीर बातों को क्या समझें ?)। भला, श्रीकृष्ण के व्रत (उनकी प्रेमोवासना) को छोड़कर कौन दीवाल पर चित्र बनाकर उसकी पूजा करे (हम सब तो कृष्ण के रूप की उपासिका हैं, आपके निर्गुण ब्रह्म की कौन उपासना करे ?)। हे उद्धव, तुम्हारा ब्रह्म तो अज्ञेय, अग्राह्य, अपार आदि रूपों में सर्वप्रथम जाना गया है। और जिसका नाम तो आदि निरंजन (मायारहित) है, पर उसे सब प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं दूसरे शब्दों में जो सुख और दुख के विकारों से रहित है उसे कैसे प्रसन्न किया जाय ? इस ब्रह्म का स्थान तो नेत्र और नाक के अग्रभाग में है अर्थात् जो त्रिकुटी में रहता है। यह तो

अविनाशी है और इसका कभी नाश नहीं होता। यह सहज ज्योति (ब्रह्म प्रकाश) रूप है। भला, हम लोगों का मन वहाँ कैसे टिक सकता है ; यह तो घूमकर अपने ठिकाने लगता है अर्थात् बलात् यदि इसे ब्रह्मोपासना की ओर लगाते हैं तो यह घूम-फिरकर श्रीकृष्ण के प्रेम में ही तन्मय हो जाता है। इस भटकाव की स्थिति में इस मन का अन्यत्र जाना संभव नहीं है। भला, कोई अपना घर छोड़कर दूसरों को अपना घर कहाँ बतावे ? भाव यह है कि श्रीकृष्णोपासना को त्यागकर अपना सच्चा उपास्य किसे कहे ? अतः उसकी दशा तो उस गृह-विहीन की भाँति हो जाएगी जो इधर-उधर भटकेगा। उद्धवजी तो मूर्ख हैं जो हमें योग की शिक्षा देते हैं। वे हमें भूली (भ्रमित) बताते हैं अर्थात् अज्ञानी समझते हैं, परन्तु हमें तो ऐसा लगता है कि लोग ही भूले हैं—हम नहीं भ्रमित हैं। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि उद्धव के इस प्रकार दोनों ही नेत्र गोपियों से भी अधिक अंधे हो गये हैं। (उन्हें इन दोनों नेत्रों से सुझाई नहीं पड़ता)। ठीक ही है, जो ज्ञान नेत्र से अंधे हैं—जिनकी बाह्य आँखों के साथ ही हृदय की भी आँखें फूट चुकी हैं, उन्हें कैसे दिखाई पड़ेगा (जिनके चारों नेत्र फूट गये हैं, उन्हें क्या ज्ञात होगा ?)। ये तो शास्त्रोक्त बातों को समझाते हैं (शास्त्र का प्रमाण देते हैं) और समझाकर वेदों की बातें हमसे कहते हैं (वेदों का साक्ष्य मानते हैं), लेकिन हम इनसे पूछती हैं कि जिस ब्रह्म के आदि और अन्त का पता नहीं है, उसके माता-पिता कौन हैं ? भला, यह तो बताओ कि जिसके चरण और मुख नहीं है उसे ऊखली में किसने बाँधा (बिना चरण के वह कैसे बाँधा गया) और नेत्र, नासिका तथा मुखविहीन उसने कैसे दही चुराकर खाया। अर्थात् हमारे कृष्ण ने साकार रूप में ही सभी लीलाएँ कीं, वह निराकार नहीं है। यही नहीं, उन्हें किसने गोद में खिलाया और किसने तुतली वाणी का प्रयोग किया दूसरे शब्दों में यदि वह निराकार है तो उन्हें यशोदा ने अपनी गोद में कैसे खिलाया और उन्होंने अपनी तुतली वाणी में कैसे नंद-यशोदा आदि को रिझाया ? हे उद्धव, ये बातें तो उसके लिए उचित (न्याव) प्रतीत होंगी, जिसे नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता अर्थात् जो अज्ञानी एवं जड़ हैं। लेकिन हम तो सहज भाव से पूछती हैं और इसका सच्चा न्याय तो तुम्हारे मुख से है। इसकी सच्चाई का निरूपण तो तुम्हारे ऊपर छोड़ा गया है अर्थात् तुम इसका क्या न्याय करते हो ? हमारा कथन यह है कि हमने प्रेम (प्रेम कथा) और तुम्हारे नियम (योग) में कौन स्वर्ण (अधिक कीमती—महार्घ) है और कौन काँच (नगण्य) है ? अरे, योग तथा नियम की साधना तो उसके लिए करनी चाहिए जिसे सिर देकर भी प्राप्त किया जा सके अर्थात् कठिन साधना से जो मिल सके, लेकिन तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की बात ही भिन्न है, उसे सिर देकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। पुनः गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं, हे उद्धव, तुम्हारी कसम है, यह बताएँ कि योग और प्रेम में कौन उत्तम है (किसकी साधना सहज साध्य है ?)। वास्तव में प्रेम तो प्रेम से होता है अर्थात् प्रेम-मार्ग के अवलम्ब से प्रेम की प्राप्ति होती है और प्रेम-मार्ग से ही भवसागर से पार लगा जा सकता है। देखा जाय तो सारा जगत प्रेम के बंधन में बँधा है (यहाँ सब प्रेम का नाता है) और प्रेम से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। निश्चय ही एक मात्र प्रेम से ही रसमय जीवन का मोक्ष प्राप्त होता है (मोक्ष सदृश आनन्दमय जीवन की प्राप्ति होती है) सच्चा और अटल प्रेम से ही नन्दलाल की प्राप्ति भी होगी। गोपियों की ऐसी अटल भक्ति और प्रेम को जानकर उद्धव को अपना नियम (योग-मार्ग) भूल गया और वे श्रीकृष्ण के गुणों को गाते हुए कुंजों में आनन्दमग्न घूमने लगे। वे क्षण में गोपियों के चरण पकड़ते और कहते कि हे गोपियो, तुम्हारा यह प्रेम धन्य है, तुम महान हो, और कभी प्रेमोन्मत होकर दौड़-दौड़ कर ब्रजमंडल के वृक्षों को भेंटने लगते (यहाँ कृष्ण के सम्बन्ध भाव से वे वृक्षों कोआलिंगित करते थे)। और कहते गोपी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

धन्य हैं, गोप धन्य हैं, और बन में चरने वाली ये गायें धन्य हैं और वह ब्रजभूमि भी धन्य (महान्) है जहाँ श्रीकृष्ण विचरण करते रहे। मैं तो यहाँ गोपियों को ज्ञान का उपदेश देने आया था, किन्तु इसके विपरीत आज गोपियों के प्रेम का उपदेश मुझे मिला। अर्थात् मैं ज्ञानोन्माद में भ्रमित था, लेकिन गोपियों के सच्चे मार्ग से मुझे शान्ति मिली। इस प्रकार उद्धव जी गोप-वेश में श्रीकृष्ण के पास मथुरा गये और वहाँ वे श्रीकृष्ण के यदुपति नाम को भूल गये तथा उन्हें 'गोपाल गोसाईं' कहने लगे। वे श्रीकृष्ण से कहने लगे आप एक बार पुनः ब्रज जाकर गोपियों को दर्शन दें। तुम भला, गोकुल के ऐसे सुख को छोड़कर यहाँ कहाँ आकर बस गये। इतना कहकर श्रीकृष्ण को भक्तवत्सल जानकर उनके चरणों को उद्धव जी ने पकड़ लिया (वे मन ही मन में अपने ज्ञान-गर्व से अतिशय लज्जित हुए) उद्धव को अब ब्रज-प्रेम को देखते हुए अपनी योग-साधना अच्छी नहीं लगती। वे प्रेम में इतने गद्गद हो गये कि उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गया और उनसे कुछ कहते न बना (उनकी वाणी रुक गयी) वे प्रेम-विह्वल अवस्था में श्रीकृष्ण के समक्ष पृथ्वी पर गिर पड़े। श्रीकृष्ण ने अपने पीताम्बर से उनके नेत्रों के प्रेमाश्रुओं को पोंछा और व्यंग्य-गर्भित वाणी में कहा, 'गोपियों को योग सिखा आए ?'

टिप्पणी—

(1) इसमें प्रबन्धात्मक शैली में प्रस्तुत भ्रमरगीत का कथात्मक स्वारस्य प्रशंसनीय है।
(2) योग-मार्ग की तुलना में भक्ति और प्रेम-व्यंजना के माहात्म्य का सहज संकेत है।
(3) हर्ष, जड़ता जैसे संचारी भावों की प्रधानता है।
(4) ब्रजभूमि, गोप, गोपिकाओं के मध्य प्रेम-सम्बन्ध का मार्मिक निरूपण किया गया है।

राग धनाश्री

हमसों कहत कौन की बातें ?
सुनि ऊधो ! हम समुझत नाहीं फिरि पूछति हैं तातें॥
को, नृप भयो कंस किन मार्‌यो को बसुद्यौ-सुत आहि।
यहाँ हमारे परम मनोहर जीजतु है मुख चाहि॥
दिन प्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग॥
को ब्यापक पूरन अविनासी, को बिधि-वेद-अपार ?
सूर वृथा बकवाद करत हौ या ब्रज नंदकुमार॥ 18॥

शब्दार्थ—तातें = इसलिए। बसुद्यौ-सुत = वसुदेव के पुत्र। आहि = है। जीजतु है = जीवित रहती है। चाहि = देखकर। बासरगत = दिन समाप्त होने पर। रजनीमुख = सन्ध्या समय। पंग = स्तब्ध।

सन्दर्भ—इसमें गोपियाँ उद्धव को बेवकूफ बना रही हैं। वे जान-बूझकर उनसे पूछती हैं और कहती हैं कि जिनकी चर्चा तुम यहाँ कर रहे हो, वे कौन हैं ?

व्याख्या—हे उद्धव, तुम हमसे किनकी बात कर रहे हो ? हम तो जानती नहीं कि तुम क्या कह रहे हो—हमारी समझ में तुम्हारी बातें नहीं आ रही हैं, इसलिए हम तुमसे पुनः पूछ रही हैं कि मथुरा में कौन राजा हुआ और किसने कंस को मारा अर्थात् तुम जो यह बता रहे हो कि

श्रीकृष्ण मथुरा के राजा थे और उन्होंने कंस का वध किया, यह हमारे लिए भ्रमोत्पादक है। यह भी नहीं जानती कि वसुदेव का पुत्र कौन है। क्योंकि हमारे यहाँ तो श्रीकृष्ण विराजमान हैं और हम ऐसे मनोहर श्रीकृष्ण के मुख को नित्य-प्रति देखकर जीती हैं उनका यह रूप हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है—वे आज भी नित्य अपने गोपमित्रों के साथ सहजभाव से बन में गाय चराने जाया करते हैं और दिन के समाप्त होने पर वे सन्ध्या समय बन से लौटते हैं और हमारे नेत्रों को स्तब्ध कर देते हैं—श्रीकृष्ण की ऐसी मुद्रा को देखकर स्तब्ध हो जाते हैं (उन्हें हम सब अपलक देखती रह जाती हैं)। हमारी समझ में नहीं आता कि कौन व्यापक, पूर्ण और अविनाशी (ब्रह्म) है और कौन ब्रह्मा और वेद के लिए अपार है (कौन ऐसा है जिसका पार ब्रह्मा और वेद भी नहीं पाते ?) सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि तुम व्यर्थ ही बकवास (व्यर्थ की बातें) कर रहे हो। अरे, इस ब्रज में तो नित्य नन्दकुमार का दर्शन होता है अर्थात् तुम जिस कृष्ण की चर्चा कर रहे हो, वे कोई और हैं, क्योंकि हमारे श्रीकृष्ण तो यहाँ सदैव विराजमान हैं।

टिप्पणी—

(1) इसमें निर्गुण ब्रह्म का व्यंग्यगर्भित शैली में उपहास किया गया है।
(2) सूर की वाग्विदग्धता का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।
(3) यहाँ गोपियों ने श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य रूप की तुलना में ब्रज के सहज और माधुर्य रूप को वरण किया है। यही रूप गोपियों को काम्य है और इसी रूप की वे उपासिका भी हैं।
(4) 'पंगु' के स्थान पर कवि ने तुकाग्रह के कारण यहाँ 'पंग' जैसे विकृत शब्द का प्रयोग किया है।
(5) गोपियों के मानस में नित्य प्रति रमनेवाले श्रीकृष्ण मथुरा में नहीं हैं। आज भी यहाँ उन्हें सन्ध्या समय लौटकर दर्शन-लाभ देते हैं।
(6) कविवर पद्माकर ने भी इसी भाव का एक छन्द प्रस्तुत किया है—

नैननि बसे हैं अंग-अंग हुलसे हैं रोम
रोम निरसे हैं निकसे हैं को कहत हैं।
ऊधो वे गोविन्द कोऊ और मथुरा में यहाँ
मेरे तो गोविन्द मो हि मोही में रहत हैं॥

राग सारंग

तू अलि ! कासों कहत बनाय ?
बिनु समुझे हम फिरि बूझति हैं एक बार कहौ गाय॥
किन पै गवन कीन्हों सकटनि चढ़ि सुफलकसुत के संग।
किन वै रजक लुटाइ बिबिध पट पहिरे अपने अंग ?
किन हति चाप निदरि गज मार्‌यो किन वै मल्ल मथि जाने ?
उग्रसेन बसुदेव देवकी किन वे निगड़ हठि भाने ?
तू काकी है करत प्रसंसा, कौने घोष पठायो ?
किन मातुल बधि लयो जगत जस कौन मधुपुरी छायो ?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

माथे मोर मुकुट बनगुंजा, मुख मुरली-धुनि बाजै।
सूरदास जसोदानंदन गोकुल कह न बिराजै॥ 19 ॥

शब्दार्थ—अलि = भ्रमर (उद्धव के लिए प्रयुक्त)। सकटनि = रथ; गाड़ी। सुफलक सुत = अक्रूर। रजक = कंस का धोबी। हति = तोड़ा। चाप = धनुष। निदरि = निरादर करके। गज = कुबलयापीड़ हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। मल्ल = मुष्टिक और चाणूर नामक पहलवान। मथि जाने = पछाड़ना, मारना। उग्रसेन = मथुरा के राजा और कंस के पिता। निगड़ = शृंखला। भाने = तोड़ा। घोष = अहीरों की बस्ती। मातुल = मामा (कंस के लिए प्रयुक्त)। मधुपुरी = मथुरा। कह = बताओ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में गोपियों ने व्यंग्य-गर्भित वाणी में उद्धव का उपहास किया है। उद्धव जी निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दे रहे हैं। गोपियों के लिए उपासना की यह पद्धति सर्वथा अमान्य है। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी को नहीं जानतीं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे भ्रमर, (उद्धव से अभिप्राय है) तुम किससे बना-बनाकर कह रहे हो—हम तो इसे समझ नहीं रही हैं। अत: हम फिर तुमसे पूछ रही हैं कि आप अपने ब्रह्म की महिमा एक बार गाकर (उसका गुणानुवाद करके) हमें बताओ (यहाँ गाने की व्यंजना भ्रमर की गुनगुनाहट से है)। हमें तुम यह तो बताओ कि अक्रूर के साथ रथ पर बैठकर मथुरा की ओर किसने प्रस्थान किया और वे कौन थे जिन्होंने मथुरा में धोबी के वस्त्रों को लुटाकर अपने शरीर पर राजसी वस्त्रों को धारण किया। किसने कंस के सुरक्षित धनुष को तोड़ा और कंस के कुबलयापीड़ नामक हाथी का निरादर करके मारा (ऐसे बलशाली हाथी के दाँतों को तोड़कर उसका बध किया)। यही नहीं, किसने मुष्टिक और चाणूर नाम के पहलवानों को मारा ? भला, यह तो बताओ किसने उग्रसेन कंस के पिता, वसुदेव और देवकी की बेड़ियाँ हठपूर्वक तोड़ीं ? तुम किसकी प्रशंसा कर रहे हो और अहीरों की इस बस्ती में तुम्हें किसने भेजा है ? किसने अपने मामा (कंस) का वध करके संसार में यश प्राप्त किया और किसकी प्रभुता और धाक सारे मथुरा में छायी है—कौन मथुरा में बहुचर्चित है ? यहाँ तो (गोकुल में) मस्तक पर मयूर-मुकुट और गले में बन की गुंजा की माला धारण किए हुए मुख से मुरली की ध्वनि निकालते हुए बताओ तो क्या श्रीकृष्ण चन्द्र (यशोदानंदन) विराजमान नहीं हैं ? तात्पर्य यह है कि ब्रज में तो सर्वत्र जन-जन में श्रीकृष्ण का रूप छाया हुआ है, फिर आप इस निर्गुण का संदेश किसके लिए लाए हैं और इसे कौन ग्रहण करेगा ?

टिप्पणी—

(1) उद्धव के उपहास का यह बड़ा ही यथार्थ और सजीव चित्र है।
(2) इसमें गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा और प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।
(3) समस्त पद में तीन अन्तर्कथाओं का संकेत है—
(क) श्रीकृष्ण ने कंस के धोबी को मारकर उसके समस्त वस्त्रों को लुटा दिया था और किसी जुलाहे ने उन्हें राजसी वस्त्रों से विभूषित किया था और सुदामा नामक माली ने उन्हें पुष्पमालायें भेंट की थीं।
(ख) इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने कंस के सुरक्षित धनुष को तोड़ डाला और धनु शाला के प्रहरियों का बध कर दिया।
(ग) ऐसे समय श्रीकृष्ण और बलराम ने मुष्टिक, चाणूर और कुबलयापीड़ नामक हाथी को भी मारा था।

राग सारंग

हम तो नंदघोष की बासी।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहि गोप-गोपाल-उपासी॥
गिरवरधारी गोधनचारी, वृन्दाबन-अभिलासी।
राजा नंद जसोदा रानी, जलधि नदी जमुना सी॥
प्रान हमारे परम मनोहर कमलनयन सुखरासी।
सूरदास प्रभु कहौं कहाँ लौं अष्ट महासिधि दासी॥ 20 ॥

शब्दार्थ—नंदघोष = नंदगाँव (गोकुल)। गोधनचारी = गायों को चराने वाले। अभिलासी = प्रेमी। जलधि = समुद्र।

सन्दर्भ—गोपियाँ नंदगाँव की निवासिनी होने में गर्व का अनुभव करती हैं। चूँकि श्रीकृष्ण ने इसी गाँव में गोपियों के साथ नाना प्रकार की लीलाएँ रचीं। इसी से यहाँ गोपियाँ अष्ट सिद्धियों से बढ़कर आनन्द का अनुभव करती हैं।

व्याख्या—गोपियों का कथन है कि हम सब का यह परम सौभाग्य है कि हम नन्दगाँव (गोकुल) की निवासिनी हैं। हमारा नाम गोपाल (गायों को पालनेवाली) हमारी जाति और कुल भी गोप (अहीर) है। गोप होने के कारण गोपाल (श्रीकृष्ण) की उपासिका हैं। हमारे कृष्ण तो गोवर्धन पर्वत उठाने वाले, गायों को चराने वाले और वृन्दावन के प्रेमी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे संकट में ये गोवर्धन पर्वत उठाकर हमारी रक्षा करते हैं—और गायों को चराकर हम लोगों में पशु प्रेम उत्पन्न करते हैं। यही नहीं, वे वृन्दावन की प्राकृतिक सुषमा के प्रेमी हैं (उनमें मातृ-भूमि के प्रति अनन्य अनुराग भी है)। हमारे राजा तो नन्द और रानी यशोदा जी हैं। यहाँ प्रवाहित होने वाली यमुना तो हमारे लिए समुद्र के समान है। हमारे प्राण तो अत्यंत सौन्दर्यशाली कमल नेत्र, आनन्दराशि श्रीकृष्ण हैं कहाँ तक कहें उनके सुख के समक्ष आठों सिद्धियाँ भी दासी हैं (आठों सिद्धियों का सुख भी कृष्ण के सुख के समक्ष नगण्य है)।

टिप्पणी—

(1) इसमें सम्बन्ध-भावना का निरूपण किया गया है।
(2) 'प्रान हमारे मनोहर...सुखरासी' में सारोपा लक्षणा का प्रयोग हुआ है।
(3) द्वितीय पंक्ति में 'ग' वर्ण की आवृत्ति के कारण अनुप्रास अलंकार है।
(4) अष्ट महासिद्धियाँ इस प्रकार कही गयी हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व तथा वशित्व।

राग केदार

गोकुल सबै गोपाल उदासी।
जोग-अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासी।
अपनी सीतलताहि न छाँड़त यद्यपि है ससि राहु-गरासी॥
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन माँगति मुक्ति तजे गुनरासी॥ 21 ॥

शब्दार्थ—जोग अंग = अष्टांग योग। ईसपुर = शंकर की नगरी। रस-रासी = आनन्द में पगी हुई। गरासी = ग्रस्त। गुनरासी = गुण-राशि (श्रीकृष्ण); सूत्र-राशि। मुक्ति = मोक्ष का आनंद; मोती। उपासी = उपासक।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने स्पष्ट शब्दों में उद्धव से कहा कि गोकुल में कोई ऐसा नहीं है जो अष्टांग योग का साधक हो। यहाँ तो सभी गोपाल के उपासक हैं।

व्याख्या—(गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि) हे उद्धव, गोकुल के जितने लोग हैं सब कृष्णोपासक हैं (समस्त गोकुल कृष्ण-प्रेम में तन्मय है)। आप तो हम लोगों को अष्टयोग की शिक्षा दे रहे हैं। अरे, अष्टांग योग की साधना करने वाले तो शंकर की नगरी काशी में निवास करते हैं तात्पर्य यह है कि गोकुल तो कृष्ण की उपासना का केन्द्र स्थल है—यहाँ निर्गुणोपासना को लोग जानते ही नहीं—इसकी उपयुक्त स्थली शंकरपुरी काशी है जहाँ बड़े-बड़े योगी मिलते हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण ने हमें त्याग कर अनाथ कर दिया (उनके त्यागने से हम सभी अनाथ हो गयीं—जीवन में बड़ी निराशा उत्पन्न हुई, फिर भी मन को धैर्य देकर प्रेम-राशि श्रीकृष्ण के चरणों के आनन्द में डूबी रहती हैं—एक मात्र शरण श्रीकृष्ण का चरण ही है। वस्तुतः जैसे राहु-ग्रस्त होने पर भी चन्द्रमा अपनी शीतलता के गुणों को नहीं त्यागता, ठीक उसी प्रकार इतने संकटों से ग्रस्त होकर भी हम सब कृष्ण के प्रति अपना स्नेह नहीं छोड़ पा रही हैं। यह स्नेह-सूत्र जन्मतः उनसे जुड़ा है। हमें यह नहीं मालूम होता कि किस अपराध से वे हमें अपने पुत्रों में योग का संदेश लिख कर निरन्तर भिजवाया करते हैं और प्रेम-भजन छोड़कर हमें वैराग्य की ओर लगा रहे हैं। यह जानकर आश्चर्य होता है कि वे प्रेम करने के बजाय हमें विरक्त होने की शिक्षा दे रहे हैं। भला, ऐसी कौन विरहिणी होगी जो गुण-राशि (गुणज्ञ) श्रीकृष्ण को छोड़कर मोक्ष की कामना करती हो—श्रीकृष्ण के सहज आनन्द को त्याग कर मोक्षानन्द की याचना करती हो—इसका चमत्कारिक अर्थ यों होगा—ऐसी कौन विरहिणी होगी जो सूत्रों को त्याग कर मात्र मोती की याचना करे। वास्तव में जैसे सूत्रों में पिरोये जाने पर ही मुक्ता की शोभा बढ़ती है—उसी प्रकार मोक्ष को आनन्द की वास्तविक सार्थकता की गुण-राशि श्रीकृष्ण के प्रेमोपासक होने में है)।

टिप्पणी—

(1) अष्टांग योग इस प्रकार बताया गया है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

(2) 'रासी'-शब्द तुकाग्रह के कारण अपने विकृत रूप में प्रयुक्त हुआ है। वास्तव में होना चाहिए था 'रस-रसी'। रसी का अर्थ डूबना या पगना होता है।

(3) 'ससि राहु गरासी' में उदाहरण अलंकार है और अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त 'मुक्ति' और 'गुन-रासी' में श्लेष अलंकार की झलक मिलती है। 'ऐसी को विरहिन' में काकुवक्रोक्ति की प्रधानता है।

(4) पूरे पद में प्रेमतत्व और योग के वैषम्य का निरूपण है।

(5) 'मुक्ति' शब्द का चमत्कार रत्नाकर ने भी अपने एक छंद में प्रस्तुत किया है—
मुक्ति मुक्ता को मोल-माल ही कहा है,
जोपै मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकी।

राग धनाश्री

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी को॥
नयनन मूँदि-मूँदि किन देखौ बँध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुन्दर स्याम मनोहर और जगत सब फीको॥
सुनो जोग को का लै कीजै जहाँ ज्यान ही जी को ?
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को॥ 22 ॥

शब्दार्थ—मुँहचाही = चहेती, प्रिय (कुब्जा से अभिप्राय है)। नीको = अच्छा है। परस = श्रीकृष्ण के शरीर का स्पर्श। किन देखौ = भले ही देखो। बँध्यो ज्ञान पोथी को = पुस्तकों का बँधा (सीमित) ज्ञान। ज्यान = हानि (फारसी शब्द का प्रयोग)। मही = मट्ठा। नहीं रुचि मानै = अच्छा नहीं लगता।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने 'असूया' संचारी के अन्तर्गत कुब्जा के प्रति व्यंग्य-गर्भित शैली में अपना ईर्ष्या भाव व्यक्त किया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, सच पूछिये तो जीवन श्रीकृष्ण की चहेती (कुब्जा) का धन्य है जो दिवारात (सदैव) प्रियतम श्रीकृष्ण के शरीर का वह स्पर्श और दर्शन किया करती है (हम लोग तो इन दोनों सुखों से वंचित है)। आप भले ही पोथियों में आबद्ध ज्ञान के आधार पर आँख मूँद कर ब्रह्म का साक्षात्कार करने का यत्न करें लेकिन यह संभव नहीं—प्रत्यक्ष अनुभूति और पोथी-ज्ञान की अनुभूति में महदन्तर है। हमारे लिए तो यहाँ श्रीकृष्ण के सुन्दर मनोहर रूप (सौन्दर्य) के समक्ष संसार का समस्त सुख फीका (नीरस) प्रतीत होता है। हम सब आपके योग को लेकर क्या करें (योग साधना से हमारी क्या सिद्धि होगी) जहाँ प्राणों की हानि होती है अर्थात् जिसकी साधना में प्राणों को कष्ट होता है। दूसरे शब्दों में प्राणों से प्रिय श्रीकृष्ण जिस योग साधना से वियुक्त हो जाते हैं उस योग के साधने से क्या लाभ ? हमें तो आपका योग उसी प्रकार अच्छा नहीं लगता जैसे घी को खाने वाले व्यक्ति को मट्ठा अच्छा नहीं लगता। दूसरे शब्दों में जिसने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-रस का सदैव पान किया हो, उसे भला, योग की ये नीरस बातें कैसे रुचिकर हो सकती हैं।

टिप्पणी—

(1) इस पद में असूया संचारी भाव की प्रधानता है।

(2) 'ज्यान' शब्द फारसी भाषा का है और सूर ने इसे ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार सहज रूप में प्रयुक्त करने की चेष्टा की है। रीति कवियों में देव और भिखारीदास के छन्दों में भी यह शब्द इसी अर्थ में देखने को मिलता है।

(3) अंतिम पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(4) पाँचवीं पंक्ति में 'ज' की आवृति के कारण छेकानुप्रास है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(5) 'बंध्यो ज्ञान पोथी को' के सम्बन्ध में कबीर का यह कथन कितना सार्थक है
'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय'।

राग काफी

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी॥
फाटक दै कर हाटक माँगत भोरै निपट जु धारी।
धुरही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी॥
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी ?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी॥
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ॥ 23 ॥

शब्दार्थ—घोष = अहीरों की बस्ती, गोकुल। खेप = माल का बोझ। फाटक = फटकन, भूसी। हाटक = सोना। भोरै = भोला-भाला; गँवार। निपट = सर्वथा, बिल्कुल। धारी = समझकर, धारणा बना कर। धुरही = शुरू से ही। खोटो खायो = नुकसान हुआ है। डहकावै = ठगाए, सौदे में धोखा खाना। अजानी = अज्ञानी। खारकूप = खारा कुआँ। सबार = शीघ्र। बेगि = शीघ्र। गहरु = देरी, विलम्ब। जनि लावौ = मत लगाओ। मुँह माँग्यो = मनचाहा, इच्छित (एक मुहावरा)। साहुहि = महाजन को (श्रीकृष्ण से अभिप्राय है)। आनि = लेकर।

सन्दर्भ—इसमें उद्धव का गोपियों ने व्यंग्य-गर्भित शैली में उपहास किया है। यहाँ उद्धव को ज्ञानःसौदा का विक्रय करने वाले एक व्यापारी के रूप में वर्णित किया गया है।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव के सम्बन्ध में परस्पर कह रही हैं—देखो सखियो, अहीरों की इस बस्ती में एक बहुत बड़ा व्यापारी आया है (विपरीत लक्षण से बड़ा व्यापारी की व्यंजना यह है कि यह एक अज्ञानी और जड़ व्यक्ति है जो हम सब अबलाओं को ज्ञान की शिक्षा देना चाहता है) इस व्यापारी ने अपने ज्ञान और योग के माल का भारी बोझ लादे सीधे ब्रज में आकर उतारा। तात्पर्य यह है कि अपनी ज्ञान-गुरुता का महत्व सीधे हम अबलाओं के मध्य बताया। यह हम ब्रजवासियों को सर्वथा भोला-भाला जान कर फटकन (निस्सार निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान) देकर हमसे महार्घ स्वर्ण (कृष्ण की भक्ति और प्रेम) को माँग रहा है—श्रीकृष्ण की भक्ति के स्थान पर हमें निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान ग्रहण करने का आग्रह कर रहा है। इसके माल को किसी ने खरीदा नहीं और आरम्भ से ही इसे घाटा उठाना पड़ा है। अब ऐसे माल (ज्ञान) के भारी बोझ को अपने सिर पर लिए घूम रहा है ज्ञान की गुरुता से यह दबा जा रहा है, लेकिन इसके ज्ञान को कोई पूछने वाला नहीं है। भला, ऐसे खोटे माल को इसके कहने पर खरीदकर कौन अज्ञानी अपने को ठगवाए ? (कौन ऐसा है जो इसके बहकावे में आ जाय) ! ऐसा भी क्या कोई मूर्ख होगा जो अपने घर का मधुर दुग्ध छोड़ कर खारे कुएँ का जल पिएगा। अर्थात् कौन भगवान कृष्ण की मधुर उपासना को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर उन्मुख होगा ? हे उद्धव, यदि तुम अपना माल बेचना चाहते हो तो यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ और देरी मत करो, और उस महाजन (श्रीकृष्ण) को लेकर हमें दिखाओ, जिसने यह माल देकर तुम्हें भेजा है। तुम्हें इसके बदले मुँहमागा दाम मिलेगा। तात्पर्य यह है कि यदि तुम निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर हमें लगाना चाहते हो तो पहले हम लोगों को श्रीकृष्ण का दर्शन कराओ जो बहुत समय से हमसे बिछुड़े हैं, उसके पश्चात् हम तुम्हारे ज्ञान को स्वीकार करेंगी।

टिप्पणी—

(1) उद्धव में व्यापारी के समस्त गुणों के आरोप के कारण इसमें सांगरूपक अलंकार है। 'खार कूप को पानी' में दृष्टान्त अलंकार।
(2) 'धुरही ते खोटो खायो है' रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग।
(3) 'फाटक देकर हाटक माँगत' परिवृत्ति अलंकार।
(4) लोकोक्ति और मुहावरों का चमत्कार द्रष्टव्य है।
(5) तीखे व्यंग्य का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।

राग काफी

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्योपार तिहारो ऊधो ! ऐसोई फिरि जैहै॥
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाँड़ि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहि छाँड़ि कै को निर्गुण निरबैहै ?॥ 24 ॥

शब्दार्थ—ठगौरी = ठगपने का सौदा। फिरिजैहै = लौट जायगा (यहाँ इसकी खपत न होगी) जापै = जिसके पास। दाख = द्राक्ष (अंगूर)। कटुक निबौरी = कड़ुवा नीम का फल। मूरी = मूली। केना = बदले में (विनिमय में) दी जाने वाली वस्तु (बुंदेलखंडी प्रयोग)। मुक्ताहल = मोती। निरबैहै = निर्वाह करेगा।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव के ज्ञान के प्रति कटाक्ष करती हुई कह रही हैं कि उनका यह ज्ञान यहाँ कोई भी ग्रहण करने वाला नहीं है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, आपका यह ठगपने का सौदा योग यहाँ नहीं बिकेगा अर्थात् तुम्हारे निर्गुण ज्ञान की अग्राह्यता को हम सब समझ रही हैं (इसे ग्रहण करना हमारी क्षमता के बाहर है) वस्तुतः तुम अपनी योग-साधना के उपदेश द्वारा हमें ठगना चाहते हो। समझ लो कि तुम्हारा यह सौदा ज्यों का त्यों वापस चला जाएगा (यहाँ इसकी खपत न हो सकेगी) हे भ्रमर, तुम जिसके पास इसे ले आए हो (जिस आशा से यहाँ इसे ले आए हो) वह उसके हृदय में नहीं समा सकेगा (उसे वह सहज रूप में ग्रहण नहीं कर सकता—उसको पचाने की शक्ति उसमें नहीं है)। भला कोई अंगूर को छोड़कर अपने मुख में नीम का कड़वा फल ग्रहण करेगा। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के मधुर रूप को त्याग कर ऐसा कौन मूर्ख है जो निर्गुण ब्रह्म की कड़वाहट (उसकी अग्राह्यता) को स्वीकार करेगा ? ऐसा कौन मूर्ख है जो मूली के पत्तों के बदले में (निस्सार निर्गुण ज्ञान के एवज में) मुक्ता (श्रीकृष्ण की महार्घ भक्ति) को भेंट करेगा ? सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि भगवान के सगुण रूप को छोड़ कर कौन, निर्गुण (गुणहीन, बिना किसी गुण के ब्रह्म का निर्वाह (उपासना) करेगा (भला जिसमें कोई गुण

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ही नहीं है, वह गुणवान को छोड़ कर उसे क्यों ग्रहण करेगा)।

टिप्पणी—

(1) 'जोग ठगोरी' में रूपक अलंकार है। यह व्यापार में रूपकातिशयोक्ति है।

(2) दाख छांड़ि कै खैहै में अन्योक्ति अलंकार है।

(3) 'मूरी के पातन को केना दैहै' में तुल्योगिता अलंकार तथा वस्तु व्यंग्य होने के कारण इसमें वस्तु से तुल्योगिता अलंकार की ध्वनि है।

(4) 'केना' ठेठ बुन्देलखण्डी शब्द है। इसके प्रयोग द्वारा स्पष्ट व्यंजित है कि सूर ब्रजभाषा की समृद्धि के लिए कैसे-कैसे ठेठ शब्दों का प्रयोग कर सकते थे।

(5) इसमें ग्रामीण मुहावरे और शब्दावलियों के द्वारा अभीष्ट कथन की बड़ी तीखी और चोट करने वाली व्यंजना हुई है।

(6) गुनहि निर्गुन में श्लेष की भी झलक है।

राग नट

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँड़े॥
हमरो गति पति कमलनयन की जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप, कैसे समायँगे एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े॥
काहे को झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाँड़े॥ 25॥

शब्दार्थ—पाँड़े = पंडित, विद्वान। परमारथी = परमार्थ की शिक्षा देने वाले, अध्यात्मिक ज्ञान के उपदेशक। पुराननि = अठारहों पुराण। बनजारे = घूम-घूम कर माल बेचने वाला व्यापारी। टाँड़ा = सौदा, व्यापार का माल। गति = शरण। पति = मर्यादा, प्रतिष्ठा। कमलनयन = श्रीकृष्ण। राँड़े = जिसके कोई न हो, एकाकी। खाँड़े = तलवार। षटपद = भ्रमर (यहाँ उद्धव से अभिप्राय है)। गाँड़े = गन्ने या चारे का कटा हुआ टुकड़ा। कैसे खैयतु गाँड़े = हाथी के साथ गाँड़े कैसे खाया जा सकता है (कहावत—देखादेखी अनहोनी बात करना)। काकी = किसकी। बयारिभखि = हवा खाकर। माँड़े = मीठी रोटी। झाला मिलाना = बकवाद (झल्ल) करना। डाँड़े = दण्डित किया।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव के ज्ञान की खिल्ली उड़ाई है। गोपियों के अनुसार उद्धव जी मात्र ज्ञान के भार को ढोते फिर रहे हैं। उन्हें व्यावहारिक जीवन का अनुभव नहीं है।

व्याख्या—(उद्धव के प्रति गोपियों का व्यंग्य कथन) गोपियाँ परस्पर कह रही हैं, हे सखी, देखो तो योगशास्त्र सिखाने के लिए पण्डित जी आ गये (यहाँ पाँड़े विपरीत लक्षणा से मूर्ख का बोधक है) ये परमार्थी (ब्रह्म ज्ञान के शिक्षक) पुराणों के ज्ञान को इस प्रकार लादे हुए हैं जैसे बनजारे (घूम-घूम कर व्यापार करने वाला) बैलों पर सौदा (व्यापार का माल) लादे घूमते फिरते हैं। किन्तु हमारे लिए तो प्रियतम श्रीकृष्ण ही शरण हैं (वे ही एक मात्र हमारी शरण है) और उन्हीं से हमारी प्रतिष्ठा तथा मर्यादा है (हमारी मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाले एक मात्र वे ही हैं)। योग तो वे ही सीखेंगी जो राँड़ हैं (जो विधवा के रूप में अनाथ हैं और एकाकी जीवन बिता रही हैं)। पुनः उद्धव को सम्बोधित करके कहने लगी—भला, हे भ्रमर, यह तो बताओ कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं (अर्थात् जहाँ हमारे हृदय में श्रीकृष्ण निवास करते हैं, वहाँ निर्गुण ब्रह्म को हम कैसे स्थान दे सकती हैं)। हे भ्रमर (उद्धव) कहो तो, हाथियों के साथ गन्ने के टुकड़े कैसे खाया जा सकता है ? (देखादेखी असंभव बात कैसे पूरी की जा सकती है ?) हमें यह तो बताओ कि बिना दूध, घृत और मीठी रोटी खाए मात्र हवा भक्षण करने से (प्राणायाम करने से) किसकी भूख मिट सकती है ? (उसी प्रकार क्या योग और प्राणायाम आदि क्रियाओं से हमें श्रीकृष्ण-दर्शन का सच्चा सुख मिल सकता है ?) अतः तुम व्यर्थ में बकवाद क्यों कर रहे हो और हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जिसके लिए तुमने हमें अपनी कठोर और नीरस बातों से दण्डित किया—ऐसी बातें सुना कर हमारे मानस को पीड़ित किया। सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, तुम्हें जानना चाहिए कि धनिया, धान और कुष्माण्ड ये तीनों एक ही साथ (एक ही मौसम में) नहीं उत्पन्न होते—कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार धान वर्षा में होता है, धनिया जाड़े में और कुष्माण्ड गर्मी में उसी प्रकार निर्गुणोपासना और सगुणोपासना एक साथ नहीं हो सकती।

टिप्पणी—

(1) 'पाँड़े' में विपरीत लक्षणा का प्रयोग हुआ है। यहाँ इसका वास्तविक अर्थ अज्ञानी है।

(2) 'एक म्यान में दो खांड़े' हाथिन के संग गाँड़े और सूरदास तीनों ...... कुम्हाँड़े में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(3) 'मुहावरे और लोकोक्तियों के कारण यह पद सूर की व्यंजना वलित शब्दावली का एक उत्कृष्ट नमूना है।

(4) रहीम ने भी इसी भाव का एक दोहा लिखा है।

प्रीतम छवि नैननि बसी पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय॥

(5) चौथी और पाँचवीं पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

राग विलावल

ए अलि ! कहा जोग में नीको ?
तजि रसरीति नंदनंदन की सिखत निर्गुन फीको॥
देखत सुनत नाहि कछु स्रवननि, ज्योति ज्योति करि ध्यावत।
सुन्दर स्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत ?
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भावै।
अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं गोपिन के सुख फूलैं॥
लोक कानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि-मिलि कै घर बन खेली।
अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली॥ 26॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—नीको = अच्छाई। रसरीति = प्रेमतत्व। फीको = नीरस, निस्सार। ज्योति = ब्रह्म ज्योति। रसाल = आनन्दमय। कौतुक-रस = उनकी लीला का आनन्द। भावै = अच्छा लगता है। मेलैं = रखते थे, डालते थे। ग्रीव = गर्दन। फूलैं = आनंदित होते थे। लोककानि = लोक की मर्यादा। कुल को भ्रम = प्रतिष्ठा। खेली = खेल डाला, कुछ नहीं समझा। जहर की बेली = जहर की बूटी; जहर की लता से उत्पन्न फल।

संदर्भ—गोपियाँ उद्धव से पूछ रही हैं कि योग-शास्त्र में क्या खूबी है, जिसके तुम बहुत बड़े प्रशंसक हो। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के अतीत के उन चित्रों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है जिनसे गोपियाँ और श्रीकृष्ण दोनों को परम सुख मिलता था।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे भ्रमर, यह तो बताओ, श्रीकृष्ण के प्रेमतत्व को त्याग कर जो तुम हमें निर्गुण ब्रह्म का नीरस ज्ञान सिखा रहे हो उसमें क्या अच्छाई है (उसमें ऐसा कौन-सा आकर्षण है जिसे हम लोग ग्रहण करेंगे)। भला, जिसके रूप को न आँखों से देखते हो और न कानों से उसकी वाणी सुनते हो, केवल ज्योति-ज्योति कह कर उसका व्यर्थ में ध्यान लगाते हो (क्या यह ब्रह्म ज्योति दिखाई भी पड़ती है ?)। आश्चर्य है कि ब्रह्म की उस ज्योति के लिए तुम कैसे दयालु, कृपा के सागर श्रीकृष्ण को भुला रहे हो ? (हम सब तुम्हारे कहने पर श्रीकृष्ण के ऐसे सुन्दर रूप को कैसे भूल सकती हैं, तुम भले ही भूल जाओ)। हम लोग तो उनकी रसमय मुरली की ध्वनि सुन कर उनकी ऐसी आनन्दमय क्रीड़ा में भूल जाती थी (उनकी उस मुद्रा और आनन्दमय लीला में तन्मय हो जाया करती थी)। हमें स्मरण है कि प्रेम-मग्न श्रीकृष्ण कभी हम लोगों के कंठ पर अपनी भुजा डाल देते थे और आनंदित हो उठते थे। हम गोपियों ने भी उनके प्रेम में उनसे कभी घर में मिलकर कभी बन में मिलकर लोक की मर्यादा और कुल की प्रतिष्ठा को खेल डाला (इसकी कभी परवाह नहीं की, दूसरे शब्दों में श्रीकृष्ण के प्रेम में लोक और कुल की प्रतिष्ठा को कुछ नहीं समझा)। सूर के शब्दों में गोपियाँ कह रही हैं, लेकिन हे उद्धव, अब हम क्या देख रही हैं कि तुम श्रीकृष्ण प्रेम की जगह विष की लता से उत्पन्न फल को खिलाने के लिए आ गए हो—तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण रूपी मधुर फल न देकर तुम योग साधना जनित कटु विषैले फल से हमारे जीवन को विपाक्त करना चाहते हो।

टिप्पणी—

(1) श्रीकृष्ण के अतीत-जीवन के एक मधुर चित्र का संकेत।
(2) 'स्मृति' संचारी भाव की प्रधानता।
(3) पाँचवीं पंक्ति में कायिक अनुभाव का सहज चित्रण।
(4) सातवीं पंक्ति में प्रेम लक्षणा भक्ति की सुंदर व्यंजना हुई है।
(5) 'जोग जहर की बेली' में रूपकालंकार।
(6) 'बेली' में फल का अध्यवसान होने के कारण न्यूनपदत्व दोष है; क्योंकि विष बेली नहीं खायी जा सकती—विष फल ही खाया जा सकता है।

राग मलार

हमरे कौन जोग व्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म अधारि, जटा को को इतनौ अवराधै ?

जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै ?
आसन पवन विभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै ?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै ? ॥ 27 ॥

शब्दार्थ—हमरे = हमारे यहाँ (इस ब्रजमण्डल में)। मृगत्वच = मृगछाला। भस्म = राख। अधारी = साधुओं की बाँह के नीचे लगाने की लकड़ी। को = के लिए; कौन। अगाधै = अगाध, अथाह। मुख पर = सामने, प्रत्यक्ष (होते हुए)। अवराधै = अनुसरण करना, पालन करना। बाँध बांधना = आडम्बर करना। पवन = हवा (प्राणायाम से तात्पर्य है)। विभूति = राख। अवराधै = उपासना करना, पूजा करना। परिहरि कै = त्यागकर, छोड़कर। मानिक = माणिक्य (श्रीकृष्ण की भक्ति)। राख गाँठि को बाँधै = गाँठ में मिट्टी कौन बाँधै—निर्गुणोपासना जैसी नगण्य वस्तु का कौन अनुसरण करे ?

सन्दर्भ—उद्धव के समक्ष गोपियाँ निर्गुणोपासना को निरर्थक सिद्ध कर रही हैं। गोपियों के अनुसार श्रीकृष्ण भक्ति की तुलना में योगादि क्रियाओं का अनुसरण अनुपयुक्त है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का व्यंग्य गर्भित शैली में कथन) हे उद्धव, हमारे यहाँ आप के योग की साधना कौन करे अर्थात् यहाँ ऐसा कोई नहीं है जो इसे ग्रहण कर सके। कौन मृगछाला, राख, अधारी (हाथ को सहारा देने वाली लकड़ी) और जटा आदि धारण करने के लिए इतना प्रपंच करे (कौन योगियों के इस वेश को धारण करे ?)। भला, जिस ब्रह्म की गहराई का पता नहीं लगता, और जो अगम्य, अपार तथा अगाध है उसके लिए गिरधर श्याम सुन्दर के सामने (उनके होते हुए) कौन इतना आडम्बर करे ? कौन आसन, प्राणायाम, भस्म तथा मृगछाला आदि को ग्रहण करे और ध्यान में उस निर्गुण ब्रह्म की अवराधना करे ? सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, क्या कोई ऐसा भी मूर्ख होगा जो माणिक्य को फेंक कर अपनी गाँठ में राख बाँधना चाहेगा ? तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण की महार्घ भक्ति रूपी माणिक्य को त्यागकर अपनी गाँठ में राख बांधेगा।

टिप्पणी—

(1) काकुवक्रोक्ति अलंकार की प्रधानता।
(2) 'इते बाँध को बाँधे' में मुहावरे का प्रयोग हुआ है।
(3) योग मार्ग की क्लिष्टता और भक्ति मार्ग की सहजता का वर्णन।
(4) 'मानिक' और राख में अन्योक्ति का चमत्कार है।
(5) 'गाँठ बाँधना' भी एक मुहावरा है जिसके कारण समस्त पदावली एक विशिष्ट व्यंजना से संवलित हो गयी है।

राग धनाश्री

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो।
जो ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायो॥
कहँ वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघुजाती।
कहँ वै कमला के स्वामी सँग मिल बैठीं इक पाँती॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब साँच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी ?
जोग-कथा, पा लागों ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार॥ 28 ॥

शब्दार्थ—नातरु = नहीं तो। बरनहीन = हीनवर्ण। लघुजाती = छोटी जाति की। इक पाँती = एक ही पंगति में (उन्हीं के साथ)। कमला के स्वामी = विष्णु। निगम = वेद। घोष निवासी = गोकुल के निवासी। ता ऊपर = इससे बढ़कर। पा लागों = पैर पड़ती हूँ, विनती करती हूँ। छार = भस्म, राख (यहाँ धिक्कार से प्रयोजन है)।

सन्दर्भ—इस पद में 'आत्म समाधान' का एक सच्चा चित्र प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि गोपियों को दोनों ही प्रकार से संतोष है—यदि इस जीवन में श्रीकृष्ण का दर्शन सुलभ हो जाता है तो अति उत्तम है और यदि नहीं होता तो उन्हें इस बात का संतोष है कि मरने के बाद संसार उनके यश का गुणानुवाद तो करेगा ही कि कहाँ नगण्य गोपियाँ और कहाँ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण जिनके साथ वे मिलकर बैठती थीं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमें तो दोनों ही प्रकार से श्रीकृष्ण से प्रेम करने का फल मिला—यदि इस जीवन में उनका दर्शन हमें मिल जाता है तो अच्छा है (जीवन सफल है) और यदि ब्रजनाथ का दर्शन नहीं होता तो संसार हम लोगों का यशोगान तो करेगा ही कि नगण्य गोपियों से श्रीकृष्ण ने सच्चा प्रेम किया। सोचिए तो, कहाँ हम सब गोकुल की रहनेवाली हीनवर्ण लघु जाति की गोपियाँ (अहीरिनी) और कहाँ वे लक्ष्मीपति जिनके साथ समान रूपेण एक साथ मिलकर बैठीं (उन्होंने हम लोगों के साथ इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का भेद-भाव प्रदर्शित नहीं किया—यही उनकी महानता है)। सच पूछिए तो श्रीकृष्ण और हमारी क्या समानता थी, फिर भी उन्होंने समानता का भाव रखा जिन्हें वेद ध्यान करते हैं (मनन करते हैं) और जो ज्ञानियों-मुनियों के लिए भी अगोचर (अगम्य) है, वही हम लोगों को प्रेम में गोकुल निवासी बने—हम अहीरों की बस्ती में निवास करते रहे (भगवान होकर भी हम सबों के साथ सामान्य प्राणी की भाँति सदैव व्यवहार करते रहे), इससे भी बढ़कर आप सच्ची बात हमें यह बताएँ कि जिस मुक्ति की रट आप बारंबार लगाया करते हैं, वह किसकी दासी है—दूसरे शब्दों में वह भी तो हमारे श्रीकृष्ण की दासी ही है। (श्रीकृष्ण सुख के समक्ष मुक्ति का आनन्द नगण्य है)। अतः तुमसे पैर पकड़ कर कहती हूँ कि तुम योग की कथा हमसे बार-बार मत कहो—क्योंकि हम लोगों को इससे अपार कष्ट होता है। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि जो श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य की उपासना करते हैं उनकी माता को धिक्कार है (प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण के प्रति सच्ची भक्ति निष्ठा का जो निर्वाह नहीं करते और अन्य देवी-देवताओं की उपासना करते हैं उनकी माता ने ऐसी संतानों को व्यर्थ ही जन्म दिया)।

टिप्पणी—

(1) आत्म-समाधान वृत्ति का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।
(2) तीसरी पंक्ति से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि वर्ण-व्यवस्था अपने चरम शिखर पर थी और अहीर जैसी जातियों को हीनवर्ण और नगण्य माना जाता था। सूर द्वारा वर्णित तत्कालीन समाज का यह एक यथार्थ चित्र है।
(3) इसकी चौथी पंक्ति में श्रीकृष्ण के विष्णु अवतार का स्पष्ट संकेत है।

(4) 'पालागों' में गोपियों के अनुनय और दैन्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है।
(5) अंतिम पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार है।
(6) श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति और निष्ठा की यह प्रवृत्ति गोपियों के आत्म-समर्पण की वृत्ति को उजागर करती है।

राग कान्हरो

पूरनता इन नयन न पूरी।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुख मरति बिसूरी॥
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि विचारत वचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी॥
रहु रे कुटिल, चपल, मधु लंपट, कितव सँदेस कहत कटु कूरी।
कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजयुवती ! कैसे जात कुलिस करि चूरी॥
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर, सीतल सुभग सम रुचि रूरी।
सूर स्वातिजल बसै जिय चातक चित लागत सब झूरी॥ 29 ॥

शब्दार्थ—पूरनता = ब्रह्म की पूर्णता की बात। न पूरी = जँचती नहीं, समाती नहीं। बिसूरी = व्याकुल होकर। समूरी = पूर्णरूपेण, जड़ से। रस रूप = आनन्द स्वरूप। रत्न सागर निधि = बहुत बड़े रत्नों के सागर हैं—श्रीकृष्ण जो अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। धूरी = धूल। मधु-लंपट = मकरन्द के लोभी। कुलिस = वज्र। चूरी = चूर्ण करना। रुचि रूरी = सुरुचिपूर्ण। सुभग = सुंदर। कितव = धूर्त, छली। कूरी = क्रूर, निष्ठुर। झूरी = शुष्क, नीरस।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव के प्रति भ्रमर के माध्यम से अपना आक्रोश व्यक्त किया है। जब उद्धव ने ब्रह्म की पूर्णता का विश्लेषण करना आरम्भ किया तो गोपियाँ उनके ऐसे कथन से नाराज हो गयीं और उद्धव को फटकारने लगीं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, आपके ब्रह्म की पूर्णता की बात (ब्रह्म पूर्ण है, अखण्ड है आदि की चर्चा) हमारे इन नेत्रों में समा नहीं पाती (उन्हें नहीं जँचती)। यद्यपि तुम जो भी ब्रह्म-विषयक बात करते हो उसे हमारे कान सुनते हैं, लेकिन इन बातों से हमारे नेत्रों को संतोष नहीं होता—वे व्याकुल होकर मरने लगते हैं (उन्हें इन बातों से असह्य पीड़ा होती है)। उन्हें ऐसी शंका भी है कि कहीं ऐसा न हो कि हम सब तुम्हारे फेर में पड़ कर श्रीकृष्ण को त्याग दें। त्यागने पर नेत्रों को सुख कैसे मिल सकता है क्योंकि श्रीकृष्ण ने तो वहीं अपना स्थान बनाया है—वे गोपियों के नेत्रों में समाये रहते हैं। भगवान अन्तर्यामी है सब जानते हैं और इसे हम सब बुद्धि से पूर्णरूपेण विचार करती हैं तथा इस बात को ठीक समझती हैं, लेकिन उन आनन्दस्वरूप रत्नों के महासागर अत्यंत सौन्दर्यशाली श्रीकृष्ण जैसी महार्घ मणि को प्राप्त कर लेने पर आप हमें धूल क्यों फँका रहे हैं ? (निर्गुण ब्रह्म की नीरसता का पाठ क्यों पढ़ाते हैं—अर्थात् जहाँ आनन्दस्वरूप चिन्तामणि श्रीकृष्ण हैं वहाँ ब्रह्म चिन्तन की नीरसता से कैसे सुख मिल सकता है ?) इतना कहते-कहते गोपियों का आक्रोश बढ़ गया और वे भ्रमर के माध्यम से अतिशय अनावृत रूप में उद्धव से कहने लगीं—रे कुटिल, चंचल मकरन्द लोभी, कपटी एवं क्रूर भ्रमर ठहर जा (ज्यादा मत बोल) तू क्यों ऐसे कटु संदेश द्वारा हम सब को पीड़ित कर रहा

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है। क्या तुम नहीं जानते कि कहाँ मुनियों जैसी गंभीर साधना और कहाँ सरल अबोध ब्रज की युवतियाँ कितना अन्तर है—इन्हें ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा देना क्या उचित है ? भला, व्रज को कैसे टुकड़े-टुकड़े किया जा सकता है ? (जैसे वज्र को पीसना असंभव है उसी प्रकार इन अबोध गोपियों को ब्रह्म-साधना में प्रवृत करना)। तुम प्रत्यक्ष रूप में क्यों नहीं देखते कि एक ओर संसार में नदी, समुद्र और तालाब का सुंदर स्वादिष्ट और सुरुचिपूर्ण जल भरा हुआ है, लेकिन चातक के चित में तो एक मात्र स्वाती का ही जल बसता है, उसे अन्य जल तो सर्वथा नीरस और अपेय प्रतीत होता है (ठीक यही हमारी मानसिक दशा है—हमें श्रीकृष्ण प्रेम के अतिरिक्त सभी चीज़ें अनाकर्षक प्रतीत होती हैं)।

टिप्पणी—

(1) छठीं पंक्ति में निदर्शना अलंकार है।

(2) सातवीं और आठवीं पंक्तियों में चातक के आदर्श प्रेम का निरूपण है—इस सम्बन्ध में तुलसीदास का भी कथन है—

मान राखिबो मांगिबो पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै जब चातक मत लेहु॥

(3) दूसरी पंक्ति (तुम ...... स्रवननि सुनि समुझत ...... और सातवी पंक्ति देखु प्रगट सरिता सागर सर सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी) में छेकानुप्रास अलंकार है।

(4) 'क्यों मनि पाय खवावत धूरी' में लोकोक्ति अलंकार है।

राग धनाश्री

हमतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस क्यों विसरत सो ब्रज को वास॥
तुमसों प्रेम कथा को कहिवो मनहुँ काटिबो घास।
बहिरो तान-स्वाद कहँ जानै, गूँगो-बात-मिठास॥
सुनु री सखी, बहुरि फिर ऐहैं वे सुख विविध विलास।
सूरदास ऊधो अब हमको भयो तेरहों मास॥ 30 ॥

शब्दार्थ—काटिबो घास = व्यर्थ में सिर खपाना। अधररस = अधरामृत। बहुरि = पुनः। तेरहों मास = अवधि बीत जाना।

सन्दर्भ—इसमें यह बताया गया है कि गोपियों ने श्रीकृष्ण को अपने व्यवहार से कभी असंतुष्ट नहीं किया। उन्हें यह दृढ़ विश्वास है कि उन्होंने श्रीकृष्ण को जितना सुख पहुँचाया उसे वे कभी भूल नहीं सकते।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, श्रीकृष्ण हमसे कभी भी दुखी नहीं थे (हमने उन्हें कभी दुख नहीं दिया) और श्रीकृष्ण अपने उस व्रज-वास को कैसे भूल सकते हैं—जब हम सब उन्हें रात में अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खिलाती थीं और अपने अधरामृत पान से संतुष्ट कर देती थीं। अब तुमसे अपनी उन बीती घड़ियों की प्रेम-कथा का उल्लेख करना घास काटने के समान है (व्यर्थ में सिर खपाना है)। तुमसे अपनी बात यदि कहूँ तो उसी तरह लगेगा (प्रतीत होगा) जैसे बहरे व्यक्ति के समक्ष संगीत की बात करना। भला, बहरा संगीत के आनन्द को

क्या जानेगा और गूँगा वाणी के माधुर्य का स्वाद कैसे बता सकता है ? इतना कहते-कहते कोई गोपी अपनी सखी से कहने लगी—हे सखी, सुनो, तुमने जिन सुखों और नाना प्रकार के विलासों का उपभोग श्रीकृष्ण के साथ किया है, वे सुख और वे विलास की घड़ियाँ फिर देखने को मिलेगीं ? सूरदास का कथन है कि गोपी पुनः उद्धव की ओर उन्मुख होकर कहने लगी, हे उद्धव, अब तो हमारी अवधि बीत चुकी है (अवधि से ज्यादा हो चुका है) अतः अब श्रीकृष्ण का मिलन अवश्यमेव होगा और हम सबकी संकट की घड़ियाँ शीघ्र दूर होंगी।

टिप्पणी—

(1) दूसरी पंक्ति में स्मृति संचारी भाव है।

(2) 'घास काटिबो' एक मुहावरा है।

(3) 'बहिरो ...... बात मिठास' में उदाहरण अलंकार।

(4) अन्तिम दोनों पंक्तियों में गोपियों का आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।

(5) तेरहोमास और घास काटिबो जैसी शब्दावली द्वारा ब्रजभाषा की व्यंजना शक्ति की ओर स्पष्ट संकेत है।

राग धनाश्री

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक होत सो जानै॥
दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़न मन बाँध्यो कहे सुनत नहि कानै॥
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लोह तें भाजै, लरै जो सूर बखानै॥ 31 ॥

शब्दार्थ—रस की बात = प्रेम की बातें। दादुर = मेढक। उड़न = उड़ने में, कमल तक पहुँचने में। मनबाँध्यो = मन को कमल प्रेम में नियंत्रित कर रखा है (एक मात्र अपने मन को भ्रमर ने कमल में ही बाँध रखा है)। सुनत नहिं कानै = मर्यादा की परवाह नहीं करता (इस सम्बन्ध में मर्यादा की भी कान नहीं करता)। द्रुम भानै = वृक्षों को उखाड़ देती है। बकै = प्रलाप करते हैं। लोह = हथियार। भाजै = भाग जाता है (डर जाता है)। सूर बखानै = जो योद्धा कहा जाता है।

सन्दर्भ—इसमें उद्धव और गोपियों के दृष्टिकोण का निरूपण किया गया है। गोपियाँ श्रीकृष्ण प्रेम की महत्ता का गान करती हैं और उद्धव निर्गुण के महत्व बखानने में लगे हैं।

व्याख्या—उद्धव को भ्रमर के रूप में सम्बोधित करती हुई गोपियाँ व्यंग्य-गर्भित शैली में कह रही हैं—हे नीरस भ्रमर, तेरी बातों को कोई बुरा नहीं मानता, क्योंकि सभी जानते हैं कि तुम शुष्क हृदय हो और प्रेम की बातों के महत्व को क्या समझो। अरे नीरस भ्रमर, यदि तुम सरस होते, रसज्ञ होते तो रस (प्रेम) की बातों को ग्रहण करते—तुमसे तो रस की चर्चा ही करना बेकार है। रस की बात तो रसज्ञ ही जानते हैं। पुनः गोपियाँ अपने कथन की पुष्टि के लिए मेढक का दृष्टान्त दे रही हैं और कहती हैं कि यद्यपि मेढक जल में कमलों के निकट निवास करता है, लेकिन वह पूरे जन्म (जीवन-पर्यन्त) रस (कमलों के मकरन्द) के महत्व का सुख नहीं ले

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पाता—वह रस क्या वस्तु है इसे नहीं जान पाता। किन्तु कमल के रस-लोभी भौरों ने उसके निकट उड़ने में ही अपने मन को बाँध रखा—तात्पर्य यह है कि कमल के निकट रहने वाला मेढक कमल के मकरन्द का आस्वाद जीवन भर नहीं ले पाता, लेकिन वन में रहनेवाला भ्रमर कमल के प्रेम में (उड़ कर उसके पास पहुँचने ही में) अपने मन को लगा देता है और कहने सुनने पर भी मर्यादा की परवाह नहीं करता। प्रेमोद्रेक की स्थिति यह है कि नदी अपने किनारे के वृक्षों की परवाह न करके उन्हें तोड़ती हुई अपने प्रियतम समुद्र से मिलने के लिए चल पड़ती है। तात्पर्य यह है कि नदी का प्रेम निकट के वृक्षों से नहीं है, दूरस्थ समुद्र से है, इसी से वह किनारे के वृक्षों को तोड़ती हुई आवेग में समुद्र की ओर प्रवाहित हो जाती है। गोपियाँ इसी प्रकार अपने कथन की पुष्टि के लिए अन्य दृष्टान्त देती हुई कहती हैं—युद्ध स्थल में जो कायर होता है, वह तो मात्र प्रलाप करता है और योद्धाओं के हथियार देखकर भाग जाता है। (भयभीत हो जाता है) लेकिन जो लड़ता है वही वीर कहलाता है।

टिप्पणी—

(1) इसमें वस्तु से व्यंग्य है। उद्धव को मेढक रूप में व्यंजित किया गया है जो निकट रह कर भी रस को नहीं समझते (उद्धव जी श्रीकृष्ण के निकट हैं, लेकिन उनके प्रेम की महत्ता को नहीं समझते)। गोपियाँ भ्रमर तुल्य हैं जिन्होंने मथुरा से दूर रह कर भी अपने मन को श्रीकृष्ण प्रेम में बाँध रखा है।

(2) तीसरी, चौथी और पाँचवीं पंक्ति में तुल्योगिता अलंकार है। अंतिम पंक्ति में अर्थान्तर न्यास है।

(3) इसी आशय का एक दोहा 'पद्मावत' में भी देखने को मिला है—

भँवर आइ बन खंड सँग, लेहि कँवल कै बास।
दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास॥

इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी यही भाव है—

कुमोदिनी जल में बसै चंदा बसै आकास।
जो जाही की भावना सो ताही के पास॥

(4) प्रेम-लक्षणा भक्ति में लोक मर्यादा का तिरस्कार बताया गया है, चौथी और पाँचवीं पंक्ति में इसका सुस्पष्ट संकेत है।

(5) 'सूर' में श्लेष—यह वीर और सूर कवि दोनों के लिए प्रयुक्त है।

राग धनाश्री

घर ही के बाढ़े रावरे।
नाहिन मीत वियोगवस परे अनवउगे अलि बावरे !
भुख मरि जाय चरै नहिं तिनुका सिंह को यहै स्वभाव रे !
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग-जहर न खवाव रे !
ऊधो हमहि सीख का दैहो ? हरि बिनु अनत न ठाँव रे !
सूरदास कहाँ लै कीजै थाही नदिया नाव रे॥ 32 ॥

शब्दार्थ—घर ही के बाढ़े = घर ही में बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करने वाले। रावरे = आप। मीत = मित्र। अनवउगे = सहोगे, अँगवोगे। भुख मरि जाय = भले ही भूखों मर जाय। तिनुका = घास। जोग-जहर = विष तुल्य योग की चर्चा। अनत न ठाँव = अन्यत्र शरण नहीं है। थाही = थहाई हुई (जिसकी गहराई समझी बूझी है)।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव के प्रलाप को सुनकर क्रुद्ध हो गयीं और कहने लगीं कि उद्धव जी अपने ज्ञान का जितना ढिंढोरा पीट रहे हैं, उतना वह है नहीं। इसमें गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठता और प्रेम की अनन्यता की व्यंजना हुई है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का व्यंग्य-कथन) हे उद्धव, तुम अपने घर पर ही अपने ज्ञान की थोथी बातों का बढ़-बढ़कर भले ही बखान कर लो, किन्तु जब दूसरे के समक्ष पहुँचोगे तो पता चलेगा कि तुम्हारे ज्ञान में कितनी गहराई है। तात्पर्य यह है कि हम गँवार गोपियों में ही तुम अपने ज्ञान का प्रलाप करने वाले हो। हे मित्र, अभी तुम वियोग के फेर में नहीं पड़े (अभी तुमने वियोग की पीड़ा का अनुभव नहीं किया) हे पागल भ्रमर (हे अज्ञानी उद्धव) जब हमारी स्थिति में पड़ोगे तो तुम्हें भी ऐसी वियोग पीड़ा सहनी पड़ेगी। कहा जाता है कि सिंह का यह स्वभाव है कि मांस न मिलने पर वह कभी घास नहीं चरेगा, भले ही वह भूखों मर जाय। उसी प्रकार श्रीकृष्ण के दर्शन न होने पर भले ही हम लोग उनके वियोग में मर जायें, लेकिन किसी अन्य की उपासना नहीं करेंगी। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ये हमारे कान श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि रूपी सुधा (अमृत) से पोषित हैं (श्रीकृष्ण ने अपनी मुरली की सुधोपम ध्वनि से इन कानों को आनंदित किया है) अब उन्हीं कानों को अपनी योग-साधना विषयक कटु वाणी (जहरीली बातों) से पीड़ित मत करो। तात्पर्य यह है कि कहाँ मुरली की मधुर ध्वनि और कहाँ तुम्हारी यह कटु योग वार्ता—दोनों में कितना अन्तर है। हे उद्धव, तुम हमें क्या शिक्षा दोगे—हम तो तुम्हारी बातों को भली भाँति समझती हैं। हमारे लिए तो एक मात्र श्रीकृष्ण की ही शरण है—कृष्ण के बिना अन्यत्र हमारे लिए कोई स्थान (शरण) नहीं है। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—हे उद्धव, हम थहायी हुई नदी के लिए आपकी योग रूपी नाव को लेकर क्या करेंगी अर्थात् जिस संसार की गहराई के बारे में हम लोग जान चुकी हैं (यह संसार कितना छिछला है इसे पार करना कौन सी मुश्किल बात है) उसे पार करने के लिए आपकी योग चर्चा रूपी नाव की क्या आवश्यकता ? अरे, नाव तो गहरी नदी में चलायी जाती है (जब संसार को बिना योग-साधना के ही पार किया जा सकता है तो इसे (योग रूपी नाव को) ग्रहण करने की क्या अपेक्षा है) ? यह नाव (योग) तुम जैसे योगियों के लिए अधिक उपयोगी है, हम गोपियों के लिए श्रीकृष्ण की भक्ति और प्रेम ही बहुत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी—

(1) 'घर ही के बाढ़े' में लोक-प्रचलित मुहावरे एवं रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग।

(2) तीसरी पंक्ति में उदाहरण अलंकार।

(3) 'जोग-जहर' में रूपक अलंकार।

(4) 'थाही नदिया नाव' में लोकोक्ति से अन्योक्ति अलंकार की ध्वनि है।

(5) सुधा मुरली में 'ध्वनि' का लोप है, अतः न्यून पदत्व दोष है इस कारण रूपक की ठीक संगति बैठ नहीं सकी।

(6) पाँचवीं पंक्ति में एक मात्र भक्तों के लिए भगवान की शरण का संकेत है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग मलार

स्यामपुख देखे ही परतीति।
जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति॥
नाहिंन कछू सयान ज्ञान में यह हम कैसे मानैं।
कहौ कहा कहिए या नभ को कैसे उर में आनैं॥
यह मन एक, एक वह सूरति, भृंगकीट सम माने।
सूर सपथ दै बूझत ऊधौ वह व्रज लोग सयाने॥ 33॥

शब्दार्थ—परतीति = विश्वास। सयान = चतुराई। भृंगकीट सम = भृंगी कीड़े के समान (भृंगी कीड़े के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता कि वह जिस कीड़े को पकड़ता है उसे भी अपने समान कर देता है)। सपथ दै = सौगन्ध देकर। बूझत = पूछते हैं। नभ = आकाश, शून्य (ब्रह्म के प्रति संकेत)।

सन्दर्भ—गोपियाँ श्रीकृष्ण के समक्ष किसी को भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उद्धव जी गोपियों को योग की बलात् शिक्षा देना चाहते हैं; लेकिन गोपियों का आग्रह है कि श्याम सुन्दर के सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल को देख लेने पर औरों के प्रति विश्वास नहीं होता।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम जो हमें अतिशय यत्नपूर्वक योगाभ्यास की रीतियाँ सिखा रहे हो वह हमारे लिए बेकार है, क्योंकि हमें तो श्रीकृष्ण के मुख को देख लेने पर ही इसमें विश्वास हो सकता है तात्पर्य यह है कि हमारा विश्वास श्रीकृष्ण के मुख सौन्दर्य के प्रति है; अन्यों के लिए हमारे मानस में किसी प्रकार का विश्वास नहीं है। तुम हमें ज्ञान की शिक्षा दे रहे हो, लेकिन तुम्हारे इस ज्ञान-शिक्षा में भी मुझे कुछ चालाकी मालूम होती है—हम यह कैसे स्वीकार कर लें कि तुम बिना किसी प्रयोजन के हमें ज्ञान की बातें सिखा रहे हो (तात्पर्य यह है कि तुम चालाकी से हमें निर्गुण ब्रह्मोपासना में प्रवृत्त करके श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रति उदासीन करना चाहते हो)। यह तो बताओ कि इस असीम आकाश (शून्य; ब्रह्म) के सम्बन्ध में क्या कहा जाय अर्थात् आकाश की भाँति शून्य इस ब्रह्म के सम्बन्ध में क्या कहा जाय (कैसे इसका निरूपण किया जाय) और किस प्रकार समेट कर अपने छोटे से हृदय में इसे बसा लें (यह ब्रह्म आकाश की भाँति शून्य और अनन्त है) अतः मानस के लिए अग्राह्य एवं अगम्य है) उद्धव जी हमारा मन भी एक है और श्यामसुंदर की मूर्ति भी एक ही है अतः भृंगी कीड़े की भाँति दोनों एक हृदय हो गये हैं (जैसे भृंगी कीट किसी कीड़े को पकड़ कर उसे अपने अनुरूप बना लेता है, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भृंगी कीट की भाँति हमें अपने रंग में रंग लिया। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं, हे उद्धव, व्रज के चतुर लोग तुमसे सौगन्धपूर्वक पूछना चाहते हैं कि जब दोनों (हमारा मन और श्रीकृष्ण) एक ही रंग में रँग गये हैं तो योग-साधना की ओर कैसे जा सकते हैं ?)

टिप्पणी—

(1) 'नभ' ब्रह्म के प्रतीक रूप में प्रयुक्त।
(2) 'भृंगकीट सम' में धर्मलुप्तोपमा अलंकार।
(3) पाँचवीं पंक्ति में अनन्यता का भाव है। अभिन्नता की ऐसी स्थिति प्रेम-मार्ग की सत्यता में ही दृष्टिगत हो सकती है।

राग धनाश्री

लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकैं छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतरगति यों लूटत॥
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद गृह बन तें आवत॥
चरनकमल की सपथ करति हौं यह सँदेस मोहि विष सम लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत॥ 34॥

शब्दार्थ—अंतरगति = चित की वृत्ति, मन। लरिकाई = बचपन। अलि = भ्रमर (उद्धव)। निमिष = एक पल को। बिसरत = भूलता है।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने बचपन के साहचर्य जनित प्रेम-भाव को व्यक्त किया है। यह प्रेम के सहज विकास की स्थिति का एक सजीव चित्र है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, कृष्ण के प्रति हमारा यह प्रेम भाव आकस्मिक नहीं है, बल्कि इसका उदय बचपन से हुआ है, अतः बचपन का प्रेम कैसे छूट सकता है। व्रजनाथ (श्रीकृष्ण) के चरित्र की क्या विशेषताएँ रहीं उन्हें तुम्हें कैसे बताऊँ, उनकी ये विशेषताएँ हमारी चित्तवृत्ति को आज भी अभिभूत कर लेती हैं (उनके चरित्र की जब याद करती हूँ तो हमारा मानस भाव-मग्न हो जाता है)। उनकी चंचल गति, सुन्दर चितवन और वह मुस्कराहट तथा मन्द-मन्द स्वरों से जब वे गाते थे—वह गाने का ढंग यही नहीं जब वे नटवर वेश में नाना प्रकार के विनोद करते हुए बन से घर लौटते थे, तो हमारा मन श्रीकृष्ण की उस मुद्रा पर मोहित हो जाता था। हम उनके कमलवत् चरणों की सपथ खाकर कहती हैं कि उनका यह योग का संदेश श्रीकृष्ण की उस रूप-माधुरी के समक्ष विष के समान दुखद प्रतीत होती है (श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी की तुलना में योगशास्त्र विषयक ये बातें हमें जहर के समान दग्ध करने वाली प्रतीत होती हैं) सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव, हमें सोते-जागते (किसी भी अवस्था में) श्रीकृष्ण की वह माधुर्यपूर्ण मूर्ति (स्वरूप) एक क्षण के लिए नहीं भूलती (हमारा मानस सदैव उसी रूप-माधुरी में डूबा रहता है)।

टिप्पणी—

(1) 'अन्तरगति यों लूटत' में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग,
(2) तीसरी और चौथी पंक्ति में स्मृति संचारी भाव,
(3) श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का चित्रात्मक वर्णन,
(4) पाँचवीं पंक्ति में समानधर्मलुप्तोपमा अलंकार,
(5) अन्तिम पंक्ति में 'मोह' संचारी भाव,
(6) प्रेम के सहज विकास का इसमें बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।

राग सोरठ

अटपटि बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी को है ?
हम अहीरि अबला सठ, मधुकर ! तिन्हैं जोग कैसे सोहै ?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बूचिहि खुभी आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुँडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ी अंगहि केसरि॥
बहिरी सों पति मतो करै सो उतर कौन पै पावै ?
ऐसो न्याव है ताको ऊधौ जो हमैं जोग सिखावै॥
जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढ़ाय हम लीन्हे।
सूरदास नरियर जो बिष को करहिं बंदना कीन्हे॥ 35 ॥

शब्दार्थ—अटपटि = बेढंगी, विचित्र। बूचिहि = कनकटा (जिनका कान कटा हो)। खुभी = लौंग नामक कान का आभूषण। नकटी = जिसकी नाक कटी हो। बेसरि = नथ। आँधरी = अंधी। मुँडली = मुंडी, जिसका सिर मुँड़ा हो। पाटी पारना = बाल सँवारना। मतो करै = सलाह करे। उतर = उत्तर, जवाब। कौन पै = किससे। न्याव = दशा। सिर चढ़ाय = शिरोधार्य। नरियर जो बिष ..... कीन्हे = जो विष का नारियल है उसे दूर से ही प्रणाम करते बनता है।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव की बातों को बहुत बेढंगा और अनुपयुक्त समझकर व्यंग्य-गर्भित शैली में उनकी कटु आलोचना की है। उद्धव ने जो पात्रता और अपात्रता का ध्यान दिए बिना योग की शिक्षा दी है, गोपियों ने उसे सर्वथा अग्राह्य माना।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, ऐसी कौन हैं जो तुम्हारी यह अटपटी वाणी सुने, अर्थात् तुम जो योग-साधना की शिक्षा दे रहे हो वह यहाँ किसी के पल्ले नहीं पड़ेगी। अटपटी बात यह है कि हम सब अहीरिनी और अबला हैं। ऐसी स्थिति में हे शठ भ्रमर, हे अज्ञानी और जड़ उद्धव योग साधना हमें कैसे शोभा दे सकती है (हमें यह कैसे अच्छी लग सकती है)। भला, यह तो बताओ कि जिसके कान कटे हैं वह लौंग नामक कर्णाभूषण कैसे ग्रहण करेगी। अंधी स्त्री काजल कैसे लगाएगी, और नकटी नथ कैसे धारण करेगी (ये सब चीज़ें इनके लिए असंभव हैं)। तुम्हारे योग की साधना भी हमारे लिए इसी प्रकार है। सोचो तो, जो मुंडी है (जिसके सिर में बाल ही नहीं है) वह केश कैसे सँवारेगी—उसका केश सँवारना-संभव नहीं। तुम्हारी बातें तो ऐसी हैं जैसे कोढ़ी के अंग में केशर लगाना (भला कोढ़ी के अंग में—जिसका अंग गलित है केशर कहाँ लगाई जा सकती है)—उसमें केशर लगाने की पात्रता कहाँ है ? और यह उसी प्रकार है जैसे किसी बहिरी स्त्री का पति उससे किसी प्रकार की सलाह ले तो उसे उत्तर कौन देगा ? तात्पर्य यह है कि तुम्हारी इन बातों को सुनने के लिए हमारे कान बहरे हैं—तुम्हें उत्तर नहीं मिलेगा। हमें जो योग की शिक्षा देना चाहेगा, उसकी स्थिति इसी प्रकार की होगी। तुम जो हमारे लिए उपहारस्वरूप यह योग लाए हो उसे हमने शिरोधार्य कर लिया, लेकिन हमारे लिए यह विषैला नारियल के समान है जिसे दूर से ही प्रणाम करते बनता है—यह सुग्राह्य नहीं है। अर्थात् तुम जो संदेश लाए हो उसे हम वंदनीय समझती हैं; लेकिन जो आपकी योग साधना का उपदेश है वह अग्राह्य है।

टिप्पणी—

(1) 'विष का नारियल' एक मुहावरा है।
(2) इसमें गोपियों ने सामान्य जन-जीवन से गृहीत उदाहरणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है।
(3) तीसरी, चौथी और पाँचवीं पंक्तियों में मालोपमा है।

(4) व्यंग्य एवं हास्य की प्रधानता है।
(5) इसमें सूर की वाग्विदग्धता प्रकट हुई है।

राग बिहागरो

बरु वै कुब्जा भलो कियो।
सुनि सुनि समाचार ऊधौ मो कछुक सिरात हियो॥
जाको गुन, गति, नाम, रूप, हरि हार्‌यो, फिरि न दियो।
तिन अपनो मन हरत न जान्यो हँसि हँसि लोग जियो॥
सूर तनक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियो।
और सकल नागरि नारिन को दासी दाँव लियो॥ 36 ॥

शब्दार्थ—बरु = बल्कि। सिरात हियो = हृदय शीतल हो जाता है। हार्‌यो = हर लिया। तिन = श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त है। हँसि हँसि लोग जियो = लोग श्रीकृष्ण की खिल्ली उड़ा-उड़ाकर जीते हैं। नागरि नारिन = चतुर स्त्रियाँ, सभ्य नारियाँ।

सन्दर्भ—इसमें कुब्जा के प्रति श्रीकृष्ण के ऐसे प्रेम-भाव को देखकर गोपियों ने उन्हें उलाहना दिया है। एक समय श्रीकृष्ण ने सभी चतुर नारियों के मन को हरण किया। आज स्थिति यह है कि वे स्वयं कुब्जा द्वारा ठगे गये।

व्याख्या—(उद्धव से गोपियाँ कुब्जा के सम्बन्ध में कह रही हैं। हे उद्धव, बल्कि कुब्जा ने श्रीकृष्ण के साथ अच्छा व्यवहार किया। तात्पर्य यह है कि उसने खूब सोच-समझकर उनसे बदला लिया है। कुब्जा के ऐसे व्यवहार का समाचार सुन-सुनकर हम लोगों का हृदय कुछ शीतल हो गया (हम सब को बड़ी प्रसन्नता हुई) आखिर मिली तो उन्हें एक खिलाड़िन । अभी तक तो यही देखती रही कि श्रीकृष्ण ने जिसके गुण, नाम और रूप को हर लिया था उसे कभी वापस नहीं किया (हजम कर लिया) व्यंजना यह है कि हम सब गोपियों के गुण-गति, नाम और रूप को उन्होंने हर लिया और सब परेशान हैं, लेकिन अभी तक वे इन्हें लौटा न सके। अब इन्हें भी कोई जोड़ की मिल गयी है। उसने (कुब्जा ने) इनके मन को ऐसा हरण किया कि अभी तक उसे वे पा नहीं सके (तात्पर्य यह है कि गोपियों के प्रेम को भूल कर श्रीकृष्ण अब कुब्जा के वशीभूत हो गये हैं)। लोग श्रीकृष्ण की ऐसी दशा पर हँसते हैं और सोचते हैं कि बनते बड़े चालाक थे, किन्तु आज कुब्जा के आगे इनकी कोई चालाकी नहीं चल सकी। जरा, देखिए तो थोड़ा सा चंदन लगा कर श्रीकृष्ण को अपने कब्जे में कर लिया और उन्हें मालूम भी नहीं हुआ कि उनका मन कैसे अपहृत हो गया। तात्पर्य यह है कि उसकी बहुत सामान्य सेवा से वे पराजित हो गये और उसे अपना सब कुछ दे दिया। इसके विपरीत हम लोग जीवन भर उनकी सेवा करती रही, उनके एक वंशी स्वर के पीछे दौड़ पड़ती थी। लेकिन उन्होंने कभी भी अपना मन हम लोगों को नहीं सौंपा। अब हम लोगों को प्रसन्नता है कि मथुरा की सब कुलीन और श्रेष्ठ स्त्रियों का बदला उस दासी कुब्जा ने ले लिया। उससे इनका कोई दाँव नहीं लग सका। व्यंजना यह है कि मथुरा की ऐसी नारियों को छोड़कर श्रीकृष्ण ने कुब्जा से प्रेम किया अर्थात् एक नगण्य दासी से प्रेम किया, यह लज्जास्पद बात है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) व्यंग्य काव्य का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।
(2) कुब्जा के सन्दर्भ में यहाँ असूया संचारी की प्रधानता है।
(3) वस्तु से वस्तु व्यंग्य—कुब्जा की प्रशंसा के द्वारा श्रीकृष्ण की निष्ठुरता की अभिव्यक्ति।
(4) दूसरी पंक्ति में काव्य लिंग अलंकार है।

राग सारंग

हरि काहे के अंतर्यामी ?
जौ हरि मिलत नहीं यहि औसर, अवधि वतावत लामी ॥
अपनी चोप जाय उठि बैठे और निरस बेकामी ?
सो कहँ पीर पराई जानै जो हरि गरुड़ागामी ॥
आई उघरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी।
सूर इते पर अनख मरति हैं, ऊधो, पीवत मामी ॥ 37 ॥

शब्दार्थ—अन्तर्यामी = सब में व्याप्त। लामी = लम्बी, बहुत बड़ी। चोप = उमंग, उल्लास। निरस = नीरस। बेकामी = निष्कामी। आमी = आम। अनख = नाराज। पीवत मामी = बात को पी जाते हैं, किसी चीज को साफ इन्कार कर देते हैं (यह एक मुहावरा है)। गरुड़ागामी = गरुड़ पक्षी की सवारी करने वाले। उधरि आई = खुल गयी, प्रकट हो गयी।

प्रसंग—इसमें गोपियों ने श्रीकृष्ण और उद्धव के प्रति अपना उपालम्भ-भाव व्यक्त किया है।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव, तुम जो यह कहते हो कि हरि अंतर्यामी हैं (सब के हृदय में व्याप्त है) यह हम कैसे मान लें ? वे जब हमसे मिलते नहीं—ऐसी वियोगावस्था में भी जब वे हमें दर्शन नहीं देते और अपने आने की लम्बी अवधि (दीर्घ समय) बताते हैं तो उन्हें अन्तर्यामी की संज्ञा कैसे दी जा सकती है। वे तो अपनी उमंग में स्वेच्छया मथुरा जाकर छा गये—उन्हें वहाँ जाने के लिए हम लोगों ने कहा तो था नहीं ! अब क्या देखती हूँ कि वहाँ जाते ही उन्होंने अपनी सहृदयता भुला दी और नीरस तथा निष्कामी बन गये (अब योगियों की भाँति निष्कामना की बात करने लगे)। भला, वे दूसरों की पीड़ा का अनुभव क्या कर सकते हैं जो सदैव गरुड़ की सवारी किया करते हैं तात्पर्य यह है कि जो कभी सामान्य लोगों की भाँति भूतल पर पैर ही नहीं रखते वे भूतल पर रहने वालों की पीड़ा क्या समझ सकते हैं ? लेकिन अब उनके झूठे प्रेम का रहस्योद्घाटन उसी प्रकार हो गया जैसे किसी बर्तन की कलई पर खट्टे आम को मल देने पर उसका वास्तविक रंग उभर आता है—मथुरा जाने पर ही पता लग गया कि श्रीकृष्ण का हम लोगों के प्रति कितना प्रेम था—वस्तुतः यह वियोग उनके प्रेम को कसने की सच्ची कसौटी है। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, हम सब इतने पर भी दुख से कुढ़ती रहती हैं कि वे अब भी साफ इनकार करते हैं कि हम तुम सबों से अलग नहीं हैं अर्थात् यह नहीं मानते कि उनका प्रेम सर्वथा झूठा और बनावटी है।

टिप्पणी—

(1) 'आई उघरि प्रीति कलई' में लोकोक्ति अलंकार है।
(2) 'अपनी चोप जाय उठि बैठे' में मुहावरे का सुंदर प्रयोग है।
(3) 'सो कह पीर पराई जानै' मुहावरे जैसा प्रयोग (जाके पैर न फटै बिवाई सो का जाने पीर पराई)
(4) 'गरुड़गामी' में परिकरांकुर अलंकार। गरुड़गामी विशेषण कृष्ण के लिए साभिप्राय अर्थ में प्रयुक्त है। गरुड़ की कठोरता प्रसिद्ध है—उसकी सवारी करने वाले में भी उसकी कठोरता का गुण मौजूद है।
(5) 'मामी पीना' भी एक मुहावरा है जो सूर की अर्थ-व्यंजकता में पूर्ण योग देता है।

राग सारंग

बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे !
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे ॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे ॥
मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन न्यारे ॥ 38 ॥

शब्दार्थ—बिलग जनि मानहु = बुरा मत मानो। कारे = काला (यहाँ यह कपटी अर्थ का व्यंजक है)। सुफलकसुत = अक्रूर। मधुप = भ्रमर। भँवारे = भ्रमणशील, घूमने वाला। कमल नैन = श्रीकृष्ण। मनिआरे = मणिवाले सर्प (कहा जाता है कि जो सर्प पुराने हो जाते हैं वे अपेक्षाकृत अधिक जहरीले होते हैं और उन्हीं में मणि भी होती है)। माट = मिट्टी का घड़ा। काढ़े = निकाले गये हैं। पखारे = धोए गए हैं। तागुन = काले गुण से। कालिंदी = यमुना। स्यामगुन न्यारे = कालों के गुण सबसे अलग और विलक्षण हैं।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने श्रीकृष्ण, अक्रूर और उद्धव तथा भ्रमर के श्यामवर्ण पर व्यंग्योक्ति द्वारा गहरी चोट की है।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं 'हे प्यारे उद्धव, तुम हमारी बातों को बुरा मत मानना—हमारी समझ में यह मथुरा नगरी काली कोठरी के समान है—क्योंकि वहाँ से जो भी आते हैं, सभी काले लगते हैं' (तात्पर्य यह है कि तुम्हारी मथुरा कपटी पुरुषों की नगरी है और वहाँ से जो भी आते हैं सभी कपटी प्रवृत्ति के लगते हैं)। इसका प्रमाण यह है कि तुम भी वहीं से आए हो और काले हो (कपटी जैसी बातें करते हो)। अक्रूर भी हमें काले लगे क्योंकि अपने कपटाचरण से कृष्ण और बलराम को फुसलाकर यहाँ से ले गये और वहाँ का भ्रमणशील भौंरा भी काला है (उसके कपट की बात प्रकट है—वह कहीं टिकता नहीं सभी पुष्पों का रस लेता है और किसी के साथ सच्चे प्रेम का निर्वाह नहीं करता)। इतने कालों के बीच सबसे भयंकर मणिधारी सर्प के समान श्रीकृष्ण की शोभा बढ़ जाती है—तात्पर्य यह है कि इन काले हृदय वालों में श्रीकृष्ण सबसे बढ़कर कपटी सिद्ध हुए हैं—ये उस मणिधारी भयंकर जहरीले सर्प की भाँति हैं जिसके काटने पर प्राणों की रक्षा की ही नहीं जा सकती। ऐसा लगता है कि ये सब

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

नील के घड़े से निकाल कर इन्हें यमुना के जल में ले जाकर धोया गया और यमुना भी इनके धोने से (इनके श्याम गुणों के कारण) काली पड़ गयी (इनका काला रंग उस पर भी चढ़ गया)। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि श्याम का गुण ही बड़ा विलक्षण है, इसे कौन जान सकता है ?

टिप्पणी—

(1) 'काजर की कोठरी' के सम्बन्ध में यह छन्द अति प्रसिद्ध है—
काजर की कोठरी में कैसेहू सयानो जाय काजर की एक लीक लागिहैं, पै लागिहैं।
मथुरा वालों के कपटाचरण के सम्बन्ध में आधुनिक ब्रजभाषा कवि रत्नाकर जी ने भी कहा है—मथुरा वारे दोउ एकै ढार ढारे हैं।

(2) 'मनिआरे' शब्द के वास्तविक और चमत्कारपूर्ण अर्थ पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कदाचित् ध्यान नहीं दिया और उसका अर्थ 'सुहावना' 'रौनक' किया है जो प्रसंगानुकूल ठीक नहीं है। मणिधारी सर्प के अर्थ में यह शब्द अधिक चमत्कार पूर्ण प्रतीत होता है।

(3) 'मनिआरे' में परिकरांकुर अलंकार है—सर्प की भाँति श्रीकृष्ण ने गोपियों को डस लिया और वे सब वियोग व्यथा के विष से मूर्च्छित हैं। यह साभिप्राय विशेषण का प्रयोग है।

(4) मानहु .....काढ़े में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार, तागुन .....कालिंदी में तद्गुण। 'स्याम' में श्लेष का चमत्कार दृष्टव्य है।

(5) तागुन में यहाँ विपरीत लक्षणा का प्रयोग हुआ है—यहाँ 'गुन-अवगुण' के अर्थ में प्रयुक्त है।

(6) 'छवि उपजत' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि की प्रधानता है। यहाँ छवि उपजत श्रीकृष्ण के विशेष कपटाचरण का बोधक है।

राग सारंग

अपनो स्वारथ को सब कोऊ।
चुप करि रहौ, मधुप रस-लंपट, तुम देखे अरु वोऊ॥
औरो कछू सँदेस कहन को कहि पठयो किन सोऊ॥
लीन्हें फिरत जोग जुवतिन को बड़े सयाने दोऊ॥
तब कत मोहन रास खिलाई जो पै ज्ञान हुतोऊ ?
अब हमरे जिय बैठो यह पद होनी 'होउ सो होऊ'॥
मिटि गयो मान परेखो ऊधो हिरदय हतो सो जोऊ।
सूरदास प्रभु गोकुलनायक चित-चिंता अब खोऊ॥ 39 ॥

शब्दार्थ—रस-लंपट = मकरन्द के लोभी। वोऊ = उन्हें भी (कृष्ण से प्रयोजन है)। किन सोऊ = वह भी क्यों नहीं कह डालते। रास खिलाई = रास रचाया। हुतोऊ = था। पद = वाक्य। मान परेखो = मान-सम्मान और पश्चाताप का भाव। हतो = था। जोऊ = जो भी। खोऊ = खो गया = नष्ट हो गया।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने उद्धव और श्रीकृष्ण दोनों को स्वार्थी बताया है। इसके अतिरिक्त गोपियों के हृदय की उदारता, सहनशीलता और विशालता का भी परिचय मिलता है।

व्याख्या—गोपियाँ खीझकर उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव, सभी अपने स्वार्थ के हैं (हमने देख लिया कि सभी इस संसार में परम स्वार्थी हैं)। अब हे मकरन्द लोभी (स्वाद प्रिय) भ्रमर (उद्धव) चुप रहो—ज्यादा बढ़-बढ़कर बातें मत करो। हमने तुम्हें भी समझ लिया उन्हें भी (श्रीकृष्ण को भी)। इतना संदेश कहने के अतिरिक्त यदि उन्होंने कुछ और संदेश भेजा है तो उसे भी क्यों नहीं कह डालते। तात्पर्य यह है कि तुमने जितनी जली-भुनी बातें बताई हैं उन सबको सहने के लिए हम सब का मानस तैयार है—तुम जो भी खरी-खोटी सुनाओगे उसे हम सब सहर्ष बर्दाश्त कर लेंगी। तुम दोनों (कृष्ण और तुम) बड़े ही चतुर हो जो युवतियों को अर्पित करने के लिए योग का संदेश लिए फिर रहे हो। जब उन्हें ज्ञान का ही संदेश देना था तो हमसे रस-रीति की बातें क्यों कीं और किस लिए हमारे साथ रास रचाया ? अब हम लोगों के मन में यह बात पूरी तरह से बैठ गयी कि जो कुछ भी ब्रह्मा की ओर से होना है वह होवे किन्तु श्रीकृष्ण की प्रेम-साधना में किसी भी प्रकार का व्यवधान न होने पाए (हमारे मानस में इतने संकट के बावजूद कृष्ण की भक्ति और उनका प्रेम-भाव निरन्तर बना रहे)। हे उद्धव, अब तो हमारे मन में जो भी थोड़ा-बहुत मान-सम्मान और पश्चाताप का भाव था वह भी समाप्त हो गया (अब न तो कृष्ण के प्रति मान-अपमान की भावना हमारे मन में शेष रही और न उनके लिए किसी प्रकार का पछतावा ही है)। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं, हे उद्धव अब हमें यह दृढ़ विश्वास है कि गोकुल के स्वामी (श्रीकृष्ण) हमारे मन की समस्त चिन्ता को अवश्य ही दूर करेंगे। (यहाँ भक्त की भगवान के प्रति दृढ़ आस्था और विश्वास का भाव व्यक्त हुआ है)।

टिप्पणी—

(1) प्रथम दो पंक्तियों में 'अमर्ष' संचारी भाव है।

(2) सातवीं पंक्ति में गीता के उस मानापमान भाव के विसर्जन की बात बतायी गयी है जो भगवान के सच्चे भक्तों के लिए परमावश्यक है।

(3) चौथी पंक्ति में उद्धव और श्रीकृष्ण दोनों को अतिशय चतुर-चालाक बताया गया है।

(4) प्रथम पंक्ति में दोनों की स्वार्थमूलक प्रवृत्ति की कटु आलोचना की गयी है।

राग सारंग

तुम जो कहत सँदेसो आनि।
कहा करौं वा नँदनंदन सों होत नहीं हितहानि॥
जोग-जुगुति किहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि ?
सने सनेह स्यामसुन्दर के हिलि मिलि कै मन मानि॥
सोहत लोह परसि पारस ज्यों सुबरन बारह बानि।
पुनि वह चोप कहाँ चुम्बक ज्यों लटपटाय लपटानि॥
रूपरहित नीरासा निरगुन निगमहु परत न जानि॥
सूरदास कौन विधि तासों अब कीजै पहिचानि॥ 40 ॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—आनि = आकर। हित-हानि = प्रेम की हानि (प्रेम का त्याग)। सने सनेह = प्रेम में डूबे हुए। सुबरन = स्वर्ण, सोना। बारह बानि = तपाया गया सोना, खरा। चोप = उमंग, चाव। लटपटाय = अनुरक्त होकर, मोहित होकर। लपटानि = लिपट जाने का भाव। नीरासा = आशारहित। निगमहु = वेदों को भी। कौन विधि = किस प्रकार।

संदर्भ—इसमें गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम में अनुरक्त अपने मन की विवशता का वर्णन कर रही हैं। उनके अनुसार यह मन श्रीकृष्ण के प्रेम में इतना तन्मय है कि उसे योग की समस्त युक्तियाँ बेकार प्रतीत होती हैं, इस पर इन युक्तियों का प्रभाव किसी भी प्रकार नहीं पड़ता।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम यहाँ आकर योग का संदेश हमें दे रहे हो, लेकिन क्या करें हमारी यह विवशता है कि हमसे श्रीकृष्ण के प्रेम को त्यागते नहीं बनता। यद्यपि तुम्हारी योग-साधना विषयक युक्तियाँ अत्यंत सुखदायिनी हैं, लेकिन ये हमारे किस काम की हैं अर्थात् जब इस योग-साधना के लिए श्रीकृष्ण प्रेम को हमें त्यागना पड़े तो इसकी हमारे लिए क्या उपयोगिता, क्योंकि यह निश्चित बात है कि हम श्रीकृष्ण प्रेम को किसी भी प्रकार त्याग नहीं सकतीं। तुम्हें जानना चाहिए कि श्यामसुन्दर के प्रेम में तन्मय हमारे मन ने उनसे हिल-मिलकर अपना सब कुछ अर्पित कर दिया और उनकी भक्ति और प्रेम को स्वीकार कर लिया—अब उसे त्यागना हमारे लिए असंभव है। यथा लोहा जब एक बार पारस पत्थर के स्पर्श से बारहबानी (खरा) स्वर्ण के रूप में परिणत हो जाता है तो पुनः उसमें वह चाव या उमंग कहाँ शेष रहती है कि चुम्बक से मोहित होकर लिपट जाय (स्वर्ण हो जाने पर पूर्व स्थिति नहीं रह जाती) उसी प्रकार श्रीकृष्ण के प्रेम में पगा हमारा यह मन अन्यत्र नहीं जा सकता (यह मनःस्थिति की परिवर्तित दशा है जिसमें अन्यों के प्रति आकर्षण का स्थान नहीं बचता) तुम्हारा ब्रह्म तो निराकार, निष्काम और गुणातीत है, उसे वेद भी नहीं जान पाते। अंतः सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि ऐसे ब्रह्म से किस प्रकार परिचय किया जाय ? (ऐसे अगम्य, गुणातीत, निराकार ब्रह्म के रहस्य को किन उपायों से जाना जाय) ?

टिप्पणी—

(1) पाँचवीं पंक्ति में उदाहरण अलंकार है।

(2) बारह बानि सुबरन के सम्बन्ध में अबुल फज़ल के आइने अकबरी में विशेष विवरण प्राप्त है। उसमें बारहबानी और सोलह बानी सोने की कोटियाँ निर्धारित की गयी हैं। और तदनुरूप सोने का मूल्यांकन भी किया गया है। बारहबानी स्वर्ण को बारह बार तपा कर खरा करने की प्रक्रिया का उल्लेख उसमें किया गया है।

(3) मन की विवशता का यह एक सुन्दर और मनोवैज्ञानिक नमूना है।

(4) निर्गुण ब्रह्म की अग्राह्यता और सगुण की सरसता और सहजता का निरूपण काव्योचित ढंग से किया गया है।

राग धनाश्री

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहिं तिहारो बिरहिन बिरह-बिदूखी ?
कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग।

पा लागों तुमहीं सों वा पुर बसत बावरे लोग॥
अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु नेकु आप तन कीजै।
दंड, कमंडल, भस्म, अधारी जो जुवतिन को दीजै॥
सूर देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो।
कहै 'कृपानिधि हो कृपाल हो ! प्रेमै पढ़न पठायो'॥ 41 ॥

शब्दार्थ—कान्ह केलि = कृष्ण-लीला। बिरह-बिदूखी = विरह से दुखित या संतप्त। काहि जोग = किसके योग्य। जोग = योग। पालागों = पैर छूती हूँ। तुमहीं सो = तुम्हारी ही भाँति। बावरे = पगले। अभरन = आभरण, भूषण। चीर चारु = सुन्दर वस्त्र। बरु = बल्कि। भस्म = राख। अधारी = वह लकड़ी जिसका सहारा साधुगण लेते हैं। ब्रत पायो = यह प्रेम का संकल्प उन्हें मिला। प्रेमै पढ़न = प्रेम पद्धति सीखने के लिए।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों की अटल प्रेम-भक्ति का निरूपण किया गया है। वस्तुतः गोपियों की ऐसी प्रेम-निष्ठा देख कर उद्धव भी उसी रंग में रँग गये।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हम सब तो कृष्णलीला के आनन्द को प्राप्त करने के लिए लालायित हैं—इसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की भूख (उत्कट अभिलाषा) हममें नहीं है। भला, यह तो बताओ कि हम तुम्हारे निर्गुण के गुण को कैसे सुनें, क्योंकि हम लोग वियोग की ज्वाला में पूर्णतया संतप्त हैं। भला, तुमसे क्या कहें जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि यह योग-साधना किसके लिए है ? तात्पर्य यह है कि तुम इतने अज्ञानी हो कि यह भी नहीं समझते कि क्या हम लोग इस कठिन योग-साधना की उपयुक्त पात्री हैं ? उद्धव, हम सब तुम्हारे पैर छूकर पूछती हैं (बड़ी विनयशीलतापूर्वक जानना चाहती हैं) कि उस नगर (मथुरा) में तुम्हारे ही जैसे सभी लोग पागल हैं (व्यंजना यह है कि तुम तो पागल हो ही जिसने (जिस कृष्ण ने) तुम्हें योग-संदेश हेतु भेजा है वह भी पागल ही है)। हाँ, हमारी भी तुमसे एक शर्त है वह यह कि जैसे तुम हम युवतियों को दण्ड, कमंडल, राख और अधारी देने का आग्रह कर रहे हो बल्कि उसी प्रकार आप भी जरा हम लोगों का अंजन, आभूषण और सुन्दर वस्त्र अपने शरीर पर धारण करके देखें कि क्या यह अच्छा लगता है (अभिप्राय यह है कि जैसे योगी पुरुषों के कमंडल, भस्म और अधारी आदि हम स्त्रियों को शोभा नहीं दे सकते उसी प्रकार हम स्त्रियों के शृंगारिक प्रसाधन आपके शरीर में कैसे शोभा पा सकते हैं ? कहीं पुरुषों का पहनावा स्त्रियों को और स्त्रियों का पहनावा पुरुषों के उपयुक्त हो सकता है ? सूरदास के शब्दों में उद्धव जी गोपियों की ऐसी दृढ़ भक्ति और प्रेम की ऐसी निष्ठा देखकर स्वतः अभिभूत हो गये और उन्होंने उनके प्रेम संकल्प एवं व्रत को ग्रहण कर लिया और मन में कहने लगे कि ऐसा प्रतीत होता है कि कृपासागर दयालु कृष्ण ने गोपियों के प्रेम-पाठ पढ़ने के लिए ही मुझे यहाँ भेजा है।

टिप्पणी—

(1) 'कान्ह केलि की भूखी' में लक्षणा का प्रयोग।

(2) तृतीय पंक्ति में दो बार 'जोग' शब्द की आवृत्ति हुई और दोनों का अर्थ भिन्न है, अतः इसमें यमक अलंकार है।

(3) गोपियों की भक्ति और प्रेम-महिमा का काव्योचित वर्णन।

(4) 'पालागों' में व्यंजना बलित शब्दावली का प्रयोग।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(5) पाँचवीं और छठीं पंक्ति में सूर की वचनविदग्धगत और वक्रोक्ति विधान का सुन्दर नमूना मिलता है।

राग धनाश्री

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी॥ 42॥

शब्दार्थ—रूप रस राची = श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-रस में डूबी। रूखी = शुष्क, नीरस। अवधि = कृष्ण के आने का एक निश्चित समय। जोवत = देखना। झूखी = संतप्त हुई। बारक = एक बार। पय = दूध। पतूखी = पत्ते का दोना (पात्र)। सिकत = सिक्ता, बालू। सिकत_सूखी = व्यर्थ बालू में नाव चला रहे हो, ये सूखी नदियाँ हैं (युवतियों को योग की शिक्षा देना उसी प्रकार है जैसे बालू में नाव चलाना जो संभव नहीं)।

संदर्भ—इसमें गोपियों की कृष्ण के प्रति दर्शनाभिलाषा की भावना व्यक्त हुई है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमारी आँखें तो मात्र श्रीकृष्ण के दर्शन की भूख से पीड़ित हैं (इनमें एक मात्र उत्कट अभिलाषा श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए बनी है)। भला, यह तो बताओ कि जिन आँखों ने निरन्तर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का पान किया—जो कृष्ण की रूप-माधुरी में सदैव डूबी रहीं—वे अब इसके अभाव में आपकी योगशास्त्र-विषयक इन नीरस बातों को सुनकर कैसे जीवित रह सकती हैं ? तुम्हारी इन बातों से उन्हें कैसे संतोष हो सकता है ? जब ये आँखें अपलक श्रीकृष्ण के आगमन की अवधि की गणना करती हुई उनका मार्ग देख रही थीं तब इतनी दुखी नहीं थीं—कारण यह है कि तब श्रीकृष्ण के आने की एक प्रबल आशा इनमें बनी हुई थी, लेकिन अब तो इन्हें इन योग के संदेशों को सुनकर अति कष्ट हुआ और ये घबरा उठी हैं (अब इन्हें सचमुच श्रीकृष्ण के अनागमन की निराशा हो गयी है) लेकिन आपसे एक निवेदन यह है कि एक बार हमारी इन आँखों को श्रीकृष्ण की वही पूर्व मुद्रा पुनः दिखला दीजिए जब वे बन में पत्तों के पात्र में गायों का दूध दुह कर पीते थे। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से आग्रहपूर्वक कहती हैं कि हे उद्धव, तुम हठ करके बालू में नाव मत चलाओ क्योंकि ये नदियाँ (गोपियों से प्रयोजन है) सूखी हैं अभिप्राय यह है कि जैसे बालू में नाव नहीं चलायी जा सकती उसी प्रकार योगियों के लिए उपयुक्त यह योग-साधना गोपियों को नहीं बतायी जा सकती—यह संभव नहीं है।

टिप्पणी—

(1) 'भूखी' शब्द में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग।
(2) चौथी पंक्ति में निराशावाद की झलक।
(3) पाँचवीं पंक्ति में आलम्बनगत अनुभाव विधान की सजग चेष्टा का संकेत।
(4) पाँचवीं पंक्ति में स्मरण और छठवीं पंक्ति में निदर्शना अलंकार है।

(5) स्मृति, उन्माद, चिन्ता और विषाद संचारी भाव की प्रधानता है।
(6) तीसरी और चौथी पंक्ति में मनोवैज्ञानिक दृष्टि का विनियोग हुआ है।

राग सारंग

जाय कहौ बूझी कुसलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै कही तिहारी बात॥
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात।
जो पै भले होत कहुँ कारे तौ कत बदलि सुता लै जात॥
हमको जोग, भोग कुबजा को काके हिये समात ?
सूरदास सेए सो पति कै पाले जिन्ह तेही पछितात॥ 43॥

शब्दार्थ—बूझी कुसलात = कुशलता पूछी है। कत = क्यों। तौ कत लै जात = तो क्यों लड़के को बदल कर लड़की ले जाते (श्रीकृष्ण के मथुरा में जन्म लेने पर कंस के भय से वसुदेव जी ने गोकुल में श्रीकृष्ण को रख कर रोहिणी की पुत्री को उनके बदले में ले गये)। काके हिये समात = किसे जँचेगा ? (कौन इसे स्वीकार करेगा)। सेए = सेवा की। तेही = वे भी (नंद और यशोदा भी)। अंग = हिस्सा।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने कृष्ण के प्रति उपालम्भ भाव व्यक्त किया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम कृष्ण से जाकर कह देना कि गोपियों ने तुमसे कुशल-क्षेम पूछा है—क्या तुम कुशलपूर्वक हो ? कुशल पूछने के बाद यह भी कहना कि तुम्हारी कही हुई बात (योग-संदेश) वही मान सकता है जो अज्ञानी है अर्थात् क्या तुम हमें इतनी मूर्खा समझते हो जो इस तरह योग और ज्ञान का संदेश अंगीकार कर लें। कह देना कि तुम्हारा नाम काला (कृष्ण) है पुनः रूप भी काला है और तुम्हारे मित्रों (उद्धव और अक्रूर) के शरीर के समस्त अंग काले हैं। और सत्य बात तो यह है कि यदि काले रंग वाले अच्छे होते तो वसुदेव जी क्यों तुम्हें नंदजी के यहाँ छोड़ कर बदले में रोहिणी की नवजात पुत्री उठा लाते ? भला, यह तो बताओ कि वे हमें योग संदेश देना चाहते हैं और कुब्जा को भोग-विलास में लगाए रहते हैं उनकी यह बात किसे जँचेगी (कौन उसे पसन्द करेगा)। सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि जिन्होंने जिन (गोपियों ने) कृष्ण को पति रूप में सेवा की वे भी और जिन्होंने उन्हें पुत्रवत् पाला-पोसा वे नंद और यशोदा भी इनके व्यवहार से अब भी पश्चाताप कर रहे हैं अर्थात् काले रंग वाले कृष्ण ने अन्ततः सब को धोखा दिया।

टिप्पणी—

(1) तीसरी पंक्ति में काले वर्ण की बड़ी तीखी व्यंजना है।
(2) इसमें कृष्ण की निष्ठुरता का स्पष्ट संकेत है।
(3) पाँचवीं पंक्ति में असूया संचारी भाव है।
(4) रत्नाकर जी ने भी काले रंग वालों की अच्छी व्यंजना की है,

आनै उर अन्तर प्रतीति यह तातै हम।
रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है।
आँखिनि तैं एक तौ सुभाय सुनिबै कौ लियौ,
काननितैं एक देखिबै की टेव धारी है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग सारंग

कहाँ लौं कीजै बहुत बड़ाई।
अतिहि अगाध अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई॥
जल बिनु तरँग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई।
अब ब्रज में अनरीति कछू यह ऊधो आनि चलाई॥
रूप न रेख, बदन, बपु जाके संग न सखा सहाई।
ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर क्यों निबहै, री माई ?
मन चुभि रही माधुरी मूरति रोम रोम अरुझाई।
हौं बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सदा सुखदाई॥ 44 ॥

शब्दार्थ—कहाँ लौं = कहाँ तक। अगोचर = जो दृष्टिगत न हो। अगाध = जिसकी गहराई का पता न चले। मनसा = मन। तरँग = लहर। भीति = दीवाल। आनि = आकर। बदन = मुख। सहाई = सहायक। क्यों निबहै = कैसे निर्वाह हो सकता है ? माई = सखी। अनरीति = परम्परा विरुद्ध रीति, विचित्र रीति।

सन्दर्भ—इसमें उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में व्यंग्य करती हुई गोपियाँ परस्पर कह रही हैं कि उद्धव ने तो ब्रज में एक नयी रीति चला दी है।

व्याख्या—(सखी प्रति सखी का कथन) हे सखी, उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की प्रशंसा कहाँ तक करें—ऐसे ब्रह्म की प्रशंसा करते जी नहीं अघाता (विपरीत लक्षणा से स्पष्टार्थ यह होगा कि उद्धव जिस ब्रह्म का निरूपण कर रहे हैं—वह निराधार है और अप्रशंसनीय है)। यह ब्रह्म तो ऐसा है जो अतिशय अगाध अनन्त है, जो न तो दिखाई पड़ता है और न वहाँ तक इन्द्रियों का राजा मन ही पहुँच पाता है—तात्पर्य यह है कि वह सब प्रकार से युवतियों के लिए अग्राह्य और अगम्य है। उद्धव जी ने तो व्रज में आकर एक नयी और विचित्र रीति चलाई है, क्योंकि ये जिस ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण कर रहे हैं वह तो उसी प्रकार का है जैसे बिना जल के तरंगों का उद्भव, बिना दीवाल के चित्रों की रचना करना, और बिना चित्त के चतुराई और कौशल की बात करना, तात्पर्य यह है कि इस प्रकार की रीति के सम्बन्ध में कुछ सोचा ही नहीं जा सकता, यह तो सर्वथा निराधार है। हे सखि, उद्धव तो अपने जिस ब्रह्म की चर्चा कर रहे हैं उसके न रूप है, और न रेखा है और न उसके मुख है और न शरीर। उसके सखा और सहायक भी कोई नहीं है। फिर उससे (उस निर्गुण ब्रह्म से) सदैव प्रेम का निर्वाह कैसे किया जा सकता है (ऐसे ब्रह्म के प्रति हम सब की कैसे अनुरक्ति हो सकती है ?) इसके विपरीत हम लोगों के मन में तो श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति चुभ रही है और वह रोम-रोम में उलझ गयी है; कहने का तात्पर्य यह है कि मन और शरीर के एक-एक रोम में भगवान श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति व्याप्त है (तन मन कृष्णमय है)। सूर के शब्दों में सखी का कथन है कि हे सखी, हम लोग तो उस पर बलिहारी हैं जिसे हमारे कृष्ण सदैव अच्छे लगते हैं। (उद्धव से क्या लाभ, वे तो हमारे कृष्ण की जगह निराकार ब्रह्मोपासना की रट लगाए हुए हैं)।

टिप्पणी—

(1) सूर मनीषियों ने इस पद में सूर द्वारा शंकराचार्य के 'वेदान्त अद्वैत' के खण्डन का उल्लेख किया है। और वल्लभाचार्य के उपादानवाद और सूर के परिणामवाद की चर्चा की है।

(2) प्रथम पंक्ति में अत्यंत तिरस्कृतवाच्य ध्वनि है।
(3) विनयपत्रिका में भी इस आशय का एक पद मिला है।
केशव कहि न जाय का कहिए ?
शून्य भित्ति पर चित्ररंग नहीं तन बिनु लिखा चितेरे।
(4) 'सूर सागर' में निराकार ब्रह्म का संकेत एक स्थल पर इसी तरह और किया गया है
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निराधार मन चकित धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें सूर सगुन पद गावै।
(5) तीसरी पंक्ति में विभावना अलंकार है।

राग मलार

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत।
जो पै स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत ?
ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत।
कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत॥ 45 ॥

शब्दार्थ—जोपै = यदि। मधुकर = भ्रमर (उद्धव के लिए प्रयुक्त)। किन नाम धरावत = कूबरीपति जैसा नाम क्यों नहीं धारण करते। ज्यों गजराज . . . दिखावत = जैसे हाथी के दाँत खाने के और दिखाने को और। अनत बिरमावत = अन्यत्र ठहरते हैं (दूसरों से प्रेम करते हैं)।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव से कृष्ण के कार्य-कलाप की तीखे शब्दों में निन्दा की है।

व्याख्या—(गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं) हे उद्धव, वे प्रेम तो कुब्जा से करते हैं और अपने को गोपीनाथ कहते हैं। वे अब क्यों गोपीनाथ कहलाते हैं, यदि वे हमारे कहते हैं (हमारे कहलाते हैं तो गोकुल क्यों नहीं आते, उनका न आना ही सिद्ध करता है कि वे वस्तुतः हमारे नहीं हैं—झूठ ही ऐसा कहते हैं)। वे तो यह कहते हैं कि हमारी और उनकी पहचान स्वप्न जैसी है (क्षणिक है) फिर भी गोपीनाथ नाम धारण करके हमें कलंकित-लज्जित करते हैं। यदि वे कूबरी पर ही सच्चे मन से अनुरक्त हैं तो खुलकर 'कूबरीनाथ' क्यों नहीं कहलवाते ? हमें तो उनकी सभी नीतियाँ बनावटी प्रतीत होती हैं—यह उनकी दुरंगी चाल है—यह चाल उस हाथी जैसी है जिसके खाने के दाँत और हैं और दिखाने के दाँत और हैं, दोनों समान नहीं हैं। सूर के शब्दों में कृष्ण के प्रति उपालम्भ देती हुई गोपियाँ कह रही हैं कि हे उद्धव, कहने-सुनने के लिए दिखाने के लिए तो हम उनकी प्रियतमा हैं, लेकिन वे रुकते कहीं और हैं—प्रेम किसी और से करते हैं (यहाँ कुब्जा के प्रेम का स्पष्ट संकेत है)।

टिप्पणी—

(1) 'गोपीनाथ' का सर्वथा सार्थक और अर्थ-व्यंजक प्रयोग हुआ है।
(2) पाँचवी पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(3) 'सपने की पहिचानि' में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है।
(4) 'चौथी और छठवीं' पंक्ति में असूया संचारी भाव है।
(5) इसमें मुहावरे की अच्छी बंदिश है।

राग मलार

अब कत सुरति होति है, राजन् ?
दिन दस प्रीति करी स्वारथ हित रहत आपने काजन॥
सबै अयानि भईं सुनि मुरली ठगीं कपट की छाजन।
अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन॥
वह नातो टूटो ता दिन तें सुफलक-सुत-सँग भाजन।
गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन॥ 46 ॥

शब्दार्थ—सुरति = याद। दिन दस = थोड़े समय के लिए। हित = लिए। रहत आपने काजन = अपने कार्यों में लगे रहते हैं। अयानि = अज्ञानी। छाजन = वेश, स्वांग। खग = पक्षी। फिरि फिरि = बार-बार। सरत = आगे बढ़ता है। सुफलक-सुत = अक्रूर। भाजन = भाग गये।

संदर्भ—गोपियाँ उद्धव से व्यंग्यपूर्ण शैली में पूछ रही हैं कि अब भी क्या तुम्हारे राजा को मेरी याद आती है, क्योंकि अब वे गोपीनाथ नहीं हैं, अब वे राजा हो गये हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, अब श्रीकृष्ण राजा हो गए हैं, अतः मेरी याद क्यों करने लगे (अब वे हम सब को अच्छी तरह भूल गये होंगे ? वास्तव में उन्होंने हम लोगों से स्वार्थवश थोड़े समय का प्रेम किया था, अब तो वे अपने राज्य-कार्य में लगे रहते हैं। उनका क्या दोष, हम लोग उनकी मुरली की मधुर ध्वनि सुन कर अज्ञानी बन बैठीं (विवेक खो दिया) और इस प्रकार उनके कपट वेश (स्वांग) में ठगी गयीं। किन्तु अब देखती हूँ कि हम लोगों का मन समुद्र के जहाज के पक्षी की भाँति बार-बार (रोकने पर भी) आगे बढ़ने का प्रयास करता है—एक मात्र आपकी ही शरण का सहारा लेता है (वह खूब जानता है कि हमारा उद्धार आप ही करेंगे)। उनका पुराना नाता (प्रेम-सम्बन्ध) तो उसी दिन टूट गया जिस दिन वे अक्रूर के साथ हम लोगों को छोड़ कर भाग गये (हम लोगों को धोखा दिया)। सूर के शब्दों में कृष्ण प्रति गोपियों का कथन है कि तुम गोपीनाथ कहलाकर अब क्यों हमें लज्जा से मार रहे हो (हमें क्यों लज्जित कर रहे हो ?) कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हें जब गोपीनाथ कह कर कोई याद करता है तो हमें लज्जित होना पड़ता है कि तुम तो अब मथुरापति हो गये हो अब तुमसे गोपीनाथ से क्या प्रयोजन ?

टिप्पणी—

(1) प्रथम पंक्ति में वस्तु से वस्तु व्यंग्य है ? प्रथम में तो उनकी स्वार्थपरता व्यंजित है और दूसरी व्यंजना यह है कि अब हमारा-तुम्हारा नाता कहाँ रहा—तुम राजा और हम लोग सामान्य गोपियाँ (राजा और प्रजा में समानता का कैसा सम्बन्ध ?)
(2) 'छाजन' संस्कृत के 'आच्छादन' का विकृत रूप है जिसका अर्थ वस्त्र या वेश से है।
(3) चौथी पंक्ति में उपमा अलंकार (सिंधु के खग ज्यों में)।

(4) 'नातो टूटो' में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग।
(5) 'मारत हौ लाजन' में मुहावरे का प्रयोग।
(6) अब मन भयो 'जहाजन' में कृष्ण के प्रति अटूट भक्ति और एक मात्र उन्हीं की शरण के अवलम्ब की ओर संकेत। इस तरह का संदर्भ सूर के एक अन्य पद में भी देखने को मिला है—
'जैसे उड़ि जहाज को पंछी उड़ि जहाज पर आवै।'

राग सोरठ

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप।
बाँधे फिरत सीस पर ऊधौ देखत आवै ताप॥
नूतन रीति नंदनंदन की घर-घर दीजत थाप।
हरि आगे कुब्जा अधिकारी, तातें है यह दाप॥
आए कहन जोग अवराधो अविगत-कथा की जाप।
सूर सँदेसो सुनि नहिं लागै कहौ कौन को पाप॥ 47 ॥

शब्दार्थ—छाप = मुहर। बाँधे फिरत सीस = ब्रजनाथ की मुहर लगी हुई चिट्ठी उद्धव जी अपनी पगड़ी में बाँधे हुए घूम रहे हैं। आवे ताप = बुखार आ जाता है। दीजत थाप = स्थापित कर देना चाहते हैं—प्रचारित करना चाहते हैं। हरि आगे = कृष्ण के समक्ष—कृष्ण के होते हुए। तातें = इसीलिए। दाप = दर्प, रोब। अवराधो = आराधना करो। अविगत = निर्गुण ब्रह्म। नहिं .... पाप = किसे पाप नहीं लगेगा।

संदर्भ—श्रीकृष्ण द्वारा संप्रेषित पत्र उद्धव जी अपने सिर की पगड़ी में रखे हुए घूम रहे हैं, इसे देखकर गोपियाँ परस्पर व्यंग्यात्मक शैली में कह रही हैं।

व्याख्या—गोपियाँ परस्पर कर रही है—अरे सखियो, देखो तो, ब्रजनाथ की मुहर लगी हुई चिट्ठी आ गयी है—इसे उद्धव जी अपने सिर पर बाँधे हुए घूम रहे हैं—(पुराने काल में दूसरे की चिट्ठी को लोग गिरने या खो जाने के भय से सिर की पगड़ी में बाँधकर सुरक्षित रखते थे और पहुँचकर जिसकी चिट्ठी होती थी उसके हाथों सौंप देते थे) लेकिन इसे देखते तो हमें ज्वर चढ़ आता है (पीड़ा से समस्त शरीर जलने लगता है)। क्या देखती हूँ कि श्रीकृष्ण इस नयी रीति (योग-संदेश को) जो पत्र में लिखकर भेजा है—घर-घर में प्रचारित (स्थापित) करना चाहते हैं। अब तो श्रीकृष्ण के समक्ष (उनके होते हुए) कुब्जा अधिकारिणी बन बैठी है, इसीलिए उसे काफी घमंड हो गया है—लगता है उसी ने श्रीकृष्ण की मुहर लगाकर हम लोगों को जलाने के लिए ऐसी चिट्ठी (योग का यह संदेश) उद्धव द्वारा भिजवायी है। अब तो उद्धव जी यहाँ आकर यही प्रचारित कर रहे हैं कि योग की साधना करो और निर्गुण ब्रह्म की गाथा का जाप करो। (निर्गुणोपासना में लग जाओ)। सूर के शब्दों में गोपियाँ परस्पर कह रही हैं कि भला ऐसे अमांगलिक संदेश को सुनकर किसे पाप नहीं लगेगा (इसे करना तो दूर की बात है—सुनना भी पाप लगने के तुल्य है—इसलिए कि हम सब कृष्ण को पति रूप में वरण कर चुकी हैं—अब पतिव्रता धर्म के विरुद्ध अन्य की उपासना करना कैसे संभव है ?)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) 'देखत आवै ताप' में लोक प्रचलित मुहावरे का प्रयोग किया गया। इसके कारण सूर की भाषा की व्यंजना बढ़ गयी है।
(2) 'छाप' में पत्र की प्रामाणिकता का संकेत है।
(3) 'नूतन रीति' की व्यंजना यह है कि ऐसी रीति श्रीकृष्ण ने कभी नहीं प्रचलित की थी।
(4) अंतिम पंक्ति में 'पाप लगना' भी एक मुहावरा है।
(5) इसमें गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्यता का भाव व्यक्त हुआ है।
(6) अंतिम पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार की प्रधानता है।
(7) 'हरि आगे कुब्जा अधिकारी' में गोपियों का कुब्जा के प्रति 'असूया' भाव व्यक्त हुआ है।

राग सारंग

फिरि फिरि कहा सिखावत बात ?
प्रातकाल उठि देखत ऊधो, घर-घर माखन खात॥
जाकी बात कहत हौ हमसों सो है हमसों दूरि।
ह्याँ है निकट जसोदानंदन प्रान-सजीवनमूरि॥
बालक संग लये दधि चोरत खात खवावत डोलत।
सूर सीस धुनि चौंकत नावहिं अब काहे न मुख बोलत ?॥ 48॥

शब्दार्थ—फिरि-फिरि = बार-बार। बात = योग की बातें। जाकी बात कहते हौ = जिस निर्गुण ब्रह्म की चर्चा करते हो। प्रान-सजीवन-मूरि = प्राणों के लिए संजीवनी जड़ी के समान। सीस नावहि = लज्जा से अपने मस्तक को झुका लेते हैं।

संदर्भ—उद्धव द्वारा बार-बार योग का संदेश देने पर गोपियाँ नाराज हो गयी हैं और कहने लगीं कि जिस ब्रह्मोपासना की बात आप कर रहे हैं वह बेकार है, क्योंकि यहाँ नित्य हम लोग बालकृष्ण की लीलाओं का सुख लिया करती हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, बार-बार हम लोगों को तुम योग की ऐसी शिक्षा क्यों दे रहे हो ? क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि हम लोग प्रातःकाल नित्य उठ कर घर-घर श्रीकृष्ण को मक्खन खाते हुए देख रही हैं (हम लोगों के मानस-पटल पर श्रीकृष्ण की घर-घर मक्खन खानेवाली वह मुद्रा अभी भी अंकित है—वह मिटी नहीं है)। हे उद्धव, तुम जिस ब्रह्म की चर्चा हमसे कर रहे हो, वह हम लोगों से काफी दूर है (हम लोगों के मानस में वह किसी भी प्रकार नहीं धँसता—वह हमसे दूर है अर्थात् उधर हम लोगों की किसी भी प्रकार की अनुरक्ति नहीं है)। हमारे निकट यहाँ तो यशोदानन्दन श्रीकृष्ण हैं जो हमारे प्राणों को संजीवनी बूटी के समान सजीवता उत्पन्न करते हैं। आज भी उनका वह स्मृति बिम्ब मानस में है जिसमें वे अपने साथ बालकों को लिए हुए दही चुराकर स्वयं खाते हैं और उन्हें भी खिलाते हुए इधर-उधर घूम रहे हैं। सूरदास के शब्दों में उद्धव-प्रति गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, अब हमारी इन बातों को सुनकर चौंकते क्यों हैं और शर्म से मस्तक क्यों झुका रहे हैं, मुख से क्यों नहीं बोलते (किसलिए स्तब्ध हो गये हो) कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम्हें यह विश्वास हो

चला है कि सब गोकुल कृष्णमय है और प्रत्येक व्रजवासी के मन में श्रीकृष्ण की लीलाएँ अंकित हैं तो क्यों योग की शिक्षा दे रहे हो ?

टिप्पणी—

(1) द्वितीय और पाँचवीं पंक्ति में 'स्मृति बिंब' का एक सुंदर नमूना प्रस्तुत हुआ है।
(2) तीसरी और चौथी पंक्ति में मन की रुझान विशेष का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।
(3) अंतिम पंक्ति में 'व्रीडा' और 'जड़ता' संचारी भाव का प्रयोग हुआ है।
(4) 'फिरि-फिरि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
(5) इसी तरह का एक पद सूरसागर में और मिला है।
'तुम्हीं सौं बालक किसोर वपु मैं घर-घर प्रति देख्यो।'
(6) अंतिम पंक्ति का अर्थ श्रीकृष्ण के सम्बंध में भी लगाया जा सकता है।

राग धनाश्री

अपने सगुन गोपालै, माई ! यहि विधि काहे देत ?
ऊधो की ये निरगुन बातैं मीठी कैसे लेत॥
धर्म, अधर्म कामना सुनावत सुख औ मुक्ति समेत।
काकी भूख गई मनलाडू सो देखहु चित चेत।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत ?॥ 49॥

शब्दार्थ—माई = सखी। काहे देत = कैसे दिया जा सकता है ? मीठी कैसे लेत = इसे मीठा (श्रेष्ठ) समझ कर कैसे ग्रहण किया जा सकता है ? मनलाडू = मन के लड्डू-काल्पनिक बातें। भुस फटकै = भूसी फटकारे—भूसी से कुछ सार निकालने का प्रयत्न करना।

संदर्भ—इस पद में निर्गुण ब्रह्मोपासना की तुलना में सगुण ब्रह्मोपासना के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या—(उद्धव को लक्ष्य कर गोपियाँ परस्पर कह रही हैं) हे सखी, अपने सगुण गोपाल के माधुर्य की मूर्ति श्रीकृष्ण को इस प्रकार निर्गुणोपासना के लिए कैसे त्यागा जा सकता है—हम किसी भी प्रकार निर्गुण बातों के बदले में अपने सगुण गोपाल की भक्ति और प्रेम नहीं दे सकती। उद्धव की इन निर्गुण विषयक मीठी बातों को (इन चिकनी-चुपड़ी बातों को) कौन ग्रहण करे ? यद्यपि ये हमें धर्म-अधर्म की कामना के सम्बन्ध में बतला रहे (धर्माधर्म के स्वरूप की विवेचना कर रहे हैं और यह समझाते हैं कि निर्गुणोपासना द्वारा सुख और मोक्ष की प्राप्ति होगी अर्थात् इस प्रकार के सुखों का ये लालच तो दे रहे हैं, लेकिन हमारे लिए तो यह मन का लड्डू खाना है—क्या मन के लड्डू खाने से (ऐसी काल्पनिक और थोथी बातों से) किसी की भूख मिटी है—किसी को वास्तविक सुख मिला है ? जरा, इसे मन में विचार करके देखो। अन्त में भ्रमर (उद्धव) को सम्बोधित करती हुई गोपियाँ कह रही हैं, हे भ्रमर (उद्धव), श्रीकृष्ण को त्याग कर कौन तुम्हारे लिए निस्सार भूसी-फटके (निस्सार ब्रह्म से किसी तत्व की प्राप्ति करे)। दूसरे शब्दों में जैसे भूसी फटकारने से कुछ सार नहीं निकलता, उसी प्रकार निर्गुणोपासना से कुछ तत्व मिलने वाला नहीं है)

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) 'काकी भूख गई मनलाडू' और 'को भुस फटकै' में लोकोक्ति अलंकार का काव्योचित और सरस प्रयोग हुआ है।
(2) कृष्ण-भक्ति और प्रेम के समक्ष मोक्ष की कामना नगण्य है।
(3) अन्तिम पंक्ति में काकुवक्रोक्ति का प्रयोग हुआ है।

राग सारंग

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो ऊधो ! मथुरा ही लै गाव॥
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने वचन सुभाव।
पा लागों, इन बातनि, रे अलि! उनही जाय रिझाव॥
सुनि, प्रियसखा स्यामसुन्दर के जोपै जिय सति भाव॥
हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव॥
जो कोउ कोटि जतन करे, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव ?
सूरदास मीनन की जल बिनु नाहिंन और उपाव॥ 50॥

शब्दार्थ—हरि की कथा = श्रीकृष्ण की प्रेम चर्चा। गाव = गुण-गान करो। नागरि नारि = मथुरा नगर की चतुर नारियाँ। बूझैंगी = समझेंगी। भले = अच्छी तरह। अपने वचन सुभाव = अपनी मधुर वाणी और अच्छे स्वभाव के अनुसार। पालागों इन बातनि = तुम्हारी इन निर्गुण बातों को नमस्कार करती हैं, इन्हें हमसे दूर रखो। सतिभाव = अच्छा भाव, सहानुभूति। आरत = दुखी। बारक = एक बार। बहुरि = पुनः। और सुहाव ? = क्या दूसरी चीजें अच्छी लग सकती हैं ?

सन्दर्भ—इसमें निर्गुणोपासना का खण्डन और श्रीकृष्ण की मधुर भक्ति और प्रेम तत्व की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हम सब मात्र श्रीकृष्ण की प्रेम-कथा सुनना चाहती हैं, यदि आप सुनाना चाहें तो यही सुनाएँ और अपनी यह ज्ञान कथा यहाँ मत सुनाएँ (आपकी निर्गुण गाथा सुनने को यहाँ कोई तैयार नहीं है) इसे आप लौटाकर मथुरा ले जायँ, जहाँ से इसे लेकर आए हैं। व्यंजना यह है कि जिसे कृष्ण और कुब्जा ने इसे हमारे मत्थे मढ़ा है उन्हीं के समक्ष इसका गुणगान करो वहीं इसका स्वागत भी खूब होगा। वहाँ की चतुर नारियाँ जो अपने वचन और सुन्दर स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हैं इसे खूब समझेंगी। और इस विषय पर भली भाँति वार्ता भी करेंगी। हे भ्रमर, तुम्हारी इन बातों को हम प्रणाम करती हैं—इन्हें हमसे दूर रखो—इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम इन बातों से उन्हीं को जाकर प्रसन्न करो—वे ही इसके अधिकारी भी हैं। हे कृष्ण के प्रिय मित्र, यदि हम लोगों के प्रति तुममें थोड़ी भी सहानुभूति है—तुम थोड़ी भी हमारी पीड़ा का अनुभव करते हो तो हमारे इन व्यथित और कृष्ण दर्शन के लिए लालायित नेत्रों को पुनः एक बार श्रीकृष्ण के मुख-सौन्दर्य का साक्षात्कार करा दो। भला, हे भ्रमर (उद्धव) यदि कोई कितना ही उपाय क्यों न करे लेकिन वियोगिनियों को क्या पति-दर्शन के बिना कभी सुख मिल सकता है—क्या पति के अभाव में उन्हें अन्य

वस्तुएँ अच्छी लग सकती हैं ? सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव, मछलियों के लिए जल के बिना जीवित रहने का कोई अन्य उपाय ही नहीं है—व्यंजना यह है कि जैसे बिना जल के मछली जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार बिना कृष्ण दर्शन के हम सब किसी भी प्रकार अन्य उपायों से अपनी जीवन-रक्षा नहीं कर सकतीं।

टिप्पणी—

(1) नागरि_भले बूझैंगी = मथुरा की नारियों पर विशेषकर कुब्जा की ओर स्पष्ट संकेत है।
(2) पालागों में रूढ़ि लक्षणा है।
(3) पाँचवीं और छठीं पंक्ति में कृष्णदर्शन की उत्सुकता के साथ ही विषाद भाव की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।
(4) छठीं पंक्ति में श्रीकृष्ण के मुख-सौन्दर्य के स्मृति बिम्ब का संकेत है।
(5) अन्तिम पंक्ति में निदर्शना अलंकार की प्रधानता है।
(6) इसमें कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य प्रेम-निष्ठा अभिव्यक्त हुई है।

राग कान्हरो

अलि हो ! कैसे कहौं हरि के रूप-रसहि ?
मेरे तन में भेद बहुत विधि रसना न जानै नयन की दसहि॥
जिन देखे ते आहि बचन बिनु जिन्हैं बचन दरसन न तिसहि।
बिन बानी भरि उमगि प्रेमजल सुमिरि वा सगुन जसहि॥
बार बार पछितात यहै मन कहा करै जो विधि न बसहि।
सूरदास अंगन की यह गति को समुझावै या छपद पसुहि॥ 51॥

शब्दार्थ—अलि = भ्रमर (उद्धव के लिए प्रयुक्त)। रूप-रसहि = श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का रस (आनन्द)। भेद बहुत विधि = नाना विधि अन्तर, बहुत प्रकार से भेद है। दसहि = दशा को। रसना = जिह्वा। अहि = है (अवधी प्रयोग)। तिसहि = उसे। भरि = भर जाता है। जसहि = यश, उनके गुणों को। बिधि न बसहि = ब्रह्म पर कोई वश नहीं चलता। या छपद पसुहि = इस मूर्खभ्रमर को।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण केअनिर्वचनीय सौन्दर्य-रस की महत्ता के सम्बन्ध में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं। इसमें श्रीकृष्ण के रूपाकर्षण की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है।

व्याख्या—उद्धव को भ्रमर रूप में सम्बोधित करती हुई गोपियाँ कह रही हैं—हे भ्रमर, श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य के आनन्द का वर्णन कैसे करें (उनकी सौन्दर्यानुभूति के कथन के लिए जिस प्रकार के माध्यम चाहिए वे हमारे पास नहीं हैं—वास्तव में जिन इन्द्रियों के माध्यम से उनके सौन्दर्य की चर्चा की जा सकती है उसका यहाँ सर्वथा अभाव है। आश्चर्य तो यह है कि हमारे शरीर में अनेक तरह का अन्तर है, यथा जिह्वेन्द्रिय नेत्रों की दशा नहीं समझती (अर्थात् नेत्रों की कठिनाई को जिह्वा नहीं समझती। स्थिति यह है कि जिन्होंने उनके सौन्दर्य को देखा है अर्थात् जिन नेत्रों ने उनके सौन्दर्य-रस का पान किया है वे बेचारे वाणी रहित हैं। नेत्र देखते तो हैं, पर वाणीहीन होने के कारण वर्णन नहीं कर सकते) और जिस जिह्वा को बोलने की शक्ति

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मिली है, उसे सौन्दर्य का दर्शन-लाभ नहीं मिलता। हमारे ये नेत्र वाणी रहित हैं—ये देखते तो हैं लेकिन कुछ कह नहीं सकते हैं—कभी तो ये श्रीकृष्ण के सगुण रूप और यश को स्मरण करके (उनके गुणों को सोचकर) उमंगित होकर प्रेमाश्रुओं से भर जाते हैं और बार-बार पछताने लगते हैं और मन में यही कहते हैं कि ब्रह्मा से क्या वश चलता है (यदि ब्रह्मा से वश चलता तो यही कहते कि हमें वाणी की शक्ति भी दे दें)। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ परस्पर कह रही हैं कि हमारे अंगों की तो यह दशा है, लेकिन इस मूर्ख को कौन समझाए अर्थात् इस अज्ञानी उद्धव को यह भी पता नहीं है कि क्या हमारे लिए ये योग की बातें उचित हैं ?

टिप्पणी—

(1) इस पद के अन्तिम चरण का पाठ शुक्ल जी ने इस प्रकार दिया है—

'सूरदास अंगन की यह गति को समुझावै पाछ पद पसुहि',

किन्तु इसमें प्रयुक्त पाछ पद पसुहि के सम्बन्ध में विचार करते हुए भ्रमर गीतसार के उपपादक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'या छपद पसुहि' पाठ प्रसंगानुकूल स्वीकार किया है। व्याख्या आचार्य मिश्र के पाठ के अनुरूप की गयी है।

(2) रूप की अनिर्वचनीयता का निरूपण वक्रतापूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है।

(3) इस पद के समानान्तर भाव अन्य कवियों में भी देखने को मिले हैं; यथा—

क. गिरा अनयन नैन बिनु बानी—तुलसी

ख. नैनन के नहिं बैन बैन के नैन नहीं री—नंददास

सूर ने भी अन्य प्रसंग में इसी प्रकार की उक्ति का प्रयोग किया है—

'जो मेरी अँखियन रसना होती कहती रूप बनाय री।'

(4) अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त 'पसुहिं' शब्द में लक्षणा की प्रधानता है और पूरी पंक्ति में गोपियों का अमर्ष भाव व्यक्त हुआ है।

(5) तुकाग्रह के कारण सूर ने 'तिसहि' शब्द का प्रयोग किया है जो अच्छा प्रयोग नहीं कहा जा सकता।

राग सारंग

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नँदनंदन सों उर यह दृढ़ करि पकरी॥
जागत, सोवत, सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी।
यह तो सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी॥ 52 ॥

शब्दार्थ—हारिल = एक पक्षी जो अपने चंगुल में कोई लकड़ी पकड़े रहता है, वह बिना लकड़ी के जमीन पर पैर नहीं रखता है, उसे विश्वास है कि बिना लकड़ी के उसका जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता और उसका प्राणान्त हो सकता है। बच = वाणी। क्रम = कर्मणा। सौंतुख = प्रत्यक्ष। करुई = कड़वी। व्याधि = रोग (निर्गुण ब्रह्म से अभिप्राय है)। जक = रट, धुनि। चकरी = चकई नामक खिलौने की भाँति चंचल।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी सच्ची भक्ति और निष्ठा व्यक्त की है। उन्हें योग-साधना और निर्गुणब्रह्मोपासना की कटुता ज्ञात है, अतः उसकी अग्राह्यता को मुक्त कंठ से स्वीकार करती हैं।

व्याख्या—गोपियाँ श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त करती हुई उद्धव से कह रही हैं—हे उद्धव, हमारे लिए तो श्रीकृष्ण हारिल पक्षी के लकड़ी के समान हैं अर्थात् जैसे हारिल पक्षी जीते जी अपने चंगुल से उस लकड़ी को नहीं छोड़ता ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय ने मनसा, वाचा और कर्मणा श्रीकृष्ण को दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया है (यह संकल्प मन, वाणी और कर्म तीनों से है) अतः सोते समय, स्वप्न में तथा प्रत्यक्ष स्थिति में हमारा मन 'कान्ह' 'कान्ह'—श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण की रट लगाया करता है—दूसरी बात ही मन में नहीं आती। हे भ्रमर (उद्धव) तुम्हारे योग को सुनने पर हमें ऐसा लगता है जैसे कड़वी ककड़ी (जिस प्रकार कड़वी ककड़ी को थोड़ा से चखने पर जिह्वा का स्वाद खराब हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारी इन योग की बातों से हम सब का मन खराब हो गया—इस योग की कटुता ने सारे मन में कडुवाहट उत्पन्न कर दी)। तुम तो हमें वही निर्गुण ब्रह्मोपासना या योग साधना का रोग देने के लिए यहाँ चले आए जिसे न कभी देखा और न जिसके बारे में कभी सुना और न कभी इसका अनुभव किया। इस ब्रह्मोपासना या योग-साधना का उपदेश तो उसे दीजिए जिसका मन चंचल हो अर्थात् चंचलता को दूर करने के लिए जिसे योग की आवश्यकता है (योगश्चित्त निरोधः) हम लोगों को इसकी क्या आवश्यकता—हम लोगों का चित्त तो श्रीकृष्ण के प्रेम में पहले ही से दृढ़तापूर्वक आबद्ध है—यहाँ संकल्पात्मक की जगह विकल्पात्मक वृत्ति नहीं है।

टिप्पणी—

(1) गोपियों के मन की दृढ़ता का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।

(2) 'हरि' में हारिल की लकड़ी का आरोप होने के कारण शुद्धा सारोपा लक्षणा का प्रयोग हुआ है।

(3) चतुर्थ पंक्ति में उपमा अलंकार है।

(4) 'योग' को योग न मान कर रोग मानना अपह्नुति अलंकार की ओर स्पष्ट संकेत है।

(5) विचारों के वैषम्य से जीवन में क्या कडुवाहट आती है, उसका यह ज्वलंत उदाहरण है।

राग सारंग

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन ?
दुसह बचन अलि यों लागत उर ज्यों जारे पर लौन॥
सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा, अरु अवरोधन पौन।
हम अबला अहीर, सठ मधुकर ! घर बन जानै कौन॥
यह मत लै तिनहीं उपदेसौ जिन्हें आजु सब सोहत।
सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत॥ 53 ॥

शब्दार्थ—फिरि-फिरि = बार-बार। दुसह बचन = असह्य वाणी। ज्यों जारे पर लौन = जैसे जले पर नमक छिड़कना (मुहावरा)। सिंगी = सींग का बना बाजा। त्वचामृग =

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मृगछाला। अवरोधन = रोकना। आजु लौं = आज तक। पोत = माला की गुरिया। सूतरी = सुतली। पोहत = गूँथना। पवन = श्वास। मुद्रा—काँच या स्फटिक का बना कुंडल, जिसे गोरखपंथी साधु धारण करते हैं।

संदर्भ—गोपियाँ उद्धव के बार-बार योग का संदेश देने पर क्रुद्ध हो गयीं और स्पष्ट शब्दों में योग-साधना को स्वीकार करने में अपनी असहमति व्यक्त करने लगीं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम बार-बार हमें मौन धारण करने की बात क्यों सिखा रहे हो, तात्पर्य यह है कि योग-साधना में जो मौन धारण करना एक विशेष अंग के रूप में अभिहित किया गया है उसके सिखाने का क्या प्रयोजन है ? पुनः तुम जो योग-साधना जैसी असह्य वाणी का प्रयोग कर रहे हो वह तो श्रीकृष्ण की इस वियोगावस्था में हम लोगों के लिए जले पर नमक छिड़कना है—प्रयोजन यह है कि एक तो हम लोग श्रीकृष्ण के विरह-ज्वाला में स्वतः दग्ध हो रही हैं दूसरे आप इस दुख को दूर न करके हमारे दुख को अपने ऐसे कथनों द्वारा और बढ़ा रहे हैं। तुम ऐसी अवस्था में हमें सिंगी, भस्म, मृगछाला तथा मुद्रा (काँच या स्फटिक का बना कुंडल) धारण करने और प्राणायाम साधने का उपदेश दे रहे हो; किन्तु हे मूर्ख भ्रमर, हम सब अनाथ और मूर्ख अहीर जाति की स्त्रियाँ हैं। हम तुम्हारे योग की बातें क्यों जानें। और तुम जो हमें घर और बन का अन्तर समझा रहे हो उसे कौन समझे, इतनी सूक्ष्म बातें तो योगी जन ही समझते हैं। अतः तुम अपने ऐसे विचारों को वहीं ले जाकर समझाओ, उन्हीं को उपदेश दो जिन्हें आज सब कुछ शोभा दे रहा है, अर्थात् जो इसके उपयुक्त पात्र हैं और समर्थ हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्प्रति कुब्जा ही इस उपदेश की पात्री है, उसे ही यह शोभा दे सकता है, उसके भोगमय जीवन के लिए योग और वैराग्य की शिक्षा समयोचित है। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, आज तक हमने मोटी सुतली में माला की छोटी गुरिया को गूँथते न सुना और न देखा। प्रयोजन यह है कि माला की छोटी गुरिया पतले डोरे में ही गूँथी जा सकती है, मोटी सुतली में नहीं। उसी प्रकार योग की सूक्ष्म बातों की शिक्षा चिन्तक और साधकों को ही दी जा सकती है, हम जैसी स्थूल बुद्धि की गंवार स्त्रियों को नहीं।

टिप्पणी—

(1) 'उर ज्यों जारे पर लौन', में उपमा अलंकार के साथ ही सुंदर और लोक-प्रचलित मुहावरे का सहज प्रयोग हुआ है।

(2) अन्तिम पंक्ति में भी सुन्दर मुहावरे का प्रयोग हुआ है। मुहावरे के कारण इसमें रूढ़ि लक्षणा भी है।

(3) पाँचवीं पंक्ति में वस्तु से वस्तु की व्यंजना। एक वस्तु का व्यंग्य यह है कि जो समर्थ है उसे सब कुछ शोभा दे सकता है—इस व्यंग्य में वस्तु रूप दूसरा व्यंग्य यह है कि आजकल विलासिनी कुब्जा ही योग-साधना के लिए उपयुक्त प्रतीत होती है—क्योंकि भोगी को ही योग की शिक्षा दी जाती है।

राग जैतश्री

प्रेमरहित यह जोग कौन काज गायो ?
दीनन सों निठुर बचन कहे कहा पायो ?

नयनन निज कमलनयन सुन्दर मुख हेरो।
मूँदन ते नयन कहत कौन ज्ञान तेरो ?
तामें कहु मधुकर ! हम कहाँ लैन जाहीं।
जामें प्रिय प्राननाथ नंदनंदन नाहीं ?
जिनके तुम सखा साधु बातें कहु तिनकी।
जीवैं सुनि स्यामकथा दासी हम जिनकी॥
निरगुन अबिनासी गुन आनि आनि भाखौ।
सूरदास जिय कै जिय कहाँ कान्ह राखौ॥ 54 ॥

शब्दार्थ—कौन काज = किसलिए। हेरो = देखा, दर्शन किया। आनि = आकर। भाखौ = कहते हो। जिय के जिय = प्राणों के प्राण (श्रीकृष्ण का विशेषण)।

सन्दर्भ—गोपियाँ प्रेमरहित योग-साधना को निरर्थक समझती हैं। उनका कथन है कि जिस योग में श्रीकृष्ण का कोई स्थान नहीं है, वह उनके लिए किसी भी प्रकार का महत्व नहीं रखता।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमारी समझ में नहीं आता कि तुमने किसलिए प्रेमरहित इस योग साधना का गुण-गान किया ? और हम जैसी दीन अबलाओं से ऐसी निष्ठुरता और शुष्कता भरी बातें कहने से तुम्हें क्या मिल गया (तुम्हें कौन सा लाभ हुआ ?)। भला, यह तो बताओ कि हमने अपने जिन नेत्रों से श्रीकृष्ण के मुख को देखा है उन्हीं नेत्रों को बन्द करके योग-साधना द्वारा तुम ब्रह्म ज्योति का दर्शन करने को कह रहे हो, यह तुम्हारा कैसा ज्ञान है ? व्यंजना यह है कि हमें तुम बहुत समझदार नहीं प्रतीत होते, अन्यथा ऐसी बातें नहीं करते (जिस श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य की झाँकी हमें मिल चुकी है, उसे छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की ज्योति की ओर दृष्टियों को गड़ाना कहाँ तक उचित है ?) हे मधुकर (उद्धव), उस योग-साधना में हम क्या लेने जायँ जिसमें हमें प्राणनाथ नंदनंदन की प्राप्ति ही नहीं होती (तात्पर्य यह है कि जिसमें हमें श्रीकृष्ण दर्शन सुलभ नहीं है उस योग-साधना से हमें क्या मिलेगा—वह तो हम लोगों के लिए व्यर्थ और निरर्थक है)। हे साधु उद्धव जी, सत्य बात तो यह है कि जिस श्रीकृष्ण के आप मित्र हैं (जिस श्रीकृष्ण को आप सख्य भाव से मानते हैं) उसी की चर्चा हमसे करें क्योंकि उसी श्रीकृष्ण के प्रेम-कथा सुनकर हम सब जीवित रहती हैं और उसी की दासी हैं तात्पर्य यह है कि हम सब श्रीकृष्ण की प्रेम-चर्चा करती हुई और (उनके गुणानुवाद में मग्न रहकर दास्यभाव से (आत्म समर्पण की वृत्ति से) उनकी उपासना करती रहती हैं। हमें आश्चर्य है कि (ऐसे सगुण रूप को त्याग करके तुम यहाँ आकर निरन्तर निर्गुण और अविनाशी ब्रह्म के गुणों का बखान करते हो। सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, तुम हमारे प्राणों के भी प्राण श्रीकृष्ण को कहाँ रख आए हो (तात्पर्य यह है कि जिनके निकट हमेशा रहते हो उनके सम्बन्ध में तुम कुछ कहना ही नहीं चाहते, जो हम सब के लिए सर्वथा अपरिचित है, उसी का गुणानुवाद करते हो)।

टिप्पणी—

(1) प्रेमरहित योग की निरर्थकता का निरूपण।

(2) 'साधु' शब्द के द्वारा उद्धव की प्रशंसा की गयी है।

(3) 'कहा लैन जाहीं' में व्यंजना का प्रयोग अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की उपासना में गोपियों को क्या मिलेगा, वे क्या लेने जायँ, उसमें कुछ हो भी तो।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग केदारो

जनि चालौ, अलि, बात पराई।
ना कोउ कहै सुनै या ब्रज में नइ कीरति सब जाति हिराई॥
बूझैं समाचार मुख ऊधो कुल की सब आरति बिसराई।
भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई॥
सुंदर कथा कटुक सी लागति उपजत उर उपदेस खराई।
उलटो न्याव सूर के प्रभु को बहे जात माँगत उतराई।55॥

शब्दार्थ—जनि चालौ = मत चलाओ। बात पराई = अन्य चर्चा (यहाँ योग चर्चा से प्रयोजन है)। नइ = नयी। जाति हिराई = नष्ट होती जा रही है। बूझैं = पूछती हैं। आरति = कष्ट। बिसराई = भुला दी। खराई = खारापन। उलटी न्याव = उलटी रीति। उतराई = नाव से पार उतारने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने योग सिद्धान्त को ग्रहण करने में अपनी असहमति व्यक्त की है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, यहाँ दूसरों की चर्चा मत करें—हम तो एक मात्र श्रीकृष्ण की प्रेम-कथा सुनना पसन्द करती हैं। तुम्हारी इस चर्चा को (योग-साधना की इन बातों को) न कोई यहाँ पसन्द करता है और न सुनता ही है—इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि अभी तक श्रीकृष्ण के मित्र के रूप में तुम्हें जो नवकीर्ति मिली है (सबों ने तुम्हें सम्मानित किया है) वह इन योग की बातों से नष्ट होती जा रही है—तुम्हारी इन बातों से लोग तुम्हारे विरुद्ध होते जा रहे हैं। हे उद्धव, हम तो तुम्हारे मुख से जानना चाहती हैं कि क्या श्रीकृष्ण ने अपने वंश और परिवार की प्रतिष्ठा की पीड़ा को सर्वथा भुला दिया (प्रयोजन यह है कि कूबरी से सम्बन्ध स्थापित करने के कारण उनके वंश की प्रतिष्ठा घटी है और लोगों को बड़ी पीड़ा हुई है)। श्रीकृष्ण को मथुरा में भले लोगों के साथ रहने से अच्छी बुद्धि मिली है (विपरीत लक्षणा से अर्थ यह होगा कि मथुरा निवासियों की धूर्तता में फँसकर इनकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है) और ऐसी बुद्धि को पाकर उन्होंने हमसे तुम जैसे लोगों से अच्छा परिचय कराया तात्पर्य यह है कि हमारी भी बुद्धि भ्रष्ट करने के लिए उन्होंने तुम्हें माध्यम बनाकर यहाँ भेजा है। क्या करें आपकी योग-विषयक कथा बहुत सुंदर है, लेकिन हमें तो वह कड़वी (अरुचिकर) प्रतीत होती है (मनःस्थिति की विषमता के कारण दूसरों की बातों का बुरा लगना स्वाभाविक है)। आप का उपदेश (निर्गुण ब्रह्मोपासना की चर्चा) भी हमारे हृदय को खरा (माधुर्य रहित) प्रतीत होता है (आपके शुष्क उपदेशों में किसी भी प्रकार की सरसता और आकर्षण नहीं है)। सूर के शब्दों में उद्धव से कृष्ण-प्रति गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, श्रीकृष्ण का उलटा न्याय (न्याय विरुद्ध बातें) तो देखिये, बेचारे जो नाव के पलट जाने से पानी की धारा में एक ओर बहे जा रहे हैं (उस प्रवाह से उनकी रक्षा न करके) उनसे इसके विपरीत नाव का किराया माँगा जा रहा है—अर्थात् एक ओर गोपियाँ जहाँ वियोग की पीड़ा से जल रही हैं, वहीं दूसरी ओर उनके पास यह योग का संदेश भिजवाया है—धन्य है उनका न्याय।

टिप्पणी—

(1) 'भले संग . . . पहिचान कराई' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि की प्रधानता है।

(2) 'सुन्दर कथा' में विपरीत लक्षणा।
(3) अंतिम पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार है।
(4) समस्त पद में वक्रता और व्यंग्य की प्रधानता है।

राग मलार

याकी सीख सुनै ब्रज को, रे ?
जाकी रहनि कहनि अनमिल, अलि, कहत समुझि अति थोरे॥
आपुन पद-मकरंद सुधारस हृदय रहत नित बोरे।
हमसों कहत बिरस समझौ है गगन कूप खनि खोरे॥
धान को गाँव पयार ते जानौ ज्ञान विषयरस भोरे।
सूर सो बहुत कहे न रहै रस गूलर को फल फोरे॥ 56॥

शब्दार्थ—सीख = शिक्षा (निर्गुण ब्रह्मोपदेश)। रहनि = रहने का ढंग, व्यवहार, आचरण। कहनि = कथनी। अनमिल = परस्पर विरोधी। अलि = सखी; भ्रमर। बोरे = डुबाए रहता है। बिरस = रसहीन। खनि = खोदकर। खोरे = नहाए (अवधी प्रयोग)। पयार = पुआल, धान की डंठल। भोरे = भूलना, उदासीन होना। रस = मजा, आनंद। गूलर को फल फोरे = गूलर के फल फोड़ने से अर्थात् ढकी-मुँदी बात खोलने से।

प्रसंग—इसमें गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि उनकी कथनी और करनी में महान् अन्तर है। वे जिस प्रेम तत्व का विरोध करते हैं स्वयं उसी में फँसे रहते हैं। इस दृष्टि से 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे' की उक्ति इस पद में चरितार्थ हुई है।

व्याख्या—उद्धव-प्रति गोपियाँ परस्पर कहती हैं—हे सखियो, ब्रजमण्डल में इनकी योग-साधना की शिक्षा या उपदेश सुनने वाला कौन है, भला जिसकी करनी और कथनी में किसी प्रकार का मेल नहीं है (परस्पर जो विरोधी) उसे कौन ग्रहण करेगा ? तथा जो ऐसी बातें मुँह से निकालता है जिन्हें वह स्वयं बहुत कम समझता है। कहने का आशय यह है कि तुम जो शिक्षा दूसरे को देते हो, स्वयं उसका पालन नहीं करते दूसरे शब्दों में तुम स्वयं तो श्रीकृष्ण के कमलवत चरणों के मकरन्द सुधारस को पान करने में अपने हृदय को सदैव डुबाए रहते हो (सदैव आनन्द-मग्न रहते हो) श्रीकृष्ण के प्रेम का रसास्वादन करते हो और हमें यह शिक्षा देते हो कि वे रसहीन हैं (रसावतार श्रीकृष्ण को नीरस घोषित करते हो)। यह तो स्पष्टतया 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे' जैसी उक्ति कही जा सकती है। लेकिन श्रीकृष्ण को रसहीन समझना हमारे लिए उसी प्रकार असम्भव है जैसे आकाश में कुआँ खोदकर स्नान करना। वास्तव में जैसे पुआल (धान के डंठलों) से ही यह जाना जाता है कि अमुक गाँव धान का है (यह धान वाला गाँव है) इसी प्रकार किसी के वास्तविक ज्ञान का विश्वास उसकी विषय-वासना के प्रति उदासीनता से ही किया जा सकता है। व्यंजना यह है कि तुम्हारी बातों से यह सिद्ध होता है कि तुम विषयी हो—ज्ञानी नहीं। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं, हे उद्धव, हम तुम्हारी वास्तविकता समझती हैं, अतः अपने सम्बन्ध में (अपने निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में) तुम अधिक मत कहो, क्योंकि अधिक कहने में सारा मजा उसी प्रकार चला जाएगा जैसे गूलर के फल फोड़ने से उसकी ऊपर से दिखाई देने वाली सुन्दरता और मधुरता (ढकी-मुँदी वास्तविकता) नष्ट हो जाती है (तात्पर्य यह है कि गूलर के फल को फोड़ने पर उससे मच्छड़ निकलने लगते हैं और उसके

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है—उस फल की सरसता के सम्बन्ध में जो एक अच्छी धारणा बनी रहती है, वह नष्ट हो जाती है)।

टिप्पणी—

(1) इस पद की व्यंजकता इसमें प्रयुक्त लोकोक्तियों के कारण है। इसके द्वितीय, चतुर्थ और छठीं पंक्ति में लोकोक्तियों की सरसता सराहनीय है।

(2) 'गगन . . . . . खोरे में निदर्शना अलंकार है।

(3) तीसरी पंक्ति में पद मकरन्द में पद के साथ कमल का भी प्रयोग होना चाहिए था तभी रूपक की ठीक संगति बैठती, किन्तु कमल शब्द के लुप्त होने के कारण इसमें 'न्यून पदत्व' दोष रह गया है।

(4) इसमें 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे' की उक्ति ठीक-ठीक घटित हुई है।

राग मलार

निरखत अंक स्यामसुंदर के बारबार लावति छाती।
लोचन-जल कागद-मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती॥
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती॥
हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलोगे सूरदास प्रभु बालसँघाती॥ 57॥

शब्दार्थ—निरखत = देखते ही। अंक = अक्षर। लावति = लगा लेती है। लोचन-जल = अश्रु। मसि = स्याही। स्याम = श्यामवर्ण; श्रीकृष्ण। पाती = पत्र। बयारि . . . . ताती = कभी-गर्म हवा नहीं लगी (कभी कष्ट नहीं हुआ—मुहावरा)। बेनुनाद = वंशी की ध्वनि। लाड़ = प्यार, प्रेम। गनति नहिं काहू = किसी को भी नहीं गिनती थी (किसी की परवाह नहीं करती थी—मुहावरा)। सुदिन = मंगल, शुभ। रसमाती = आनन्द में उन्मत्त। सँघाती = साथी। कागद = कागज़।

सन्दर्भ—उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण के पत्र को प्राप्त करके गोपियाँ गद्‌गद हो गयीं। उनकी प्रेम-विह्वलता का यह एक सुन्दर चित्र है। पत्र के अक्षर को देखकर उन्हें श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण की याद आ गयी।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण के पत्र को प्राप्त करके, उनके लिखे पत्र के अक्षरों को देखती हैं, उन अक्षरों को देख-देखकर पत्र को बार-बार अपनी छाती से लगा लेती हैं—छाती से लगाने का अभिप्राय यह है कि यह पत्र हृदय के समान प्यारा है। पत्र को देखते ही गोपियों के मानस में प्रेम का सात्विक अनुभाव पैदा हुआ, फलतः उनके नेत्रों से सात्विक अनुभाव के कारण प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे—इससे कागज की स्याही आँसुओं के मिल जाने से फैल गयी है और श्रीकृष्ण का पत्र श्यामवर्ण हो गया। इसमें भाव-व्यंजना का चमत्कार यह है कि अब गोपियों को वर्ण-साम्य के कारण पत्र में अंकित अक्षर श्रीकृष्ण जैसे प्रतीत होने लगे। गोपियों के मन में पत्र को पढ़ने पर पूर्व स्मृतियाँ जागृत हो गयीं और वे सब उद्धव से कहने लगीं, हे उद्धव, जब श्याम सुंदर गोकुल में रहते थे तो उनके साथ हम लोगों को कभी भी गर्म हवा नहीं

लगी (कभी भी दुख का अनुभव नहीं किया) और उस समय की चर्चा तुमसे क्या करें जब हम सब अपने-अपने घर के कार्यों की परवाह न करके उनकी मधुर वंशी-ध्वनि को सुन कर दौड़ पड़ती थीं। (श्रीकृष्ण के प्रति हमारी ऐसी प्रेमनिष्ठा और अटूट विश्वास था)। यही नहीं, श्रीकृष्ण के प्रेम में दीवानी हम सब किसी को कुछ नहीं समझती थीं (किसी की मर्यादा की परवाह तक नहीं करती थीं यह हम सब की प्रेम-विह्वलता की स्थिति थी। और रात-दिन जब हम सब रास के आनन्द में उन्मत्त रहा करती थीं तो वह समय हमारे लिए कितना मंगलमय था। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ इतना कहते-कहते अत्यंत भाव-विभोर हो उठीं और कहने लगीं कि हे बचपन के साथी श्रीकृष्ण अब कब तुम्हारा दर्शन होगा ?

टिप्पणी—

(1) वर्ण-साम्य के कारण श्रीकृष्ण की स्मृति बिम्ब का यह एक सुंदर उदाहरण है।

(2) श्रीकृष्ण द्वारा लिखित पत्र के प्रति इतना मोह-सम्बन्ध-भावना का संकेत करता है।

(3) 'बार-बार' में पुनरुक्ति प्रकाश, 'गिरधर' शब्द में परिकरांकुर (रक्षण-भाव के कारण), 'स्याम-स्याम' में यमक तथा अंक में श्लेष है। अक्षर के अतिरिक्त गोद की भी इसमें व्यंजना है।

(4) 'बार-बार लावति छाती' 'कबहुँ . . . . . ताती,' 'हरि के लाड़ . . . . . काहू' में सुंदर मुहावरे का प्रयोग हुआ है और वियोग की उन्मादावस्था की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

(5) मोह, अश्रु, स्मृति, गर्व, विषाद आदि कई संचारी भाव इस पद में लिपटे हैं।

(6) द्वितीय पंक्ति में उद्दीपन विभाव का प्रयोग हुआ है—पत्र के देखने पर हृदय की पीड़ा जागृत हो जाती है।

(7) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस पद की अत्यधिक श्लाघा की है। यह विप्रलम्भ शृंगार के सभी अवयवों से पुष्ट रचना है।

राग मारू

मोहिं अलि दूहुँ भाँति फल होत।
तब रस-अधर लेति मुरली, अब भई कूबरी सौत॥
तुम जो जोगमत सिखवन आए, भस्म चढ़ावन अंग।
इन बिरहिन में कहुँ कोउ देखी सुमन गुहाये अंग।
कानन मुद्रा पहिरि मेखली धरे जटा आधारी।
यहाँ तरल तरिवन कहँ देखे अरु तनसुख की सारी॥
परम वियोगिन रटति रैन दिन धरि मनमोहन-ध्यान।
तुम तो चलो बेगि मधुबन को जहाँ जोग को ज्ञान॥
निसिदिन जीजतु है या ब्रज में देखि मनोहर रूप।
सूर जोग लै घर-घर डोलौ, लेहु लेहु धरि सूप॥ 58॥

शब्दार्थ—सुमन गुहाए = फूलों से गूँथना। भंग = भाँग। मुद्रा = स्फटिक का कुंडल जिसे योगी लोग अपने कानों में पहनते हैं। मेखली = मूँज की करधनी। आधारी = वह

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लकड़ी जिसे योगी सहारा के लिए लगाते हैं। तरल = चंचल, हिलते हुए। तखिन = कर्णफल, कानों का एक आभूषण। तनसुख = एक प्रकार का सुंदर वस्त्र। सारी = साड़ी। धरि सूप = सूप में रखकर, (मुहावरा) फटककर (शुद्धता को प्रमाणित करके)

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव की योग-साधना को निरर्थक प्रमाणित कर रह रही हैं। उनके कथनानुसार योग की समस्त क्रियाओं का विनियोग वे इस वियोगावस्था में कर चुकी हैं, अतः इस योग की आवश्यकता नहीं है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमें तो दोनों ही स्थितियों में (संयोग और वियोग दोनों ही दशाओं में) एक ही प्रकार के फल की प्राप्ति होती है—एक जैसा अनुभव होता है। यथा, पहले जब श्रीकृष्ण से संयोग था तो उनके ओष्ठों का रस हमारी सौत बन कर मुरली लिया करती थी अब (श्रीकृष्ण के चले जाने पर) हमारी सौत कुब्जा बन बैठी है जो हमें जला रही है। तुम जो हमें यहाँ योग सिद्धान्त की बातें सिखाने के लिए आए हो और विशेषकर हमारे अंगों में भस्म चढ़ाने की शिक्षा दे रहे हो तो ये सभी चीजें व्यर्थ हैं, क्योंकि क्या तुमने कभी फूलों से गुथी हमारी माँगों को देखा है (क्या हम सब गोपियों को शृंगार करते हुए देखा है ?) तुम हम सबको कानों में कुंडल, कमर में मूँज की करधनी और जटा धारण करने एवं आधारी लेने की बात कर रहे हो, हम तुमसे पूछना चाहती हैं कि तुमने हमारे कानों में हिलते हुए कर्णफूल और अंग में तनसुख की साड़ी पहने हुए कहाँ देखा ? व्यंजना यह है कि इन शृंगारिक उपादानों को हमने बहुत पहले छोड़ दिया है (श्रीकृष्ण के वियोग में हमारी स्थिति किसी योगिनी से कम नहीं है) और रात-दिन वियोगिनी बनकर मोहन का ध्यान करती हुई उन्हीं की रट लगाया करती हैं (दूसरे का ध्यान भी मानस में नहीं है)। ऐसी स्थिति में आपके योग का प्रभाव यहाँ पड़ने वाला नहीं है। अतः उत्तम यही होगा कि तुम शीघ्र मथुरा निकल जाओ जहाँ योग के ज्ञानी और मर्मी लोग विद्यमान हैं, वहीं इस योग की कद्र भी होगी। यहाँ तो सदैव (दिन रात) श्रीकृष्ण के मनोहारी रूप को देखकर जीवित रहा करती हैं (श्रीकृष्ण की सगुणोपासना में हम लोगों का मन तन्मय रहता है)। लेकिन तुम तो सूप में रखकर घर-घर व्यर्थ ही अपने योग को लेकर घूम रहे हो। प्रयोजन यह है कि एक व्यापारी की भाँति अपने योग रूपी सौदा की शुद्धता को उसी प्रकार प्रमाणित करते फिरते हो, जैसे सूप से फटककर अन्न कण की निस्सार चीजें अलग कर दी जाती हैं। तुम भी पुकार-पुकार कहते फिरते हो कि यह हमारा सारा योग माल है इसे ले लो, ले लो—सूप में अन्नकण की भाँति खूब फटककर अच्छी तरह देखकर छान-बीन करके, खरीद लो।

टिप्पणी—

(1) तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठीं और सातवीं पंक्ति का भाव जगन्नाथ दास रत्नाकर के उद्धव शतक में भी दृष्टिगत हुआ है—

ये तौ बस बसन रँगावैं मन रंगत ये
भसम रमावैं वे ये आपुही भसम हैं।

(2) वियोगिनी और योगिनी के समान धर्म का यह सुंदर निदर्शन है।

(3) अंतिम पंक्ति में लोकोक्ति की सरस अवतारणा हुई है।

(4) दूसरी पंक्ति में मुरली और कुब्जा के संदर्भ के कारण असूया संचारी भाव है।

(5) नवीं पंक्ति में श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति गोपियों की अटूट निष्ठा व्यक्त हुई है।

राग सारंग

बिलग जनि मानौ हमरी बात।
डरपति बचन कठोर कहति, मति बिनु पति यों उठि जात॥
जो कोउ कहत जरे अपने कछु फिरि पाछे पछितात।
जो प्रसाद पावत तुम ऊधो कृस्न नाम लै खात॥
मनु जु तिहारो हरिचरनन तर अचल रहत दिन-रात।
'सूर स्याम तें जोग अधिक' केहि कहि आवत यह बात॥ 59 ॥

शब्दार्थ—बिलगि जनि मानो = बुरा मत मानो। डरपति = डर रही हैं। मति बिन = बिना बुद्धि के, बिना विचारे। पति उठि जात = मर्यादा चली जाती है। जरे अपने = अपना जी जलने पर। हरिचरनन तर = श्रीकृष्ण के चरणों में।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने उद्धव के प्रति अपना दैन्य भाव व्यक्त किया है और वे उन्हें निश्चय रूपेण श्रीकृष्ण का भक्त समझती हैं। उन्हें आश्चर्य है कि फिर भी वे कृष्ण से अधिक महत्व योग को क्यों दे रहे हैं ?

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमारी बातों को बुरा मत मानना, क्योंकि हमने अमर्ष में तुमसे बहुत-सी कठोर बातें कह दी हैं। अब तो तुमसे कुछ भी कठोर बातें कहते डरती हैं क्योंकि बिना सोचे-समझे (बुद्धिहीन) बातें करने से मर्यादा भंग हो जाती है (जैसे गोपियों से बिना सिर-पैर की बातें करने से तुम्हारी मर्यादा भंग हो गयी है)। सत्य तो यह है कि यदि कोई अपना जी जलने पर दूसरों के प्रति अनुचित या कठोर वाणी का प्रयोग करता है तो अन्ततः उसे पछताना पड़ता है (आवेग जनित कथन बहुत भयावह होता है)। हे उद्धव, हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम्हें जो कुछ भी मिल जाता है, उसे भगवान का प्रसाद समझकर तुम उनका स्मरण करते हुए उसे ग्रहण करते हो। अर्थात् तुम्हें जो भी प्रतिष्ठा मिलती है उसका श्रेय तुम श्रीकृष्ण को देते हो (अतः स्पष्ट है कि तुम भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आस्थावान हो और उन्हीं के नाते तुम सम्मानित भी होते हो)। तुम्हारा मन भी श्रीकृष्ण के चरणों में सदैव लगा रहता है (तुम भगवान श्रीकृष्ण के चरणों के अनन्य भक्त हो)। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि फिर भी आश्चर्य है कि श्याम से बढ़कर किसलिए तुम योग की महत्ता की चर्चा करते हो, भला, श्रीकृष्ण से बढ़कर किस मूर्ख को योग की बातों पर विश्वास होगा, किसे ऐसी बातें कहते बनेगी ?

टिप्पणी—

(1) वक्रता-विधान और व्यंग्यगर्भित उक्ति की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है।

(2) इसमें श्रीकृष्ण की महत्ता का निरूपण हुआ है।

(3) गोपियों की क्षमाशीलता और दैन्यवृत्ति का यह सुंदर नमूना है।

(4) दूसरी और तीसरी पंक्ति ('पति उठि जात', 'जरे अपने' में सुन्दर मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग सारंग

अपनी सी कठिन करत मन निसिदिन।
कहि कहि कथा, मधुप, समुझावति तदपि न रहत नंदनंदन बिन॥
बरजत श्रवन सँदेस, नयन जल, मुख बतियाँ कछु और चलावत।
बहुत भाँति चित धरत निठुरता सब तजि और यहै जिय आवत॥
कोटि स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि-समीप समता नहिं पावत।
थकित सिंधु-नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत॥
जे बासना न बिदरत अंतर तेइ तेइ अधिक अनुअर दाहत।
सूरदास परिहरि न सकत तन बारक बहुरि मिल्यो है चाहत॥ 60 ॥

शब्दार्थ—अपनी सी = अपने भरसक। कठिन करत = कठोर या कड़ा बनाती हैं। बरजत = मना करती है। फिरि फिरि = लौट-लौटकर। फेरि = पुनः। वहै गुन = उसी कृष्ण के गुण जे बासना = जिस मिलन की वासना या भावना से। बिदरत = विदीर्ण होता है। अन्तर = हृदय। तेइ-तेइ = वही उसे (मन को)। अनूअर दाहत = निरन्तर जलाया करती है। परिहरि = त्यागना। बारक = एक बार। बहुरि = पुनः। नौका = यहाँ नौका से जहाज का आशय है।

प्रसंग—इसमें गोपियों के मन की विवशता का अत्यंत मार्मिक और भावपूर्ण चित्रण किया गया है। उद्धव से गोपियाँ विनम्र भाव से कहती हैं कि हे उद्धव, हम सब कृष्ण प्रेम में आसक्त अपने मन को वहाँ से हटाने का भरसक प्रयत्न करती हैं, लेकिन मन की ऐसी गहरी निष्ठा और लगन के कारण हम सब को सफलता नहीं मिलती।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हम भरसक अपने मन को सदैव कठोर बनाने का प्रयत्न करती हैं और अनेक प्रकार की कथा (अनेक नये-नये प्रसंगों) द्वारा उसे समझाती हैं, लेकिन वह श्रीकृष्ण के बिना नहीं रह पाता (श्रीकृष्ण के बिना वह तड़पने लगता है)। हम सदैव अपने कानों को श्रीकृष्ण के सन्देश सुनने के लिए रोकती हैं, क्योंकि इससे हमारा मन भड़क उठेगा और नेत्रों को श्रीकृष्ण की स्मृति में आँसुओं को भरने के लिए मना करती हैं। श्रीकृष्ण की स्मृति में साश्रु नेत्रों से हमारे मन में वेदना उत्पन्न होगी और वह विरह से व्याकुल हो उठेगा। यही नहीं, मुख से भी श्रीकृष्ण की चर्चा न करके अन्य चर्चाएँ किया करती हैं जिसमें मन की उधर से आसक्ति कम हो जाय। अपने चित्त को हम सब अनेक भाँति से कठोर बनाती हैं—श्रीकृष्ण के मोह से मुक्त होने की चेष्टा करती हैं।

लेकिन मन की विवशता के सम्बन्ध में क्या कहा जाय, उसके चित्त में वही रहता है (वही श्रीकृष्ण उसे भाता है) उसका ध्यान दूसरी ओर ले जाती हैं, लेकिन वह हम सब की एक नहीं सुनता। और सब छोड़कर श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न रहता है। यद्यपि यह मन करोड़ों स्वर्ग के सुख की कल्पना तो करता है लेकिन श्रीकृष्ण के सामीप्य-जनित सुख (उनके निकट रहने के आनन्द) की तुलना उसकी दृष्टि में वह करोड़ों स्वर्ग का सुख भी) नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में मन को जो सुख श्रीकृष्ण के निकट प्राप्त होता है, वह संभावित करोड़ों स्वर्ग के सुख से प्राप्त नहीं हो सकता। वह अन्य सुखों से थक कर समुद्र के जहाज पर बैठे हुए पक्षी की भाँति अन्ततः लौटकर पुनः श्रीकृष्ण के उसी आनन्द के निकट आ जाता है और उन्हीं का गुणानुवाद किया करता है। इस मन में श्रीकृष्ण-मिलन की एक वासना (इच्छा) शेष रह गयी है, इसी से उसका

हृदय विदीर्ण नहीं होता (यही उसे जीवित रखती है, अन्यथा वह मृत्यु को कभी प्राप्त हो जाता, परन्तु यही इच्छा उसे निरन्तर जला भी रही है। मिलन की इस आशय से वह अपने शरीर को त्यागता भी नहीं, क्योंकि वह एक बार पुनः उनसे (श्रीकृष्ण से) मिलकर मरना चाहता है।

टिप्पणी—

(1) मन की विवशता का एक मनोवैज्ञानिक चित्रण इसमें हुआ है।
(2) पाँचवीं और छठीं पंक्ति में उपमालंकार है।
(3) मिलन की आशा में मन मृत्यु को भी नहीं चाहता। वह मिलन के लिए मृत्यु तुल्य पीड़ा बर्दाश्त कर रहा है।
(4) अंतिम चरण का भाव देव के इस छन्द में भी देखने को मिला है।

देव जिये मिलिवेई की आस कै आसहु पास अकास रह्यो भरि
जादिन ते मुख फेरि हरैं हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।

(5) 'थकित सिंधु नौका के खग ज्यों' जैसी उपमा सूर ने अपने पदों में कई स्थलों पर प्रयुक्त की है।

राग धनाश्री

रहु रे, मधुकर ! मधुमतवारे !
कहा करौं निर्गुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे॥
लोटत नीच परागपंग में पचत न आपु सम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे॥
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे॥
घरी पहर सबको बिलमावत जेते आवत कारे॥
सुन्दरस्याम कमलदल-लोचन जसुमति नन्द-दुलारे
सूर स्याम को सर्वस अर्प्यो अब कापै हम लेहिं उधारे॥ 61 ॥

शब्दार्थ—मधुकर = भ्रमर (यहाँ उद्धव से अभिप्राय है)। मधुमतवारे = भ्रमर अर्थ में मकरन्द के लोभ में मतवाला; शराबी के अर्थ में शराब में मतवाला। मधु = मकरन्द; शराब। पराग-पंक में = पुष्पधूल के कीचड़ में। पचत = बरबाद होना, नष्ट होना, अपनी मर्यादा खोना। सरक = शराब की लत; नशा। अपरस = अपना रस (अपनी गुप्त बात) जो स्पर्श न किया जा सके (यहाँ निर्गुण ब्रह्म से अभिप्राय है)। कहा उघारे = उद्घाटित करने में (खोलने में) क्या लाभ। कुसुम तिहारे = तुम्हारे पुष्प (मथुरा की नारियाँ विशेषकर कुब्जा के प्रति संकेत है)। बिलमावत = रोकते हो, आराम देते हो। कारे = काले (यहाँ श्रीकृष्ण और अक्रूर आदि से प्रयोजन है)। कापै = किससे। उधारे = कर्ज़ में, ऋण रूप में।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों की वासनारहित अनाविल प्रेम-व्यंजना की प्रधानता है। वस्तुतः श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम उनके सतीत्व और दृढ़ता का बोधक है। यहाँ भ्रमर रूप उद्धव की चपल वृत्ति का गोपियाँ उपहास कर रही हैं। इसके साथ ही सूर ने इस पद में उद्धव को एक मद्यप के रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—(भ्रमर-मद्यप-रूप 'उद्धव' के प्रति गोपियों का कथन) रे भ्रमर रूप मद्यप, ठहर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जा—ज्यादा मत बोल ! आशय यह है कि तुम मकरन्द रूप शराब के नशे में मतवाले हो रहे हो (उद्धव के प्रति, ब्रह्म ज्ञान के मद में तुम्हारा विवेक खो गया है, अत: चुप रहो !) हम तुम्हारा निर्गुण (गुणहीन—बेकार) ब्रह्म लेकर क्या करें—तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मोपासना से हमारे किस प्रयोजन की सिद्धि होगी (व्यंजना यह है कि हम सब सती स्त्रियाँ हैं पर पुरुष (तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म) से कैसे सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं)। हमारे श्रीकृष्ण चिरंजीवी रहें उनके रहते हमारा अन्यों से प्रेम कैसे हो सकता है ? हे नीच मद्यप भ्रमर, तुम तो इतने विवेकहीन हो गये हो कि पराग की कीचड़ में लोट रहे हो (शराबी जब शराब के नशे में धुत रहता है तो उसका समस्त विवेक खो जाता है, और वह गन्दी नालियों के कीचड़ में भी लोटने लगता है) और इस प्रकार अपनी गिरती हुई मर्यादा को सम्हाल नहीं पा रहे हो—तुम बर्बाद हो रहे हो। तुम तो बार-बार शराब की लत में पड़ कर (शराब के नशे में मग्न होकर) अपनी गुप्त बात भी खोल रहे हो, इससे क्या लाभ (शराबी शराब के नशे में अपनी गुप्त बात भी प्रकट कर देता है) उद्धव के पक्ष में इसकी अभीष्ट व्यंजना यह होगी कि निर्गुण ज्ञान के गर्व में तुम उस स्पर्शहीन ब्रह्म (अपरस) के महत्व को क्यों उद्घाटित कर रहे हो, उससे क्या लाभ होगा (उसका प्रभाव हम लोगों पर किसी भी प्रकार नहीं पड़ेगा)। तुम समझते हो कि जैसे तुम्हारे पुष्प हैं, वैसे क्या हम सब भी हैं। व्यंजना यह है कि तुम जिन पुष्पों से प्रेम करते हो उनका क्या चारित्रिक स्तर है—वे सब कुलटा स्त्रियों के समान हैं, किन्तु हम सब का प्रेम एकमात्र श्रीकृष्ण से ही है, दूसरे के लिए कोई स्थान नहीं है। गोपियों का प्रयोजन यह है कि तुम मथुरा की जिन नारियों से विशेषकर कुब्जा से प्रेम करते हो वे व्यभिचारिणी तुल्य हैं उनके प्रेम में एकनिष्ठा का भाव नहीं है। वे सब तो जितने काले भ्रमर उनके पास आते हैं सब का थोड़े समय के लिए स्वागत करती हैं प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार पुष्प सभी भ्रमरों को स्थान देते हैं और वहाँ भ्रमरों को थोड़ी देर के लिए आराम मिलता है उसी प्रकार कुब्जा तथा मथुरा की चपल नारियाँ सब श्यामवर्ण वालों को (श्रीकृष्ण और उद्धव से अभिप्राय है) वारांगना की भाँति अपने यहाँ ठहराती हैं, लेकिन हमारे लिए तो एकमात्र सुंदर कमलनेत्र नन्द और यशोदा के प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण ही हैं—उन्हीं की शरण में हैं और उनके लिए हमने अपना सब कुछ अर्पित कर दिया। अब दूसरा मन उधार में किससे लें जो तुम्हारे ब्रह्म को भेंट करें (यहाँ गोपियों की अनन्यता का भाव व्यक्त हुआ है)।

टिप्पणी—

(1) प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त 'मधु' शब्द में शाब्दी व्यंजना का चमत्कार है। 'मधु' मकरन्द के अतिरिक्त 'शराब' अर्थ का भी बोधक है।

(2) पूरे पद में भ्रमर को शराबी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अत: आलंकारिक दृष्टि से इसमें रूपक है। लगता है मुगल काल के उस सामन्तीय समाज का इसमें संकेत भी है, जहाँ सुरा और सुंदरी का स्थान सर्वोपरि था।

(3) 'सरक' का अर्थ आचार्य रामानन्द शुक्ल ने मद्य पात्र किया है जो प्रसंगानुकूल ठीक नहीं लगता। यहाँ 'सरक' का अर्थ नशा या नशा की लत है।

(4) अपरस का भी ठीक अर्थ नहीं किया गया। यहाँ अपरस रसहीन की अपेक्षा अपना रस अपनी गुप्त बात के साथ ही स्पर्शहीन (निर्गुण ब्रह्म) के अर्थ में व्यंजित है।

(5) व्यंजना का चमत्कार भी दृष्टव्य है यथा, कुसुम तिहारे में। यहाँ कुसुम-कुब्जा जैसी व्यभिचारिणी स्त्रियों के लिए प्रयुक्त है। इस दृष्टि से इसमें असूया संचारी है।

(6) वचन—विदग्धता और वक्रता के कारण इसकी सरसता बढ़ गयी है।

(7) इसमें स्वकीया प्रेम के आदर्श का सुंदर चित्र अंकित हुआ है।

(8) पूरी रचना में अन्योक्ति अलंकार की भी झलक है।

(9) अंतिम चरण का भाव सूर के एक अन्य पद में भी मिला है, यथा—

ऊधो मन न भए दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम पै को आराधै ईस॥

राग बिलावल

काहे को रोकत मारग सूधो ?
सुनहु मधुप ! निर्गुन-कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो ?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघन जू धौं ?
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौ जुवतिन जोग कहूँ धौं ?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ॥ 62 ॥

शब्दार्थ—मारग सूधो = सीधा मार्ग (भक्ति-मार्ग से अभिप्राय है)। निर्गुन-कंटक = निर्गुणोपासनारूपी काँटे से। राजपंथ = सड़क। रूँधो = रोकते हो, बाधा उपस्थित करते हो। धौं = तो। परेखो = विश्वास। छाछ न दूधो = मट्ठे और दूध का जो अन्तर नहीं समझता। मूर = मूलधन। निबेरत = वसूल करते हैं।

संदर्भ—इसमें यह बताया गया है कि सगुणोपासना का मार्ग अत्यन्त सरल और सीधा राजमार्ग है जिसे उद्धव जी अपनी निर्गुणोपासना की पद्धति द्वारा कंटकाकीर्ण बना रहे हैं। गोपियों को उद्धव की यह रीति पसन्द नहीं है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, इस सगुणोपासना के सीधे और सरल राजमार्ग (चौड़े रास्ते) को तुम अपने निर्गुण ब्रह्मोपासना के काँटों से क्यों रूँध रहे हो ? (किस लिए इस सरल उपासना की पद्धति में रोड़े अटका रहे हो ?) हे उद्धव, लगता है हमारे कार्यों में बाधा पहुँचाने के लिए तुम्हें या तो कुब्जा ने सिखाकर भेजा है या श्रीकृष्ण ने तुम्हें समझाकर यहाँ तक भेजा है (दूसरे शब्दों में तुम अपनी इच्छा से यहाँ तक नहीं आए हो, तुम्हें कुब्जा और श्रीकृष्ण ने भेजा है)। लेकिन हमारी चुनौती है कि युवतियों के लिए योग-साधना का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। तुम वेद, पुराण, स्मृति आदि सब ग्रंथों में खोजकर देख लो। हम लोग उसका क्या विश्वास करें जो मट्ठा और दूध के अन्तर को नहीं समझता अर्थात् जो मट्ठे के तुल्य निस्सार निर्गुण ब्रह्मोपासना और दूध के समान मंगलकारी सरल सगुणोपासना के महत्व को नहीं जानता ? सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव के प्रति कहती हैं कि मूलधन-स्वरूप श्रीकृष्ण और बलराम को तो अक्रूर जी पहले ही ले गये अर्थात् हमारे सर्वस्व (श्रीकृष्ण और बलराम को तो अक्रूर जी पहले ही छीन ले गये) अब उद्धव जी ब्याज वसूल करने के लिए आए हैं अर्थात् इतने कष्ट के बाद वे इन नीरस बातों द्वारा हमें और कष्ट देने के लिए चले आए हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—

(1) निर्गुन कटंक में रूपक अलंकार है। अन्तिम चरण में लोकोक्ति है।
(2) कुब्जा के प्रति तृतीय पंक्ति में असूया भाव व्यक्त किया गया है।
(3) पाँचवीं पंक्ति में लोकोक्ति अलंकार की प्रधानता है।
(4) 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस पद की भूरिशः श्लाघा की है।

राग मलार

बातन सब कोऊ समुझावै।
जेहि बिधि मिलन मिलैं वै माधव सो बिधि कोउ न बतावै॥
जद्यपि जतन अनेक रचीं पचि और अनत बिरमावै।
तद्यपि हठी हमारे नयना और न देखे भावै॥
बासर-निसा प्रानबल्लभ तजि रसना और न गावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिं लगि करि कहिए जो कहि आवै॥ 63॥

शब्दार्थ—जेहि बिधि मिलन = जिस प्रकार के संयोग से। मिलैं = भेंट करें। पचि = परेशान होकर परिश्रमपूर्वक। और अनत बिरमावै = कहीं दूसरे पर टिके हैं। तद्यपि = फिर भी। प्रानवल्लभ = श्रीकृष्ण। रसना = जिह्वा। प्रेमहिं लगि करि = प्रेम के ही नाते से।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के प्रेम में विह्वल गोपियाँ अपनी इन्द्रियों की विवशता का उल्लेख उद्धव जी से कर रही हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमें तो सब बातों में ही समझाते हैं किन्तु जिस प्रकार के संयोग से श्रीकृष्ण का दर्शन सुलभ हो सकता है उस प्रकार की रीति हमें कोई नहीं बताता। (सब बातों से ही प्रसन्न करने वाले हैं—वास्तविक बात कोई नहीं बताता)। यद्यपि हमने परिश्रमपूर्वक श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अनेक प्रयत्न किए लेकिन फिर भी, वे कहीं दूसरे पर टिके हैं (दूसरे पर टिकने का आशय यह है कि उन्होंने कुब्जा से सम्बन्ध बना लिया है)। अतः उनके मिलन की सभी संभावनाएँ क्षीण हो चुकी हैं, फिर भी हमारे इन हठीले नेत्रों को तो देखिये, ये उन्हीं को देखना चाहते हैं, इन्हें दूसरों को देखना पसन्द नहीं है। यही दशा हमारी जिह्वा की है, उसे रात-दिन श्रीकृष्ण के गुणानुवाद के अतिरिक्त किसी दूसरे का गुण गान करना प्रिय नहीं है। तात्पर्य यह है कि हमारी ये इन्द्रियाँ हमारे वश में नहीं हैं, ये श्रीकृष्ण की हो चुकी हैं। सूरदास के शब्दों में गोपियों का उद्धव से कथन है कि हे उद्धव, तुम जो कुछ भी कहना चाहते हो, अवश्य कहो, लेकिन तुम्हारा यह सब कथन श्रीकृष्ण के प्रेम सम्बन्ध से जुड़ा हो (तुम उनके प्रेम के नाते जो कुछ भी कहना चाहो, उसे हम सब सहर्ष सुनेंगी, अन्य चर्चाएँ सुनना हमें अभीष्ट नहीं है)।

टिप्पणी—

(1) श्रीकृष्ण प्रेम में गोपियों की इन्द्रियों (नेत्र, जिह्वा) की विवशता का सहज चित्रांकन।
(2) अन्तिम पंक्ति में अमर्ष-भाव की व्यंजना बहुत शालीनता के साथ की गयी है।
(3) अनत बिरमावै, में व्यंजना का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

राग सारंग

निर्गुण कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी॥
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥ 64॥

शब्दार्थ—सौंह दै बूझति = कसम खा कर पूछ रही हैं। बरन = रंग। रस = आनंद। गाँसी = व्यंग्य वाणी, चोट करने वाली बात। ठग्यो सो = ठगा हुआ सा। मतिनासी = बुद्धि नष्ट हो गयी।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद सूर की व्यंग्य गर्भित शैली का एक उत्कृष्ट नमूना है। इसमें गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का उपहास कर रही हैं और अतिशय व्यंग्यात्मक ढंग से वे निर्गुण ब्रह्म का परिचय पूछ रही हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, भला हमें यह तो बताइए कि तुम्हारा वह निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है क्योंकि हमने आज तक इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना और न इसकी हमें कुछ जानकारी ही है)। हे भ्रमर, सच हम कसम खाकर पूछ रही हैं, मजाक तुमसे नहीं कर रही हैं। हमें तुम हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक अर्थात् सहज भाव से) समझा दो कि निर्गुण ब्रह्म का कौन पिता है और इसकी माता कौन है, इसकी स्त्री कौन है और कौन इसकी दासी है ? व्यंग्य अर्थ यह है कि जिसके माता-पिता आदि का पता न हो उसकी क्या हैसियत है, क्या मर्यादा है (यहाँ तो हमारे श्रीकृष्ण के माता-पिता आदि सभी सम्बन्धी मौजूद हैं) पुनः हम सब यह भी जानना चाहती हैं कि इसका रंग कैसा है (क्योंकि हमारे श्रीकृष्ण का तो रंग हमें ज्ञात है) और इनकी कैसी वेश-भूषा है (ये कौन वस्त्र धारण करते हैं) ? दूसरे शब्दों में हमारे श्रीकृष्ण श्याम रंग के हैं और वे पीताम्बर धारण करते हैं। और किस रस में यह डूबा रहता है। (इसे कौन सी चीज प्रिय है)। इन सब बातों को पूछते-पूछते गोपियों का तीखा व्यंग्य अमर्ष भाव में परिणत हो जाता है और वे कहने लगती हैं कि हे उद्धव, अब ज्यादा जले-भुने की बात मत करो नहीं तो तुम्हें अपनी करनी का फल भी मिल जाएगा (कहने का तात्पर्य यह है कि अब हमारे हृदय को निर्गुण विषयक चर्चा से अधिक मत दुखाओ, अन्यथा हम तुम्हें कुछ कह देंगी)। सूर के शब्दों में गोपियों की ऐसी बातों को सुनते ही उद्धव जी ठगे से चुप हो गये—उनसे कुछ कहते नहीं बना और वे गोपियों की भक्ति और प्रेम के समक्ष स्तंभित हो गये।

टिप्पणी—

(1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर के इस पद की पर्याप्त सराहना की है। उनके अनुसार स्त्रियों के कैसे स्वाभाविक हाव-भाव भरे ये वचन हैं—"कसम है, हम ठीक-ठीक पूछती हैं, हँसी नहीं कि तुम्हारा निर्गुण कहाँ का रहने वाला है।" कुछ विनोद, कुछ चपलता, कुछ भोलापन, कुछ घनिष्ठता—कितनी बातें इस छोटे से वाक्य में टपकती हैं।
(2) निर्गुण ब्रह्म जिसे वेद और उपनिषद आदि सभी दार्शनिक ग्रन्थ नेति-नेति कहते हैं

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

और जो अग्राह्य और अज्ञेय है, उसका निरूपण करने में असमर्थ उद्धव की मनःस्थिति का बोध 'सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो' से पूरी तरह हो जाता है।

(3) यह हास्य-व्यंग्य गर्भित शैली का एक उत्कृष्ट नमूना है।

(4) सूर की वचन विदग्धता का इससे पूरा परिचय मिल जाता है।

(5) कई भावों की संयुक्त योजना के कारण, इसमें किलकिंचित् हाव की प्रधानता है।

(6) 'निर्गुन' शब्द में परिकरांकुर है और निर्गुन (गुणातीत) के माता-पिता की चर्चा आलंकारिक दृष्टि से विरोधाभास के अन्तर्गत आएगी।

राग केदारो

नाहिंन रह्यो मन में ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और।
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधो लोक-लाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय॥
स्याम गात सरोज-आनन ललित अति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥ 65॥

शब्दार्थ—ठौर = स्थान। अछत = रहते हुए (अवधी भाषा का प्रयोग)। आनिए = ले आएँ, स्थान दें। और = दूसरों को। घट = घड़ा। स्यामगात = श्याम शरीर। सरोज आनन = कमल मुख।

सन्दर्भ—इस पद में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्यता का भाव व्यक्त हुआ है। कृष्ण काव्य में परकीयाभाव की अधिकांशतः अभिव्यक्ति हुई है। इसमें सूर ने गोपियों के स्वकीया आदर्श का काव्योचित ढंग से निरूपण किया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, इस हृदय में तो अब स्थान ही नहीं बचा है, जहाँ तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म को बैठाएँ ? और भला श्रीकृष्ण के होते हुए, हम ऐसी जगह दूसरों को कैसे ले आ सकती हैं—कैसे दूसरों को स्थान दे सकती हैं। यह स्थान कभी खाली नहीं रहता, सदैव इसमें कृष्ण समाए रहते हैं—इस हृदय में उनकी व्याप्ति तो इस प्रकार है कि वे चलते, देखते, दिन में जागते, रात में स्वप्नावस्था और सुषुप्तावस्था दोनों ही अवस्थाओं में हृदय से उनकी श्याममूर्ति एक क्षण के लिए इधर-उधर हटती नहीं अर्थात् जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न तीनों अवस्थाओं में हम सब का हृदय श्याममय ही रहता है। हे उद्धव, तुम सांसारिक लोभ की बहुत-सी बातें कह कर हमें ललचा रहे हो, लेकिन हमारी विवशता है कि हम तुम्हारे ऐसे निर्गुण को कहाँ स्थान दें, जो समुद्रवत् विशाल और अनन्त है—इस समुद्र को (इस ब्रह्म रूपी समुद्र को) हम उस अपने हृदय रूपी छोटे से घड़े में जिसमें श्रीकृष्ण का प्रेम जल आपूरित है—कैसे भर सकती हैं—यह तो ऐसा ही है जैसे गागर में सागर भरना। पुनः हमारे नेत्रों की दशा तो और विचित्र है, वे श्याम शरीर वाले कमलमुख श्रीकृष्ण की अति सुंदर मन्द मुस्कराहट के सौन्दर्य के प्यासे हैं (रूप-दर्शन के आनन्द के लिए ये अतिशय आतुर हैं) सारांश यह है कि

यदि हम तुम्हारे ब्रह्म को स्थान देने के लिए कुछ सोचें भी तो इन नेत्रों के कारण हमें कुछ भी अवकाश नहीं मिलता।

टिप्पणी—

(1) इसी भाव को रहीम ने अपने इस दोहे में यों व्यक्त किया है—
प्रीतम छवि नैननि बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय॥

(2) 'तन प्रेम-पूरन घट' में तन से घट शब्द के दूर हट जाने से रूपक की संगति बैठाने में परेशानी होती है। अतः यहाँ दूरान्वय दोष है।

(3) अंतिम चरण में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग हुआ है।

(4) गोपियों के पातिव्रत धर्म और स्वकीया के उदात्त आदर्श की इसमें सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(5) छठीं पंक्ति में रूपक और लोकोक्ति अलंकार की प्रधानता है।

राग मलार

ब्रजजन सकल स्याम-व्रतधारी।
बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहैं व्यभिचारी॥
जोग मोट सिर बोझ आनि कैं कत तुम घोष उतारी ?
इतनी दूरि जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है प्यारी॥
यह सँदेश नहिं सुनै तिहारो, है मंडली अनन्य हमारी।
जो रसरीति करी हरि हमसौं सो कत जात बिसारी ?
महामुक्ति कोऊ नहीं बूझै, जदपि पदारथ चारी।
सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी॥ 66॥

शब्दार्थ—स्याम-व्रतधारी = श्रीकृष्ण प्रेम के व्रत को धारण करने वाले। आन = अन्य को। मोट = मोटरी, गठरी। घोष = अहीरों की बस्ती। आनिकै = ले आकर। कत = क्यों। प्यारी = महँगी (पंजाबी प्रयोग)। अनन्य = अद्वितीय, अनोखी। रसरीति = प्रेम रीति। बिसारी = भुलाई। पदारथ चारी = चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)। बूझै = समझता है।

संदर्भ—इसमें गोपियों के सच्चे पातिव्रत धर्म और उनकी प्रेम-निष्ठा का सुंदर निरूपण किया गया है। योग की अग्राह्यता और श्रीकृष्ण प्रेम की सहजता दोनों को सूर ने बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यहाँ सभी ब्रजवासी श्रीकृष्ण प्रेम के व्रत को धारण करने वाले हैं—उन्हें श्रीकृष्ण प्रेम के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ प्रिय नहीं हैं। हम सब गोपाल के अतिरिक्त किसी को जानती तक नहीं, यदि गोपाल के अतिरिक्त किसी अन्य की चर्चा करें तो हम सबकी गणना व्यभिचारिणी स्त्रियों में होगी—तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण को छोड़कर यदि हम तुम्हारे ब्रह्म की उपासना करने लगें तो हमारा पातिव्रत धर्म कलंकित होगा और श्रीकृष्ण के प्रति हमारा जो अनन्यता का भाव है, उसे

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लोग संदेह की दृष्टि से देखेंगे, अतः हम सब अपने चारित्रिक स्तर को गिराना नहीं चाहतीं। हमें आश्चर्य है कि तुमने किस प्रयोजन से अपनी योग की गठरी अहीरों की बस्ती में आकर उतारी है, अरे, इस योग की गठरी में जो माल है, उसका यहाँ कोई खरीददार नहीं है तात्पर्य यह है कि ब्रज के लोगों के लिए तुम्हारा यह योग-शास्त्र किसी प्रयोजन का नहीं है। इसे यदि बेचना चाहते हो तो तुम दूर काशी में ले जाओ जहाँ यह महँगा बिकेगा। तुम इसे बेच कर मुँह माँगा दाम पा जाओगे तात्पर्य यह है कि काशी ही योग-साधना का उपयुक्त स्थान है, जहाँ बड़े-बड़े योगी मिल जाएँगे, और वे तुम्हारे योग की कद्र करेंगे।) यहाँ तो हम सब की मंडली (समाज) बड़ी विचित्र और अनोखी है, यह तुम्हारा संदेश सुनने के लिए तैयार नहीं है। भला, यह बतलाइए कि श्रीकृष्ण ने हम सब के साथ अपनी जिस प्रेम-रीति का व्यवहार किया क्या उसे भुलाया जा सकता है ? तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण की उन अगणित प्रेम लीलाओं को हम सब कैसे विस्मृत कर सकती हैं। यद्यपि आपकी महामुक्ति चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक कही जाती है, लेकिन उसे यहाँ कोई नहीं पूछ रहा है (समझ ही नहीं पाता—ऐसे गूढ़ और गम्भीर सिद्धान्तों को समझने वाले लोग यहाँ नहीं हैं)। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव, हम सब तो अपने स्वामी प्राणवल्लभ मनमोहन पर बलिहारी हैं (उन पर हम लोगों ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया) इसमें गोपियों की आत्म-समर्पण की वृत्ति का संकेत है।

टिप्पणी—

(1) द्वितीय पंक्ति में पर्यायोक्ति अलंकार है, इसमें पर्याय उक्ति से गोपियों के आदर्श और अनाविल प्रेम की व्यंजना हुई है।

(2) 'जोग मोट' में रूपक है।

(3) 'प्यारी' शब्द पंजाबी है, स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर ने ब्रजभाषा को व्यापक बनाने के लिए ऐसे शब्दों के प्रयोग में किसी भी प्रकार की उदासीनता नहीं प्रकट की।

(4) सातवीं पंक्ति में श्रीकृष्ण के समक्ष चारों पदार्थों को तुच्छ बताया गया है।

राग धनाश्री

कहति कहा ऊधो सों बौरी।
जाको सुनत रहे हरि के ढिग स्यामसखा यह सो री !
कहा कहत री ! मैं पत्यातं री नहीं सुनी कहनावत ?
हमको जोग सिखावन आयो, यह तेरे मन आवत ?
करनी भली भलेई जानैं, कपट कुटिल की खानि।
हरि को सखा नहीं री माई ! यहं मन निस्चय जानि।
कहाँ रास-रस कहाँ जोग-जप ? इतना अंतर भाखत।
सूर सबै तुम कत भईं बौरी याकी पति जो राखत ॥ 67 ॥

शब्दार्थ—बौरी = पगली। ढिगै = निकट। सो = वही। पत्यात री = विश्वास करती हूँ। तेरे मन आवत = तेरी समझ में आ रहा है। माई = सखी (ब्रजभाषा में 'माई' सखी के अर्थ में प्रयुक्त होता है)। भाखत = कहता है, बतलाता है। पति जो राखत = सम्मान करती हो।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव को एक धूर्त और कपटी समझा है, क्योंकि इनमें सज्जनों जैसा कोई गुण नहीं है।

व्याख्या—(एक सखी दूसरी सखी से उद्धव की धूर्तता का उल्लेख कर रही है) हे सखी, तू पगली की भाँति उद्धव से क्या कह रही है अर्थात् इन्हें समझाने के लिए पागल मत बन, ये बड़े धूर्त हैं, तुम्हारी बातों में नहीं आएँगे। अरी, श्रीकृष्ण के निकट रहने वाले जिस सखा के सम्बन्ध में बहुत समय से सुनती रही, ये वे ही हैं (व्यंग्यार्थ यह है कि तुम सब इस धोखे में मत रहो कि ये श्याम के सखा हैं, अरे यह धूर्त व्यक्ति है और स्वयं को श्रीकृष्ण का सखा बतला रहा है। अरी, क्या तू यह समझती रही कि यह हमें योग की शिक्षा देने आया है ? अरी, सखी तुम क्या कह रही हो, मैं तुम्हारी बातों में विश्वास नहीं करती, तुमने क्या यह कहावत नहीं सुनी कि जो व्यक्ति सज्जन होते हैं, वे सज्जनता की ही बातें करते हैं उनके सारे कार्य सज्जनों के से होते हैं, लेकिन जो कपटी होते हैं वे कुटिलता (दुष्टता) की खानि होते हैं (उनमें कूट-कूटकर दुष्टता भरी रहती है)। हे सखी, इस दृष्टि से तुम निश्चय जान लो कि ये श्रीकृष्ण के मित्र नहीं हैं क्योंकि यदि मित्र होते तो श्रीकृष्ण की सज्जनता के गुण इन्हें मिले होते, लेकिन ये अत्यंत दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति हैं। भला, कहाँ रास का आनन्द और कहाँ योग और जप की नीरस बातें दोनों में इतने अन्तर की बातें कर रहा है अर्थात् दोनों में आकाश-पाताल का परस्पर अन्तर है और यह इस प्रकार की परस्पर विरोधी चर्चा कर रहा है। जिसे इस अन्तर का पता नहीं है उस पर क्यों विश्वास कर रही हो ? सूर के शब्दों में गोपियों का परस्पर कथन है कि तुम सब पगली बन कर इस अविश्वासी और कपटी के प्रति क्यों सम्मान दे रही हैं (इसकी प्रतिष्ठा बनाए रखने का अब कोई प्रश्न ही नहीं है)।

टिप्पणी—

(1) यह व्यंग्यगर्भित शैली का एक उत्कृष्ट पद है। ध्वनि की दृष्टि से इसमें अत्यंत तिरस्कृतवाच्य ध्वनि है, क्योंकि इसमें अभिधा शक्ति का तिरस्कार किया गया है।

(2) 'करनी .... खानि' में लोकोक्ति अलंकार है।

(3) बौरी जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा सूर ने स्त्रियों की भाषा का सहज नमूना प्रस्तुत किया है।

(4) 'हरि को सखा .... माई' में वस्तु से व्यंग्य व्यंजित हुआ है।

राग रामकली

ऐसेई जन दूत कहावत !
मोको एक अचंभो आवत यामें ये कह पावत ?
बचन कठोर कहत, कहि दाहत, अपनी महत गँवावत।
ऐसी परकृति परति छाँह की जुवतिन ज्ञान बुझावत ॥
आपुन निलज रहत नखसिख लौं एते पर पुनि गावत।
सूर करत परसंसा अपनी, हारेहु जीत कहावत ॥ 68 ॥

शब्दार्थ—कहि दाहत = कह कर जलाता है। महत गँवावत = अपने महत्व या महिमा को खो रहा है (नष्ट कर रहा है) छाँह की = संसर्ग का। परकृति = प्रकृति (प्रभाव)। ज्ञान

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बुझावत = ज्ञान की बातें समझा-बुझा रहा है। निलज = निर्लज्ज। नखसिख लौं = पूर्णतया, पूरी तरह से। परसंसा = प्रशंसा। हारेहु जीत कहावत = हारने पर भी अपने को जीता हुआ बतला रहा है। दूत = इधर की उधर लगाने वाले। यामें = इसमें।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव की निर्लज्जता का उल्लेख किया है और यह भी संकेत किया है कि ऐसे ही लोग आदर्श दूत (संदेशवाहक) कहलाते हैं। गोपियाँ प्रकारान्तर से यह सिद्ध कर रही हैं कि इनमें दूतत्व का कोई स्मरणीय गुण नहीं है (ये तो इधर की उधर लगाने वाले व्यक्ति हैं।)

व्याख्या—(गोपियाँ परस्पर कह रही हैं) हे सखी, ऐसे ही लोग आज दूत कहलाने का दावा करते हैं जो इधर की उधर लगाया करते हैं। हमें एक यही आश्चर्य होता है कि ऐसा करने से इन्हें क्या मिल जाता है (दूसरों को परेशान करने में इन्हें क्या लाभ होता है!) सच तो यह है कि ये हम लोगों को अपनी कठोर वाणी (योग की नीरस और शुष्क बातें) द्वारा जलाते हैं और अपनी महिमा को इस प्रकार नष्ट करते हैं (इनकी जो साख हम लोगों में बनी हुई है, उसे ये खो रहे हैं)। देखो तो, सखी, यह संसर्ग का ही प्रभाव है अर्थात् श्रीकृष्ण और कुब्जा के संसर्ग में रहने के कारण ये युवतियों को योग की बातें समझाने आए हैं। स्वयं तो इस सीमा तक निर्लज्ज हो गया है कि अपनी ही गाये जा रहा है। तात्पर्य यह है कि हम लोग ब्रह्म की चर्चा सुनने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं, फिर भी हमारी इच्छा के विरुद्ध यह निर्गुण का राग बराबर अलाप रहा है—यह तो इसकी निर्लज्जता की चरम सीमा है। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि यह अब भी चुप नहीं है और अपने ज्ञान की अपने ही मुख अपनी प्रशंसा कर रहा है तथा हार कर भी अपने को जीता हुआ प्रमाणित कर रहा है अर्थात् अपने निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करने में पूर्णतया असमर्थ है फिर भी यह घोषित कर रहा है कि उसे ब्रह्म का पूर्ण बोध है।

टिप्पणी—

(1) 'दूत' शब्द में व्यंग्यार्थ की प्रधानता है।

(2) पूरी रचना में रूढ़ि लक्षण का प्राधान्य है।

(3) वस्तु से व्यंग्य ध्वनित है अर्थात् व्यंग्य यह है कि उद्धव श्रीकृष्ण के सच्चे संदेशवाहक नहीं हैं। स्वयं ही योगविषयक तरह-तरह की बातें गढ़ कर व्रज युवतियों को भड़का रहे हैं।

राग धनाश्री

प्रकृति जोई जाके अंग परी।
स्वान-पूँछ कोटिक जो लागै, सूधि न काहु करी॥
जैसे काग भच्छ नहिं छाँड़ै जनमत जौन घरी।
धोये रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी ?
ज्यों अहि डसत उदर नहिं पूरत ऐसी धरनि धरी।
सूर होउ सो होउ सोच नहिं तैसे हैं एउ री॥ 69 ॥

शब्दार्थ—प्रकृति = आदत, स्वभाव। जाके अंग परी = जिसके अंश में मिलती है। स्वान = कुत्ता। कोटिक जो लागै = करोड़ों प्रयत्न करो। सूधि = सीधी। भच्छ = भक्ष्य। यहाँ भक्ष्य से तात्पर्य अभक्ष्य पदार्थों से है। जौन घरी = जिस घड़ी में। अहि = सर्प। उदर नहिं पूरत = पेट नहीं भरता। धरनि = टेक पकड़ी है। एउ री = ये उद्धव भी ऐसे ही हैं।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने प्रत्येक प्राणी की स्वभावज विशेषताओं का वर्णन किया है। प्रकारान्तर से उद्धव की प्रकृति का इसमें अत्यंत स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

व्याख्या—गोपियाँ परस्पर कह रही हैं हे सखी, यह तो स्वभाव की बात है जो जिसके हिस्से में पड़ न जाय अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव बन जाता है वह छूटता नहीं। जैसे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे कुत्ते की पूँछ आज तक किसी ने सीधी नहीं की (उसकी टेढ़ी पूँछ आज तक टेढ़ी ही है) इसी प्रकार कौवा जिस घड़ी से जन्म लेता है वह अभक्ष्य (बुरी वस्तुएँ जो खाने योग्य नहीं हैं) खाना छोड़ता नहीं, क्योंकि अभक्ष्य खाना उसका स्वभाव बन गया है। कोई यदि काले कम्बल को धोकर साफ करना चाहे तो धोने से उसका काला रंग कैसे छूट सकता है ? यही नहीं, सर्प को देखिए, वह लोगों को डस लेता है और डसने से उसका पेट तो भरता नहीं, लेकिन डसने की उसने ऐसी टेक पकड़ ली है (इस टेक या आदत को छोड़ने में वह सर्वथा असमर्थ है)। अरी सखी, ये उद्धव भी ऐसे ही टेकी हैं (ये अपनी आदत से बाज नहीं आते और बहुत खरी-खोटी सुनाने पर भी अपना राग अलापते रहते हैं) उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं है कि इसका क्या परिणाम होगा ये तो यही समझते हैं कि जो होना है हो, किन्तु उनकी निर्गुण कथा बन्द नहीं होगी।

टिप्पणी—

(1) इसमें स्वभावज विशेषता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।

(2) दूसरी पंक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(3) चौथी पंक्ति का भाव सूर की इस पंक्ति में भी व्यक्त हुआ है—'सूरदास की कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग'।

(4) 'भच्छ' शब्द लक्षणा से अभक्ष्य अर्थ में गृहीत है।

(5) इसमें उद्धव की प्रकृति की जड़ता निरूपित की गयी है।

राग रामकली

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनो ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुट-पितांबरधारी॥
भजि हैं तब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी।
जे मुख सदा सुधा अंचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी।
सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रही ब्रजनारी॥ 70 ॥

शब्दार्थ—ताको = उसको। बरु = वल्कि। जारहु = जलाते हो। बिसारी = भुलाकर। सुधा-अंचवत = अमृत पान करते थे। भूत = छाया मात्र, आकारहीन।

संदर्भ—कृष्ण के दर्शनातुर गोपियों का उद्धव जी से एक शर्त है वह यह कि वे उनकी बात—उनके योग-दर्शन को तब स्वीकार करेंगी जब उन्हें वे मुकुट पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण से भेंट करा दें।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हम तुम्हारे योग-दर्शन की बातें तब स्वीकार करेंगी जब पहले आप अपने (ब्रह्म को) हमें मयूरपंख का मुकुट और पीताम्बर पहनने वाले श्रीकृष्ण से भेंट करा दें (गोपियाँ इसी मुद्रा में श्रीकृष्ण को देखना चाहती हैं, क्योंकि ब्रजवासी श्रीकृष्ण के इसी रूप में वे सब तन्मय हैं, और उनके मथुरा के राजेश्वर को वे नहीं चाहतीं)। और यदि इस रूप को वे दिखला देते हैं तो सभी गोपियाँ लोगों की गाली और अपमान बर्दाश्त करके भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने लगेंगी। हे उद्धव, हम तो तुम्हारे ब्रह्म को इसी रूप में देखना चाहती हैं, लेकिन तुम तो हमें जिस ब्रह्म को बताते हो वह तो छायामात्र अर्थात् आकारहीन है और आप श्रीकृष्ण को भुलाकर हमें इसी की ओर प्रवृत्त करना चाहते हो। तुम इस प्रकार हमें जला रहे हो (हम श्रीकृष्ण को भुलाकर तुम्हारे ऐसे ब्रह्म की उपासना में कैसे तत्पर हो सकती हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण के जिस चन्द्रमुख के सौन्दर्य-सुधा-रस का हम सब पान करती थीं उसे छोड़कर विष तुल्य तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म को कैसे ग्रहण कर सकती हैं), तात्पर्य यह है कि भगवान श्रीकृष्ण के सगुणोपासना का आनन्द अमृत के समान है और तुम्हारे निर्गुण की उपासना हमारे लिए विष के सदृश घातक है। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि वे तो एक मात्र श्रीकृष्ण के मधुर अंग पर रीझी हुई हैं वहाँ से हटकर अन्यत्र वे नहीं जा सकतीं। श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य के आकर्षण का यह प्रभाव है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के अंग पर सच्चे मन से मुग्ध हैं।

टिप्पणी—

(1) सूर की वचन-विदग्धता का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।
(2) द्वितीय पंक्ति में उस प्रेमलक्षणा भक्ति का संकेत है जिसमें गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम के समक्ष लोक-मर्यादा की भी परवाह नहीं करती थीं।
(3) चौथी पंक्ति में उपमा और पाँचवीं पंक्ति में सुधा के अन्तर्गत रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। इसमें सौन्दर्य उपमेय लुप्त है।
(4) अंतिम पंक्ति में हर्ष संचारी भाव का संकेत है।
(5) इसमें व्यंग्यगर्भित शैली में उद्धव को मूर्ख बनाने की चेष्टा की गयी है।

राग बिलावल

यहै सुनत ही नयन पराने।
जबही सुनत बात तुव मुख की रोवत रमत ढराने॥
बारंबार स्यामघन घन तें भाजत फिरत लुकाने॥
हमको नहिं पतियात तबहिं तें जब ब्रज आपु समाने॥
नातरु यहौ काछ हम काछति वै यह जानि छपाने।
सूर दोष हमरे सिर धरिहौ तुम हो बड़े सयाने॥ 71 ॥

शब्दार्थ—पराने = भाग गये। रमत = मग्न होते हैं। ढराने = आँसुओं को गिराने लगते हैं—बहाने लगते हैं (यहाँ ढारने से 'ढराने' शब्द का सूर ने निर्माण किया है)। स्यामघन = श्यामवर्ण के बादल। घन = घने। भाजत फिरत लुकाने = भागते और छिपते फिरते हैं। पतियात = विश्वास करते हैं। समाने = आए। नातरु = नहीं तो। काछ काछति = वेश धारण करती। छपाने = छिप गये।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव के योग-मार्ग का खण्डन और अपने नेत्रों की विवशता का उल्लेख प्रस्तुत पद में कर रही हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम्हारे योग-मार्ग की बातों को सुन कर हमारे नेत्र भाग खड़े हुए (तात्पर्य यह है कि जब तुम योग की चर्चा करते हो तो हमारे नेत्र तुम्हारे सामने बन्द हो जाते हैं—वे तुम्हें देखना नहीं चाहते, तुमसे भागते रहते हैं) जब ये तुम्हारे मुख से निर्गुण की गाथा सुनते हैं तो ये रोने लगते हैं, श्रीकृष्ण की स्मृति में मग्न हो जाते हैं और कभी-कभी उनका स्मरण करके अश्रुपात भी करने लगते हैं। वे श्यामवर्ण वालों को देखना नहीं चाहते और यदि इनके सामने श्यामवर्ण वाले दिखाई पड़ जाय तो ये छिप जाते हैं, और उनसे भागते रहते हैं—इन श्यामवर्ण वालों से ये क्यों भागते और छिपते हैं इसका कारण है एक बार श्यामवर्ण वाले अक्रूर जी ब्रज में आकर बलराम और श्रीकृष्ण को फुसलाकर ले गए। श्यामवर्णी वाले श्रीकृष्ण ने मथुरा में बसकर कभी स्मरण नहीं किया, उन्होंने भी धोखा दिया। अब श्यामवर्ण वाले तुम भी अपने योग-संदेशों से इन्हें प्रवंचित करना चाहते हो, लेकिन ये अब सावधान हैं और इन श्यामवर्ण वाले के प्रति इनका कुछ भी विश्वास नहीं है। यहाँ तक कि जब पावस में घने श्यामवर्ण वाले बादल दिखाई पड़ते हैं तो उन्हें देखकर ये छिप जाना चाहते हैं। हमारा तो ये तभी से विश्वास नहीं करते जब से आपने ब्रज में प्रवेश किया है (उन्हें ऐसी आशंका है कि कहीं तुम्हारे कहने में सब निर्गुण-मार्ग की उपासिका न बन जायँ और श्रीकृष्ण से उन्हें वंचित कर दें और वे श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का सुख पुनः न प्राप्त कर सकें)। हमारे प्रति उनका जो अविश्वास है, उसका यही कारण है। वे तो इन सब बातों को समझ कर छिप गये, अन्यथा हम तुम्हारी योग-साधना की सभी बातों को स्वीकार कर लेतीं और योगियों के वेश को धारण करने में किसी प्रकार का संकोच न करतीं। लेकिन हम सब जानती हैं कि आप बड़े चतुर हैं और हमारे नेत्रों की विवशता पर तो विश्वास करेंगे नहीं, उलटे हमारे ही सिर दोष मढ़ेंगे—हमें ही दोषी बनाएँगे।

टिप्पणी—

(1) नेत्रों में मानवीकरण का प्रयास।
(2) वचन विदग्धता की प्रधानता।
(3) 'स्यामघन घन' में भ्रमालंकार।
(4) श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का कौशलपूर्ण उल्लेख।
(5) श्यामवर्ण वालों की तीखी व्यंजना।
(6) अंतिम पंक्ति में 'दोष सिर धरना' एक मुहावरा है।

राग धनाश्री

नयननि वहै रूप जौ देख्यो।
तौ ऊधो यह जीवन जग को साँचु सफल करि लेख्यो॥
लोचन चारु चपल खंजन, मनरंजन हृदय हमारे।
रुचिर कमल मृग मीन मनोहर स्वेत अरुन अरु कारे॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

रतन जटित कुण्डल स्रवननिं बर, गंड कपोलनि झाँई।
मनु दिनकर-प्रतिबिंब मुकुर महँ ढूँढ़त यह छवि पाई॥
मुरली अधर बिकट भौंहैं करि ठाढ़े होत त्रिभंग।
मुकुतमाल उर नीलसिखर तें धँसि धरनी ज्यों गंग॥
और भेस को कहै बरनि सब अँग-अँग केसरि खौर।
देखत बनै, कहत रसना सो सूर बिलोकत और॥ 72॥

शब्दार्थ—लेख्यो = समझा। चारु = सुंदर। मनरंजन = प्रसन्न करने वाले। श्रवननि = कानों में। गंड = कनपटी। कपोलन = गाल। झाँई = छाया। मुकुर = दर्पण। विकट = वक्र, टेढ़ी। त्रिभंग = श्रीकृष्ण की एक मुद्रा जिसमें वे तीन जगह से टेढ़े कहे गये हैं। नीलसिखर = नीली चोटी। मुकुतमाल = मोती की माला। धँसि = घुसकर। धरनी = पृथ्वी। खौर = तिलक, छाप। कहत रसना सो . . . . . और = उसे जिह्वा कहती है जो देखती नहीं, देखता और कोई है (यहाँ और कोई से अभिप्राय नेत्रों से है)। वर = श्रेष्ठ।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने उद्धव को यह बताया कि इन नेत्रों से हमने श्रीकृष्ण की जिस रूप माधुरी का रसास्वादन किया उससे हमारा सांसारिक जीवन सचमुच सफल हो गया। यह सूर के सौन्दर्य-बोध का एक उत्कृष्ट नमूना है।

व्याख्या—गोपियों ने श्रीकृष्ण के जिस सौन्दर्य को इन नेत्रों से देखा था—उसका वर्णन करती हुई उद्धव से कह रही हैं हे उद्धव, इन नेत्रों से हमने श्रीकृष्ण का जो वह अद्भुत रूप (सौन्दर्य) देखा उससे हमने अपने सांसारिक जीवन को सचमुच सफल (सार्थक) समझा। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के उस अलौकिक सौन्दर्य को देख लेने पर हमें यह लगा कि यह सांसारिक जीवन सफल हो गया। श्रीकृष्ण के सुंदर नेत्र चंचल खंजन पक्षी की भाँति थे जो हमारे हृदय के लिए आनन्ददायक थे, उनसे हमारा हृदय हर्षातिरेक से भर जाता था। उन नेत्रों के अनुपम सौन्दर्य की चर्चा करती हुई गोपियाँ पुनः कहती हैं—वे नेत्र सुंदर कमल-मृग और मीन की भाँति मनोहर प्रतीत होते थे, क्योंकि नेत्रों के तीन रंगों श्वेत, रक्त और श्याम से यह स्पष्ट आभासित होता था कि वे सचमुच कमल (नेत्रों की लालिमा से अभिप्राय है), मृग (नेत्रों की कालिमा से प्रयोजन है) और मीन (नेत्रों की श्वेतता से अभिप्राय है) जैसे हैं। उनके दोनों श्रेष्ठ कानों में रत्न-जटित कुंडल शोभित थे जिनकी छाया उनकी कनपटी और कपोल (गाल) प्रदेश पर पड़ रही थी उसे देखकर ऐसा लगता था मानो सूर्य (कुंडल से अभिप्राय है) अपनी जिस सौन्दर्य छाया को ढूंढ़ रहा था वह उसे कपोल रूप दर्पण में मिल गयी (कपोलों की उपमा दर्पण से दी जाती है)। वे ओष्ठों पर मुरली रखकर टेढ़ी भौंहें किए हुए त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होते थे (कहने का आशय यह है कि वे वंशीवादन के समय अपनी भौंहें टेढ़ी कर लेते थे और त्रिभंगी मुद्रा में शोभित होते थे)। उनकी छाती पर मोतियों की माला इस प्रकार शोभा दे रही थी मानो पर्वत की नीली चोटी (श्रीकृष्ण के उर स्थल से अभिप्राय है) से गंगा की धारा (मुक्तामाल से प्रयोजन है) निकल कर धरणी पर गिरते ही धँस गयी (घुस गयी) हो। श्रीकृष्ण के अन्य वेश का वर्णन हम कैसे करें ? उनके प्रत्येक अंग में केशर की छाप शोभित थी, ऐसे अंगों को देखते ही बनता था, उनका वर्णन करना असंभव था, क्योंकि जिह्वा तो कहती है जो देखती नहीं देखता और कोई है (यहाँ और कोई से अभिप्राय नेत्रों से है)।

टिप्पणी—

(1) इसमें श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी के अन्तर्गत सूर का सौन्दर्य-बोध व्यक्त हुआ है।
(2) चौथी पंक्ति में क्रम भंग दोष है, क्योंकि इसमें कमल का उल्लेख पहले किया गया और मृग का कमल के पश्चात् और अन्त में मछली का। नेत्रों के रंग के अनुसार मीन (श्वेतरंग), कमल (रक्तवर्ण) और मृग (श्याम या काला वर्ण) होना चाहिए। इसी भाव का एक दोहा रसलीन ने भी लिखा है—

अमिय हलाहल मद भरे स्वेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत जेहि चितवत एक बार॥

(3) छठीं पंक्ति में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार, आठवीं में उपमा, नवीं में संबंधातिशयोक्ति और दसवीं पंक्ति में काव्यलिंग अलंकार है।
(4) इसमें अलंकार से अलंकार की ध्वनि है।
(5) अंतिम पंक्ति का भाव तुलसी आदि कई कवियों में मिला है, यथा 'गिरा अनैन नैन बिनु बानी', 'नैननि के नहि बैन बैन के नैन नहीं जिमि'।

राग नट

नयनन नंदनंदन ध्यान।
तहाँ लै उपदेश दीजै जहाँ निरगुन ज्ञान॥
पानिपल्लव-रेख गनि गुन-अवधि विधि-बंधान।
इते पर कहि कटुक बचनन हनत जैसे प्रान॥
भृकुटि कोटि कुदंड रुचि अवलोकनी संधान।
चंद कोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भान।
कोटि मन्मथ वारि छबि पर, निरखि दीजित दान॥
कोटि वारिज बंक नयन कटाच्छ कोटिक बान॥
कंबु ग्रीवा रतनहार उदार उर मनि जान।
आजानुबाहु उदार अति कर पद्म सुधानिधान॥
स्याम तन पटपीत की छबि करै कौन बखान ?
मनहु निर्तत नील घन में तड़ित अति दुतिमान॥
रासरसिक गोपाल मिलि मधु अधर करती पान।
सूर ऐसे रूप बिनु कोउ कहा रच्छक आन ?॥ 73॥

शब्दार्थ—पानि-पल्लव = पत्ते के समान कोमल हथेली। रेख = हथेली की रेखाएँ। गनि = समझाकर। गुन अवधि = गुणों की सीमा (अत्यंत गुणयुक्त)। बिधि बंधान = ब्रह्मा की रचना। इते पर = इस पर। हनत = चोट करते हैं, मारते हैं। अवतंस = भूषण (कानों के कुंडल)। भान = भानु (सूर्य)। कोटि मन्मथ = करोड़ों कामदेव। वारि = निछावर कर दो। कुदण्ड = कोदण्ड, धनुष। रुचि = सुन्दर। अवलोकनी = चितवन। संधान = धनुष खींचना। वारिज = कमल। कंबुग्रीवा = शंख जैसी गर्दन। उदार = विशाल। मनि = मणि (कौस्तुभ मणि से अभिप्राय है)। आजानुबाहु = घुटने तक लम्बी भुजा। उदार = सुंदर। सुधा निधान

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

= अमृत का भण्डार। निर्तत = नृत्य करती है, चमकती है। तड़ित = बिजली। दुतिमान = चमकती हुई। मधु अधर = अमृत सदृश ओष्ठ। आन = अन्य, दूसरा।

संदर्भ—इसमें गोपियों ने श्रीकृष्ण के नखशिख सौन्दर्य का वर्णन किया है। उद्धव के निराकार ब्रह्म की तुलना में श्रीकृष्ण का अनिर्वचनीय लावण्य कितना मोहक और आकर्षक है, इसे गोपियों ने पूर्णतया सिद्ध कर दिया।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमारे ये नेत्र श्रीकृष्ण का ही ध्यान करते रहते हैं (इन नेत्रों में श्रीकृष्ण की शोभा के अतिरिक्त अन्य कोई रूप धँसता ही नहीं)। अतः तुम अपने इस निर्गुण ज्ञान का उपदेश वहाँ दो, जहाँ ऐसे ज्ञान के मर्मी रहते हैं—यहाँ तो तुम्हारा यह निर्गुण ज्ञान कोई जानता भी नहीं। किन्तु हम सब तो ब्रह्मा द्वारा निर्मित अपने पत्ते के समान कोमल हथेली की भाग्य रेखाओं को जानकर प्रसन्न हैं कि गुणशाली श्रीकृष्ण से हमसे संयोग हुआ। इधर तो हम सब अपनी वियोग-व्यथा से स्वयं पीड़ित हैं, इस पर आप अपनी कठोर और कड़वी वाणी से हमारे प्राणों को मार रहे हैं (उन्हें असह्य पीड़ा दे रहे हैं)। हमारे श्रीकृष्ण की रूप माधुरी इस प्रकार है—उनके मुखमण्डल का प्रकाश करोड़ों चन्द्रमा के समान है और कानों में शोभित कुंडल की दीप्ति करोड़ों सूर्य के सदृश है। उनकी शोभा पर तो करोड़ों कामदेव को निछावर कर दो (क्योंकि वे करोड़ों कामदेव से बढ़कर हैं)। हम सब तो उन्हें देखकर अपने आप को उन्हें दान दे देती हैं (उन्हें अपने आपको समर्पित कर देती हैं)। उनकी भौंहें करोड़ों धनुष के समान हैं और सुंदर चितवन (देखना) ही उस धनुष को खींचना है। उनके बाँके नेत्र करोड़ों कमल के समान और कटाक्ष (चितवन) करोड़ों बाण के सदृश तीक्ष्ण है। उनकी शंख के समान गर्दन में रत्नों का हार शोभित होता रहता है और विशाल छाती में कौस्तुभमणि शोभित होती है। उनकी अतिशय सुन्दर भुजाएँ घुटने तक लम्बी हैं और उनके कमलवत् हाथ अमृत का भण्डार हैं (वे अपने इन हाथों से अपने भक्तों की रक्षा करते हैं और अमर बनाते हैं)। उनके श्याम शरीर पर शोभित पीताम्बर का कौन वर्णन कर सकता है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो नील बादलों में चमकती हुई बिजली नृत्य कर रही हो (यहाँ पीताम्बर की उपमा बिजली से दी गयी है)। हम सब तो रास-क्रीड़ा में रुचि लेने वाले रसिक श्रीकृष्ण से मिल कर उनके अधरामृत का पान किया करती हैं। भला ऐसे अनुपम सौन्दर्यशाली श्रीकृष्ण के बिना हमारी रक्षा कोई दूसरा कैसे कर सकता है (कहने का आशय यह है कि हम सबों को एक मात्र श्रीकृष्ण का ही सहारा है)।

टिप्पणी—

(1) श्रीकृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य का नख-शिख वर्णन।

(2) निर्गुण ब्रह्म की नीरसता की तुलना में सगुण भगवान श्रीकृष्ण के रूपाकर्षण का उल्लेख।

(3) सूर के सौन्दर्य-बोध की एक झलक इसमें मिल जाती है।

(4) कवि की कल्पना और बिम्बात्मक विधान का एक रूप।

(5) 'पानि पल्लव' में वाचक समान धर्मलुप्तोपमा, 'चन्द्र कोटि . . . . . भान' में भी उपमा अलंकार है। कोटि मन्मथवारि में प्रतीप अलंकार, (सातवीं और आठवीं पंक्ति में साङ्गरूपक अलंकार है। कंबु-ग्रीव में वाचक समान धर्मलुप्तोपमा अलंकार है। 'कर पद्म' में रूपक है। बारहवीं पंक्ति में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

(6) अंतिम पंक्ति में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के साथ ही उनकी शक्ति का भी संकेत किया गया है।

राग जैतश्री

देन आए ऊधो मत नीको ॥
आवहु री ! सब सुनहु सयानी, लेहु न जस को टीको ॥
तजन कहत अंबर, आभूषन, गेह नेह सब ही को।
सीस जटा, सब अंग भस्म, अति सिखवत निर्गुण फीको ॥
मेरे जान यहै जुबतिन को देत फिरत दुख पी को।
तेहि सर-पंजर भए स्याम तन अब न गहत डर जी को ॥
जाकी प्रकृति परी प्रानन सो, सोच न पोच भली को।
जैसे सूर ब्याल डसि भाजत का मुख परत अमी को ? ॥ 74 ॥

शब्दार्थ—जस को टीको = यशस्वी बनना। अंबर = वस्त्र। गेह = घर। नेह सबही को = सभी का प्रेम। सर-पंजर = बाणों का घेरा या समूह। स्यामतन = काला शरीर। न गहत डर = डरता नहीं। प्रानन सों = प्राण ग्रहण करने के साथ ही (जन्मजात)। पोच = बुरा। ब्याल = सर्प। का मुख परत अमी को = क्या उसके मुख में अमृत पड़ जाता है ?

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने व्यंग्यगर्भित शैली में उद्धव की क्रूर प्रकृति का निरूपण किया है। वे निर्गुणोपासना के उपदेश रूपी बाणों से सब को बेधना चाहते हैं।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव की क्रूर प्रकृति और उनकी अविवेकशीलता का उल्लेख करती हुई परस्पर कह रही हैं—हे सखियो, उद्धव जी यहाँ हम सबको अपना बहुत अच्छा विचार (सिद्धान्त) देने आए हैं, अब तुम सब ऐसे शुभ अवसर को गँवाओ नहीं आ जाओ और हे चतुर सखियो अब अच्छा होगा कि इनसे (इनके उपदेशों को सुनकर) यश का टीका ले लो (आशय यह है कि इनकी बातों को ग्रहण करने में तुम सब संसार में यशस्विनी के रूप में परिगणित होगी। व्यंग्यार्थ यह है कि इसके फेर में मत पड़ना, अन्यथा संसार में तुम सबों को कलंकिनी बनना पड़ेगा। ये महाशय हमें अपने मार्ग में लगाना चाहते हैं और आभूषण, वस्त्र, गृह और सबों के प्रेम को छोड़ देने की बात पर बराबर जोर दे रहे हैं अर्थात् ये पूरी तरह से हमें बीतराग बनाना चाहते हैं। यही नहीं, योगिनी के रूप में ये हमें सीस पर जटा रखने और अंगों में राख लगाने के लिए कह रहे हैं और शुष्क एवं नीरस निर्गुण ब्रह्म का हमें ज्ञान सिखाते फिरते हैं। हमारी समझ में यही ऐसा व्यक्ति है जो हम जैसी भोली-भाली युवतियों को प्रियतम के वियोग का दुख देता फिरता है अर्थात् इसके अतिरिक्त ऐसा निष्ठुर प्राणी इस ब्रज में अभी तक नहीं देखा गया। यद्यपि ऐसे उपदेश के काले बाणों से इसका सारा शरीर काला हो गया है। यह अपने उपदेश के बाणों से दूसरों को विद्ध करता रहता है और इसका सारा शरीर इन बाणों (उपदेशों) से घिरा रहता है (आपूरित है)। इसी से यह डरता नहीं। कहा गया है कि बाणों की भाँति यह काला हो गया है लेकिन अपने काले उपदेश से इसका काला हो जाना स्वाभाविक है, फिर भी यह अपनी शरारत से बाज नहीं आता। अरी सखी, जिसका स्वभाव प्राण ग्रहण करने के साथ ही बन जाता है अर्थात् जिसका जन्मजात स्वभाव होता है उसे अच्छे और बुरे की चिन्ता नहीं होती (इस दृष्टि से यह अत्यंत ढीठ और निर्लज्ज है)। जिस प्रकार सर्प जब किसी को काट

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कर भागता है तो क्या उसके मुख में अमृत की बूँद पड़ जाती है—काटने से क्या वह अमर हो जाता है—किन्तु काटना उसका जन्मजात स्वभाव है—उद्धव की भी यही जन्मजात प्रकृति बन गयी है, वह बदल नहीं सकती।

टिप्पणी—

(1) प्रथम एवं द्वितीय पंक्ति में विपरीत लक्षणा का प्रयोग हुआ है, यहाँ वाच्यार्थ का अत्यंत तिरस्कार हुआ है।

(2) छठीं में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार की झलक है—भ्रमर स्वभावतया श्याम होता है, लेकिन वाणों के घेरों के प्रभाव से श्याम होने में अहेतु में हेतु की संभावना की गयी है।

(3) अन्तिम पंक्ति में दृष्टान्त की झलक है।

(4) 'लेहु न जस को टीको' में सुन्दर मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

राग सारंग

प्रीति करि दीन्हीं गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी॥
मुरली मधुर चोंप करि काँपो मोरचंद्र टटवारी।
बंक बिलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहिं सम्हारी॥
तलफत छाँड़ि चले मधुबन को फिरि कै लई न सार।
सूरदास वा कलप-तरोवर फेरि न बैठी डार॥ 75 ॥

शब्दार्थ—दीन्हीं गरे छुरी = गले में छूरी दी—गले को छूरी से काट डाला (दुर्व्यवहार करना)। कपट-कन = कपट का दाना। पाछे = बाद में। चोंप = लासा जिससे चिड़िया फँसाई जाती है। करि काँपो = हाथ को कम्पा, बाँस की पतली तीलियाँ बनाया जिसमें लासा लगा कर बहेलिया चिड़िया फँसाता है। टटवारी = टटिया। लूक = आग। मधुबन = मथुरा। फिरि कै = पलट कर। सार = खोज-खबर। कलप तरोवर = कल्पवृक्ष।

सन्दर्भ—इसमें गोपियाँ श्रीकृष्ण के कपटपूर्ण व्यवहार का उल्लेख उद्धव से कर रही हैं और उलाहना दे रही हैं कि प्रेम के क्षेत्र में उन्होंने हमारे साथ धोखा किया। यहाँ श्रीकृष्ण को बहेलिया और गोपियों को चिड़िया के रूप में अभिहित किया गया है।

व्याख्या—(उद्धव से गोपियाँ श्रीकृष्ण की निष्ठुरता के प्रति कह रही हैं—हे उद्धव, श्रीकृष्ण ने प्रेम करने के बाद हमारे गले में छूरी फेर दी (हमारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया)। उन्होंने तो यह किया कि जैसे बहेलिया पहले तो कपट का अन्न खिलाता है—धोखा देकर उन्हें अन्न के कण खाने के लिए डाल देता है और जब वे अन्न कण के खाने में लग जाती हैं तो उन्हें पकड़ लेता है और उनके साथ बुरा व्यवहार करता है—उन्हें धीरे-धीरे मार डालता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने पहले तो अपने प्रेम-जाल में हमें फँसाया अब वियोग की पीड़ा में हमें मार रहे हैं। उन्होंने अपनी मुरली की मधुर ध्वनि रूपी लासा को अपने हाथ रूपी बाँस में लगाकर कम्पा (छोटी-छोटी तीलियाँ) बनाया और मोर पंख रूपी टटिया के पीछे छिप कर गोपियों रूपी चिड़ियों को फँसा लिया (उन्हें पकड़ लिया) और अपनी तिरछी चितवन रूपी आग की लपटों में डाल दिया (चिड़ीमार चिड़ियों को भूनने के लिए आग में डाल देता है) उन लपटों के वशीभूत हम

सब अपने शरीर को सम्हाल न सकीं। तात्पर्य यह है कि पहले तो उन्होंने प्रेम किया और जब हम सब उनके प्रेम-जाल में फँस गयीं तो उन्होंने बंक चितवन की आग में डाल कर कष्ट दिया। इस प्रकार चितवन की आग में तड़फती हुई हमें छोड़कर वे मथुरा चले गये और उलट कर हम सबों की खोज-खबर नहीं ली। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ कह रही हैं कि पुनः उस कृष्ण रूपी कल्पवृक्ष की डाल पर बैठ न सकीं (आशय यह है कि जब श्रीकृष्ण के साथ हम सब रहती थीं तो उनसे हमारी समस्त कामनाएँ कल्पवृक्ष की भाँति पूरी होती रहीं।

टिप्पणी—

(1) समस्त पद में सांगरूपक अलंकार की प्रधानता है।

(2) इसमें चिड़ीमार के सन्दर्भ में जिन शब्दावलियों का प्रयोग सूर ने किया है उनसे उनके ग्राम्य जीवन विषयक व्यापक अनुभव का आभास मिलता है।

(3) अन्तिम पंक्ति में गोपियों की निराशा और दैन्यभाव की अभिव्यक्ति हुई है।

(4) प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त 'दीन्हीं गरे छुरी' में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग हुआ है—इसका आशय असह्य पीड़ा से है।

(5) उपालम्भ काव्य की दृष्टि से यह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण रचना है।

राग धनाश्री

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की काती॥
नयन, सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुरी अति ताती।
परसत जरै, बिलोकत भीजै दुहूँ भाँति दुख छाती॥
क्यों समुझैं ये अंक सूर सुनु कठिन मदन-सर-घाती।
देखे जियहिं स्यामसुंदर के रहहिं चरन दिन-राती॥ 76 ॥

शब्दार्थ—बाँचत = पढ़ता है। कत = क्यों, किसलिए। काती = छूरी। सजल = अश्रु पूरित। कागद = कागज़। अतिताती = अत्यंत गर्म है। परसत = छूने से। अंक = अक्षर। क्यों समुझै = कैसे समझ में आएँ। कठिन = कठोर। मदन सरघाती = कामदेव के कठोर घातक बाण के समान। पाती = पत्री, चिट्ठी।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण की भेजी हुई पत्री को गोपियाँ पढ़ नहीं पातीं। कोई अन्य भी इसे पढ़ने में समर्थ नहीं है। अतः व्याकुलमन—गोपियाँ श्रीकृष्ण को उलाहना देकर कहती हैं कि ऐसी चिट्ठी वे क्यों लिख कर भेजते हैं। इसमें चिट्ठी को उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रित किया गया है।

व्याख्या—कोई गोपी श्रीकृष्ण के द्वारा भेजी हुई चिट्ठी के सम्बन्ध में कह रही है—हे सखी, इस ब्रज मण्डल में कोई भी श्रीकृष्ण की चिट्ठी नहीं पढ़ता (जो इसे पढ़ता है उसे श्रीकृष्ण की स्मृति-जनित पीड़ा होती है और उसकी मनोदशा ऐसी हो जाती है कि वह चाहते हुए भी इस पत्र को बाँच नहीं पाता)। अरी सखी, विरह में चुभने वाली कठोर छूरी के समान ऐसी पत्री श्रीकृष्ण क्यों लिख-लिखकर भेजा करते हैं ? गोपियों के कहने का आशय यह है कि वियोग में उनकी पत्री हृदय में उसी प्रकार चोट पहुँचाती है जैसे छूरी। इस पत्री को न पढ़ने की विवशता

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

से और कष्ट होता है, वह यह कि वियोग में हमारे नेत्र तो सदैव अश्रु से भरे रहते हैं, और इस पत्री का कागज अत्यंत कोमल है तथा हाथ की उँगलियाँ अतिशय गर्म रहती हैं (वियोग की आग से जलती रहती हैं) अतः यदि इसे स्पर्श करती हैं तो यह जलने लगता है—क्योंकि कागज कोमल है और नेत्रों से यदि पढ़ने का प्रयास करती हैं तो आँसुओं के गिरने से अक्षर परस्पर मिल जाते हैं (सभी अक्षर अस्पष्ट हो जाते हैं) इस तरह हमारी छाती में दोनों प्रकार से कष्ट होता है (न पढ़ने का और अक्षरों के नष्ट हो जाने का)। सूर के शब्दों में विरहिणी गोपी अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि अरी सखी, ये अक्षर कैसे समझ में आएँ, ये तो वास्तव में कामदेव के तीक्ष्ण कठोर बाणों की भाँति घातक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब इन अक्षरों को समझने का प्रयास करती हूँ तो श्रीकृष्ण की याद आ जाने से कामोद्दीपन होने लगता है (इस दृष्टि से ये अक्षर नहीं हैं काम की पीड़ा से हृदय को संतप्त कर देने वाले तीखे बाण हैं) अब तो श्यामसुंदर को देखकर और उनके चरणों में रहकर ही जीवित रह सकती हूँ। तात्पर्य यह है कि अब हमें एक मात्र सहारा उनके चरणों का ही है।

टिप्पणी—

(1) यह पत्री नहीं है, विरह की कठोर छुरी है में अपह्नुति अलंकार है।

(2) चौथी पंक्ति में अक्रमत्व दोष है, क्योंकि पहले 'बिलोकत भीजे' का और फिर 'परसत रै' क्रिया का प्रयोग करना चाहिए था।

(3) पाँचवी पंक्ति में अपह्नुति अलंकार है (ये अक्षर नहीं हैं, घातक कामदेव के तीक्ष्ण एवं कठोर बाण हैं)। 'लिखि-लिखि' में पुनरुक्ति प्रकाश है।

(4) अंतिम पंक्ति में दैन्य संचारी भाव, तृतीय में अश्रु संचारी भाव और चतुर्थ में विषाद संचारी भाव की प्रधानता है।

(5) सूर के इस पद का भाव जगन्नाथ दास रत्नाकर के इस छन्द में भी देखने को मिला है।

सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं,
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है।

(6) 'परसत जरै ....ताती' में अतिशयोक्ति अलंकार और ऊहात्मक प्रवृत्तियों का संकेत।

राग जैतश्री

मुकुति आनि मंदे में मेली।
समुझि सगुन लै चले न ऊधो ! ये सब तुम्हरे पूँजि अकेली ॥
कै लै जाहु अनत ही बेचन, कै लै जाहु जहाँ विष-बेली।
याहि लागि को मरै हमारे वृंदावन पायँन तर पेली ॥
सीस धरे घर-घर कत डोलत, एकमते सब भई सहेली।
सूर वहाँ गिरधरन छबीलो जिनकी भुजा अंस गहि मेली ॥ 77 ॥

शब्दार्थ—मुकुति = मुक्ति, मोक्ष। आनि = ले आकर। मंदे में = मंद या सस्ता बाजार में। मेली = उतारी। समुझि सगुन = शकुन विचार करके। ये सब = योग, जप, व्रत आदि।

अनत = अन्यत्र। कै = अथवा। विष बेली = कुब्जा से अभिप्राय है। याहि लागि = इसके लिए। हमारे = हमारे यहाँ (इस ब्रजमंडल में) पायँन तर पेली = पैरों के नीचे कुचल दिया (तिरस्कार कर दिया)। एकमते = एक ही विचार की। अंस = कंधा। मेली = डाली, रखी।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने उद्धव के मोक्ष सिद्धान्त का उपहास किया है। वे श्रीकृष्ण प्रेम के समक्ष योगियों की मुक्ति को नगण्य और तुच्छ समझती हैं। व्यंग्यगर्भित शैली का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुमने तो अपनी मुक्ति का यह सौदा मंदे बाजार में उतारा। आशय यह है कि जब बाजार के भाव में गिरावट आ गयी तो ऐसी दशा में तुम्हारे मुक्ति रूपी सौदा का अधिक मूल्य यहाँ नहीं लगेगा। लगता है, तुम शकुन विचार कर इसे लेकर नहीं चले (इसे बेचने के लिए शुभ घड़ी में नहीं निकले) और यही तुम्हारे पास एकमात्र पूँजी है अर्थात् योग, जप, व्रत आदि की बातें ही तो तुम्हारे पास हैं इनके अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं। कहीं इस सस्ते बाजार में यह माल न बिका तो तुम्हारा बहुत बड़ा घाटा हो जायगा। अधिक पूँजी भी नहीं है कि दुबारा अपना यह व्यापार चला सको। अतः हम सब की राय यह है कि या तो तुम यहाँ से दूसरी जगह ले जाकर बेचो अथवा वहाँ ले जाओ जहाँ विष की लता कुब्जा निवास करती है—वह इसे अवश्य खरीद लेगी, क्योंकि तुम्हारी मुक्ति का मार्ग वह भली भाँति जानती है और उससे तुम्हें अच्छी रकम मिल जाएगी। इस मुक्ति के लिए हमारे यहाँ कौन मरे (कौन परेशान हो)। इसे तो हम वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ केलि करते समय पैरों के नीचे डाल देती थी (इसे पैरों से कुचल देती थी) आशय यह है कि श्रीकृष्ण के साथ वृन्दावन में रासलीलादि करते समय जो सुख मिलता था उसकी तुलना में हम सब मुक्ति को तिरस्कृत कर देती थीं—मुक्ति में वैसे सुख का अनुभव नहीं करती थीं। अब तुम व्यर्थ में क्यों इसे सिर पर लादे घर-घर बेंच रहे हो ? स्मरण रखो कि यहाँ इसे पूछने वाला कोई नहीं है, क्योंकि हमारी सभी सहेलियाँ एक ही विचार की हैं, इनमें कोई भी इसे पसन्द नहीं करेगा। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव, हमारे गिरिधारी, वहाँ (मथुरा में) अवश्य चले गये हैं, लेकिन एक ऐसा भी समय था जब वे ब्रजमण्डल में बसते थे तो हम सब प्यार में अपने कंधे पर उनकी भुजाएँ रख कर (गलबाहीं डाल कर) खूब क्रीड़ा करती थीं (व्यंजना यह है कि उस आनन्द के समक्ष तुम्हारी मुक्ति क्या है ?)

टिप्पणी—

(1) इसमें सांगरूपक अलंकार है। मुक्ति में सौदा का आरोप किया गया है और इसी के आधार पर उद्धव को व्यापारी बना कर साङ्गरूपक खड़ा किया गया है।

(2) समस्त पंक्तियों में व्यंजना का चमत्कार दृष्टव्य है।

(3) 'विष बेली' कुब्जा के लिए प्रयुक्त है, इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार और शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा की प्रधानता है। असूया संचारी भाव भी है।

(4) चौथी पंक्ति में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें मुहावरे गर्भित भाषा का भी चमत्कार है।

(5) अन्तिम पंक्ति में स्मृति संचारी भाव है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग कान्हरो

हम, अलि, गोकुलनाथ अराध्यो।
मन बच क्रम हरि सों धरि पतिव्रत प्रेमयोग-तप साध्यो॥
मातु-पिता हित-प्रीति निगम-पथ तजि दुख-सुख भ्रम नाख्यो।
मानपमान परम परितोषी अस्थिर थित मन राख्यो॥
सकुचासन, कुलसील परस करि, जगतवंद्य करि बंदन।
मानअपवाद पवन-अवरोधन हित-क्रम काम-निकंदन॥
गुरुजन-कानि अगिनि चहुँदिसि, नभ-तरनि-ताप बिनु देखे।
पिवत धूम-उपहास जहाँ तहँ, अपजस श्रवन-अलेखे॥
सहज समाधि बिसारि वपु करी, निरखि निमेख न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग-माधुरी धरत यहै निसि जागत॥
त्रिकुटी सँग भ्रूभंग, तराटक नैन नैन लगि लागे।
हँसन प्रकास, सुमुख कुंडल मिलि चंद्र सूर अनुरागे॥
मुरली अधर श्रवन धुनि सो सुनि अनहद शब्द प्रमाने।
बरसत रस रुचि-बचन-संग, सुखपद-आनंद-समाने॥
मंत्र दियो मनजात भजन लगि, ज्ञान ध्यान हरि ही को।
सूर, कहौं गुरु कौन करै, अलि, कौन सुने मत फीको॥ 78॥

शब्दार्थ—अराध्यो = आराधना की, उपासना की। क्रम = कर्म। बच = वाणी। हित = हितैषी, हितुआ। निगम-पथ = वेद-मार्ग। नाख्यो = पार कर लिया, लांघा, दूर किया। परितोषी = संतुष्ट। अस्थिर = चंचल। थित राख्यो = स्थिर कर रखा। सकुचासन = संकोच ही आसन है। कुलसील परसि कर = कुल की शील को स्पर्श करके (त्याग करके)। जगतबंद्य = श्रीकृष्ण। मानअपवाद = मान (सम्मान) और अपवाद (निंदा)। पवन-अवरोधन = हवा को रोकना (प्राणायाम)। हित-क्रम = प्रेम का कर्म, साधना या योग। नभ तरनि-ताप = आकाश स्थित सूर्य का ताप। पिवत-धूम = धूम पान करना। गुरुजन-कानि = गुरुजनों की मर्यादा या लज्जा। अलेखे = सुनी अनसुनी कर दिया। बिसारि वपु = शरीर को भुलाकर। निमेख न लागत = पलकें नहीं गिरतीं। काम-निकंदन = काम को नष्ट करना, काम पर विजयी होना। परमजोति = ब्रह्म ज्योति। त्रिकुटी = दोनों भौंहों के बीच का स्थान, त्रिकुट चक्र। तराटक = त्राटक (योग के छः कर्मों में से एक)।—अनिमेष रूप में किसी बिंदु पर दृष्टि गड़ाने का अभ्यास। हँसनि प्रकास = श्रीकृष्ण की मुस्कराहट ही प्रकाश है। सुमुख कुंडल = श्रीकृष्ण का सुंदर चंद्रमुख और सूर्य के सदृश कुंडल। चन्द्र सूर अनुरागे = चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश में अनुरक्त हुआ (योगी-इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के मूल प्रदेश में क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि का क्रमशः प्रकाश मानते हैं)। अनहद = अनाहत शब्द । प्रमाने = समान। समाने = ब्रह्मानन्द में समा जाने की अवस्था। बरसत रस = आनन्द की वृष्टि हो रही है। बचन संग = उनकी वाणी के साथ ही (मधुर वाणी बोलते समय)। सुख-पद = श्रीकृष्ण के आनन्दस्वरूप चरण। मनजात = कामदेव।

संदर्भ—उद्धव ने बार-बार गोपियों के समक्ष ब्रह्म-दर्शन के लिए जिस योग-साधना पर बल दिया उसे सुनकर गोपियों ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे योग-साधना की भाँति प्रेम-साधना और प्रेम-योग में निरत हैं, उन्हें इन्हीं से अवकाश नहीं मिलता अतः उद्धव के ब्रह्म की उपासना वे कब करें। प्रेम-साधना का तत्कालीन योगियों के लिए यह करारा जवाब था।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, अब तो हमने श्रीकृष्ण की आराधना आरम्भ कर दी है और मनसा, वाचा और कर्मणा श्रीकृष्ण से पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई प्रेम-योग और तप को साध लिया है। योगियों की भाँति हमने माता, पिता और हितैषियों के प्रेम और वेद-मार्ग की मर्यादाओं को त्यागकर सुख और दुख के भ्रम को पार कर गयीं (सुख और दुख से दूर हो गयी)। कहने का तात्पर्य यह है कि योगियों की भाँति सुख और दुख के बन्धन से सर्वथा मुक्त हो गयी हैं। हमने इस साधना द्वारा अपने चंचलमन को स्थिर कर लिया है और इस कारण मान और अपमान दोनों ही से संतुष्ट हैं। हमने संकोच रूपी आसन पर बैठकर कुल के शील को परित्यक्त कर दिया और इस प्रकार जगत वंद्य भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना में निरत हो गयीं। आशय यह है कि श्रीकृष्णोपासना के लिए हमने संकोच (लज्जा) और कुल की मर्यादा का ध्यान नहीं दिया। सांसारिक मान और निंदा ही हमारे लिए योगियों का प्राणायाम है अर्थात् सांसारिक मान और निन्दा का हमारे ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता (दोनों ही समतुल्य हैं) ऐसे भावों का निरोध कर रखा। प्रेम-कर्म (प्रेम-साधना) ही हमारे लिए काम-वासनाओं को नष्ट करना है। श्रीकृष्ण की प्रेम-साधना में हमें काम-वासनाएँ स्पर्श तक नहीं कर पातीं। हमारे लिए गुरुजनों की लज्जा ही योगियों की पंचाग्नि है अर्थात् जैसे योगी पंचाग्नि में तप-साधना करके अपने शरीर को कष्ट देते हैं उसी प्रकार हम भी अपने चारों ओर गुरुजनों की मर्यादा और लज्जा की आग में जलती रहती हैं (कष्ट के साथ उनकी मर्यादा का भी पालन करती हैं) और जिस प्रकार योगी पाँचवीं अग्नि (सूर्य ताप) में तपता है, उसी प्रकार हम सब भी आकाश स्थित सूर्य को देखे बिना ही वियोगाग्नि के सूर्य-ताप में संतप्त होती रहती हैं। हम सब निरन्तर यत्र तत्र होने वाले जग-उपहास और निन्दा का धूम्र-पान उसी प्रकार करती हैं जैसे योगी पंचाग्नि के धुएँ को पान करता है। आशय यह है कि श्रीकृष्ण की प्रेम-साधना में जग के उपहास और निन्दा का प्रभाव हम सब पर नहीं पड़ता। हम सब संसार के अपयश को सुनी-अनसुनी कर देती हैं अर्थात् जिस प्रकार योगी अपनी चित्तवृत्तियों को संसार से हटा कर अन्तर्मुखी कर लेता है और उसके कानों में सांसारिक शब्द सुनाई नहीं पड़ते उसी प्रकार श्रीकृष्ण प्रेम में तन्मय हमारे मन को सांसारिक अपयश का कुछ भी भान नहीं होता। योगियों की भाँति हमने अपने शरीर को भुलाकर (उसकी चिन्ता न करके) सहज समाधि में लीन हो गयी और श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को देखते हुए हमारे नेत्रों की पलकें गिरती नहीं, वे निर्निमेष देख रहे हैं। और प्रेम में समाधिस्थ हो कर रात-रात भर जागती हुई हम सब ब्रह्म की परम ज्योति के सदृश श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग की रूप माधुरी को ग्रहण करती रहती हैं—आशय यह है कि योगियों की भाँति हमने मुक्तावस्था को सिद्ध कर लिया है—अब आपके योग के इन प्रपंचों की आवश्यकता को हम व्यर्थ समझती हैं। योगियों की भाँति हम सब भी श्रीकृष्ण के भ्रूभंग (भौंहों के संचालन-वक्र चितवन) के साथ ही त्रिकूट-चक्र में (दोनों भौंहों के बीच स्थान में) त्राटक मुद्रा के द्वारा ध्यान को केन्द्रित करके अपने नेत्रों को श्रीकृष्ण के नेत्रों में मिलाकर निर्निमेष देखा करती हैं (योगी जैसे त्राटक मुद्रा में अपने नेत्रों को वहीं गड़ा देता है, उसी प्रकार हमारे नेत्रों की भी यह दशा है कि वे निरन्तर श्रीकृष्ण की ओर देखा करते हैं। हम श्रीकृष्ण के सुन्दर चन्द्रमुख और सूर्यवत् प्रकाशमान कानों के कुण्डल तथा मंद मुस्कुराहट के प्रकाश का अनुभव उसी प्रकार करती हैं जैसे योगी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के मूल प्रदेश में स्थित क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि प्रकाश का अनुभव

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

करते हैं। यह योग की साधना की उस अवस्था का बोधक है जिसमें वह इड़ा और पिंगला को नियंत्रित करके कुंडलिनी को जागृत करता है, और उसकी कुंडलिनी योग के छः चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरंध्र में पहुंचती है। साधक इसी अवस्था में परम ज्योति का दर्शन करता है। गोपियां भी श्रीकृष्ण की परम-ज्योति का अनुभव कर रही हैं—उन्हें वंशी की मधुर ध्वनि उसी प्रकार प्रतीत होती है, जैसे योगियों को अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है। मुरली से निकलने वाली श्रीकृष्ण की मधुर वाणी के साथ ही आनन्द की वृष्टि उसी प्रकार होती है जैसे योगियों को अनाहत नाद के सुनते समय आनन्द की वृष्टि का अनुभव होता है। गोपियाँ श्रीकृष्ण के चरणों में तन्मय होकर जिस सुख को प्राप्त करती हैं, वह यहाँ योगियों की ब्रह्मानंद में लीन होने की अवस्था का बोधक है। योगी जैसे किसी गुरु से मंत्र लेते हैं, उसी प्रकार हमारे गुरु कामदेव ने हमें भजन का मंत्र देकर अपनी शिष्या बनाया है। अतः अब तो श्रीकृष्ण के ही ज्ञान और ध्यान में लगी रहती हैं। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से पूछ रही हैं कि तुम्हीं बताओ कि अब अन्य किसको गुरु बनाएँ, क्योंकि गुरुमुख तो ले चुकी हैं और ऐसी दशा में तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म के शुष्क ज्ञान की बातें कौन सुने (श्रीकृष्ण की प्रेम-साधना में जो रस मिला, वह यहाँ कहाँ ?)

टिप्पणी—

(1) समस्त पद में सांगरूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। प्रेम-योग में निर्गुणोपासकों की योग-साधना की समस्त बातों का आरोप किया गया है।
(2) यौगिक शब्दावली के प्रयोग के कारण रचना में काव्योचित सरसता का बहुत कुछ अभाव हो गया।
(3) कुछ टीकाकारों ने इसमें अप्रतीतत्व दोष माना है, हमारे विचार से अर्थ स्पष्ट है अप्रतीत का प्रश्न ही नहीं उठता।
(4) इसमें सूर की कलात्मक दृष्टि का बड़ा ही परिष्कृत रूप व्यक्त हुआ है।
(5) इसमें तत्कालीन योग-साधकों के लिए प्रेम-साधकों की जबर्दश्त चुनौती है।

राग सारंग

कहिबे जीय न कछु सक राखो।
लावा मेलि दए है तुमको वकत रहौं दिन आखो॥
जाकी वात कहौ तुम हमसौं सो धौं कहौं को काँधी।
तेरो कहो सो पवन भूस भयो, वहो जात ज्यों आँधी॥
कत श्रम करत, सुनत को ह्याँ है, होत जो वन को रोयो।
सूर इते पै समुझत नाहीं, निपट दई को खोयो॥ 79॥

शब्दार्थ—लावा मेलि दए है = तुम्हें किसी ने जादू करके पागल बना दिया है (मुहावरा)। आखो = पूरा, सारा (सं० अक्षय)। को कांधी = किसने स्वीकार किया है। पवन भूस भयो = हवा का भूसा हो गया (गायब हो गया)। बन को रोयो = अरण्यरोदन (मुहावरा) अर्थात् जिसको कोई सुनने वाला न हो। इतै पर = इतने पर भी। निपट = अतिशय। दई को खोयो = गया बीता (स्त्रियों की गाली)।

सन्दर्भ—उद्धव द्वारा बार-बार निर्गुण ब्रह्म की चर्चा करने पर गोपियाँ नाराज हो गयीं और

उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उद्धव को जादू कर दिया है, इसीलिए वे मना करने पर भी निर्गुण ब्रह्म की रट बारम्बार लगाए हुए हैं। इसमें गोपियों की झुंझलाहट का बहुत सरस वर्णन हुआ है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, कहने के लिए अपने मन में कुछ शक मत रखो। तुम निस्संदेह जो कुछ भी कहना चाहते हो कह डालो। तुम्हारे इतने बोलने पर मुझे संदेह होता है कि तुम्हें किसी ने टोना कर दिया है और तुम सारा दिन पागलों की भाँति बकते रहते हो। यह तो बताओ कि तुम जिसकी बात (जिस निर्गुण ब्रह्म की चर्चा) हमसे कर रहे हो उसे किसने अंगीकार किया है। (सत्य तो यह है कि तुम्हारा यह निर्गुण ब्रह्म विषयक कथन हमें ऐसा लगा जैसे वह पवन का भूसा हो जो तेज आंधी में वह गया अर्थात् तुम्हारी बातें यहाँ उसी प्रकार गायब हो गयीं जैसे तेज आँधी में भूसा का पता नहीं लगता। तुम्हारी बातों का यहाँ कुछ भी प्रभाव नहीं है। तुम व्यर्थ ही श्रम कर रहे हों, तुम्हारी बातें यहाँ कौन सुनने वाला है। तुम्हारा यह कथन तो हमारी दृष्टि में अरण्यरोदन के समान है अर्थात् वह सर्वथा प्रभावहीन है। लेकिन तुम इतने पर भी हमारी बातों पर ध्यान नहीं देते, लगता है तुम सर्वथा गए बीते लोगों में हो (बहुत ही निर्लज्ज और नगण्य हो)।

टिप्पणी—

(1) अन्तिम पंक्ति में ब्रज का ठेठ मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। इसके साथ ही इसमें अमर्ष संचारी भाव है, क्योंकि इसमें गोपियों का क्रोध व्यंजित हुआ है।
(2) 'पवन को भूस' और बन को रोयो में लोकोक्ति का चमत्कार द्रष्टव्य है।
(3) 'लावा मेलना' भी एक विशिष्ट मुहावरा है।
(4) 'सक' फारसी के शक शब्द का विकृत रूप है।

राग धनाश्री

अब नीके कै समुझि परी।
जिन लगि हुती बहुत उर आसा सोऊ बात निवरी॥
वै सुफलकसुत, ये सखि! ऊधो मिली एक परिपाटी।
उन तो वह कीन्ही तब हमसों, ये रतन छँड़ाइ गहावत माटी॥
ऊपर मृदु भीतर तें कुलिस सम, देखत के अति भोरे।
जोड़-जोड़ आवत वा मधुरा तें एक डार के तोरे॥
यह सखि, मैं पहिले कहि राखी असित न अपने होहीं।
सूर कोटि जो माथो दीजै चलत आपनी गौंहीं॥ 80॥

शब्दार्थ—जिन लगि = जिनके लिए (जिनसे)। हुती = थी। निबरी = समाप्त हो गयी, छूट गयी। सुफलकसुत = अक्रूर। मिली-एक परिपाटी = एक ही रीति या परम्परा दोनों को मिली है—दोनों की रीतियों में फर्क नहीं है। गहावत = पकड़ाते हैं। कुलिस = वज्र के समान कठोर। भोरे = भोले-भाले। एक डार के तोरे = एक समान स्वभाव के। असित = काले। गौं = दाँव, घात।

सन्दर्भ—गोपियाँ अक्रूर से जितनी निराश हो चुकी थीं उतनी ही उद्धव के आने पर उनमें आशा बँधी थी। लेकिन उद्धव से भी गोपियों के प्रयोजन की सिद्धि न हो सकी और दोनों एक

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ही साँचे में ढले हुए लगे। इनके सम्बन्ध में गोपियाँ परस्पर अपने हृदय की निराशा व्यक्त कर रही हैं।

व्याख्या—(सखी के प्रति गोपियों का कथन) हे सखी, अब अच्छी तरह समझ में आ गया कि जिनसे कुछ हृदय में आशा थी, वह बात भी समाप्त हो गयी (अब तो इनसे आशा की बात करना बेकार है) अक्रूर के जाने पर गोपियों को उद्धव से बहुत बड़ी आशा थी कि वे श्रीकृष्ण के दर्शन कराने में सहायक होंगे, लेकिन ये सब बातें निराशा में परिणत हो गयीं। वास्तव में, हे सखी, वे अक्रूर और ये उद्धव दोनों एक ही परम्परा के पोषक हैं—दोनों की रीतियों में कुछ भी फर्क नहीं है, वे तो (अक्रूर) उस समय हमारे श्रीकृष्ण और बलराम को छीन कर हमसे ले गये और ये (उद्धव जी) श्रीकृष्ण के प्रेम रूपी रत्न को हमसे छीन कर हमें मिट्टी (निर्गुण ब्रह्मोपासना) पकड़ा रहे हैं। कहने का आशय यह है कि ये सगुणोपासना की जगह हमें निर्गुण की उपासना का पाठ पढ़ा रहे हैं। ये ऊपर से तो बड़े ही सुशील और कोमल स्वभाव के प्रतीत होते हैं, लेकिन हृदय से वज्र के समान कठोर हैं (बड़े निर्दयी हैं) और लोगों के देखने में तो ऐसे लगते हैं, जैसे बड़े भोले-भाले हैं, कुछ जानते ही नहीं (व्यंजना यह है कि ये अतिशय कठोर और धूर्त हैं) हमें तो ऐसा लगता है कि मथुरा से जो भी आते हैं, सब एक ही पेड़ के तोड़े हुए फल के समान हैं ? (अर्थात् सभी का स्वभाव एक समान है)। हे सखी, हमारी बात को कोई माने या न माने हमने पहले ही बता रखा था कि काले वर्ण वाले कभी अपने सगे नहीं होते। इनका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि काले श्याम, काले अक्रूर और काले उद्धव तीनों ही धोखेबाज निकले। सूर के शब्दों में गोपियाँ कह रही हैं कि यदि इन कालों के लिए अपने मस्तक भी कटवा दीजिए (प्राण भी दे दीजिए) तो भी ये अपने ही दाँव में लगे रहते हैं अर्थात् ये बड़े ही अविश्वासी होते हैं।

टिप्पणी—

(1) इसमें गोपियों की निराशा का एक सजीव चित्र अंकित है।
(2) 'इसमें एक डार के तोरे' 'रतन छँड़ाइ गहावत माटी' में लोकोक्ति अलंकार की सरसता सराहनीय है।
(3) अंतिम पंक्ति में मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
(4) 'असित' शब्द में व्यंजना का चमत्कार द्रष्टव्य है।
(5) पाँचवीं पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(6) सारी रचना में मुहावरे और ब्रज की लोकोक्तियों के सहज प्रयोग के कारण पर्याप्त वक्रता आ गयी है।

राग मलार

मधुकर रह्यो जोग लौं नातो।
कतहिं बकत बेकाम काज बिनु, होय न ह्याँ ते हातो॥
जब मिलि मिलि मधुपान कियो हो तब तू कहि धौं कहाँ तो।
तू आयो निर्गुन उपदेसन सो नहिं हमैं सुहातो॥
काँचे गुन लै तनु ज्यों बेधौ; लै बारिज को ताँतो।

मेरे जान गह्यो चाहत हौ फेरि कै मैगल मातो॥
यह लै देहु सूर के प्रभु को आयो जोग जहाँ तो।
जब चहिहैं तब माँगि पठैहैं जो कोउ आवत-जातो॥ 81॥

शब्दार्थ—कतहिं = क्यों। बेकाम = व्यर्थ में। ह्याँ = यहाँ से। हातो = दूर, विलग। मधुपान = अधरामृत-पान। धौं = न जाने। हो = था। तो = था। काँचे गुन = कच्चा तागा। बेध्यो = बेधना चाहते हो। बारिज को ताँतो = कमल तन्तु, कमल नाल की पतली रेखा। गह्यो चाहत हौ = पकड़ना चाहते हो। फेरि कै = लौटा कर, वापस करके। मैगल = हाथी। मातो = मस्त। जहाँ तो = जहाँ से।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव की बातों से क्रुद्ध होकर कहती हैं कि क्या हमारा उनका नाता योग तक ही है ? उन्हें इस बात का विश्वास नहीं है कि श्रीकृष्ण ने ही यह योग का सन्देश हम लोगों के पास तक भेजा है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, पहले तो हमें विश्वास नहीं है कि श्रीकृष्ण ने हम लोगों के पास यह योग का संदेश भेजा है और यदि तुम्हारी बातों में विश्वास कर लें तो हम तुमसे यही जानना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण से हमारा सम्बन्ध क्या इन योग की बातों तक ही है और किसी प्रकार का सम्बन्ध उनसे नहीं है। तुम इस प्रकार की व्यर्थ और प्रयोजनहीन बातें हमारे सामने क्यों करते हो—हम तुम्हारी इन बातों को नहीं सुनना चाहतीं—तुम यहाँ से दूर क्यों नहीं होते। भला, यह तो बताओ जब श्रीकृष्ण ब्रज में थे और हमारे अधरों का रसपान करते थे तो तुम कहाँ थे ? अब तुम हमें निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने आये हो, किन्तु हमें यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। हम अबलाओं को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देना उसी प्रकार है जैसे कच्चे धागे से शरीर को बेधना (यह नितान्त असंभव है) और हमारी समझ में तुम्हारा यह प्रयास उसी प्रकार का है जैसे कमल नाल के तन्तुओं से मस्त हाथी को लौटाकर बाँधना—यह संभव नहीं। यह योग तो श्रीकृष्ण को ले जाकरके दे दें क्योंकि यह वहीं से आया है। आशय यह है कि योग की आवश्यकता श्रीकृष्ण जैसे योगियों के लिए ही उपयुक्त है, वे ही इसका उपयोग कर सकते हैं। हाँ, हमें जब इसकी आवश्यकता पड़ेगी तो किसी आने-जाने वाले से मँगवा लेंगे—वैसे इसकी हमें आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

टिप्पणी—

(1) यह व्यंग्यगर्भित शैली का एक उत्कृष्ट पद है।
(2) पाँचवीं और छठीं पंक्ति में निदर्शना अलंकार है।
(3) अंतिम पंक्ति में बड़ा तीखा व्यंग्य है। 'माँगि पठैहैं' में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि की झलक है।
(4) अमर्ष संचारी भी है।
(5) 'तो' अपादान कारक में प्रयुक्त है, लेकिन तुक के कारण 'ते' की जगह सूर ने 'तो' जैसे विकृत प्रयोग किए हैं। यह 'तो' भूतकालिक सहायक क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग नट

मोहन माँग्यौ अपनो रूप।
या ब्रज बसत अँचै तुम बैठीं, ता बिनु तहाँ निरूप॥
मेरो मन, मेरो अलि ! लोचन लै जो गए धुपधूप।
हमसों बदलो लेन उठि धाए मनो धारि कर सूप॥
अपनो काज सँवारि सूर, सुनु हमहिं बतावत कूप।
लेवा-देइ बराबर में है, कौन रंक को भूप॥ 82 ॥

शब्दार्थ—अँचै तुम बैठी = तुमने पी लिया। निरूप = निराकार, रूप रहित। अलि = सखी। धुपधूप = चोखा, धुला हुआ। सूपधारिकर = हाथ में सूप लेकर (मुहावरा) अर्थात् किसी के पीछे हाथ धोकर पड़ जाना। लेवा-देइ = लेन-देन में। कूप बताना = कुएँ में ढकेलना।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने निराकार ब्रह्म की अतिशय व्यंग्य गर्भित शैली में उपहास किया है। गोपियाँ राधा से कह रही हैं कि तुम जब श्रीकृष्ण ब्रज में थे तो उनके रूप को पी बैठीं। अब वे मथुरा में निरूप (आकार हीन) हो गये हैं, अतः अपना रूप उन्होंने उद्धव के द्वारा मँगवाया है।

व्याख्या—उद्धव को सुनाती हुई गोपियाँ राधा को सम्बोधित करती हुई कह रही हैं—हे सखी राधा, मोहन ने अपने उस रूप को जिसे तुमने ध्यान द्वारा आत्मसात् कर लिया था, उद्धव द्वारा मँगाया है, क्योंकि उस रूप के बिना वे वहाँ रूप रहित हो गये हैं तात्पर्य यह है कि जब तक श्रीकृष्ण ब्रज में थे तब तक तो उन्होंने निराकार की चर्चा नहीं की अब साकार की जगह निराकार की बात करने लगे हैं। इस बात को सुनकर राधा से रहा न गया और उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा कि हे सखि, श्रीकृष्ण ने भी तो मेरे शुद्ध और चोखे मन (एकमात्र श्रीकृष्ण प्रेम में अनुरक्त मन) को अपनी तिरछी चितवन द्वारा अपहृत कर ले गये, अतः हमने कौन-सा अक्षम्य अपराध किया है। उनका यदि मैं रूप पी बैठी तो वे भी तो हमारा विशुद्ध मन उठा ले गये (यह तो जैसा का तैसा व्यवहार है) और अंधेर तो देखिए, उद्धव वहाँ से हमसे बदला लेने के लिए हाथों में सूप लेकर चले आए तात्पर्य यह है कि वे श्रीकृष्ण के रूप को खूब फटक कर अच्छी तरह देखकर लेना चाहते हैं और इसके लिए हमारे पीछे बुरी तरह से पड़े हैं और हमारे मन के वापस करने की बात नहीं करते, उलटे अपना कार्य पूरा करके (अपने स्वार्थ की पूर्ति करके) हमें कुएँ में ढकेलना चाहते हैं—इनका काम सध जाय, हम चाहे जहन्नम में जायँ इससे मतलब नहीं। लेकिन लेन-देन की बात का तो समान महत्व है—इसमें राजा और गरीब का प्रश्न नहीं है (दोनों ही बराबर हैं) आशय यह है कि यदि हमने उनके रूप को लिया है तो उन्होंने हमारे मन को लिया है (इसमें कौन छोटा और कौन बड़ा है—लेन-देन में दोनों बराबर हैं)।

टिप्पणी—

(1) इस पद की आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अतिशय प्रशंसा की है। उनके अनुसार इसमें हृदय की प्रेरणा से वाणी ने यह वक्रता उठते हुए भावों की लपेट में ग्रहण की है। इसके तह में भाव स्रोत छिपा हुआ है।

(2) वाग्विदग्धता और वचन वक्रता का यह उत्कृष्ट नमूना है।

(3) अलंकार की दृष्टि से द्वितीय पंक्ति में हेतूत्प्रेक्षा और पूरे पद में परिवृत्त अलंकार है।

(4) 'अचै बैठी' में रूढ़ि लक्षणा है।

(5) लेन-देन की रीति के सम्बन्ध में रहिमन का यह कथन यहाँ चरितार्थ होता है—रहिमन ये न सराहिए लेन-देन की रीति, प्रानन बाजी राखिए हार होय या जीत।

(5) 'मनो धरिकर सूप और हमहिं बतावत कूप' जैसे ब्रज के गाँवों में प्रचलित सुन्दर मुहावरों के प्रयोग के कारण सूर की भाषा की व्यंजकता बढ़ गयी है।

राग नट

हरि सों भलो सो पति सीता को।
बन बन खोजत फिरे बंधु-सँग कियो सिंधु बीता को॥
रावन मार्‌यो, लंका जारी, मुख देख्यो भीता को।
दूत हाथ उन्हैं लिखि न पठायो निगम-ज्ञान गीता को॥
अब धौं कहा परेखो कीजै कुबजा के मीता को।
जैसे चढ़त सबै सुधि भूली, ज्यों पीता चीता को ?
कीन्हीं कृपा जोग लिखि पठयो, निरखु पत्र री ! ताको।
सूरदास प्रेम कह जानै लोभी नवनीता को॥ 83 ॥

शब्दार्थ—बीता = बीते भर का (बहुत छोटा)। भीता को = डरी हुई (सीता) के। पीता चीता को = किस पीने वाले ने चेता ? निगम = ब्रह्म ज्ञान। परेखो = विश्वास। कुब्जा के मीता = कुब्जा के मित्र, श्रीकृष्ण। लोभी नवनीता को = मक्खन का लोभी (श्रीकृष्ण)।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों ने श्रीकृष्ण से अच्छा पति तो सीता का बताया है। प्रकारान्तर से गोपियों ने उद्धव के समक्ष श्रीकृष्ण की निष्ठुरता का उल्लेख किया है। गोपियों के अनुसार सीता भी हमारी जैसी वियोगिनी थी, लेकिन राम ने ऐसा व्यवहार उसके साथ नहीं किया जैसा व्यवहार श्रीकृष्ण ने हम लोगों के साथ किया।

व्याख्या—कोई सखी किसी सखी से कह रही है—हे सखी, श्रीकृष्ण से तो सीता के पति अच्छे थे जो सीता के खो जाने पर अपने अनुज लक्ष्मण के साथ उन्हें बन-बन ढूँढ़ते रहे और जब यह ज्ञात हुआ कि सीता को रावण चुराकर लंका ले गया है तो उस पर चढ़ाई करने के लिए विशाल समुद्र को बीता भर (अत्यंत छोटा) कर दिया (अपनी प्रियतमा के लिए उनका यह पौरुष और त्याग सराहनीय है) और वहाँ पहुँच कर उन्होंने रावण को मारा, लंका जलायी, और अन्त में राक्षसों से भयभीता सीता के मुख को देखा—यह तो राम का व्यवहार था। उन्होंने श्रीकृष्ण की भाँति उद्धव जैसे दूत के हाथ ब्रह्म ज्ञान और गीता का ज्ञान लिख कर नहीं भिजवाया। अब कुब्जा से दोस्ती करने वाले का कौन विश्वास करे (यह तो विश्वासघाती निकला जो हम लोगों के प्रेम को भूलकर कुब्जा के प्रेम में फँस गया)। वास्तव में यह कथन सर्वथा सत्य है कि जैसे मदिरा पान करने वाला जब मदिरा के नशे में चूर हो जाता है, तब उसे कहाँ होश-हवास रहती है—जब तक मदिरा का नशा नहीं चढ़ता तब तक ठीक है, चढ़ने पर वह अपने को सम्हाल नहीं पाता। ठीक उसी प्रकार कुब्जा के प्रेमासव में छके श्रीकृष्ण हम सब की सुध भूल गये। अरी सखी, श्रीकृष्ण ने बड़ी कृपा की जो उन्होंने अपने पत्र में योग का संदेश लिखकर भिजवाया है, जरा उनके पत्र को देख तो। व्यंजना यह है कि जरा उनकी निष्ठुरता तो देखिए, हमारी खोज-खबर लेना तो दूर रहा उलटा निर्गुण ब्रह्म का संदेश भिजवा रहे हैं। भला, जो मक्खन का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जीवन भर लोभी और चोर रहा वह प्रेम तत्व के मर्म को क्या समझे।

टिप्पणी—

(1) 'सिंधु बीता को' में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। आशय यह है कि समुद्र की विशालता को कम कर दिया।
(2) छठीं पंक्ति में उदाहरण अलंकार है।
(3) 'किन्हीं कृपा' में विपरीत लक्षणा का प्रयोग हुआ है।
(4) पाँचवीं पंक्ति में असूया संचारी भाव है।
(5) गीता, मीता आदि की तुलना में चीता शब्द का प्रयोग खटकता है। इस प्रकार के तुकों का प्रयोग अच्छा नहीं माना जाता।

राग सोरठ

निरमोहिया सों प्रीति कीन्हीं काहे न दुख होय ?
कपट करि करि प्रीति कपटी लै गयो मन गोय॥
काल मुख तें काढ़ि आनी बहुरि दीन्हीं ढोय।
मेरे जिय की सोई जानै जाहि बीती होय॥
सोच, आँखि मँजीठ कीन्हीं निपट काँची पोय।
सूर गोपी मधुप आगे दरकि दीन्हों रोय॥ 84 ॥

शब्दार्थ—मन गोय = मन चुरा लिया। काल-मुख तें ...... ढोय = काल के मुख से बचा कर फिर उसी में डाल दिया। मंजीठ = मँजीठ की तरह लाल। आँखि मँजीठ ...... पोय = आँखें भी मजीठ की तरह लाल (धुएँ आदि से) की, कच्चा पकाया भी। काँची पोय = कच्ची रोटी बनाकर अर्थात् प्रेम का कच्चा व्यवहार करके। दरकि = फूटफूट कर।

सन्दर्भ—इसमें गोपियाँ उद्धव के समक्ष कृष्ण के कपटपूर्ण प्रेम-व्यवहार की चर्चा करते-करते रो पड़ती हैं। इसमें गोपियों की वियोग-पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक और प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

व्याख्या—निष्ठुर कृष्ण के प्रेम के सम्बन्ध में गोपियाँ कह रही हैं कि निर्मोही से प्रेम नहीं करना चाहिए, यदि कोई ऐसे निर्मोही से प्रेम करता है तो अन्ततः उसे दुख झेलना पड़ता है। हमें तो श्रीकृष्ण से प्रेम करने पर काफी निराशा हुई, क्योंकि उस कपटी ने अपने कपटपूर्ण प्रेम व्यवहार के द्वारा हमारे मन को चुरा लिया (वशीभूत कर लिया) और हम सबों को काल के मुख से निकाल कर पुनः उसी में झोंक दिया। उसने दिखावटी ढंग से हम लोगों के प्रति सहानुभूति दिखाई—हम सबों को क्या कभी विश्वास था कि वे तमाम संकटों से रक्षा करके पुनः वियोग की ज्वाला में झोंक देंगे—यदि उन्हें झोंकना ही था तो हमारी रक्षा पहले ही न करते। उनके इस कपटपूर्ण प्रेम से हमें जो पीड़ा हुई है, उसे दूसरा क्या समझ सकता है, क्योंकि घायल की गति तो घायल ही जानता है—जिस पर बीतती है वही दूसरे के दुख-दर्द को समझता है। हमें दुख इस बात का है कि हमने अपनी आँखों को धुएँ आदि से मजीठ की भाँति लाल भी कर दिया और रोटी भी कच्ची बनायी। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण के साथ जो प्रेम किया वह परिपक्व न होकर अपरिपक्व निकला और उस प्रेम में (उनके झूठे प्रेम में) हम सदैव जलती भी रहीं। उनके

साथ सच्चे प्रेम की सार्थकता सिद्ध नहीं हुई। सूर के शब्दों में इतना कहते-कहते गोपियाँ उद्धव के समक्ष फूट-फूटकर रोने लगीं।

टिप्पणी—

(1) समस्त पद में निष्ठुर प्रेमी की निष्ठुरता का सहज संकेत किया गया है।
(2) चौथी पंक्ति का भाव सूर के अन्य पदों में भी देखने को मिला है—'जाहि लगै सोई पै जाने प्रेम बान अनियारो'।
(3) पाँचवीं पंक्ति में लोकोक्ति का प्रयोग काव्योचित सरसता के साथ हुआ है।
(4) 'दरकि दीन्हो रोय' में दैन्य और विषाद संचारीभाव की प्रधानता है।
(5) 'ढोय' शब्द ब्रजभाषा में डालने के अर्थ में असाधारण प्रयोग कहा जा सकता है।

राग सारंग

बिन गोपाल बैरिनि भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार सँजीवनि दधिसुत किरन भानु भईं भुंजैं॥
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥ 85 ॥

शब्दार्थ—विषम ज्वाल = भयंकर अग्नि। पुंजैं = राशि। अलि = भ्रमर। पानि = पानी। घनसार = कर्पूर। संजीवनि = संजीवनी बूटी। दधिसुत = (उदधि-सुत) चन्द्रमा। भानु भईं = सूर्य होकर (सूर्य की भाँति)। भुंजैं = भूँज रही हैं—जला रही हैं। कदन = छूरी। लुंजैं = लँगड़ों को, पंगु को। मग जोवत = रास्ता देखते, प्रतीक्षा करते। बरन = वर्ण, रंग। गुंजैं = घुँघची जिसका रंग श्याम एवं रक्त होता है।

सन्दर्भ—इसमें प्रकृति का उद्दीपन विभाव से चित्रण किया गया है। संयोग से गोपियों को प्रकृति की जो वस्तुएं अच्छी लगती थीं आज श्रीकृष्ण के बिना (वियोगावस्था में) वे सब काटने दौड़ती हैं। गोपियाँ परिस्थिति-जन्य इस विषमता का उल्लेख उद्धव से कर रही हैं, और उन्हें बता रही हैं कि श्रीकृष्ण से जाकर कह देना कि उन्हें देखते-देखते गोपियों की आँखें गुंजा की भाँति लाल हो गयीं। दर्शनातुर गोपियों की मनःस्थिति का यह एक सजीव चित्र कहा जा सकता है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, बिना कृष्ण के ये कुंज, ये बन हमारे लिए शत्रु तुल्य बन गये हैं। तब (जब श्रीकृष्ण इस ब्रज में थे) ये लताएँ जो शीतल प्रतीत होती थीं आज वे ही लताएं भयंकर अग्नि-राशि जैसी लग रही हैं (श्रीकृष्ण के वियोग में जब इन लताओं को देखती हैं तो मानस वेदना और पीड़ा की ज्वाला में झुलस जाता है)। हमें तो प्रकृति के सारे व्यापार निरर्थक प्रतीत होते हैं। हमारी दृष्टि में यमुना का बहना और पक्षियों का बोलना व्यर्थ लग रहा है। कमलों का फूलना और उन पर भौंरों का गुंजार करना भी व्यर्थ लग रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह यमुना जहाँ श्रीकृष्ण रास रचाया करते थे अपने सुन्दर प्रवाह, और मन्द-मन्द बहने के कारण कितनी सुखद प्रतीत होती थी, और निकटस्थ कुंज के पक्षियों के

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कलरव में कितनी मादकता थी, कमलों में कितना आकर्षण था भौंरों की ध्वनि कितनी मधुर थी, वे सब आज व्यर्थ से हैं)। आज स्थिति यह है कि हम लोगों के लिए पवन, पानी, कर्पूर, संजीवनी बूटी, और चन्द्र किरणें आदि शीतलोपचार की वस्तुएँ सूर्य की ज्वाला की भाँति जला रही हैं। अतः हे उद्धव, श्रीकृष्ण से स्पष्ट रूपेण कह देना कि पंगु गोपियों को वियोग छूरी चुभा कर मार रहा है (वियोग की पीड़ा उन्हें ऐसी लग रही है जैसे किसी पंगु व्यक्ति को कोई छूरी चुभा रहा हो) सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, श्रीकृष्ण से यह भी बता देना कि हम सबों की आँखें उनका मार्ग देखते-देखते गुंजा की भाँति लाल हो गयीं (प्रतीक्षा की यह सीमा है)।

टिप्पणी—

(1) प्रकृति का उद्दीपन विभाव से चित्रण।
(2) अन्तिम पंक्ति में अनुभाव विभव का चित्रांकन सहज रूप में हुआ है।
(3) औत्सुक्य, विषाद, चिन्ता आदि संचारी भावों की प्रधानता है।
(4) बिरह कदन . . . . . लुंजें में मानवीकरण की भी प्रवृत्ति है।
(5) लुंजे लक्षणा से असहाय के अर्थ में प्रयुक्त है।
(6) अंतिम पंक्ति में उपमा और पाँचवीं पंक्ति में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। इसमें वधिक उपमान लुप्त है।
(7) मानस में भी तुलसी ने सीता-वियोग के अन्तर्गत इसी प्रकार का वर्णन किया है।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम
निसि ससि भानू। जेहित रहे करत ते पीरा।'
उरग स्वास सम त्रिविधि समीरा।

राग नट

सँदेसो कैसे कै अब कहौं ?
इन नैनन्ह तन को पहरो कब लौं देति रहौं ?
जो कछु बिचार होय उर-अंतर रचि पचि सोचि गहौं।
मुख आनत ऊधौं-तन चितवत न सो विचार, न हौं॥
अब सोई सिख देहु, सयानी ! जातें सखहिं लहौं।
सूरदास प्रभु के सेवक सों बिनती कै निबहौं॥ 86 ॥

शब्दार्थ—कब लौं = कब तक। रचि-पचि = अच्छी तरह। सोचि गहौं = बहुत सोच करके उन्हें ग्रहण करती हूँ (उन्हें कहना चाहती हूँ)। मुख आनत = मुख तक ले आते ही। ऊधो तन = उद्धव की ओर। न सो बिचार, नहौं = न वह विचार रह जाता है और न मैं अर्थात् सब सुध बुध भूल जाती है। सखहिं = श्रीकृष्ण को। प्रभु के सेवक = उद्धव। निबरौं = निर्वाह करूँ। जातें = जिससे। लहौं = प्राप्त कर सकूँ।

संदर्भ—इसमें गोपियों की जटिल मानसिक स्थिति का बड़ा ही सजीव वर्णन किया गया है। गोपियाँ न निष्ठुर कृष्ण से कुछ कहने की स्थिति में हैं और न शुष्क हृदय उद्धव से। इस कारण अन्तर्द्वन्द्व से गोपियाँ जूझ रही हैं।

व्याख्या—कोई सखी अपनी सखी से कह रही है—हे सखी, कृष्ण के प्रति अब अपने प्रेम-संदेश को कैसे कहूँ (वस्तुतः दोनों ही निष्ठुर हैं, अतः किससे संदेश भेजूँ और किसके पास भेजूँ)। हमारी तो यह दशा है कि अब भी श्रीकृष्ण के दर्शन की आशा मन में बनी हुई है, नेत्र उन्हें देख रहे हैं कि कदाचित उनका दर्शन भविष्य में हो जाय इसी से ये नेत्र शरीर का पहरा दिया करते हैं (शरीर को दर्शन की आशा से जीवित रख रहे हैं—लेकिन इसे कब तक दिलासा दिया जा सकता है। मैं सन्देश विषयक जो कुछ विचार अच्छी तरह सोचकर प्रस्तुत करना चाहती हूँ वह मुँह तक आता है किन्तु जब उद्धव की ओर देखती हूँ तब न वह विचार रह जाता है और न मैं अर्थात् सब सुध-बुध भूल जाती हूँ। (उद्धव जैसे नीरस व्यक्ति को देखकर मन खिन्न हो जाता है) और—इस कारण मैं संदेश के जो भी विचार सोचती हूँ वे सब भूल जाते हैं)। अतः हे चतुर सखी, अब मुझे तुम वही शिक्षा दो जिससे प्रियतम श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सकूँ और यदि उद्धव से हमारा काम बनता है तो उन्हीं से विनती करूँगी और उनके साथ सद्‌भाव का निर्वाह करूँगी (यहाँ मन की ऐसी स्थिति का संकेत है जहाँ श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए गोपियाँ परस्पर राग-द्वेष को भी भूल जाती हैं)।

टिप्पणी—

(1) दैन्य संचारी भाव का निरूपण अंतिम पंक्ति में किया गया है।
(2) उद्धव की खुशामद करने से यह आशय व्यक्त होता है कि अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए नगण्य व्यक्ति को भी सम्मानित करना चाहिए। ठाकुर कवि के शब्दों में—
'अपने अटके सुनि एरी भटू, नित सौत के माइके जैयतु है।'
(3) चौथी पंक्ति में जड़ता संचारी भाव है।

राग कान्हरो

बहुरो ब्रज यह बात न चाली।
वह जो एक बार ऊधो कर कमलनयन पाती दै घाली॥
पथिक ! तिहारे पा लागति हौं मथुरा जाव जहाँ बनमाली।
करियो प्रगट पुकार द्वार है 'कालिंदी फिरि आयो काली'॥
जबै कृपा जदुनाथ कि हम पै रही, सुरुचि जो प्रीति प्रतिपाली।
माँगत कुसुम देखि द्रुम ऊँचे गोद पकरि लेते गहि डाली॥
हम ऐसी उनके केतिक हैं अंग-प्रसंग सुनहु री, आली !
सूरदास प्रभु रीति पुरातन सुमिरि-सुमिरि राधा-उर साली॥ 87 ॥

शब्दार्थ—बहुरो = पुनः। कमलनयन = श्रीकृष्ण। घाली = भेजी। बनमाली = श्रीकृष्ण। द्वार है = द्वार पर। सुरुचि = प्रेमभाव। द्रुम = वृक्ष। गहिडाली = डाली पकड़ लेती थी। केतिक = कितनी ही। अंग-प्रसंग = कथा उपकथाएँ। साली = पीड़ा हुई।

सन्दर्भ—ब्रज से उद्धव के जाने के बाद श्रीकृष्ण को पुनः कोई प्रेम संदेश न मिला। राधा किसी पथिक से इसकी चर्चा कर रही हैं।

व्याख्या—राधा किसी पथिक से श्रीकृष्ण वियोग की पीड़ा व्यक्त करती हुई कह रही हैं—हे पथिक, एक बार उद्धव के हाथ से श्रीकृष्ण ने अपनी जो पत्रिका भेजी उसके बाद फिर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उनके प्रेम-संदेश की कोई चर्चा ब्रज में नहीं चली। तब से श्रीकृष्ण का कोई समाचार हमें नहीं मिला। हे पथिक, मैं तुम्हारे पैर पड़ रही हूँ। तुम हमारा संदेश लेकर बनमाली के पास चले जाओ और प्रत्यक्ष रूप में द्वार पर पुकार कर कहना कि पुनः यमुना में काली नाग आ गया है। शायद इसी बहाने श्रीकृष्ण लौट आएँ। जब ब्रज में रहते थे तो श्रीकृष्ण की हमारे प्रति अपार कृपा थी और उन्होंने सुरुचिपूर्वक हम लोगों के साथ प्रेम का निर्वाह किया था। हमारे ऊपर उनकी इतनी कृपा रहती थी कि जब भी ऊँचे वृक्षों के फूल की कामना करती थी तो वे हमें अपनी गोद में लेकर वृक्ष की डाली पकड़ा देते थे हम डाली पकड़कर फूल तोड़ लेती थीं। हमारी जैसी उनकी न जाने कितनी प्रेमिकाएँ हैं—हे सखी, सुनो इसी प्रकार उनके प्रेम की न जाने कितनी छोटी-बड़ी कथाएँ भी हैं। सूरदास के शब्दों में इस प्रकार श्रीकृष्ण की पुराप्रीति को याद करके राधा का हृदय अत्यधिक पीड़ित हुआ।

टिप्पणी—

(1) इसमें वियोग के अन्तर्गत गुण-कथन और स्मरण का उल्लेख हुआ है।
(2) अंतिम पंक्ति में स्मृति संचारी भाव है।
(3) सातवीं पंक्ति का भाव बहुत से कवियों में देखने को मिला है—यथा, कहा कछू चंदहि चकोरनि की कमी है।
(4) तीसरी पंक्ति में दैन्य संचारी भाव लक्षित होता है।

राग गौरी

ऊधो ! क्यों राखौं ये नैन ?
सुमिरि सुमिरि गुन अधिक तपत हैं सुनत तिहारो बैन ॥
हैं जो मनोहर बदनचंद के सारद कुमुद चकोर।
परम-तृपारत सजल स्यामघन के जो चातक मोर ॥
मधुप मराल चरनपंकज के, गति-बिलास-जल मीन।
चक्रबाक, मनिदुति दिनकर के, मृग मुरली आधीन ॥
सकल लोक सूनो लागतु है बिन देखे वा रूप।
सूरदास प्रभु नँदनंदन के नखसिख अंग अनूप ॥ 88 ॥

शब्दार्थ—बदन चन्द = चन्द्रमुख। सारद कुमुद = शारदीय कुमुद (शरद काल में विकसित होने वाले कुमुद)। परम तृपारत = अत्यंत प्यासे। सजल = जल से भरे हुए (बादलों का विशेषण)। मधुप = भ्रमर। मराल = हंस। गति-बिलास-जल = चंचल चाल रूप जल। चक्रबाक = चकवा पक्षी। मनिदुति = सूर्यकान्त मणि।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने कृष्ण-प्रेम में अनुरक्त अपने नेत्रों की दशा का उल्लेख उद्धव से किया है। नेत्रों के जितने प्रचलित उपमान कवि-परम्परा में बताए गये हैं, उन सभी का उपयोग-विनियोग सूर ने बहुत भावात्मक प्रक्रिया से किया है।

व्याख्या—गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—हे उद्धव, हम अपने इन नेत्रों को कैसे रखें—इन्हें किस प्रकार समझाएं। ये तो आपकी कठोर वाणी सुनते ही श्रीकृष्ण के गुणों को स्मरण करके और अधिक संतप्त होने लगते हैं (तुम्हारी कठोर वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ता है

कि उन्हें श्रीकृष्ण के समस्त गुण याद आने लगते हैं और वे रो पड़ते हैं)। हमारे नेत्र श्रीकृष्ण के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य के उपासक हैं। ये श्रीकृष्ण के सुन्दर चन्द्रमुख के सौन्दर्य रस-पान करने के लिए शारदीय कुमुदिनी और चकोर बने रहते हैं (आशय यह है कि शरद काल के चन्द्रोदय को देखकर कुमुदिनी और चकोरों को परम आनन्द होता है)। ये सजल-बादल (जल से भरे बादल जो बहुत सुंदर लगते हैं) के सदृश श्रीकृष्ण के शरीर के सौन्दर्य रस को पान करने के लिए अतिशय प्यासे चातक और मोर बने रहते हैं (सजल बादलों को देखकर इन दोनों को बड़ी प्रसन्नता होती है)। ये श्रीकृष्ण के कमलवत् चरणों का रस पान करने के लिए भ्रमर और हंस के समान हैं (भ्रमर और हंस को कमल से अतिशय प्रेम है) और उनके चंचल गति रूप जल प्रवाह में ये मछली के समान आनन्द मग्न रहते हैं (जिस प्रकार मछलियों को सच्चा सुख जल-प्रवाह में मिलता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण की मनोहर चाल को देखते समय ये उसमें रस-मग्न हो जाते थे)। ये श्रीकृष्ण के कानों में शोभित सूर्य के सदृश कुंडलों को देखकर चक्रवाक पक्षी और सूर्यकान्त मणि के तुल्य प्रसन्न हो जाते हैं (सूर्य की प्रभा को देखकर चक्रवाक पक्षी प्रसन्न होता है और सूर्यकान्त मणि भी उसकी प्रभा से द्रवित हो उठती है)। श्रीकृष्ण की मधुर मुरली के स्वरों को सुनकर ये मृग की भाँति मोहित हो जाते थे (कहा जाता है कि बहेलिया अपने मधुर संगीत से मृगों को अपने वश में कर लेता है, ये नेत्र भी मृग की भाँति कृष्ण की मधुर मुरली से मोहित हो उठते थे) हे उद्धव, श्रीकृष्ण के उस लोकोत्तर सौन्दर्य को देखे बिना हमारे इन नेत्रों को समस्त संसार सूना-सूना लगता है (ऐसा प्रतीत होता है, जैसे संसार में किसी प्रकार का आकर्षण रह ही नहीं गया है। सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि श्रीकृष्ण का सर्वांग सौन्दर्य में अनुपम एवं अप्रतिम है।

टिप्पणी—

(1) तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'सादर' शब्द का अर्थ लोगों ने बहुत खींच-तानकर श्रद्धायुक्त किया है। मेरे विचार से यह विकृत पाठ है और शुद्ध पाठ 'सारद' है और यह कुमुद का विशेषण है। (शारदीय कुमुद)। प्रसंग से यही अर्थ तर्कसंगत प्रतीत होता है।
(2) रूपक और यथासंख्य अलंकारों की प्रधानता है।
(3) सूर के अप्रस्तुत विधान का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।
(4) इसमें जिन उपमानों का प्रयोग किया गया है, वे सब कवि प्रौढ़ोक्ति के अन्तर्गत आते हैं।
(5) श्रीकृष्ण के नखशिख सौन्दर्य का चित्रात्मक निरूपण।

राग मलार

सँदेसनि मधुबन-कूप भरे।
जो कोउ पथिक गए हैं ह्यां ते फिरि नहिं अवन करे ॥
कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे ?
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे ॥
मसि खूँटी कागर जल भींजे, सर दव लागि जरे।
पाती लिखैं कहो क्यों करि जो पलक-कपाट अरे ? ॥ 89 ॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ—मधुबन-कूप = मथुरा के कुएँ। अवन करे = आगमन होना। समोधे = समझा-बुझा दिया। कै = अथवा, या तो। मसि खूँटी = स्याही समाप्त हो गयी। कागर = कागज। सर = सरकंडा, जिसकी कलम बनाई जाती है। दव = आग, दावाग्नि। पलक-कपाट = पलक रूप दरवाजे।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के पास पथिकों द्वारा गोपियों ने अनेकों संदेश भिजवाया लेकिन उन्हें एक भी संदेश का उत्तर नहीं मिला। उत्तर न मिलने के कारणों पर विचार करती हुई गोपियां परस्पर कह रही हैं।

व्याख्या—हे सखि, श्रीकृष्ण के पास इतने संदेश भेजे गए, शायद इन संदेशों से मथुरा के कुएँ भी भर गए होंगे। आश्चर्य है कि जो भी संदेशवाहक पथिक यहाँ से संदेश लेकर गए हैं, उन्होंने पुनः यहाँ तक आने का कष्ट नहीं किया। लगता है या तो श्रीकृष्ण ने उन्हें समझा-बुझा दिया कि वहाँ अब मत जाना या वे मथुरा पहुँचने के पूर्व ही बीच में मर गये और श्रीकृष्ण तक हम लोगों का संदेश पहुँचा नहीं सके। कृष्ण की जरा धृष्टता तो देखो, वे अपना संदेश तो भेजते नहीं पुनः हमारे संदेश भी रख लेते हैं (उसका उत्तर नहीं देते)। संदेश न आने का एक कारण यह भी हो सकता है कि मथुरा में स्याही ही समाप्त हो गयी (स्याही रही ही नहीं) सारे कागज जल में भीज कर सड़ गये और सरकंडे में आग लग गयी, वे जल कर राख हो गये, अतः बिना स्याही, कागज और सरकंडा (जिससे कलम बनती है) की कलम के पत्र कैसे लिखा जाय। जब लेखन के सभी साधन समाप्त हो गये तो वहाँ से पत्र का न आना स्वाभाविक है। और जिनकी आँखों पर पलक रूपी कपाट खड़े रहते हैं। (पलकें बंद रहती है—जो हमारी ओर देखना ही नहीं चाहते, वे कैसे पत्र लिखकर संदेश भिजवाएँ)।

टिप्पणी—

(1) पूरे पद में 'शंका' संचारी भाव की प्रधानता है।
(2) 'सँदेसनि मधुवनकूप भरे' में अतिशयोक्ति अलंकार है।
(3) तीसरी पंक्ति में गोपियों की झुँझलाहट के साथ उनके अमर्ष भाव की व्यंजना हुई है।
(4) 'कूप भरना' में रूढ़ि लक्षणा है।
(5) तीसरी पंक्ति में संदेहालंकार है और अंतिम पंक्ति के पलक कपाट शब्द में रूपक है।
(6) बिरह का ऊहात्मक शैली में वर्णन।

राग नट

नँदनंदन मोहन सों मधुकर ! है काहे की प्रीति ?
जौ कीजै तौ है जल, रबिकर औ जलधर की सी रीति॥
जैसे मीन, कमल, चातक को ऐसे ही गइ बीति।
तलफत, जरत, पुकारत सुनु सठ ! नाहिं न है यह रीति॥
मन हठि परे, कबंध-जुद्ध ज्यों, हारेहू भइ जीति।
बँधत न प्रेम-समुद्र सूर बल कहुँ बारुहि की भीति॥ 90 ॥

शब्दार्थ—काहे की प्रीति = किस बात का प्रेम, किसलिए उनसे प्रेम किया जाय ? गई बीति = बीत गयी। कबंध = धड़। बिना सिर का (सिर के कट जाने पर भी शूरों का शरीर युद्ध करता है)। बल = बलपूर्वक। बारुहि की भीति = बालू की दीवाल।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने प्रियतम की निष्ठुरता का बड़ा ही सच्चा और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। वास्तव में प्रेम की विषमता की स्थिति अत्यंत कष्टप्रद होती है। गोपियों के हृदय में कृष्ण के लिए जैसा प्रेम है वैसा प्रेम श्रीकृष्ण के हृदय में नहीं है—यह प्रेम के एकपक्षीय रूप को प्रतिपादित करता है। अतः गोपियाँ उद्धव से कृष्ण-प्रेम के सम्बन्ध में कह रही हैं।

व्याख्या—हे भ्रमर (उद्धव), नंदनंदन श्रीकृष्ण से हमारा कैसा प्रेम (उनसे प्रेम क्यों किया जाय ?) क्या वे प्रेम के पात्र हैं (प्रेम तो उभयपक्षीय होने से सार्थक होता है—यहाँ श्रीकृष्ण का प्रेम तो एक पक्षीय है)। उनसे प्रेम करना तो जल, सूर्य और बादल जैसा है। जिस प्रकार मछली जल से प्रेम करती है, लेकिन निष्ठुर-जल उसकी कभी परवाह नहीं करता और वह जल के वियोग में तड़प-तड़पकर मर जाती है। इसी प्रकार कमल सूर्य से प्रेम करता है और उसकी प्रखर ज्वाला में सारा दिन जलता रहता है, लेकिन सन्ध्या समय सूर्य कमल की परवाह न करके अस्त हो जाता है (यह है कमल के प्रति सूर्य की निष्ठुरता)। यही दशा चातक की भी होती है, वह स्वाति की बूँदों के लिए बादल जैसे प्रियतम की रट लगाते-लगाते अपने समस्त जीवन को बिता देता—लेकिन बादलों को कब चातक की चिन्ता होती है। इसी प्रकार के प्रेम की विषमता की व्यथा और पीड़ा में इन प्रेमियों की बीत गई (इनके दिन गुजर गए)। हे दुष्ट मधुकर सुनो, इसे प्रेम की रीति नहीं कहते—यह तो प्रियतम की निष्ठुरता है। क्या करें हमारे मन की यह विवशता ही है जिसने श्रीकृष्ण से प्रेम करने की जिद (हठ) कर ली है—और प्रेम के क्षेत्र में सिरविहीन धड़ की भाँति अब भी संघर्ष कर रहा है और हार जाने पर भी अपनी विजय घोषित करता है (जिस प्रकार शूरों का धड़ (कबंध) बहुत देर तक युद्ध करता रहता है और हार जाने पर भी विजय का अनुभव करता है और यश का भागी होता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के प्रेम से निराश हो जाने पर भी हम अपनी विजय और जीवन की सार्थकता अनुभव करती हैं। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि हे उद्धव, तुम निर्गुण ब्रह्म के उपदेशरूपी बालू की दीवाल से बलपूर्वक हमारे हृदय के अपार प्रेम-समुद्र को बाँधना चाहते हो, लेकिन प्रेम-समुद्र का यह निर्बंध प्रवाह किसी भी प्रकार रोका नहीं जा सकता।

टिप्पणी—

(1) प्रेम की विषमता और गोपियों की त्याग-निष्ठा का सुंदर चित्रांकन हुआ है।
(2) यह निष्काम भाव से प्रेम-मार्ग पर चलने वालों का एक उत्कृष्ट नमूना है।
(3) द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में यथासांख्य (क्रमालंकार) अलंकार है। पाँचवीं पंक्ति में निदर्शना और अंतिम पंक्ति में उदाहरण अलंकार और प्रेम-समुद्र में रूपक है।
(4) इसमें प्रेमियों के जिन प्रतीकों का उल्लेख हुआ है, वे निश्चय ही आदर्श प्रेमी के रूप में परिगणित होते हैं।
(5) जायसी आदि हिंदी कवियों में भी प्रेम की विषमता का चित्रण कई स्थलों पर हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राग नट

मधुबनियाँ लोगनि को पतिआय ?
मुख और अंतर्गत और पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय॥
ज्यों कोइलसुत काग जिआवत भाव-भगति भोजनहिं खवाय॥
कुहकुहाय आए बसंत ऋतु, अन्त मिलै कुल अपने जाय॥
जैसे मधुकर पुहुप-बास लै फेरि न बूझै बातहु आय।
सूर जहाँ लौं स्यामगात है तिनसों क्यों कीजिए लगाय ?॥ 91 ॥

शब्दार्थ—मधुबनियाँ = मथुरा वाले। को पतिआय = कौन विश्वास करे ? बनाय = बना-बनाकर (झूठी)। भाव-भगति = प्रेमपूर्वक। कुहकुहाय = कूकती है। अन्त = अन्त में। पुहुप-बास = फूल की सुगंध। स्यामगात = श्याम शरीर वाले। लगाय = प्रेम-सम्बन्ध। जहाँ लौं = जहाँ तक।

सन्दर्भ—इसमें गोपियों ने मथुरा वालों के प्रति कटाक्ष किया है और उद्धव से बताया कि मथुरा के रहने वाले तो सभी अविश्वसनीय हैं, लेकिन जो श्याम वर्ण वाले (उद्धव, अक्रूर और श्रीकृष्ण) हैं वें विशेपरूपेण धोखेबाज हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, मथुरा वालों का कौन विश्वास करे ? ये बड़े धोखेबाज होते हैं, इनके मुख में कुछ होता है और मन में कुछ और अर्थात् ये मनसा और वाचा एक नहीं है—इनकी कथनी और करनी में अन्तर है और बनावट (बनावटी, झूठी) चिट्ठियाँ लिख-कर भेजा करते हैं। इनके कपट का नमूना तो इस प्रकार है जैसे कौवा कोयल के बच्चे को प्रेमपूर्वक भोजन खिलाकर जीवित रखता है—उनका बड़े प्यार से पोषण करता है, लेकिन बसन्तागमन के समय वह कोयल का बच्चा कूकने लगता है और अन्ततः अपने कुल (कोकिल-परिवार) में जाकर मिल जाता है, फिर कौवा की याद उसे नहीं रह जाती। श्रीकृष्ण ने भी ऐसा ही किया—बिचारे नंद और यशोदा ने इन्हें बचपन मे पालन-पोषण किया लेकिन जब बड़े हुए (यौवन अवस्था को प्राप्त हुए) तो जाकर अपने वंश वसुदेव और देवकी में मिल गए और नंद-यशोदा को भूल गये। जिस प्रकार भ्रमर पुष्प की सुगन्ध ग्रहण करने के पश्चात् (पुष्पों के मकरन्द और पराग का रस लेने के अनंतर) फिर उनसे बात भी नहीं पूछता, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने हमारे प्रेम का रस लेने के पश्चात् हमें याद भी नहीं किया। सूर के शब्दों में गोपियों का उद्धव से कथन है कि जहाँ तक श्यामवर्ण की बात है—इनसे प्रेम-सम्बन्ध कभी भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये सभी (उद्धव, अक्रूर और श्रीकृष्ण) अविश्वसनीय हैं।

टिप्पणी—

(1) यह पद व्यंग्यगर्भित शैली की एक महत्वपूर्ण रचना है।
(2) 'मधुबनियाँ' शब्द मुख्यतया श्रीकृष्ण, उद्धव और अक्रूर के लिए प्रयुक्त है।
(3) प्रथम पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।
(4) 'स्यामगात' में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।
(5) तृतीय, चतुर्थ और पंचम पंक्ति में उदाहरण अलंकार है।

राग नट

हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
समुझी बात कहत मधुकर जो ? समाचार कछु पाए ?
इक अति चतुर हुते पहिले ही, अरु करि नेह दिखाए।
जानी बुद्धि बड़ी, जुवतिन को जोग-सँदेस पठाए॥
भले लोग आगे के, सखि री ! परहित डोलत धाए।
वे अपने मन फेरि पाइए जे हैं चलत चुराए॥
ते क्यों नीति करत आपुन जे औरनि रीति छुड़ाए ?
राजधर्म सब भए सूर जहँ प्रजा न जायँ सताए॥ 92 ॥

शब्दार्थ—हुते = थे। आगे के = पहले के, पुराने जमाने के।

सन्दर्भ—गोपियों के पास श्रीकृष्ण ने योग-संदेशा भेजा है। इससे अब गोपियों के मन में किसी भी प्रकार की शंका नहीं रह गयी कि श्रीकृष्ण राजनीति के एक चतुर खिलाड़ी है। प्रस्तुत पद में उनके राजनैतिक दाँव-पेंच का संकेत किया गया है।

व्याख्या—(गोपियाँ परस्पर कह रही हैं) हे सखियो, जरा देखो तो, श्रीकृष्ण अब राजनीति शास्त्र के ज्ञाता हो गये (मथुरा जाते ही ऐसे छल और कपटपूर्ण व्यवहार करने लगे) क्यों सखियो, जो बात उद्धव जी कह रहे हैं क्या उन्हें तुम सबों ने कुछ समझा अर्थात् राजनीति शास्त्र पढ़ने के बाद उन्होंने जो बातें उद्धव द्वारा भेजी हैं क्या वे तुम्हारी समझ में कुछ आयीं) क्या तुम्हें उनके राजनीति विशारद होने और इस प्रकार योग-संदेश भेजने का कुछ समाचार मिला ? एक तो श्रीकृष्ण पहले ही बहुत चतुर थे, दूसरे गोपियों से जो प्रेम व्यवहार किया उसमें भी अपनी चतुराई दिखाई (आशय यह है कि वे बनते बड़े होशियार हैं लेकिन जो काम किया उसमें उनकी अज्ञानता ही झलकती है।) उनकी बुद्धि का परिचय तो इसी में मिल गया कि उन्होंने ब्रज की युवतियों को योग-साधना का संदेश भिजवाया है (भला, युवतियाँ योग की साधना कैसे कर सकती हैं—युवतियाँ और योग—दोनों में कितना अन्तर है—क्या ऐसे संदेश के द्वारा श्रीकृष्ण की अज्ञानता नहीं प्रकट होती ?) अरी सखी, पहले के लोग कितने भले और सज्जन होते थे जो दूसरों के हित के लिए बराबर घूमते-फिरते थे और एक कृष्ण को देखो जो दूसरे के मन को चोरी किए फिरते हैं। नीति तो यही है कि गोपियों को अपने वे मन मिल जायँ जिन्हें वे (श्रीकृष्ण) चुराए फिर रहे हैं (देना ही नहीं चाहते भला), जो दूसरों की मर्यादा और रीति को समाप्त करने में लगे हैं वे नीति और धर्म का पालन क्यों करने लगे अर्थात् जो गोपियों को प्रेम-मार्ग से हटा करके योग-मार्ग पर लगाने का प्रयत्न करते हैं वे नीति को स्वयं कैसे ग्रहण करेंगे—वे क्या नीति और धर्म का पालन करते होंगे जो दूसरे को अच्छी नीति से हटाकर बुरी नीति पर लगाना चाहते हैं। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि राजधर्म (राजा का धर्म और कर्तव्य) तो वहीं देखा जाता है जहाँ प्रजा को किसी प्रकार कष्ट न हो (जहाँ राजा के धर्म से प्रजा दुखी है, उसे राजधर्म की सच्ची संज्ञा नहीं दी जा सकती)।

टिप्पणी—

(1) तीसरी और चौथी पंक्ति में अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का प्रयोग हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(2) इसमें वाणी की वक्रता और वचन-विदग्धता का सुंदर प्रयोग हुआ है।
(3) अंतिम पंक्ति में आदर्श राजा के धर्म का उल्लेख हुआ है और तत्कालीन शासक वर्ग का भी संकेत किया गया है जिससे प्रजा को प्रायः कष्ट मिलता था।
(4) व्यंग्यगर्भित शैली का यह एक अच्छा पद है।

राग नट

जोग की गति सुनत मेरे अंग आगि बई।
सुलगि सुलगि हम रही तन में फूँक आनि दई॥
जोग हमको भोग कुबजहि, कौन सिख सिखई ?
सिंह गज तजि तृनहि खंडत सुनी बात नई॥
कर्म रेखा मिटति नाहीं जो विधि आनि ठई।
सूर हरि की कृपा जापै सकल सिद्धि भई॥ 93॥

शब्दार्थ—बई = लगी। सिख = शिक्षा। खंडत = तोड़ना; खाना। ठई = बनाई, की। गति = रीति।

संदर्भ—उद्धव द्वारा बार-बार योग की रीतियों को सुनकर गोपियाँ नाराज हो जाती हैं और कहने लगती हैं कि हे उद्धव, तुम्हारे इस योग-चर्चा से तो हमारे अंग में आग लग गई।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, तुम्हारी इन योग-रीतियों को (योग-साधना विषयक इन बातों को) तो सुनते ही हम लोगों के अंग-प्रत्यंग में आग लग गई (अंग-अंग वियोग की ताप से जलने लगा), हम तो वियोगाग्नि से पहले ही धीरे-धीरे सुलगती रही, किन्तु तुमने तो आकर योग-चर्चा रूपी फूँक से उस आग को और उद्दीप्त कर दिया। तुम हमारे लिए तो योग साधना का संदेश देते हो और कुब्जा को भोग की ओर प्रवृत्त करते हो, यह शिक्षा तुम्हें किसने दी है ? आज एक नयी बात सुनने को मिल रही है वह यह कि सिंह हाथी को छोड़ कर तिनके तोड़ रहा है। अर्थात् सिंह हाथी के मांस को न खाकर तिनकों को चर रहा है—यह एक असम्भव बात है। ठीक इसी प्रकार गोपियों को योग-साधना की ओर प्रवृत्त करना भी असम्भव है—प्रकृति के विरुद्ध है। हे उद्धव, ब्रह्मा ने जो भाग्य की रेखाएँ बनायी हैं वे मिटती नहीं अर्थात् भाग्य में जो लिखा है उसे तो भोगना ही है। सूर के शब्दों में गोपियों का कथन है कि भगवान की कृपा जिस पर होती है उसे समस्त सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। आशय यह है कि भगवान की कृपा जब हमारे ऊपर भी होगी तब हमें भी सभी वस्तुओं की सिद्धि सहज रूप में हो जायगी।

टिप्पणी—

(1) 'सुलगि-सुलगि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
(2) चौथी पंक्ति में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।
(3) 'सूर हरि की कृपा .... सिद्धि भई' में पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के प्रति संकेत है जिसमें भगवान के सहज अनुग्रह का उल्लेख होता है।
(4) 'कर्मरेख ...... ठई' में मध्यकालीन भाग्यवादी दृष्टिकोण का उल्लेख हुआ है।

राग धनाश्री

ऊधो ! जान्यो ज्ञान तिहारो।
जानै कहा राजगति-लीला अन्त अहीर विचारो॥
हम सबै अयानी, एक सयानी, कुबजा सों मन मान्यो।
आवत नाहिं लाज के मारे, मानहु कान्ह खिस्यान्यो॥
ऊधो ! जाहु बाँह धरि ल्याओ सुन्दरस्याम पियारो।
ब्याहौ लाख, धरौ दस कुबरी, अन्तहि कान्ह हमारो॥
सुन री सखी ! कछू नहिं कहिए माधव आवन दीजै।
जबहीं मिलै सूर के स्वामी हाँसी करि करि लीजै॥ 94॥

शब्दार्थ—राजगति = राजनीति। लीला = रहस्य, मर्म। अन्त = अन्ततः। अयानी = अज्ञानी। मनमान्यो = पसन्द किया, प्रिय लगीं। लाज के मारे = लज्जा के कारण। खिस्यान्य = लज्जित हो गया है। बाँह धरि = हाथ पकड़ कर। अंतहि = अन्त में। हाँसी करि-करि लीजै = उनका उपहास किया जाय। धरो = बिठा लो, रख लो।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की आलोचना करती हुई श्रीकृष्ण के व्यवहारों की निंदा कर रही हैं और उन्हें यह विश्वास है कि अहीर होने के नाते श्रीकृष्ण मथुरा की राजनीति को क्या समझें ? इसमें गोपियों के उपहास और व्यंग्य के अन्तर्गत उनकी संवेदनशीलता और कृष्ण के प्रति सहज अनुरक्ति का भाव अन्तर्हित है।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, अब तुम्हारे ज्ञान को हमने समझ लिया (हमने तुम्हारी चालाकी पकड़ ली—यह निर्गुण ज्ञान जो तुम हम सब को दे रहे हो, वह श्रीकृष्ण द्वारा प्रेषित नहीं हैं यह सब तुमने स्वयं सोचकर हमारे समक्ष रखा है) हमारा श्रीकृष्ण तो अन्ततः अहीर ही है (भोला-भाला, अज्ञानी) वह इस प्रकार मथुरा की राजनीति को क्या समझे। तुम्हारी दृष्टि में हम सभी गोपियाँ अज्ञानी थीं और एक मात्र कुब्जा ही चतुर और बुद्धिमान थी, इसी से श्रीकृष्ण ने हमें छोड़ कर चतुर कुब्जा को वरण किया—उसे पसंद किया। लगता है कुब्जा से प्रेम करने पर उन्हें दुख हुआ, वे बहुत लज्जित हैं, क्योंकि कुब्जा से तो प्रेम सम्बन्ध तुमने करवाया था और उन्हें इस जाल में फँसा दिया। अब वे अपनी इस गलती को अनुभव करके लज्जित हैं, इसीलिए यहाँ मुँह दिखाना नहीं चाहते। लेकिन उद्धव जी, आप प्रिय श्याम सुंदर के हाथ को पकड़ कर हमारे पास ले आवें, हम उनकी इस भूल की कुछ भी निंदा नहीं करेंगी, वे भले ही लाखों विवाह करें—एक नहीं दस कूबरी को बिठा लें, हमें इसका लेशमात्र भी दुख नहीं है, क्योंकि हम सब जानती हैं कि अन्ततः श्रीकृष्ण हमारे ही हैं (यहाँ गोपियों के एकनिष्ठ प्रेमभाव का निरूपण है) गोपियाँ इसके पश्चात् अपनी सखियों से कहने लगीं—हे सखी, सुनो अभी तो श्रीकृष्ण को आने दो, उन्हें कुछ मत कहो। हाँ, जब वे यहाँ आ जायें तो इस अज्ञानता का बोध कराने के लिए उनसे कुछ हँसी-मजाक करके अपने मन को संतुष्ट कर लेना।

टिप्पणी—

(1) 'अन्त अहीर विचारो' में हाव की दृष्टि से इसमें 'विब्बोक' हाव है, क्योंकि गोपियाँ कृत्रिम रूप से श्रीकृष्ण का उपहास कर रही हैं, लेकिन इसमें उनके हृदय की सच्ची प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(2) उपहास और व्यंग्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है।

(3) छठीं पंक्ति में वस्तु से वस्तु व्यंजित है। अर्थात् श्रीकृष्ण भले ही कुबरी जैसी दासी से प्रेम करें हमें आपत्ति नहीं है किन्तु अन्ततः हमारे ही हैं—वे कुब्जा के नहीं हो सकते। दूसरा व्यंग्य यह है कि कुब्जा के वासनात्मक प्रेम में वे भूल कर भी नहीं फँसेंगे, वे तो अन्ततः हम सबों के अनाविल एवं स्वार्थरहित प्रेम की कद्र करेंगे।

(4) 'ब्याहो लाख धरो दस कुबरी' में असूया संचारी भाव है।

(5) सातवीं पंक्ति में गोपियों की तितिक्षा का भाव व्यंजित है।

राग केदारो

उर में माखनचोर गड़े।
अब कैसेहू निकसत नहिं ऊधो ! तिरछे है जु अड़े॥
जदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छँड़े।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े॥
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं।
सूर स्यामसुन्दर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं॥ 95 ॥

शब्दार्थ—गड़े = चुभ गये। कैसेहू = किसी भी प्रकार। छँड़े = छोड़े। बूझैं = समझती हैं। सूझैं = दिखाई देता है।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा के प्रति गोपियों का ऐसा अनुराग है कि उसे किसी प्रकार से विस्मृत नहीं किया जा सकता। अपनी यह विवशता गोपियाँ उद्धव जी को बतला रही हैं।

व्याख्या—गोपियाँ श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप का ध्यान हृदय से न निकलने का कारण उद्धव से बताती हुई कह रही हैं—हे उद्धव, हमारे हृदय में मक्खन चोर (श्रीकृष्ण) का त्रिभंगी रूप ऐसा गड़ गया है—ऐसा चुभ गया है—जो निकालने पर किसी भी प्रकार नहीं निकल पा रहा है। आशय यह है कि वे टेढ़े ढंग से हृदय में अड़ गये हैं (त्रिभंगी रूप में—तीन जगह से टेढ़े रूप में हृदय में धँसे हैं—यदि एक जगह टेढ़े हों तो निकल भी आवें, लेकिन वे तो तीन जगहों से टेढ़े हैं सीधी वस्तु में टेढ़ी वस्तु—वह भी यदि तीन जगह से टेढ़ी हो—अटक जाय तो उसे निकालना अति कठिन बात है—उसी प्रकार सरल हृदय में त्रिभंगी मूर्ति ऐसी अड़ गयी है कि उसे कैसे निकाला जाय ? यद्यपि आपके कथनानुसार वे यशोदा के पुत्र और अहीर हैं फिर भी हमारा उनसे ऐसा प्रेम है कि उन्हें छोड़ते नहीं बनता (हमारे लिए वे सब कुछ हैं आप भले ही उन्हें साधारण मानें)। मथुरा में जाकर वे भले ही महान यदुवंश के राजा बन गये हों—लेकिन उनका यह गौरव पूर्ण पद हमें अच्छा नहीं लगता। हमें तो उनका वह अहीर जाति का रूप ही मोहक है। हम सब यह नहीं जानती और नहीं समझतीं कि वसुदेव कौन हैं, और देवकी कौन हैं ? कहने का आशय यह है कि हम उन्हें नन्द और यशोदा के नन्दन के रूप में ही देखती हैं। (श्रीकृष्ण का यही रूप हम लोगों के हृदय में बस गया है)। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव, हमें श्याम सुन्दर के रूप को देखे बिना अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता तात्पर्य यह है कि हमें उनके बिना कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।

टिप्पणी—

(1) पूरे पद में भाव-प्रेरित वचन-वक्रता की प्रधानता है।

(2) उक्ति वैचित्र्य विधान का यह एक अच्छा नमूना है।

(3) कदाचित सूर की इस उक्ति के आधार पर ही विहारी ने इस दोहे की रचना की है—

करौ कुवत जग कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगी लाल॥

राग सारंग

गोपालहिं कैसे कै हम देति ?
ऊधो की इन मीठी बातन निर्गुन कैसे लेति ?
अर्थ, धर्म, कामना सुनावत सब सुख मुकुति-समेति।
जे व्यापकहिं बिचारत बरनत निगम कहत हैं नेति॥
ताकी भूलि गई मनसाहू देखहु जौ चित चेति।
सूर स्याम तजि कौन सकत है, अलि, काकी गति एति॥ 96 ॥

शब्दार्थ—कैसे कै हम देति = कैसे दे सकती हैं ? कैसे लेति = कैसे ग्रहण कर सकती हैं। कामना = काम। व्यापकहिं = व्यापक ब्रह्म के सम्बन्ध में। निगम = वेद। नेति—न + इति = (जिसका अन्त नहीं है)। ताकी = उसकी। मनसाहू = बुद्धि भी। भूलि गई = चकरा गई, चकित हो गयी। चित चेति = मन में विचार करके। काकी गति = किसी क्षमता। एति = इतनी।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव को सुनाती हुई परस्पर कह रही हैं कि उद्धव की इन मीठी बातों में पड़ कर कौन गोपाल की उपासना (सगुणोपासना) को छोड़ सकता है ? गोपियाँ किसी भी रूप में सगुणोपासना का त्याग निर्गुणोपासना के लिए नहीं कर सकतीं, यही इस पद का मुख्य भाव है।

व्याख्या—गोपियाँ परस्पर कह रही हैं—हे सखी, हम सब गोपाल को कैसे दे सकती हैं ? और उद्धव की इन खुशामद भरी मीठी-मीठी बातों में पड़ गोपाल को देकर (उनकी उपासना छोड़कर) कौन निर्गुण ब्रह्म की उपासना को ग्रहण करेगा ? अरी सखी, जो उद्धव मुक्ति (मोक्ष) सहित धर्म, अर्थ और काम की साधना से सब सुखों की प्राप्ति की बात करते हैं और जो ब्रह्म की व्यापकता पर सदैव विचार करते हैं और उसका निरूपण करते फिरते हैं जिसे वेद नेति-नेति (जिसका अन्त नहीं है=जो अनन्त है) कहते हैं, उनकी भी बुद्धि यदि विचार करके देखें तो चकरा जाती है, वे निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में कुछ कह नहीं पाते अतः ऐसी दशा में श्रीकृष्ण को छोड़ने में कौन समर्थ हो सकता। सूर के शब्दों में गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे भ्रमर (उद्धव), किसकी इतनी गति (क्षमता) है जो उस निर्गुण के लिए अपने सगुण गोपाल को त्याग दे।

टिप्पणी—

(1) गोपियाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सुख से बढ़कर गोपाल की सगुणोपासना में सुख का अनुभव करती हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(2) प्रथम पंक्ति में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।
(3) गोपियों ने इसमें निर्गुणोपासना का खण्डन बहुत ही तर्क-संगत पद्धति से किया है।
(4) प्रथम और अंतिम पंक्ति में गोपियों का गोपाल के प्रति सच्चा मोह और आसक्ति व्यंजित हुई है।

राग गौरी

उपमा एक न नैन गही।
कबिजन कहत कहत चलि आए सुधि, करि करि काहू न कही॥
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवन; भँवर न, तहँ उड़ि जात।
हरिमुख-कमलकोस बिछुरे तें ठाले क्यों ठहरात ?
खंजन मनरंजन जन जौ पै, कबहुँ नाहि सतरात।
पंख पसारि न उड़त, मंद है समर-समीप बिकात॥
आए बधन व्याध है ऊधो, जौ मृग, क्यों न पलाय ?
देखत भागि बसै घन बन में जहँ कोउ संग न धाय॥
ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे ? प्रति छिन अति दुख बाढ़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि संग न छाँड़त॥ 97 ॥

शब्दार्थ—गही = ग्रहण की, उपयुक्त समझना। उपमा = उपमान। सुधिकरि = विचारपूर्वक। काहू = किसी ने भी। मुख-बिधु = चन्द्रमुख। ठाले = अभाव में। ठहरात = ठहरते, रुकते। मनरंजन जन = लोगों को प्रसन्न करने वाले। जोपै = यदि। सतराज = नाराज होना, खीझना। पसारि = फैलाकर। मन्द है = शिथिल होकर। समर = (सं० स्मर) कामदेव। बिकात = वशीभूत हो जाते हैं। व्याध = बहेलिया। क्यों न पलाय = भाग क्यों नहीं जाते। घन बन = सघन जंगल। धाय = दौड़ना। ब्रजलोचन = श्रीकृष्ण। मीनता = मछली का गुण। जल भरि संग न छांड़त = जल भर कर उसका (जल का) साथ नहीं छोड़ते (नेत्र आँसुओं से भरे रहते हैं)।

सन्दर्भ—इस पद में गोपियों का कथन है कि उनके नेत्रों के सम्बन्ध में जो भी उपमाएँ दी गयीं वे सब की सब अनुपयुक्त और झूठी हैं। इसका कारण बताती हुई कह रही हैं।

व्याख्या—(गोपियों के कथनानुसार नेत्रों की एक भी उपमा उपयुक्त नहीं प्रतीत हुई। हमारे नेत्रों ने कवियों द्वारा दी गयी किसी भी उपमा को ग्रहण नहीं किया—किसी भी उपमान को उपयुक्त नहीं समझा।) यद्यपि परम्परा से कविगण नेत्रों की उपमाएँ देते चले आए हैं, किन्तु विचारपूर्वक किसी भी कवि ने नेत्रों के उपयुक्त उपमान नहीं चुना। कवियों ने इन नेत्रों की उपमा चकोर पक्षी से दी है, लेकिन यदि ये चकोर होते तो श्रीकृष्ण के चन्द्रमुख के बिना कैसे जीवित रहते ? (चकोरों का तो जीवन चन्द्र-रस पान के आधार पर चलता है, इसके बिना वे जीवित नहीं रहते, अतः सिद्ध है कि चकोर उपमान भी नेत्रों के लिए ठीक नहीं है। नेत्रों की उपमा भ्रमर से दी जाती है, किन्तु ये भ्रमर होते तो श्रीकृष्ण के कमलमुख पर मँडराते रहते और उनके चले जाने पर वहीं उड़ कर चले जाते, पर ये तो यहीं हैं, भला श्रीकृष्ण के कमल मुख कोश के अभाव में यहाँ क्यों ठहरते—यहाँ क्या स्थिर बने रहते ? अब निश्चित हो गया कि ये भ्रमर भी नहीं हैं और भ्रमर की जो उपमा इन नेत्रों के सम्बन्ध में दी गयी है, वह गलत है। लोग नेत्रों की उपमा

खंजन पक्षी से देते हैं, इस आधार पर यदि ये लोगों का मनरंजन करने वाले खंजन पक्षी हैं और ये कभी नाराज नहीं होते, सदैव प्रसन्न रहते हैं तो श्रीकृष्ण के जाने पर पंख फैला कर वहीं ये उड़ क्यों नहीं जाते और उन्हें प्रसन्न क्यों नहीं करते ? ये तो शिथिल होकर काम के निकट बिक जाते हैं—काम के वशीभूत हो जाते हैं—तात्पर्य यह है कि इनमें काम का प्रभाव बना रहता है। अतः इन्हें खंजन पक्षी कहना निराधार है। इन्हें मृग की भी उपमा दी जाती है, किन्तु ये मृग होते तो जो बधिक रूप उद्धव बध करने के लिए (अपने निर्गुण-ज्ञान की नीरस और कठोर वाणी से प्रहार करने के लिए) यहां आए हैं, उन्हें देख कर भाग क्यों नहीं गये क्योंकि मृग तो बधिकों को देखते ही ऐसे सघन वन में भाग जाते हैं जहाँ कोई उनके पीछे वहाँ तक नहीं पहुँच पाता। इन्हें लोचन (लुच् धातु से यह शब्द बना है जिसका अर्थ देखना है) भी कैसे कहा जाय, क्योंकि ये ब्रजलोचन श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना भी जीवित हैं और प्रत्येक क्षण इनका दुख बढ़ रहा है। सूरदास के शब्दों में गोपियों का कथन है कि इन नेत्रों में कुछ मछली का गुण अवश्य है—एक मात्र मीनत्व ही इनमें बचा है—क्योंकि जल भर कर भी ये उसे छोड़ते नहीं, सदैव आँसुओं से भरे रहते हैं। आशय यह है कि जिस प्रकार मीन जल का साथ नहीं छोड़ता ठीक मीन के गुणों वाले हमारे नेत्र भी सदैव जल से भरे रहते हैं (जल की कमी नहीं रहती)।

टिप्पणी—

(1) कवि प्रसिद्धि के अन्तर्गत कवियों ने जिन उपमानों का कथन किया है प्रायः सभी प्रमुख उपमानों का इसमें उल्लेख हुआ है।
(2) तृतीय, चतुर्थ और षष्ठ चरणों में रूपक का प्रयोग हुआ है।
(3) नेत्र विषयक उक्ति-भंगिमा का यह एक सुंदर उदाहरण है।
(4) मीनता में परिकरांकुर अलंकार का प्रयोग हुआ है।
(5) प्रथम में व्यतिरेक और द्वितीय पंक्ति में उपमानों की अनुपयुक्तता का सकारण उल्लेख होने के कारण काव्य लिंग अलंकार है।
(6) 'ब्रजलोचन' में परिकर अलंकार है।

राग गौरी

हरिमुख निरखि निमेख बिसारे।
ता दिन तें मनो भए दिगंबर इन नैनन के तारे॥
घूँघट-पट छाँड़े बीथिन महँ अहनिसि अटत उघारे।
सहज समाधि रूप रुचि इकटक टरत न टक तें टारे॥
सूर, सुमति समुझति, जिय जानति, ऊधो ! बचन तिहारे।
करैं कहा ये कह्यो न मानत लोचन हठी हमारे॥ 98 ॥

शब्दार्थ—निमेख = (सं. निमेष) पलक। बिसारे = पलक गिराना भूल गये। दिगम्बर = नग्न। बीथिन = गलियों में। घूंघट-पट = घूंघट रूपी वस्त्र। अहनिसि = दिन-रात। अटत = घूमते रहते हैं। उघारे = नग्न। रूप रुचि = श्रीकृष्ण के सौन्दर्यानुराग में। टक = निर्निमेष, टकटकी बाँधना। टरत = हटना। टारे = हटाने से भी।

सन्दर्भ—इसमें श्रीकृष्ण के रूपाकर्षण में मुग्ध गोपियों के नेत्रों का वर्णन किया गया है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

गोपियों के हठी नेत्र बहुत प्रयास करने पर भी श्रीकृष्ण के सौन्दर्याकर्षण से मुक्त नहीं हो पाते। वे टकटकी बाँधकर निरन्तर उन्हीं को देखा करते हैं। गोपियाँ अपने हठी नेत्रों की इस विवशता का उल्लेख उद्धव से कर रही हैं।

व्याख्या—(उद्धव-प्रति गोपियों का कथन) हे उद्धव, हमारे इन नेत्रों ने श्रीकृष्ण के मुख-सौन्दर्य को देखते ही अपनी पलकों को गिराना भूल गये (श्रीकृष्ण के मुख सौन्दर्य को ये निर्निमेष देखा करते हैं) ऐसा लगता है कि इन नेत्रों के तारे (पुतलियाँ) उसी दिन से पलक रूपी वस्त्रों को त्याग कर मानो दिगम्बर (नग्न) साधु हो गये हों (क्योंकि जिस दिन से श्रीकृष्ण को देखा है इन नेत्रों की पुतलियाँ बन्द नहीं होतीं)। ये लज्जा-मर्यादा को भी भूल गये और घूँघट रूपी वस्त्रों को त्याग कर सर्वथा नग्न गलियों में दिन-रात घूमा करते हैं। ये श्रीकृष्ण के सौन्दर्यानुराग में सहज रूप से योगियों की भाँति समाधिस्थ हो गये हैं और टकटकी बाँधकर एकटक (निर्निमेष) उन्हें देखा करते हैं, बहुत हटाने पर भी अपनी इस मुद्रा (टकटकी बाँधकर देखने की मुद्रा) से हटते नहीं। हे उद्धव, हम अपनी अच्छी बुद्धि से तुम्हारी बातों को समझती हैं और मन में अनुभव भी करती हैं, लेकिन करें भी तो क्या करें, ये हमारे हठी नेत्र हमारा कहना ही नहीं मानते (ये श्रीकृष्ण के सौन्दर्य में इस प्रकार मग्न रहते हैं कि किसी की भी बात इन्हें अच्छी नहीं लगती)।

टिप्पणी—

(1) दूसरी पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(2) 'घूँघट-पट' में रूपक अलंकार है।
(3) नेत्रों में मानवीकरण की प्रवृत्ति है।
(4) श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य के प्रभाव का निरूपण है।

राग सारंग

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिंन होत चंद को ढरिबो॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम-पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमलनयन, सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो॥
सीतल चंद अगिनि-सम लागत कहिए धीर कौन बिधि धरिबो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥ 99॥

शब्दार्थ—बीना कर धरिबो = हाथ में वीणा धारण करना। ढरिबो = अस्त होना। जाहि पै = जिस पर। प्रेम-पास = प्रेम-पाश (प्रेम का जाल)। परिबो = पड़ना। गरिबो = गिरना। झूठे = निरर्थक। जतननि = प्रयत्नों को।

सन्दर्भ—इसमें राधा की वियोगावस्था का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। राधा की वियोग-पीड़ा को दूर करने के लिए किसी सखी ने हाथ में वीणा लेकर बजाना आरम्भ कर दिया। वीणा की मधुर ध्वनि सुनकर चन्द्रमा के रथ के मृग मोहित हो गये और रात्रि बड़ी हो गयी। राधा को रात्रि के बढ़ जाने से बहुत कष्ट हुआ अतः वह अपनी सखी से निवेदन कर रही है कि वह अपने हाथ की वीणा को दूर रख दे, उसे न बजाए।

व्याख्या—वियोगिनी राधा अपनी सखी से कह रही है, हे सखी, तुम अपने हाथ में वीणा मत धारण करो, उसे हटा दो (आशय यह है कि इस वीणा से मधुर ध्वनियाँ मत निकाल) क्योंकि इसकी मधुर ध्वनियों को सुनकर चन्द्रमा के रथ में जुता हुआ मृग मोहित हो गया और इससे रथ का चलना बंद हो गया तथा चन्द्रमा भी अस्त नहीं हो रहा है। व्यंजना यह है कि इसके कारण रात्रि बढ़ गयी (रात्रि का बढ़ना वियोगिनियों के लिए अत्यंत कष्टप्रद होता है)। हे सखी, जिस पर बीतता है वही इस कष्ट को जानता है, वस्तुतः प्रेम के पाश में पड़ना बहुत ही दुखदायी होता है। ईश्वर करे कोई प्रेम-जाल में न फँसे। हमारी दशा तो यह है कि जब से श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है हमारे नेत्रों से अश्रु-पात का होना बन्द नहीं होता। हे सखी, मुझे तो इस वियोग में शीतल चन्द्रमा भी अग्नि के समान तापदायक लगता है, अतः तुम्हीं बताओ ऐसी विषम स्थिति में किस प्रकार धैर्य धारण करें। सूरदास के शब्दों में राधा अपनी सखी से कह रही है कि तुम हमें सुख पहुंचाने के लिए बहुत प्रयत्न कर रही हो, लेकिन श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना ये सभी प्रयत्न निरर्थक और बेकार हैं—इनसे किसी भी प्रकार का सुख नहीं मिल सकता।

टिप्पणी—

(1) इस प्रकार की उक्ति जायसी के पद्मावत में भी मिली है 'गहे बीन मकु रैन बिहाई। ससि वाहन तहँ रहे ओनाई।'
(2) इसमें चाँदनी रात का उद्दीपन की दृष्टि से वर्णन हुआ है।
(3) दूसरी पंक्ति में अतिशयोक्ति अलंकार और जड़ता संचारी भाव है।
(4) चौथी पंक्ति में अश्रु संचारी भाव है।
(5) 'सीतल ..... लागत' में धर्मलुप्तोपमा अलंकार है। इसके अतिरिक्त इस पद में विषादन अलंकार भी है। इसमें अलंकार से वस्तु ध्वनि भी है। शीतल चन्द्रमा का अग्नि के समान तापदायक प्रतीत होना वियोगिनी के दुख की अतिशयता रूप वस्तु व्यंजित करता है।
(6) 'मोहे मृग .... रथ हाँक्यो' में उत्प्रेक्षा की झलक है।
(7) अंतिम पंक्ति में विशेष कारण होने पर भी कार्य-सिद्धि नहीं हो पा रही है, इस कारण इसमें विशेषोक्ति अलंकार है।

राग जैतश्री

अति मलीन वृषभानुदुलारी।
हरि-स्रमजल अंतर-तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि-सँदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं ब्रजवनिता सब स्यामदुलारी॥ 100॥

शब्दार्थ—मलीन = उदासीन। वृषभानु दुलारी = राधा। हरि श्रम-जल = श्रीकृष्ण के सात्विक प्रेमोद्रेक से उत्पन्न पसीना। अन्तर तनु = हृदय और शरीर। अधोमुख = नीचे किए मुख। उरध = ऊर्ध्व, ऊपर। चितवति = देखती है। गथ = धन, पूँजी। जुआरी = जुआ

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

खेलने वाला। थकित = उदासीन। चिहुर = बाल। बदन = मुख। नलिनी = कमलिनी। हिमकर = तुषार, पाला। अलि = भ्रमर (उद्धव)।

सन्दर्भ—इसमें वियोगिनी राधा की मार्मिक दशा का वर्णन किया गया है। राधा एक तो वियोग की व्यथा से संतप्त थी ही दूसरे उद्धव ने योग-संदेश की चर्चा से उसे और जला दिया। इसी बात को लेकर गोपियाँ परस्पर चर्चा कर रही हैं।

व्याख्या—अरी सखी, राधा तो अत्यंत मलीन दीखती है (वह मन और शरीर दोनों से ही मलीन है) श्रीकृष्ण के सात्विक प्रेमोद्रेक-जन्य पसीना से उसका हृदय और शरीर दोनों ही भीग उठा है। इसके कारण उसकी साड़ी मैली हो गयी है (उस पसीने से उसकी साड़ी मैली हो गयी है)। वह अपनी साड़ी इस लालच से नहीं धुलवा रही है कि इसमें श्रीकृष्ण के सात्विक प्रमोद्रेक-जन्य पसीने की गन्ध मिलती है जो सम्बन्ध भावना के कारण अति प्रिय है, साड़ी को धुलवाने पर उस पसीने की गन्ध नहीं मिलेगी। वह सदैव अपने मुख को नीचे किए हुए (आनत मुख) बैठी रहती है, ऊपर की ओर देखती ही नहीं। उसकी ऐसी दशा देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई जुआड़ी जुएँ में अपनी पूँजी हार कर उदासीन आनत मुख बैठा हो। राधा के बाल बिखरे हुए हैं (शृंगार न करने के कारण इसके बाल बिखर गए हैं) इसका मुख कुम्हलाया हुआ दिखाई पड़ता है—ऐसे मुख को देखकर लगता है कि जैसे कमलिनी तुषार पड़ने पर जल गयी हो (कमल या कमलिनी पर जब तुषार का प्रभाव पड़ता है तो उसका सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है)। वह श्रीकृष्ण के वियोग में पहले ही संतप्त थी, दूसरे जब उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण का सन्देश (योग-साधना का संदेश) सुना तो सहज ही मृतक तुल्य हो गयी। सूर के शब्दों में ऐसी दशा केवल राधा की ही नहीं है बल्कि श्रीकृष्ण की सभी प्रियतमाएँ वियोग की ऐसी दारुण पीड़ा को सहती हुई जीवित रह रही हैं।

टिप्पणी—

(1) द्वितीय पंक्ति में सात्विक अनुभाव है।
(2) तीसरी पंक्ति में चाक्षुष बिम्ब की प्रधानता है और उपमा अलंकार है।
(3) प्रथम दो चरणों में सकारण पूर्व कथन का उत्तर कथन द्वारा संपुष्टि हो रही है, इससे इसमें काव्य लिंग है।
(4) नायिका भेद की दृष्टि से इसमें प्रोषितपतिका नायिका है।
(5) पाँचवीं पंक्ति में विरह की दसवीं अवस्था 'मरण' का उल्लेख हुआ है।
(6) विषाद, विवर्ण, चिन्ता आदि संचारी भावों की प्रधानता है।
(7) चौथी पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

श्रीगणेशाय नमः
श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

(पंचम सोपान)

सुंदरकाण्ड : भाष्य

(मूल, शब्दार्थ, व्याख्या एवं साहित्यिक सौंदर्य)

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं,
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं,
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥ 1 ॥

शब्दार्थ – शान्तं=अक्रोधी। शाश्वतम्=सनातन, स्थाई, चिरंतन। अप्रमेयम्=प्रमाणों से परे, अपरिमित, अनंत। अनघं=निष्पाप। निर्वाण=मुक्ति, मोक्ष। शांतिप्रदं=भक्तों को परम शान्ति प्रदान करने वाले। फणीन्द्र=शेषनाग। सेव्यमनिशं=निरंतर सेवा किए जाने योग्य। वेदान्तवेद्यं=वेदान्त से जानने योग्य। विभुम्=समर्थ, सर्वव्यापक। रामाख्यं=राम कहे जाने वाले। सुरगुरुं=देवताओं के अधिपति, देवाधिदेव। मायामनुष्यं=माया के कारण सांसारिक व्यक्तियों को मनुष्य-रूप में दिखने वाले। वन्देऽहं=मैं वंदना करता हूं। करुणाकरं=करुणा के सागर। भूपाल=राजा। चूडामणिम्=शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ।

व्याख्या – शान्त, सनातन, प्रमाणों से अज्ञेय, निष्पाप, देवताओं को मोक्ष रूपी शान्ति प्रदान करने वाले, ब्रह्मा, शिवजी तथा शेषजी से निरन्तर सेवित, वेदान्त द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक एवं समर्थ, जगत् के स्वामी, देवताओं के गुरु, निज इच्छा से मानव रूप धारण किए हुए, श्रीहरि, करुणाकर, सम्राटों में शिरोमणि, रघुकुल में श्रेष्ठ, श्रीराम नाम से विख्यात जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में गोस्वामी जी ने अपने उपास्य श्रीराम की वंदना करते हुए, उनके निर्गुण-सगुण दोनों रूपों का उल्लेख किया है। श्रीराम स्वभाव से शान्त हैं अर्थात् सुख-दुख से परे हैं। वह न तो राज्याभिषेक की सूचना से प्रसन्न होते हैं और न वनवास के समाचार से दुखी होते हैं। वह शाश्वत तत्व हैं, अज, अविनाशी और अमर हैं, मात्र अपनी इच्छा से मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं।

2. संस्कृत के एक श्लोक में विष्णु के जो गुण बताए गए हैं, उन्हीं का उल्लेख यहां तुलसीदास जी ने किया है। संस्कृत का वह श्लोक इस प्रकार है –

शान्ताकारं भुजगशयनं, पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं, गगन सदृशं, मेघवर्णम्, शुभांगम्
लक्ष्मीकान्तं, कमलनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।

3. छन्द – शार्दूलविक्रीडित – इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और अंत में एक गुरु (ऽ) के क्रम से उन्नीस वर्ण होते हैं।

4. अलंकार – उल्लेख।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे,
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥ 2 ॥

शब्दार्थ – नान्या स्पृहा=अन्य कुछ नहीं चाहता। अस्मदीये=मेरे। सत्यं वदामि=सत्य कहता हूं। भवानखिलान्तरात्मा=आप सबके हृदय की बात जानने वाले हैं, घट-घट वासी हैं। प्रयच्छ=प्रदान करें। रघुपुंगव=रघुवंश में श्रेष्ठ व्यक्ति, रघुकुल के स्वामी। निर्भरां=परिपूर्ण, अविचल। कामादि-दोषरहितं=काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि दोषों से मुक्त। कुरु=कीजिए। मानसं=मन का।

व्याख्या – दूसरे श्लोक में कवि याचना करता है कि हे रघुनाथ जी! मैं सत्य कहता हूं और फिर आप सर्वान्तरयामी होने के कारण सर्वज्ञ भी हैं अर्थात् सबके हृदय की बात जानते हैं कि मेरे हृदय में अन्य कोई इच्छा नहीं है। मेरी केवल दो कामनाओं को पूर्ण कीजिए – 1. मुझे अपनी अविचल और परिपूर्ण भक्ति प्रदान कीजिए और 2. मेरे मन को काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर नामक षट्-विकारों से मुक्त कीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रस्तुत श्लोक में कवि ने अपने योग और क्षेम की कामना की है। इसमें 'भक्तिं प्रयच्छ' योग है और 'कामादिदोषरहितं' क्षेम है।

2. राम के प्रति अनन्य आस्था, अडिग भक्ति को प्रकट किया गया है। तुलसी ने अन्यत्र चातक के उदाहरण द्वारा अनन्य भक्ति की बात कही है। गंगाजल में पड़ा, मरता हुआ चातक भी स्वाति नक्षत्र की वर्षा की बूंद को ही पीने के संकल्प के कारण गंगाजल को अपने मुख में नहीं जाने देता, वहां से चोंच हटा लेता है।

3. छन्द – वसन्ततिलका – इसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु (ऽऽ) वर्ण के योग से चौदह वर्ण होते हैं।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥ 3 ॥

शब्दार्थ – अतुलितबलधामं=अपार बल, शक्ति तथा ऐश्वर्य के भण्डार। स्वर्णशैलाभदेहं= स्वर्णशैल (सुमेरु पर्वत) की कान्ति के समान शरीर वाले। दनुजवन=दैत्यों, राक्षसों का वन (समूह)। कृशानुं=अग्नि, ज्वाला। अग्रगण्यम्=जिनकी प्रथम स्थान पर गणना होती है, सर्वश्रेष्ठ, शिरोमणि, मूर्धन्य, सर्वोपरि। निधानं=आगार, भंडार। अधीशं=स्वामी। वातजातं=पवनपुत्र, हनुमान। नमामि=नमस्कार करता हूं, वंदना करता हूं।

व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में हनुमान की वंदना की गई है। कवि कहता है कि अतुलित बल के भण्डार, सुमेरु पर्वत के सदृश स्वर्णिम कान्ति वाले, राक्षस-समूह रूपी वन को जलाने वाले अग्निस्वरूप, ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, समस्त गुणों के आगार, वानरों के स्वामी, श्रीराम के श्रेष्ठ दूत, पवनपुत्र की मैं वंदना करता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है – नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक, तथा वस्तुनिर्देशात्मक। यह श्लोक वस्तुनिर्देशात्मक है। इसमें सुंदरकाण्ड की कथावस्तु का निर्देश है। यतः यह काण्ड हनुमतचरित से सम्बद्ध है, अतः इसमें हनुमान की वंदना की गई है। गोस्वामी जी ने वंदना के माध्यम से हनुमान के समस्त गुणों का वर्णन कर दिया है। वह अतुल शक्ति के भाण्डार हैं (समुद्र लंघन), कनकभूधराकार हैं, लंका को जला देते हैं, सीता को सांत्वना, विभीषण को मन्त्रणा तथा रावण को उपदेश देते हैं (ज्ञानिनामग्रगण्यम्), निराश वानरों का नेतृत्व करके सीता को खोजते हैं तथा वानरों के प्राणों की रक्षा करते हैं, अतः वानरों के स्वामी हैं, श्री राम के दौत्यकर्म का सफलतापूर्वक निर्वाह करते हैं।

2. इस श्लोक में आठ विशेषणों के द्वारा हनुमान की स्तुति की गई है। अतः इसे 'हनुमानाष्टक' कहा जा सकता है।

3. 'हनुमान चालीसा' में भी हनुमान के इन्हीं गुणों का स्तवन किया गया है। इनमें भी हनुमान को पवनकुमार, ज्ञानगुणसागर, कपीश, अतुलितबलधामा, महावीर, कंचन वरण, विद्यावान, गुणी, अतिचतुर आदि कहा गया है।

4. छन्द – मंजु मालिनी – इसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और दो यगण के क्रम से पन्द्रह वर्ण होते हैं।

5. अलंकार – उल्लेख।

चौ०– जामवन्त के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥

शब्दार्थ – सुहाए=सुंदर, अवसर के अनुकूल, सबको प्रिय लगने वाले। सुनि=सुनकर। भाए=प्रिय लगे।

व्याख्या – जामवन्त के सुंदर वचन हनुमान ने सुने, वे उन्हें हृदय से बहुत प्रिय लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जामवन्त के वचन किष्किंधाकाण्ड के अंत में हैं। सागर-तट पर स्थित वानर-समूह को सम्पाती सूचना देता है कि त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका में रावण राज्य

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

करता है, वहीं पर अशोक वन में सीता निरन्तर शोकग्रस्त रहती हैं। जो शतयोजन सागर का लंघन कर सके, वही श्रीराम का कार्य कर सकता है। उसके कथन को सुनकर सभी वानरों ने अपनी-अपनी शक्ति का परिचय दिया, किन्तु समुद्र पार करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब जामवन्त ने हनुमान से कहा कि तुम मौन क्यों बैठे हो? तुम पवनपुत्र हो, तुममें पवन के समान ही शक्ति है तथा तुम बल और विवेक के निधान हो। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसे तुम सम्पन्न न कर सको। यही नहीं, श्रीराम का कार्य करने के लिए ही तुम्हारा अवतरण हुआ है।

जामवन्त के इन वचनों को सुनते ही हनुमान पर्वताकार हो गए और गर्जना करने लगे। उन्होंने जामवन्त से पूछा कि '**जामवन्त मैं पूँछउँ तोही, उचित सिखावनु दीजै मोही**'। जामवन्त ने कहा कि '**एतना करहु तात तुम्ह जाई, सीतहि देखि कहहु सुधि आई**'। जामवन्त का यही कथन हनुमान को प्रिय लगा है। इसी संवाद को सुंदरकाण्ड से जोड़ा गया है।

2. छन्द – चौपाई – यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएं होती हैं।

चौ॰– तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥

शब्दार्थ – लगि=तक। परिखेहु=प्रतीक्षा करना, राह देखना। काजु=सीता माता के दर्शन तथा उनके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने का काम। हरष=हर्ष, आनंद।

व्याख्या – लंका-प्रयाण के लिए तत्पर हनुमान ने वानरों से कहा कि हे बन्धुजनों! तुम लोग कष्ट सहन करते हुए तथा कंद-मूल फल खाकर मेरी तब तक प्रतीक्षा करना, जब तक मैं सीता जी को देखकर वापस न लौट आऊं। कार्य अवश्य सिद्ध होगा, क्योंकि मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रसन्नता कार्य-सिद्धि की सूचक होती है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'जब लगि' कहकर हनुमान ने कोई निश्चित अवधि नहीं दी, जैसे बालि ने सुग्रीव को दी थी। इससे हनुमान की व्यवहारकुशलता एवं दूरदर्शिता प्रकट होती है।

2. ज्योतिषशास्त्र में हर्ष को शुभ शकुन तथा कार्यसिद्धि का द्योतक माना जाता है।

चौ॰– यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥

शब्दार्थ – नाइ=नवाकर, प्रणाम करके। धरि=ध्यान कर, स्मरण कर। सिंधु=सागर। तीर=तट, किनारा। भूधर=पर्वत। कौतुक=लीलापूर्वक, अनायास।

व्याख्या – ऐसा कहकर सभी को प्रणाम करके और श्रीराम को हृदय में धारण करके प्रसन्नतापूर्वक हनुमान जी चल पड़े। सागर के किनारे एक सुंदर पर्वत था। हनुमान जी बिना परिश्रम के ही अनायास कूदकर उस पर चढ़ गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'चलेउ' शब्द में व्यंजना है कि पर्वत कुछ दूरी पर था।

2. वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में यात्रा का शुभारम्भ किष्किंधाकाण्ड में ही दिखाया गया है।

3. भूधर सुंदर – तुलसीदास ने पर्वत का नाम नहीं बताया है, जबकि उपरोक्त दोनों ग्रंथों में उक्त पर्वत का नाम 'महेन्द्र' आता है –

महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुत दर्शनः॥28॥
(अध्यात्म रामायण)

शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च।
एषु वेगं गमिष्यिमि महेन्द्रशिखरेष्वहम्॥37॥
(किष्किंधाकाण्ड – वाल्मीकि रामायण)

वाल्मीकि रामायण में महेन्द्र पर्वत की सुंदरता एवं भव्यता का विस्तृत विवरण दिया गया है।

चौ॰– बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥
जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥

शब्दार्थ – सँभारी=संभालकर, स्मरण करके। तरकेउ=उछले, कूदे। पवन तनय=पवनपुत्र हनुमान। गिरि=पर्वत। चरन=चरण, पैर। देइ=रखकर। चलेउ=धंस गया।

व्याख्या – अत्यधिक बलशाली हनुमान जी ने पुनः-पुनः श्रीराम का ध्यान किया तथा कूद पड़े। वह जिस पर्वत पर पैर रखते थे, वह उनके भार को न संभाल सकने के कारण तुरन्त पाताल लोक चला जाता था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. हनुमान चालीसा की अन्तिम पंक्तियों में भी हनुमान को पवनतनय कहकर उनकी वंदना की गई है –

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप॥

2. अलंकार – चपलातिशयोक्ति।

चौ॰– जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥

शब्दार्थ – जिमि=जैसे। अमोघ=निष्फल न होने वाला, अचूक, सदा लक्ष्य को बींधने वाला। बाना=बाण। जलनिधि=समुद्र। बिचारी=समझकर। तैं=तू। मैनाक=एक पर्वत का नाम। श्रमहारी=थकान दूर करने वाला।

व्याख्या – जिस प्रकार श्रीराम का कभी न निष्फल होने वाला बाण तीव्र गति से चलता है, उसी वेग से हनुमान जी भी चले। समुद्र ने उन्हें अपने ऊपर उड़ते हुए देखा, तो उसने अनुभव किया कि वह थक गए होंगे। अतः उसने मैनाक पर्वत को आदेश दिया कि वह हनुमान जी की थकान को दूर करे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. श्रीराम के पूर्वज महाराजा सगर ने सागर का विस्तार किया था, अतः उनका ऋण चुकाने के निमित्त सागर ने राम-दूत की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा।

2. मैनाक – इसे हिमालय का पुत्र माना गया है। यह स्वर्णमय है। कहा जाता है कि पहले पर्वतों के पंख थे और वह उड़ते थे। इन्द्र ने हजारों पर्वतों के पंखों को वज्र से काट डाला था। जब वह मैनाक पर्वत के निकट आया, तब पवन देव ने उसे अपने वेग से उड़ाकर समुद्र में छिपा दिया। वाल्मीकि रामायण (सुन्दरकाण्ड, सर्ग एक, श्लोक संख्या – 121-128) के अनुसार पवन ने मैनाक का उपकार किया था, अतः उसने पवनपुत्र की सहायता की।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

3. अलंकार – 'जिमि अमोघ' में उदाहरण अलंकार है।

दोहा– हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहां बिश्राम॥ 1 ॥

शब्दार्थ – तेहि=उसको। परसा=स्पर्श किया। कर=हाथ। मोहि=मुझे। बिस्राम=आराम।

व्याख्या – उपर्युक्त कथन को सुनकर हनुमान ने हाथ से मैनाक पर्वत का स्पर्श किया और फिर प्रणाम किया तथा कहा कि जब तक मैं श्रीराम का कार्य सम्पन्न न कर लूं, तब तक मुझे विश्राम कहां? अर्थात् राम-कार्य पूर्ण किए बिना मैं विश्राम नहीं कर सकता।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि रामायण के अनुसार मैनाक द्वारा अतिथि-सत्कार का निवेदन करने पर हनुमान ने कहा था कि मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं, किन्तु मैं ठहरूंगा नहीं। मुझे शीघ्र ही कार्य सम्पन्न करना है और मैंने मार्ग में न रुकने की प्रतिज्ञा की है।

(वा॰ रा॰ – 5/1/132)

2. यहां हनुमान द्वारा मैनाक को स्पर्श करने में सम्मान का भाव संकेतित है।

3. सच्चे सेवक का कर्तव्य तथा लक्षण बताया गया है।

चौ॰– जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुं बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

शब्दार्थ – देवन्ह=देवताओं ने। जानैं कहुं=जानने के लिए, परीक्षा लेने के लिए। बिसेषा=विशेष, असामान्य, असाधारण। अहिन्ह=सर्पों की। पठइन्हि=भेजा। तेहिं=उनसे, हनुमान जी से।

व्याख्या – जब देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान को सीताजी की खोज में जाते हुए देखा, तब उनके विशेष बल और विवेक की जानकारी हेतु उन्होंने नाग-माता सुरसा को भेजा। उसने हनुमान के निकट आकर एक बात कही।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. देवता हनुमान के पराक्रम से परिचित थे। वे जानते थे कि हनुमान ने बाल्यकाल में ही सूर्य को ग्रस लिया था और इन्द्र के वज्र का भी उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, फिर भी वे उनकी बल-बुद्धि की परीक्षा क्यों लेना चाहते हैं? कारण यह है कि हनुमान रावण और मेघनाथ जैसे राक्षसों के मध्य जा रहे हैं, जो इन्द्र, सूर्य आदि सभी देवताओं को पराजित कर चुके थे।

2. अध्यात्म रामायण में भी इसी प्रकार देवताओं द्वारा सुरसा द्वारा हनुमान की परीक्षा लेने का उल्लेख मिलता है –

ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता।
इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात्॥ 12 ॥

3. वाल्मीकि रामायण में देवताओं द्वारा परीक्षा-विधि भी बताई गई है। उन्होंने सुरसा से कहा था कि तुम राक्षस के समान भयानक और विशाल रूप बनाओ, जिसमें बड़े-बड़े दांत, पीली-पीली आंखें और आकाश को स्पर्श करने वाला लम्बा चौड़ा मुख हो –

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम्।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम्॥ 146 ॥
बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम्।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति॥ 147 ॥

3. सुरसा – सुरसा विनता की पुत्री थीं और सहस्रों सर्पों की माता थीं। तुलसीदास के अनुसार कद्रू और विनता कश्यप की पत्नियां थीं।

4. हनुमान की परीक्षा के लिए स्त्री को ही क्यों भेजा गया? इसका कारण यह है कि स्त्री अवध्य होती है। बालि ने भी लक्ष्मण का क्रोध शान्त करने के लिए अपनी पत्नी तारा को भेजा था। इसके अतिरिक्त सुरसा नाग-माता है। नागों का आहार पवन होता है। हनुमान भी पवनपुत्र हैं। सुरसा अत्यधिक बलवान एवं मायाविनी भी थी।

चौ॰– आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥

शब्दार्थ – सुरन्ह=देवताओं ने। अहारा=आहार, भोजन। फिरि=वापस, बाद में। सुधि=समाचार।

व्याख्या – देवताओं द्वारा निर्दिष्ट सुरसा हनुमान के निकट पहुंची और उनसे कहा कि आज मुझे देवताओं ने भोजन दिया है। उसके इस कथन को सुनकर हनुमान ने कहा कि मैं श्रीराम का कार्य करके वापस लौट आऊं और सीता का समाचार अपने प्रभु श्रीराम को सुना दूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'अहारा' शब्द में यह व्यंजना है कि सुरसा राक्षसी बनकर आई है, क्योंकि राक्षस-राक्षसी ही मनुष्यों और पशुओं का भोजन करते हैं –

कहुं महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥

चौ॰– तब तव बदन पैठिहउं आई। सत्य कहउं मोहि जान दे माई॥
कवनेहुं जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

शब्दार्थ – बदन=मुख। जतन=यत्न, प्रकार, उपाय। ग्रससि=खा ले।

व्याख्या – हनुमान जी ने कहा कि सीताजी का समाचार श्रीराम तक पहुंचा देने के पश्चात् मैं स्वतः तुम्हारे मुख में प्रवेश कर जाऊंगा। मैं सत्य वचन कह रहा हूं, हे माई! मुझे जाने दे।

किन्तु जब किसी उपाय से उसने हनुमान को नहीं जाने दिया, तब वह क्रोध में आ गए और कहा कि तो फिर तू मुझे खा क्यों नहीं लेती? अर्थात् मैं देखूंगा कि तू मुझे कैसे खा लेती है?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'मोहि जान दे माई' में करुणा की व्यंजना है और 'ग्रससि न' में क्रोध की।

2. यहां 'न' शब्द श्लेषार्थक है। यह निषेधवाचक भी है और निश्चयवाचक भी।

चौ॰– जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥

शब्दार्थ – जोजन (सं॰ योजन)=एक योजन, चार कोस अर्थात् बारह किलोमीटर। बदनु=मुख। पसारा=फैलाया, फाड़ा। तनु=शरीर। बिस्तारा=बढ़ा दिया। तेहिं=उसने। ठयऊ=किया, फैला दिया। बत्तिस=बत्तीस योजन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – सुरसा ने हनुमान का भक्षण करने के लिए अपना मुख एक योजन तक बढ़ा दिया। किन्तु हनुमान ने तत्काल अपना शरीर दोगुना अर्थात् दो योजन का कर लिया। तब सुरसा ने अपना मुख सोलह योजन का कर लिया। हनुमान जी तत्काल बत्तीस योजन के हो गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. राक्षस मायावी होते थे। वे अपने शरीर को घटा-बढ़ा सकते थे और कोई भी रूप धारण कर सकते थे। हनुमान को भी आठों सिद्धियां प्राप्त थीं, इसीलिए वे भी रूप-परिवर्तन में सक्षम थे।

2. अतिशयोक्ति अलंकार।

3. अद्भुत रस।

चौ॰– जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

शब्दार्थ – जस जस=जैसे-जैसे, ज्यों-ज्यों। बदनु=मुख। तासु=उससे। दून=दुगने आकार का। कपि=हनुमान। सत=सौ। आनन=मुख।

व्याख्या – इस प्रकार सुरसा जैसे-जैसे अपने मुख को बढ़ाती गई, हनुमान जी अपने शरीर को उसका दोगुना करते गए। जब सुरसा ने अपना मुख सौ योजन तक बढ़ा लिया, तब हनुमान जी ने अत्यन्त लघु रूप धारण कर लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – अध्यात्म रामायण के अनुसार सुरसा ने जब अपना मुख पचास योजन तक फैलाया था, तब हनुमान अंगूठे के बराबर लघु हो गए थे और उसके मुख में घुसकर तत्काल बाहर निकल आए थे –

ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम्।
वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाङ्गुष्ठ सन्निभः॥ 21 ॥
प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः।
प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः॥ 22 ॥

चौ॰– बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

शब्दार्थ – पइठि=प्रवेश कर, घुसकर। ताहि=उसे, सुरसा को। सिरु नावा=प्रणाम किया। सुरन्ह=देवताओं ने। जेहि लागि=जिस कार्य के लिए। पठावा=भेजा था। मरमु=मर्म, रहस्य, भेद।

व्याख्या – हनुमान जी अतिलघु रूप धारण करके सुरसा के मुख में घुस गए और तत्काल बाहर निकल आए। फिर उसको प्रणाम करके विदा मांगी। सुरसा उनकी कुशलता और तत्परता से प्रसन्न हो गई और बोली कि देवताओं ने मुझे जिस कार्य के लिए तुम्हारे पास भेजा था, उसी निमित्त मैंने तुम्हारे पराक्रम और विवेक का मर्म जान लिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां कवि का मंतव्य श्रीराम के कार्य की सफलता हेतु हनुमान की कुशलता और तत्परता को दर्शाना है, उनके चमत्कारपूर्ण और दुष्कर कार्यों का प्रदर्शन नहीं।

दोहा– राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥ 2॥

शब्दार्थ – निधान=कोष, खजाना। आसिष=आशीर्वाद। हरषि=प्रसन्न मन से।

व्याख्या – हनुमान लघु रूप धारण कर सुरसा के मुख में प्रवेश कर पुनः बाहर आ गए। इस प्रकार सुरसा जिस प्रयोजन से आई थी, वह पूर्ण हो गया। अतः उसने आशीर्वाद दिया कि तुम बल और विवेक के आगार हो तथा श्रीराम के सभी कार्य सम्पन्न करोगे।

इस प्रकार आशीर्वाद देकर वह अपने धाम चली गई और हनुमान ने भी हर्षपूर्वक प्रयाण किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – सुरसा के आशीर्वाद से हनुमान प्रसन्न हुए, क्योंकि सुरसा देवी हैं और देवी के वचन असत्य नहीं हो सकते। उनकी प्रसन्नता का एक कारण यह भी हो सकता है कि मार्ग में जो भारी विघ्न उपस्थित हुआ था, वह टल गया।

चौ॰– निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥

शब्दार्थ – निसिचरि=राक्षसी, निशाचरी। सिंधु=सागर, समुद्र। नभ=आकाश। खग=पक्षी। गहई=पकड़ लेती थी। बिलोकि=देखकर।

व्याख्या – समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह अपनी माया के द्वारा आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को पकड़ लेती थी। जो जीव-जन्तु आकाश में उड़ते थे, जल में उनका प्रतिबिम्ब देखकर वह उन्हें पकड़ लेती थी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. निसिचरि – तुलसीदास ने राक्षसी का नाम नहीं लिया है। वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण में उसका नाम सिंहिका बताया गया है। वह हिरण्यकश्यप की पुत्री और विप्रचित्ति दैत्य की पत्नी थी। उसके तेरह पुत्र थे, जिसमें राहु सबसे भयंकर था। सिंहिका इच्छानुसार रूप धारण करने वाली और छायाधारिणी थी -- 'प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी।' (वा॰ रा॰ – 1/184)।

अध्यात्म रामायण के अनुसार –

सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा।
आकाश गामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत्॥ 25 ॥

2. जीव जन्तु – जीव बड़े का और जन्तु छोटे का वाचक है। तात्पर्य यह है कि वह बड़े से बड़े और छोटे से छोटे जीव को पकड़ लेती थी।

3. छन्द – पादाकुलक।

चौ॰– गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥

शब्दार्थ – गहइ=पकड़कर। गगनचर=आकाश में उड़ने वाले पक्षी। सोइ छल=वही युक्ति, माया, छल-कपट। कहँ=के साथ। कपटु=चाल, छलावा। चीन्हा=पहचान लिया।

व्याख्या – सिंहिका आकाशगामी पक्षियों की छाया को पकड़ लेती थी, तब वे उड़ने में असमर्थ हो जाते थे। इस प्रकार वह सदैव पक्षियों का भोजन करती थी। उसने वही छल हनुमान के साथ भी किया, किन्तु हनुमान ने उसके कपट को तत्काल पहचान लिया।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. चीन्हा – हनुमान जी उससे पूर्व परिचित थे। वाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव ने उसका परिचय दिया था –

कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः॥ (1/190)

2. सिंहिका राहु की माता थी। जब पृथ्वी की छाया में चन्द्रमा आ जाता है, तब राहु चन्द्रमा को ग्रसने लगता है और जब सूर्य चन्द्रमा की छाया में पड़ जाता है, तब राहु सूर्य को ग्रसने लगता है। यह विशेष प्रकार की शक्ति केवल राहु और उसकी माता सिंहिका में ही पाई जाती है।

3. वैज्ञानिक दृष्टि से छाया का अर्थ यह है कि उतने स्थान का प्रकाश रुक गया है अथवा प्रकाश नामक एक विशेष पदार्थ की गति में कमी आ गई है। ऐसी स्थिति में किसी सूक्ष्म चुम्बकत्व की सी शक्ति से छाया डालने वाला पिण्ड खिंच जाता है और उसकी गति में रुकावट पड़ जाती है। चन्द्रमा और सूर्य की गति में रुकावट नहीं दिख पड़ती, किन्तु साधारण आकाशगामियों में रुकावट पड़ जाना असंभव नहीं।

हनुमान की गति में ज्यों ही रुकावट पड़ी, त्यों ही उन्होंने उसे पहचान लिया।

चौ॰– ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा । गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥

शब्दार्थ – ताहि=उस राक्षसी को। मारुतसुत=पवनपुत्र, हनुमान। बारिधि=समुद्र। मतिधीरा=धीर बुद्धि वाले, धैर्य तथा विवेक से कार्य करने वाले। चंचरीक=भ्रमर। मधु=मकरंद, फूल का रस, पराग।

व्याख्या – वीर और धीर बुद्धि हनुमान ने उसको मार डाला और समुद्र पार कर गए। समुद्र पार करते ही उन्हें एक सुन्दर वन दिखाई पड़ा, जिसमें पुष्प-रस के लोभ में भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

साहित्यिक सौन्दर्य – ताहि मारि – तुलसीदास ने यह नहीं बताया है कि हनुमान ने सिंहिका का वध कैसे किया? वाल्मीकि के अनुसार पवनपुत्र लघु रूप धारण करके उसके विकराल मुख में घुस गए थे और अपने तीखे नखों से उस राक्षसी के मर्म स्थलों को विदीर्ण कर दिया था, जबकि अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमान जल में कूद पड़े थे और उसे लातों से ही मार डाला था।

चौ॰– नाना तरु फल फूल सुहाए । खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगे । ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे॥

शब्दार्थ – नाना=तरह-तरह के, अनेक प्रकार के। तरु=वृक्ष। सुहाए=सुशोभित। खग=पक्षी। मृग=पशु। बृंद=समूह, झुंड। सैल=पर्वत। धाइ=दौड़ कर।

व्याख्या – उस वन में भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों और फूलों से सुशोभित वृक्ष थे। उसमें विचरण करने वाले पशु-पक्षियों के समूह हनुमान जी को अत्यन्त प्रिय लगे। वन के पश्चात् एक विशाल पर्वत था, जिस पर वह निर्भीक भाव से दौड़ कर चढ़ गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सागर तट पर एक वन था। यह नगर के बाहर था। इसके पश्चात् विशाल पर्वत था। उसी पर्वत पर चढ़ने पर नगर का भीतरी दृश्य दिखाई पड़ता था।

2. 'कवितावली' में भी तुलसी ने रावण के उपवन की शोभा का वर्णन करते हुए उसे 'बसंत को सिंगारु' कहा है तथा उसे देखकर हनुमान के चित्त की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है –

देखे वर वाटिका तड़ाग बाग को बनाव
रागबस भो विरागी पवनकुमार सो।

चौ॰– उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा । कनक कोट कर परम प्रकासा॥

शब्दार्थ – उमा=पार्वती। अधिकाई=प्रभुता, बड़ाई। कालहि=यमराज, मृत्यु का देवता। गिरि=पर्वत। दुर्ग=किला, गढ़। उतंग=ऊंचा। चहुँ पासा (सं॰ पार्श्व)=चारों ओर। कनक कोट=सोने का किला।

व्याख्या – हनुमान जी उस पर्वत पर बिना भय के चढ़ गए थे। संभव है कि उनके निर्भीक भाव से पार्वती को कुछ सन्देह हुआ हो, इसीलिए शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! यह कुछ बन्दर (हनुमान) की बड़ाई नहीं है। यह तो श्रीराम का प्रताप है, जहां काल की भी गति नहीं है अर्थात् वो कालातीत है।

पर्वत पर चढ़कर हनुमान ने लंका नगरी को देखा। उसका विशिष्ट दुर्ग अवर्णनीय था। स्वर्ण निर्मित दुर्ग बहुत ऊंचा था और उसका प्रकाश चतुर्दिक विकीर्ण हो रहा था। किले के चारों ओर समुद्र था। प्रायः किले के चारों तरफ खाई होती है। यहां समुद्र ही खाई का कार्य कर रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'उमा' शब्द में शिव-पार्वती-संवाद की व्यंजना है।

छन्द– कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥ 1॥

शब्दार्थ – कनक=स्वर्ण। कोट=परकोटा। मनि कृत=मणियों से निर्मित। सुंदरायतना (सुंदर + आयतन)=सुंदर भवन। चउहट्ट=चौराहा, चौक। हट्ट=हाट, बाजार। सुबट्ट=राजमार्ग। बीथीं=गली। चारु=सुंदर। पुर=नगर। गज=हाथी। बाजि=घोड़ा। खच्चर=गदहा। निकर=समूह। पदचर=पैदल। बरूथन्हि=समूह। जूथ=समूह, दल, झुंड।

व्याख्या – लंका का स्वर्ण दुर्ग अनेक प्रकार की मणियों से अलंकृत है, जिसमें अनेक भव्य महल हैं। वह नगर सुंदर चौक, बाजार, राजमार्ग एवं गलियों से सुशोभित है। नगर में गज, अश्व, रथ, और पैदल की चतुरंगिणी सेना है। यह सेना इतनी बड़ी है कि उसकी गणना संभव नहीं है। नगर में विभिन्न रूप, रंग और आकार के निशाचर विचरण कर रहे हैं। सेना इतनी अधिक शक्तिशाली है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. लंका नगरी मय दानव के द्वारा निर्मित थी। वह सोने की थी और अद्भुत थी।

2. चाक्षुष बिंब – किले का चित्र साकार हो उठा है।

3. दूसरी पंक्ति में श्रवण ध्वनियों के प्रयोग से श्रवण बिंब प्रस्तुत किया गया है।

4. अलंकार – दूसरी पंक्ति में ध्वन्यार्थ व्यंजना अलंकार है।

छन्द– **बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।**
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥ 2 ॥

शब्दार्थ – सर=तालाब, सरोवर। कूप=कुआं। बापीं=बावलियां। सोहहीं=सुशोभित हैं। माल (सं॰ मल्ल)=पहलवान। सैल=पर्वत। अखारेन्ह=अखाड़ा। भिरहिं=कुश्ती लड़ते हैं, मल्ल युद्ध करते हैं। तर्जहीं=ललकारते हैं, चुनौती देते हैं।

व्याख्या – नगर के भीतर सुंदर वन, बाग, उपवन, पुष्प-वाटिका, तालाब, कुएं एवं बावलियां सुशोभित हैं, जहां पर विचरण करने वाली मनुष्यों, नागों, देवताओं और गन्धर्वों की रूपवती युवतियां मुनियों के भी मन को आकृष्ट करती हैं। कहीं-कहीं पर पर्वत के समान विशाल आकार वाले बलवान मल्ल (पहलवान) गर्जना कर रहे हैं। वे विभिन्न अखाड़ों में एक-दूसरे को ललकारते हुए कुश्ती में भिड़ रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'बन' विशाल होता है, जो प्राकृतिक या नैसर्गिक होता है और जिसमें सिंह, बाघ आदि हिंसक पशु रहते हैं। 'बाग' छोटे होते हैं और मनुष्यों द्वारा लगाए जाते हैं। इसमें सुंदर फल-फूल होते हैं। 'उपबन' एक प्रकार का क्रीड़ावन होता है, जिसमें उसके स्वामी विचरण हेतु जाते हैं। 'वाटिका' अपेक्षाकृत छोटी होती है, जिसमें विशेषत: फूलों के पौधे होते हैं।

2. यहां 'नर, नाग, सुर, गंधर्व' कन्याओं का ही उल्लेख किया गया है, राक्षसियों का उल्लेख नहीं है, क्योंकि वे बहुत सुंदर नहीं होती हैं।

3. अलंकार – तृतीय पंक्ति में पूर्णोपमा अलंकार है।

छन्द– **करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।**
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥ 3 ॥

शब्दार्थ – भट=सैनिक, वीर, पराक्रमी, योद्धा। कोटिन्ह=करोड़ों, असंख्य। बिकट तन=विकराल शरीर, हृष्ट-पुष्ट शरीर। रच्छहीं=पहरा देते हुए रक्षा करते हैं। महिष=भैंसा। मानुष=मनुष्य। धेनु=गाय। खर=गदहा। अज=बकरा। खल=दुष्ट। भच्छहीं=भक्षण करता है। एहि लागि=इसलिए, इस उद्देश्य से। कछु एक=थोड़ी-सी। सर=बाण। गति=मोक्ष। पैहहिं=पाएंगे। सही=निश्चय ही

व्याख्या – विकराल शरीर वाले करोड़ों सैनिक अत्यन्त सावधानी से, चारों ओर से, नगर की रक्षा कर रहे थे। कहीं-कहीं पर दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों का भक्षण कर रहे थे (यहां 'भच्छहीं' शब्द में कच्चा खाने की व्यंजना है)। तुलसीदास कहते हैं, मैंने उनका विवरण संक्षेप में ही इसलिए दे दिया है, क्योंकि ये सभी श्रीराम के बाण-रूपी तीर्थ में शरीर त्याग कर निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. उपर्युक्त तीनों छन्द हरिगीतिका हैं। इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं होती हैं और अन्त में लघु-गुरु (। ऽ) का नियम होता है।

2. अलंकार – तृतीय पंक्ति में काव्यलिंग अलंकार है।
चतुर्थ पंक्ति में सम अभेद रूपक है।

3. भाव के अनुरूप भाषा है – भट कोटिन्ह, रच्छहिं, भच्छहीं।

दोहा– **पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।**
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥ 3 ॥

शब्दार्थ – पइसार (सं॰ पद शरण)=प्रवेश।

व्याख्या – नगर के अत्यधिक रक्षकों को देखकर हनुमानजी ने मन में विचार किया कि मैं अतिलघु रूप धारण करूं और रात्रि में नगर में प्रवेश करूं – यही उचित होगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान जी चाहते थे कि जब तक वे सीताजी का पता न लगा लें और दर्शन न कर लें, तब तक उन्हें कोई देख न सके अन्यथा वह जिस प्रयोजन से आए हैं वह चरितार्थ नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने रात्रि में और अत्यंत लघु आकार में नगर में प्रवेश करना उचित समझा।

चौ॰– **मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥**
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥

शब्दार्थ – मसक=मच्छर, भुनगा। सुमिरि=स्मरण करके, ध्यान करके। नरहरी=नृसिंह, नर रूप धारण कर लीला करने वाले भगवान्। निसिचरी=राक्षसी। चलेसि=जा रहा है। निंदरी=निरादर, उपेक्षा, तिरस्कार, अवमानना।

व्याख्या – हनुमान जी ने मच्छर के समान अर्थात् अति लघु रूप धारण किया और श्री नृसिंह भगवान् का स्मरण करके लंका की ओर प्रयाण किया। लंका के द्वार पर लंकिनी नामक एक राक्षसी थी जो नगर की रक्षा के लिए नियुक्त थी। उसने हनुमान को देख लिया और कहा कि तू मेरी उपेक्षा करके कहां जा रहा है?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मसक समान – 'समान' शब्द में व्यंजना यह है कि हनुमान जी मच्छर सदृश हो गए, मच्छर नहीं बन गए; रहे वानर ही। तात्पर्य यह है कि उन्होंने अतिलघु रूप धारण कर लिया।

यहां एक संदेह उठता है कि हनुमान जी लघु रूप हो गए तब श्रीराम द्वारा प्रदत्त मुद्रिका का क्या हुआ? इसका समाधान यही है कि श्रीराम के प्रताप से अंगूठी भी छोटी हो गई थी। 'गीतावली' के अनुसार मुद्रिका ने सीता जी से बात भी की थी। उन्हें सान्त्वना दी थी –

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

किये सीय प्रबोध मुदरी दियो कपिहि लखाउ। (गी॰ – 5/4)

वाल्मीकि के अनुसार हनुमान बिल्ली के बराबर हो गए थे –

वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः। (2/49)

अध्यात्म रामायण में सूक्ष्म बानर-रूप धारण करने का उल्लेख है –

धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान्। (5/1/42)

2. नरहरि – विष्णु भगवान ने नृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध किया था। कुछ टीकाकारों ने 'नरहरि' का अर्थ किया है – नरों में सिंह अर्थात् श्रीराम।

3. प्रायः सभी प्राणी जल, थल अथवा आकाश में रहते हैं। हनुमान के मार्ग में तीन स्त्रियों ने बाधा डाली। उनमें सुरसा नभचर थी, सिंहिका जलचर थी और लंकिनी का पृथ्वी पर वास था। तात्पर्य यह है कि हनुमान जी नभ, जल और थल की निवासिनी तीन स्त्रियों को जीत कर ही लंका में प्रवेश कर सके।

चौ॰– जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

शब्दार्थ – सठ=शठ, दुष्ट, मूर्ख। मरमु=मर्म, रहस्य, भेद, शक्ति। मोरा=मेरा। अहार=आहार, भोजन। जहाँ लगि=जितने भी। मुठिका=मुष्टिका, मुट्ठी, घूसा। महा कपि=हनुमान। हनी=मारी। बमत=वमन करती हुई, उगलती हुई, उल्टी करती हुई। धरनीं=पृथ्वी पर। ढनमनी=लुढ़क गयी।

व्याख्या – लंकिनी ने हनुमान से कहा, तू मेरा मर्म नहीं जानता? मैं नगर-द्वार की रक्षिका हूं और चोरों (अवैध प्रवेश करने वालों) को पकड़ कर उन्हें खा जाती हूं।

उसके इस कथन को सुनकर हनुमान ने एक मुष्टिका (घूंसा) मारी। फलस्वरूप वह मुख से रक्त उगलती हुई पृथ्वी पर लुढ़क गई।

साहित्यिक सौन्दर्य – लंकिनी द्वारा राक्षसी के वेश में आकर हनुमान के प्रयोजन में रूकावट डालने की परिकल्पना वाल्मीकि रामायण से शुरू होकर अध्यात्म रामायण से होते हुए तुलसीकृत रामचरितमानस तक पहुंची है।

चौ॰– पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥

शब्दार्थ – पुनि=कुछ क्षणों बाद ही। संभारि=चेतन होकर, अपने को संभाल कर, होश में आकर। पानि=हाथ। ससंका=भयभीत होकर, प्राण जाने के भय से। बिरंचि=ब्रह्मा, विधाता, सृष्टि के रचयिता। चीन्हा=चिन्ह, निशान, राक्षसों के विनाश की पहचान।

व्याख्या – वह निशाचरी शीघ्र ही संभल कर खड़ी हो गई और सशंक भाव से कि कहीं हनुमान पुनः मुक्का न मार दें, वह हाथ जोड़कर बोली कि जब ब्रह्मा जी ने रावण को वरदान दिया था, तब चलते समय उन्होंने राक्षसों के संहार का एक चिन्ह (पहचान) बताया था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'ब्रह्म' और 'बिरंचि' में पुनरुक्ति दोष है।

चौ॰– बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

शब्दार्थ – तात=पूज्य। बहूता=बहुत अधिक। राम कर दूता=राम का दूत।

व्याख्या – ब्रह्माजी ने कहा था कि जब तू एक बन्दर के प्रहार से व्यथित होगी तब समझ लेना कि निशाचरों का संहार होने वाला है। हे तात! आज मेरा बहुत बड़ा पुण्य उदय हुआ है कि मैंने अपने नेत्रों से श्रीराम के दूत का दर्शन किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'अग्निपुराण' के अनुसार ब्रह्माजी ने रावण को वरदान दिया था कि वह लंका में पांच करोड़ वर्ष राज्य करेगा। ब्रह्मा के वरदान देने पर लंकिनी ने उनसे प्रार्थना की थी कि दुष्टों के साथ से मेरी निष्कृति कब होगी? क्या कभी यहां धर्मात्मा का राज्य होगा अथवा नहीं? इसी पर उन्होंने मुझे यह निशानी बतायी थी कि – 'बिकल होसि ......।'

अध्यात्म रामायण के अनुसार ब्रह्माजी ने लंकिनी से कहा था कि एक वानर रात्रि में तेरे पास आएगा और तुझसे तिरस्कृत होने पर एक मुष्टिका मारेगा, जिससे तू विकल हो जाएगी। उसी समय रावण का अन्त होगा। (सुन्दरकाण्ड – 1/52-53)

दोहा– तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ 4॥

शब्दार्थ – अपबर्ग=मोक्ष, आवागमन के चक्र से मुक्ति। तुला=तराजू। एक अंग=एक पलड़ा। तूल=तुल्य, बराबर। सकल=सब। लव=क्षण मात्र।

व्याख्या – लंकिनी ने पुनः कहा कि स्वर्ग और मोक्ष के समस्त सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखिए और क्षण मात्र के सत्संग-जनित सुख को दूसरे पलड़े में रखिए तो स्वर्ग-अपवर्ग के समस्त सुख मिलकर भी सत्संगजन्य सुख की समानता नहीं कर सकेंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक स्थानों पर सन्तों और सत्संग की महिमा का उल्लेख किया है। यहां पर भी वह सत्संग का महत्व बता रहे हैं।

चौ॰– प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

शब्दार्थ – प्रबिसि=प्रवेश कर। काजा=राम के सब काम। कोसलपुर राजा=कौसल देश के अधिपति, राम। गरल=विष। सुधा=अमृत। रिपु=शत्रु। मिताई=मित्रता। गोपद=गाय के खुर। सिंधु=सागर। अनल=अग्नि। सितलाई=शीतलता। रेनु=बालू का कण। चितवा=देखा।

व्याख्या – लंकिनी ने हनुमान से कहा कि अब कौशलपुर के राजा रामचंद्र को हृदय में धारण कर लंका नगरी में समस्त कार्य सम्पादित कीजिए। सभी कार्यों का तात्पर्य है– सीता-दर्शन, अशोक वन को उखाड़ना, दुष्ट-दलन आदि। श्रीराम का जिन पर अनुग्रह हो जाता है, उनके लिए विष अमृत तुल्य हो जाता है, शत्रु मित्रता का व्यवहार करने लगता है, सागर गऊ के खुर के समान जलवत् हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है और विशालकाय सुमेरु पर्वत बालू के कण के समान लघु हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि श्रीराम के अनुग्रह से असंभव भी संभव हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गरुड़ – मानस में तीन प्रमुख संवाद हैं – शिव-पार्वती, काग-गरुड़ तथा याज्ञवल्क्य-भरद्वाज। गोस्वामी जी ने यथास्थान तीनों का उपयोग किया है। यहां

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

काग गरुड को संबोधित कर रहा है। जहां नीति-कथन होता है वहां प्रायः कागभुशुण्डि को माध्यम बनाया गया है।

2. अलंकार – गरल का सुधा होना, रिपु का मित्रता करना आदि में 'अयुक्त' अलंकार है। जहां अशुभ में भी शुभ हो जाता है, वहां अयुक्त अलंकार होता है।

3. पूर्व में अवरोधक बनी लंकिनी अब हनुमान के लिए प्रेरक बन गई है।

चौ॰– अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

शब्दार्थ – पैठा=प्रवेश किया। मंदिर=मकान। सोधा=खोजा। जोधा=योद्धा, सैनिक।

व्याख्या – लंकिनी के कथन के अनुसार हनुमान ने पुनः अत्यंत लघु रूप धारण कर लिया (लंकिनी पर प्रहार करते समय वह विशालकाय हो गए थे) और श्रीराम का स्मरण करके नगर में प्रवेश कर गए। वहां जाकर उन्होंने एक-एक करके सभी मकानों में सीता जी को खोजा। उस समय उन्हें यत्र-तत्र असंख्य योद्धा दिखाई पड़े।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर प्रश्न उठ सकता है कि जब सम्पाती ने यह बता दिया था कि सीता जी अशोक वाटिका में हैं, तब हनुमान को प्रत्येक घर में सीता को खोजने की क्या आवश्यकता थी? इसका समाधान दो प्रकार से किया गया है – प्रथम, हनुमान ने सोचा होगा कि सीता जी दिन में अशोक वाटिका में थीं, रात्रि में रावण के किसी महल में होंगी। दूसरे, उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि अशोक वाटिका कहां है? प्राचीन काल में दो प्रकार की वाटिकाएं अथवा उपवन होते थे – 1. महल के अन्दर तथा 2. नगर में।

चौ॰– गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

शब्दार्थ – बैदेही=विदेह पुत्री सीता। एक=अद्वितीय।

व्याख्या – लंका में अनेक भवनों में सीता की खोज करने के पश्चात् हनुमान जी रावण के महल में गए। वह महल इतना विशाल और वैभव-संपन्न था कि उसका वर्णन करना संभव नहीं। हनुमान ने शयनकक्ष में रावण को सोते हुए देखा, किन्तु कहीं भी सीता नहीं दिखाई पड़ीं। तत्पश्चात् उन्होंने एक अद्वितीय सुन्दर भवन देखा, जिसमें पृथक् रूप से भगवान् का एक मंदिर भी बना हुआ था।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि रामायण में रावण के महल के वैभव का अत्यंत विस्तार से (चतुर्थ सर्ग से एकादश सर्ग तक) वर्णन किया गया है; किन्तु तुलसीदास ने अत्यंत संक्षेप में, केवल दो पंक्तियों में उसका उल्लेख कर दिया है।

दोहा– रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥ 5 ॥

शब्दार्थ – रामायुध=राम के शस्त्र अर्थात् धनुष और बाण। तुलसिका=तुलसी के पौधे।

व्याख्या – उपर्युक्त भवन में श्रीराम के आयुध धनुष और बाण अंकित थे। उस महल का भी सौंदर्य अवर्णनीय था। उसके अन्दर नवीन हरे-भरे तुलसी के पौधों को देखकर हनुमान अत्यंत प्रसन्न हुए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. उक्त भवन विभीषण का था। वह लंका के अन्य भवनों से भिन्न था। अन्य भवनों का सौंदर्य तामसी और राजसी था, जबकि इसकी शोभा सात्विक ही थी; क्योंकि इसमें भगवान् का एक मंदिर था और तुलसी के पौधे भी थे। तुलसी का पौधा बहुत पवित्र माना जाता है। उसके पत्ते पूजा के समय भगवान् को भी अर्पित किए जाते हैं।

2. यहां विशेष द्रष्टव्य तथ्य यह है कि वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण में हनुमान-विभीषण-मिलन का कोई उल्लेख नहीं है। अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमान को सीता का पता लंकिनी ने ही बताया था (दे॰ – सर्ग एक, श्लोक संख्या – 54-56)। मानस के अनुसार हनुमान को सीता और अशोक वाटिका की सूचना विभीषण द्वारा प्राप्त हुई। संभवतः हनुमान-विभीषण के माध्यम से कवि का उद्देश्य विभीषण की भक्ति-भावना का परिचय देना रहा हो।

चौ॰– लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥

शब्दार्थ – निसिचर=राक्षस, निशाचर। निकर=समूह। तरक=तर्क, विचार। बासा=निवास।

व्याख्या – रामायुध-अंकित गृह को देखकर हनुमान ने सोचा कि लंका में राक्षसों का समूह रहता है, यहां सन्त का निवास कैसे हो सकता है? यह विचार आते ही उनके मन में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क होने लगे। उनके मन में आया होगा कि जिस नगरी में धार्मिक अनुष्ठान संभव नहीं है, वहां उपासना के चिन्ह कैसे विद्यमान हैं? संभवतः उनके मन में यह संशय भी उत्पन्न हुआ होगा कि कहीं यह लंकिनी द्वारा सृजित माया तो नहीं है? वह इसी प्रकार के तर्क-वितर्क में उलझे थे कि उसी समय विभीषण जग गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. हनुमान रात्रि प्रारम्भ होने पर नगर में प्रविष्ट हुए थे। रावण आदि के भवनों में सीता की खोज करते हुए रात्रि के तीन प्रहर बीत चुके थे। चौथा प्रहर लगते ही विभीषण जग गए होंगे।

2. तृतीय चरण में संचारी भाव है।

3. अलंकार – प्रथम पंक्ति में अयुक्त अलंकार है।

चौ॰– राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

शब्दार्थ – सुमिरन=स्मरण, नाम उच्चारण, जप। चीन्हा=पहचान लिया, समझ लिया। एहि सन=इनके साथ। हठि=हठपूर्वक।

व्याख्या – जागते ही विभीषण ने श्रीराम-नाम का स्मरण (उच्चारण) किया, जिसे सुनकर हनुमान समझ गए कि यह तो कोई सन्त और धर्मात्मा पुरुष हैं। अतः उन्होंने निश्चय किया कि इनसे मैं हठपूर्वक जान-पहचान करूंगा, क्योंकि सन्त पुरुष से परिचय करने पर कार्य में किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 'एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी' – यहां तात्पर्य यह है कि विभीषण के भवन के निकट ही रावण का भी महल था और अनेक सशस्त्र राक्षस पहरा दे रहे थे और प्रभात भी होने वाला था। अतः विभीषण से परिचय करने में अनेक बाधाएं थीं। फिर भी उन्होंने विभीषण से भेंट करने का संकल्प कर लिया।

चौ॰– **बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥**
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

शब्दार्थ – बिप्र=ब्राह्मण। तहँ=वहां, हनुमान के निकट। बुझाई=समझा कर, विस्तार से।

व्याख्या – अभी तक हनुमान अतिलघु रूप में थे। विभीषण से मिलने के लिए उन्होंने ब्राह्मण वेश धारण कर लिया और कुछ कहा। उन्होंने क्या कहा, तुलसीदास ने यह स्पष्ट नहीं किया है। संभवतः उन्होंने भी राम-नाम का उच्चारण किया होगा अथवा उन्होंने यह कहा होगा कि हम ब्राह्मण हैं और आप से मिलना चाहते हैं, जिसे सुनकर विभीषण वहां आ गए। वहां आकर उन्होंने हनुमान को प्रणाम किया (क्योंकि वे ब्राह्मण वेश में थे) और उनका कुशल समाचार पूछा। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि हे विप्र महाराज! आप अपना पूर्ण परिचय दीजिए अर्थात् आप कौन हैं? आपका यहां प्रवेश कैसे संभव हुआ? तथा आपके आने का प्रयोजन क्या है? यहां तात्पर्य यह है कि विभीषण समझ गए कि हनुमान जिस रूप में दिखाई पड़ रहे हैं, वह वास्तविक नहीं है।

साहित्यिक सौन्दर्य – सीता-अन्वेषण में हनुमान की विभीषण द्वारा सहायता की परिकल्पना तुलसी की मौलिक उद्भावना है।

चौ॰– **की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई । मोरें हृदय प्रीति अति होई॥**
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी॥

शब्दार्थ – की=क्या। मोरें=मेरे। प्रीति=स्नेह, प्रेम। दीन अनुरागी=दीन-दुखियों से प्रेम करने वाले, उनका दुख दूर करने वाले। आयहु=आए हैं, दर्शन दिए हैं।

व्याख्या – विभीषण ने पुनः कहा कि आप या तो नारद सदृश कोई उच्चकोटि के भगवत् भक्त हैं; क्योंकि आपके प्रति मेरे हृदय में प्रबल प्रीति का उद्रेक हो रहा है, अथवा आप दीनवत्सल (भक्तों पर अनुग्रह करने वाले) श्रीराम ही तो नहीं हैं, जो मुझे परम सौभाग्य प्रदान करने के निमित्त स्वयं पधारे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – संदेह अलंकार।

दोहा– **तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।**
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥ 6 ॥

शब्दार्थ – निज नाम=अपना नाम, परिचय। जुगल=दोनों के, हनुमान तथा विभीषण के। गुन ग्राम=गुणों का समूह।

व्याख्या – तब हनुमान ने श्रीराम का पूरा वृत्तांत सुनाया और अपना नाम भी बताया। यहां राम-कथा से तात्पर्य है कि उन्होंने श्रीराम के वनगमन, सीता-हरण, सुग्रीव से मैत्री तथा वानरों द्वारा सीता को खोजने की कथा कही होगी; इसी संदर्भ में उन्होंने अपना परिचय दिया होगा और लंका में प्रवेश का प्रयोजन भी बताया होगा।

हनुमान द्वारा उक्त कथा को सुनकर दोनों के शरीर रोमांचित हो गए और श्रीराम के गुणों का स्मरण करते हुए उनके मन भी आनन्दमग्न हो गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर तुलसी जी ने विभीषण-प्रसंग को राम-भक्ति से जोड़ दिया है।

चौ॰– **सुनहु पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥**
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

शब्दार्थ – रहनि=जीवन-पद्धति, रहन-सहन का ढंग। दसनन्हि=दांत। भानुकुल नाथा=सूर्यवंश के अधिपति श्रीराम।

व्याख्या – हनुमान का परिचय प्राप्त करने और उनके लंका-आगमन के प्रयोजन को जान लेने के पश्चात् विभीषन ने कहा कि हे पवनपुत्र! लंका में मेरा निवास उसी प्रकार कष्टमय है, जैसे बत्तीस दांतों के मध्य बेचारी जीभ रहती है। जैसे जरा सी भी असावधानी से जिह्वा दांतों द्वारा कट सकती है, वैसे ही किसी भी भूल से वह रावण का कोप भाजन बन सकता है। हे तात! मुझे असहाय समझ कर क्या कभी सूर्यवंश के स्वामी श्रीराम मुझ पर अनुग्रह करेंगे?

साहित्यिक सौन्दर्य – प्रथम पंक्ति में उदाहरण अलंकार है।

चौ॰– **तामस तनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥**
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

शब्दार्थ – तामस=तमो गुण प्रधान अर्थात् राक्षस। तनु=शरीर। साधन=सत्कर्म। पद सरोज=चरण-कमल। भरोस=भरोसा, आश्वासन।

व्याख्या – तामसी वृत्ति का मेरा शरीर है (राक्षस तमो गुण प्रधान होते हैं)। मैंने कोई सत्कर्म भी नहीं किया है, मेरे अन्तस् में श्रीराम के चरण-कमलों के प्रति प्रेमभक्ति भी नहीं है अर्थात् भगवत्-कृपा के तीनों साधनों – ज्ञान, कर्म और उपासना – का मुझमें अभाव है। किन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि प्रभु का अनुग्रह होगा; क्योंकि भगवत्-अनुग्रह के बिना सन्त-दर्शन नहीं होता।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. कहा गया है कि सन्त और गुरु ही भक्त को भगवान् का साक्षात्कार कराने का माध्यम होते हैं –

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।

2. **अलंकार** – यहां सार अलंकार है।

चौ॰– **जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥**
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥

शब्दार्थ – अनुग्रह=कृपा। दरसु=दर्शन। हठि=हठपूर्वक। रीती=स्वभाव, आचरण।

व्याख्या – विभीषण कह रहे हैं कि मुझ पर श्रीराम का अनुग्रह हो गया है। उसी के फलस्वरूप आपने मुझे हठपूर्वक अर्थात् सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं की उपेक्षा करते हुए दर्शन दिया है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विभीषण के इन विनम्र वचनों को सुनकर हनुमान ने कहा कि अब आप प्रभु का स्वभाव सुनिए। वे सेवक के प्रति सदैव एकरस प्रीति रखते हैं अर्थात् एक क्षण के लिए भी वह अपने भक्त के प्रति उदासीन नहीं होते।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान द्वारा विभीषण को श्रीराम के स्वभाव के बारे में बताने का मुख्य प्रयोजन उन्हें श्रीराम की शरण में जाने के लिए प्रेरित करना है।

चौ॰– कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

शब्दार्थ – कवन=कौन सा। कुलीना=उच्च जाति या वंश का। बिधि हीना=सभ्यता, संस्कृति, उच्च आचार से विहीन। अहारा=भोजन।

व्याख्या – विभीषण ने कहा था कि मैं तामसी वृत्ति का हूं। इसके उत्तर में हनुमान ने कहा कि बताओ! मैं कहां का परम कुलीन हूं? यदि आपने कोई सत्कर्म नहीं किया है तो मैं भी सब प्रकार के सत्कर्मों से रहित चंचल स्वभाव का बंदर हूं। लोक विश्वास है कि जो कोई प्रातःकाल बन्दरों का नाम ले लेता है, उस दिन उसे भोजन ही नहीं मिलता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. हनुमान ने अपना परिचय देते हुए एकवचन 'मैं' का प्रयोग किया था। यहां 'हमारा' शब्द बहुवचन है, जो जातिसूचक है व्यक्तिसूचक नहीं।

2. यहां कार्पण्यशरणागति का उल्लेख है।

3. वैदिक भक्ति में शूद्रों और स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं था, किन्तु मध्यकालीन भक्ति का द्वार सभी के लिए खुल गया था। वहां जाति, लिंग आदि के भेदभाव बिना सभी लोग भक्ति के अधिकारी थे। जब शबरी ने स्वयं को अधम जाति का बताया था, तब स्वयं श्रीराम ने कहा था कि वह किसी के कुल को नहीं देखते; वे तो केवल भक्ति का ही नाता मानते हैं।

दोहा– अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ 7 ॥

शब्दार्थ – अधम=नीच, पापी। गुन=भगवान् की उदारता, भक्तवत्सलता, दया आदि गुण। बिलोचन=नेत्रों में। नीर=प्रेम, कृतज्ञता के आंसू।

व्याख्या – हनुमान जी ने कहा कि हे सखा! मैं ऐसे अकुलीन वानर जाति में उत्पन्न हुआ, फिर भी श्रीराम ने मुझ पर अनुग्रह किया।

इस प्रकार श्रीराम की सदाशयता और उदारता का स्मरण करते हो उनके नेत्र प्रेमाश्रुपूरित हो गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान-विभीषण-मैत्री के प्रसंग द्वारा कवि का मुख्य प्रयोजन राम-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। विभीषण द्वारा सीता-अन्वेषण में हनुमान की सहायता गौण विषय है।

चौ॰– जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

शब्दार्थ – जानतहूँ=भगवान की दया, उदारता, भक्त-वत्सलता आदि गुणों को जानते हुए भी। बिसारी=विस्मृत करना, भुलाना। काहे न=क्यों नहीं। गुन ग्रामा=गुणों का समूह। अनिर्बाच्य=अवर्णनीय। बिश्रामा=शान्ति।

व्याख्या – गोस्वामी जी कहते हैं कि प्रभु श्रीराम की उपर्युक्त उदारता और भक्त-वत्सलता को जानते हुए भी जो लोग उनको विस्मृत करके भटकते रहते हैं, वे दुखी क्यों न हों? इस प्रकार श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए विभीषण और हनुमान दोनों को अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव हुआ।

चौ॰– पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥

शब्दार्थ – पुनि=राम के गुणों की चर्चा करने के बाद। कथा=जानकी संबंधी सारी बातें। जनकसुता=राजा जनक की बेटी सीता। भ्राता=भाई।

व्याख्या – हनुमान सीता जी का समाचार जानना चाहते हैं, इसलिए विभीषण ने रावण द्वारा सीता-हरण का पूरा विवरण देते हुए यह भी बताया कि जनकनंदिनी सीता किस प्रकार अशोक वाटिका में अपने कष्टमय दिन बिता रही हैं। सीता जी की विपत्ति को सुनकर हनुमान ने कहा कि हे भाई! मैं माता जानकी के दर्शन करना चाहता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां 'जनकसुता' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, इसलिए परिकरांकुर अलंकार है।

2. 'तहँ रही' में यह व्यंजना है कि जब से सीताजी लंका में लाई गई हैं, केवल अशोक वाटिका में ही रह रही हैं।

चौ॰– जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

शब्दार्थ – जुगुति=युक्ति, उपाय। सकल=सब। सोइ=वही, पहले जैसा (मच्छर का)। तहवाँ=वहां। बन=वाटिका। जहवाँ=जहां।

व्याख्या – जब विभीषण ने वे सारी युक्तियां बताईं जिनके द्वारा सीताजी तक पहुंचा जा सकता था। उसे सुनकर हनुमान विभीषण से विदा मांगकर तत्काल चल पड़े। मार्ग में उन्होंने पुनः 'मसक समान' रूप धारण कर लिया और अशोक वाटिका के उस स्थल तक पहुंच गए, जहां सीताजी रहती थीं।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण ने यह बताया होगा कि अशोक वाटिका तक पहुंचना अत्यंत दुष्कर है, क्योंकि वहां राक्षसों का कड़ा पहरा है और सीताजी को भी राक्षसियों ने घेर रखा है। यही नहीं, अशोक वाटिका ऐसी युक्ति से बनाई गई है कि वहां तक पहुंचना बहुत कठिन है।

चौ॰– देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – निसि=रात्रि। जामा (सं॰ याम)=प्रहर। कृस तनु=दुर्बल शरीर। श्रेनी=समूह।

व्याख्या – सीताजी को देखकर हनुमान जी ने मन ही मन उनको प्रणाम किया। उन्होंने यह भी देखा कि सीताजी सारी रात बैठी ही रहती हैं। उनका शरीर दुर्बल हो गया है। सिर पर बालों की केवल एक चोटी है और वह निरंतर श्रीराम-नाम का जाप कर रही हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान रात्रि के चौथे प्रहर में अशोक वाटिका पहुंचे थे। वह समय प्रायः शयन का होता है, किन्तु चिन्ता में डूबी हुई सीताजी बैठी ही थीं।

स्त्रियों में सिर के केशों की प्रायः तीन चोटियां बनाकर गूंथी जाने की रीति है, किन्तु राम के वियोग के कारण सीताजी ने सभी प्रकार का शृंगार करना बन्द कर दिया था। इसीलिए तीनों चोटियां मिलकर एक लट बन गई थी।

'गीतावली' में सीता जी की विरह दशा का निम्नलिखित ढंग से वर्णन किया गया है –

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित लगी उड़ि उड़ि धूलि।
मनहुँ मनसिज मोहिनी मनि गयो भोरे भूलि॥
रटति निसि बासर निरंतर राम राजिवनयन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बयन॥

दोहा– निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥ 8 ॥

शब्दार्थ – पद=चरण। भा=हुए। दीन=दुखी, शोकार्त।

व्याख्या – हनुमान ने देखा कि सीताजी अपने नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं अर्थात् उनका मुख नीचे की ओर है और उनका मन श्रीराम के चरणों में निमग्न है। ऐसी विपन्न स्थिति में सीताजी को देखकर हनुमान जी बहुत दुःखी हुए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि ने सीताजी की दयनीय दशा का विस्तृत वर्णन किया है (दे॰ – सर्ग 15 और 16), किन्तु तुलसीदास जी ने केवल एक पंक्ति में ही उनकी वियोग-दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

2. **अलंकार** – द्वितीय पंक्ति में उल्लास अलंकार है।

चौ॰– तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥

शब्दार्थ – पल्लव=पत्ता। लुकाई=छिप गया। का=क्या। तहँ=वहां (अशोक वाटिका में)। बनावा=शृंगार।

व्याख्या – हनुमान जी वृक्ष के पत्तों के पीछे छिप गए और विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूं अर्थात् सीताजी से संवाद कैसे स्थापित करूं? उसी समय वहां रावण आया। उसके साथ नाना प्रकार का शृंगार किए हुए अनेक स्त्रियां थीं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. अध्यात्म रामायण में रावण को स्त्रियों के सहित आते देखकर हनुमान जी का पत्तों में छिपना कहा गया है और तुलसीदास ने उनके छिपने के पश्चात् रावण का आगमन बताया है।

2. 'करइ बिचार करौं का भाई' में अनेक भावों की व्यंजना है – (क) हनुमान जी सोचते हैं कि सीताजी सिर नीचे किए हुए हैं, ध्यानमग्न हैं, अनेक राक्षसियां पहरा दे रही हैं – अतः क्या किया जाए? कैसे वार्ता की जाए? वाल्मीकि के अनुसार हनुमान यह निश्चय नहीं कर पा रहे हैं कि सीताजी से किस भाषा में बात की जाए? वह सोचते हैं कि यदि मैं संस्कृत भाषा बोलूंगा तो सीताजी मुझे रावण समझकर भयभीत हो जाएंगी (रावण संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था), इसलिए मुझे अयोध्या के आसपास की जन-भाषा में बोलना उचित होगा (दे॰ – सर्ग 30, श्लोक संख्या 18-19)।

(ख) उनके मन में यह भी चिन्ता उत्पन्न हुई होगी कि मुझे वानर रूप में देखकर और मानवोचित भाषा सुनकर वह निश्चय ही भयभीत हो जाएंगी और चिल्लाने लगेंगी। तब उनके रक्षक (राक्षस-राक्षसियां) आ जाएंगे और मेरे कार्य में बाधा आ जाएगी।

3. 'संग नारि बहु किएँ बनावा' – रावण सीताजी से मिलने के लिए अकेले नहीं गया, साथ में अपनी अनेक पत्नियों को भी ले गया – इसका क्या कारण है, इस पर विद्वानों के अनेक मत हैं। रावण की देव, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागवंश की अनेक सुन्दर पत्नियां थीं, जिनको वह अपने बाहुबल से जीतकर लाया था। सभी स्त्रियां अनुपम शृंगार से मण्डित थीं। उनके माध्यम से वह अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करके सीता को आकृष्ट करना चाहता था।

इसका दूसरा तात्पर्य यह बताया गया है कि रावण काम-भाव से सीता के पास नहीं गया था। वह मन में सीता को अपनी आराध्या समझता था। इसीलिए वह कभी एकांत में सीताजी से मिलने नहीं गया।

4. अध्यात्म रामायण के अनुसार रावण को सदा यह चिन्ता लगी रहती थी कि श्रीराम शीघ्रातिशीघ्र उसका वध कैसे करें, जिससे वह मुक्त हो जाए। निरंतर राम का ध्यान करने से रात्रि में उसने स्वप्न में देखा कि राम का संदेश लेकर एक वानर आया है और अशोक वाटिका में एक वृक्ष पर बैठा है, उसने विचार किया कि शायद यह स्वप्न सच हो – यही सोचकर वह तत्काल अशोक वन की ओर चल पड़ा।

चौ॰– बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

शब्दार्थ – खल=दुष्ट रावण। साम=मधुर वचन। दान=प्रलोभन। भेद=द्वेष उत्पन्न करना। सुमुखि=सुन्दर मुख वाली। सयानी=चतुर। अनुचरीं=दासियां। पन=प्रण, प्रतिज्ञा। बिलोकु=देखो।

व्याख्या – दुष्ट रावण ने सीताजी को अनेक प्रकार से समझाकर अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया। राजा किसी को अपने अनुकूल बनाने के लिए साम, दान, भय, और भेद – इन चार नीतियों का आश्रय लेते थे। रावण ने भी चारों नीतियों का सहारा लिया। उसने पहले मधुर वचनों में प्रेम-प्रदर्शन किया, फिर प्रलोभन दिया, तत्पश्चात् मार डालने का भय दिखाया

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

और अन्त में श्रीराम की निन्दा करके सीता के मन में राम के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा करने का प्रयास किया। उसने यहां तक कह दिया कि हे सुन्दर मुख वाली और चतुर सीते! तुम मेरी ओर एक बार देख भर लो तो मैं मंदोदरी समेत अपनी समस्त रानियों को तुम्हारी दासी बना दूंगा – यह मैं प्रतिज्ञा करता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यह प्रसंग सीताजी की श्रीराम में निष्ठा की परीक्षा हेतु है। वाल्मीकि रामायण में भी अनेक प्रकार के अलंकरणों से सुसज्जित रावण सीता के पास आता है तथा अनेक नारियों के उद्दीपक वातावरण का परिवेश तैयार करता है। वह सीताजी को अनेक प्रकार के प्रलोभन, भय एवं आतंक से अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है।

चौ०– तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम संनेही॥
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥

शब्दार्थ – तृन धरि=तिनके की आड़ बनाकर ताकि रावण उन्हें न देख सके, वह रावण से सीधी बात न करें। ओट=पर्दा। बैदेही=जानकी। सुमिरि=स्मरण कर, ध्यान कर। दसमुख=दशानन, रावण। खद्योत=जुगनू। नलिनी=कमलिनी। बिकासा=खिलना, प्रस्फुटित होना।

व्याख्या – रावण के उपर्युक्त वचनों को सुनकर सीताजी ने अवधपति परमप्रिय श्रीराम का स्मरण किया और तिनके की ओट करके रावण से कहा कि हे दसमुख! क्या कभी जुगनू के प्रकाश से कमलिनी विकसित हो सकती है? अर्थात् कमलिनी का विकसित होना सूर्य के प्रकाश से ही संभव है, अन्य किसी प्रकाश से नहीं। यहां दूसरी व्यंजना यह है कि रावण का वैभव जुगनू के प्रकाश के समान क्षणिक है, जबकि श्रीराम सूर्यवंशी हैं और सूर्य के ही समान वह सतत् प्रभा-सम्पन्न रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. तृन धरि ओट – पतिव्रता स्त्री को परपुरुष से बात करना निषिद्ध है। यदि बात करनी पड़े तो पर्दा आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने तिनके की ओट का सहारा लिया। 'तृन धरि' के और भी कई भाव हो सकते हैं, जैसे – तू राम के समक्ष तृण के समान है अथवा तू तृणमात्र भी दया का पात्र नहीं है।

2. विभिन्न व्याख्याकारों द्वारा तृण शब्द के और भी कई अर्थ किए गए हैं, जैसे – आंचल, घूंघट, पृथ्वी आदि। किन्तु ये अर्थ दुरारूढ़ लगते हैं।

3. अलंकार – चतुर्थ चरण में काकु वक्रोक्ति अलंकार और व्याजनिन्दा है।

चौ०– अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

शब्दार्थ – सुधि=स्मरण। बान=बाण, शक्ति। सठ=दुष्ट, पापी। सूनें=जब राम-लक्ष्मण कुटिया में नहीं थे और मैं अकेली थी। आनेहि=छल से। अधम=पापी। निलज्ज= निर्लज्ज।

व्याख्या – सीताजी कहती हैं कि हे दुष्ट! तू यह मन में समझ ले, क्या तुझे श्रीराम के बाण की शक्ति का स्मरण नहीं है? हे धूर्त! तूने एकान्त पाकर मेरा अपहरण किया है। अरे नीच! निर्लज्ज!! तुझे इस कार्य से लज्जा भी नहीं आती?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. खल सुधि – यहां प्रश्न उठता है कि अभी रावण का राम से सामना ही नहीं हुआ, अतः राम के बाणों की सुधि का क्या तात्पर्य है? इसका समाधान यह है कि सूर्पणखा और मारीच ने श्रीराम के बाणों की शक्ति का परिचय दिया था। सीताजी का उसी ओर संकेत है।

2. 'निलज्ज लाज' में पुनरुक्ति दोष नहीं है, यह लोकोक्ति है।

दोहा– आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥ 9॥

शब्दार्थ – आपुहि=स्वयं को। भानु=सूर्य। परुष=कठोर। काढ़ि=म्यान से निकालकर। असि=तलवार। खिसिआन=अपमानित, क्रोधित।

व्याख्या – रावण ने स्वयं को जुगनू के समान और राम को सूर्य के समान सुनकर बहुत अपमानित महसूस किया। सीता के ऐसे कठोर वचनों को सुनकर उसने तलवार निकाल ली और कहा।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण अत्यधिक अहंकारी व क्रोधी स्वभाव का राजा था इसलिए वह एक स्त्री के द्वारा अपना अपमान न सह सका।

चौ०– सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

शब्दार्थ – तैं=तूने। मम=मेरा। कृत=किया। कटिहउँ=काट डालूंगा। तव=तेरा। कठिन=कठोर, तीक्ष्ण धार वाला। कृपाना=कृपाण, छोटी तलवार। नाहिं त=अन्यथा। सपदि=शीघ्र ही, तुरन्त। न त=नहीं तो। जीवन हानी=प्राण गंवाना, मरना।

व्याख्या – जब सीताजी ने श्रीराम को सूर्य के समान और रावण को खद्योत के समान कहा, तो वह अत्यन्त क्रोध में आ गया और कहा कि हे सीते! तूने मेरा बहुत अपमान किया है। मैं तेरा सिर तीक्ष्ण धार वाली तलवार से काट दूंगा अन्यथा शीघ्र ही मेरी बात मान ले अर्थात् मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर ले। नहीं तो, हे सुन्दर मुख वाली! तुम्हें जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। अर्थात् तेरी मृत्यु अवश्यंभावी है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'कठिन कृपाना' में चंद्रहास नामक तलवार की व्यंजना है जो रावण को भगवान शिव द्वारा प्राप्त हुई थी।

चौ०– स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

शब्दार्थ – स्याम सरोज=नीलकमल। दाम=माला या श्रेणी। करि कर=हाथी की सूंड़। असि घोरा=तीक्ष्ण तलवार। प्रवान (सं: प्रमाण)=सत्य। पन=प्रण, प्रतिज्ञा।

व्याख्या – रावण के उपर्युक्त वचनों को सुनकर सीता ने कहा कि मेरी ग्रीवा में या तो श्रीराम के नीलकमल की माला के सदृश सुंदर और हाथी के सूंड़ के समान बलिष्ठ हाथ लग सकते हैं या तेरी तीक्ष्ण तलवार मेरे कण्ठ का स्पर्श कर सकती है। हे सठ! सुन! यह मेरी दृढ़ और सत्य प्रतिज्ञा है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 'दाम सम' और 'करि कर सम' में पूर्णोपमा अलंकार हैं।

चौ०– **चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥**
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

शब्दार्थ – चन्द्रहास=तलवार। हरु=दूर कर दे। परितापं=संताप, राम से बिछुड़ने का शोक, व्यथा। अनल=अग्नि। संजातं=उत्पन्न। निसित=पैनी, तीक्ष्ण। बहसि=वहन करती हो, धारण करती हो। बर=श्रेष्ठ, सुखदायक। भारा=बोझ।

व्याख्या – रावण को उपर्युक्त उत्तर देकर सीताजी ने चंद्रहास तलवार को संबोधित करते हुए कहा कि हे चंद्रहास! तुम मेरा श्रीराम के वियोगाग्नि से उत्पन्न संताप शीघ्र ही दूर कर दो अर्थात् मेरा वध कर दो। तुम शीतल, तीक्ष्ण और श्रेष्ठ धारा को वहन करती हो, इसलिए मेरी विपत्ति के बोझ को दूर कर दो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'चंद्रहास' में चंद्रमा की शीतलता की भी व्यंजना है। चंद्रमा ताप को नष्ट करता है और चंद्रहास भी विरहाग्नि को बुझा देगी। मृत्यु के साथ वियोग से छुटकारा मिल जाएगा। इस प्रकार 'चंद्रहास' का श्लिष्ट प्रयोग हुआ है और इसमें परिकरांकुर अलंकार की भी व्यंजना है।

2. प्रथम पंक्ति में 'प्रसन्न राघव' नाटक के श्लोक की छाया-सी जान पड़ती है। श्लोक की पंक्ति इस प्रकार है –

चंद्रहास हर मे परितापं, रामचंद्रविरहानल जातम्।

3. द्वितीय पंक्ति में गूढ़ोक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार हैं।

4. 'परितापं' तथा 'संजातं' संस्कृत के प्रयोग हैं।

5. विरहिनी के लिए मृत्यु सुखदायक होती है। मैथिलीशरण गुप्त की यशोधरा कहती है – मरण सुन्दर बन आया री।

इसी प्रकार, कबीर कहते हैं –

कै बिरहिन को मीचु दै कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझणां मो पै सहा न जाय।

चौ०– **सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥**
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

शब्दार्थ – बचन=सीता के वचन। धावा=दौड़ा। मयतनयाँ=मय दानव की बेटी, रावण की पत्नी – मंदोदरी। बुझावा=समझाया, शान्त किया, शीतल किया। त्रासहु=भयभीत करो, डराओ। मास दिवस=एक मास के भीतर। कहा=आज्ञा, आदेश। काढ़ि=निकाल कर। कृपाना=तलवार।

व्याख्या – सीता के उपर्युक्त वचन सुनते ही रावण उन्हें मारने के लिए झपटा अथवा तत्पर हो गया, किन्तु तत्काल ही मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति वचन कहकर (कि स्त्री अवध्य होती है) उसे शांत कर दिया। मन्दोदरी के समझाने से रावण का क्रोध शान्त हो गया, किन्तु उसने वहां उपस्थित सभी राक्षसियों को बुलाकर कहा कि तुम लोग जाकर सीता को विविध प्रकार से भयभीत करो और यह बता दो – यदि उसने एक महीने के भीतर मेरे आदेश का पालन नहीं किया तो मैं तलवार निकालकर उसे मार डालूंगा। यहां व्यंजना यह है कि इस समय मन्दोदरी के कहने से मैंने उसे नहीं मारा है, किन्तु वह इस भ्रम में न रहे कि मैंने उसे सदा-सर्वदा के लिए क्षमा कर दिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'बुझावा' शब्द में श्लेष अलंकार है।

दोहा– **भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।**
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥ 10 ॥

शब्दार्थ – भवन=राजप्रसाद, राजमहल। पिसाचिनि बृंद=राक्षसियों का समूह। त्रास=भय, यातना। मंद=कुरूप, भयंकर।

व्याख्या – इस प्रकार राक्षसियों को आदेश देकर रावण अपने भवन को वापस चला गया और इधर राक्षसियों के समूह ने अनेक प्रकार के कुरूप और भयंकर वेश बनाकर सीता को भयभीत करना प्रारम्भ कर दिया।

चौ०– **त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥**
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

शब्दार्थ – रति=प्रेम, भक्ति। निपुन=निपुण, चतुर। बिबेका=बुद्धिमती। सेइ=सेवा करके।

व्याख्या – राक्षसियों के समूह में त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी भी थी, जोकि राम की भक्त, व्यवहार-निपुण और बुद्धिमती थी। उसने सभी राक्षसियों को बुलाकर रात्रि में देखे गए एक स्वप्न का वृत्तांत देकर उनसे कहा कि तुम लोग सीताजी की सेवा करके अपना हित साधन करो। उसने क्या स्वप्न देखा था, यह आगे की पंक्तियों में स्पष्ट किया जाएगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'त्रिजटा' लंका की एक वृद्ध राक्षसी थी जो राम की भक्त और परम बुद्धिमती थी। इसे विभीषण की बहन भी बताया गया है। महाभारत के अनुसार विभीषण की माता का नाम मालिनी था और रावण की माता कैकसी थी। इस प्रकार विभीषण रावण का सौतेला भाई था।

चौ०– **सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥**
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

शब्दार्थ – जारी=जलाकर राख कर दी। जातुधान=राक्षस। खर=गदहा। आरूढ़=सवार। नगन=नग्न, वस्त्रहीन। दससीसा=रावण। मुंडित=मुंडा हुआ। खंडित=कटी हुई।

व्याख्या – त्रिजटा ने राक्षसियों से कहा कि उसने स्वप्न में देखा है कि एक वानर आया है, उसने लंका को जला दिया है और सारी राक्षस सेना को मार डाला है। उसने यह भी देखा है कि रावण नग्न है, वह मुण्डित सिर है, उसकी बीसों भुजाएं कटी हुई हैं और वह एक गदहे पर सवार है।

चौ०– **एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥**
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – बिधि=प्रकार। दच्छिन=दक्षिण। दोहाई=विजय का डंका बजना। बोलि पठाई=बुला भेजा है।

व्याख्या – त्रिजटा आगे कहती है कि उपर्युक्त वेश में गदहे पर बैठा रावण दक्षिण दिशा की ओर चला गया है। दक्षिण की दिशा काल की दिशा मानी गई है। तात्पर्य यह है कि रावण की मृत्यु हो गई है। और मानों विभीषण लंका का राजा हो गया है। पूरी लंका नगरी में श्रीराम की विजय-दुंदुभी बज रही है और उन्होंने सीताजी को अशोक वाटिका से अपने पास बुला लिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि रामायण में त्रिजटा के स्वप्न का बहुत विस्तार से वर्णन है। उसने स्वप्न में देखा था कि आकाश में चलने वाली एक दिव्य शिविका (पालकी) है, जिसमें एक हजार घोड़े जुते हुए हैं। उसी पर सवार होकर श्रीराम और लक्ष्मण लंका में पधारे हैं। उसने यह भी देखा कि दोनों भाई एक विशाल गजराज पर बैठकर सीताजी के पास गए हैं। तत्पश्चात् 'सीता के सहित' दोनों भाई एक दिव्य विमान पर चढ़कर उत्तर दिशा की ओर चले गए। उसने यह भी देखा कि रावण का सिर मुंडा है, उसने तेल में स्नान कर लाल कपड़ा पहन रखा है और वह शराब पिये है। वह गदहे से जुते एक रथ पर बैठा है और उस रथ को एक स्त्री खींच रही है। इस प्रकार रावण दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। वहां एक काले रंग की स्त्री है, जो कीचड़ से सनी है और लाल कपड़े पहने है तथा रावण को दक्षिण की ओर घसीट रही है। उसने यह भी देखा कि रावण सुअर पर, मेघनाद सूंस (एक बड़ा जलजंतु) पर और कुंभकर्ण ऊंट पर सवार है तथा तीनों लोग दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं। (वाल्मीकि रामायण, सर्ग 27)

चौ॰– **यह सपना मैं कहउं पुकारी। होइहि सत्य गएं दिन चारी॥**
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

शब्दार्थ – पुकारी=विश्वासपूर्वक, आह्वान करके। दिन चारी=कुछ दिनों में ही। ते सब=वे सब (राक्षसियां)। परीं=गिर पड़ीं।

व्याख्या – त्रिजटा ने कहा कि मैं सभी को सुनाकर यह कहती हूं अथवा विश्वासपूर्वक यह कहती हूं कि शीघ्र ही मेरा यह स्वप्न सत्य होगा क्योंकि भोर में देखा गया स्वप्न प्रायः सत्य होता है।

उसके इन वचनों को सुनकर सभी राक्षसियां भयभीत हो गईं और सीताजी के चरणों में गिर पड़ीं अर्थात् उनसे क्षमायाचना करने लगीं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां त्रिजटा की स्थिति विभीषण जैसी है। जिस प्रकार हनुमान को विभीषण के रूप में एक सहायक मिल गया था, उसी प्रकार त्रिजटा एकाकिनी सीता की सहायिका के रूप में चित्रित की गई है।

दोहा– **जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।**
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥11॥

शब्दार्थ – जहँ तहँ गईं=तितर-बितर हो गईं। सोच=चिन्ता। निसिचर=राक्षसराज रावण। पोच=नीच।

व्याख्या – तदुपरांत सभी राक्षसियां इधर-उधर चली गईं, किन्तु सीताजी के मन में यह चिन्ता व्याप्त हो गई कि एक महीना बीतने के उपरांत यह नीच निशाचर मेरा वध कर देगा।

चौ॰– **त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥**
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥

शब्दार्थ – सन=से। कर=हाथ। तैं=तुम। मोरी=मेरी। बेगि=शीघ्र ही। उपाई=उपाय, तरकीब, साधन। दुसह=असह्य।

व्याख्या – सीताजी त्रिजटा से हाथ जोड़कर बोलीं कि हे माता! केवल आप ही विपत्ति में मेरी सहायिका हैं। इसलिए आप शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मैं शरीर को त्याग सकूं, क्योंकि अब श्रीराम का असह्य वियोग सहा नहीं जा रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – तुलसीदास ने गीतावली में सीता का अपने प्रभु से मिलने की आतुरता का अत्यंत मार्मिक वर्णन किया है। एक स्थान में वह हनुमान जी से कहती हैं –

कबहूं, कपि! राघव आवहिंगे। मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे।

चौ॰– **आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥**
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

शब्दार्थ – आनि=लाकर। काठ=लकड़ी। अनल=अग्नि। सयानी=चतुर, समझदार, संवेदनशील। सूल (सं॰ शूल)=भाला, बरछी, त्रिशूल।

व्याख्या – हे माता! आप लकड़ियां लाकर एक चिता बना दीजिए और उसमें आग लगा दीजिए जिससे मैं जलकर शान्ति प्राप्त कर सकूं। हे चतुर माते! आप मेरे प्रेम की सत्यता प्रमाणित कर दें। त्रिशूल के समान कष्टमयी रावण की कटु वाणी कौन सुने?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. पति-विहीन स्त्री का जीवन बोझ हो जाता है। अतः वह निराश होकर तथा प्रेम की सत्यता प्रमाणित करने के लिए अपने प्राण तक दे देती है। दशरथ ने भी राम के प्रति अगाध प्रेम के कारण अपने शरीर का त्याग कर दिया था।

2. अलंकार – 'सूल सम बानी' में उपमा अलंकार है।

चौ॰– **सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥**
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

शब्दार्थ – सुजसु=सुयश, कीर्ति। निसि=रात्रि। अनल=आग।

व्याख्या – सीताजी के उपर्युक्त वचनों को सुनकर त्रिजटा ने उनके चरणों को पकड़ लिया और श्रीराम के प्रताप, शक्ति और सुकीर्ति का उल्लेख करते हुए सीताजी को नाना प्रकार से समझाया। (त्रिजटा ने समझाया होगा कि तुम्हें जीवन से निराश नहीं होना चाहिए। श्रीराम अत्यधिक बलशाली हैं, वह निश्चित ही तुम्हारा उद्धार करेंगे।) इसके अतिरिक्त उसने एक बहाना भी किया कि रात्रि में आग नहीं मिल सकती। ऐसा कहकर वह भी अपने भवन को चली गई।

साहित्यिक सौन्दर्य – इन पंक्तियों में दिखाया गया है कि त्रिजटा राक्षस कुल की होते हुए भी सीता के प्रति शुभचिंतक है। अतः यहां संभावना अलंकार है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ०– कह सीता बिधि भा प्रतिकूला । मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकउ तारा॥

शब्दार्थ – बिधि=विधाता, भाग्य। पावक=आग। सूला=कष्ट, दुख, पीड़ा। गगन अंगारा=अंगारों के समान आकाश के तारे। अवनि=पृथ्वी।

व्याख्या – त्रिजटा के भी चले जाने के पश्चात् सीता एकाकिनी रह गईं और श्रीराम के वियोग में विलाप करने लगीं। यह सीता का स्वगत कथन है। वह स्वयं से कहती हैं कि विधाता निश्चित रूप से मेरे प्रतिकूल हो गया है, क्योंकि न आग मिलेगी और न मेरी पीड़ा मिटेगी। वियोग में सुखदाई वस्तुएं भी दुःखदाई प्रतीत होती हैं। सीता को भी नक्षत्र अंगारे के समान और चंद्रमा अग्नि के समान दाहक प्रतीत हो रहा है। वह आकाश की ओर देखकर कहती हैं कि ऊपर अंगारे के समान तारे टिमटिमा रहे हैं, किन्तु उनमें से एक भी जमीन पर नहीं गिरता, जिससे मुझे आग सुलभ हो जाए और मैं जल सकूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. विप्रलंभ शृंगार।

2. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया गया है।

चौ०– पावकमय ससि स्रवत न आगी । मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

शब्दार्थ – पावक=अग्नि। ससि=चंद्रमा। स्रवत=गिराना। हतभागी=अभागिनी। बिटप=वृक्ष। असोका=अशोक वृक्ष, शोक दूर करने वाला। मम सोका=मेरा दुख, मेरी पीड़ा।

व्याख्या – सीताजी को प्रतीत होता है कि चंद्रमा भी अग्नि से परिपूर्ण है, किन्तु लगता है कि मुझे अभागिनी समझकर वह भी आग को गिरा नहीं रहा है। वह पुनः जिस अशोक वृक्ष के नीचे बैठी थीं, उसे सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे अशोक! तुम्हारा नाम शोक-हरण करने वाला है, इसलिए मेरे भी शोक का हरण करके अपने नाम को सार्थक करो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. द्वितीय चरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में सीताजी को शिंशपा (शीशम) वृक्ष के नीचे बैठा दिखाया गया है, किन्तु तुलसीदास ने उन्हें अशोक वृक्ष के नीचे बैठा बताया है –

तब अशोक पादप तर राखिसि जतनु कराइ।

'हिन्दी शब्द सागर' में शिंशपा के शीशम और अशोक, दोनों अर्थ दिए गए हैं।

3. हनुमन्नाष्टक में भी तुलसी जी ने यही लिखा है –

मांगत सिय अशोक सौं आगि सो दै प्रभु मुद्रिका शोक निवारौ।

चौ०– नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

शब्दार्थ – किसलय=पत्ता। निदाना=अवसान, अन्त।

व्याख्या – सीताजी आगे कहती हैं कि ये नए-नए पत्ते अग्नि के समान प्रतीत हो रहे हैं, इसलिए तू आग दे दे और इस प्रकार मेरे शरीर का अन्त कर दे।

हनुमान को सीताजी की यह विरह-व्यथा देखकर एक-एक क्षण कल्प के समान दीर्घ प्रतीत हो रहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य – सीता द्वारा अग्नि-याचना के संदर्भ में विरह के दाहक प्रसंगों की कवि द्वारा कल्पना विरह-वर्णन की परंपरा के अनुरूप है।

दोहा– कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥ 12 ॥

शब्दार्थ – बिचार=विचार। दीन्हि=दे दी, मुद्रिका को नीचे गिरा दिया। जनु=जानकर। असोक=अशोक वृक्ष। हरषि=खुश होकर। गहेउ=हाथ में ले लिया।

व्याख्या – तब हनुमानजी ने हृदय में विचार करके मुद्रिका को नीचे गिरा दिया। सीताजी ने यह समझकर कि अशोक वृक्ष ने उनकी इच्छा पूरी करते हुए उन्हें आग दे दी है, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसे उठाकर हाथ में ले लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'जनु असोक अंगार' में उत्प्रेक्षा भी है और भ्रांतिमान भी।

2. वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी पहले सीता के समक्ष प्रकट होते हैं और तब उन्हें अंगूठी देते हैं। गोस्वामी जी ने पहले अंगूठी गिराया जाना और तत्पश्चात् प्रकट होना बताया है।

चौ०– तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

शब्दार्थ – अंकित=लिखा हुआ। चितव=देखने लगीं। मुदरी=अंगूठी। बिषाद=दुख। अकुलानी=व्याकुल।

व्याख्या – सीताजी ने जिस समय अशोक वृक्ष से अंगार देने की याचना की थी, उसी समय हनुमान ने मुद्रिका गिरा दी। सीताजी ने उसे वृक्ष-प्रदत्त अंगार समझा था। किन्तु जब उसे उठा कर देखा, तो वह एक आकर्षक अंगूठी थी, जिस पर बहुत सुन्दर ढंग से श्रीराम का नाम अंकित था। सीताजी उस मुद्रिका को पहचान कर बहुत आश्चर्यभाव से देखने लगीं। श्रीराम की मुद्रिका जानकर उनके हृदय में आश्चर्य, हर्ष, विषाद और व्याकुलता आदि कई भाव एक साथ उदित हुए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. श्रीराम की मुद्रिका पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह यहां कैसे आ गई ? श्रीराम की मुद्रिका है, इसलिए प्रसन्नता भी हुई। किन्तु विषाद और व्याकुलता इसलिए हुई कि शत्रु ने कहीं राम पर विजय तो नहीं प्राप्त कर ली।

2. यहां एक साथ कई भाव उदित हुए हैं, इसलिए प्रथम समुच्चय अलंकार है।

चौ०– जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना । मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥

शब्दार्थ – अजय=अजेय, अपराजेय। असि=ऐसी दिव्य, अलौकिक। नाना=अनेक।

व्याख्या – सीताजी के मन में हर्ष, विषाद आदि कई भाव तो जगे ही, वह अन्तर्द्वंद्वग्रस्त भी हो गईं। वह सोचने लगीं कि श्रीराम को कोई पराजित नहीं कर सकता, क्योंकि वह अपराजेय हैं और माया से ऐसी अंगूठी का निर्माण संभव नहीं क्योंकि श्रीराम मायापति हैं तथा उनकी अंगूठी भी सामान्य नहीं है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

इसी प्रकार सीताजी के मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। तभी हनुमान जी मधुर वाणी में बोले।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमान ने पहले वृक्ष पर बैठे-बैठे ही श्रीराम का गुणगान किया, तत्पश्चात् वृक्ष से उतरकर सीताजी को अंगूठी दी। तुलसीदास ने उक्त परिवर्तन 'हनुमन्नाष्टक' के आधार पर किया है –

(क) **वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।**
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥ 2 ॥

(वा० रा०, षट्त्रिंशः सर्गः)

(ख) **इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम्।**
प्रयत्नेन मयानीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम्॥ 35 ॥
इत्युक्त्वा प्रददौदेव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः।
नमस्कृत्य स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरिः॥ 36 ॥

(अ० रा०, सु० का०, तृतीय सर्ग)

चौ०– **रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥**
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

शब्दार्थ – कर=का। श्रवन=कान। आदिहु=प्रारंभ से।

व्याख्या – सीताजी की द्विधाग्रस्त मनःस्थिति देखकर हनुमान प्रभु श्रीराम के गुणों का वर्णन करने लगे, जिसे सुनकर सीताजी का वियोगजन्य दुख दूर हो गया और वह कान तथा मन लगाकर अर्थात् ध्यानपूर्वक श्रीराम की कथा सुनने लगीं। हनुमान ने श्रीराम के जन्म से लेकर अपने लंका आगमन तक का पूरा वृत्तान्त सुना दिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – सीताजी के अंतर्द्वन्द्वपूर्ण क्षणों के बीच हनुमान के अवतरण का प्रसंग पूरे संदर्भ को नाटकीयता प्रदान करने में समर्थ है।

चौ०– **श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥**
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥

शब्दार्थ – श्रवनामृत=कानों के लिए अमृत के समान। सुहाई=सुन्दर। फिरि बैठीं=(क) मुंह फेर कर बैठ गईं, (ख) पुनः बैठ गईं।

व्याख्या – राम-कथा कहकर हनुमान मौन हो गए। तब सीताजी ने कहा कि हे भाई! जिसने कानों को अमृत के समान प्रिय सुन्दर राम-कथा कही है, वह प्रत्यक्ष क्यों नहीं हो रहा है?

सीता के इतना कहने पर हनुमान जी प्रगट होकर उनके निकट पहुंच गए। एक बन्दर को सामने देखकर सीताजी के मन में बहुत आश्चर्य उत्पन्न हुआ और वह मुख घुमाकर बैठ गईं। 'फिरि बैठीं' का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि सीताजी अंगूठी उठाने के लिए खड़ी हो गई थीं फिर पुनः बैठ गईं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि रामायण के अनुसार वानर वेश में हनुमान को देखकर सीताजी को यह सन्देह हुआ था कि कहीं यह रावण ही तो नहीं है, जो इस वेश में आया है, क्योंकि एक बार वह यती के वेश में सीता को छल चुका था। (दे० – सर्ग 34, श्लोक 26-27)

2. 'फिरि बैठीं' में श्लेष अलंकार है।

चौ०– **राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥**
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥

शब्दार्थ – करुनानिधान=करुणा के सागर श्रीराम। आनी=लाया हूं। सहिदानी=निशानी।

व्याख्या – हनुमान ने कहा कि हे माता! मैं दया के सागर श्रीराम की शपथ खाकर सत्य कहता हूं कि मैं श्रीराम का दूत हूं और यह मुद्रिका मैं स्वयं लाया हूं (अशोक वृक्ष से नहीं गिरी है)। श्रीराम ने निशानी अथवा पहचान हेतु आपके लिए यह मुद्रिका दी है। तात्पर्य यह है कि श्रीराम ने यह मुद्रिका इसलिए भेजी है कि इसे देखकर आपको विश्वास हो जाएगा कि मैं श्रीराम द्वारा ही भेजा गया उनका दूत अथवा प्रतिनिधि हूं।

हनुमान ने श्रीराम का संपूर्ण वृत्तांत सुनाया था – 'आदिहुँ ते सब कथा सुनाई'; किन्तु सुग्रीव से श्रीराम की मित्रता की कथा नहीं कही थी। इसीलिए सीताजी ने यह प्रश्न किया कि नर और वानर का साथ कैसे हुआ? तब उन्होंने सुग्रीव से राम की मैत्री का वृत्तांत सुनाया।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायणों में अंगूठी-प्रसंग हनुमान-सीता संवाद के पश्चात् आता है। तुलसी ने अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति द्वारा पहले अंगूठी गिराने का प्रसंग डालकर कथा में नाटकीयता देने का सफल प्रयास किया है।

दोहा– **कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।**
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥ 13 ॥

शब्दार्थ - कपि=हनुमान। कृपासिंधु=कृपा के सागर श्रीराम।

व्याख्या – हनुमान के कथन को प्रेमपूर्वक सुनने के पश्चात् सीताजी को उनके प्रति पूरा विश्वास हो गया और वह समझ गईं कि यह मन, कर्म और वाणी से कृपा के सागर श्रीराम का सच्चा सेवक है।

चौ०– **हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥**
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥

शब्दार्थ – हरिजन=भगवत्भक्त, सेवक। गाढ़ी=सघन, अत्यधिक। पुलकावलि=रोमांच। बूड़त=डूबते हुए। जलधि=सागर। भयहु=बन गए। मो कहुँ=मेरे लिए। जलजाना (त० जलयान)=समुद्री जहाज।

व्याख्या – हनुमान जी को सच्चा भगवत्भक्त समझ कर सीताजी के मन में उनके प्रति अनन्य अनुराग पैदा हो गया तथा उनके नेत्र प्रेमाश्रु से पूर्ण हो गए और शरीर रोमांचित हो गया। हनुमान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उन्होंने कहा कि हे तात! श्रीराम के विरह रूपी सागर में डूबते हुए आप मेरे लिए जलयान के सदृश रक्षक हो गए हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – तृतीय चरण में रूपक अलंकार है।

चौ॰– अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

शब्दार्थ – अनुज=छोटा भाई, लक्ष्मण। सुख भवन=सुख के धाम। खरारी=खर नामक राक्षस के शत्रु। निठुराई=निष्ठुरता।

व्याख्या – सीताजी ने कहा कि मेरी दशा से तुम अवगत हो चुके। अब आनन्द के आगार तथा खर राक्षस के शत्रु श्रीराम का उनके अनुज लक्ष्मण के सहित कुशल समाचार बताओ। मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूं। (मारीच की बनावटी वाणी सुनकर सीता को श्रीराम के घायल हो जाने का संदेह हुआ था, इसलिए उन्होंने लक्ष्मण को उनकी सहायता हेतु भेज दिया था। इसी बीच रावण द्वारा उनका अपहरण कर लिया गया था। इसीलिए वह दोनों भाइयों का समाचार जानने के लिए बहुत उत्कंठित हैं)। उन्होंने हनुमान से यह भी प्रश्न किया कि हे कपि! श्रीराम अत्यंत कोमल स्वभाव के हैं और दयालु भी हैं, फिर भी वह मेरे प्रति इतने अधिक निष्ठुर कैसे हो गए हैं?

चौ॰– सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

शब्दार्थ – बानि=स्वभाव, प्रवृत्ति। कबहुँक=कभी। सुरति=स्मरण। रघुनायक=रघुवंश के नायक श्रीराम। कबहुँ=कभी। निरखि=देखकर, दर्शन कर। ताता=(क) हे तात, (ख) गरम। गाता=शरीर।

व्याख्या – सीताजी ने कहा कि सेवक को आनन्द प्रदान करना श्रीराम का सहज स्वभाव है। मैं भी उनकी दासी हूं। क्या वे कभी मेरा भी स्मरण करते हैं? हे तात! क्या कभी उनके कोमल श्यामवर्णी शरीर को देखकर मेरे तप्त नेत्र शीतलता का अनुभव करेंगे?

साहित्यिक सौन्दर्य – 'ताता' शब्द में श्लेष अलंकार है।

चौ॰– बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

शब्दार्थ – बारी (सं॰ वारि)=जल, अश्रु। निपट=बिलकुल, पूरी तरह। बिसारी=विस्मृत करना। बिनीता=विनय से भरे।

व्याख्या – उपर्युक्त वचन कहते ही सीताजी अत्यंत शोक-विह्वल हो गईं, उनके नेत्रों में आंसू भर गए और वाणी अवरुद्ध हो गई। फिर भी बड़ी कठिनाई से उनके मुख से निकला कि हे नाथ! मैं आपके द्वारा पूरे तौर से विस्मृत कर दी गई हूं।

सीताजी की ऐसी विरहजन्य व्याकुलता को देखकर हनुमान जी बहुत ही मधुर तथा विनम्र वाणी में बोले।

साहित्यिक सौन्दर्य – विरहिणी सीता का संदेश-वाहक दूत हनुमान से अपनी विरह-व्यथा कहना भारतीय काव्य में आदिकाल से चली आ रही परंपरा के अनुसार है।

चौ॰– मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

शब्दार्थ – अनुज=छोटे भाई लक्ष्मण। तव=तुम्हारे। सुकृपा निकेता=दया के आगार। ऊना (तद्भव न्यून)=ग्लानि, हताश होना, बुरा मानना।

व्याख्या – हनुमान जी ने कहा कि श्रीराम और लक्ष्मण सकुशल हैं और दया के आगार श्रीराम तुम्हारे वियोगजन्य दुख के कारण दुखी रहते हैं। हे माता! आप अपने मन में न्यूनता न लाइए अर्थात् ग्लानि न कीजिए। आप राम के प्रति जितना प्रेम-भाव रखती हैं, श्रीराम उसके दूने भाव से आपके प्रति समर्पित हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – दौत्य कर्म का निर्वाह करते हुए हनुमान द्वारा सीताजी की व्यथा के निवारण हेतु सांत्वना देने का प्रसंग काफी भावात्मक बन पड़ा है।

दोहा– रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥ 14 ॥

शब्दार्थ – कर=का। बिलोचन=नेत्र।

व्याख्या – हनुमान ने पहले श्रीराम का गुण-कथन किया, फिर उनकी सब कथा सुनाई और अब उनका संदेश सुना रहे हैं। वे कहते हैं कि हे माता! अब धैर्य धारण करके श्रीराम का संदेश सुनिए। इतना कहते ही उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और नेत्रों में आंसू आ गए।

चौ॰– कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

शब्दार्थ – तव=तुम्हारे। सकल=जगत के सारे पदार्थ। बिपरीता=प्रतिकूल, कष्टदायक। किसलय=पत्ते। कृसानु=अग्नि। कालनिसा=कालरात्रि, प्रलय की रात्रि। निसि=रात। ससि=चंद्रमा। भानू=सूर्य।

व्याख्या – सीताजी ने राम के वियोग में अपनी व्यथा का वर्णन किया था। अब हनुमान राम के वियोग का वर्णन कर रहे हैं, उन्होंने राम का संदेश सुनाते हुए कहा कि हे सीते! तुम्हारे वियोग में सभी दृश्य पदार्थ विपरीत प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। वृक्षों के नए लाल पत्ते अग्नि के समान दाहक प्रतीत होते हैं। रात्रि कालरात्रि के समान और शीतल चन्द्रमा सूर्य के समान ताप दे रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. कुछ टीकाकारों ने 'कहेउ राम' का अर्थ यह किया है कि "अस कहि कपि गदगद भएउ" अर्थात् हनुमान मौन हो गए और स्वयं राम अपना वियोग वर्णन करने लगे। किन्तु यह दूरारूढ़ कल्पना है। वस्तुतः यह कथन हनुमान का ही है।

2. अलंकार – तृतीय चरण में उत्प्रेक्षा तथा चतुर्थ चरण में उपमा अलंकार है।

3. 'ससि भानू' में रूपक की व्यंजना है।

4. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।

चौ॰– कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। [illegible]

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – कुबलय=कमल। बिपिन=जंगल। कुंत=भाला, त्रिशूल। सरिसा=सदृश, समान। बारिद=मेघ। तपत=खौलता हुआ, गर्म। हित=अनुकूल, कल्याणकारी। पीरा=पीड़ा, कष्ट। उरग=सर्प। स्वास=श्वास, सांस।

व्याख्या – कमलों का सुखद समूह भाले के समान हृदय विदीर्ण कर रहा है। मेघ मानों गरम तेल की वर्षा कर रहे हैं, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन सर्प की श्वास के समान गर्म तीव्रगतिगामी और दुर्गन्धपूर्ण हो गई है। इस प्रकार जो प्राकृतिक वस्तुएं सुखदायी थीं, वे कष्टकारक हो गई हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सीता के लिए तीन वस्तुएं – शीतल तारा, चंद्रमा और नूतन किसलय, दुखद हो गई थीं तथा राम को छः वस्तुएं – नवतरु किसलय, रात्रि, चंद्रमा, कमल मेघ तथा त्रिबिध समीर – कष्ट पहुंचा रहे हैं। राम-वियोग वर्णन में षट्ऋतु की व्यंजना है।

2. अलंकार– प्रथम चरण में उपमा, द्वितीय चरण में उत्प्रेक्षा तथा चतुर्थ चरण में उपमा अलंकार है।

चौ०– कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

शब्दार्थ – कहेहू=कहने से, वर्णन करने से। काहि=किससे। तत्व=रहस्य, मर्म, सच्चाई और गहराई। तोरा=तुम्हारा। मोरा=मेरा।

व्याख्या – विरह-वेदना का उल्लेख करने पर वह कुछ कम हो जाती है, किन्तु मैं अपनी पीड़ा किससे कहूं? मैं कहना चाहता हूं, किन्तु यहां उसे कोई समझने वाला ही नहीं है। हृदय के दुख को वही समझ सकता है, जिसके कारण वह उत्पन्न हुआ है; अन्य लोग उसका अनुभव नहीं कर सकते। हे प्रिये! मेरे और तुम्हारे मध्य प्रेम का जो सार है अथवा जो वास्तविकता है, उसका मर्म केवल मेरा मन जानता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां संदेश-वाहक दूत हनुमान द्वारा श्रीराम की वियोग-दशा का वर्णन विरहिणी सीता को सांत्वना देने के निमित्त है। तुलसी ने अत्यंत सुन्दरता से यह प्रसंग प्रस्तुत किया है।

चौ०– सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

शब्दार्थ – पाहीं=पास ही, समीप। रसु=सार, गहराई।

व्याख्या – वह मन सदैव पास ही रहता है – प्रेम का घनत्व इतने से ही समझ लो। तात्पर्य यह है कि प्रेम अनुभूति का विषय है, किन्तु अनिर्वाच्य है।

परमप्रिय प्रभु का यह प्रेम-संदेश सुनते ही सीता भी प्रेम में आत्मविभोर हो गईं और उन्हें अपने शरीर की भी स्मृति नहीं रही।

चौ०– कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

शब्दार्थ – सुमिरु=स्मरण करो। उर=हृदय। प्रभुताई=शक्ति, पौरुष। कदराई=कायरता।

व्याख्या – सीता की प्रेम-विह्वलता को देखकर हनुमान ने कहा कि हृदय में धैर्य धारण करो तथा सेवकों को सुख प्रदान करने वाले श्रीराम का स्मरण करो। मेरे कथन पर विश्वास करते हुए अधैर्य का परित्याग करके प्रभु राम के ऐश्वर्य का स्मरण करो। व्यंजना यह है कि श्रीराम से तुम्हारा शीघ्र ही मिलन होगा।

दोहा– निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥ 15 ॥

शब्दार्थ – निसिचर=निशाचर, राक्षस, दैत्य। निकर=समूह। पतंग=पतंगा, कीड़ा। बान=बाण। कृसानु=अग्नि।

व्याख्या – राक्षसों का समूह पतंगों के समान है और श्रीराम के बाण अग्नितुल्य हैं, अतः राक्षसों को भस्म हुआ समझकर हे माता! धैर्य धारण करो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. तुलसीदास जी अद्भुत शब्द-शिल्पी थे। उन्होंने बड़े सटीक उपमानों का प्रयोग किया है। प्रायः दीपक-ज्योति से पतंगों का जलना कहा गया है, जैसे – 'दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।' दीपक वायु के झोंके से बुझ सकता है, किन्तु 'कृसानु' बुझ नहीं सकती। इसी प्रकार राम के बाण भी अमोघ हैं।

2. 'निसाचर' शब्द का साभिप्राय उल्लेख है – तात्पर्य है रात्रि में विचरण करने वाले। पतंगे भी रात्रि में ही आते हैं।

3. अलंकार – पूर्णोपमा अलंकार।

चौ०– जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

शब्दार्थ – सुधि=खबर, समाचार। बिलंबु=देर। उएँ=उदित होने पर। तम=अंधकार। बरूथ=समूह। जातुधान=राक्षस।

व्याख्या – यदि श्रीराम को तुम्हारा पता चल गया होता तो वे विलम्ब कदापि न करते। श्रीराम के बाण रूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षस रूपी अंधकार कहां रह जाएगा? अर्थात् राम के बाणों द्वारा वे अवश्य मारे जाएंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. द्वितीय पंक्ति में रूपक अलंकार है।

2. अग्नि में सभी पतंगे नहीं मरते, अतः प्रथम दृष्टांत में कुछ राक्षस बच सकते हैं। किन्तु सूर्य सम्पूर्ण अंधकार को विनष्ट कर देता है, अतः दूसरा दृष्टांत सूर्य का दिया है।

चौ०– अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥

शब्दार्थ – आयसु=आदेश। दोहाई=शपथ।

व्याख्या – हनुमान ने पुनः कहा कि हे माता! मैं अभी आपको साथ में ले चल सकता हूं, किन्तु मैं राम की शपथ खाकर कहता हूं कि मुझे यह आदेश नहीं दिया गया है। हे माता! आप कुछ दिन धैर्य धारण करें, श्रीराम शीघ्र ही वानर-सेना के साथ आएंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमानजी गीतावली में यही बात कहते हैं –
बिदा ... [illegible] ... बिगरहि सरकाज।

For More Book Download Here -http://GKTrickHindi.com

चौ०– निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

शब्दार्थ – लै जैहहिं=ले जाएंगे। तिहुँ पुर=तीनों लोक – पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल। गैहहिं=गाएंगे। जातुधान=राक्षस। भट=योद्धा, पराक्रमी, वीर।

व्याख्या – श्रीराम समस्त राक्षसों का वध करके तुम्हें ले जाएंगे तथा नारद आदि भक्त उनका यश-गान करेंगे। हनुमान के इन वचनों को सुनकर सीता ने कहा कि हे पुत्र! सभी बंदर तुम्हारे ही समान लघु आकार के तथा कमजोर हैं, जबकि राक्षस बहुत ही शक्तिशाली योद्धा हैं। अतः वानर राक्षसों का सामना कैसे करेंगे?

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां संदेह अलंकार है।

चौ०– मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा॥

शब्दार्थ – प्रगट कीन्हि=सूक्ष्म, लघु आकार त्याग कर अपना वास्तविक सुदृढ़, बलवान शरीर दिखाया। कनक=स्वर्णिम रंग का। भूधराकार=पर्वत के समान विशाल और सुदृढ़।

व्याख्या – राक्षसों की शक्ति और वानरों की कमजोर स्थिति को देखकर मुझे यह संदेह हो रहा है कि वानर राक्षसों का सामना कैसे करेंगे? इतना सुनते ही हनुमान ने अपना विशाल रूप बना लिया। उनका आकार स्वर्ण-पर्वत के समान हो गया जो अत्यंत भय उत्पन्न करने वाला, अत्यंत बलवान और पराक्रमी था।

साहित्यिक सौन्दर्य – सीताजी को श्रीराम की शक्ति पर संदेह नहीं था। उन्होंने केवल वानरों की शक्ति पर संदेह किया है, क्योंकि वानर राक्षसों का आहार होते हैं।

चौ०– सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

शब्दार्थ – भरोस=भरोसा, विश्वास। लयऊ=धारण कर लिया।

व्याख्या – हनुमान जी के विशाल आकार को देखकर सीताजी को विश्वास हो गया कि इनमें राक्षसों का वध करने की शक्ति है। तब हनुमान जी ने पुनः अपना लघु रूप धारण कर लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – यह प्रसंग मूलतः अध्यात्म रामायण में है, जहां सीताजी के आग्रह पर हनुमान अपना पर्वताकार रूप प्रकट करके सीताजी के हृदय में अपने कथन के प्रति विश्वास उत्पन्न करते हैं।

दोहा– सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥ 16 ॥

शब्दार्थ – साखामृग=बन्दर। गरुड़हि=गरुड़ को। ब्याल=सर्प।

व्याख्या – हनुमान ने कहा कि हे माता! सुनो। सामान्यतः वानरों में न अधिक बल ही होता है और न वे अधिक बुद्धिमान ही होते हैं, किन्तु प्रभु श्रीराम का ऐसा प्रताप है कि उसके बल से छोटा सर्प भी गरुड़ का भक्षण कर सकता है। तात्पर्य यह है कि सामान्यतः राक्षस बन्दरों को खा जाते हैं, जैसे गरुड़ सर्पों को खा जाता है। किन्तु श्रीराम के प्रताप से असंभव भी संभव हो सकता है अर्थात् बन्दरों में राक्षसों का वध करने की शक्ति आ जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गरुड़ और सर्प का स्वाभाविक वैर है और गरुड़ को सर्प-भक्षी कहा जाता है। सर्प द्वारा गरुड़ का भक्षण करने की बात कह कर कवि ने राम कृपा की महिमा बताई है।

2. अलंकार– दूसरी पंक्ति में दृष्टांत अलंकार है।

चौ०– मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

शब्दार्थ – प्रताप=प्रभु का प्रताप। सानी=सनी हुई, मिश्रित। सील (त० शील)=आचरण, स्वभाव। निधाना=कोष, खजाना, भंडार। अजर=जिसे वृद्धावस्था न सताए, जो बूढ़ा न हो। अमर=जिसे काल न डसे, जो कभी न मरे। सुत=पुत्र। छोहू=कृपा, अनुग्रह।

व्याख्या – हनुमान जी की भक्ति, प्रताप, तेज और शक्ति संयुक्त वाणी सुनकर सीताजी के मन में संतोष हुआ और उन्होंने श्रीराम का प्रिय पात्र समझकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम शक्ति और शील के आगार हो। इसके साथ ही तुम कभी वृद्ध न हो, तुम्हारी कभी मृत्यु न हो, तुम समस्त गुणों के पुंज बनो और तुम पर श्रीराम का सतत्-अनुग्रह बना रहे।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान ने छः काम किए थे – उन्होंने मुद्रिका दी, राम के गुणों का वर्णन किया, कथा कही, अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करवाया, श्रीराम का संदेश कहा और सीताजी को धैर्य बंधाया। इसके बदले में सीताजी ने भी उन्हें छः आशीर्वाद दिए – बल, शील, अजर, अमर, गुणनिधि और श्रीराम का अनुग्रह।

चौ०– करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥

शब्दार्थ – काना=कानों से। निर्भर=पूर्ण। नाएसि=नवाया, झुकाया। सीसा=सिर। कीसा=कीश, बन्दर।

व्याख्या – सीताजी ने हनुमान को छः वरदान दिए थे, किन्तु हनुमान को सर्वाधिक प्रसन्नता हुई – प्रभु राम के अनुग्रह-प्राप्ति के वरदान से। इस वरदान को सुनकर वह श्रीराम के प्रेम में पूर्णतः मग्न हो गए तथा सीताजी के चरणों में पुनः-पुनः प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर कहा।

चौ०– अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥

शब्दार्थ – कृतकृत्य=कृतार्थ, धन्य। अमोघ=निष्फल न होने वाला। अतिसय=अतिशय, बहुत अधिक। रूखा=वृक्ष।

व्याख्या – हनुमानजी ने कहा कि हे माता! अब मैं कृतार्थ हो गया। यह सर्वविदित है कि आपका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं हो सकता क्योंकि आप आदि शक्ति हैं। उन्होंने पुनः कहा कि हे माता! भिन्न-भिन्न प्रकार के सुंदर और स्वादिष्ट फलों से युक्त वृक्षों को देखकर मुझे बहुत [illegible]

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि के अनुसार हनुमान ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वह सीताजी के दर्शन न कर लेंगे तब तक न तो वह विश्राम करेंगे और न जल तक ग्रहण करेंगे (5/1/124)। अब कार्य सिद्ध हो चुका है, इसलिए भूख की सुधि हो आई है।

2. वह फल खाने के व्याज (बहाने) से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते हैं, इसलिए पर्यायोक्ति अलंकार हुआ। फलों को देखकर भूख लग गई, इसलिए सम अलंकार हुआ।

चौ०– सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

शब्दार्थ – बिपिन=वाटिका। सुभट=योद्धा। रजनीचर=राक्षस। भारी=विशालकाय। तिन्ह कर=उन (राक्षस योद्धाओं) का। जौं=यदि। सुख मानहु=प्रसन्न मन से।

व्याख्या – सीताजी ने कहा कि हे पुत्र! वाटिका की रक्षा विशालकाय राक्षस योद्धा कर रहे हैं।

तब हनुमान ने कहा कि यदि आप प्रसन्न रहें, तो मुझे राक्षसों का रंचमात्र भी भय नहीं है। तात्पर्य है कि यदि आप आज्ञा दें और किसी प्रकार की चिन्ता न करें, मैं तभी फल खाऊंगा; अन्यथा नहीं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां हनुमान द्वारा अपने दौत्य कर्म के निष्पादन हेतु फल खाने के बहाने रावण की शक्ति को परखने का प्रसंग है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जो दूत अपने स्वामी के कार्य हेतु आता है और बिना कोई विघ्न उत्पन्न किए चला जाता है, वह अधम है–

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः॥
अत्यर्किंचिद् सम्पाद्य गच्छन्नधम एव सः॥

दोहा– देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥ 17 ॥

शब्दार्थ – निपुन=निपुण, चतुर। कपि=हनुमान। चरन हृदयँ धरि=चरणों में ध्यान केंद्रित कर, उनका स्मरण कर।

व्याख्या – हनुमान को अत्यधिक बल और विवेक सम्पन्न देखकर सीताजी ने कहा कि हे पुत्र! तुम जाओ और श्रीराम के चरणों को हृदय में धारण करके अर्थात् उनका स्मरण करते हुए मीठे-मीठे फल खाओ।

चौ०– चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

शब्दार्थ – नाइ=झुकाकर। पैठेउ=प्रवेश किया। तरु=वृक्ष। तोरैं लागा=तोड़ने लगे, तोड़-तोड़कर गिराने लगे। भट=योद्धा। जाइ पुकारे=दरबार में जाकर रावण से शिकायत करने लगे।

व्याख्या – सीताजी की आज्ञा मिलने पर हनुमान ने उन्हें प्रणाम किया और वाटिका में प्रवेश किया। वहां जाकर वह फल खाने लगे और वृक्ष तोड़ने लगे। उस वाटिका की रक्षा के

लिए वहां अनेक योद्धा नियुक्त थे। हनुमानजी ने उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर रावण को सूचना दी।

साहित्यिक सौन्दर्य – अशोक वाटिका में उत्पात मचाकर हनुमान ने सच्चे दूत का धर्म निभाया है। तुलसी ने इस प्रसंग के द्वारा राक्षसों के संहार और लंका-दहन की भूमिका बांध दी है।

चौ०– नाथ एक आवा कपि भारी । तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

शब्दार्थ – भारी=विशालकाय। बिटप=वृक्ष। उपारे=उखाड़ डाले। रच्छक=पहरेदार, वाटिका की रक्षा करने वाले। मर्दि मर्दि=मर्दन करके, मसल करके। महि=पृथ्वी।

व्याख्या – राक्षसों ने रावण से कहा कि हे नाथ! एक विशालकाय बन्दर आया है, उसने अशोक वाटिका को उजाड़ दिया है, फलों को खाया है, वृक्षों को उखाड़ दिया है और वाटिका के रक्षकों को मर्दन करके पृथ्वी पर फेंक दिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमानजी आवश्यकतानुसार अपने शरीर को लघु अथवा विशाल बना लेते थे। सीता के समक्ष वह लघु रूप में गए थे, उनके द्वारा शंका करने पर विशाल रूप धारण किया था और पुनः लघु रूप में आ गए थे। फल खाने हेतु जाते समय वे पुनः विशालकाय हो गए थे, क्योंकि उन्हें वृक्षों को उखाड़ना था और राक्षसों का वध करना था।

चौ०– सुनि रावन पठए भट नाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे । गए पुकारत कछु अधमारे॥

शब्दार्थ – पठए=भेजा। नाना=अनेक। रजनीचर=राक्षस। संघारे=संहार कर दिया, मार गिराया। अधमारे=अधमरे।

व्याख्या – हनुमान द्वारा राक्षसों के वध का समाचार सुनकर रावण ने अनेक वीर योद्धाओं को भेजा, जिन्हें देखकर उन्होंने भीषण गर्जना की और सभी राक्षसों का संहार कर दिया। किन्तु उनमें से कुछ अधमरे ही थे, जो चिल्लाते हुए भागे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. भट नाना – वाल्मीकि ने पांच सर्गों (42-46) में रावण द्वारा योद्धाओं के भेजे जाने का उल्लेख किया है: रावण ने पहले अस्सी हजार किंकर नामक वीरों को भेजा था, तत्पश्चात् चैत्यप्रसाद के सैकड़ों राक्षसों को, फिर प्रहस्तपुत्र, जम्बुमाली, सात मन्त्रियों के पुत्रों, वीरूपाक्ष, युपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक पांच सेनापतियों को भेजा था। हनुमान ने सबका वध कर डाला। तुलसीदास ने 'भट नाना' कहकर सभी का संकेत कर दिया है। वाल्मीकि किसी भी घटना का प्रायः विस्तृत वर्णन करते हैं, यह व्यास शैली है और तुलसीदास एक या दो शब्दों अथवा पंक्तियों में ही उसका उल्लेख कर देते हैं, यह समास शैली है।

2. पुकारत – गोस्वामीजी ने पहले कहा था कि 'कछु जाइ पुकारे' अर्थात् सभा में जाकर आर्त्तनाद किया था। यहां 'पुकारत' शब्द का प्रयोग है, जिसमें व्यंजना यह है कि अधमरे राक्षस रास्ते से ही चीत्कार कर रहे हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ॰– पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

शब्दार्थ – पुनि=पुनः, फिर। पठयउ=भेजा। अच्छकुमारा=रावण पुत्र अक्षय कुमार। सुभट=निपुण योद्धा, वीर सैनिक। बिटप=वृक्ष। गहि=पकड़ कर, हाथ में लेकर। तर्जा=धमकाया। निपाति=गिराकर, मारकर। महाधुनि=भयंकर ध्वनि।

व्याख्या – कई सेनापतियों तथा मंत्रियों के पुत्रों का वध सुनकर रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार को भेजा। वह अपने साथ असंख्य वीर सैनिकों को लेकर चला। हनुमान ने उन्हें आता देखकर एक पेड़ उखाड़ लिया और उन्हें भयभीत किया, फिर अक्षय कुमार सहित अधिकांश का वध कर डाला और बहुत जोरों से गर्जना की।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान रावण की हर रणनीति का मुकाबला करते हुए उसके सामने लगातार नई चुनौती पेश करते जा रहे हैं।

दोहा– कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥ 18 ॥

शब्दार्थ – मर्देसि=क्षत-विक्षत कर दिया। मर्कट=बन्दर। बल भूरि=अत्यधिक शक्तिशाली।

व्याख्या – हनुमान ने कुछ राक्षसों को मार डाला, कुछ को मसल डाला और कुछ को पकड़कर धूल में मिला दिया। जो शेष बचे उनमें से कुछ ने रावण के पास जाकर बताया कि हे प्रभु! बन्दर अत्यधिक बलशाली है।

साहित्यिक सौन्दर्य – किसी राक्षस को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि उसका (रावण का) पुत्र भी मारा गया है। रावण ने अनुमान लगा लिया कि वह भी मार डाला गया है।

चौ॰– सुनि सुत बध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बांधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥

शब्दार्थ – सुत=पुत्र। रिसाना=क्रुद्ध हुआ। जनि=नहीं। बांधेसु=बंदी बना कर ले आओ। आही=है।

व्याख्या – अपने पुत्र अक्षय कुमार के वध का समाचार सुनकर रावण क्रोध मे आ गया और अपने सर्वाधिक शक्तिशाली पुत्र मेघनाद को भेजा। उसने मेघनाद को यह निर्देश दिया कि हे पुत्र! तुम बंदर का वध मत करना, उसे बांध कर यहां ले आओ, जिससे मैं जान सकूं कि यह बंदर कहां का है।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण को संदेह हो गया कि यह सामान्य बंदर नहीं है। वह इन्द्रादि द्वारा भेजा गया कोई असाधारण योद्धा है।

चौ॰– चला इंद्रजित अतुलित जोधा । बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

शब्दार्थ – इन्द्रजित=रावण का बलवान पराक्रमी पुत्र मेघनाद जिसने युद्ध में इन्द्र को पराजित कर 'इन्द्रजीत' पदवी पाई थी। अतुलित=जिसके बराबर कोई दूसरा न हो। निधन=मृत्यु। दारुन=विकट। कटकटाइ=क्रोध से दांतों को किटकिटाते हुए। धावा=दौड़ा।

व्याख्या – इन्द्र को जीतने वाला असाधारण योद्धा मेघनाद अकेले ही चल पड़ा। अपने भाई अक्षय कुमार की मृत्यु सुनकर वह बहुत क्रोध में आ गया था। हनुमान ने देखा कि कोई अत्यंत बलशाली योद्धा आ रहा है। अतः वह दांत किटकिटाकर गर्जन करते हुए दौड़े।

साहित्यिक सौन्दर्य – वह अकेले ही चला था, किन्तु बाद में रावण ने उसकी सहायता के लिए अन्य सैनिकों तथा उसके लिए रथ भेज दिया था।

चौ॰– अति बिसाल तरु एक उपारा । बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥

शब्दार्थ – तरु=वृक्ष। उपारा=उखाड़ लिया। बिरथ=रथ से गिरा दिया। लंकेस कुमारा=लंका का राजकुमार। महाभट=महान योद्धा। गहि=पकड़कर। मर्दइ=मसलने लगा।

व्याख्या – हनुमान ने एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और उसके द्वारा मेघनाद को रथ-विहीन कर दिया तथा उसके सारथी और घोड़े को मार डाला। (मेघनाद मायावी था। वह आकाश में अन्तर्ध्यान हो गया था, अतः बच गया।) उसके साथ जो शक्तिशाली योद्धा आए थे, हनुमान उनको भी पकड़कर मसलने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार है।

चौ॰– तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा । भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक छन मुरुछा आई॥

शब्दार्थ – तिन्हहि=उन सब राक्षसों को। निपाति=मारकर। ताहि सन=उससे, मेघनाद से। बाजा=मल्ल युद्ध करने लगे, भिड़ गए। जुगल=दोनों। गजराजा=हाथी। मुठिका=मुष्टिका, घूंसा।

व्याख्या – हनुमान मेघनाद के साथ आए हुए योद्धाओं का वध करके मेघनाद से भिड़ गए। वे दोनों उसी प्रकार मल्ल युद्ध कर रहे थे मानो दो हाथी भिड़ गए हों। हनुमान उस पर एक मुष्टि का प्रहार करके और यह समझकर कि वह मर गया एक वृक्ष पर चढ़ गए। मेघनाद मरा नहीं था बल्कि क्षण भर के लिए मूर्च्छित हो गया था।

साहित्यिक सौन्दर्य – द्वितीय चरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

चौ॰– उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

शब्दार्थ – बहोरि=पुनः, होश आने पर। प्रभंजन=वायु। जाया=पुत्र।

व्याख्या – मूर्छा समाप्त होने पर वह पुनः उठकर खड़ा हो गया और विविध प्रकार से मायायुद्ध करने लगा। किन्तु किसी भी प्रकार से वह पवनपुत्र हनुमान को जीत न सका।

दोहा– ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥ 19 ॥

शब्दार्थ – तेहिं=उसने, मेघनाद ने। साँधा=संधान किया, चलाया, प्रयोग किया। ब्रह्मसर=ब्रह्मा द्वारा वरदान रूप में दिए गए अस्त्र, बाण। न मानउँ=उसके प्रभाव को स्वीकार नहीं करता।

व्याख्या – समस्त मायावी शक्तियों के निष्फल होने पर मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का संधान किया। तब हनुमान ने मन में विचार किया कि यदि मैं ब्रह्मास्त्र का सम्मान नहीं करता हूं तो इसकी अपार महिमा समाप्त हो जाएगी।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – यद्यपि हनुमान ब्रह्मास्त्र से भी अवध्य एवं अबंध्य थे, ब्रह्मा ने उन्हें वरदान दिया था कि वह किसी भी अस्त्र से बांधे नहीं जा सकते (अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि। पिता महादेव वरो ममापि हि समागतः); फिर भी उन्होंने ब्रह्मा की मर्यादा की रक्षा हेतु तथा रावण की सभा देखने के निमित्त स्वयं को बंधवा लिया।

चौ०– ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥

शब्दार्थ – तेहिं=मेघनाद ने। परतिहुँ=गिरते हुए भी। कटकु=राक्षस सेना। संघारा=मार डाला, वध कर दिया।

व्याख्या – जब मेघनाद ने हनुमान पर ब्रह्मास्त्र का प्रहार किया, तब वह वृक्ष से नीचे गिर गए, किन्तु गिरते हुए भी उन्होंने सेना के बहुत बड़े भाग का संघार कर डाला। मेघनाद ने देखा कि वह मूर्च्छित हो गए हैं, अतः वह उन्हें नागपाश से बांध कर ले गया।

साहित्यिक सौन्दर्य – मेघनाद को वरुण द्वारा नागपाश प्रदान किया गया था।

चौ०– जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

शब्दार्थ - भवानी=पार्वती। भवबंधन=सांसारिक बंधन अर्थात् माया।

व्याख्या – शिवजी पार्वती से कहते हैं कि जिस प्रभु श्रीराम का नाम जप करके ज्ञानी माया के बंधन से मुक्त हो जाते हैं, क्या उनका दूत कभी बंधन में आ सकता है? वास्तव में अपने स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए ही स्वयं को हनुमान ने बंधवा लिया था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. हनुमान ने कहा भी था –

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा॥

हनुमान ने स्वयं को बंधवा कर रावण और उसके वैभव को देखा, उसका मान-मर्दन किया और लंका को जला डाला।

2. अलंकार – तृतीय चरण में काकु वक्रोक्ति अलंकार।

चौ०– कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

शब्दार्थ – धाए=दौड़े। कौतुक=जिज्ञासा, कौतूहल। प्रभुताई=ऐश्वर्य, वैभव।

व्याख्या – हनुमान के बांधे जाने का समाचार सुनकर राक्षस उनको देखने की जिज्ञासा से दौड़ कर सभा में आ गए। उनके मन में कौतूहल था; क्योंकि अब तक उन्होंने ऐसा विशालकाय और शक्तिशाली बन्दर न देखा था और न सुना था। हनुमान ने रावण की सभा में पहुंचकर उसका वैभव देखा जो अवर्णनीय था।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान के लंका-आगमन के दो मुख्य प्रयोजन थे – सीताजी का अन्वेषण तथा रावण की शक्ति का आकलन। अपने प्रथम प्रयोजन में सफल होने के पश्चात् अब वे दूसरे प्रयोजन की सफलता की ओर अग्रसर हैं।

चौ०– कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

शब्दार्थ – कर=हाथ। सुर=देवता। दिसिप=दिक्पाल, लोकपाल। सकल=सब। भृकुटि=भौंहें। सभीता=रावण के भय से आतंकित। संका=भय। अहिगन=सर्पों का समूह। असंका=शंकारहित, भयरहित।

व्याख्या – हनुमान ने देखा कि रावण की सभा में सभी देवता और लोकपाल विनम्र भाव से हाथ जोड़े खड़े हैं। वे सभी भयभीत हैं और रावण की भृकुटी को ही देख रहे हैं (कि कहीं वह क्रुद्ध न हो जाए और उनका वध न कर दे)। उसकी इस प्रभुता को देखकर भी हनुमान भयभीत नहीं हुए। वह वैसे ही निःशंक थे, जैसे सर्पों के मध्य गरुड़ (सर्प गरुड़ का आहार होते हैं)।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. दिशाएं आठ मानी गई हैं और प्रत्येक दिशा का एक-एक रक्षक होता है।

2. 'हनुमन्नाटक' में रावण के वैभव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अष्ट लोकपाल उसके चरणों की वन्दना करते थे, इन्द्र माली का कार्य करता था, सूर्य द्वारपाल था, चन्द्रमा उसका छत्र धारण करता था, पवन और वरुण सफाई का कार्य करते थे तथा अग्नि रसोई में मौजूद रहता था।

3. अलंकार – चतुर्थ चरण में उदाहरण अलंकार है।

दोहा– कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥ 20 ॥

शब्दार्थ – कपिहि=हनुमान को। बिलोकि=देखकर। बिहसा=मुस्कुराया, हंसा। दुर्बाद=अपशब्द, दुर्वचन। सुत बध=अक्षय कुमार का वध। सुरति=स्मरण करके। बिषाद=दुख।

व्याख्या – हनुमान को देखकर रावण उसको अपशब्द कहते हुए जोरों से हंसने लगा, किन्तु अपने पुत्र अक्षय कुमार के वध की स्मृति आते ही उसके हृदय में दुख उत्पन्न हो गया।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां रावण के तन, मन और वचन, – तीनों की दशाएं दिखाई गई हैं। वह हनुमान को देखकर क्रोध में आया (तन की दशा), दुर्बाद कहा (वचन) और मन में दुख हुआ, अतः यहां समुच्चय अलंकार है।

चौ०– कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥

शब्दार्थ – कवन=कौन। तैं=तू। कीसा (सं॰ कीश)=बन्दर। घालेहि=नष्ट करना। खीसा=उजाड़ना। की=क्या। धौं=कभी। मोही=मेरा नाम, प्रभुत्व, बल। असंक=निःशंक, निर्भीक।

व्याख्या – रावण ने कहा कि हे वानर! तू कौन है और किसके बल से तूने अशोक वाटिका को उजाड़कर नष्ट कर दिया है? क्या तूने अपने कानों से मेरे यश और प्रताप को नहीं सुना है? अरे दुष्ट! मैं देखता हूं कि तू बहुत निर्भीक है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. केहि के बल – तात्पर्य है कि क्या तुम इन्द्र, कुबेर, यम, विष्णु, वरुण आदि में से किसी के बल अथवा प्रेरणा से यहां आए हो?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

2. की धौं श्रवन – तात्पर्य यह है कि यदि तुमने मेरे प्रताप को सुना होता तो ऐसा कार्य न करते और इतने निर्भीक भी न होते।

चौ०– मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥

शब्दार्थ – केहिं=किस, कौन से। प्रान कइ=प्राण जाने, मरने का। बाधा=भय। निकाया=समूह। बिरचति=निर्माण करती है, रचती है।

व्याख्या – रावण ने पुनः प्रश्न किया कि राक्षसों ने क्या अपराध किया था, जो तूने उन्हें मार डाला? हे धूर्त! क्या तुझे अपने प्राणों का भय नहीं?

रावण के उपर्युक्त प्रश्नों को सुनकर हनुमान ने उत्तर दिया कि हे रावण! सुन, जिसकी शक्ति को प्राप्त कर माया ब्रह्माण्ड-समूहों की सृष्टि करती है ......!

साहित्यिक सौन्दर्य – माया – ईश्वर निर्गुण, निर्विशेष और निराकार है। मायोपहित होकर चैतन्य ब्रह्म जगत् की सृष्टि करता है। 'शांकर मत' के अनुसार ब्रह्म अपनी शक्ति द्वारा 'माया' में प्रतिबिंबित होकर जीव बनता है और इसी माया से अनादि काल से सृष्टि होती रहती है।

चौ०– जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

शब्दार्थ – बिरंचि=ब्रह्मा, विधाता, सृष्टि का रचयिता। हरि=विष्णु। ईसा=शंकर। हरत=नाश, संहार। दससीसा=रावण। सीस=सिर। सहसानन=शेषनाग। अंडकोस=ब्रह्मांड। गिरि=पर्वत। कानन=जंगल।

व्याख्या – हनुमान जी आगे कहते हैं – जिनके बल पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस जगत् की रचना, पालन एवं संहार करते हैं; जिसकी शक्ति से शेषनाग पर्वत और वन समेत पूरे ब्रह्माण्ड को अपने सिर पर धारण करते हैं ......।

साहित्यिक सौन्दर्य – कबीर आदि निर्गुण संतों ने यह प्रतिपादित किया था कि दशरथ-सुत राम परब्रह्म नहीं हैं। मानस की रचना का उद्देश्य उनके इन विचारों का खण्डन और दशरथ पुत्र राम के ब्रह्मत्व को प्रमाणित करना है। तुलसीदास यह मानते थे कि उनके आराध्य श्रीराम परब्रह्म परमात्मा हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उन्हीं की शक्तियां हैं। उन्होंने मानस के प्रारम्भ में, मंगला में, उनके इसी स्वरूप का इन शब्दों में उल्लेख किया है–

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।

चौ०– धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

शब्दार्थ – धरइ देह=शरीर धारण करना, अवतार लेना। सुरत्राता=देवताओं का रक्षक। सिखावनु दाता=शिक्षा देने वाले। हर कोदंड=शिवजी का धनुष। भंजा=नष्ट कर दिया। नृप दल=राजाओं का समूह। मद=अहंकार। गंजा=नष्ट कर दिया।

व्याख्या – जो देवताओं की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के शरीर धारण करता है अर्थात् विविध रूपों में अवतरित होता है, तो तुम्हारे जैसे दुष्टों को समुचित शिक्षा देता है अर्थात् दण्ड देता है, जिसने तुम्हारे सहित जनकपुरी में उपस्थित सभी राजाओं का अहंकार नष्ट करते हुए शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ डाला था, और जिसने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि जैसे समस्त अतुलनीय शक्तिशालियों का वध किया है ......।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता' – परब्रह्म परमात्मा स्वभाव से निर्गुण हैं, किन्तु वह संतों की रक्षा, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेते हैं। गीता के अनुसार –

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ (4/8)

ईश्वर के मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के अवतार इसी हेतु हुए।

2. खर दूषन – ये रावण के सौतेले भाई थे और विश्रवा मुनि के पुत्र थे। 'खर' की माता का नाम 'पुष्पोत्कटा' और 'दूषन' की माता का नाम 'वाका' था। ये दोनों सूर्पणखा की रक्षा के लिए दण्डकारण्य में चौदह हजार राक्षसी सेना के साथ रहते थे। जब लक्ष्मण ने सूर्पणखा का नाक-कान काटा था, तब वह पहले इन्हीं के पास गई थी। उन दोनों ने अपनी पूरी सेना सहित राम पर आक्रमण किया था। श्रीराम ने पंचवटी में सभी का वध कर डाला था।

3. त्रिसिरा – इसकी सृष्टि शंकर ने की थी। इसके तीन सिर, तीन पैर, छः हाथ और नौ आंखें थीं। विलोचन नामक राक्षस की बहन इसकी माता थी। श्रीराम ने इसका भी वध किया था।

4. बाली – यह किष्किन्धा का राजा, सुग्रीव का ज्येष्ठ भ्राता और अंगद का पिता था। एक बार ब्रह्मा की आंखों से गिरे आंसुओं से एक बन्दर उत्पन्न हुआ; जिसका नाम ऋक्षराज था। वह अपनी छाया देखकर जल में कूद पड़ा। तब उसका रूप एक सुन्दर स्त्री का हो गया। उसी के गर्भ से इंद्र ने बाली और सूर्य ने सुग्रीव को उत्पन्न किया था।

दोहा– जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥ 21॥

शब्दार्थ – लवलेस=रंचमात्र। चराचर=जड़ और चेतन। झारि=समस्त। तासु=उनका। जा करि=जिसकी। हरि आनेहु=अपहरण किया है।

व्याख्या – जिसकी रंचमात्र की शक्ति पाकर तुमने जड़-चेतन, समस्त जगत पर विजय प्राप्त की है और जिसकी पतिव्रता पत्नी (सीता) का तुमने अपहरण किया है, मैं उसका दूत हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां तक रावण के दो प्रश्नों का उत्तर हो गया कि तुम कौन हो? और किसके बल से वन को उजाड़ा है? इसके पश्चात् वह इस प्रश्न का उत्तर देंगे कि 'की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही।'

चौ०– जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥

शब्दार्थ – प्रभुताई=ऐश्वर्य। समर=युद्ध। जसु=यश, कीर्ति। बिहसि=जोर से हंसकर। बिहरावा=बहला दिया, टाल दिया।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

122

व्याख्या – हनुमान ने व्यंग्यात्मक शैली में कहा कि मैं तुम्हारी प्रभुता से भी भली-भांति परिचित हूं। तुमने सहस्रबाहु से युद्ध किया था, जिसका परिणाम मुझे ज्ञात है। बालि से युद्ध करके तुमने जो यश अर्जित किया था, उसका भी मुझे ज्ञान है।

हनुमान के इस कथन को सुनकर रावण जोरों से हंसा और बात को टाल दिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. रावण की एक विशेषता थी कि वह प्रायः युद्ध करने के लिए अकेले ही जाता था। इसके दो कारण थे – (क) शत्रु उसके पराक्रम से भयभीत हो जाए तथा (ख) यदि कदाचित् वह पराजित हो जाए तो लंकावासियों को इसकी जानकारी न हो सके। वह युद्ध में तीन लोगों से हारा था – बालि, सहस्रबाहु और बलि। हनुमान उसकी कमजोरी जानते हैं। सभासद कुछ न समझ सकें, इसीलिए अपनी झेंप मिटाने के लिए रावण जोर से हंसने लगा, जिससे दरबारी समझें कि हनुमान उसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

2. सहस्रबाहु – सहस्रबाहु अथवा सहस्रार्जुन कृतवीर्य का पुत्र और माहिषमती का राजा था। भगवान् दत्तात्रेय के आशीर्वाद से वह जब चाहता था उसके एक हजार भुजाएं हो जाती थीं। एक बार वह अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जलविहार कर रहा था। संयोग से उसी समय रावण भी नर्मदा में स्नान करने और शिवजी का पूजन करने आया। सहस्रबाहु ने अपनी भुजाओं से नदी की धारा को रोक दिया। जिससे उसमें बाढ़ आ गई और जल उल्टा बहने लगा। इससे रावण द्वारा शिवार्चन के लिए रखी गई पूजन-सामग्री जल में बह गई। अतः वह रुष्ट होकर आया और सहस्रार्जुन से युद्ध करने लगा। सहस्रार्जुन उसे बांधकर अपने नगर में ले आया। कुछ दिनों के पश्चात् पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे बन्धन-मुक्त कराया।

3. बालि – एक बार रावण दिग्विजय के लिए निकला था। उस समय बालि को जीतने के लिए किष्किन्धा गया। यह ज्ञात होने पर कि बालि समुद्रतट पर सन्ध्यावन्दन करने गया है, वह भी वहां गया और चुपचाप बालि को पकड़ने की चेष्टा करने लगा। किन्तु बालि रावण की धूर्तता को समझ गया और उसे पकड़कर अपनी कांख में दबा लिया तथा उसको दबाए हुए ही सन्ध्यावन्दन किया और उसे वैसे ही बगल में दबाए किष्किन्धा लौट आया।

कहीं-कहीं उल्लेख है कि बालि ने उसे बहुत समय तक अपनी कांख में दबाए रखा।

4. अलंकार – व्याजनिन्दा।

चौ०– खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥

शब्दार्थ – रूखा=वृक्ष। मारहिं=मारने लगे। कुमारग गामी=दुराचारी।

व्याख्या – यहां से हनुमान अपनी शैली बदल देते हैं और विनम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे बहुत भूख लगी थी, इसलिए फलों को खाया। और वानर स्वभाव से चंचल होता है, इसलिए मैंने वृक्षों को तोड़ डाला। हे राजन! सभी को अपना शरीर प्रिय होता है, फिर मुझे दुराचारी राक्षस मारें – यह कैसे सहन होता?

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां 'प्रभु' और 'स्वामी' संबोधन में कोई आपत्ति नहीं करनी चाहिए। दूत का यह कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकतानुसार कोमल अथवा कठोर शब्दावली का प्रयोग करे।

चौ०– जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

शब्दार्थ – तनयँ=पुत्र। कीन्ह चहउँ=करना चाहता हूं।

व्याख्या – हनुमान पुनः कहते हैं कि जिन लोगों ने मुझे मारा, मैंने भी उन्हें मारा। इस पर भी आपके पुत्र ने मुझे नागपाश में बांध लिया। किन्तु अपने बांधे जाने से मैं लज्जित नहीं हूं, क्योंकि मैं अपने स्वामी का कुछ कार्य करना चाहता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – स्वामी का कौन-सा कार्य करना चाहते हैं, यह नहीं बताया। वस्तुतः रावण-सभा में जाकर वह उसकी शक्ति का अनुमान करना चाहते थे और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के द्वारा लगभग यही बात कही गई है–

केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्॥ (18, सर्ग – 50)

चौ०– बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥

शब्दार्थ – कर=हाथ। मान=अहंकार, घमण्ड। सिखावन=सीख, सद्परामर्श, सलाह। भ्रम=शंका, संदेह, अविवेक। भजहु=भजन करो, उपासना करो, भक्त बन जाओ।

व्याख्या – हे रावण! मैं हाथ जोड़कर विनय-निवेदन करता हूं, मिथ्याभिमान त्याग कर मेरे अनुरोध को स्वीकार कर लो। तुम अपने वंश की मर्यादा पर ध्यान दो अर्थात् तुम्हारा जन्म पुलस्त्य मुनि के उत्तम कुल में हुआ है। अतः इस भ्रम का परित्याग कर दो कि श्रीराम साधारण मानव हैं। वस्तुतः वह परात्पर ब्रह्म हैं, भक्तों का भय-निवारण करने वाले हैं। अतः उनकी उपासना करो।

साहित्यिक सौन्दर्य – तुलसी स्वभावतः अपनी रचनाओं में श्रीराम के द्रोही को बिना किसी दुराव के, शिष्टतापूर्वक एवं शालीनता से धिक्कारते हैं। हनुमान द्वारा रावण को भांति-भांति से समझाने में यही प्रवृत्ति दृष्टव्य है।

चौ०– जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

शब्दार्थ – काल=यमराज, मृत्यु का देवता। चराचर=जड़ और चेतन सभी को। बयरु=वैर, शत्रु-भाव।

व्याख्या – देवताओं और राक्षसों तथा सभी जड़-चेतन जीवों का संहार करने वाला काल भी उनसे अत्यंत भयभीत रहता है। ऐसे कालातीत श्रीराम से कभी भी शत्रु-भाव नहीं रखना चाहिए। अतः मेरे निवेदन को स्वीकार करके सीता जी को उन्हें वापस दे दीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – श्रीराम कालातीत हैं। वहां काल की गति नहीं है। मानस में ही कहा गया है कि लव, निमेष, वर्ष, कल्प आदि श्रीराम के बाण हैं, अर्थात् बाण के समान काल सर्वत्र गतिशील रहता है, सभी का संहार करता रहता है। वही काल श्रीराम का धनुष भी है अर्थात् उनके समक्ष काल स्थिर हो जाता है। श्रीराम पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता है;

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दोहा– प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ 22 ॥

शब्दार्थ – प्रनतपाल=शरणागत वत्सल। खरारि=खर नामक राक्षस के शत्रु। बिसारि=विस्मृत कर, ध्यान न देकर।

व्याख्या – खर नामक राक्षस का वध करने वाले श्रीराम शरणागत वत्सल तथा दया के सागर हैं। यदि तुम उनकी शरण में जाओगे तो वह तुम्हारे सभी अपराधों को विस्मृत करके अपनी शरण में आश्रय दे देंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां तुलसी द्वारा श्रीराम की शरणागति की अनुकंपा का वर्णन किया गया है।

चौ॰– राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥

शब्दार्थ – पंकज=कमल। उर=हृदय। अचल=स्थिर। पुलस्ति=रावण के पूर्वज पुलस्त्य नामक ऋषि। जसु=यश, कीर्ति। बिमल=निर्मल। मयंका (मृगांक)=चन्द्रमा। ससि=चन्द्रमा। जनि=मत।

व्याख्या – हनुमान ने रावण को समझाया कि तुम श्रीराम के चरण-कमलों को हृदय में धारण करो अर्थात् उनके प्रति भक्ति भाव रखो और लंका में निर्विघ्न राज्य करो। पुलस्त्य मुनि का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है, तुम उसमें कलंक न बनो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मयंका (चन्द्रमा) – देवताओं के गुरु वृहस्पति की पत्नी का नाम तारा था। चन्द्रमा ने उनकी इच्छा से उसे स्वयं रख लिया और वृहस्पति के कहने पर भी वापस नहीं किया। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम बुध है। यही चंद्रमा में कलंक है। रावण ने सीता का हरण किया है। हनुमान उसे इस कलंक से बचाना चाहते हैं।

2. पुलस्ति (पुलस्त्य) – ब्रह्म के दस मानस पुत्रों में एक यह भी थे। ये विश्रवा मुनि के पिता तथा रावण के पितामह थे।

3. अलंकार – दूसरी पंक्ति में रूपक अलंकार।

चौ॰– राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥

शब्दार्थ – गिरा=वाणी। मद=अहंकार। बसन हीन=निर्वस्त्र, नंगी। सुरारी (सुरारि)=देवताओं के शत्रु। भूषित=अलंकृत। बर=सुन्दर।

व्याख्या – राम नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं है अर्थात् भगवद्भक्ति के बिना जीवन निरर्थक है। हे रावण! इस तथ्य को मोह और अहंकार त्यागकर विचारपूर्वक देख-भाल लो। भगवद्भक्ति के बिना जीवन वैसे ही सारहीन है, जैसे समस्त आभूषणों को धारण किए हुए नंगी स्त्री अशोभनीय है। स्त्रियों के 16 शृंगार माने गए हैं, वह 15 सौन्दर्य-प्रसाधनों से युक्त हो, किन्तु नग्न हो तो कदापि सुंदर न लगेगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. राम नाम बिनु – रावण कभी श्रीराम का नाम नहीं लेता था। वह उनके लिए नृप, रिपु, नर, तापस, मनुज आदि शब्दों का ही प्रयोग करता था। इसीलिए हनुमान ने उसे 'राम' नाम की महिमा समझायी और उसके जप का अनुरोध किया।

2. अलंकार – प्रतिवस्तूपमा।

चौ॰– राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

शब्दार्थ – बिमुख=विरोध करने वाले। प्रभुताई=ऐश्वर्य, वैभव। जाइ रही=अतीत में प्राप्त। पाई=वर्तमान काल में जो प्राप्त है। बिनु पाई=भविष्य में जो प्राप्त होने वाली है। सजल मूल=नदियों के जल का मूल स्रोत। सरितन्ह=सरिताएं, नदियां। बरषि=वर्षा। गएँ=बीतने पर।

व्याख्या – श्रीराम की उपेक्षा करने पर अर्थात् उनकी भक्ति के बिना अतीत काल से प्राप्त, वर्तमानकाल में प्राप्त हो रही तथा भविष्य में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति और प्रभुता उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार पर्वतों अथवा जलाशयों से वर्षा द्वारा नदी को प्राप्त होने वाला जल वर्षा बीत जाने पर पुनः बह जाता है और नदियां सूख जाती हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – दृष्टान्त अलंकार।

चौ॰– सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

शब्दार्थ – पन रोपी=प्रतिज्ञापूर्वक। बिमुख=प्रतिकूल। त्राता=रक्षा करने वाला, संकट से मुक्त करने वाला। कोपी (सं॰ कोपि)=कोई भी। अज=ब्रह्मा।

व्याख्या – हे रावण! सुनो! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि श्रीराम के प्रतिकूल होने पर कोई भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। तुम्हारा राज्य, कुल, सम्पत्ति – सभी कुछ नष्ट हो जाएगा। हजारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी राम-विरोधी की रक्षा नहीं कर सकते।

साहित्यिक सौन्दर्य – राम की महिमा के वर्णन द्वारा रावण को समझाने का हनुमान का ऐसा ही प्रयास वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में भी मिलता है।

दोहा– मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥ 23 ॥

शब्दार्थ – मोहमूल=जिसका कारण मोह है। सूल प्रद=कष्टदायक। तम अभिमान=तामसिक अहंकार।

व्याख्या – मोह समस्त मानसिक रोगों का मूल है। उसी से काम, क्रोध, लोभ आदि कष्टदायक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः तुम मोह और तामसिक अहंकार को छोड़ दो तथा दया के सागर भगवान् श्रीराम की उपासना करो।

साहित्यिक सौन्दर्य – मानस में ही कहा गया है – 'मोह सकल ब्याधिन कर मूला, तेहिं ते पुनि उपजहिं बहु सूला।' अर्थात् रावण में मोह और अभिमान दोनों थे। वह मोहवश श्रीराम को साधारण मानव समझता था और अभिमानवश समस्त देव-दानवों को अपने वश में समझता था।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ॰— जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

शब्दार्थ – हित=अनुकूल। बानी=वचन। बिरति=वैराग्य। नय=नीति। सानी=संयुक्त।

व्याख्या – यद्यपि हनुमान ने भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीति से युक्त रावण के लिए अत्यंत हितकर वचन कहा, फिर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह महाअभिमानी हनुमान के वचनों की उपेक्षा करते हुए जोरों से हंसा (उसके हंसने में हनुमान के प्रति उपहास की व्यंजना है) और कहा कि हमें एक बन्दर के रूप में बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है।

साहित्यिक सौन्दर्य – उसके कथन में व्यंग्य यह है कि एक बन्दर मनुष्य की उपासना का उपदेश दे रहा है, जबकि दोनों मेरे आहार हैं।

चौ॰— मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

शब्दार्थ – खल=दुष्ट। अधम=नीच। उलटा=तेरे कथन के विपरीत। मतिभ्रम=बुद्धि भ्रष्ट होना, सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझना।

व्याख्या – हंसने के पश्चात् रावण तत्काल क्रोध में आ गया और कहा कि अरे दुष्ट! तेरी मृत्यु आसन्न है और अरे नीच! तू मुझे उपदेश दे रहा है?

तब हनुमान ने कहा कि तू जो कह रहा है, उसके विपरीत होगा अर्थात् मेरी नहीं, तेरी मृत्यु निकट आ गई है। मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूं कि तुझे मतिभ्रम हो गया है अर्थात् तेरा विवेक नष्ट हो गया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – जिसे मतिभ्रम हो जाता है उसे अनुकूल वस्तुएं प्रतिकूल तथा प्रतिकूल वस्तुएं अनुकूल प्रतीत होने लगती हैं। हित को अहित तथा अहित को हित समझना ही भ्रम है।

चौ॰— सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

शब्दार्थ – खिसिआना=लज्जित होना, क्रोधित होना। बेगि=शीघ्र, तुरन्त। मूढ़=मूर्ख। सचिवन्ह=मंत्रियों।

व्याख्या – हनुमान के उपर्युक्त वचनों को सुनकर रावण बहुत लज्जित हुआ और क्रोध में आ गया तथा राक्षसों को आदेश दिया कि शीघ्र ही इस मूर्ख का वध क्यों नहीं कर देते!

इतना सुनते ही राक्षस उनको मार डालने के लिए दौड़े। तभी मंत्रियों के सहित विभीषण आ गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के अनुसार विभीषण सभा में पहले से ही विद्यमान थे, मानस में अब आए हैं।

चौ॰— नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

शब्दार्थ – बहूता=बहुत, अत्यंत। आन=अन्य। गोसाँई=स्वामी। मंत्र=सलाह सम्मति। पठइअ=लंका से निकाल बाहर करो।

व्याख्या – विभीषण ने सभा में प्रवेश करते ही रावण को प्रणाम किया और अत्यंत विनम्र वाणी में बोले कि दूत अवध्य होता है, इसलिए इसकी हत्या न कीजिए। हे स्वामिन्! इसको कोई दूसरा दण्ड दे दीजिए। विभीषण की इस मंत्रणा को सभी राक्षसों ने उचित बताया।

सभा में उपस्थित सभी की सम्मति सुनकर रावण ने हंसकर कहा कि अच्छा, इसका अंग-भंग कर मुक्त कर दो।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि रामायण में दूतों को दण्डित करने के विभिन्न उपाय बताते हुए विभीषण रावण को इस प्रकार समझाते हैं –

वैरुप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्षण सन्निपातः।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्,
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥

अर्थात् किसी अंग को भंग कर देना, कोड़े से पिटवाना, सिर मुड़वा देना तथा शरीर में कोई चिह्न दाग देना – ये ही दण्ड दूत के लिए उचित बताये गये हैं। उसके लिए वध का दण्ड तो मैंने कभी सुना ही नहीं है।

दोहा— कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ 24 ॥

शब्दार्थ – बोरि=डुबो कर। पट=वस्त्र। पावक=आग।

व्याख्या – रावण ने सभी राक्षसों को समझा कर कहा कि बन्दर को अपनी पूंछ सर्वाधिक प्रिय होती है, इसलिए वस्त्रों को तेल में डुबो कर इसकी पूंछ में बांध दो और तब आग लगा दो।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण ने बड़ी चतुराई से कहा था कि कपड़ों को पहले तेल में डुबाओ, तब पूंछ में बांधो। कपड़ा बांधने के पश्चात् ऊपर से तेल डालने में कुछ कपड़ा सूखा रह जाने की संभावना थी। संभवतः रावण के मन में यह रहा होगा कि इस पद्धति को अपनाने से केवल पूंछ ही नहीं जलेगी, पूरा शरीर जल जाएगा और वह हत्या के दोष से मुक्त भी रहेगा।

चौ॰— पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

शब्दार्थ – बानर=हनुमान। नाथहि=स्वामी। प्रभुताई=शक्ति, सामर्थ्य।

व्याख्या – पूंछ से रहित बानर वहां (अपने प्रभु श्रीराम के पास) जाएगा और यह धूर्त अपने स्वामी को यहां ले आएगा और तब मैं देखूंगा कि जिसकी इसने बहुत प्रशंसा की है, वह कितना शक्तिशाली है?

साहित्यिक सौन्दर्य – राम की शक्ति पर संदेह किया गया है, अतः यहां संदेह अलंकार

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

125 चौ॰– वचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना । लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥

शब्दार्थ – सारद=सरस्वती। जातुधान=राक्षस। रचना=पूंछ में आग लगाने का उपक्रम, तैयारी।

व्याख्या – रावण के उपर्युक्त कथन को सुनकर हनुमानजी मुस्कुराने लगे और समझ गए कि सरस्वती ने उनकी सहायता की है। (सरस्वती के दो अर्थ होते हैं – वाणी और देवी। यहां दोनों अर्थ लग जाएंगे। अर्थात् रावण के वचन ने उनकी सहायता की अथवा सरस्वती देवी ने उनकी सहायता की।)

रावण का आदेश मिलते ही मूर्ख राक्षस वही कार्य करने लगे अर्थात् हनुमान की पूंछ में तेल में डुबाए कपड़े बांधने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मन मुसुकाना – हनुमान क्यों मुस्कुराये ? इसके तीन कारण हो सकते हैं – (क) रावण की मूर्खता पर मुस्कुराये, (ख) अपने अनुकूल कार्य समझ कर मुस्कुराये तथा (ग) सरस्वती की सहायता समझकर मुस्कुराये।

2. जातुधान – यह शब्द 'यत्' धातु से बना है जिसका अर्थ है निंदित, अतः यहां परिकरांकुर अलंकार हुआ।

3. कवितावली में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है –

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बांधत लंगूर हैं।

चौ॰ – रहा न नगर बसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥

शब्दार्थ – बसन=वस्त्र। खेला=माया रची। कौतुक=कौतूहल, आश्चर्य, तमाशा। हाँसी=मजाक उड़ाने लगे।

व्याख्या – हनुमान ने भी अपनी लीला प्रारम्भ कर दी और पूंछ बढ़ाने लगे। वह अपनी पूंछ इतनी बढ़ाते गए कि पूरी लंका नगरी का वस्त्र, घी और तेल समाप्त हो गया। इस तमाशे को देखने के लिए नगरवासी वहां एकत्र हो गए। वे हनुमान पर चरण-प्रहार कर रहे हैं और खूब हंस रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रथम चरण में अतिशयोक्ति अलंकार है।

2. भावसाम्य के लिए कवितावली की पंक्ति देखिए –

लात के अघात सहैं जी में कहैं क्रूर हैं।

चौ॰– बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघु रूप तुरंता॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं । भईं सभीत निसाचर नारीं॥

शब्दार्थ – तारी=तालियां बजने लगीं। फेरि=घुमा कर। प्रजारी=प्रज्वलित करना, जला देना। पावक=अग्नि। निबुकि=बंधनमुक्त। कनक अटारीं=स्वर्ण अट्टालिका। सभीत=भयभीत।

व्याख्या – वहां उपस्थित सभी राक्षस ढोल तथा तालियां बजा रहे हैं। इस प्रकार पूरी नगरी में हनुमान को घुमाकर उसकी पूंछ में आग लगा दी गई। जब हनुमान ने देखा कि आग भली भांति प्रज्वलित हो गई है, वह पुनः अत्यंत लघु रूप में आ गए और बन्धनमुक्त होकर स्वर्ण अट्टालिका पर चढ़ गए। (कनक अटारीं में रावण के महल की व्यंजना है।) उन्हें देखकर राक्षस-स्त्रियां भयभीत हो गईं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियां अटारी पर चढ़कर तमाशा देख रही थीं; जब हनुमान वहां पहुंच गए, तब वे भयभीत हो गईं।

साहित्यिक सौन्दर्य – भावसाम्य की दृष्टि से कवितावली की पंक्तियां इस प्रकार हैं –

बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पीछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।

दोहा – हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनंचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥ 25 ॥

शब्दार्थ – हरि=भगवान्। प्रेरित=प्रेरणा से। मरुत=पवन, हवा। उनचास=पवन प्रलय के समय आंधी और तूफान।

व्याख्या – भगवत् प्रेरणा से उस समय उन्चासों पवन चलने लगे। पवन से अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो जाती है। तब हनुमान जी ने अपने शरीर को इतना विशालकाय कर लिया मानो आकाश में लग गए हों और अट्टहास करके गर्जना करने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मरुत उनचास– पुराणों में मरुत को कश्यप और दिति का पुत्र बताया गया है। इसके सौतेले भाई इन्द्र ने गर्भ में ही इसको काटकर उन्चास टुकड़े कर डाले थे। इसलिए मरुत उन्चास माने गए हैं।

2. अट्टहास – हास्य रस के छः भेद माने गए हैं – स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित (अट्टहास)।

3. अलंकार– 'कपि बढ़ि लाग अकास' में गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।

चौ॰– देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट लपट बहु कोटि कराला॥

शब्दार्थ – बिसाल=विशाल आकार वाली। हरुआई=हल्की। मंदिर=मकान, महल। भा=हो गए। बिहाला=व्याकुल। झपट=फैलना। लपट=आग की लपटें। कोटि=करोड़ों। कराला=भयंकर।

व्याख्या – हनुमान का शरीर यद्यपि बहुत विशाल हो गया था तथापि हल्का था। वह एक मकान से दूसरे मकान पर दौड़कर चढ़ जाते थे। इस प्रकार नगर जल रहा था। आग की भयंकर और तीव्र लपटें चारों ओर फैल रही थीं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गोस्वामी जी ने कवितावली में लंका-दहन का भयावह चित्र खींचा है। देखिए–

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानों,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तुलसी सुरेसचाप कैंधों दामिनी कलाप,
कैंधों चली मेरु तें कृसानुसरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है।

2. रस – भयानक।

चौ०– तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥

शब्दार्थ – उबारा=रक्षा करेगा, प्राण बचाएगा। सुर=देवता।

व्याख्या – सभी राक्षस हे पिता, हे भाई, हे पुत्र, हे माता कहकर चीत्कार कर रहे हैं और कह रहे हैं कि इस विपत्ति से हमारा कौन उद्धार करेगा? उनमें से कुछ कहते हैं कि हम पहले ही कह रहे थे कि यह बंदर नहीं है, बानर रूप में कोई देवता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. तुलनीय –

लागि लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय बाप पूत न संभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे धूमधुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े बारि बारि बारबार ही।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति,
तात तात! तौंसियत झौंसियत झारती॥

2. रस – भयानक।

3. अलंकार – चतुर्थ चरण में अपह्नुति अलंकार।

चौ०– साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

शब्दार्थ – अवग्या=अवज्ञा, बात न मानना, अपमान, उपेक्षा करना। निमिष=पल, क्षण।

व्याख्या – संतजनों की अवहेलना करने का यही परिणाम होता है कि पूरा नगर एक अनाथ नगर के समान जल रहा है। पूरा नगर जल रहा है, किसी भी व्यक्ति में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अग्नि को बुझा सके। इसीलिए लंका को ऐसा नगर कहा गया है जिसका कोई स्वामी नहीं है। इस प्रकार हनुमानजी ने पूरे नगर को क्षण मात्र में जला दिया, केवल विभीषण के घर को छोड़ दिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार।

चौ० – ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

शब्दार्थ – जेहिं=जिस भगवान ने। सिरिजा=सृजन किया, उत्पन्न किया। उलटि पलटि=घूम-घूमकर। मझारी=मध्य में।

व्याख्या – शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! हनुमानजी उस ईश्वर के दूत हैं जिन्होंने आग को उत्पन्न किया है। कहा गया है कि अग्नि भगवान के मुख से निकली है – मुखादग्निर्जायत, इसीलिए हनुमान पर आग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् वह नहीं जले। इस प्रकार घूम-घूमकर उन्होंने पूरी लंका को जला डाला, तत्पश्चात् समुद्र के मध्य कूद पड़े।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार।

दोहा – पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ 26 ॥

शब्दार्थ – श्रम=थकान। बहोरि=पुनः। कर जोरि=हाथ जोड़कर।

व्याख्या – इस प्रकार समुद्र के जल में अपनी पूंछ की अग्नि को बुझाकर तथा थकान मिटाकर पुनः लघु रूप धारण कर लिया और हाथ जोड़कर सीता के समक्ष जाकर खड़े हो गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार।

चौ०– मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

शब्दार्थ – चीन्हा=निशानी, चिह्न। चूड़ामनि=बालों में लगाने वाला एक आभूषण जिसे शीशफूल भी कहते हैं।

व्याख्या – सीता माता के समक्ष उपस्थित होकर हनुमानजी ने निवेदन किया कि हे माता! जिस प्रकार श्रीराम ने मुझे मुद्रिका रूप में चिह्न दिया था, वैसे ही आप भी मुझे कोई निशानी दीजिए जिससे यह प्रमाणित हो सके कि मैंने आपके दर्शन किए हैं। तब सीताजी ने अपने केशों से चूड़ामणि उतारकर दे दिया। हनुमानजी ने प्रसन्नतापूर्वक उसे ग्रहण कर लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. अध्यात्म रामायण में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है –

विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूड़ामणिं ददौ। (5/3/82)

2. कवितावली में भी लंका दहन के पश्चात् हनुमान जब सीता से मिलते हैं तब वह उन्हें चूड़ामणि देते हुए आशीर्वाद देती हैं –

मातु कृपा कीजै, सहदानि दीजै, सुनि सीय दीन्हीं हैं असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै।
कहा कहौं तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै।

चौ०– कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

शब्दार्थ – अस=इस प्रकार। पूरनकामा=पूर्ण काम, जिनकी कोई कामना नहीं होती, कामनाओं से पूर्ण। बिरिदु=विरदावली, कीर्ति, यश, प्रसिद्धि। संभारी=स्मरण करके।

व्याख्या – सीताजी ने प्रणाम की पद्धति बताते हुए हनुमान से कहा कि तुम इस प्रकार उनसे मेरा प्रणाम करना और कहना कि यद्यपि वह पूर्णकाम हैं, उनका मुझसे कोई स्वार्थ नहीं फिर भी दीनजनों (भक्तों) पर अनुग्रह करना उनका सहज स्वभाव है; अथवा दीनों पर अनुग्रह

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

करने के लिए वह विख्यात हैं; अपनी इस विशेषता का स्मरण करते हुए वह मेरी महान् विपत्ति का निवारण करें।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'मम' शब्द नाथ के लिए भी हो सकता है और संकट के लिए भी, इसलिए यहां देहरी दीपक अलंकार हुआ।

चौ॰– तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

शब्दार्थ – सक्रसुत=इन्द्र का पुत्र जयन्त।

व्याख्या – सीता जी ने कहा कि हे पुत्र! तुम (प्रभु श्रीराम से) इन्द्र के पुत्र जयन्त का वृत्तांत सुनाना और उनके वाण में कितनी शक्ति है यह भी बता देना। यदि वह एक महीने के भीतर नहीं आएंगे, तो मुझे पुनः जीवित नहीं पाएंगे अर्थात् मैं आत्महत्या कर लूंगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – सक्रसुत कथा – एक दिन चित्रकूट में श्रीराम ने स्वयं कुछ फूलों को चुनकर सीताजी को एक माला पहनाई। उसी समय इन्द्र का पुत्र जयन्त उनकी शक्ति का परीक्षण करने के लिए काग के रूप में आया और सीताजी के चरणों में चोंच मारकर भागा, जिससे उनके पैर से खून बहने लगा। रक्त बहते देखकर श्रीराम सबकुछ समझ गए और तत्काल ब्रह्मवाण से उस पर प्रहार किया। जयन्त भागते हुए, अपने वास्तविक रूप में अपने पिता के पास गया; किन्तु इन्द्र ने राम द्रोही पुत्र की रक्षा करने में अपने को असमर्थ बताया। अतः वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि अनेक स्थानों पर भागता रहा, किन्तु किसी ने उसकी रक्षा नहीं की। अन्ततः नारद के उपदेश से वह श्रीराम के शरण में गया, तब उन्होंने उसकी केवल एक आंख फोड़कर मुक्त कर दिया।

चौ॰– कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥

शब्दार्थ – प्राना=प्राण।

व्याख्या –सीताजी ने पुनः अत्यंत कातर भाव से हनुमान जी से कहा कि हे पुत्र! अब तुम भी जाने के लिए कहते हो, इसलिए मैं अपने प्राणों की रक्षा किस प्रकार कर सकूंगी? तुम्हें देखकर मेरी छाती कुछ ठण्डी हुई थी अर्थात् कुछ सुख मिला था। अब पुनः पूर्ववत् विरह-वेदना में दिन और रात काटने होंगे।

दोहा– जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥ 27 ॥

शब्दार्थ – समुझाइ करि=समझा बुझाकर, धैर्य बंधाकर, सांत्वना देकर। नाइ=झुकाकर। पहिं=पास।

व्याख्या – तब हनुमानजी ने सीताजी को अनेक प्रकार से समझाया और उन्हें धीरज बंधाया कि श्रीरामजी शीघ्र ही आएंगे, शत्रु का वध करेंगे और आपको सकुशल वापस ले चलेंगे। इस प्रकार सीताजी को सांत्वना देकर तथा उनके चरण कमलों की वन्दना करके हनुमानजी ने श्रीराम के पास जाने के लिए प्रस्थान किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'चरन कमल' में रूपक अलंकार।

चौ॰– चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥

शब्दार्थ – महाधुनि=तेज आवाज में। गर्भ स्रवहिं=गर्भपात होना। नाघि=पार कर। किलकिला=हर्ष सूचक ध्वनि।

व्याख्या – लंका से प्रयाण करते समय हनुमान जी ने उच्च नाद में गर्जना की जिसे सुनकर राक्षसियों के गर्भपात होने लगे। इस प्रकार वह समुद्र पार करके उत्तरी तट पर आ गये और आनन्दसूचक किलकारी मारने लगे जिससे वहां प्रतीक्षारत वानर जान जाएं कि वह कार्य संपन्न करके वापस आ गए हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. चलते समय उन्होंने जोरों से गर्जना इसलिए की कि लोग यह न समझें कि हनुमान चुपके से चोरी-चोरी चले गए। उनकी गर्जना में रावण को चुनौती भी दी गई है।

2. कवितावली में यह दृश्य इस प्रकार वर्णित है –
गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भये आनन्द सचेत हैं।

चौ॰– हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

शब्दार्थ - हरषे=प्रसन्न हो उठे। बिलोकि=देखकर। कीन्हेसि=कर दिया है। काजा=कार्य।

व्याख्या – हनुमानजी को देखकर सभी वानर अत्यंत प्रसन्न हुए और वह समझ गए कि नई दूसरा जन्म मिला है। (सुग्रीव ने चेतावनी दी थी कि यदि निश्चित अवधि में सीता का पता न लगा तो सभी वानर मारे जाएंगे। इसीलिए वे समुद्रतट पर मरने के लिए बैठे थे – 'बैठे कपि सब दर्भ डसाई।') हनुमान का मुख प्रसन्न है तथा उनके शरीर पर तेज विराजमान है। इस लक्षण से सभी ने समझ लिया कि उन्होंने श्रीराम का कार्य (पूर्ण) कर दिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमान अपने कृत्यों द्वारा एक ओर राक्षस-समुदायों में भय एवं दूसरी ओर वानर-समुदाय में आनन्द उत्पन्न करते हैं।

चौ॰– मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

शब्दार्थ – सकल=सब वानर। मीन=मछली। बारी (सं॰ वारि)=जल। नवल इतिहासा=नए समाचार, उनके जाने के बाद जो कुछ हुआ।

व्याख्या – हनुमान जी से भेंट करके सभी वानर अत्यंत प्रसन्न हुए, जैसे तड़पती हुई मछली को जल प्राप्त हो गया हो। तब सभी वानर प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम के पास चल दिए। वे मार्ग में सभी घटनाएं पूछते जाते हैं और हनुमान बताते हुए चले जा रहे हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमान के वापस आने पर महेंद्र पर्वत पर ही जाम्बवान ने उनसे लंका का वृतांत पूछा था और हनुमान ने उन्हें पूरा विवरण दे दिया था, तब यात्रा प्रारंभ की थी।

2. 'पूँछत कहत' ये व्यंजना है कि हनुमान अपनी ओर से कुछ नहीं कहते हैं वानर जितना पूछते हैं, वह उसी का उत्तर देते हैं। स्वयं वर्णन करने से आत्म-प्रशंसा का भाव आ जाता है।

3. अलंकार – 'तलफत मीन – वारी' – में उदाहरण अलंकार ......।

चौ॰– तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

शब्दार्थ – संमत=सहमति, आज्ञा। मधु=(1) मधुर, मीठे, (2) शहद, (3) मकरंद फूल का रस। बरजन=मना करना। मुष्टि प्रहार=घूंसों के प्रहार से।

व्याख्या – समुद्र तट से चलकर सभी वानर मार्ग में मधुवन में प्रवेश कर गए तथा अंगद की सहमति अथवा आज्ञा से मधुर फल खाने लगे अथवा मधुपान किया और फल भी खाये। जब रक्षकों ने फल खाने से मना किया तब वानरों ने रक्षकों को मुक्कों से मारना शुरू कर दिया। अंततः वे सब भाग खड़े हुए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण में मधुपान करना ही लिखा है।

2. मधुबन – यह सुग्रीव का विहार उपवन था तथा इन्द्र के नन्दनवन के समान सुंदर वृक्षों और लताओं से युक्त था। इसके भीतर किसी का भी प्रवेश वर्जित था। वाल्मीकि के अनुसार यह उपवन सुग्रीव के पूर्वजों को देवताओं से प्राप्त हुआ था,– 'वनं दत्तकरं दिकम्' (5/62/27)। सुग्रीव का मामा दधिमुख हजारों वानरों सहित इसकी रक्षा के लिए नियुक्त था।

3. अलंकार – 'अंगद संमत' में देहरीदीपक अलंकार।

दोहा– जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज॥ 28 ॥

शब्दार्थ – पुकारे=फरियाद की। जुबराज=बालि के पुत्र राजकुमार अंगद।

व्याख्या – सभी रक्षकों ने सुग्रीव के पास जाकर फरियाद की कि मधुवन को युवराज अंगद ने उजाड़ दिया है। उनकी शिकायत सुनकर सुग्रीव रुष्ट नहीं हुए अपितु बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि वह समझ गए कि वानर प्रभु का कार्य सम्पन्न कर आए हैं अर्थात् सीताजी का पता चल गया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. रक्षकों ने अंगद की ही शिकायत की, क्योंकि उनका अनुमान था कि अंगद का नाम लेने से सुग्रीव को अतीत की घटनाएं याद हो जाएंगी और वह अंगद को समुचित दण्ड देंगे।

2. 'सुनि सुग्रीव हरष' में नाटकीय व्यंग्य (Dramatic Irony) है।

3. कवितावली में यही बात इस प्रकार कही गई है –

कह्यों जुबराज बोलि वानर समाज "आजु
खाहु फल" सुनि पैलि पैठे मधुवन में
मारे बागवान, ते पुकारत देवान जे
उजारे बाग अंगद दिखाये घाय तन में।

चौ॰– जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥

शब्दार्थ – जौं=यदि। सुधि=जानकारी, पता लगाना। सकहिं=सकना, साहस करना। बिधि=विचार करना। समाजा=समाज।

व्याख्या – सुग्रीव ने अनुमान लगाया कि यदि सीताजी का पता न लगा लिया होता तो इन लोगों ने फल खाने का साहस कदापि न किया होता। वह मन में यही विचार कर रहा था कि उसी समय सभी वानर आ गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – सुग्रीव की तथ्यविशलेषण शक्ति का वर्णन है।

चौ॰– आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥

शब्दार्थ – कपीसा=वानरों के स्वामी। बिसेषी=विशेष कठिन कार्य।

व्याख्या – सभी ने आकर सुग्रीव को प्रणाम किया। सुग्रीव भी सभी से अत्यंत प्रेमपूर्वक मिले और कुशल समाचार पूछा। तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि आपके चरणों के दर्शन से सब कुशल है और श्रीराम का विशेष कार्य संपन्न हो गया है अर्थात् सीताजी का पता चल गया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के अनुसार सुग्रीव ने मधुवन के प्रधान रक्षक दधिमुख से सभी वानरों को तुरन्त अपने पास भेजने के लिए कहा था। किन्तु मानस में इसका उल्लेख नहीं है।

चौ॰– नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥

शब्दार्थ – राखे=रक्षा की। प्राना=प्राण, जान। बहुरि=तदुपरांत। तेहि=हनुमानजी से। पहिं=पास।

व्याख्या – अब जामवन्त कहते हैं कि हे स्वामी! सभी कार्य हनुमान द्वारा संपन्न हुए हैं। उन्होंने ही सभी वानरों के प्राणों की रक्षा की है। यह सुनकर सुग्रीव हनुमान से पुनः मिले। दूसरी बार हनुमान से मिलने में कृतज्ञता ज्ञापन की व्यंजना है। तत्पश्चात् सभी वानरों के साथ वह श्रीराम के पास गए।

चौ॰– राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – फटिक सिला=संगमरमर की शिला। द्वौ=दोनों। सकल=सभी।

व्याख्या – जब श्रीराम ने वानरों को कार्य संपन्न करके आते हुए देखा तो उनकी प्रसन्न मुद्रा देखकर वह भी आनन्दित हो गए तथा समाचार जानने के लिए दोनों भाई एक स्फटिक-शिला पर बैठ गए, सभी वानरों ने उनके निकट जाकर साष्टांग प्रणाम किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के अनुसार जब वानर आए तब सुग्रीव राम और लक्ष्मण के साथ ही बैठे थे। किन्तु मानस के अनुसार सुग्रीव कहीं पर अकेले ही थे। वह वानरों के साथ श्रीराम के पास आए।

दोहा– प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥ 29 ॥

शब्दार्थ – करुना पुंज=करुणा के सागर, करुणानिधि। कंज=कमल।

व्याख्या – दया के आगार श्रीराम ने सभी वानरों से प्रेमपूर्वक भेंट की और कुशल समाचार पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि हे नाथ! आपके चरण-कमलों के दर्शन से सब कुशल है।

साहित्यिक सौन्दर्य – प्रवर्षण पर्वत पर विराजमान श्रीराम सुग्रीव के साथ सभी वानरों का अभिनंदन करते हैं। ये कथा के आगामी विकास के लिए द्रुतगामी भंगिमाएं हैं।

चौ॰– जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

शब्दार्थ – दाया=दया, कृपा, अनुकंपा। निरन्तर=लगातार। ता ऊपर=उसके प्रति।

व्याख्या – जामवंत ने कहा कि हे रघुवंश शिरोमणि! सुनिए; हे नाथ! आपका जिस पर अनुग्रह हो वह निरन्तर सकुशल रहता है तथा देवता, मनुष्य और ऋषिमुनि भी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

चौ॰– सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥

शब्दार्थ – बिजई=विजयी, सफल, कृतकृत्य। बिनई=विनम्र। तासु=उसका। त्रैलोक=तीनों लोकों में। उजागर=प्रकाशित। भा=हो गया। आजू=आज।

व्याख्या – जामवंत पुनः कहते हैं कि आपका अनुग्रह प्राप्त व्यक्ति सर्वत्र विजयी होता है, सर्वगुणसंपन्न और विनम्र होता है तथा उसका यश तीनों लोकों में प्रकाशित हो जाता है। (व्यंजना यह है कि आपने हनुमान पर अनुग्रह किया, अतः उन्होंने लंका में सभी पर विजय प्राप्त की। सामान्यतः विजय से अभिमान उत्पन्न हो जाता है, किन्तु यह विनम्र बने रहे और सर्वगुणसंपन्न हो गए तथा इनकी कीर्ति चतुर्दिक व्याप्त हो गयी है।) हे प्रभु! आपकी कृपा से समस्त कार्य सम्पन्न हो गए और हम लोगों का जीवन सार्थक हो गया।

चौ॰– नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

शब्दार्थ – सहसहुँ=हजारों। पवनतनय=पवनपुत्र हनुमान। चरित=कार्य, पराक्रम और विवेक से किए गए काम–समुद्र पार करना, अशोक वाटिका में सीता माता से मिलना, उन्हें राम की मुद्रिका देकर धैर्य बंधाना आदि।

व्याख्या – हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान ने जो कार्य किया है, उसका यथार्थ वर्णन हजारों मुखों के द्वारा (अथवा जिनके हजार मुख हैं अर्थात् शेषनाग के द्वारा) भी संभव नहीं है। इसके बाद उन्होंने श्रीराम से हनुमान के उत्तम चरित्र का (अथवा उनके द्वारा संपन्न किए गए कार्यों का) वर्णन किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार है।

चौ॰– सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

शब्दार्थ – भाए=अच्छे, सुखकर लगे। हियँ लाए=प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया। स्वप्रान=अपने प्राणों की।

व्याख्या – जामवंत के द्वारा वर्णित हनुमत् चरित्र उन्हें अत्यंत प्रिय लगा और उन्होंने हनुमान को प्रसन्नतापूर्वक पुनः हृदय से लगा लिया और पूछा कि हे पुत्र! कहो, सीता की स्थिति कैसी है? वह अपने प्राणों की रक्षा किस प्रकार करती रहती हैं? अर्थात् राक्षसों के मध्य वह अपने शरीर और धर्म का निर्वाह कैसे करती रहती हैं?

साहित्यिक सौन्दर्य – पुनि एक बार सभी वानरों के साथ आने पर श्रीराम हनुमान से मिल चुके थे, अब उपकार मानकर पुनः मिले।

दोहा– नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥ 30 ॥

शब्दार्थ – पाहरू=प्रहरी। कपाट=दरवाजा। लोचन=नेत्र। जंत्रित=निबद्ध, ताले के भीतर बन्द। बाट=मार्ग।

व्याख्या – श्रीराम द्वारा यह पूछे जाने पर कि सीताजी अपने प्राणों की रक्षा कैसे करती हैं, हनुमान ने उत्तर दिया कि आपके नाम का जाप रात-दिन प्रहरी (रक्षक) का कार्य करता है, आपके ध्यान में मग्न मन दरवाजा है और अपने पैरों में निबद्ध नेत्र ही ताला है; तब प्राण किस मार्ग से बाहर जा सकते हैं? तात्पर्य यह है कि जिस भवन का द्वार बन्द हो, उस पर ताला लगा हो और बाहर प्रहरी रक्षा कर रहा हो; तब कोई व्यक्ति उससे बाहर कैसे जा सकता है?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां नाम पर 'पाहरू', ध्यान पर 'कपाट' और लोचन पर 'जंत्रित' का आरोप किया गया है। इस प्रकार प्राणों पर कैदी का आरोप व्यंग्य है। तात्पर्य यह है कि सीताजी का मन, वचन और कर्म आप ही में रत हैं।

2. सांगरूपक अलंकार है।

3. तुलनीय – गीतावली में हनुमानजी ने निम्नलिखित शब्दों में सीताजी की दशा का वर्णन किया है –

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. कलप (सं॰ कल्प) – काल का एक अंश जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं और जिसमें चौदह मनवंतर या चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होते हैं।

2. विरह की दस दशाएं मानी गई हैं – अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण। यहां सीताजी के वियोग की अन्तिम दशा का संकेत है।

3. अलंकार – 'कलप सम' में उपमा अलंकार है।

चौ॰– **सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥**
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥

शब्दार्थ – सुख अयना=सुख के धाम। राजिव नयना=कमल के समान नेत्र वाले। कायँ=कार्य, कर्म।

व्याख्या – सीता जी की विपत्ति को सुनकर सुख के धाम श्रीराम के कमल के समान सुन्दर नेत्रों में आंसू आ गए और वे बोले कि जो मन, वाणी और कर्म से मेरे प्रति पूर्णतया समर्पित है, क्या स्वप्न में भी उस पर विपत्ति आ सकती है? अर्थात् उस पर स्वप्न में भी विपत्ति नहीं आनी चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रथम चरण में श्रीराम के ऐश्वर्य भाव की व्यंजना है।

2. प्रथम पंक्ति में विरोधाभास अलंकार।

3. चतुर्थ चरण में वक्रोक्ति अलंकार।

चौ॰– **कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥**
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

शब्दार्थ – सोई=तभी। केतिक=कितनी। रिपुहि=शत्रु। जीति=विजय प्राप्त करके।

व्याख्या – श्रीराम के वचनों को सुनकर हनुमान ने कहा कि हे प्रभु! विपत्ति तो तभी है, जब आपका स्मरण और भजन न किया जाए। हे स्वामी! राक्षसों में कितनी शक्ति है? आप शत्रु पर विजय प्राप्त करके सीताजी को (शीघ्र ही) ले आएंगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – सुमिरन भजन न होई – सीताजी श्रीराम का सुमिरन तो करती रहती हैं, किन्तु भजन नहीं कर पातीं। भजन का अर्थ है – सेवा (भज सेवायाम्)। यही विपत्ति है।

चौ॰– **सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥**
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

शब्दार्थ – तोहि=तुम्हारे समान। उपकारी=हित करने वाला। नहिं=नहीं। तनुधारी=शरीर धारी। सनमुख=सम्मुख।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि हे कपि! तुम्हारे समान मेरा हित करने वाला देवता, मनुष्य मुनि आदि में से कोई भी शरीरधारी प्राणी नहीं है अर्थात् तुमने जो मेरा उपकार किया है, ऐसा उपकार करने का सामर्थ्य अन्य किसी प्राणी में नहीं है। तुमने मेरा जो उपकार किया है, उसके बदले में मैं तुम्हारी कौन-सी भलाई करूं यह मेरी समझ में नहीं आता। इसीलिए लज्जावश मेरा मन तुम्हारे सम्मुख नहीं हो रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. श्रीराम का यह कथन हनुमान के प्रति कृतज्ञता का चरम बिन्दु है तथा श्रीराम के शील स्वभाव और प्रीति-भाव की मधुर व्यंजना है। उनके इसी शील की 'विनय पत्रिका' के पद संख्या सौ – 'सुनि सीतापति सील सुभाउ' में विस्तृत व्याख्या है।

2. उपर्युक्त पंक्तियां अध्यात्म रामायण के निम्नलिखित श्लोक की छाया प्रतीत होती हैं–

हनुमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥ (5/5/60)

चौ॰– **सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥**
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

शब्दार्थ – उरिन (सं॰ उऋण)=ऋण मुक्त। चितव=देखते हैं। सुरत्राता=देवताओं के रक्षक। गाता (सं॰ गात्र)=शरीर। नीर=अश्रुजल।

व्याख्या – हे पुत्र! सुनो, मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता, यह मैंने मन में भली-भांति विचार करके देख लिया है। यह कहते हुए देवताओं के रक्षक श्रीराम हनुमान को बार-बार देखते हैं और अतिशय स्नेह के कारण उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु आ जाते हैं तथा शरीर रोमांचित हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'सुत' संबोधन में अतिशय प्रेम की व्यंजना है।

दोहा– **सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।**
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥ 32॥

शब्दार्थ – बिलोकि=देखकर। गात=शरीर। त्राहि त्राहि=रक्षा कीजिए।

व्याख्या – श्रीराम के उपर्युक्त वचन सुनकर और उनके मुख को देखकर हनुमान जी शरीर से पुलकित एवं प्रसन्न हो गए तथा प्रेम से व्याकुल होकर कहा कि हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'त्राहि त्राहि' में व्यंजना यह है कि कहीं इस प्रशंसा से हनुमान में अहंकार न आ जाए और वह प्रभु की माया में न फंस जाए!

2. श्रीराम की प्रशंसा से हनुमान के मन में व्रीड़ा, हर्ष, चपलता, आवेग, त्रास आदि कई संचारी भावों का उदय हुआ, अतः प्रथम समुच्चय अलंकार है।

चौ॰– **बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥**
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

शब्दार्थ – न भावा=अच्छा नहीं लगा। पंकज=कमल। गौरीसा=पार्वती के पति भगवान शंकर।

व्याख्या – हनुमानजी प्रेमाकुल होकर प्रभु के चरणों पर गिर गए हैं। प्रभु श्रीराम उन्हें बार-बार उठाने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु हनुमानजी प्रेम में इतना मग्न हो गए हैं कि उन्हें उठना अच्छा ही नहीं लगता है। प्रभु के कर-कमल हनुमानजी के सिर पर हैं और हनुमान का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(31)

चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर मूढ़े से श्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम कर सिर चिर रहै निज निज पद कमल निहारे॥
दरसन आस लालसामन महँ राखे प्रभु ध्यान प्रान रखवारे॥ 5/1 ॥

चौ॰ – चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी । बचन कहे कछु जनककुमारी॥

शब्दार्थ – जुगल=दोनों। लोचन=नेत्र। बारी=अश्रुजल।

व्याख्या – हनुमान ने कहा कि लंका से वापस आते समय सीता माता ने मुझे अपना चूड़ामणि दिया था। श्रीराम ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया। हनुमान ने पुनः कहा कि हे नाथ! दोनों नेत्रों से परिपूरित आंसुओं से सीताजी ने कुछ संदेश कहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्रिय का पदार्थ, प्रिय के तुल्य प्रिय होता है। अतः श्रीराम ने चूड़ामणि को हृदय से लगा लिया। राधा के लिए तो स्याम की पाती ही स्याम हो गई थी– ह्वै गइ स्याम स्याम की पाती।

2. 'कछु' में व्यंजना यह है कि अतिशय व्याकुलता के कारण सीताजी विस्तार से अपना दुख वर्णन न कर सकीं।

चौ॰– अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना । दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी । केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

शब्दार्थ –गहेहु=पकड़कर। प्रनतारति हरना=शरणागत की विपत्ति हरण करने वाले। क्रम=कर्म। हौं=मुझे।

व्याख्या – सीताजी ने निवेदन किया था कि लक्ष्मण के सहित प्रभु श्रीराम के चरणों को पकड़ना और कहना कि आप तो दीनबंधु हैं, शरणागत की विपत्ति का हरण करने वाले हैं। मैं मन, कर्म और वचन से आपके चरणों में अनुरक्त हूं, तब फिर किस अपराध से आपने मेरा परित्याग कर दिया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सीताजी ने लक्ष्मण जी के चरण पकड़ने के लिए क्यों कहा? इसका समाधान कई प्रकार से किया गया है – (1) सीता जी ने लक्ष्मण को कुछ कटु वचन कहे थे, अतः इस प्रकार उनसे क्षमा मांग रही हैं।

(2) जब राम और लक्ष्मण दोनों एक साथ हों तब उनके चरण पकड़ना।

2. सीताजी आर्त्त हैं और 'आरत के रहत न चित चेतू'।

चौ॰– अवगुन एक मोर मैं माना । बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा । निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

शब्दार्थ – अवगुन=अपराध। मोर=मेरा। पयाना=प्रयाण, त्याग कर जाना। निसरत=निकलते हुए। बाधा=अवरोध।

व्याख्या – सीताजी ने कहा था कि मैं अपना एक अपराध स्वीकार करती हूं कि आपका वियोग होते ही प्राण क्यों न निकल गए? हे नाथ! वह प्राणों का नहीं, नेत्रों का अपराध है। प्राण तो निकलना चाहते थे, किन्तु नेत्रों ने अवरोध उत्पन्न कर दिया, बाधा डाल दी।

चौ॰– बिरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्त्रवहिं जलु निज हित लागी । जरैं न पाव देह बिरहागी॥

शब्दार्थ – तनु=शरीर। तूल=रुई, कपास। समीर=पवन। स्त्रवहिं=बहते रहते हैं। हित=स्वार्थ। बिरहागी=विरह रूपी अग्नि।

व्याख्या – आपका वियोग अग्नि है, शरीर रुई है, विरहोच्छ्वास पवन है अर्थात् आपकी 'वियोगाग्नि' से शरीर क्षण मात्र में ही भस्म हो जाता, किन्तु नेत्र अपने स्वार्थ के कारण अर्थात् आपके दर्शनों की लालसा में निरन्तर अश्रु-जल की वर्षा करते रहते हैं– इसी कारण आपके वियोगजन्य अग्नि में भी शरीर जल नहीं पाता।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. प्राण क्यों नहीं निकल गए, उसका कारण बताने के पश्चात् सीताजी ने यह भी बताया कि शरीर विरहाग्नि से क्यों नहीं जल गया। देह और प्राण सभी को प्रिय होते हैं, किन्तु सीताजी दोनों को नहीं रखना चाहती थीं। पर विवशता में न प्राण निकले और न शरीर जला।

2. तुलनीय – श्रीकृष्ण के वियोग में इसी प्रकार की राधा की विरह-दशा का उल्लेख श्रीकृष्ण गीतावली में कई छन्दों में किया गया है। एक छन्द देखिए –

मोको अब नयन भए रिपु माई।
हरि वियोग तनु तजेहि परम सुख ए राखहिं सोइ है बरिआई॥
बरु मनु कियो बहुत हित मेरो बारहि बार काम दव लाई।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहिं निपुन अधिक चतुराई॥ (पद 59)

अलंकार – विप्रलम्भ शृंगार, सांगरूपक एवं काव्यलिंग।

चौ॰– सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहे भलि दीनदयाला॥

शब्दार्थ – विपति=परेशानी, विपत्ति। बिसाला=विशाल। बिनहिं=उसका वर्णन नहीं करूंगा।

व्याख्या – हनुमान जी ने कहा कि इस प्रकार सीताजी अत्यधिक विपत्ति में हैं। उसका वर्णन न करने में ही कल्याण है।

साहित्यिक सौन्दर्य – विपत्तियां एक नहीं अनेक हैं – आपका वियोग है, खल-मण्डली से घिरी हैं, रावण के दुर्वचन सुनने पड़ते हैं। उसका पूरा विवरण देना उचित नहीं, क्योंकि पता नहीं आप पर उसका कैसा विपरीत प्रभाव पड़े।

दोहा:– निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ 31 ॥

शब्दार्थ – निमिष=पल, क्षण। कलप=कल्प, युग। बेगि=शीघ्र। आनिअ=ले आइए, मुक्त करवा कर अपने साथ ले आइए। खल=दुष्ट।

व्याख्या – हनुमानजी ने कहा कि हे दयानिधि! सीताजी को एक-एक पल कल्प के समान भारी हो गया है अर्थात् एक-एक क्षण काटना कठिन हो रहा है, इसलिए आप तत्काल लंका के लिए प्रयाण कीजिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के समूह पर विजय प्राप्त करके सीताजी को ले आइए।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – कपिबृंदा=बन्दरों का समूह। सुखकंदा=सुख के मूल, सुखदायक। कपिपतिहि=सुग्रीव को। चले कर=लंका पर आक्रमण करने, चलने की। बनावा=व्यूहरचना। कंद=मेघ (कं जलं ददाति इति कन्दः मेघः)।

व्याख्या – प्रभु राम की हनुमान के प्रति अनुग्रह-वाणी सुनकर सभी वानर आनंद की वर्षा करने वाले अथवा आनंद के मेघ राम की जय-जयकार करने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव को बुलाया कि अब युद्ध के लिए प्रयाण की व्यवस्था कीजिए।

चौ– अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

शब्दार्थ – बिलंबु=देर। आयसु=आज्ञा, आदेश। कौतुक=लीला। सुमन=पुष्प। सुर=देवता।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि अब विलम्ब क्यों हो रहा है ? सभी वानरों को प्रयाण के लिए तुरन्त आज्ञा दीजिए। प्रभु की इस लीला (वानरी सेना को साथ लेना) को देखकर आकाश स्थित देवता बहुत प्रसन्न हुए तथा पुष्प-वर्षा करके आकाश से अपने-अपने भवनों को चले गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – देवताओं की पुष्प-वर्षा में स्वार्थ की झलक है। ये पूरी घटना को मौन भाव से देख-सुन रहे थे, किन्तु जब श्री राम को युद्ध-प्रयाण के लिए तत्पर देखा, तब यह समझकर कि अब उनके शत्रुओं का विनाश होगा, प्रसन्न हुए और पुष्प-वर्षा की।

दोहा– कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥ 34 ॥

शब्दार्थ – कपिपति=वानरराज सुग्रीव। बेगि=शीघ्र ही। जूथप=सेनापति। जूथ=समूह, झुंड। बरन (वर्ण)=रंग। बरूथ=झुंड, सेना।

व्याख्या – तब सुग्रीव के आदेश से वानरों और भालुओं के झुंड के झुंड और सेनापति आ गए। वे अनेक वर्ण तथा जाति के तथा अतुल बलशाली थे।

चौ– प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥

शब्दार्थ – नावहिं=शीश झुकाना, प्रणाम करना। सकल=सभी। कृपा करि=कृपादृष्टि की।

व्याख्या – सभी बलशाली वानर तथा भालु आकर श्रीराम के चरण-कमलों को प्रणाम कर रहे हैं और जोर-जोर से गर्जना कर रहे हैं। तब कमल के समान सुंदर नेत्रों वाले श्रीराम ने सभी वानरों और भालुओं को देखा, उन पर कृपादृष्टि की।

चौ– राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥

शब्दार्थ – कपिंदा (कपीन्द्र)=कपिश्रेष्ठ। पच्छजुत=पंख वाले। गिरिंदा (गिरिन्द्र)=श्रेष्ठ पर्वत। पयाना=प्रयाण। सगुन=शकुन।

व्याख्या – श्रीराम का अनुग्रह-बल प्राप्त करके सभी वानर-भालु पंखयुक्त श्रेष्ठ पर्वतों के समान शक्तिशाली हो गए। तब श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक प्रयाण किया। उनके प्रस्थान करते ही शुभ और सुन्दर शकुन होने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. पौराणिक कथा के अनुसार किसी समय पर्वतों के पंख थे और वे बहुत उत्पात करते थे। अतः इन्द्र ने उनके पंखों को काट डाला था।

2. अध्यात्म रामायण में प्रयाण का शुभ मुहूर्त दिया गया है। हनुमन्नाटक के अनुसार श्रीराम ने आश्विन विजयदशमी को प्रयाण किया था। पद्म पुराण के अनुसार मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष अष्टमी को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में यात्रा प्रारम्भ की थी, वाल्मीकि का भी यही मत है। तुलसीदास भी मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष को ही यात्रा-तिथि मानते हैं।

3. अलंकार – मनहुँ गिरिंदा – उत्प्रेक्षा।

चौ– जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥

शब्दार्थ – जासु=जिसकी। कीती=कीर्ति। बाम अंग=शरीर का बाया अंग।

व्याख्या – जिसकी कीर्ति सभी के लिए कल्याणकारी हो उसके प्रयाण के अवसर पर सगुन होने ही चाहिएं – यही नीति है। (अधर्मी के प्रयाण में शुभ शकुन होना अनीति है।) श्रीराम के प्रयाण करते ही सीताजी के वामांग फड़कने लगे। इससे वह समझ गईं कि श्रीराम प्रस्थान कर चुके हैं। स्त्रियों का बायां अंग फड़कना शुभसूचक माना जाता है, किन्तु पुरुषों के लिए वह अशुभ होता है। उनका दायां अंग फड़कना शुभसूचक माना गया है।

चौ– जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥

शब्दार्थ – सोई=वही। कटकु=सेना। बरनैं=वर्णन।

व्याख्या – सीताजी के बाएं अंग फड़क रहे हैं और रावण के भी बाएं अंग फड़कने लगे। अतः सीताजी के लिए जो शकुन शुभ हो रहे हैं, वही रावण के लिए अपशकुन अर्थात् अशुभ हो रहे हैं। इस प्रकार सेना ने प्रस्थान किया। सेना इतनी विशाल है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अपार वानर और भालु उत्साह में गर्जन कर रहे हैं।

चौ – नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

शब्दार्थ – आयुध=अस्त्र। पादप=वृक्ष। इच्छाचारी=इच्छापूर्वक विचरण करने वाले। केहरिनाद=सिंह के समान गर्जन। दिग्गज=दिशाओं के हाथी। चिक्करहीं=चिंघाड़ने लगे।

व्याख्या – नाखून, पर्वत और वृक्ष ही उनके शस्त्रास्त्र हैं। वे इच्छानुसार विचरण करने का सामर्थ्य रखते हैं, अतः कुछ पृथ्वी पर चल रहे हैं और कुछ आकाश में उड़ रहे हैं। सभी वानर-भालु सिंहनाद कर रहे हैं। उनके भार से दिशाओं के हाथी भी डगमगाने और चीत्कार करने लगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. वीर रस तथा अतिशयोक्ति अलंकार।

2. दिग्गज – पुराणों के अनुसार आठ दिशाओं में आठ हाथी पृथ्वी को दबाए हैं। उन दिशाओं की रक्षा के लिए ब्रह्माजी ने उन्हें स्थापित किया है। पूर्व में ऐरावत, पूर्व-दक्षिण कोण में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिण-पश्चिम कोण में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिम-उत्तर कोण में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम, तथा उत्तर-पूर्व कोण में सुप्रतीक। ये ही दिग्गज कहे जाते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सिर श्रीराम के चरणों पर है – इस मुद्रा का स्मरण करके शिवजी भी प्रेम में मग्न हो गए। 'गौरीसा' का यह भी तात्पर्य हो सकता है, कि शिव और पार्वती दोनों प्रेम में मग्न हो गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमानजी रुद्रावतार हैं, अतः यह स्मरण करके कि प्रभु उनके ही सिर पर हस्तकमल रखे हुए हैं शिवजी भी प्रेममग्न हो गए।

चौ०– सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

शब्दार्थ – संकर=शिवजी। कहन=कहने लगे। उठाइ=उठाकर। प्रभु=भगवान राम। कर=हाथ। गहि=पकड़कर।

व्याख्या –प्रेममग्न होने के कारण शिवजी ने कथा कहना बन्द कर दिया था, किन्तु वह पुनः श्रीराम की अतिसुन्दर कथा कहने लगे। उन्होंने कहा कि श्रीराम ने हनुमान को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनका हाथ पकड़कर अपने अतिसमीप बैठा लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – श्रीराम द्वारा हनुमान को हृदय से लगाना और अतिनिकट बैठाना अत्यधिक प्रेम और सम्मान के सूचक हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में नहीं है। यह गोस्वामीजी की भगवद्भक्ति का निजी उद्रेक है।

चौ०– कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥

शब्दार्थ – पालित=रक्षित। दहेउ=जलाकर राख कर दिया। बंका=दुर्गम, अगम्य। बिगत=रहित।

व्याख्या – श्रीराम ने पुनः पूछा कि हे हनुमान ! रावण के द्वारा रक्षित लंका के अत्यंत अगम्य दुर्ग को तुमने किस प्रकार जला दिया ?

हनुमान ने यह जानकर कि लंका-दहन की घटना से प्रभु अप्रसन्न नहीं हैं, निरभिमान भाव से कहा।

साहित्यिक सौन्दर्य -- 1. गांव या नगर को जलाना आततायी का कार्य होता है। इसीलिए हनुमान को भय था कि कहीं उनके इस कार्य से श्रीराम रुष्ट न हो गए हों। किन्तु जब वह समझ गए कि श्रीराम अप्रसन्न नहीं हैं, तब लंका-दहन की घटना का वर्णन किया।

2. दुर्ग अति बंका – वाल्मीकि के अनुसार दुर्ग नितान्त दुर्गम था। वह ऐसे पहाड़ पर था कि सीधा खड़ा हुआ था। उसके भीतर नदी दुर्ग, गिरि दुर्ग, वन दुर्ग आदि कृत्रिम दुर्ग थे और चारों ओर खाई थी तथा वह शतघ्नी आदि विविध यंत्रों से सुरक्षित था।

चौ०– साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साख पर जाई॥
नांघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

शब्दार्थ – साखामृग=बन्दर। मनुसाई=पुरुषार्थ। हाटकपुर=सोने की नगरी। जारा=जलाया। बधि=वध करने के बाद। बिपिन=अशोक वाटिका।

व्याख्या – हनुमान ने कहा कि बन्दर का सबसे बड़ा पुरुषार्थ तो यही होता है कि वह वृक्ष की एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूद जाता है। मैंने समुद्र पार किया, लंका जलायी, राक्षसों का वध किया और अशोक वाटिका को उजाड़ दिया – इसमें मेरी कोई प्रभुता नहीं है। हे रघुनाथ ! यह सब आपके प्रताप की महिमा है।

साहित्यिक सौन्दर्य –1. बन्दर एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदते रहते हैं, इसीलिए उनका एक नाम शाखामृग है। इस शब्द का साभिप्राय प्रयोग होने के कारण परिकरांकुर अलंकार हुआ।

2. 'तव प्रताप' के व्याज से हनुमान ने अपने पुरुषार्थ का वर्णन किया, अतः यहां पर्यस्तापहुति अलंकार हुआ।

दोहा– ता कहुं प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥ 33 ॥

शब्दार्थ – ता कहुं=उसके लिए। अगम=दुष्कर। अनुकूल=कृपा। बड़वानलहि=समुद्र की अग्नि को। खलु=तुच्छ। तूल=रुई।

व्याख्या – हनुमान ने पुनः कहा कि जिस पर आपका अनुग्रह हो जाए उसके लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है। वह असंभव को भी संभव बना सकता है। आपके प्रताप से थोड़ी सी रुई बड़वाग्नि (समुद्र की आग) को भी नष्ट कर सकती है। तात्पर्य यह है कि आपकी कृपा से क्षुद्रातिक्षुद्र जन्तु भी परम समर्थ हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – द्वितीय पंक्ति में असंगति अलंकार।

चौ०– नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

शब्दार्थ –अनपायनी=निश्चल, स्थिर। एवमस्तु=ऐसा ही हो। भवानी=पार्वती।

व्याख्या – हनुमान ने निवेदन किया कि हे नाथ ! अब आप कृपा करके मुझे निश्चल तथा अत्यंत सुखदायक भक्ति प्रदान कीजिए। शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे भवानी ! हनुमान की सरल वाणी सुनकर श्रीराम ने कहा कि ऐसा ही हो अर्थात् तुम्हें अविचल भक्ति प्राप्त हुई।

चौ०– उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

शब्दार्थ – उमा=पार्वती। सुभाउ=स्वभाव। भजनु=भक्ति। आना=अन्य।

व्याख्या – शिवजी ने पुनः कहा कि हे पार्वती ! जो श्रीराम के स्वभाव को जान लेते हैं, उन्हें भक्ति के सिवाय दूसरे साधन अच्छे नहीं लगते। तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान, कर्म आदि से भक्ति को अधिक महत्व देते हैं, वे भक्ति मार्ग पर ही चलना श्रेयस्कर समझते हैं। श्रीराम-हनुमान का यह संवाद जिनको हृदयंगम हो जाता है, उन्हें श्रीराम की भक्ति अनायास ही सुलभ हो जाती है।

साहित्यिक सौन्दर्य -- श्रीराम का स्वभाव है– उदारता, पतितपावनता, शरणागत वत्सलता, परदुखकातरता, कृतज्ञता आदि।

चौ०– सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलै कर करहु बनावा॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

छंद– चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥ 1 ॥

शब्दार्थ – चिक्करहिं=चीत्कार करते हैं। दिग्गज=दिशाओं के हाथी। डोल=कांपने लगी, अस्थिर हो गई। महि=पृथ्वी। लोल=चंचल। खरभरे=खलबली। किंनर=एक प्रकार के देवता जिनका मुख घोड़े के मुख के समान होता है। ये संगीत में अतिप्रवीण होते हैं। ये ब्रह्मा की परछाई से पैदा हुए थे और कुबेर के साथ कैलाश पर्वत पर रहते हैं। टरे=टल गए, दूर हो गए। मर्कट=(सं॰ मर्कट) बंदर।

व्याख्या – श्रीराम की वानरी-सेना के प्रयाण के ब्रह्माण्ड व्यापी प्रभाव का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि सेना के प्रबल भार को वहन न कर सकने के कारण दिग्गज चीत्कार कर रहे हैं, पृथ्वी चलायमान हो गई है, पर्वत अस्थिर हो गए हैं और समुद्र में भी खलबली मच गई है। सूर्य, चन्द्रमा, देवता, मुनि, नाग और किन्नर मन में प्रसन्न हैं, क्योंकि उन सबका कष्ट दूर हो गया है। करोड़ों की संख्या में वानर योद्धा क्रोधपूर्वक दांतों से शब्द करते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं तथा अयोध्या नरेश श्रीराम के प्रबल प्रताप का गुणगान करते हुए उनकी जय-जयकार कर रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सभी देवता तथा ऋषि-मुनि रावण के अत्याचार से त्रस्त थे, अतः वे सभी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

2. छन्द– हरिगीतिका।
3. अलंकार– अनुप्रास अलंकार है।
4. ध्वन्यार्थ व्यंजक शब्दावली के कारण यहां श्रवण बिंब है।
5. चाक्षुष बिंब।

छंद– सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥ 2 ॥

शब्दार्थ – भार=सेना का भार। उदार=सहिष्णु, महान, बलशाली। अहिपति=शेषनाग। मोहई=आतंकित, भयभीत, मूर्च्छित होना, भ्रम अथवा संदेह में पड़ना। गह=पकड़ना। दसन=दांत। कमठ पृष्ट=कछुए की पीठ। प्रस्थिति=मुहूर्त। खर्पर=पृष्ठभाग। सर्पराज=शेषनाग। पावनी=पवित्र।

व्याख्या – शेषनाग वानर सेना के भारी बोझ को सहन नहीं कर पा रहे हैं, वे बार-बार मोह को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मूर्च्छित हो जाते हैं और अपनी रक्षा के लिए कच्छप की कठोर पीठ को दांतों से पकड़ते हैं। उनका यह कार्य ऐसी शोभा दे रहा है मानो श्रीराम की सुन्दर प्रस्थान-यात्रा के मुहूर्त को अत्यंत शुभ मानकर वह अविचल, पवित्र रीति से कछुए की पीठ पर उसे लिपिबद्ध कर रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे दिग्गज हैं, उनके नीचे शेषनाग हैं, शेषनाग के नीचे कच्छप हैं। शेषनाग का फण सेना के भार से दब रहा है, अतः वह दांतों से कच्छप की पीठ को पकड़ते हैं, जब पीठ से दांत छूट जाता है तब वह मोह अथवा भ्रम में पड़ जाते हैं।

2. अलंकार – अतिशयोक्ति तथा उत्प्रेक्षा।
3. छन्द – हरिगीतिका।
4. वीर रस और भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

दोहा– एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥ 35 ॥

शब्दार्थ – तीर=तट। विपुल=असंख्य।

व्याख्या – इस प्रकार श्रीराम जी ससैन्य सागर तट पर पहुंच गए। वहां पहुंचने पर वीर वानर और भालू इधर-उधर जाकर फल खाने लगे।

चौ– उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥

शब्दार्थ – उहाँ=वहां, लंका में। ससंका (सशंक)=भयभीत। केर=का। उबारा=उद्धार।

व्याख्या – जब से हनुमान लंका जला गए थे, तभी से वहां सभी राक्षस भयभीत रहते हैं और अपने-अपने घरों में विचार करते हैं कि अब राक्षस-वंश की रक्षा संभव नहीं है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. तुलसीदास ने 'इहाँ' और 'उहाँ' का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया है। जब वह राम-पक्ष का वर्णन करते हैं, तब 'इहाँ' कहते हैं और जब रावण-पक्ष का उल्लेख करते हैं, तब 'उहाँ' का प्रयोग करते हैं।

2. निज निज गृहँ – रावण के भय से कोई भी राक्षस लंका-दहन की चर्चा घर के बाहर नहीं करता है, वे अपने-अपने घरों में ही राक्षस-कुल-विनाश की चर्चा करते हैं।

चौ– जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥

शब्दार्थ – जासु=जिनके। कवन=कौन। दूतिन्ह=समाचार देने वाली, दूत का कार्य करने वाली राक्षसियां। पुरजन=नागरिकों, नगर निवासियों।

व्याख्या –वे परस्पर चर्चा करते हैं कि जिसके दूत का पराक्रम अवर्णनीय है, उसके स्वयं आने पर लंका की कौन-सी भलाई होगी अर्थात् लंका का कल्याण कैसे होगा? उसी समय मंदोदरी की दूतियों ने नगरवासियों की चर्चा की सूचना मंदोदरी को दी, जिसे सुनकर वह बहुत व्याकुल हो गई।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां मन्दोदरी द्वारा राजकार्य में सहभागिता का संकेत है। जिस प्रकार रावण के दूत नगर का समाचार रावण को देते थे, उसी प्रकार मंदोदरी की दूतियां घरों में वेश बदलकर जाती थीं और भीतर का समाचार मंदोदरी को देती थीं। घर के बाहर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावी-विनाश की चर्चा कोई राक्षस नहीं करता था, इसीलिए रावण के दूतों को कोई जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

2. अलंकार– प्रथम पंक्ति में व्याजस्तुति अलंकार है।

चौ०– रहसि जोरि कर पति पद लागी । बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

शब्दार्थ – रहसि=एकान्त। पागी=पगी हुई, युक्त। कंत=कं (कल्याण)+ त (तनोति)= कल्याणकारी (श्रीराम)। करष=शत्रुभाव। सन=साथ। परिहरहू=त्याग दीजिए।

व्याख्या – दूतियों से नगरवासियों में व्याप्त भय की सूचना पाकर व्याकुल मंदोदरी ने एकान्त में रावण से हाथ जोड़कर और पैरों पर गिरकर नीति-युक्त वचन कहा कि हे स्वामी! श्रीराम से वैर-भाव का परित्याग कर दीजिए तथा मेरी अत्यंत हितकर वाणी पर ध्यान दीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – शास्त्रों के अनुसार पत्नी पुरुष की प्रथम शुभचिंतक होती है, इसीलिए मंदोदरी का रावण से आग्रह है।

चौ०– समुझत जासु दूत कइ करनी । स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई । पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

शब्दार्थ – समुझत=विचार करते ही। कइ=की। स्रवहिं गर्भ=गर्भपात हो जाता है। धरनी=गृहिणी, पत्नी। नारि=पत्नी, सीता। पठवहु=भेज दो।

व्याख्या – मंदोदरी ने रावण से कहा कि जिसके दूत के कार्यों का विचार करते ही, राक्षस-पत्नियों का गर्भपात हो जाता है (अर्थात् सारा नगर त्रस्त और भयभीत है), अपने मंत्री (माल्यवान) को बुलाकर तत्काल उनकी पत्नी को (उनके पास) वापस भेज दो, यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. रावण महा अभिमानी है, वह किसी के सामने झुकने वाला नहीं है; इसीलिए मंदोदरी ने रावण को स्वयं सीता को वापस भेजने की बात नहीं कही, अपितु सचिव द्वारा भेजने का प्रस्ताव किया।

2. रावण का स्वभाव कैसा था? वाल्मीकि रामायण में उसने स्वयं कहा है कि मैं क्या करूं? यह मेरा स्वाभाविक दोष है कि भले ही मेरे दो टुकड़े हो जाएं, किन्तु मैं किसी के सामने झुकने वाला नहीं–

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एवं मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः॥ (6/36/11)

चौ०– तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

शब्दार्थ – तव=आपके। बिपिन=वन। सीत निसा=जाड़े की रात्रि। अज=ब्रह्मा।

व्याख्या – मंदोदरी ने कहा कि हे स्वामी ! आपका वंश कमल-वन के समान है, उसका विनाश करने के लिए सीता हिमऋतु की रात्रि के समान आई है अर्थात् जिस प्रकार जाड़े की रात्रि में कमल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही सीता का आगमन राक्षस-वंश के विनाश के लिए हुआ है। हे नाथ ! यह भली-भांति जान लीजिए कि सीता को वापस किए बिना शिव और ब्रह्मा भी तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकते।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'आई' शब्द में व्यंजना यह है कि तुम उनका अपहरण नहीं कर सकते थे। वह अपने सतीत्व के बल से तुम्हें भस्म कर सकती थीं, किन्तु वे समस्त राक्षसों का विनाश करने के लिए स्वयं यहां आई हैं।

2. संभु अज – रावण ब्रह्मा का प्रपौत्र था और शिव का सेवक था।

3. अलंकार – प्रथम पंक्ति में पूर्णोपमा अलंकार है।

दोहा– राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥ 36 ॥

शब्दार्थ – अहि गन=सर्पों का समूह। सरिस=सदृश, समान। निकर=समूह। भेक=मेढक। जतनु=प्रयत्न, उपाय। टेक=हठ।

व्याख्या – श्रीराम के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और सभी राक्षस मेढक के सदृश हैं। जब तक राम के बाण रूपी सर्प राक्षस रूपी मेढकों को खा नहीं जाते तब तक तुम उनकी रक्षा का कोई उपाय करो।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. राम के बाणों की तुलना सर्पों से की गई है क्योंकि उनमें भी विष है, लम्बे हैं, फुंकारयुक्त हैं, तीव्रगामी हैं, भयंकर हैं और मृत्युकारक हैं।

2. अलंकार – उपमा।

चौ०– श्रवन सुनी सठ ता करि बानी । बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा । मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

शब्दार्थ – सठ=मूर्ख तथा दुष्ट। बानी (सं० वाणी)=वचन। सभय=भयग्रस्त। काचा=कच्चा।

व्याख्या – मंदोदरी के उपर्युक्त वचन सुनकर मूर्ख, दुष्ट तथा जग विख्यात अहंकारी रावण हंसने लगा और कहा कि यह सत्य ही है कि स्त्रियां स्वभाव से डरपोक होती हैं। उसने पुनः कहा कि तुम्हारा मन इतना कमजोर है कि मंगल में भी अमंगल देख रही हो और भयभीत हो रही हो। तात्पर्य यह है कि नर-वानर राक्षसों के भक्ष्य हैं, वे स्वतः आ रहे हैं। यह मंगल है और मंदोदरी उनसे डर रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मंदोदरी द्वारा सीता लौटा देने की प्रार्थना करने पर रावण उसका तिरस्कार करता है। सुन्दरकाण्ड में यह प्रसंग कवि ने अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति के आधार पर प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण मे यह प्रसंग नहीं मिलता। हनुमान्नाटक में विभीषण द्वारा रावण को समझाने का प्रसंग अवश्य है किन्तु वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में यह प्रसंग युद्धकाण्ड में आता है।

2. अलंकार– विषम।

चौ०– जौं आवइ मर्कट कटकाई । जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

शब्दार्थ – जौं=यदि। मर्कट=बंदर। कटकाई=सेना। निसिचर=राक्षस। लोकप=लोकपाल।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – रावण ने मंदोदरी को समझाते हुए कहा कि यदि बंदरों की सेना आ जाए तो बेचारे (भूख के मारे) राक्षस उनको खाकर जीवित रहेंगे। लोकपाल भी जिस रावण के भय से कांपते रहते हैं, उसकी पत्नी बंदरों से भयभीत हो, इससे अधिक हंसी की बात और क्या हो सकती है?

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. लोकप (लोकपाल) – आठ दिशाएं हैं और प्रत्येक दिशा का एक-एक रक्षक है, जिसे लोकपाल कहते हैं, यथा – पूर्व दिशा के इन्द्र, दक्षिण-पूर्व के अग्नि, दक्षिण के यम, दक्षिण-पश्चिम के सूर्य, पश्चिम के वरुण, उत्तर-पश्चिम के वायु, उत्तर के कुबेर तथा उत्तर-पूर्व के लोकपाल सोम माने गए हैं। इनके वाहनों को दिग्गज कहते हैं।

2. अलंकार – कंपहिं .... हासा – विषम अलंकार।

चौ॰– अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

शब्दार्थ – ताहि=उसे, पत्नी को। सभाँ=राजसभा, दरबार। ममता=स्नेह, मोह, अहंभाव। कंत=पति। बिधि=विधाता।

व्याख्या – ऐसा कहकर रावण ने हंसकर मंदोदरी को छाती से लगा लिया और स्नेह, मोह तथा अहंकार से युक्त सभागार को चल दिया। मंदोदरी के हृदय में यह चिंता उत्पन्न हो गई कि विधाता उसके पति के प्रतिकूल हो गए हैं। (इसीलिए उन्हें अहित में हित और हित में अहित दिखाई पड़ने लगा है)।

साहित्यिक सौन्दर्य -- रावण ने हंसकर मंदोदरी को छाती से लगा लिया, जिससे उसे अनादर की अनुभूति न हो।

चौ॰– बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

शब्दार्थ – खबरि=समाचार। पार=दूसरे तट पर। सचिव=मंत्रियों से। मष्ट=चुप रहना। श्रम=परिश्रम।

व्याख्या – रावण जब सभागार में जाकर बैठा, उसी समय उसे समाचार मिला कि सागर के दूसरे तट पर राम की पूरी सेना पहुंच गई है। इस समाचार को सुनकर रावण ने सभी मंत्रियों से कहा कि आप लोग उचित परामर्श दीजिए। उसके इस कथन को सुनकर सभी सचिव हंसे और कहा कि चुप रहिए अर्थात् चिंता की कोई बात नहीं है। आपने जब देवताओं, असुरों को अनायास ही जीत लिया है, तब नर-वानर किस गिनती में हैं (अर्थात् वे तो बहुत ही शक्तिहीन हैं और हम लोगों के आहार हैं)।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. उचित मत – उचित में व्यंजना यह है कि सीता को दे दीजिए, शत्रु से संधि कर लीजिए, यह अनुचित है, यह मत कहना।

2. ते सब हँसे मष्ट करि रहहू – इस पंक्ति के कई अर्थ किए गए हैं, जैसे – (क) यह बात हंसी की है, चुप ही रहो। ऐसी बात न कहो, जो सुनेगा, वही हंसेगा। (ख) रावण ने हंसकर

मंदोदरी को चुप करा दिया था। (ग) वे सब हंसकर कहने लगे कि आप चुप लगाकर बैठिए हम लोग जाकर वानरों को खा जाएंगे। (घ) रावण ने उचित परामर्श देने को कहा था किन्तु मंत्रियों ने उचित सलाह न दी। यह उनका अपराध है। दोहे से इसी भाव की पुष्टि होती है।

3. अलंकार – जितेहु ...... माहीं – काव्यार्थापत्ति।

दोहा– सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ 37॥

शब्दार्थ – सचिव=राजा या शासक का मंत्री, परामर्शदाता। प्रिय बोलहिं=खुशामद करते हैं, ठकुरसुहाती कहने लगते हैं। आस=प्रलोभन के कारण। बेगिहीं=शीघ्र।

व्याख्या – इस दोहे में नीति-कथन है। यदि मंत्री, वैद्य और गुरु भय अथवा प्रलोभनवश सत्य न कहकर केवल प्रिय वचन कहते हैं तो क्रमशः राज्य, शरीर और धर्म का शीघ्र ही विनाश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि मन्त्री भय अथवा लोभवश सच्ची मन्त्रणा न दे, वैद्य रोगी को कुपथ्य से न रोके और गुरु अपने शिष्य को अधर्म करने से न रोके तो तीनों का विनाश हो जाता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां पर नीति-कथन द्वारा कर्तव्य-पालन की उपयोगिता का उल्लेख किया गया है।

2. तुलनीय – वैद्यो गुरुश्चमंत्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदः।
शरीरधर्मकोषेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ (हितोपदेश)

चौ॰– सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥

शब्दार्थ – कहुँ=के लिए। सहाई=संयोग, सुघड़ी।

व्याख्या – जो बातें किसी के विनाश में सहायक होती हैं, वही बातें रावण को सहायक हुईं अर्थात् कुमंत्रणा देकर मंत्री उसके विनाश में सहायक हुए। वे उसकी प्रशंसा करते हुए स्तुति अथवा यशगान कर रहे हैं। इसी समय उचित मंत्रणा देने का अवसर समझकर विभीषण आ गए और अपने बड़े भाई रावण को प्रणाम किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – अवसर जानि– इससे प्रतीत होता है कि विभीषण रावण के आने के पूर्व सभा में नहीं आते थे, किन्तु उन्हें सभा की गतिविधि की सूचना मिलती रहती थी। जब अपनी उपस्थिति आवश्यक समझते थे तब आ जाते थे। इसके पूर्व जब राक्षस रावण के आदेश से हनुमान को मारने के लिए दौड़े थे, तभी विभीषण आ गए थे।

चौ॰– पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥

शब्दार्थ – अनुसासन=आज्ञा, अनुमति।

व्याख्या – रावण को प्रणाम करके विभीषण अपने आसन पर सिर नीचा करके बैठ गए। तब रावण ने उनसे परामर्श देने के लिए कहा। रावण की आज्ञा पाकर विभीषण बोले – आपने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

137

कृपा करके मुझसे भी पूछा अर्थात् मुझे बड़ाई दी, अतः मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप आपके लिए हितकर बात कहता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – पत्नी, मंत्री तथा बंधु-बांधव ही राजा के सही हितैषी होते हैं। यहां पत्नी की रावण अवहेलना कर देता है और मंत्री खुशामद करने के उपक्रम में उसे कुमंत्रणा देते हैं। ऐसे में रावण का सगा भाई विभीषण उसे उचित परामर्श देने के लिए पहुंचता है।

चौ०– जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

शब्दार्थ – सुजसु=सुन्दर, यश। सुभ गति=शुभ दशा। लिलार (सं॰ ललाट)=मत्था, यहां तात्पर्य है – मुख। नाईं=समान।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि जो व्यक्ति अपना कल्याण, सुयश, सद्‌बुद्धि, शुभगति और सभी प्रकार के सुख चाहता है, उसे दूसरी की स्त्री के ललाट (मुख) को चतुर्थी के चन्द्रमा के समान त्याग देना चाहिए। तात्पर्य है कि जिस प्रकार चौथ का चांद देखना अनिष्टकर माना गया है उसी प्रकार परस्त्री से सम्पर्क भी विनाशकारी होता है। 'सो परनारि लिलार' का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि जो अपना कल्याण चाहता है उसे परनारी को दिमाग से निकाल देना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. जो आपन– रावण विभीषण का बड़ा भाई है, राजा है। अतः वह सीधे रावण को उपदेश नहीं दे रहे हैं, अपितु सामान्य नीति-कथन के व्याज से रावण को समझा रहे हैं। अतः यहां गूढ़ोक्ति अलंकार हुआ।

2. लोक-व्यवहार में भाद्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के चंद्रमा का दर्शन निषिद्ध माना गया है। इस संबंध में दो कथाएं प्रचलित हैं – (क) एक समय गणेशजी अपने वाहन मूषक से फिसलकर गिर पड़े, यह देख चन्द्रमा उन पर हंसने लगा। अतः गणेशजी ने रुष्ट होकर उसे शाप दे दिया कि जो तेरा दर्शन करेगा, उसे कलंक लगेगा। इससे सभी देवता बहुत विचलित हुए और गणेशजी से क्षमा याचना की। तब गणेशजी ने कहा कि अच्छा सिर्फ मेरी चतुर्थी (गणेश चतुर्थी) को चंद्रदर्शन निषेध रहेगा। (ख) अन्य कथा के अनुसार भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को चन्द्रमा ने वृहस्पति की पत्नी तारा के साथ व्यभिचार किया था। अतः उन्होंने शाप दिया था कि उस दिन उसका दर्शन अहितकर होगा।

3. अलंकार – 'चउथि के चंद कि नाईं' में उपमा।

चौ०– चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

शब्दार्थ – भुवन=लोक। पति=स्वामी। भूत द्रोह=प्राणियों से द्रोह करने वाला, विश्वद्रोही। तिष्टइ=स्थित। गुन सागर=सर्वगुण संपन्न। नागर=चतुर। अलप=अल्प, क्रीड़ा।

व्याख्या – विभीषण पुनः नीति कथन के माध्यम से रावण को समझाते हैं कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह चौदह लोकों का स्वामी हो, विश्वद्रोही होने पर स्थित नहीं रह सकता अर्थात्

नष्ट हो जाता है। (रावण विश्वद्रोही था)। जो व्यक्ति सर्वगुणसंपन्न हो। परम चतुर हो उसमें यदि किञ्चित् मात्र भी लोभ आ जाए तो कोई उसे उत्तम नहीं कहेगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – चौदह भुवन – भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, तल, अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल और पाताल हैं।

दोहा– काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहिं संत॥ 38 ॥

शब्दार्थ – मद=अहंकार। पंथ=मार्ग। परिहरि=त्यागकर।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे नाथ ! काम, क्रोध, मद, लोभ आदि षट्‌विकार नरक के मार्ग हैं अर्थात् नरक में ले जाने वाले होते हैं। अतः इनका परित्याग करके श्रीराम की उपासना कीजिए, जिनकी भक्ति में सभी संतजन लीन रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. काम क्रोध मद लोभ– कवि यहां से इन विकारों से मुक्ति पाने की बात करता है, क्योंकि वह रावण इन समस्त व्यसनों से ग्रस्त है।

2. कवि ने विभीषण द्वारा रावण को दिए जा रहे परामर्श से यह प्रसंग को श्रीराम-भक्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया है।

चौ०– तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

शब्दार्थ – नर=मनुष्य। भूपाला=केवल पृथ्वी पर राज्य करने वाले साधारण नरेश। भुवनेस्वर=जगत्पति। कालहु=यमराज के लिए भी। ब्रह्म=परम अक्षर जिसका कभी नाश न हो। अनामय=रोग रहित। अज=जिसका कभी जन्म नहीं होता। भगवंता=ऐश्वर्य-संपन्न। ब्यापक= जड़, चेतन-सभी वस्तुओं में व्याप्त। अजित=किसी के द्वारा न जीते जाने योग्य।

व्याख्या – विभीषण ने रावण से कहा कि हे तात ! श्रीराम सामान्य नर सम्राट नहीं हैं, वह जगत के स्वामी हैं। काल के भी प्रेरक, शासक और स्वामी हैं; संपूर्ण जगत् में अपने स्वरूप-गुण रूप से व्याप्त हैं, रोगरहित हैं, अजन्मा हैं, सम्यक् रूप से ऐश्वर्य-संपन्न हैं, जड़-चेतन सभी पदार्थों में व्याप्त हैं तथा अनादि और अनन्त शाश्वत तत्व हैं।

चौ०– गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥

शब्दार्थ – गो=पृथ्वी। द्विज=ब्राह्मण। धेनु=गाय। भंजन=नष्ट करने वाले। खल ब्राता=दुष्टों का समूह।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे भ्राता! सुनो, श्रीराम पृथ्वी, ब्राह्मणों में गायों तथा देवताओं के रक्षक हैं, दया के सागर हैं तथा भक्तों के कल्याण के लिए मानव-शरीर धारण करते हैं। वह भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाले दुष्टों का दलन करने वाले तथा वेद और धर्म के रक्षक हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां श्रीराम के निर्गुण-सगुण रूप का वर्णन किया गया है।

चौ०– ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥

शब्दार्थ – बयरु=वैर, शत्रुता। नाइअ माथा=उपासना कीजिए। प्रनतारति भंजन=शरणागत की विपत्ति हरण करने वाले। बिनु हेतु=निस्वार्थ भाव से, फल की आकांक्षा किए बिना।

व्याख्या – ऐसे सर्वप्रभुता-संपन्न श्री राम की उपासना कीजिए। वह शरणागत की समस्त विपत्तियों का नाश कर देते हैं। अतः उन्हें सीताजी को वापस कर दीजिए और जो बिना किसी स्वार्थ के सभी से स्नेह-भाव रखते हैं, ऐसे श्रीराम का भजन कीजिए।

चौ०– सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥

शब्दार्थ – अघ=पाप। त्रय ताप=तीन (दैविक, दैहिक, भौतिक) ताप।

व्याख्या – जिस व्यक्ति को समस्त विश्व से बैर रखने का पाप लगा हो, यदि वह भी उनकी शरण में जाता है तो श्रीराम उसका भी परित्याग नहीं करते हैं। जिसका नाम-स्मरण दैहिक, दैविक, भौतिक-तीनों प्रकार के तापों का हरण करने वाला है, ऐसे सर्वप्रभुता-संपन्न भगवान् ही राम रूप में अवतरित हुए हैं। हे रावण ! यह तथ्य भली-भांति हृदय से समझ लो।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में विभीषण-प्रसंग लंकाकाण्ड में है, जबकि यहां यह सुन्दरकाण्ड में है, जोकि शायद हनुमन्नाटक का प्रभाव है, हनुमन्नाटक में (रावण को समझाते हुए) विभीषण कहता है –

त्यजस्व कोपं कुलकीर्तिनाशनं भजस्व धर्मं कुलकीर्तिवर्धनम्।
प्रसीद जीवेन सबान्धवा वयं प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥

दोहा– बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥39 (क)॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥39 (ख)॥

शब्दार्थ – परिहरि=परित्याग करके। मान=मिथ्याभिमान।

व्याख्या – विभीषण ने पुनः अत्यंत विनम्र भाव से अनुरोध किया कि हे दशशीश ! मैं आपके चरणों की पुनः-पुनः वंदना करता हूं और विनती करता हूं कि मिथ्याभिमान, मोह, अहंकार आदि षट्-विकारों का परित्याग करके श्रीराम की उपासना कीजिए। उन्होंने यह भी सूचित किया कि उपर्युक्त जो भी कहा गया है, वह उन्होंने अपनी ओर से नहीं कहा है, बल्कि पुलस्त्य मुनि (दोनों के पितामह) ने अपने एक शिष्य के द्वारा उक्त संदेश भिजवाया है जिसे उन्होंने तत्काल सुअवसर देखकर उन्हें सूचित किया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – मुनि पुलस्ति– पुलस्त्य ऋषि रावण के पितामह थे। यहां कवि विभीषण-विमर्श के माध्यम से रावण को समझाने के लिए केवल उसके बंधु-बांधवों की ही परिकल्पना नहीं करता बल्कि उसके पूर्वजनों को भी इससे जोड़ने का भी प्रयास करता है। यह प्रकरण पूर्व परम्परा में नहीं मिलता।

चौ०– माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

शब्दार्थ – सयाना=(क) वृद्ध, (ख) चतुर। तासु=विभीषण के। अनुज=छोटा भाई। बिभूषण=निपुण। उर धरहु=ध्यान देकर, विश्वास करके।

व्याख्या – रावण की सभा में माल्यवान नामक एक अत्यंत चतुर तथा वृद्ध मंत्री था (माल्यवान रावण का नाना था)। विभीषण द्वारा दी गई मंत्रणा को सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और रावण से कहा कि हे पुत्र! तुम्हारा छोटा भाई बहुत ही नीति-निपुण है, इसलिए विभीषण जो परामर्श दे रहे हैं उसे स्वीकार कर लीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. केवल माल्यवान ने विभीषण के मत का अनुमोदन किया। सभा में उपस्थित अन्य किसी सभासद में विभीषण के कथन का समर्थन करने का साहस नहीं था।

2. 'सयाना' शब्द में श्लेष अलंकार।

चौ०– रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥

शब्दार्थ – रिपु=शत्रु। उतकरष=प्रशंसा। बहोरी=(क)तत्पश्चात्, (ख) पुनः। बहोरी=तब। कर=हाथ।

व्याख्या –विभीषण के परामर्श और माल्यवान द्वारा उसके समर्थन को सुनकर रावण बहुत रुष्ट हो गया और कहा कि ये दोनों दुष्ट शत्रु की प्रशंसा कर रहे हैं। यहां ऐसा कोई नहीं है, जो इन्हें यहां से निकाल दे ? इतना सुनते ही माल्यवान अपने घर चला गया, किन्तु विभीषण हाथ जोड़कर पुनः बोले।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'इहाँ हइ कोऊ' में व्यंजना यह है कि क्या यहां कोई है ही नहीं जो यह बोले कि ये ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं ? जब मंत्री मेरी प्रशंसा कर रहे थे तब यह बुड्ढा बोला तक नहीं, और अब शत्रु की प्रशंसा सुनकर उसका समर्थन कर रहा है। रावण को यह भी संदेह हो गया होगा कि सभासद मौन क्यों हैं। कोई भी विरोध क्यों नहीं कर रहा है। क्या मौन भाव से सभी विभीषण के समर्थक तो नहीं हो गए हैं ?

2. 'बहोरी' के दो अर्थ होते हैं – पुनः और तत्पश्चात्। यदि पुनः अर्थ लिया जाए, तो तात्पर्य होगा कि सचिवों की कुमंत्रणा सुनकर माल्यवान सभा से चला गया था किन्तु जब विभीषण आए, तब वह पुनः आ गया था क्योंकि वह जानता था कि विभीषण निश्चित रूप से सत्परामर्श देंगे।

चौ०– सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

शब्दार्थ – उर=हृदय। निगम=वेद, शास्त्र। निदाना=अन्त, विनाश।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे स्वामी! वेद और पुराणों के अनुसार सभी के हृदय में सद्बुद्धि और दुर्बुद्धि – दोनों का निवास होता है, किन्तु जहां सुमति होती है वहां सुख और सम्पत्ति का निवास रहता है तथा जहां कुमति होती है वहां विपत्ति और विनाश होता है।

चौ०– तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

शब्दार्थ – कुमति=खोटी बुद्धि, अविवेक। बिपरीता=घातक, अहित करने वाला। रिपु=शत्रु। प्रीता=मित्र। कालराति=प्रलय की रात्रि। केरी=के लिए। घनेरी=अत्यधिक।

व्याख्या – तुम्हारे हृदय में प्रतिकूल कुमति का निवास है, इसलिए तुम्हें हितकर वचन अहितकर प्रतीत होते हैं और तुम शत्रु को प्रिय समझते हो। सीता राक्षस-कुल के लिए प्रलय अथवा मृत्यु की रात्रि के समान है, उसी पर तुम अत्यधिक प्रेम-प्रदर्शन कर रहे हो।

साहित्यिक सौन्दर्य – पुलस्त्य रावण के पितामह थे। माल्यवान नाना थे और विभीषण अनुज थे, किन्तु तीनों का परामर्श उसे अहितकर प्रतीत हुआ।

दोहो– तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥ 40 ॥

शब्दार्थ – गहि=पकड़कर। मोर=मेरा। देहु=दीजिए। तुम्हार=तुम्हारा।

व्याख्या – विभीषण ने पुनः अनुरोध किया कि हे तात ! मैं तुम्हारे चरण पकड़कर याचना करता हूं, अनुज समझकर मेरे दुलार की रक्षा कीजिए और श्रीराम को सीता वापस कर दीजिए, जिससे आपका अहित न हो।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण द्वारा राम को सीता वापस करने की याचना की गई है। तुलसीदास प्रसंग को अधिक तेजवान बनाने के लिए प्रायः पत्नी, मंत्री, भाई तथा पितामह आदि सभी हितैषियों की उचित सलाह का प्रयोग करते हैं।

चौ०– बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥

शब्दार्थ – बुध=विद्वान्, बुद्धिमान। श्रुति=वेद। रिसाई=रुष्ट होकर, क्रोध में।

व्याख्या – इस प्रकार विभीषण ने विद्वानों, पुराणों तथा वेदों के अनुरूप नीति-युक्त परामर्श दिया, किन्तु रावण पर नीति-कथा का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वह क्रोध में अपने आसन से उठा और विभीषण से कहा कि अरे दुष्ट ! अब तेरी मृत्यु निकट आ गई है। वह समझ गया था कि विभीषण को निकालने के लिए और कोई नहीं कहेगा, इसलिए स्वयं उठा।

चौ०– जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं । भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥

शब्दार्थ – पच्छ=पक्ष। मूढ़=मूर्ख। खल=दुष्ट।

व्याख्या – उसने क्रोध में आकर कहा कि अरे शठ ! तेरा आचरण राक्षस कुल के विपरीत होने के कारण राक्षस अब तक तेरा वध कर देते, किन्तु मेरे भय से तुझसे कोई नहीं बोला। मैं

तेरी रक्षा करता रहा, किन्तु तुझे शत्रु का पक्ष लेना ही अच्छा लग रहा है। तू शत्रु के बल की प्रशंसा कर रहा है, किन्तु मेरे पराक्रम का वर्णन नहीं कर रहा है, अतः तू खल है। क्या तू नहीं जानता है कि संसार में ऐसा कोई बलवान नहीं है जिसे मैंने अपनी भुजाओं की शक्ति से पराजित नहीं किया है ?

चौ०– मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

शब्दार्थ – मम=मेरा। पुर=नगर। बसि=रहना। तपसिन्ह=तपस्वियों। तिन्हहि=उन्हें। नीती=नीति। कीन्हेसि=किया। गहे=पकड़ना, पकड़कर। बारहिं बारा=बार-बार।

व्याख्या – तू मेरे नगर में रहता है अर्थात् मेरी प्रजा है और तपस्वियों से प्रेम करता है। इसलिए, रे शठ! तू जाकर उनसे ही मिल जा और उन्हें नीति की शिक्षा दे। ऐसा कहकर उसने विभीषण पर चरणों से प्रहार किया किन्तु विभीषण ने बार-बार उसके चरणों को पकड़ लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गीतावली के अनुसार रावण ने विभीषण की छाती पर चरणों से प्रहार किया था –

तुलसी हुमकि हिये हन्यो लात भले तात चल्यो सुरतरु तकि तजि घोर घामहि। (पद 25)

2. उपर्युक्त घटना से स्पष्ट है कि विभीषण ने राजद्रोह अथवा भ्रातृद्रोह नहीं किया था और न उसे राज्य-प्राप्ति की कोई लालसा थी। रावण ने ही उसका त्याग किया था।

चौ०– उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा । रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥

शब्दार्थ – उमा=पार्वती, गौरी। इहइ=ऐसी ही। बड़ाई=गौरव, महिमा। मंद=बुराई, अहित। सरिस=समान।

व्याख्या – शिवजी पार्वती से कहते हैं कि संतजनों का यही बड़प्पन है जो विभीषण ने रावण से कहा। वे उसका भी उपकार करते हैं जो उनका अहित करते हैं। विभीषण ने रावण से कहा कि आप मेरे पिता-तुल्य हैं (बड़ा भाई पिता-तुल्य होता है), अतः अच्छा किया जो मुझे मारा, किन्तु राम की उपासना में ही तुम्हारा कल्याण है।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण द्वारा अनुज विभीषण पर 'पद प्रहार' की सर्वथा प्रसिद्ध घटना वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में नहीं मिलती। वहां रावण से असन्तुष्ट होकर विभीषण अपने मंत्रियों सहित राम की शरण में चला जाता है–

विभीषणो रावण वाक्यतः क्षणा द्विसृज्य सर्वं सपरिच्छंद गृहम्।
जगाम रामस्यपदार विन्दयो सेवाभिकांक्षी परिपूर्णमानसः॥

हनुमन्नाटक में यह प्रसंग इस प्रकार दिया गया है–

इति राम चरणेन विभीषणं ताऽदामास।

चौ०– सचिव संग लै नभ पथ गयऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

दोहा– रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥ 41 ॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – सचिव=मंत्रणा देने वाले साथी। नभ पथ=आकाश। सत्यसंकल्प=सत्य मार्ग के अनुयायी, नीति पथ पर चलने वाले। प्रभु=सर्वशक्तिमान। सभा=रावण के पक्षधर, अनुयायी। खोरि=दोष।

व्याख्या – रावण के चरण प्रहार करने पर और सभा से निकाल दिए जाने पर विभीषण अपने सचिवों के साथ आकाश-मार्ग की ओर चले गए और सभी को सुनाकर कहा कि हे रावण! राम का संकल्प (प्रतिज्ञा) सत्य है अर्थात् उन्होंने 'निसिचर हीन करहुं महि' की जो प्रतिज्ञा की है वह सत्य ही है और तुम्हारी पूरी सभा काल के वश में है अर्थात् मरणासन्न है। (विभीषण के साथ इतना बड़ा अन्याय हुआ, किन्तु किसी सभासद ने रावण का विरोध नहीं किया; इसलिए वह पूरी सभा से क्षुब्ध हैं)। उन्होंने पुनः कहा कि अब मैं श्रीराम की शरण में जा रहा हूं, कोई भी मुझे दोष न देना।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'सचिव संग लै नभ पथ गयऊ' – वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण अपने चार मंत्रियों के साथ श्रीराम की शरण में गया था। उनके नाम हैं – अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति।

2. राक्षस और देवता प्रायः आकाश मार्ग से ही चला करते थे।

चौ॰– अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

शब्दार्थ – आयूहीन=मृत्यु के अधीन। अवग्या=अवज्ञा, अपमान, तिरस्कार। भवानी=पार्वती। अखिल=संपूर्ण।

व्याख्या –ऐसा कहकर जब विभीषण ने प्रस्थान किया, तभी सब राक्षस आयुहीन हो गए अर्थात् मृत्यु के निकट पहुंच गए। शिवजी पार्वती से कहते हैं कि संतों का अपमान करने से सभी प्रकार के हितों की हानि हो जाती है अर्थात् व्यक्ति संत का अपमान करके स्वयं का अहित कर लेता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण के लंका से चले जाने पर शायद सभी लंकावासी अपने भविष्य को लेकर चिंतित हो गए और उन्हें अपनी मृत्यु निकट ही प्रतीत होने लगी।

चौ॰– रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

शब्दार्थ – बिभव=वैभव, ऐश्वर्य।

व्याख्या – इस प्रकार विभीषण ने जैसे ही रावण का परित्याग किया, उसी समय से वह अभागा ऐश्वर्यहीन हो गया। विभीषण श्रीराम की शरण में जा रहे हैं और मन में अनेक प्रकार की कामनाएं कर रहे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – उनके मन में कौन-सी कामनाएं हैं, तुलसीदास ने उनका 'गीतावली' के सुन्दरकाण्ड में विस्तृत वर्णन किया है। उनका मनोरथ वासनाजन्य नहीं है, केवल राम का दर्शन तथा शरणागति ही है। (दे॰ – पद संख्या – 29-30)

चौ॰– देखिहउं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥

शब्दार्थ – जलजाता=कमल। अरुन=लाल। परसि=स्पर्श करके। रिषिनारी=अहल्या। कानन=जंगल। पावनकारी=पवित्र करने वाली।

व्याख्या – मार्ग में विभीषण यह मनोरथ करते हुए जा रहे हैं कि अब मुझे श्रीराम के लाल कमल के समान कोमल और सेवक को सुख प्रदान करने वाले चरणों के दर्शन होंगे। श्रीराम के चरण ऐसे अभयदाता हैं जिनके स्पर्श से गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया था और जिन्होंने दण्डकारण्य को भी पवित्र कर दिया था।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'जे पद परसि तरी रिषिनारी' – अहल्या गौतम ऋषि की पत्नी थीं। एक बार ऋषि की अनुपस्थिति में कामपीड़ित इन्द्र गौतम का रूप धारण करके आये और अहल्या से व्यभिचार किया। उसी समय गौतम ऋषि आ गए और अहल्या को शाप दे दिया कि 'तू पत्थर हो जा।' उसी समय से वह एक शिला के रूप में दण्डक वन में पड़ी थीं। श्रीराम ने अपने चरण के स्पर्श से उनका उद्धार किया।

2. दंडक कानन – विन्ध्याचल पर्वत से गोदावरी तट तक विस्तीर्ण एक प्राचीन वन का नाम। वनवास के समय श्रीराम यहां बहुत दिनों तक रहे थे। इसी वन में सूर्पणखा के नाक-कान कटे थे और सीताहरण भी यहीं से हुआ था।

एक पौराणिक कथा के अनुसार राजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में एक का नाम 'दण्डक' था। वह शुक्राचार्य का शिष्य था। एक दिन उसने गुरु-कन्या से रमण किया। अतः गुरु शाप से पूरे नगर सहित वह भस्म हो गया। वह नगर जंगल हो गया जिसका नाम दण्डकारण्य हुआ। वहां श्रीराम के आगमन पर पूरा वन हरा-भरा हो गया।

3. अलंकार – तृतीय चरण में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है।

चौ॰– जे पद जनकसुतां उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउं तेई॥

शब्दार्थ – जनकसुतां=जानकी, सीता। कपट=छल करने वाले। कुरंग=मृग, हिरण। धर=पकड़ने के लिए। धाए=दौड़े। हर=शिवजी। सर=तालाब। सरोज=कमल।

व्याख्या –विभीषण विचार कर रहे हैं कि मैं बड़ा भाग्यशाली हूं, क्योंकि अब मैं श्रीराम के उन चरणों का दर्शन करूंगा, जिनका सीताजी सदैव ध्यान करती रहती हैं तथा जो पैर कपटी मृग (मारीच) को पकड़ने के लिए दौड़े थे और जो शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में कमल के समान विकसित रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – तृतीय चरण में सम अभेद रूपक अलंकार।

दोहा– जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउं इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ 42 ॥

शब्दार्थ – पादुकन्हि=पादुकाओं में। बिलोकिहउं=दर्शन करूंगा।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – भरतजी जिन चरणों की पादुकाओं (खड़ाऊं) में सदैव ध्यानमग्न रहते हैं, अब मैं अपने नेत्रों से उन्हीं चरणों का दर्शन करूंगा।

चौ०– एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥

शब्दार्थ – सपदि=शीघ्र ही। रिपु दूत=शत्रु का दूत। बिसेषा=विशेष, खास।

व्याख्या – इस प्रकार प्रेमपूर्वक विचार करते हुए विभीषन शीघ्र ही समुद्र पार कर के इस तट पर आ गए। जब वानरों ने विभीषण को आते हुए देखा तो अनुमान किया कि यह शत्रु का कोई विशेष दूत है।

चौ०– ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

शब्दार्थ – राखि=ठहराकर, रोककर। कपीस=सुग्रीव।

व्याख्या – यद्यपि विभीषण ने अपना पूरा परिचय दे दिया था और अपने आगमन का कारण भी बता दिया था, किन्तु वानरों को उसके कथन पर पूरा विश्वास नहीं हुआ था। इसीलिए उन लोगों ने विभीषण को बाहर ही रोक दिया। अन्दर नहीं आने दिया, किन्तु दूत समझकर उनको मारा भी नहीं। इस प्रकार विभीषण को बाहर रोककर वे सुग्रीव के पास आए और उनसे विभीषण का सब समाचार कहा। वानरों से पूर्ण विवरण जानकर सुग्रीव श्रीराम के पास आए और कहा कि रावण का भाई आपसे भेंट करने आया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – सम्पूर्ण पद में संदेह अलंकार है।

चौ०– कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

शब्दार्थ – बूझिये=विचार। काहा=क्या। कपीस=सुग्रीव। नरनाहा (सं० नरनाथ)=सम्राट्। कामरूप=इच्छानुसार रूप धारण करने वाले।

व्याख्या – सुग्रीव से पूरा वृतान्त सुनकर श्रीराम ने उनसे पूछा कि हे मित्र! इस संबंध में आपका क्या विचार है? तब सुग्रीव ने उत्तर दिया कि हे राजन्! सुनिए! राक्षसों की माया कभी जानी नहीं जा सकती। ये इच्छानुसार रूप धारण कर लेते हैं, अतः पता नहीं कि यह किस प्रयोजन से आया है?

साहित्यिक सौन्दर्य – द्वितीय पंक्ति में संदेह अलंकार है।

चौ०– भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

शब्दार्थ – सठ=शठ, दुष्ट। बांधि=बंदी बनाकर रखा जाए। नीति=ठीक। पन=प्रण, प्रतिज्ञा।

व्याख्या – श्रीराम के पूछने पर सुग्रीव ने अपना मत व्यक्त किया कि संभव है कि यह दुष्ट हम लोगों का भेद लेने आया हो, गुप्तचर हो। अतः मुझे यही उचित प्रतीत होता है कि इसको बांधकर रखा जाए। (सुग्रीव के इस निर्णय से उनकी नीति-निपुणता, दूरदर्शिता और राम-कार्यतत्परता की झलक मिलती है, क्योंकि बांधे जाने पर विभीषण की माया नहीं चलेगी, वह कोई भेद नहीं जान सकेगा और अवध्य भी रहेगा।) सुग्रीव के मत से सहमत होते हुए भी श्रीराम ने कहा कि हे सखा! यद्यपि तुम्हारा कथन नीति-सम्मत है, किन्तु मेरा प्रण है – शरणागत के भय को दूर करना, उसकी रक्षा करना। श्रीराम के उक्त वचन सुनकर कि वह शरणागतवत्सल हैं, अतः विभीषण को अपनी शरण में ले लेंगे, हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुए।

साहित्यिक सौन्दर्य – हनुमानजी विभीषण को एक प्रकार से आमंत्रित कर आए थे कि तुम राम की शरण में आ जाओ, वह तुम्हारा कल्याण करेंगे। लंका में हनुमान से भेंट होने पर विभीषण ने उन से पूछा था कि 'तात कबहुं मोहि जानि अनाथा, करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।' इसके उत्तर में हनुमान ने कहा था – 'सुनहु विभीषण प्रभु कइ रीती, करहिं सदा सेवक पर प्रीती'। उनके इस कथन में विभीषण को राम की शरण में जाने की व्यंजना है। किन्तु उनके आगमन पर सुग्रीव ने उन्हें बांधकर रखने का परामर्श दिया। सुग्रीव वानरों के राजा हैं, अतः हनुमान उनके विरोध में कुछ बोल नहीं सके, किन्तु जब श्रीराम ने शरणागत को अभयदान की बात कही, तब वह बहुत प्रसन्न हुए।

दोहा– सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥ 43 ॥

शब्दार्थ – कहुँ=को। अनहित=अनिष्ट। पावँर (सं० पामर)=नीच। बिलोकत=देखने तक पर।

व्याख्या – श्रीराम ने पुनः कहा कि जो व्यक्ति अपने अनिष्ट का अनुमान करके शरणागत का त्याग करता है, वह नीच और पापी है तथा उसका दर्शन भी हानिकारक होता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां तुलसीदास ने राजनीति और नीति में विभेदीकरण का प्रयास किया है। जहां विभीषण को शत्रु रावण के भाई के रूप में देखना राजनीति है, वहीं उसे शरणागत के रूप में देखना नीति है। शरणागत को स्वीकार करना नीति, निष्ठा तथा विवेक के अनुरूप है।

चौ०– कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

शब्दार्थ – कोटि=करोड़ों। बिप्र बध=ब्राह्मणों की हत्या। ताहू=उसको। जीव=प्राणधारी। अघ=पाप।

व्याख्या – यहां श्रीराम स्वयं अपने स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति करोड़ों ब्राह्मणों का वध करने का अपराधी है, यदि वह भी मेरी शरण में आ जाए तो मैं उसका परित्याग नहीं करता। जब जीव मेरे सम्मुख होता है अर्थात् जीव की प्रवृत्तियां भगवदोन्मुखी हो जाती हैं, तभी उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां भक्ति की महिमा का निदर्शन है।

चौ०– पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥

शब्दार्थ – पापवंत=पापी, दुरात्मा। कर=का। मोर=मेरा। काऊ=कभी भी।

व्याख्या – पापी व्यक्ति का यह सहज स्वभाव होता है कि उसे कभी भी भगवद्-भक्ति में रुचि नहीं होती। दुष्टात्मा व्यक्ति मेरे सम्मुख कदापि नहीं आ सकता।

साहित्यिक सौन्दर्य – तुलनीय – गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि मूढ, नराधम, माया द्वारा अपहृत ज्ञान वाले तथा आसुरी प्रकृति वाले पापी व्यक्ति मेरी शरण में नहीं आ सकते –

न मां दुष्कृतिनों मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ (7/15)

चौ०– निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

शब्दार्थ – पावा=प्राप्त करता है, दर्शन करता है। कपीसा=सुग्रीव।

व्याख्या – षट्विकार रहित व्यक्ति ही मुझे प्रिय होता है। मुझे कपट, छल-छिद्र आदि कदापि पसंद नहीं हैं। हे सुग्रीव! यदि रावण ने हमारा भेद लेने के लिए इसे गुप्तचर रूप में भेजा है, तब भी किसी प्रकार का भय अथवा हानि नहीं है।

चौ०– जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

शब्दार्थ – हनइ=मार गिराने में समर्थ। निमिष=पल, क्षण। सभीत=भयभीत होकर, त्रस्त होकर। नाईं=समान।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि हे सखा! संसार में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण पल मात्र में उनका वध कर सकते हैं और यदि वह रावण से त्रस्त होकर मेरी शरण में आया है तो मैं उसकी अपने प्राणों के समान रक्षा करूंगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'प्रान की नाईं' में धर्म लुप्तोपमा अलंकार।

दोहा– उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥ 44 ॥

शब्दार्थ – उभय भाँति=दोनों स्थितियों में चाहे वह छल-कपट से हमारा भेद लेने आया हो अथवा रावण के अत्याचारों से त्रस्त होकर आया हो। आनहु=ले आओ।

व्याख्या – दया के सागर श्रीराम ने हंसकर कहा कि विभीषण चाहे शरण में आया हो अथवा भेद लेने आया हो – दोनों ही स्थितियों में उसे मेरे पास ले आइए। श्रीराम की आज्ञा पाकर अंगद और हनुमान के साथ वानर श्रीराम की जय-जयकार करते हुए चल दिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण रावण का अनुज है, अतः उसके सम्मानार्थ राजकुमार अंगद और मंत्री हनुमान को भेजा गया। हनुमान विभीषण से पूर्व परिचित भी थे।

चौ०– सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

शब्दार्थ – करुनाकर=करुणा के सागर। नयनानंद=नेत्रों को सुख तथा आनंद देने वाले भगवान राम।

व्याख्या – तत्पश्चात् सभी वानर विभीषण को आदरपूर्वक आगे करके करुणा के सागर श्रीराम के पास चले गए। विभीषण सब से आगे हैं, अतः उसने दूर से ही नेत्रों को आनंद प्रदान करने वाले दोनों भाइयों श्रीराम और लक्ष्मण को देखा।

साहित्यिक सौन्दर्य – प्रभु-दर्शन के सुख का वर्णन है।

चौ०– बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥

शब्दार्थ – बहुरि=तत्पश्चात्। ठटुकि=रुक गया। भुज प्रलंब=आजानुबाहु, घुटनों तक पहुंचने वाली भुजाएं। कंजारुन=कमल के समान लाल। गात=शरीर। प्रनत=शरण में आए व्यक्ति के लिए। मोचन=मुक्त करने वाले, दूर करने वाले।

व्याख्या – विभीषण ने तत्पश्चात् सौन्दर्य की निधि श्रीराम को देखा। उनके अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर उसके पैरों तथा नेत्रों की गति रुक गई। वह ठिठुक कर रुक गये और निर्निमेष नेत्रों से श्रीराम को देखने लगे। उसने देखा कि श्रीराम आजानुबाहु हैं अर्थात् उनकी भुजाएं बहुत लम्बी हैं, उनके नेत्र लाल कमल के समान हैं, शरीर श्याम-वर्ण का है तथा उनका स्वरूप शरणागत के भय को समाप्त करने वाला है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां पर श्रीराम का नख-शिख वर्णन किया गया है –

2. अलंकार – 'कंजारुन लोचन' में रूपक अलंकार।

चौ०– सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥

शब्दार्थ – सिंघ=सिंह। कंध=कंधे। आयत=चौड़ी। आनन=मुख। अमित=असंख्य। मदन=कामदेव। नीर=प्रेमाश्रु।

व्याख्या – श्रीराम के स्कंध (कंधे) सिंह के समान हैं, छाती चौड़ी और विशाल है तथा मुख का सौन्दर्य असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला है। तात्पर्य यह है कि मुख दिव्य-आभा से सम्पन्न है। श्रीराम के ऐसे अनुपम सौन्दर्य को देखकर विभीषण के नेत्रों में प्रेमाश्रु आ गए तथा शरीर रोमांचित हो गया। तब उन्होंने मन में धैर्य धारण करके मधुर वाणी में कहा।

चौ०– नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

शब्दार्थ – दसानन=दसमुख वाला रावण। सुरत्राता=देवताओं के रक्षक, राम। तामस=तामसी स्वभाव। उलूकहि=उल्लू के समान।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे नाथ! मैं रावण का भाई हूं। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। पाप कर्म करना मेरा सहज स्वभाव है तथा मेरी प्रवृत्ति तमोगुणी है। जैसे उलूक तम (अंधकार) प्रेमी होता है वैसे ही हम लोग भी तम (काम, क्रोध अथवा अंधकार) प्रेमी निशाचर हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. तामसी प्रवृत्ति के लोगों के लक्षण गीता में इस प्रकार बताए गए हैं –

आयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृति कोऽलसः
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।

अथार्त् तामसी व्यक्ति विक्षिप्त चित्तवाला, अशिक्षित, घमण्डी, धूर्त, दूसरों की आजीविका का नाश करने वाला, आलसी तथा काम को टालने वाला होता है।

2. अलंकार – 'जथा उलूकहि...... नेहा' में उदाहरण।

दोहा– श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥45॥

शब्दार्थ – श्रवन=कानों से। सुजसु=आपका यश, नाम, कीर्ति। भव भीर=सांसारिक कष्ट, माया मोह से उत्पन्न विषाद। त्राहि=रक्षा करो। आरति हरन=दुख दूर करने वाले।

व्याख्या – मैं हनुमान से आपका सुयश सुनकर आपकी शरण में आया हूं। हे प्रभु! आप संसारजन्य भय को नष्ट करने वाले हैं, आर्तजनों की पीड़ा हरण करने वाले हैं तथा शरणागत को सुख प्रदान करने वाले हैं, अतः आप मेरी रक्षा कीजिए – त्राहिमाम।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण द्वारा कहे गए ये शब्द एक भक्त के हैं न कि राजनीतिक शरण खोजने वाले के।

चौ०– अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

शब्दार्थ – अस=ऐसा। दंडवत=साष्टांग प्रणाम। तुरत=तत्काल। सुनि=सुनकर। बिसाल=विशाल। गहि=लेकर।

व्याख्या – ऐसा कहकर विभीषण ने साष्टांग प्रणाम किया। श्रीराम उन्हें अपने चरणों में नत देखकर और उनके दीन वचन सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए तथा तत्काल उठकर अपनी विशाल भुजाओं से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण ने राम की कृपा प्राप्त कर अपने को राक्षस कुल में पैदा होने का कलंक धो डाला। राम का स्नेह प्राप्त कर अपने को धन्य किया।

चौ०– अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

शब्दार्थ – ढिग=निकट। कुठाहर=बुरे स्थान पर।

व्याख्या – श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ने मिलकर उन्हें अपने निकट बैठा लिया। तत्पश्चात् श्रीराम भक्तों का भयहरण करने वाले वचन बोले कि हे लंकेश! तुम सपरिवार अपना कुशल समाचार बताओ। तुम्हारा निवास तो बहुत ही बुरे स्थान पर है अर्थात् तुम्हें रात-दिन खलमण्डली में रहना पड़ता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. कहु लंकेस – विभीषण अभी लंका का राजा नहीं है, किन्तु 'लंकेस' संबोधन में भविष्य में राम द्वारा उसको लंकाधिपति बनाए जाने की व्यंजना है।

2. अलंकार – 'कहु लंकेस' में भावित अलंकार।

चौ०– खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥

शब्दार्थ – खल मंडली=दुष्टों का समूह। धरम=धर्म। निबहइ=निर्वाह। रीती=आचार-व्यवहार, दिनचर्या। नय=नीति। भाव=अच्छा लगना, रुचिकर होना। अनीती=अन्याय, अनैतिक कार्य।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि तुम दिन-रात दुष्टों के मध्य निवास करते हो। अतः हे सखा! तुम धर्म का निर्वाह कैसे करते हो? मैं तुम्हारे आचरण अथवा व्यवहार से भली-भांति परिचित हूं। तुम अत्यंत नीति-निपुण हो तथा तुम्हें अन्याय कदापि सहन नहीं है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. हनुमान ने विभीषण का आचरण, उनकी भक्ति-भावना आदि का वृत्तान्त श्रीराम से कहा होगा। उन्होंने यह भी बताया होगा कि विभीषण ने कितनी निपुणता से उनके प्राणों की रक्षा की थी तथा सीता का पता उन्होंने ही बताया था।

2. श्रीराम ने वनवास की अवधि में तीन लोगों को 'सखा' बनाया था – निषादराज गुह, सुग्रीव और विभीषण। इनमें गुह पहले से ही निषादों का राजा था, अन्य दो को उन्होंने राजा बनाया।

चौ०– बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥

शब्दार्थ – बरु=भले ही, चाहे। भल=उत्तम। जनि=मत। जन=भक्त।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि भले ही नरक में निवास करना पड़े, किन्तु विधाता दुष्टों का संग न दे। अर्थात् दुष्ट संग की अपेक्षा नरकवास भी उत्तम है। श्रीराम के उपर्युक्त वचन सुनकर विभीषण ने कहा कि आपने अपना भक्त समझकर मुझपर अनुग्रह किया, अतः आपके श्रीचरणों के दर्शन करके मैं सकुशल हो गया हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. नरकवास के दुःख की निवृत्ति हो जाती है, किन्तु दुष्ट संग से दुःख की निवृत्ति नहीं हो पाती।

2. तुलनीय – वरं हि नरके वासो तनु दुश्चरिते गृहे।
नरकात् क्षीयते पाप कुगृहान्न निवर्तते॥ (गरुड़ पुराण)

चौ०– तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥46॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

शब्दार्थ – लगि=तक। विश्राम=शान्ति। सोक धाम=शोक, कष्ट देने वाले। काम=वासना।

व्याख्या – राम-भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करते हुए विभीषण कहते हैं कि कोई भी प्राणी तब तक सकुशल नहीं है और न उसे स्वप्न में भी शान्ति का अनुभव हो सकता है, जब तक वह समस्त दुखों की मूल – वासना का पूर्णतः परित्याग करके श्रीराम की उपासना नहीं करता है। कामनाएं ही शोक देने वाली होती हैं, अतः उन्हें 'सोक धाम' कहा गया है।

चौ०– तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

शब्दार्थ – खल=दुष्ट, कुप्रवृत्तियां। मच्छर (सं० मत्सर)=ईर्ष्या, द्वेष। मद=अहंकार। माना=मिथ्याभिमान। चाप=धनुष। सायक=बाण। कटि=कमर। भाथा=तरकश।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे रघुनाथ ! तब तक हृदय में लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार, मिथ्याभिमान आदि अनेक प्रकार के दुष्ट भाव निवास करते हैं, जब तक धनुष-बाण और कमर में तरकश धारण किए हुए आपका आवास हृदय में नहीं रहता है। तात्पर्य है कि भगवद्-भक्ति के अभाव में जीवनद्विकारों से ग्रस्त रहता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – तुलसीदास ने विभीषण के वचनों के माध्यम से शरणागतमूलक भक्ति के सार तत्व का निरूपण किया है।

चौ०– ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

शब्दार्थ – ममता=ममत्व। तरुन=पूर्ण। तमी=रात्रि। सुखकारी=सुख पानेवाला। रबि=सूर्य।

व्याख्या – विभीषण का कथन है कि ममत्व (अपने-पराए का भाव) अंधकारपूर्ण रात्रि है, जिसमें राग-द्वेष रूपी उलूक तभी तक आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, जब तक प्रभु का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – विभीषण के वचन उसके आत्मिक उद्गार हैं, जिनके द्वारा वह श्रीराम की भक्ति में अपनी पूरी निष्ठा व्यक्त करता है।

चौ०– अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥

शब्दार्थ – भारे=घोर संकट। त्रिबिध भव सूला=तीन प्रकार के ताप – आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तथा इन्हीं को दैहिक, दैविक, भौतिक ताप भी कहा गया है।

व्याख्या – विभीषण ने पुनः कहा कि प्रभु! अब आपके चरण-कमलों के दर्शन से मेरे संसारजन्य भय समाप्त हो गए हैं और मैं कुशलपूर्वक हूं! हे प्रभु ! आपका जिस पर अनुग्रह हो जाता है, उसको दैहिक, दैविक और भौतिक नामक त्रय-ताप व्याप्त नहीं हो सकते।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां कवि ने विभीषण की स्वीकृति के माध्यम से अशरणशरण तथा भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम के स्वभाव को निरूपित किया है।

चौ०– मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥

शब्दार्थ – अधम=पापी, निकृष्ट। सुभाऊ=स्वभाव। काऊ=कोई भी।

व्याख्या – मैं निशाचर हूं। मेरा स्वभाव अत्यंत अधार्मिक अथवा तुच्छ है। मैंने जीवन में कभी शुभ आचरण नहीं किया है। फिर भी मुनियों के लिए जिनका ध्यान अगम्य है, ऐसे प्रभु ने मुझे प्रसन्नतापूर्वक हृदय से लगा लिया है अर्थात् मुझपर कृपा की है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां भाव यह है कि प्रभु श्रीराम के आगे सभी एक समान हैं; कोई अधम, नीच, पापी, तुच्छ, नहीं। उनकी सभी शरणागत भक्तों पर एक समान कृपा है।

दोहा– अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥ 47 ॥

शब्दार्थ – अहोभाग्य=भाग्यशाली। अमित=अत्यधिक, अपार। पुंज=राशि, समूह। बिरंचि=ब्रह्मा, विधाता। जुगल=दोनों। कंज=कमल।

व्याख्या – हे सुख के आगार और कृपालु श्रीराम! यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैंने ब्रह्मा और शिव के द्वारा सेवित आपके दोनों चरण-कमलों का दर्शन किया।

चौ०– सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥

शब्दार्थ – निज=अपना। भुसुंडि=काकभुशुंडि। संभु=शंभु, शंकर, महादेव। गिरिजाऊ=पार्वती भी।

व्याख्या – श्रीराम ने विभीषण से कहा कि हे सखा ! सुनो ! मैं अपना स्वभाव स्वयं कहता हूं और मेरे स्वभाव को कागभुशुण्डि, शिव और पार्वती भी जानते हैं। काग और शिव राम-कथा के वक्ता ही हैं और पार्वती ने शिव से कथा सुनी है, अतः तीनों राम के स्वभाव के सम्यक् जानकार थे। राम का स्वभाव इतना उदार है कि यदि कोई विश्वद्रोही हो, वह भी भयभीत होकर उनकी शरण में सुरक्षा का अनुमान करके आता है (तो उनका अनुग्रह अवश्य प्राप्त करता है)। यहां 'सभय' का तात्पर्य है – अपने पापों से भयभीत होकर।

साहित्यिक सौन्दर्य – अतिशयोक्ति अलंकार।

चौ०– तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥

शब्दार्थ – सद्य=तत्काल। दारा=पत्नी। तनु=शरीर। भवन=घर। सुहृद=मित्र। ताग=धागे। बटोरी=एकत्र करके। बरि=बटना। डोरी=रस्सी। समदरसी=सबको समान दृष्टि से देखने वाला, शत्रु-मित्र में भेद न करने वाला।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या – इन पंक्तियों में भक्त के लक्षण और श्रीराम के शरणागत वत्सल स्वभाव का उल्लेख किया गया है। श्रीराम कहते हैं कि यदि कोई अहंकार, मोह तथा विविध प्रकार के छल-कपट त्यागकर मेरी शरण में आता है तो मैं उसे तत्काल संतवत् बना देता हूं। उसके अवगुणों पर ध्यान नहीं देता हूं। माता, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी, शरीर, धन, भवन, मित्र, परिवार आदि के प्रति जो ममता का भाव रूपी धागा है, उसको एकत्र करके और बट कर के मजबूत डोरी बनाकर उसके द्वारा अपने मन को मेरे चरणों में जो बांध देता है अर्थात् पूर्णत: 'मैं मेरा' अंतर्भाव से मुक्त हो जाता है, समदर्शी है अर्थात् शत्रु-मित्र में कोई भेदभाव नहीं करता है, निष्काम है तथा जिसके मन में हर्ष, शोक, भय आदि मनोविकार नहीं हैं ......।

साहित्यिक सौन्दर्य – गीता में कहा गया है कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'। यहां धर्मान् शब्द का अर्थ है – धृ अर्थात् जिनको धारण कर रखा है, जिनके ममत्व से बंधा है उनको त्यागकर, मेरी शरण में आओ। उपर्युक्त पंक्तियों में इसी 'दर्शन' की व्याख्या की गई है।

चौ॰– अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

शब्दार्थ – धनु=धन। सारिखे=सदृश। धरउँ देह=नर रूप धारण करना, अवतार लेना। आन=अन्य। निहोरें=कारण।

व्याख्या – श्रीराम कहते हैं कि उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सज्जन मेरे हृदय में उसी प्रकार निवास करता है अर्थात् मुझे वैसे ही प्रिय है, जैसे लोभी व्यक्ति को धन प्रिय होता है। तुम्हारे (विभीषण) जैसे संत तो मुझे अतिशय प्रिय हैं। मैं आप जैसे संतों की रक्षा के लिए शरीर धारण करता हूं अर्थात् अवतार लेता हूं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. गीता में भी कहा गया है कि 'परित्राणाय साधूनां......' अर्थात् संतों की रक्षा के लिए, दुष्टों का दमन करने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं समय-समय पर अवतीर्ण होता हूं।

2. अलंकार – 'लोभी हृदयँ .... जैसें' में उदाहरण।

3. तुलनीय – गीता में भी कृष्ण अवतार लेने का यही कारण बताते हैं –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानंधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

दोहा– सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥48॥

शब्दार्थ – निरत=तत्पर। नेम=नियम, आचरण।

व्याख्या – जो सगुण के उपासक हैं, परोपकार में लगे रहते हैं, नीति तथा आचरण में दृढ़ हैं और विप्रचरण में प्रेम रखते हैं, वे मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – इस दोहे में संतों के लक्षण बताए गए हैं। 'सगुन उपासक' में व्यंजना यह है कि यद्यपि निर्गुणोपासक भी संत होते हैं, किन्तु भगवान को सगुणोपासक अधिक प्रिय हैं। यहां तुलसीदास की सगुणोपासना के प्रति अधिक आस्था की व्यंजना है।

चौ॰– सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥

शब्दार्थ – लंकेस=विभीषण। अतिसय=अत्यधिक, बहुत। जूथा=समूह। कृपा बरूथा=कृपा के सागर, करुणापति।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि हे लंकेश! तुम सर्वगुणसम्पन्न संत हो। अत: तुम मुझे अत्यंत प्रिय हो। राम के उपर्युक्त वचनों को सुनकर सभी वानर कहते हैं कि दया के सागर श्रीराम की जय हो।

चौ॰– सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥

शब्दार्थ – अघात=तृप्त होना। श्रवनामृत जानी=जो कानों में अमृत की वर्षा करती हो, मधुर, शीतल, शांतिप्रद। अंबुज=कमल। गहि=पकड़कर।

व्याख्या – विभीषण भी प्रभु के उपर्युक्त अमृतोपम वचनों को सुनकर परितृप्त नहीं हो रहे हैं। वह पुन:-पुन: श्री राम के चरण-कमलों को पकड़ रहे हैं और उनका हृदय असीम प्रेम से प्रफुल्लित हो रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर श्रीराम के अमृतवचनों की प्यास विभीषण को तृप्त नहीं कर पा रही है, अत: यहां पर अतिशयोक्ति अलंकार है।

चौ॰– सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

शब्दार्थ – सचराचर=जड़ चेतन जगत्। प्रनतपाल=शरण में आए हुए की रक्षा करने वाले। अंतरजामी=सबके हृदय की बात जानने वाले। बासना=इच्छा, कामना। सरित=सरिता, नदी।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे जगत् के स्वामी, शरणागत के रक्षक तथा सभी के हृदयों के अन्तर्यामी देव! मेरे हृदय में पहले कुछ कामनाएं थीं। किन्तु अब वे आपके चरणों की प्रेम-सरिता में बह गई हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. उर कछु प्रथम बासना रही – श्रीराम द्वारा 'लंकेस' संबोधन से विभीषण को यह आभास हो गया कि श्रीराम उनको लंका का राजा बनाना चाहते हैं। अत: उन्होंने कहा कि मुझमें पहले कुछ ऐश्वर्य-वासना थी। मैं लंका में रहकर रावण के राजकार्यों में हाथ भी बटाता था, किन्तु अब वह भी नहीं है। इस कथन से विभीषण के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है: वह न राजद्रोही था और न किसी कामना की पूर्ति के लिए राम की शरण में आया था। वह तो बस प्रपन्न भक्त था।

2. अलंकार – 'प्रीति सरित' में रूपक अलंकार।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ॰– अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥

शब्दार्थ – पावनी=पवित्र कर देने वाली। मन भावनी=मन को प्रिय लगने वाली। एवमस्तु=ऐसा ही हो। नीरा=जल।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे दयानिधि ! अब मुझे वह पवित्र भक्ति प्रदान कीजिए, जो सदैव शिव को भी अत्यंत प्रिय रहती है। श्रीराम ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर स्वीकृति दे दी अर्थात् उन्हें अपना भक्त स्वीकार कर लिया। फिर तत्काल सागर का जल मांगा।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मागा तुरत – गोस्वामी जी ने यह नहीं स्पष्ट किया है कि श्रीराम ने किससे जल मांगा। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण के अनुसार जल लक्ष्मण से मांगा था –

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान्।
पश्यत्विरानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम्॥ 42 ॥
लंका राज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात्...॥ 43 ॥
(अध्यात्म रामायण)

चौ॰– जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

शब्दार्थ – तव=तुम्हारी। मोर=मेरा। दरसु=दर्शन। अमोघ=निष्फल न होने वाला। सारा=लगाया। सुमन बृष्टि=पुष्पों की वर्षा।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि यद्यपि तुम्हारे हृदय में कोई कामना नहीं है। तुम निष्काम भाव से आए हो, किन्तु मेरा दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता है। भक्त के न चाहने पर भी उसे सांसारिक वैभव प्राप्त होता है। इतना कहकर श्रीराम ने उसका राज्याभिषेक कर दिया। इस दृश्य को देखकर देवताओं ने आकाश से पुष्प-वर्षा की।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. मोर दरसु अमोघ – अध्यात्म रामायण के उपर्युक्त वाक्य 'पश्यत्विरानीमेवैष ......' में भी यही बात कही गई है।

2. वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में लक्ष्मण ने विभीषण को टीका लगाया था। किन्तु यहां श्रीराम ने स्वयं तिलक किया है।

3. 'सुमन वृष्टि नभ भई अपारा' – देवताओं द्वारा पुष्प-वर्षा में उनके स्वार्थ की व्यंजना है। विभीषण का राजतिलक देखकर देवता समझ गए कि अब रावण अवश्य मारा जाएगा।

दोहा– रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥ 49 (क)॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ 49 (ख)॥

शब्दार्थ – अनल=अग्नि। समीर=पवन। निज स्वास=विभीषण के उपदेश-वचन (जो रावण को अप्रिय लगते थे)। जरत=जलता हुआ। राखेउ=रक्षा की। संपति=राज्य। दिएँ दस माथ=शिवजी को अपने दस सिरों की बलि चढ़ाने पर। सकुचि=संकोचपूर्वक।

व्याख्या – रावण का क्रोध अग्नि है और विभीषण का श्वास (नीति वाणी) प्रचंड पवन है। पवन के सम्पर्क से प्रचंड होकर जल रही रावण की इस भयावह क्रोधाग्नि में जलने से विभीषन को श्रीराम ने बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया। तुलसीदास का कथन है कि लंका का जो राज्य और सम्पत्ति शिवजी ने रावण के द्वारा घोर तप करने तथा दसों सिर चढ़ा देने पर दिया था, श्रीराम ने वह पूरी संपत्ति विभीषण को मात्र शरणागत होने पर संकोचपूर्वक दे दी।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. 'निज स्वास' के कई प्रकार के अर्थ किए गए हैं। यह उल्लेख विभीषण और राम पर भी घटित हो सकता है। विभीषण के पक्ष में अर्थ होगा कि विभीषण क्षमाशील हैं, जब रावण क्रोध करता है तब वह ऊर्ध्वश्वास लेकर रह जाते हैं, क्रोध नहीं करते हैं। वह पवन की तरह शीतल हैं। इससे रावण का क्रोध और बढ़ जाता है। किन्तु यहां 'निज स्वास' से रावण का ऊर्ध्वश्वास लेना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। तब अर्थ होगा – 'अपने श्वास रूपी प्रचण्ड वायु से प्रज्वलित होने वाली रावण की क्रोधाग्नि में'।

2. सकुचि दीन्हि – श्रीराम को संकोच हुआ कि लंका तो उसी की दी है। उसी की वस्तु उसी को दे रहे हैं, तब इसमें उपकार कहां हुआ।

3. कुछ आलोचकों ने इस दोहे में तुलसीदास द्वारा शिवजी का अपकर्ष बताया है। किन्तु यह आरोप उचित नहीं प्रतीत होता। यहां शिवजी का प्रकरण नहीं है केवल राम का है। अतः केवल राम की स्तुति करना ही कवि का प्रयोजन है।

चौ॰– अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूंछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥

शब्दार्थ – आना=अन्य। बिषाना=सींग। जन=भक्त।

व्याख्या – कवि का कथन है कि ऐसे शरणागतवत्सल, सत्यसंकल्प और परम उदार श्रीराम की उपेक्षा करके जो लोग अन्य देवी-देवताओं की उपासना करते हैं, वे वस्तुतः बिना सींग-पूंछ के पशु ही हैं। इस प्रकार श्रीराम ने विभीषण को कर्म, वचन, मन से अपना सेवक समझकर उन्हें अंगीकार कर लिया।

चौ॰– पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥

शब्दार्थ – पुनि=तदुपरांत। सर्बग्य=सबकुछ जानने वाले, घट-घटवासी, अंतर्यामी। सर्बरूप=अनेक रूप धारण कर अवतार लेने वाले। सब रहित=निर्लिप्त, कामनाविहीन, राग-द्वेष से परे। उदासी=संसार-त्यागी, विरक्त। प्रतिपालक=रक्षक। कारन=भक्तों की रक्षा करने, साधुओं का परित्राण करने के लिए। दनुज कुल=राक्षसों का कुल। घालक=नाश करने वाले।

व्याख्या – तत्पश्चात् सर्वज्ञ (बहिर्यामी), सभी के हृदयों में निवास करने वाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापी, किन्तु सब से परे, शत्रु-मित्र से रहित तथा नीति का अनुसरण करने वाले और राक्षस कुल के विनाशक श्रीराम जो नर-लीला कर रहे हैं, तदनुसार वचन बोले।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – यद्यपि श्रीराम सर्वशक्तिमान हैं, परात्पर ब्रह्म हैं, सर्वज्ञ हैं, किन्तु इस समय नर-लीला कर रहे हैं। अतः तद्नुरूप नीति वचन कहे।

चौ०– **सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥**
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

शब्दार्थ – कपीस=सुग्रीव। लंकापति=विभीषण। केहि बिधि=किस प्रकार। तरिअ=पार किया जाए। जलधि=सागर। गंभीर=अगाध, गहरा। संकुल=भरा हुआ, परिपूर्ण। मकर=मगरमच्छ। उरग=सर्प। झष=मछली। दुस्तर=दुरूह, अगम्य।

व्याख्या – श्रीराम ने कहा कि हे वीर सुग्रीव और विभीषण! सुनो और बताओ कि इस अथाह सागर को कैसे पार किया जाए? यह असंख्य नक्रों, सर्पों और विविध प्रकार की मछलियों से परिपूर्ण है तथा बहुत विस्तृत और गहरा है, इसलिए इसको पार करना अत्यंत दुष्कर है।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर श्रीराम द्वारा सीता प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न सबसे बड़े अवरोध समुद्र की भयवहता का चित्रण है। सागर पार करने के लिए सुग्रीव तथा विभीषण के द्वारा परामर्श का सम्मान प्राप्त करना भी व्यंजित है।

चौ०– **कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥**
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

शब्दार्थ – सोषक=सुखा देने वाला। सायक=बाण। सन=पास।

व्याख्या – श्रीराम के प्रश्न को सुनकर विभीषण ने कहा कि हे रघुवंश शिरोमणि यद्यपि आपका बाण करोड़ों समुद्रों को सुखा सकता है, तथापि नीति यह कहती है कि आप जाकर समुद्र से प्रार्थना कीजिए (कि वह आपको पार जाने का मार्ग दे दे)।

दोहा– **प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।**
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥ 50 ॥

शब्दार्थ – कुलगुर=पूर्वज। प्रयास=परिश्रम। सकल=सब।

व्याख्या – विभीषण ने कहा कि हे प्रभु! सागर तुम्हारे कुल का पूर्वज है, इसलिए वह विचार करके ऐसा उपाय बताएगा, जिससे बन्दर और भालुओं की पूरी फौज बिना प्रयास हो समुद्र को पार कर जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य – श्रीराम के पूर्वज राजा सगर ने भूमि खोदकर सागर का निर्माण किया था। सगर के द्वारा निर्मित होने के कारण ही उसे सागर कहते हैं। इसीलिए यहां पर सागर ...राम का पूर्वज कहा गया है।

...र कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
...र लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥

श... ...। उपाई=उपाय। दैव=विधाता। मंत्र=परामर्श, सलाह।

रावण को... ...हा कि हे सखा! तुमने उत्तम उपाय बताया है। यही प्रयास करना

नाथ=शिवजे... ...होगा तो कार्य ... जाएगा। लक्ष्मण को विभीषण की यह मंत्रणा पसंद

नहीं आई। श्रीराम के द्वारा उसका समर्थन उन्हें बहुत दुखद प्रतीत हुआ।

साहित्यिक सौन्दर्य – वस्तुतः लक्ष्मण का ऐसा स्वभाव था कि वह किसी का ऐसा कथन अथवा मंत्रणा पसंद नहीं करते थे, जिसमें श्रीराम की न्यूनता अथवा अपमान की झलक मिलती हो। श्रीराम के समर्थन से उन्हें अत्यधिक दुःख हुआ।

चौ०– **नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥**
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

शब्दार्थ – दैव=विधाता। कवन=कौन। सोषिअ=सुखा दीजिए। रोसा=क्रोध। कादर=कायर।

व्याख्या – लक्ष्मण ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि हे नाथ! दैव का क्या भरोसा? क्रोध करके अपने एक बाण द्वारा समुद्र को सुखा दीजिए। कायर व्यक्ति अपनी कमजोरी छिपाने के लिए दैव का आश्रय लेते हैं और आलसी व्यक्ति 'दैव दैव' की पुकार करते हैं। तात्पर्य यह है कि वीर पुरुष कर्म करते हैं तथा कायर और आलसी दैव का भरोसा करते हैं।

साहित्यिक सौन्दय – 1. **तुलनीय** – **उद्यमेन बिना राजन् न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः।**
कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥
– (नीति ...)

2. **अलंकार** – द्वितीय पंक्ति में अर्थान्तरन्यास।

चौ०– **सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥**
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥

शब्दार्थ – बिहसि=मुस्कुराकर। धीरा=धैर्य। अनुजहि=छोटे भाई को। सिंधु=सागर।

व्याख्या – लक्ष्मण के वचन सुनकर श्रीराम हंसते हुए बोले कि ऐसा ही करूंगा, मन में थोड़ा-सा धैर्य धारण करो। ऐसा कहकर और लक्ष्मण को समझाकर वह सागर तट पर गए।

साहित्यिक सौन्दर्य – श्रीराम ने लक्ष्मण को समझाया कि विभीषण संत हैं, अतः इनका मान करना चाहिए। नीति भी यह कहती है कि पहले साम, तत्पश्चात् दण्डनीति का आश्रय लेना चाहिए।

चौ०– **प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥**
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥

शब्दार्थ – दर्भ=कुशासन। डसाई=बिछाकर। पहिं=पास। पठाए=भेजे।

व्याख्या – श्रीराम समुद्र-तट पर गए। पहले उन्होंने सिर झुकाकर समुद्र को प्रणाम किया, तत्पश्चात् कुशासन बिछाकर बैठ गए। उधर विभीषण ज्यों ही लंका से श्रीराम के पास आए थे, तभी रावण ने उनके पीछे गुप्तचरों को भेज दिया था कि वे जाकर विभीषण की गतिविधियों का पता लगाएं।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि के अनुसार रावण ने शुक-सारण नामक दो मंत्रियों को भेजा था जो रूप बदलकर गुप्तचरी कर रहे थे तथा वानरों द्वारा पकड़े गए थे। श्रीराम ने कृपा करके उन्हें मुक्त करवा दिया था।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ॰— करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

शब्दार्थ – जव=जौ (एक प्रकार का अन्न)। कीट=कीड़ा। कटकाई=सेना। चलि आई=यहां आ गई है।

व्याख्या – वह धूर्त विभीषण लंका में राज्य करता, किन्तु अब वह जौ के कीड़े (घुन) के समान मारा जाएगा अर्थात् जिस प्रकार जौ के (अनाज के) पीसे जाने पर उसके साथ घुन भी पिस जाते हैं, उसी प्रकार वानरों के साथ विभीषण भी मारा जाएगा। रावण पुनः पूछता है कि भालू तथा वानरों की सेना का भी समाचार बताओ जो कराल काल की प्रेरणा से चलकर आई है अर्थात् जिसका अंत निश्चित है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'जौ के साथ घुन पिसना' मुहावरे का प्रयोग हुआ है। दुष्ट लोगों की संगति रखने से सज्जन लोगों का भी अहित होता है।

चौ॰— जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥

शब्दार्थ – रखवारा=रक्षक, त्राता, प्राण बचाने वाला। मृदुल=कोमल। तपसिन्ह=तपस्वी वेश धारण किए हुए राम और लक्ष्मण। बहोरी=फिर। त्रास=भय। मोरी=मेरा।

व्याख्या – रावण की गर्वोक्ति है कि अभी तक शत्रु-सेना इसलिए बची है कि बेचारा कोमल हृदय वाला सागर उनके जीवन का रक्षक बन गया है अर्थात् उन्हें इधर लंका में आने का मार्ग नहीं दे रहा है। अंत में वह राम-लक्ष्मण के संबंध में पूछता है कि तत्पश्चात् उन दोनों तपस्वियों का समाचार बताओ जो निरन्तर मेरे भय से त्रस्त रहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां रावण ने चार शब्दों – कुशल, खबर, कटक, बात द्वारा चार लोगों का समाचार पूछा है – पहले दूतों का कुशल समाचार पूछा अर्थात् उन्हें दण्डित तो नहीं किया गया, तब विभीषण का समाचार पूछा क्योंकि वह जानता है कि विभीषण राम से मिलने गया है, अतः उसे वे मारेंगे नहीं; तत्पश्चात् सेना का और अंत में राम-लक्ष्मण का समाचार पूछा।

दोहा— की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥ 53 ॥

शब्दार्थ – श्रवन=कान। चकित चित=घबराया हुआ, भौचक्का, स्तब्ध।

व्याख्या – रावण पुनः प्रश्न करता है कि तुम लोगों से उनकी भेंट हुई अथवा मेरा यश सुनकर वे लोग वापस चले गए। रावण के प्रश्नों का दूत उत्तर नहीं देते हैं, अतः वह बार-बार पूछता है कि तुम लोग शत्रु-सेना का तेज और बल क्यों नहीं बताते? तुम लोग विस्मित क्यों हो रहे हो?

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर रावण की व्यग्र मनःस्थिति का वर्णन हुआ है। रावण अपने दूतों से राम और उसकी सेना के विषय में जानना चाहता है।

चौ॰— नाथ कृपा करि पूंछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥

शब्दार्थ – सारा=लगाया।

व्याख्या – रावण के बार-बार पूछने पर दूतों ने कहा कि हे स्वामी! आपने कृपा-पूर्वक जिस प्रकार उन लोगों का समाचार पूछा है, वैसे ही क्रोध त्यागकर हमारा कहना मान लीजिए। जब विभीषण जाकर उनसे मिला तब श्रीराम ने जाते ही उसका राजतिलक कर दिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर दूत के माध्यम से राम के द्वारा विभीषण के राजतिलक का वर्णन है, जिससे एक ओर श्रीराम के दानशील स्वभाव की जानकारी मिलती है तथा दूसरी ओर यह सूचना लंका के भविष्य को इंगित करती है।

चौ॰— रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥

शब्दार्थ – त्यागे=मुक्त कर दिया।

व्याख्या – हम लोगों को आपका दूत समझकर वानरों ने बांध दिया और विविध प्रकार की यातनाएं देने लगे। वे लोग हमारी नाक-कान काटना चाहते थे, किन्तु जब हमने श्रीराम की शपथ दिलाई तो उन्होंने हम लोगों को मुक्त कर दिया।

चौ॰— पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥

शब्दार्थ – कटकाई=सेना। बदन=मुख। सत=सौ। बरनि=वर्ण, रंग। बिकटानन=भयंकर मुख वाले। धारी=सेना।

व्याख्या – हे नाथ! आपने राम की सेना के संबंध में पूछा है। उसका वर्णन करोड़ों मुखों से भी संभव नहीं है। उस सेना में नाना प्रकार के रंगों के भालू और वानर हैं, सभी के मुख अत्यंत विकराल और शरीर अत्यंत विशाल और भयोत्पादक हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां तुलसीदास ने दूत के माध्यम से श्रीराम की सैन्यशक्ति के चित्रण द्वारा (समझाने से न मानने वाले) रावण के समक्ष 'शक्ति' का भय उपस्थित किया है।

2. अलंकार – 'बदन कोटि ...... जाई' में अतिशयोक्ति।

चौ॰— जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥

शब्दार्थ – जेहिं=जिसने। पुर=लंका। दहेउ=जलाया। हतेउ=मारा। सुत=तुम्हारे पुत्र अक्षय कुमार। अमित=असंख्य। भट=योद्धा। नाग=हाथी।

व्याख्या – जिस वानर ने लंका को जला दिया था और आपके पुत्र की हत्या की थी वह सभी बंदरों में सबसे कमजोर है। उन कराल और भयंकर योद्धाओं के असंख्य नाम हैं तथा उनमें असंख्य हाथियों का सा बल और पराक्रम है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दोहा– सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥ 51 ॥

शब्दार्थ –सकल=सब। चरित=राम की लीलाएं। कपट माया से। हृदयँ सराहहिं=मन ही मन प्रशंसा करने लगे। सरनागत=शरण में आए विभीषण। नेह=भाई जैसा स्नेह, सौहार्द।

व्याख्या – गुप्तचर वानर रूप में राम-सेना में कपट वेष में विचरण कर रहे थे और विभीषण के आगमन से लेकर उसके राजतिलक तक की संपूर्ण घटना का अवलोकन कर रहे थे। वे श्रीराम की शरणागत वत्सलता और स्नेह की मन ही मन प्रशंसा कर रहे थे।

चौ॰– प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥

शब्दार्थ – प्रगट=अपना असली राक्षस रूप धारण कर तथा निस्संकोच होकर। सुभाऊ=स्वभाव। बिसरि=विस्मृत। दुराऊ=छिपना, कपट वेष। सकल=सबको। कपीस=सुग्रीव।

व्याख्या – रावण के गुप्तचर श्रीराम के उदार स्वभाव का प्रत्यक्ष वर्णन कर रहे हैं। वे राम के व्यक्तित्व से इतना प्रेमाभिभूत हो गए कि उनका कपट वेष विस्मृत हो गया। वे वास्तविक रूप में आ गए। तब वानरों को यह ज्ञात हो गया कि ये शत्रु के दूत हैं। अत: उन्हें तत्काल पकड़कर बांध दिया और सुग्रीव के पास ले गए।

चौ॰– कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥

शब्दार्थ – अंग भंग करि=इनको क्षत-विक्षत कर, विरूप बनाकर। कटक=सेना। पास (सं॰ पार्श्व)=ओर।

व्याख्या – उन्हें देखकर सुग्रीव ने आदेश दिया कि इन राक्षसों का अंग-भंग करके वापस भेज दो। सुग्रीव का आदेश सुनकर सभी बंदर दौड़े और उन्हें भली-भांति बांधकर सेना के चारों ओर घुमाया।

चौ॰– बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

शब्दार्थ – दीन=असहाय, दुखी। हर=काटना। नासा काना=नाक-कान। कोसलाधीस=कोशल राज के स्वामी राम। आना=सौगंध।

व्याख्या – वानरों ने उन राक्षसों को तरह-तरह से मारना प्रारंभ किया। वे दीन-भाव से याचना कर रहे हैं, फिर भी वानर उन्हें मुक्त नहीं कर रहे हैं। यही नहीं, कुछ वानर उनके नाक-कान काटने को उद्यत हुए, तब उन लोगों ने श्रीराम की शपथ दिलाते हुए अपनी रक्षा की याचना की।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर इस बात पर बल दिया गया है कि शत्रु पक्ष का बचाव भी श्रीराम नाम पर आधारित है।

चौ॰– सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥

शब्दार्थ – कर=हाथ। पाती=पत्र। बाचु=पढ़ो क्या लिखा है। कुलघाती=कुल का नाश करने वाला।

व्याख्या – राक्षसों की चीत्कार सुनकर लक्ष्मण ने सभी को अपने निकट बुलाया और उनकी दयनीय दशा देखकर दया करके उन्हें मुक्त कर दिया तथा रावण के नाम एक पत्र लिखकर उनसे कहा कि यह पत्र रावण के हाथों में ही देना और उससे कहना कि अरे कुलविनाशक! लक्ष्मण का यह पत्र पढ़।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण की हठधर्मिता को समाप्त करने के लिए लक्ष्मण 'पत्र-संदेश' द्वारा उसे पुन: एक अवसर प्रदान करना चाहते हैं।

दोहा– कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥ 52 ॥

शब्दार्थ – मुखागर (सं॰ मुखाग्र)=मौखिक। मूढ़=मूर्ख। सन=से। उदार=श्रेष्ठ, उत्तम। देइ मिलहु=मिलो, दर्शन करो। कालु=मौत।

व्याख्या – लक्ष्मण ने उनको पत्र देकर यह भी कहा कि मूर्ख रावण से मेरा यह उत्तम संदेश मौखिक रूप से भी कहना कि सीता जी को वापस करके शरण में आ जाओ, अन्यथा तुम्हारा काल आ गया है अर्थात् मेरे संदेश को न मानने से तुम शीघ्र ही मारे जाओगे।

साहित्यिक सौन्दर्य – लक्ष्मण द्वारा गुप्तचरों के माध्यम से रावण को पुन: समझाने का 'पत्र-प्रसंग' कवि की अपनी कल्पना-शक्ति पर आधृत सर्वथा मौलिक प्रसंग है।

चौ॰– तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

शब्दार्थ – नाइ=प्रणाम कर। पद=चरण। गाथा=कथा।

व्याख्या – सभी दूतों ने लक्ष्मण के चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए तुरन्त चल दिए। वे श्रीराम का यश वर्णन करते हुए लंका आ गए और रावण के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया।

चौ॰– बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

शब्दार्थ – बाता=विभीषण के संबंध में जानकारी। कुसलाता=कुशल-मंगल।

व्याख्या – रावण ने हंसते हुए उन चरों से समाचार पूछा, किन्तु वे इतना हतप्रभ थे कि बोल ही नहीं पा रहे थे, तब रावण ने पुन: पूछा कि अपना कुशल समाचार क्यों नहीं कहते? अपने कुशल-समाचार के बाद विभीषण का समाचार बताओ, जिसकी मृत्यु सन्निकट है।

साहित्यिक सौन्दर्य – चरों की आकृति से स्पष्ट है कि वे भयभीत और चकित हैं। वे जितना ही मौन हैं, रावण की उत्कंठा और जिज्ञासा उतनी ही बढ़ती जाती है। यह नाटकीय व्यंग्य (Dramatic Irony) का सुंदर चित्रण है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. सामान्यतः हनुमान लघु रूप में मौन भाव से बैठे रहते थे। वह अन्य वानरों के साथ उछल-कूद नहीं करते थे। अतः दूतों ने अनुमान लगाया कि यह वानर तो अन्य वानरों की तुलना में बहुत कमजोर है।

2. **अलंकार** – संबंधातिशयोक्ति।

दोहा– द्विविद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ 54 ॥

शब्दार्थ – बलरासि=शक्तिशाली योद्धाओं के नाम।

व्याख्या – दूत कतिपय प्रमुख अत्यंत शक्तिशाली योद्धाओं के नाम गिनाते हैं। उनके नाम हैं – द्विविद, मयन्द, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, निसठ, सठ और जामवंत।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि रामायण के अनुसार द्विविद और मयन्द अश्विनी कुमार के पुत्र थे। ये दुर्धर्ष बलवान थे और अमृत-पान कर चुके थे। नील अग्निदेव के और नल विश्वकर्मा के पुत्र थे। दधिमुख चन्द्रमा का पुत्र था, केहरि देवगुरु बृहस्पति के पुत्र और हनुमान के पिता थे। अंगद और जामवंत से सभी लोग परिचित ही हैं। अन्य वानरों का उल्लेख नहीं मिलता है। इन वीरों में हनुमान का नाम नहीं गिनाया गया है।

चौ०– ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥

शब्दार्थ – तृन=तृण, तिनका।

व्याख्या – दूतों ने कहा कि उपर्युक्त गिनाए गए सभी वानर बल और पराक्रम में सुग्रीव के समान हैं। यही नहीं, इनके समान करोड़ों की संख्या में वानर हैं, जिनकी गणना करना संभव नहीं है, राम का अनुग्रह प्राप्त होने से वे अत्यधिक शक्तिशाली हो गए हैं और तीनों लोकों को तिनके के समान तुच्छ मानते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'तृन समान' में उपमा अलंकार।

चौ०– अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥

शब्दार्थ – श्रवन=कान। पदुम=सौ करोड़। जूथप=सेनापति। कटक=सेना।

व्याख्या – मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पदुम वानर सेनापति हैं। तात्पर्य है कि निश्चय नहीं है कि इतने ही हैं अथवा अधिक। हे नाथ! राम-सेना में एक भी ऐसा बंदर नहीं है जो आपको पराजित न कर सके।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. अध्यात्म रामायण के अनुसार यह सेना 40 कोस की लम्बाई और 40 कोस की चौड़ाई में पड़ी थी।

2. **अलंकार** – अतिशयोक्ति।

चौ०– परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥

शब्दार्थ – मीजहिं=मलते हैं, लड़ने के लिए उत्सुक होकर जोश में अपने हाथ मीजते हैं। आयसु=आज्ञा, अनुमति। सोषहिं=सुखा सकते हैं। झष=मछली। ब्याला=सर्प। पूरहिं=पाट सकते हैं। कुधर=पर्वत।

व्याख्या – सभी वानर क्रोध में हाथ मलते हैं। तात्पर्य यह है कि तुम्हें पा जाएं तो मार डालें नहीं पाते हैं, इससे हाथ मलते हैं। किन्तु श्रीराम उन्हें किसी प्रकार का आदेश नहीं दे रहे हैं। वे कहते हैं कि हम लोग मछलियों तथा सर्पों के सहित समुद्र को सुखा सकते हैं अथवा विशाल पर्वतों से उसे पाट सकते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – उपर्युक्त पंक्तियों में वानरों की वीरता, तेजस्विता और पराक्रम व्यंजित है, अतः यहां 'सार' अलंकार है।

चौ०– मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥

शब्दार्थ – मर्दि गर्द=मसलकर धूल में मिला देना। गर्जहिं=धमकाना, भय उत्पन्न करना। असंका=निर्भय।

व्याख्या – सभी वानर कहते हैं कि हम लोग रावण को मसलकर धूल में मिला सकते हैं। इस प्रकार वे निःशंक भाव से गर्जन कर रहे हैं और भय उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे लंका को ग्रस लेना चाहते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – अलंकार – उत्प्रेक्षा।

दोहा– सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥ 55 ॥

शब्दार्थ – सहज=स्वभाव से। सूर=शूरवीर। काल=यमराज।

व्याख्या – दूत कहते हैं कि सभी वानर-भालू सहज भाव से अत्यंत वीर हैं, फिर उनके ऊपर श्रीराम के अनुग्रह की छत्रछाया है। हे रावण! वे करोड़ों कालों को भी युद्ध में पराजित कर सकते हैं।

चौ०– राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥

शब्दार्थ – बुधि=बुद्धि, विवेक। बिपुलाई=अधिकता। सेष=शेषनाग जिसके सहस्र फन और मुख हैं। सहस सत=सौ हजार। सर=वाण। सोषि=सुखाना। सत=सौ। तव भ्रातहि=तुम्हारे भाई विभीषण से। नय नागर=नीति में निपुण।

व्याख्या – श्रीराम के अमित ऐश्वर्य, बल, बुद्धि का वर्णन लाखों शेषनाग भी नहीं कर सकते। उनका एक ही बाण सौ समुद्रों को सुखा सकता है, किन्तु नीति-निपुण श्रीराम ने तुम्हारे भ्राता (विभीषण) से सिंधु पार करने का उपाय पूछा।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'सक सर ..... सागर' में अतिशयोक्ति अलंकार है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ०– तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥

शब्दार्थ – तासु=उसके, विभीषण को। पाहीं=से। असि=ऐसी तुच्छ। मति=बुद्धि। कीसा=वानर।

व्याख्या – विभीषण ने परामर्श दिया है कि आप (श्रीराम) समुद्र से पार जाने का उपाय बूझें। तद्नुसार वह सागर से रास्ता मांग रहे हैं। उनके मन में समुद्र के प्रति बहुत दाय-भाव है। दूतों के इन वचनों को सुनकर रावण जोरों से हंसा और कहा कि राम में इतनी ही बुद्धि है, इसीलिए उन्होंने बंदरों को अपना सहायक बनाया है।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण के हंसने में व्यंजना यह है कि राम में विवेक नहीं है। इसीलिए वे समुद्र से याचना कर रहे हैं, वानरों को सहायक बनाया है और विभीषण जैसे कमजोर व्यक्ति को मंत्री बनाया है।

चौ०– सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

शब्दार्थ – सहज=स्वभाव से ही। भीरु=कायर। दृढ़ाई=दृढ़ता। मचलाई=हठ ठानना। मृषा=मिथ्या। बड़ाई=प्रशंसा।

व्याख्या – रावण कहता है कि राम ने सहज स्वभाव से कायर विभीषण के वचनों को दृढ़ता से ग्रहण कर लिया है अर्थात् उसके परामर्श को पूर्णतः मान लिया है और अब समुद्र से मार्ग देने का हठ कर रहे हैं। अरे मूर्ख! ऐसे राम की मिथ्या प्रशंसा क्यों कर रहा है। मैंने शत्रु के पराक्रम और विवेक की थाह लगा ली है अर्थात् मुझे मालूम हो गया है कि उनमें न शक्ति है और न विवेक।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां पर रावण द्वारा शत्रुपक्ष को कमजोर समझना यह प्रकट करता है कि अहंकार मनुष्य को बुद्धि-विवेक से रहित कर देता है।

चौ०– सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

शब्दार्थ – सचिव=परामर्शदाता। बिभूति=वैभव, ऐश्वर्य। रिस=क्रोध।

व्याख्या – रावण ने कहा कि विभीषण जैसा कमजोर और भयग्रस्त व्यक्ति जिसका मन्त्री है, उसको संसार में विजय और ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? दुष्ट रावण के इन वचनों को सुनकर दूत को क्रोध आ गया और उसने सुअवसर देखकर लक्ष्मण द्वारा दिए गए पत्र को निकाल लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य – तुलसीदास ने रावण की हठधर्मिता का वर्णन पूरी निष्ठा से करते हुए गुप्तचर के वचनों की रावण द्वारा उसी प्रकार अवहेलना प्रदर्शित की है जैसे वह पहले पत्नी, भाई व पितामह के वचनों की कर चुका है।

चौ०– रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

शब्दार्थ – रामानुज=लक्ष्मण। पाती=पत्र, संदेश। बचाइ=पढ़वा कर। जुड़ावहु छाती (मु०)=हृदय शीतल करना। बाम=बायां। कर=हाथ। बचावन=पढ़वाने लगा।

व्याख्या – दूतों ने कहा कि लक्ष्मण ने यह पत्र दिया है। हे नाथ! इसे किसी से पढ़वाकर छाती ठण्डी कीजिए। शत्रु का पत्र है, अतः रावण ने हंस कर उसे बाएं हाथ में ले लिया और एक मंत्री से कहा कि इसे पढ़िए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. बचाइ – दूत ने यह नहीं कहा कि पत्र को स्वयं पढ़िए। यदि वह स्वयं पढ़ता तो उसमें लिखित संदेश को अन्य लोग नहीं जान पाते। इसीलिए दूत ने जान-बूझकर कहा कि पत्र किसी मंत्री से पढ़वाइए, जिससे सभी सभासद जान जाएं कि उसमें क्या लिखा है?

2. 'जुड़ावहु छाती' अर्थात् छाती ठण्डी कीजिए में विपरीत लक्षणा है। तात्पर्य यह है कि इसको सुनने से तुम्हारे हृदय में जलन पैदा हो जाएगी।

दोहा– बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥ (क)॥
की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥ 56 (ख)॥

शब्दार्थ – बातन्ह=मन के लड्डू फोड़कर, मिथ्या कल्पना करके। रिझाइ=प्रसन्न करके। जनि=मत। घालसि=कर डालना। खीस=नाश। अज=ब्रह्मा। ईस=शिव। की=या तो। मान=मिथ्याभिमान। इव=समान। भृंग=भ्रमर। सरानल=बाण रूपी अग्नि। पतंग=पतंगा, कीड़ा।

व्याख्या – लक्ष्मण ने पत्र में लिखा था कि अरे शठ! बातों से मन को प्रसन्न करके राक्षस-वंश का विनाश मत कर। राम का विरोध करने से विष्णु, ब्रह्मा और शिव की शरण में जाने पर भी तेरी रक्षा नहीं हो सकती। तू अपने अनुज विभीषण के समान मिथ्याभिमान त्यागकर श्रीराम के चरण-कमलों का भ्रमर बन जा अर्थात् उनकी शरण में आ जा अन्यथा श्रीराम के बाण रूपी अग्नि में तू कुल सहित पतंगा बन जाएगा। तात्पर्य है कि राम की शत्रुता करने से तू कुल सहित उसी प्रकार मारा जाएगा, जैसे – दीपक की लौ में पतंगे जलकर नष्ट हो जाते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – दूसरे दोहे में रूपक अलंकार है।

चौ०– सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

शब्दार्थ – सभय=भयभीत। कर=हाथ से। गहत=छूना, स्पर्श करना। लघु तापस=तपस्वी भाइयों में छोटा अर्थात् लक्ष्मण। बाग बिलासा=डींग मारना।

व्याख्या – लक्ष्मण के द्वारा भेजे गए पत्र को जब सचिव ने पढ़कर सुनाया, तब रावण मन में बहुत भयभीत हुआ, किन्तु मुख पर आई उदासी को छिपाने के लिए उसने हंसते हुए सभी को सुनाकर कहा कि पत्र में लिखा गया संदेश एक सामान्य तपस्वी का उसी प्रकार का वाग्विलास (मनोरंजक कथन) है, जैसे कोई भूमि पर पड़ा व्यक्ति आकाश को पकड़ने का प्रयास करे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां उदाहरण अलंकार है।

चौ॰– कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥

शब्दार्थ – सुक=दूत। प्रकृति=स्वभाव। परिहरि=छोड़कर।

व्याख्या – शुक ने रावण के कथन का प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि हे नाथ! पत्र में जो कुछ भी लिखा है, वह पूर्णतः सत्य है। कृपया अपने अभिमानी स्वभाव को छोड़कर समझने का प्रयास कीजिए। हे स्वामी! क्रोध त्यागकर मेरे कथन को भी सुनिए और श्रीराम के प्रति विरोध-भाव का परित्याग कर दीजिए।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां गोस्वामीजी ने एक दूत का नाम दे दिया है। वाल्मीकि ने भी शुक-सारण नामक दूतों का उल्लेख किया है।

चौ॰– अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥

शब्दार्थ – अखिल लोक=संपूर्ण ब्रह्मांड। राऊ=राजा, स्वामी।

व्याख्या – शुक ने कहा कि श्रीराम यद्यपि संपूर्ण लोक के सम्राट् हैं तथापि स्वभाव से बहुत दयालु हैं। तुम ज्यों ही उनसे संधि के लिए जाओगे वे तुरंत तुम पर अनुग्रह करेंगे और हृदय में तुम्हारे एक भी अपराध पर ध्यान नहीं देंगे।

चौ॰– जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥

शब्दार्थ – एतना कहा=इतनी बात। तेहिं=उसने, दूत ने। चरन प्रहार=लात मारना।

व्याख्या – शुक ने कहा कि हे स्वामी! मेरा इतना कहना मान लीजिए कि सीताजी राम को वापस कर दीजिए। जब शुक ने सीता को वापस करने के लिए कहा तो वह क्रोध में आ गया और उस पर चरणों से प्रहार किया।

साहित्यिक सौन्दर्य – रावण अन्य परामर्श को सुन सकता था, किन्तु सीता को वापस करने का प्रस्ताव उसे असह्य था। इसी कारण उसने विभीषण पर चरण प्रहार किया था और यही व्यवहार शुक के प्रति किया।

चौ॰– नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥

शब्दार्थ – नाइ चरन सिरु=रावण के चरणों में सिर झुकाकर, प्रणाम करके। आपनि गति=अपना पहले वाला मुनि का रूप। अगस्ति=अगस्त्य ऋषि। साप=शाप। भवानी=पार्वती। बंदि=वंदना कर, प्रणाम कर। पगु धारा=चला गया, प्रस्थान किया।

व्याख्या – रावण द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर शुक ने उसको प्रणाम किया और दया के सागर श्रीराम की शरण में चला गया। वहां पहुंचकर उसने श्रीराम से अपना पूरा वृतांत कहा और श्रीराम के अनुग्रह से सद्गति को प्राप्त हुआ। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! शुक पूर्व जन्म में एक ज्ञानी मुनि था, किन्तु अगस्त्य ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया था। अब श्रीराम की कृपा से वह पुनः अपने पूर्व मुनि रूप को प्राप्त हो गया और राम के चरणों में बार-बार वंदना करके अपने आश्रम को चला गया।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. निज कथा – शुक ने श्रीराम से कहा कि मैं रावण का दूत हूं। उन्होंने विभीषण की गतिविधियों का पता लगाने के लिए मुझे यहां भेजा था। मैं कहां पहचाना गया, वानरों ने मेरा कान-नाक काटने का प्रयास किया, किन्तु आपकी शपथ दिलाने पर लक्ष्मण ने मुझे मुक्त करा दिया। उन्होंने रावण के लिए मुझे एक पत्र भी दिया। मैंने उसे पत्र दिया, अनुनय-विनय किया और सीताजी को वापस करने का अनुरोध किया। तब उसने मुझपर चरण प्रहार किया। अतः अब मैं आपकी शरण में आया हूं।

2. अध्यात्म रामायण (6/5/5-24) में शुक की कथा विस्तार से दी गई है। उसके अनुसार वह पूर्व जन्म में एक वेदज्ञ ब्राह्मण था तथा धर्मपूर्वक वैदिक आचरण करता हुआ वानप्रस्थ विधि से वन में रहता था। उसने देवताओं के कल्याण और राक्षसों के विनाश के लिए कई यज्ञ किए थे, अतः वज्रदंत नामक राक्षस प्रतिशोध की भावना से समुचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन अगस्त्य ऋषि शुक के आश्रम में आए। शुक ने ऋषि को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। अगस्त्य जी स्नान करने चले गए। तभी वज्रदंत उनके वेश में आया और कहा कि मैं आज बकरे का मांस खाना चाहता हूं। अतः शुक मुनि ने बकरे का मांस बनवाया तथा अन्य पकवान भी बनवाए। जब अगस्त्य ऋषि भोजन करने के निमित्त बैठे तब राक्षस ने मुनि-पत्नी को भी मोहित कर दिया और स्वयं स्त्री-वेष धारण करके भोजन में मनुष्य का मांस मिलाकर अगस्त्य ऋषि के समक्ष परोसकर रख दिया और गायब हो गया। ऋषि ने अपने समक्ष अभक्ष्य भोजन देखकर शुक मुनि को राक्षस होने का शाप दे दिया। जिसे सुनकर मुनि ने पूछा कि हे ऋषिवर! आपने किस अपराध से मुझे शाप दे दिया? मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है। तब अगस्त्य ने ध्यान करके वास्तविकता का पता लगा लिया और उस मुनि से कहा कि तुम रावण के सहायक बनोगे, रावण तुम्हें दूत बनाकर राम के पास भेजेगा। श्रीराम के दर्शनों से तुम शाप-मुक्त हो जाओगे और परम पद प्राप्त करोगे।

दोहा– बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥ 57 ॥

शब्दार्थ – जलधि=सागर। जड़=मूर्ख। सकोप=क्रोध भरे।

व्याख्या – श्रीराम समुद्र से मार्ग देने के लिए तीन दिन तक बैठे रहे, किन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब उन्हें क्रोध आ गया और वे बोले कि मुझे समुद्र से अनुरोध करते हुए तीन दिन व्यतीत हो गए हैं, किन्तु यह मेरी विनती पर ध्यान ही नहीं दे रहा है। वस्तुतः भय के बिना प्रीति नहीं होती।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चौ०– लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

शब्दार्थ – सरासन=धनुष। आनू=लाओ। बारिधि=समुद्र। बिसिख=वाण। कृसानू=अग्नि। सठ=दुष्ट। कुटिल=छली, कपटी। कृपन=लोभी, कंजूस। नीती=उदार, ज्ञानी बनने का परामर्श। ममता रत=माया, मोह में डूबे, मोहग्रस्त। बिरति=वैराग्य। सम (सं॰ शम)=इन्द्रियनिग्रह। कामिहि=कामासक्त। हरि कथा=भगवद् भजन। ऊसर=जो भूमि उर्वर नहीं है, बंजर है। बएँ=बोने से।

व्याख्या – श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि मेरा धनुष-वाण लाओ। मैं अग्नि-वाण से समुद्र को सुखा दूंगा। इसके बाद वह नीति-वचन कहते हैं कि शठ व्यक्ति से विनय करना, धूर्त से प्रेम करना, स्वभाव से कंजूस व्यक्ति से नीति-वचन कहना, मोहग्रस्त व्यक्ति को ज्ञान का उपदेश देना, अत्यंत लोभी को वैराग्य का उपदेश देना, क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति को इन्द्रियनिग्रह का महत्व बताना तथा कामी पुरुष से भगवद् मोक्ष की चर्चा करना वैसे ही निरर्थक है, जैसे ऊसर भूमि में बीज बोना। जैसे ऊसर भूमि में कोई वस्तु पैदा नहीं हो सकती, वैसे ही उपर्युक्त मनोविकारों से ग्रस्त व्यक्ति सदुपदेशों से प्रभावित नहीं होता।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. यहां सात अवगुणों – शठ, कुटिल, कृपण, ममतारत, लोभी, क्रोधी और कामी – से युक्त व्यक्ति को ऊसर भूमि बताया गया है और विनय, प्रीति, नीति, ज्ञान, विरति, शम (इन्द्रियनिग्रह) तथा हरिकथा को बीज कहा गया है। जिस व्यक्ति में उपर्युक्त अवगुण होंगे, उसका आचरण शुभ नहीं हो सकता। समुद्र में सातों अवगुण थे।

2. अलंकार – 'ऊसर .... जथा' में उदाहरण।

चौ०– अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥

शब्दार्थ – चाप=धनुष। चढ़ावा=बाण चलाने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना। भावा=प्रिय लगा। संधानेउ=संधान किया, चढ़ाया। बिसिख=वाण। कराला=भयंकर। उदधि=सागर।

व्याख्या – उपर्युक्त नीति-वचन कहकर श्रीराम ने धनुष चढ़ाया। लक्ष्मण को यह कार्य बहुत प्रिय लगा। श्रीराम ने ज्योंही धनुष पर भयंकर वाण का संधान किया, त्योंही समुद्र के भीतर अग्नि की ज्वाला भभक उठी।

साहित्यिक सौन्दर्य – चपलातिशयोक्ति अलंकार।

चौ०– मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥

शब्दार्थ – मकर=नक्र। उरग=सर्प। झष गन=मछलियों का समूह। जलनिधि=सागर। जंतु=जीव। कनक थार=सोने का थाल। बिप्र=ब्राह्मण। माना=मिथ्याभिमान।

व्याख्या – समुद्र में अग्नि भड़क उठने से उसके भीतर रहने वाले नक्र, सर्प तथा मछलियां व्याकुल होने लगीं। समुद्र ने देखा कि उसके भीतर के सभी जलचर जले रहे हैं। वह मिथ्याभिमान त्यागकर विप्र वेष में स्वर्णथाल में नाना प्रकार की मणियों को लेकर श्रीराम के सम्मुख उपस्थित हुआ।

साहित्यिक सौन्दर्य – नीति-वचन है कि राजा, देवता तथा गुरु के समक्ष खाली हाथ नहीं जाना चाहिए –

रिक्तहस्तो न गच्छेत राजानं देवतां गुरुम्।

दोहा– काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥ 58॥

शब्दार्थ – काटेहिं=काटने पर ही। कदरी (सं॰ कदली)=केला। फरइ=फल आते हैं। जतन (सं॰ यत्न)=उपाय। खगेस=गरुड़। नव=झुकता है। नीच=दुष्ट।

व्याख्या – कागभुशुंडि गरुड़ से कहते हैं कि केले के पौधों को चाहे जितना सींचा जाए, जब तक उनको काटा नहीं जाता, तब तक वे फल नहीं देते हैं। उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति पर नम्रता-प्रदर्शन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह डांटने पर ही झुकता है। तात्पर्य है कि दुष्ट पुरुष प्रेम से नहीं अपितु भय से ही कोई कार्य करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. केले के वृक्ष में केवल एक बार ही फल लगते हैं, फिर उसे चाहे जितना सींचा जाए, उसमें पुनः फल नहीं लग सकते। जब उसे काट दिया जाता है, तब उसकी जड़ से अन्य केले के पौधे निकलते हैं।

2. अलंकार – प्रतिवस्तूपमा।

चौ०– सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥
तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥

शब्दार्थ – गहि पद=चरण पकड़कर। केरे=के। अवगुन=दोष, अपराध। गगन=आकाश। समीर=वायु। अनल=आग। धरनी=पृथ्वी। सृष्टि हेतु=सृष्टि के कारण। लहई=प्राप्त करके।

व्याख्या – श्रीराम ने जैसे ही शर-संधान किया, वैसे ही तत्काल समुद्र विप्र रूप में उपस्थित हुआ और भयभीत होकर उनके पैरों को पकड़ लिया और प्रार्थना करने लगा कि हे नाथ! मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर दीजिए। आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी – ये पांचों तत्व स्वभावतः जड़ होते हैं। अग्नि बिना भेदभाव के सभी को जला देता है, उसमें यह विवेक नहीं है कि कौन-सी वस्तु जलाने योग्य है, कौन-सी नहीं। जल बिना भेदभाव के सभी को डुबो देता है, किसी को मार्ग नहीं देता है। पृथ्वी पापी-पुण्यात्मा, नीच-ऊंच सभी को धारण करती है, आकाश सभी को अवकाश देता है और पवन सभी का समान रूप से स्पर्श करता है। ये पांचों तत्व आपकी प्रेरणा से माया द्वारा निर्मित किए गए हैं। तात्पर्य है कि बिना आपकी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

प्रेरणा से अकेली माया कुछ नहीं कर सकती – 'एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।' श्रुतियों का कथन है कि ये पांचों तत्व सृष्टि के हेतु हैं अर्थात् सारा जगत् इन पांच तत्वों से ही निर्मित है। हे प्रभु! आप जिस तत्व को जैसी आज्ञा देते हैं, वह वैसा ही आचरण करता है और सुख को प्राप्त करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. अध्यात्म रामायण में समुद्र द्वारा ठीक यही बात कही गई है। श्लोक इस प्रकार है –

दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम्।
त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक॥ 70 ॥
जडोऽहम् ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत्।
स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम्॥ 71 ॥
स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावतः।
सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ॥ 72 ॥
जडबुद्धिर्जडो मूर्खः कथं जानामि निर्गुणम्।
दण्ड एव हिं मूर्खाणाम् सन्मार्ग प्रापकः प्रभो॥ 77 ॥

(युद्धकाण्ड सर्ग – 3)

2. पांचों तत्वों की जिस क्रम से उत्पत्ति हुई है, यहां वही क्रम रखा गया है। परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश हुआ, आकाश से वायु तत्व, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई –

एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः। अग्नेरापः। अदभ्यः पृथिवी अनुवाद॥ 1 ॥

(तैतरीय उपनिषद)

चौ०– प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हारी कीन्ही॥
ढोल गवांर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

शब्दार्थ – सिख दीन्ही=सबक सिखाया, दण्ड देकर मेरी आंखें खोल दीं। मरजादा=प्रकृति, स्वभाव, मनोवृत्ति। ताड़ना=प्रतारणा, दण्ड, कठोर व्यवहार।

व्याख्या – समुद्र ने पुनः कहा कि हे प्रभु! आपने मुझे शिक्षा दी, यह उचित ही है। श्रीराम उसे सुखाने के लिए शर-संधान कर चुके थे, फिर भी सागर ने यह नहीं कहा कि आप मुझे दण्ड देने पर उद्यत हुए। 'सिख दीन्ही' में मृदुता का भाव है और दण्ड की भी व्यंजना है। पुनश्च:, सारी मर्यादाएं आपके द्वारा ही बनाई गई हैं। तात्पर्य यह है कि आपने मेरे लिए जो विधान रचा है, मैं उसी का पालन करता हूं। मैं जड़बुद्धि हूं। ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी ताड़ना दण्ड के ही अधिकारी होते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – 'ढोल गवांर ..... अधिकारी' – इस पंक्ति को लेकर बहुत विवाद रहा है और गोस्वामी जी को नारी तथा शूद्र विरोधी भी कहा गया है। इस संबंध में निम्न तथ्यों पर ध्यान देना होगा –

1. उपर्युक्त कथन समुद्र का है, तुलसीदास का नहीं। प्रबंध काव्यों में अनेक प्रकार के पात्र होते हैं। वे अपने स्वभावानुसार वक्तव्य देते हैं। प्रत्येक पात्र का कथन कवि का कथन नहीं माना जाता है। समुद्र जड़ है और उसने विशेष संदर्भ में उक्त दृष्टांत दिए हैं।

2. 'ताड़ना' का अर्थ शिक्षा और सुधार भी होता है। समुद्र के कहने का तात्पर्य है कि आपने सुधारने के लिए मुझे शिक्षा दी, यह उचित ही है।

3. यह साधारणतः नीति और रीति कथन है, आदर्श नहीं है। पुनश्चः, पीटना कर्तव्य नहीं बताया गया है। शिक्षक को अधिकार है कि आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग करे।

4. कतिपय टीकाकारों के मत से 'पशु' शब्द शूद्र और नारी के मध्य में आया है। जिसका अर्थ है कि जो शूद्र अथवा नारी पशुवत आचरण करे उसकी ताड़ना अनुचित नहीं है।

5. 'ताड़ना' शब्द कई लोगों के लिए आया है, अतः यहां दीपक अलंकार है।

चौ०– प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

शब्दार्थ – सुखाई=सुखना, जलहीन होना। कटकु=सेना। अपेल=जिसका उलंघन नहीं किया जा सकता। श्रुति=वेद। बेगि=शीघ्र ही।

व्याख्या – हे प्रभु! आपके प्रताप से मैं सूख जाऊंगा, तब सेना पार कर जाएगी, किन्तु इससे मेरी मर्यादा नहीं बचेगी। आपकी आज्ञा अनुलंघनीय है, ऐसा वेदों का कथन है। मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सका। अतः आपको जो शोभा देता हो, वही कीजिए। तात्पर्य यह है कि अब मर्यादा की रक्षा कीजिए अथवा उसको मिटाइए।

साहित्यिक सौन्दर्य – 1. अन्यत्र भी तुलसीदास जी ने लिखा है –

होइहि वही जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावै साखा।

2. यहां पर सागर ने श्रीराम से आत्मनिर्णय का निवेदन किया है।

दोहा– सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥ 59 ॥

शब्दार्थ – बिनीत=विनीत। जेहि=जिस। बिधि=विधि। उतरै=पार जा सके। उपाइ=उपाय।

व्याख्या – समुद्र के उपर्युक्त विनीत वचन सुनकर दयालु श्रीराम ने मुस्कराकर कहा कि हे तात! अब तुम स्वयं वह उपाय बताओ जिस विधि से कपि सेना समुद्र पार जा सके।

चौ०– नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

शब्दार्थ – आसिष=आशीर्वाद। परस=स्पर्श। भारे=विशाल।

व्याख्या – समुद्र ने कहा कि हे नाथ! आपकी सेना में नल-नील नामक दो बंदर हैं। बाल्यकाल में एक ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारे स्पर्श से विशालकाय पर्वत भी जल पर तैरते रहेंगे, डूबेंगे नहीं। अतः उनका उपयोग कीजिए। आपके प्रताप से वे जहां पर डाले जाएंगे, वहीं स्थिर रहेंगे। ऋषि के आशीर्वाद में पत्थरों की स्थिरता सम्मिलित नहीं है। पत्थरों में स्थिरता आपके प्रताप से आएगी, तब सेना पार कर जाएगी।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साहित्यिक सौन्दर्य – नील-नल – ये विश्वकर्मा के पुत्र हैं। बाल्यकाल में ये दोनों भाई ऋषियों की शालग्राम की मूर्तियों को जल में डाल दिया करते थे। अत: उन्होंने शाप के व्याज से उन्हें यह वरदान दिया था कि तुम्हारे स्पर्श से पत्थर जल में डूबेंगे नहीं, तैरते रहेंगे। यह घटना नल-नील के बाल्यकाल की है, अत: उन्हें स्मरण नहीं है। समुद्र को ही यह बात ज्ञात थी।

चौ०– मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥

शब्दार्थ – उर धरि=हृदय से धारण कर, स्मरण करते हुए। प्रभुताई=महिमा, शक्ति। पयोधि=समुद्र। बँधाइअ=पुल बनाकर। तिहुँ=तीनों।

व्याख्या – समुद्र ने कहा कि मैं भी आपकी प्रभुता को हृदय में धारण करके अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता करूंगा। हे नाथ! इस प्रकार सागर पर सेतु का निर्माण कीजिए, जिससे तीनों लोकों में आपका यश-गान हो।

चौ०– एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥

शब्दार्थ – एहिं=अपने, इस। सर=अग्निबाण। मम=मेरे। हतहु=वध कर डालिए। अघ रासी=पापी, अधम। पीरा=पीड़ा। रनधीरा=रण में अद्भुत पराक्रम दिखाने वाले, साहसी, दृढ़।

व्याख्या – श्रीराम अभी शर-संधान किए हुए थे, वह पहले ही कह चुके थे कि हमारा बाण अमोघ है, यह कभी निष्फल नहीं होता है। अत: सागर ने निवेदन किया कि मेरी उत्तर दिशा में कतिपय पापी और दुष्ट जनों का वास है। कृपा करके इस बाण से उनका संहार कीजिए। दयालु श्रीराम ने सागर की पीड़ा सुनकर तुरन्त उसका हरण कर दिया अर्थात् उत्तर तटवासी दुष्टों को मार डाला।

साहित्यिक सौन्दर्य – वाल्मीकि के अनुसार सागर ने कहा था कि उत्तर दिशा में द्रुमकुल्य नामक एक पवित्र स्थान है। वहां अत्यंत पापाचारी आभीर रहते हैं, उनका वध कीजिए। श्रीराम ने उनका वध कर दिया था, तभी से वह स्थान मरुकान्तार नाम से प्रसिद्ध हुआ। (6/22/29-39)

चौ०– देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

शब्दार्थ – पयोनिधि=सागर। चरित=कारनामे, दुष्कृत्य। बंदि=वंदना कर। पाथोधि=सागर।

व्याख्या – श्रीराम की शक्ति और पौरुष को देखकर सागर बहुत प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् उसने यह रहस्योदघाटन किया कि उसने तत्काल मार्ग क्यों नहीं दिया था। फिर श्रीराम के चरणों की वंदना करके यथास्थान चला गया।

साहित्यिक सौन्दर्य – सकल चरित – वस्तुत: समुद्र उनका भक्त था। इसी कारण श्रीराम के दूत हनुमान के श्रम-निवारण के लिए उसने तत्काल मैनाक पर्वत को भेजा था। किन्तु राम के प्रार्थना करने पर भी उसने उन्हें मार्ग नहीं दिया, क्योंकि वह उत्तर तटवासी अपने शत्रुओं का श्रीराम के द्वारा वध करवाना चाहता था।

छन्द– निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

शब्दार्थ – भवन=घर, निवास, गृह। सिंधु=समुद्र। मत=सागर द्वारा दिया गया परामर्श। कलि मलहर=कलियुग के विकारों का हरण करने वाला। सुख भवन=सुख देने वाला। संसय समन=संदेह निवारण करने वाला। दवन बिषाद=दु:ख दूर करने वाला। गुन गना=गुणों का समूह। संतत=निरंतर। मना=मन।

व्याख्या – तत्पश्चात् सागर अपने निवास पर चला गया। 'गवनेउ' में यह व्यंजना है कि सागर जल में नहीं रहता था, उसका आवास कहीं अन्यत्र था, वह वहीं पर चला गया। श्रीराम को यह वृतान्त बहुत प्रिय लगा अर्थात् समुद्र द्वारा पहले मार्ग न देने, उनके द्वारा सागर के शत्रुओं का संहार, सेतु-बंध तथा सागर की मर्यादा की रक्षा प्रिय लगे। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम का यह चरित्र कलियुग के विकारों को दूर करने वाला, आनंद प्रदायक, समस्त संदेहों का निवारक, दु:ख विनाशक और गुणों का पुञ्ज है। तुलसीदास ने उसका गान किया है। हे शठ मन! तू समस्त आसक्तियों का त्याग करके, विश्वासपूर्वक उनका निरन्तर गान करता रह और सुनता रह।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां यह रोचक तथ्य है कि सागर का निवास-स्थान कहीं और था।

दोहा– सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ 60 ॥

शब्दार्थ – सकल=सब। तरहिं=पार कर जाते हैं। भव सिंधु=संसार-सागर। जल- जान=जलयान, नौका, जहाज।

व्याख्या – अंत में फलश्रुति बताई गई है। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम के गुणों का गान समस्त रूप से कल्याणकारी है। जो लोग इसको आदरपूर्वक सुनते हैं, वे बिना जहाज के ही भव-सागर पार कर जाते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य – यहां विभावना अलंकार है।

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल ज्ञानसम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः समाप्तः॥

इस प्रकार कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाला निर्मल ज्ञान सम्पादन नाम का पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उत्तरकांड

उपजाति सवैया :

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरसे सुर बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे।
राम-सुभाव सुने 'तुलसी' हुलसे अलसी हम से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे ॥१॥

टिप्पणी—बिदारि=मारकर। सुकंठ=सुग्रीव। थप्यो=स्थापित किया, राज्य दिया। दासरथी=(दशरथ का अपत्यवाची) राम। हुलसे=आनंदित हुए। हम से=मेरे समान पापी। गलगाजे=बड़ी-बड़ी बातें करने लगे, डींगें मारने लगे। 'गलगजे उड़ाना' यह मुहावरा है। कूर=(सं० क्रूर) निष्ठुर। हद=सीमा। तेउ=वे भी। गरीबनेवाज=दीनदयालु। नेवाजे=कृपा की।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने वालि के समान वीर को मारकर सुग्रीव को राज्य दिया। यह जानकर देवता प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे; क्षण-भर में रावण को मारकर लंका में विभीषण का राज्य सुशोभित कर दिया। तुलसीदास कहते हैं कि राम का स्वभाव सुनकर हमारे समान आलसी आनंदित होकर डींगें मारने लगते हैं। जो कायर, क्रूर और कुपुत्रों की सीमा हैं अर्थात् जिनसे बढ़कर डरपोक, क्रूर और कुपुत्र कोई है ही नहीं, उनपर भी दीनदयालु रामचन्द्रजी ने कृपा की है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मत्तगयंद सवैया—७ भगण+२ गुरु :

बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सो नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि ते सिर नावैं।
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोबिद गावैं।
राम से बाम भए तेहि बामहिं बाम सबै सुख संपति लावैं ॥२॥

टिप्पणी—दयावने=दया के पात्र। दिन=प्रतिदिन। कोबिद=ज्ञानी, पंडित। बाम=विमुख। बामहि=कुटिल को। बाम लावैं=बायाँ दे जाते हैं, दूर हटते हैं।

भावार्थ—जिस रावण के घर में ब्रह्मा नित्य वेदपाठ करते थे, शिवजी डर के मारे स्वयं ही अपने को रावण से पुजवाने को आते थे, दया के पात्र देवता और दानव अति दीन और दुःखी होकर प्रतिदिन रावण को दूर ही से सिर झुकाते थे। रावण का ऐसा सौभाग्य भी उसे छोड़कर भाग गया। रामचन्द्रजी की जिस प्रभुता को कवि-कोविद गाते हैं, वह यही है कि राम से विमुख होने से उस कुटिल व्यक्ति से सब सुख-संपत्तियाँ विमुख हो जाती हैं।

बेद बिरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, कबहूँ करुनाकर कोप न धारो।
सेवक-छोह ते छाँड़ी छमा 'तुलसी' लख्यो राम-सुभाव तिहारो।
तौ लौं न दाप दल्यो दसकंधर, जौ लौं बिभीषन लात न मारो ॥३॥

टिप्पणी—छोह=कृपा। छमा=क्षमा। तौ लौं=तब तक। दाप दल्यो=गर्व चूर्ण किया। जौ लौं=जब तक।

भावार्थ—रावण ने पृथ्वी, मुनि और साधुओं को दुःख देकर वेद के विरुद्ध काम किया और स्वर्गलोक को उजाड़ दिया। और कहाँ तक रावण के अवगुण कहूँ, उसने रामचन्द्रजी की पत्नी तक को हर लिया; तब भी दयालु रामचन्द्रजी ने क्रोध न किया। तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मैंने आपका स्वभाव जान लिया कि आपने केवल सेवक (विभीषण) के ऊपर कृपा करके अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़कर क्रोध किया था। जब तक रावण ने विभीषण को लात न मारी तब तक आपने रावण का घमंड चूर-चूर नहीं किया।

सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरी को बन्धु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो।
नाम लियो अपनाइ लियो, 'तुलसी' सो कहौ जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनिवाज न दूसरा ऐसो ॥४॥

टिप्पणी—निमज्जत=डूबते हुए। काढ़ि=निकालकर। पुरंदर=इन्द्र। कैसो=की तरह। सो=सम। अनैसो=(अनिष्ट) बुरा। आरत-आरति-भंजन=(आर्त्तार्त्ति-भंजन) दुःखी के दुःख को मिटानेवाले।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने बालि के डर से शोक में डूबते हुए सुग्रीव को बचाकर जैसा किया (राज्य दिया) उसे सारा संसार जानता है। नीच स्वभाव और राक्षस जाति, तिस पर भी वैरी रावण के भाई विभीषण को इन्द्र के सदृश ऐश्वर्यशाली बना दिया। संसार में तुलसीदास के समान बुरा कौन था, उसको भी रामचन्द्र ने केवल 'राम' नाम लेने से ही अपना लिया (अपने भक्तों में गिन लिया)। दुःखियों को दुःख से छुड़ानेवाले और दीनों के रक्षक रामचन्द्रजी के समान और कोई नहीं।

मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर-बन्धु-बधू जो।
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपाल न दूजो।
कूर कुजाति कपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो ॥५॥

टिप्पणी—तनूजो बाल=अपने ही शरीर से उत्पन्न बालक को। सज्जन-सींव=सज्जनता की मर्यादा, जिससे अधिक सज्जन कोई न हो। बिलसै=विलास करता है। अघी=पापी।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने वानर और भालुओं तक से पवित्र (निष्कपट) मित्रता की। उनकी इस प्रकार रक्षा की जिस प्रकार कोई आत्मज बालक की भी नहीं करता। जो विभीषण अपने ज्येष्ठ भाई रावण की पत्नी मंदोदरी से अब भी (विभीषण अमर माना जाता है) विलास करता है, वह सज्जनता की सीमा माना गया। तुलसीदास कहते हैं कि अयोध्याधिपति रामचन्द्रजी के अतिरिक्त दयालु और शरणागत का रक्षक दूसरा कोई नहीं है। चाहे क्रूर हो, चाहे नीच जाति का हो, चाहे कुपुत्र हो, चाहे पापी हो, जो मनुष्य रामचन्द्रजी की पूजा करेंगे उनके मनोरथ पूरे होंगे।

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बन्धु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है।
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाव सही है ॥६॥

टिप्पणी—कलुषाई=मलिनता। दही है=जला दी है। पावक की कलुषाई दही है=अग्नि की मलिनता दाहकता है, अतः दाहकता को भी जला दिया अर्थात् शीतल कर दिया। धर्मधुरंधर=धर्म के धुर (बोझ) को धारण करनेवाले, अर्थात् धर्मात्मा। बिधि कही है=उपदेश दिया है। बोलि=बुलाकर। कीस=सुग्रीव। निसाचर=विभीषण। करनी=भ्रातृवधू को पत्नीवत् भोगना। अनखौंही=अप्रसन्न होने योग्य। अनैसी=(अनिष्ट) बुरा।

भावार्थ—जिन्होंने अग्नि की दाहकता को शांत कर दिया, ऐसी स्त्रियों में श्रेष्ठ सीताजी को (लोकापवाद सुनकर) त्याग दिया। धर्मात्मा भाई (लक्ष्मण) को भी छोड़ दिया और नगरनिवासियों को बुलाकर नागरिक नियम समझाये। पर सुग्रीव और विभीषण के दुष्कर्मों (भ्रातृवधू से भोग करना) को न सुना, न देखा और

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

न उनपर कुछ ध्यान ही दिया। क्योंकि रामचन्द्रजी सदा से शरणागत के अप्रसन्न होने योग्य और बुरे कार्यों को भी स्वभाव से ही सहते चले आये हैं।

दुर्मिल सवैया—८ सगण :

अपराध अगाध भए जन तें अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू।
लिए बारक नाम सुधाम दियो जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
'तुलसी' भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ।।७।।

टिप्पणी—जन=भक्त, दास। पुंज=समूह। सिराहिं=समाप्त होते हैं। बारक=(बार एक) एक बार भी। सुधाम=(स्वधाम) वैकुण्ठ। दाहिन=अनुकूल।

भावार्थ—यदि भक्तों से बड़े भारी अपराध भी हो जायें तो रामचन्द्रजी उन पर कुछ ध्यान नहीं देते। क्योंकि गणिका, हाथी, गृद्ध और अजामिल के असंख्य पाप गिनते-गिनते समाप्त नहीं होते (गिने नहीं जा सकते) हैं; उनको भी एक बार नाम लेते ही अपना (वैकुण्ठ) लोक दिया, जहां बड़े-बड़े मुनिजन नहीं जा सकते। इसलिए तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के लिए सदा अनुकूल दीनदयालु रामचन्द्रजी को भजो।

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महां।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहां।
सुर साखी दै राखी है पांडु-बधू पट लूटत, कोटिक भूप जहां।
'तुलसी' भजु सोच-बिमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहां।।८।।

टिप्पणी—गिरा=वाणी, वचन। नरकेहरि=नरसिंह। महां=मध्य से। झखराज=ग्राह। ततकाल=(तत्काल) उसी क्षण। साखी=(साक्षी) गवाही। राखी है=रक्षा की है। पांडु-बधू=द्रौपदी। पन=प्रण।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने प्रह्लाद के वचनों को सत्य किया और खंभ के बीच से नरसिंह-रूप में प्रकट हुए। जब ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया तो उसी समय उसपर कृपा करके उसे बचाया, उस काम में जरा भी देर न की। करोड़ों राजाओं के बीच में दुःशासन द्वारा वस्त्र खींचकर नंगी की जाने से द्रौपदी की रक्षा की, इस बात के साक्षी देवता होते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शोक से छुड़ानेवाले रामचन्द्र जी को भजो। रामचन्द्रजी ने कब भक्त के प्रण को नहीं निबाहा (अर्थात् सदा पूरा किया है)?

नर-नारि उघारि सभा महं होत दियो पट, सोच हर्‌यो मन को।
प्रह्लाद बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को।
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भार सदा अपने पन को।
'तुलसी' तजि आन भरोस, भजे भगवान, भलो करिहैं जन को ।।९।।

टिप्पणी—नर-नारि=अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी। बिषाद=दुःख। निवारन=दूर करनेवाले। बारन=(वारण) हाथी। तारन=उद्धार करनेवाले। मीत अकारन को=बिना कारण अर्थात् निःस्वार्थ मित्र। सही=ठीक, सच्चे। आन=अन्य, दूसरे को। भरोस=विश्वासपूर्वक।

भावार्थ—जिन्होंने सभा में नंगी की जाती हुई द्रौपदी को वस्त्र देकर उसके मन का सोच दूर किया जो प्रह्लाद के दुःख को मिटानेवाले, हाथी को बचानेवाले, निःस्वार्थ मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं और जिनको सदा अपने प्रण पूरा करने का बोझ रहता है (ध्यान रहता है)। तुलसीदास कहते हैं कि जो औरों को छोड़कर ऐसे भगवान् को विश्वासपूर्वक भजता है उस भक्त का भगवान् अवश्य भला करेंगे।

रिषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सब ही।
दससीस-बिरोध सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही।
करुनानिधि को भजु रे 'तुलसी' रघुनाथ अनाथ के नाथ सही।।१०।।

टिप्पणी—रिषिनारि=गौतम की पत्नी, अहल्या। सठ=शठ, नीच। मीत=मित्र। पुनीत=पवित्र। लही=पायी। निजलोक=वैकुण्ठ। खग=जटायु। लीक=रेखा।

भावार्थ—अहल्या का शाप से उद्धार कर और नीच जाति के केवट को मित्र बनाकर पवित्र कीर्ति पायी। शबरी और जटायु को वैकुण्ठ लोक में भेजा, सुग्रीव को राजा बनाया, यह सबको ही मालूम है। रावण के विरोध से डरे हुए विभीषण को राजा बनाया, संसार में यह बात लकीर-सी रह गयी (अर्थात् निशानी रह गयी)। तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के सच्चे स्वामी दयालु रामचन्द्रजी को भजो।

मत्तगयंद सवैया :

कौसिक, बिप्रबधू, मिथिलाधिपके सब सोच दले पल माहैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं।
ऐसी अनूप कहें 'तुलसी' रघुनायक की अगनी गुन-गाहैं।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथन छाहैं ।।११।।

टिप्पणी—बालि-दसानन-बंधु-कथा=बालि के भाई सुग्रीव और रावण के भाई विभीषण की कथाएं। अगनी=असंख्य। गुन-गाहैं=गुणगाथाएं। आरत=(आर्त्त) दुःखी। करैं निज हाथन छाहैं=स्वयं रक्षा करते हैं।

भावार्थ—विश्वामित्र, अहल्या और जनक के सब शोच क्षणभर में दूर कर दिये। सुग्रीव और विभीषण की कथा सुनकर शत्रु भी सुस्वामी रामचन्द्रजी के शील-स्वभाव की प्रशंसा करते हैं (कि शत्रुओं के भाइयों पर भी इतनी कृपा की)। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी की असंख्य गुण-गाथाएं ऐसी ही अद्भुत हैं। दीन, दुःखी और अनाथों की रामचन्द्रजी स्वयं रक्षा करते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तेरे बेसाहें बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहिब सेंतहुँ खारे।
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै। रज तें लघु को करे मेरु तें भारे।
स्वामि सुसील समर्थ सुजान सो तो सो तुही दसरत्थ-दुलारे ॥१२॥

टिप्पणी—बेसाहें=मोल लेने से। बेसाहना=द्रव्यादि देकर मोल लेना। औरनि=और देवताओं को। ब्योम=आकाश। रसातल=पाताल। सेंतहु खारे=मुफ्त भी मिलें तब भी बुरे। तेहि=कुस्वामियों को। रज तें=धूल से। अलंकार—अनन्वय।

भावार्थ—हे रामजी ! जिसको तुम खरीद लेते हो अर्थात् अपना भक्त बना लेते हो वह और देवताओं को मोल ले लेता है अर्थात् सब देवता उसके गुलाम बन जाते हैं और अन्य देवता जिसको मोल लेते हैं अर्थात् भक्त बनाते हैं, वे उसको (भक्त को) औरों के हाथ बेच देते हैं। यों तो आकाश-पाताल और भूमि में अनेक क्रूर और कुस्वामी भरे-पड़े हैं, पर वे मुफ्त भी मिलें तो भी बुरे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे कुस्वामियों की सेवा करके कौन मरता फिरे ? किसने धूल समान लघु सेवक को सुमेरु से भी बड़ा बनाया है ? हे दशरथ के प्यारे रामचन्द्रजी, तुम्हारे समान सुशील, समर्थ और चतुर स्वामी तुम्हीं हो।

जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो,
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए,
राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराज को।
नाम 'तुलसी' पै भोंड़ो भांग ते कहायो दास,
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समरत्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तो सो, तुही आपने की लाज को ॥१३॥

टिप्पणी—जातुधान=विभीषण। भालु=जामवंत। कपि=सुग्रीव। केवट=गुह-राज। बिहंग=जटायु। सद्य=तत्काल, उसी समय। भयो काम-काज को=प्रतिष्ठा के योग्य हो गया। सरन आए=शरण में आने पर। पै=पर। भोंड़ो=बुरा। अलंकार—उपमानलुप्ता।

भावार्थ—हे नाथ ! विभीषण, जामवंत, सुग्रीव, निषाद, जटायु जिन-जिन को आपने पाला, वे सब तुरन्त ही प्रतिष्ठा करने योग्य हो गये। दुखी, अनाथ, दीन और पापियों को भी शरण में आने पर आपने अपना भक्त बना लिया, ऐसा तो आपका स्वभाव है। यद्यपि मेरा नाम (पवित्र और पूज्य) 'तुलसी' है, पर मैं भाँग से भी बुरा हूँ। आपने मेरे समान धोखेबाज को भी अपना भक्त स्वीकार कर लिया, इसी से मैं आपका (अथवा तुलसी का) दास कहलाया। हे दशरथ के पुत्र ! आपके समान समर्थ और दयालु स्वामी दूसरा कोई नहीं है। अपने शरणागत की लज्जा की रक्षा करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं है।

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि,
सखा किए, महाराज हों न काहू काम को।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आये,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम को।
राय दसरत्थ के समरत्थ तेरे नाम लिये,
'तुलसी' से कूर को कहत जग राम को।
आपने निवाजे की तो लाज महाराज को,
सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को ॥१४॥

टिप्पणी—भ्रात-घात-पातकी=भाई को मारने की इच्छा के कारण पापी। बाम=कुटिल, दुष्ट। गुलाम=दास (तुलसीदास)।

भावार्थ—हे नाथ ! महाबली बाली को मारकर कायर सुग्रीव वानर को सखा बनाया, जो किसी काम का न था। भाई के घात की इच्छा के कारण पापी, विभीषण के समान बड़े कुटिल राक्षस को भी शरण आने पर आपने अंगीकार कर लिया। हे राजा दशरथ के सामर्थ्यवान् पुत्र ! आपका नाम लेने से तुलसी के समान कपटी को भी संसार राम का दास कहता है। रामचन्द्रजी को अपने शरणागत की लज्जा है, यह स्वभाव समझकर तुलसीदास का मन प्रसन्न होता है।

रूप-सील-सिंधु गुनसिंधु, बंधु दीन को,
दयानिधान, जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।
श्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के,
सिलासाप-समन, निबाह्यो नेह कोल को।
'तुलसी' उराउ होत राम को सुभाव सुनि,
'को न बलि जाइ न बिकाइ बिन मोल को ?
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुराग न सो,
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को ॥१५॥

टिप्पणी—जान-मनि=(ज्ञान-मणि) सुजानों में श्रेष्ठ। बीर बाहु-बोल को=बाहु के बीर अर्थात् शरणागत-प्रतिपालक और बोल को वीर अर्थात् दृढ़प्रतिज्ञ। उराउ=उत्साह, हौसला। लोभ लोल को=लोभ के कारण चंचल मनवाला। अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

भावार्थ—रामचन्द्रजी रूपवान्, शीलवान् और गुणवान् हैं, दीनों के बन्धु, दयालु और सुजानशिरोमणि हैं, शरणागत-रक्षक और दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। गृद्धराज जटायु का अपने हाथों से श्राद्ध किया, शबरी के दिये हुए फलों की सराहना की, शिला बनी हुई अहल्या के शाप का नाश किया और कोल-भीलों के स्नेह को निबाहा। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी के ऐसे स्वभाव को सुनकर उत्साह बढ़ता है। ऐसे रामचन्द्रजी पर कौन न्योछावर नहीं होगा और बिना मोल के उनके हाथ न बिकेगा (अर्थात् बिना कुछ लिये ही उनका दास न हो जायगा) ? ऐसे सुन्दर स्वामी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

से जिसका प्रेम नहीं है, वह बड़ा अभागा है। ऐसा समझना चाहिए कि लोभ से चलायमान मनुष्य का सौभाग्य ही उससे दूर भाग गया है।

सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो।
केवट पखान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो 'तुलसी' सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबन्धु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ॥१६॥

टिप्पणी—सूर सिरताज=शूरों के शिरोमणि। सुखेत=(सुक्षेत्र) अच्छा खेत। ऊसरो=उजाड़, जो उपजाऊ न हो। साहब=स्वामी। जहान=संसार में। मराल=हंस, (यहाँ) 'हंस' की तरह विवेकी। खूसरो=निर्बुद्ध, मूर्ख। पखान=(पाषाण) पत्थर। धींग=निकम्मा, असभ्य। धमधूसरो=मूर्ख। बोल को अटल=दृढ़प्रतिज्ञ। बाँह को पगार=शरण देने के लिए अपनी भुजाओं को फैलाये हुए, शरणदाता। पगार=(प्राकार) चारदीवारी। अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—शूरों में श्रेष्ठ महाराजाओं के भी महाराजा और जिसका नाम लेते ही बंजर खेत भी सुन्दर उपजाऊ हो जाते हैं, ऐसे सुजान रामचन्द्रजी के समान स्वामी संसार में कहाँ हैं (अर्थात् कहीं नहीं)? ऐसे कृपालु के स्मरण से मूर्ख भी हंस की तरह विवेकी हो जाता है। रामचन्द्रजी ने केवट, पाषाण, राक्षस, वानर और तुलसीदास के समान असभ्य और महामूर्खों को अपनाया। अतः रामचन्द्रजी के समान दृढ़प्रतिज्ञ, शरणागत-पालक, दीनबन्धु, दरिद्र को दान देनेवाले और दयालु दूसरा कौन है (कोई नहीं)?

कीबे को बिसोक लोक, लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषण घरौंदा हुतो बालु को।
नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को?
'तुलसी' की बार बड़ी ढील होत, सीलसिंधु,
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयाल को? ॥१७॥

टिप्पणी—कीबे को बिसोक=शोक-रहित करने को। चरवाहा=चरानेवाला, सुमार्ग पर लानेवाला। पवि=वज्र। ख्याल ही=खेल ही में। बापुरो=बेचारा। घरौंदा हुतो बालु को=बालू के घरौंदे की तरह (अर्थात् क्षणस्थायी,

निर्बल) था। नाम-ओट लेत ही=नाम की शरण लेते ही। निखोट=निर्दोष। खोटे=दोषी, पापी। मोट=गठरी। चोट बिनु मोट पाइ=बिना कष्ट या श्रम के गठरी पाकर। निहाल=प्रसन्न। ढील=विलम्ब। अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—अनेक लोकपाल थे, परन्तु लोगों को (रावण-प्रदत्त) शोक से छुड़ाने को कोई वानर और रीछों का चरवाहा न बना। कृपालु रामचन्द्रजी ने बेचारे विभीषण को, जो बालू की भीत की तरह निर्बल था, खेल-ही-खेल में वज्र के पहाड़ की तरह अर्थात् अखण्ड शक्तिमान बना दिया। केवल नाम ही की शरण में जाने से पापीजन भी निष्पाप हो जाते हैं। अतः बिना प्रयत्न के गठरी पाकर (अर्थात् जप-तपादि साधन किये बिना ही मुक्ति पाकर) कौन प्रसन्न न होगा? हे सुशील रामचन्द्रजी, बिगड़ी बात को सुधारने के लिए आपके अतिरिक्त दूसरा दयालु कौन है? परन्तु तुलसीदास को अपनाने में बड़ी देर हो रही है (अतः शीघ्र ही मुझे अपनी शरण में लीजिए)।

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की।
तुलसीओ तारिबो बिसारिबो न अंत मोहिं,
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील की।
देव तो दयानिकेत, देत दादि दीनन को,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥१८॥

टिप्पणी—पूत=पुत्र। पुनीत=पवित्र। पातकीस=अजामिल। आरति=(आर्त्ति) दुःख। निवारी=दूर किया। पाहि=रक्षा करो। पील=हाथी। छौंड़ी=लड़की। निगोड़ी=निकम्मी। कीन्हीं लीन आपु में=मोक्ष-पद दिया। भोंड़े=भद्दे, असभ्य। तुलसीओ=तुलसीदास को भी। बिसारिबो=भुलाएंगे। नीके=अच्छी तरह। रावरे=आपके। दयानिकेत=दया के घर। दादि देत=न्याय करते हैं, फरियाद सुनते हैं। अलंकार—अनुपलब्धि प्रमाण।

भावार्थ—हे स्वामिन्! पापियों में श्रेष्ठ अजामिल को अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेने से ही आपने उसको पवित्र कर दिया; और 'मेरी रक्षा करो' ऐसा कहते हुए हाथी का (ग्राह के फंदे से छुड़ाकर) दुःख दूर किया। छलियों की लड़की, निकम्मी, जाति-पाँति में भी नीच और असभ्य भील जाति की स्त्री शबरी को भी मोक्ष-पद दिया। मुझे आपके शील-स्वभाव का पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे (तुलसीदास को) भी तारेंगे। अंत में भुलायेंगे नहीं। हे देव, आप तो दया के घर हैं और दीनों पर न्याय करते हैं, पर मेरे ही अभाग्य से मेरे ऊपर दया करने में स्वामी ने देर की है (मैं ऐसा ही समझता हूँ)।

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
ऋनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू ।
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।
बात चले बात को मानिबो बिलग बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ॥१९॥

टिप्पणी—पाहन=(पाषाण) पत्थर पर । कृपा=कृपा की । कोलनी=शबरी । कपीस=सुग्रीव । निशिचर=विभीषण । माथ नाए=माथा झुकाने पर, नम्र होने पर । सुजानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ । खोटे खरे होत=पापी भी निष्काम हो जाते हैं । तेजी=महँगी । माटी मगहू की=मार्ग की धूल भी (अगर कस्तूरी मार्ग में गिर पड़े तो कस्तूरी के साथ उसके संसर्ग से सुगंधित मिट्टी को भी लोग उठा लेते हैं । यह मिट्टी महँगी बिकती है । मृगमद=कस्तूरी । बात चले बात को=प्रसंग आने पर कहने का । बिलग=बुरा । काकी=किसका । रीझि कै=प्रसन्न होकर ।

भावार्थ—जनकपुर जाते हुए मार्ग में पत्थर मिला, उसपर कृपा की । किरात शबरी पर भी कृपा की । शरण में आने पर सुग्रीव और विभीषण को अपना लिया । हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी, सच्ची सेवा तो हनुमान ने की । (उसको कुछ न देकर) उसके ऋणी कहलाये, और उसी के हाथ बिक गये । आपके नाम की शरण लेने से तुलसीदास के समान पापी भी शुद्ध हो जाते हैं; क्योंकि कस्तूरी के संसर्ग से राह में पड़ी हुई मिट्टी भी महँगी बिकती है । हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ, इसी प्रसंग पर अगर मैं कुछ पूछूँ तो बुरा न मानिएगा । आपने किस की सेवा से प्रसन्न होकर उसपर कृपा की है ? (भाव यह कि स्वयं बिना सेवा के तो आप कृपा करते हैं और जो आपकी सच्ची सेवा करता है, उसके हाथ बिक जाते हैं ।)

कौसिक की चलत, पखान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की ।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की ।
कोटि-कला-कुसल कृपालु, नतपाल, बलि,
बातहू कितिक तिन 'तुलसी' तनक की ।
राय दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की ॥२०॥

टिप्पणी—परस=स्पर्श । बनि गई=कार्यसिद्धि हुई । रतिन के=रत्तियों के । प्रापति=प्राप्ति । मनक की=एक मन की । रतिन के लालचिन प्रापति मनक की=जो थोड़े-से पदार्थ के लिए लालायित रहते थे उनको आवश्यकता से अधिक की प्राप्ति हुई । नतपाल=नम्र अर्थात् शरण में आये हुए को पालनेवाले । बातहू कितिक=बात ही कितनी, अर्थात् सरल है । तिन=तृणसम । तनक=छोटे-से । राजमनि=राजाओं के शिरोमणि । हेरे=देखने से । लोपै=मिट जाती है । लिपि=लेख । बिधिहू गनक की=ब्रह्मा के समान गणक की भी । अलंकार—अत्युक्ति ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी को अपने साथ ले चलने से ही विश्वामित्र की, पैरों के स्पर्श से पत्थर अर्थात् अहल्या की और धनुष टूटने से जनक की कार्य-सिद्धि हो गयी । कोल (शबरी), पशु (मृग-वेषधारी मारीच), पक्षी (जटायु), भालु (जामवंत) और राक्षस (विभीषण) आदि रत्ती के लालचियों को (रामचन्द्र की कृपा से) एक मन की प्राप्ति हुई (अर्थात् जो केवल थोड़े-से सांसारिक सुख के लिए लालायित रहते थे, उनको परम पद तक मिल गया) । हे करोड़ों कलाओं में निपुण, कृपालु तथा शरणागतों के रक्षक रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलैया लूँ । तृण के समान तुलसीदास को जरा-सी भक्ति के प्राप्त होने की बात ही कितनी कठिन है (अर्थात् सरल है) ! हे राजा दशरथ के समर्थ पुत्र, राजाओं में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी, आपकी कृपादृष्टि मात्र से ब्रह्मा के समान ज्योतिषी का लिखा हुआ भाग्याभाग्य-निर्णय का लेख भी मिट जाता है ।

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गए हौ सो सुनी मैं ।
सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत-सभा सादर सनेह-सुरधुनी-मैं ॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल;
साहेब समत्थ एक नीके मन गुनी मैं ।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम,
'तुलसी' न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ॥२१॥

टिप्पणी—सुरधुनी=(सुरों की धुनी अर्थात् नदी) गंगा । सुरधुनी मैं=गंगा-मय अर्थात् गंगा की भाँति पवित्र । नीके=अच्छी तरह । गुनी=विचार कर लिया है । दुनी=दुनिया, संसार ।

भावार्थ—पाप से शापित शिला (अहल्या) का उद्धार किया, गुह और गृद्ध (जटायु) से मिले, स्वयं बिना बुलाये शबरी के पास चले गये और राजसभा में भरत से अपने सेवक सुग्रीव और विभीषण के गंगा की भाँति पवित्र स्नेह की अत्यंत आदरपूर्वक सराहना की । मैंने यह सब सुना और मन में अच्छे प्रकार से विचार कर लिया कि आलसी, अभागी, पापी, दुःखी और अनाथों की रक्षा करने में एक स्वामी रामचन्द्रजी ही समर्थ हैं । हे रामजी, संसार में दोष, दुःख और दारिद्र्य को दूर करनेवाला, दोनों का बंधु और दया का घर आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है ।

मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु,
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को ।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तो कहैगो घटाइ को ?
सांकरे के सेइबे, सराहिबे, सुमिरिबे को,
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइ को ॥२२॥

टिप्पणी—मीत = मित्र। सचिव = मंत्री। जोहि = देखकर। न खटाइ को = कौन नहीं निबाह सकेगा ? कहौ ऐसे को = कहिए तो ऐसे स्वामी की सेवा में कौन न स्थिर रहेगा। कहैगो घटाइ को = छोटा कौन कहेगा ? अर्थात् सब कोई अपने को बड़ा ही कहते हैं, छोटा कोई नहीं कहता। सांकरे के = संकट में। कुमति-कटाइ को = कुमति का कटायक अर्थात् काटनेवाला।

भावार्थ – रामचन्द्रजी ने अपने शत्रु वालि के भाई सुग्रीव को मित्र बनाया, पुत्र अंगद को दूत बनाया, और दूसरे शत्रु रावण के भाई विभीषण को मंत्री बनाया। शबरी और जटायु का भी श्राद्ध किया। लंका को जली देखकर मन में शोच हुआ कि जली लंका मैंने विभीषण को दी। ऐसे (शत्रु से भी प्रेम-व्यवहार करनेवाले, नीचों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले और अपनी दी हुई अमूल्य वस्तु को भी कुछ न समझनेवाले) स्वामी की सेवा में कौन नहीं रह सकेगा (सभी रह सकेंगे) ? अनेक लोकों के लोकपाल एक-से-एक बड़े हैं। अपने-अपने को छोटा कोई नहीं कहता। परन्तु संकट के समय सेवा करने के योग्य, सराहने योग्य राम के सदृश न तो दूसरा स्वामी है, न कोई कुमति काटनेवाला ही है।

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन-कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजान टाहली।
'तुलसी' सुभाय कहैं नाहीं कछु पच्छपात,
कौन ईस किये कीस भालु खास माहली।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मो सो दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥२३॥

टिप्पणी—ब्यालपाल = सर्पों के राजा शेषनाग, वासुकी आदि। नाकपाल = स्वर्ग के राजा इन्द्रादि। कारन-कृपालु = कारणवश अर्थात् भक्ति करने के कारण कृपा करनेवाले। कादर = डरपोक। सेवा-सुजान = सेवा करने में चतुर। टाहली = टहलुवा, सेवक। खास = मुख्य। माहली = महल (रनिवास) के सेवक। काहली = सुस्त, आलसी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने सबके मन की थाह ले ली है, पृथ्वी के राजा, पाताल के शेषनाग आदि, स्वर्ग के इन्द्रादि और लोकपाल—ये सब कारण-वश कृपा करते हैं। सबको सेवा करने में चतुर सेवक की सेवकाई अच्छी लगती है, पर डरपोक का आदर करनेवाला कोई भी नहीं दिखलाई देता। मैं सच कहता हूं,

किसी का पक्षपात नहीं करता। किसी स्वामी ने भालू और वानरों को अपने अंतःपुर का सेवक बनाया है ? मेरे समान दीन, दुर्बल, कुपुत्र, क्रूर और आलसी जीव का रामचन्द्रजी के ही द्वार पर बुलाकर सम्मान किया जाता है। (अन्यत्र ऐसे जीवों का आदर नहीं होता।)

सेवा-अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित 'तुलसी' स्वारथ हित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।
गीध मानो गुरु कपि भालु मानों मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ॥२४॥

टिप्पणी—सेवा-अनुरूप = सेवा के ही योग्य, जितनी सेवा करो उतनी ही। बिहूने = बिना। गुन = (१) गुण, (२) रस्सी। पथ = मार्ग। लेखे-जोखे = (मुहावरा) विचार कर लिया। चोखे = निष्कपट। नीके = अच्छी तरह। देवैया = देनेवाले। घने = बहुत। गथ = द्रव्य, धन। गुरु = पिता-सम पूज्य। पुनीत = पवित्र। साके = विरुदावली। परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत = सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है—(१) पहले उसके बाहरी रंग की परीक्षा करते हैं; (२) फिर सूराख करके यह देखा जाता है कि इसके भीतर दूसरी धातु तो नहीं मिली है; (३) फिर उसको तौल लेते हैं कि इसका वजन तो ठीक है; (४) अंत में उसको तपाकर उसके खरे-खोटे की पहचान की जाती है। अच्छी तरह परीक्षा कर लेते हैं। लसम = खोटा, निकम्मा। खसम = स्वामी।

भावार्थ—संसार के और राजा कुएं की तरह सेवा के अनुकूल ही फल देते हैं। जैसे मार्ग के पथिक रस्सी पास में न होने से कुएं से प्यासे ही जाते हैं, वैसे ही बिना सद्गुणों के याचक लोग राजा के पास से भी विमुख जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मैंने निष्कपट चित्त से बिचार कर अच्छी तरह देख लिया है कि अपने स्वार्थ के लिए (अर्थात् सेवा करने के लिए) धन देनेवाले देवता तो बहुत से हैं, पर जटायु को पिता के सदृश माननेवाले और वानरों तथा भालुओं को मित्र करके माननेवाले, पवित्र गीत और विरुदावलीवाले सामर्थ्यवान् स्वामी रामचन्द्रजी ही हैं। और राजा तो अच्छी तरह जांचकर अपना सेवक छांटते हैं, पर हे दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी, निकम्मे आदमी के स्वामी केवल तुम्हीं हो।

रीति महराज की नेवाजिये जो मांगनो सो,
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िए।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि,
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िए।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जाँचे को नरेस, देस-देस को कलेस करै,
देहैं तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौड़िए।
कृपापाथनाथ लोकनाथनाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ-हाथ और काहि ओड़िए ? ॥२५॥

टिप्पणी—दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िए=दोष, दुःख और दारिद्र्य को भी दरिद्र करके छोड़ते हैं, अर्थात् नाश कर देते हैं। कलपतरु=कल्पवृक्ष। फल चारि=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। बिहाइ=(सं० विहाय) छोड़कर। गोड़िए=सेवा कीजिए। जाँचे=(याचे) माँगे। बड़ी बड़ाई=बहुत बढ़कर। बौड़ी=दमड़ी की कौड़ी। पाथ=जल। पाथनाथ=समुद्र। काहि हाथ ओड़िये ?=किसके सामने हाथ पसारें ? अलंकार=अत्युक्ति ('दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िए' में) और ललित ('बबूर रेंड़ गोड़िए' में)।

भावार्थ—रामचन्द्रजी की रीति ऐसी है कि जो माँगता है उसके दोष, दुःख और दारिद्र्य को दरिद्र करके छोड़ते हैं अर्थात् ये सब मिटा देते हैं। जिन रामचन्द्रजी का नाम चारों फलों का दाता कल्पवृक्ष है, उनको छोड़कर कँटीले बबूल और रेंड़ के समान वृक्षों की सेवा कौन करेगा ? कौन राजाओं से माँगे और कौन देश-देश में घूमने का कष्ट करे ? क्योंकि वे प्रसन्न होकर बहुत बढ़कर देंगे भी तो दमड़ी की कौड़ी ही देंगे। कृपाल, संसार के स्वामी, सीतापति रामचंद्रजी को छोड़कर और किसके सामने हाथ फैलावें ?

किरीट सवैया—८ भगण :

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि।
ताको कहाय, कहै 'तुलसी' तू लजाहि न माँगत कूकुर-कौरहि।
जानकि-जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि ॥२६॥

टिप्पणी—कमला=लक्ष्मी। रिझवै=प्रसन्न करती है। सुरमौरहि=विष्णु भगवान् को। कूकुर-कौरहि=और देवताओं से कुत्ते के ग्रास के समान तुच्छ सुखभोग। जानकि-जीवन=जानकी के प्राण, रामचन्द्रजी। जन=भक्त, दास। जरि जाउ=जल जावे। जीह=जिह्वा, जीभ।

भावार्थ—जिस लक्ष्मी की सुदृष्टि-मात्र से लोकपाल शोक-रहित होते हैं और देवता सुन्दर स्थान प्राप्त करते हैं, वह लक्ष्मी अपनी स्वाभाविक चंचलता को छोड़कर करोड़ों उपाय करके विष्णुरूप (रामजी) को प्रसन्न करती है। तुलसीदास कहते हैं कि उन्हीं विष्णु भगवान् (रामचन्द्रजी) का सेवक होकर तुझे और देवताओं से तुच्छ पदार्थ माँगते लज्जा नहीं आती। रामचन्द्रजी का भक्त होकर जो औरों से माँगता है, उसकी जीभ जल जाय तो अच्छा।

दुमिल सवैया—८ सगण :

जड़पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।
जनको कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की।

'तुलसी' कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की।
जग में गति जाहि जगत्पति की परवाह है ताहि कहा नर की ॥२७॥

टिप्पणी—जड़=अचैतन्य। पंच=पंचतत्त्व, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। धरणीधर=(यहाँ पर) रामचन्द्रजी। सार करना=सँभाल करना। आन=(अन्य) दूसरा। रमा=लक्ष्मी। गति=शरण।

भावार्थ—श्रीरामजी की करतूत तो देखो, पाँच तत्त्वों को मिलाकर यह देह बना दी। जो समग्र जड़ और चैतन्यों की सँभाल करता है वह क्या अपने भक्त की सँभाल न करेगा ? तुलसीदास कहते हैं कि लक्ष्मी जिसके घर की सेविका है उसके समान दूसरा कौन होगा ? संसार में जिस मनुष्य का आश्रय भगवान् राम हैं, उसे क्या परवाह है ?

जग जाँचिये कोउ न, जाँचिये जौं, जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे।
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आन हिये हनुमानहि रे।
'तुलसी' भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि कृपानहि रे ॥२८॥

टिप्पणी—जानकी-जान=जानकी-जानि (स्त्री); अर्थात् जिनकी स्त्री जानकी हैं, रामचन्द्र। जारति=जलाती है। आनु हिये=हृदय में ध्यान कर। दारिद-दोष दवानल=दरिद्रता-रूपी दोष को नष्ट करने के लिए दावाग्नि के समान। दवानल=वन की अग्नि। संकट-कोटि-कृपान=करोड़ों संकटों को काटने के लिए तलवार के समान।

भावार्थ—संसार में किसी से भी नहीं माँगना चाहिए। यदि मन में माँगने की ही ठानी हो तो रामचन्द्रजी से माँगो, जिनसे माँगने से याचकता (दरिद्रता) भी जल जाती है, जो (याचकता) अपने बल से संसार को भी जला देती है) विभीषण की दशा को विचारो (रामचन्द्रजी से राज्य पाया) और हनुमान की दशा का ध्यान करो (रामचन्द्रजी ने उसे अपना भक्त बनाया)। अतएव तुलसीदास कहते हैं कि दरिद्रता को दूर करनेवाले और करोड़ों संकटों से छुटकारा देनेवाले रामचन्द्रजी को भजो।

सुनु कान दिये नित नेम लिए रघुनाथहि के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुन्दर रूप सदा उर आनि धरे धनु-भाथहि रे।
रसना निसिबासर सादर सो 'तुलसी' जपु जानकी-नाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे ॥२९॥

टिप्पणी—नेम लिए=नियमपूर्वक। गुनगाथहि=गुणों की कथा। धरे धनु-भाथहि=धनुष और तरकस धारण किये हुए को। रसना=जिह्वा। कूर=कपटी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कानों से नित्य-नैमित्तिक रूप से रामचन्द्रजी की गुणगाथाओं को ध्यान देकर सुनो, आँखों से धनुष और तरकस धारण

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

किये हुए सुन्दर रूप को हृदय में लाओ, जिह्वा से रात-दिन आदरपूर्वक रामचन्द्रजी को जपो, और कपटी कुमार्गियों के कुसंग को छोड़कर सुशील और सज्जनों की संगति करो।

सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि संत-सभा न बिराजहि रे?
नर-देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, 'तुलसी भजु कोसलराजहि रे' ॥३०॥

टिप्पणी—दार=(दारा) स्त्री। अगार=(आगार) घर। कुसमाजहि=बुरी संगति, दुःखदायी संग। ममता='यह मेरा है' ऐसा भाव, मोह। डोलहु=भ्रमण करो। लोलुप=लालची।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि पुत्र, स्त्री, घर, मित्र आदि परिवार को बड़ा दुःखदायी समझो। सबकी ममता छोड़कर और समदर्शी बनकर सज्जनों की संगति में क्यों नहीं बैठते? जरा विचार करके इस नर-शरीर के माहात्म्य को तो देखो। ऐ गँवार (मूर्ख)! अपने काम को मत बिगाड़। लालची कुत्ते की तरह दर-दर मारे-मारे मत फिरो, श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो।

बिषया परनारि, निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे।
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महाभय भागहि रे।
जरठाई दिसा, रबिकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥३१॥

टिप्पणी—बिषय=सांसारिक विषय-भोग। तरुनाई=यौवन। भोर=प्रातःकाल। जरठाई=बुढ़ापा। दिसा=पूर्व दिशा। अलंकार=रूपक।

भावार्थ—विषय-सुख-भोग मानो पर-स्त्री है और यौवन रात्रि है। यौवन-काल में विषय-सुखों को पाकर जड़ जीव आसक्त हो जाता है। रोग और वियोग के दुःख मानो यमराज के पहरुवे हैं (अर्थात् विषयों के भोग से अनेक रोगादि उत्पन्न होते हैं, जिनसे मृत्यु होती है)। इनको देखकर भी सांसारिक सुखों से विरक्ति नहीं होती। हे जड़जीव, ममता के कारण तू ज्ञान वैराग्य सब भूल गया है। अब प्रातः-काल हो गया है, महाभय भाग गया है। बुढ़ापा-रूपी पूर्व दिशा में काल-रूपी सूर्य का उदय हो गया है (अर्थात् मरण-काल समीप आ पहुँचा है)। पर हे जड़ प्राणी, तू अब भी सचेत नहीं होता है।

जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भए भूरि, बहोरि भई उर की जरनी।
'तुलसी' अब राम को दास कहाइ हिए धरु चातक की धरनी।
करि हंस को बेष बड़ो सबसों, तजि दे बक-बायस की करनी ॥३२॥

टिप्पणी—हितू=हित चाहनेवाले। भूरि=बहुत। बहोरि=फिर। धरनी=टेक, प्रतिज्ञा। चातक की धरनी=चातक की तरह अपने स्वामी की दृढ़ भक्ति। करि हंस को बेष=भक्तों का-सा वेष बनाकर। बक की करनी=छल-कपट करना। बायस की करनी=चंचलता और अविश्वास। अलंकार—ललित।

भावार्थ—तुलसीदास सांसारिक लोगों से कहते हैं कि जिस योनि में जन्म लिया उसमें सुख-भोग के लिए अनेक कर्त्तव्य किये, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उस योनि में माता-पिता आदि अनेक हित चाहनेवाले हुए, फिर भी हृदय की जलन बनी ही रही। अतएव अब रामचन्द्रजी का भक्त कहलाकर चातक की तरह अपने स्वामी की दृढ़ भक्ति करो और भक्तों का-सा वेष बनाकर छल करना और किसी पर विश्वास न करना छोड़ दो।

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै, परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै।
जो भजै भगवान सयान सोई 'तुलसी' हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै बीज बए हर हाटक कामदुहा नहि कै ॥३३॥

टिप्पणी—भलो समाज=सत्संगति। भलो सरीर=नर-देह। लहि कै=पाकर। करषा=क्रोध। परुषा=कठोर। सयान=(संज्ञान) चतुर। हठ गहि कै=हठ पकड़कर। नतु=नहीं तो (अर्थात् नर-शरीर पाकर भगवान् का भजन न करने से)। बए=बोए। हर हाटक=सोने का हल। हाटक=सोना। कामदुहा=कामधेनु गाय को। नहि कै=जोतकर। अलंकार—ललित।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सुन्दर भारतभूमि में, अच्छे कुल में जन्म, सुसंगति और सुन्दर नर-शरीर पाकर क्रोध छोड़कर सदा कठोर वर्षा, कठोर जाड़ा, कठोर लू और कड़ी धूप सहकर जो चातक की तरह अनन्य प्रेम से भगवान् का भजन करे वही चतुर है। नहीं तो मनुष्य-शरीर पाकर भी भगवद्‌भजन छोड़कर सांसारिक विषयों के सुख-भोग से ऐसा दुःखप्रद फल होगा, जैसा सोने के हल में कामधेनु गाय को जोतकर विष का बीज बोने से होता है।

उपजाति सवैया।

सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छ्वै।
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभाय सदा छल छाड़ि सबै 'तुलसी' जो रहै रघुबीर को ह्वै ॥३४॥

टिप्पणी—सुकृती=पुण्यात्मा। सुचिमंत=पवित्र। स्वै=(सोई सं० स एव) वही। पावन=पवित्र। ता तन=उसका शरीर। छ्वै=छूकर। गुन-गेह=गुणों का गृह, गुणवान्। सनेह को भाजन=स्नेहपात्र, स्नेह करने के योग्य। उठाइ कहौं भुज द्वै=दोनों हाथ उठाकर घोषणा करके कहता हूँ। सतिभाय=सद्भाव से, प्रेम या भक्तिपूर्वक। अलंकार—निदर्शना।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं भुजा उठाकर सबको सूचित करके कहता हूँ कि जो सब प्रकार के छल-कपट छोड़कर निरंतर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजी का दास बनकर रहता है, वही पुण्यात्मा, पवित्र, सज्जन, ज्ञानी और वही सुन्दर शील-स्वभाववालों में श्रेष्ठ है। देवता और तीर्थ उस रामसनेही का अपने पास आगमन मनाते हैं, और उसके शरीर को छूकर पवित्र होते हैं। गुणवान् और स्नेह-पात्र भी वही है।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोई सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो।
सो 'तुलसी' प्रिय प्रानसमान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम होइ सबेरो ॥३५॥

टिप्पणी—हित=हितकारी। सगो=निकटस्थ, सम्बन्धी। कहाँ लौं=कहाँ तक। बनाइ कहौं=बढ़ाकर कहूँ। सबेरो=शीघ्र। अलंकार—तुल्ययोगिता।

भावार्थ—जो अपने शरीर और घर की ममता छोड़कर शीघ्र ही (विषयादि में फँसकर विलंब न करे) स्नेहपूर्वक राम का भक्त हो जाय, वही मेरे लिए माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, हितकारी, सगा, सम्बन्धी, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास सब कुछ है (अर्थात् जो कुछ है सब वही है)। तुलसीदास कहते हैं कि कहाँ तक गिना-गिनाकर कहूँ, वह मुझे प्राण के समान प्यारा है।

मत्तगयंद सवैया—७ भगण+२ गुरु :

राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, रामरँग्यो रुचि राच्यो न केही।
जीवत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जग में 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही ॥३६॥

टिप्पणी—सौंह=(सम्मुख, प्रा० सउँह) सम्मुख हो। रामरँग्यो=रामचन्द्रजी के स्नेह में रँगा हुआ अर्थात् अनुरक्त। रुचि=इच्छा। राच्यो न केही=किसी पर अनुरक्त नहीं होता। गति=शरण। मुए धरि देह=देह धरे हुए भी मरे हुए के समान।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी ही जिसके माता, पिता, गुरु, भाई, संगी, मित्र पुत्र, स्वामी और अन्य प्रेमीजनों के तुल्य हैं, जो सदा अपने को रामचन्द्रजी के सम्मुख मानता है, जिसे केवल राम का भरोसा है, जो रामचन्द्रजी के ही प्रेम में अनुरक्त है, राम के प्रेम को छोड़कर जिसकी इच्छा को और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जब तक जीवन रहता है राम ही को भजता है, मरने के समय भी राम ही का स्मरण करता है, और जिसको सदा रामचन्द्रजी की ही शरण है, उसी को संसार में जीवित कहना चाहिए, और लोग तो देह धारण किये होने पर भी मरे हुए के समान हैं।

दुमिल सवैया—८ सगण :

सियाराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
स्रुति रामकथा मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों रामहि को बलु है।
सबकी न कहै 'तुलसी' के मते इतनो जग-जीवन को फलु है ॥३७॥

टिप्पणी—अगाध=गंभीर, गहरा। अनूप=अनुपम। अन्वय=अनूप सियाराम-सरूप बिलोचन-मीनन को अगाध जलु है। स्रुति=कान। थलु=स्थान। गति=पहुँच। रति=प्रेम। मते=सम्मति से, विचार से। अलंकार=आत्मतुष्टि प्रमाण।

भावार्थ—सीताराम का अद्वितीय सौंदर्य आँखरूपी मछलियों के लिए अगाध जल हो, अर्थात् आँखों से सीताराम की सुन्दरता देखें। (भाव यह है कि जैसे मछलियाँ जल में ही मग्न रहती हैं और उसके बिना प्राण छोड़ देती हैं; ऐसे ही जब तक शरीर में प्राण रहे तब तक सदा सीताराम के ध्यान में मग्न रहें।) कानों से रामचन्द्रजी की ही कथा सुनें, मुख से रामनाम का उच्चारण करें, मन में भी सदा राम का स्मरण करें - बुद्धि से भी राम की महिमा जानें और पहुँच केवल राम तक हो, सबकी सम्मति तो नहीं कहते, पर तुलसीदास के विचार से संसार में जीने का फल यही (उपर्युक्त) है।

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कै।
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीन दयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं ॥३८॥

टिप्पणी—जसु=यश। नाग=सर्प। जाचक=(याचक) माँगनेवाला। पायो न कै=किसने नहीं पाया। असि=ऐसा। जाय=व्यर्थ।

भावार्थ—हे दशरथ के पुत्र! दानियों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी, मैंने आपका पुराणों में प्रख्यात यश सुना है। मनुष्य, शेषनागादि, सर्प, देवता और राक्षस, जिसने भी आपसे माँगा, अपनी इच्छा-भर किसने नहीं पाया? (अर्थात् सबने पाया है।) हे दीन दयालु, यदि आप कृपा करके सुनें तो तुलसीदास हाथ जोड़कर विनती करता है कि जिस जन्म में आपसे स्नेह न हो उस जीवन को धारण कर व्यर्थ ही क्यों जीवित रहूँ? (अर्थात् जिस योनि में आपसे प्रेम न करूँ ऐसी देह ही धारण न करूँ।)

नोट—इस सवैया के चारों तुकांत भिन्न-भिन्न हैं। केवल 'ऐं' का तुकांत है। इस प्रकार का तुकांत अधम माना जाता है।

मत्तगयंद सवैया :

'झूठो है झूठो है, सदा जग, संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जानपनो को गुमान बड़ो 'तुलसी' के विचार गँवार महा है।
जानकी-जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है ॥३९॥

टिप्पणी—जे अंत लहा है = जिन्होंने इस संसार का अनुभव कर इसका अंत पाया है। काढ़त दंत = दाँत काढ़ता है, अति विनीत भाव से प्रार्थना करता है। जानपनो = ज्ञानीपना। गुमान = अभिमान। गँवार = मूर्ख। जानकी-जीवन जान न जान्यो = रामचन्द्रजी का ज्ञान न हुआ। जान = ज्ञानी।

भावार्थ—जिन साधुओं ने इस संसार का अनुभव करके सिद्धांत निकाला है वे कहते हैं कि यह संसार सदा तीनों कालों में झूठा है (अर्थात् निस्सार है, इसमें कुछ है नहीं)। हे मूर्ख तू उसी संसार के लिए विनती करता है, हा-हा करता है और उसी संसार के करोड़ों रोग-शोकादि कष्टों को सहता है। तुझे अपने ज्ञानीपन का बड़ा घमण्ड है, पर तुलसीदास के विचार से तू महामूर्ख है। अगर तुझे रामचन्द्रजी का ज्ञान न हुआ तो तू क्या जानकर ज्ञानी कहलाता है! (ज्ञानी कहलाना व्यर्थ है।)

दुमिल सवैया :

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावश ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥४०॥

टिप्पणी—खर = गदहा। स्वान (श्वान) कुत्ता। कछु वै = कुछ भी। सही = सच ही, ठीक। बिखान = (सं० विषाण) सींग। भार = बोझ। मुई = मर मिटी। बाँझ (सं० वंध्या) = जो बच्चा न जने। गई किन च्वै = उसका गर्भपात क्यों नहीं हो गया? किन = क्यों नहीं। जरि जाउ = जल जाय, नष्ट हो जाय।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिनको रामचन्द्रजी से स्नेह नहीं, वे सच-मुच पशु ही हैं। उनके केवल एक पूँछ और दो सींगों की कमी है। उनसे तो गदहे, सूअर और कुत्ते अच्छे हैं; क्योंकि वे जड़ होने के कारण भला-बुरा कुछ भी नहीं कहते। ऐसी संतति के गर्भ के बोझ से माता ने दस महीने तक क्यों कष्ट उठाया? वह बंध्या ही क्यों न रही? अगर गर्भ रह गया था तो उसे गिरा क्यों न डाला? (भाव—रामविमुख संतति को जन्म देने से बंध्या होना अच्छा है।) हे सीतापति रामचन्द्रजी, संसार में जो तुम्हारे बिना अर्थात् तुमसे विमुख होकर रहते हैं, उनका जीवन जल जाय अर्थात् वे मर जायँ (उनका जीना व्यर्थ है)।

नोट—इस सवैया का तुकांत भी अधम ही माना जायगा।

गज बाजि घटा, भले भूरि-भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।
सब फोटक साटक है 'तुलसी' अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥४१॥

टिप्पणी—घटा = समूह। भटा = योद्धा। बनिता = पत्नी। भौंह तकैं = आज्ञा की बाट जोहते हैं, आज्ञानुकूल हैं। वै = ही। चाहि = बढ़कर, अपेक्षाकृत। इहै = इसी लोक में। स्वै = (स एव) वही। फोटक = निस्सार, छूँछा। साटक = छिलका, भूसी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि चाहे अपने पास हाथी-घोड़ों का समूह भी हो, अच्छे योद्धा भी बहुत हों, स्त्री-पुत्र सब ही आज्ञानुकूल हों, पृथ्वी, धन, घर, और सुन्दर स्वस्थ शरीर भी हो, और यहीं स्वर्ग से भी बढ़कर सुख हो, पर ये सब निस्सार वस्तुएँ हैं, इनमें कुछ भी तत्त्व नहीं। सब दो-एक दिन का सपना है अर्थात् स्वप्न की तरह भ्रम है। हे जानकीपति, जो संसार में आपसे विमुख होकर रहे, उसका मर जाना अच्छा है।

सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धन भो।
पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो, भव भूषन भो।
करि जोग समीरन साधि समाधि कै, धीर बड़ो बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै 'तुलसी' जो न जानकि-जीवन को जन भो ॥४२॥

टिप्पणी—सुरराज = इन्द्र। राज-समाज = राज्य की सामग्री। समृद्धि = बढ़ती, तरक्की। बिरंचि = ब्रह्मा। धनाधिप = कुबेर। पवमान = वायु। पावक = अग्नि। सोम = चन्द्रमा। पूषन = सूर्य। भव = संसार। जोग = योग। समीरन (समीरण) = वायु। समीरन साधि कै = वायु की साधना कर, प्राणायाम करके। समाधि कै = प्राणवायु को ब्रह्मांड में रोककर समाधि लगाना। जाय = व्यर्थ। सुभाय = अच्छे भाव से।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अगर इन्द्र की तरह राज्य-सामग्री भी हो, ब्रह्मा की तरह समृद्धिमान् भी हो, कुबेर के सदृश धनी भी हो, वायु के समान दंडधारी भी हो, चन्द्रमा के सदृश शीतल भी हो, सूर्य के समान संसार को प्रकाशित करनेवाला भी हो, संसार का भी भूषण हो अर्थात् संसार में भी बड़ी ख्याति पायी हो योग भी करता हो, प्राणायाम भी साधता हो, समाधि भी लगाता हो, बड़ा धैर्यवान् हो, और यहाँ तक कि मन भी वश में हो जाय, परन्तु सीतापति रामचंद्र-जी का भक्त न तो उपर्युक्त सब बातें व्यर्थ हैं।

उपजाति सवैया :

काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै-सुख साने।
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जु पै राजिव-लोचन राम न जाने ॥४३॥

टिप्पणी—माने = पूज्यमान, मान्य। मघवा = इन्द्र। बिषै-सुख साने = विषय-सुखों में निमग्न। सुक = शुकदेव। चिरजीवन = चिरंजीवी, लोमश मुनि चिरंजीवी माने जाते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावार्थ— तुलसीदास कहते हैं कि अगर कामदेव के समान रूपवान्, सूर्य के सदृश प्रतापी, चन्द्रमा के समान सुशील, गणेश की तरह पूज्य, हरिश्चन्द्र के बराबर सत्यवादी, ब्रह्मा के समान वयोवृद्ध, इन्द्र की तरह विषय-सुखों में लीन राजा, शुकदेवजी-सरीखे ब्रह्मज्ञानी मुनि, सरस्वती के समान विद्वान् और लोमश मुनि से भी अधिक दीर्घायु हों, परन्तु यदि कमल के समान आँखोंवाले रामचन्द्रजी को नहीं जाना तो इन (उपर्युक्त) सब गुणों के होने से ही क्या लाभ ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

मत्तगयंद सवैया :

> झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मद-अंबु चुवाते।
> तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते।
> भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
> ऐसे भए तो कहा 'तुलसी' जु पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥४४॥

टिप्पणी—मतंग=मस्त हाथी। जंजीर जरे=लोहे की सांकलों से जकड़े हुए। मद-अंबु चुवाते=गंडस्थली से मद का जल टपकाते हुए। तीखे=तीक्ष्ण, तेज, वेगवान्। मनोगति-चंचल=मन की गति की तरह चंचल। पौन=पवन। गौन=(गमन) वेग। समाते=अँटते। रंग न राते=प्रेम में अनुरक्त न हुए।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अगर द्वार पर गंडस्थल से मद झरते हुए और लोहे की सांकलों से जकड़े हुए मस्त हाथी झूमते हों, मन की गति के समान चंचल, वेगवान् हवा के वेग से भी बढ़े-चढ़े घोड़े भी हों, अंतःपुर में चन्द्रमुखी स्त्री भी उसे देखा करती हो और दरवाजे पर इतने राजा खड़े हों कि उनके रहने को स्थान भी पर्याप्त न हो (अर्थात् अनेक राजा अधीन हों) परन्तु रामचन्द्रजी से प्रेम न किया तो इन (उपर्युक्त) वस्तुओं के होने से भी क्या लाभ ?

> राज सुरेस पचासक को, बिधि के करको जो पटो लिखि पाए।
> पूत सपूत पुनीत प्रिया, निज सुन्दरता रति को मद नाए।
> संपति सिद्धि सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चित लाए।
> जानकिजीवन जाने बिना जग ऐसेउ जीवन जीवन जाए ॥४५॥

टिप्पणी— सुरेस=इन्द्र। बिधि के कर को पटो लिखि पाए=ब्रह्मा के हाथ का लिखा हुआ प्रमाण-पत्र पाया हो। मद नाए=घमंड चूर कर देती है। मन की मनसा चितवैं=रुख देखा करती है। जाए=व्यर्थ।

भावार्थ—स्वयं ब्रह्मा के हाथ के लिखे हुए प्रमाण-पत्र द्वारा पचासों इन्द्रों के बराबर राज्य पाया हो, पुत्र भी सुपुत्र हो, पत्नी पतिव्रता हो और अपनी सुन्दरता से रति (कामदेव की स्त्री) के गर्व को चूर कर देती हो, सब संपत्तियाँ और आठों सिद्धियाँ भी मन लगाकर उसका रुख ताकती रहती हों (कि कब यह कुछ कहे और हम उसे पूरा करें), पर तुलसीदास कहते हैं कि बिना रामचन्द्रजी के जाने ऐसा प्राणी (मनुष्य) भी व्यर्थ ही जीता है।

दुर्मिल सवैया—८ सगण :

> कृसगात ललात जो रोटिन को, घरबात घरे खुरपा खरिया।
> तिन सोने के मेरु से ढेर लहे, मन तो न भरो घर पै भरिया।
> 'तुलसी' दुख दूनो दसा दुहूँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
> तजि आस भो दास रघुप्पति को दसरत्थ को दानि दयादरिया ॥४६॥

टिप्पणी—कृसगात=दुर्बल शरीर वाला। ललात=लालायित रहता है, उत्कंठित रहता है। घरबात=घर का सामान। घरे=घर में। खुरपा=घास छीलने का औजार। खरिया=घास बाँधने की जाली। तिन=वे लोग। दुहूँ दसा=दोनों दशाएँ अर्थात् दरिद्रावस्था की दशा और धनवान होने की दशा। दारिद को मुख करिया कियो=दरिद्रता का मुख काला कर दिया, दरिद्रता को दुःख ही नहीं गिना। दरिया=(फा०) समुद्र।

भावार्थ—जो दुर्बल शरीरवाले रोटियों के लिए लालायित रहते थे, और घर की सामग्री के नाम जिनके घर में केवल खुरपा और खरिया थे, उनको अगर सुमेरु पर्वत के बराबर भी सोने का ढेर मिल जाय तो उनके घर तो भर जाते हैं, पर मन की इच्छा की तृप्ति नहीं होती, अर्थात् लालसा बढ़ती ही रहती है। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में (दरिद्रावस्था और धनिकावस्था में) दुःख-ही-दुःख देखकर मैं दरिद्रता के दुःख को गिनती में ही न लाया और सब आशाओं को छोड़कर दशरथ के पुत्र, दानी और दया के सागर रामचन्द्रजी का दास हो गया।

उपजाति सवैया :

> को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
> उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै।
> 'तुलसी' यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
> कुमया कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ मया करिहै ॥४७॥

टिप्पणी—रितये=(सं० 'रिक्त' से) खाली करने से। उथपै=(उत्थापन) उखाड़ना, हटाना। थपै=स्थापित करे। टरिहै=हिला दें, हटा दें। मया=कृपा। कुमया=क्रोध, नाराजगी।

भावार्थ—जिसको रामचन्द्रजी खाली कर देते हैं उसे कौन भर सकता है ? (अर्थात् जिसको रामचन्द्रजी नष्ट कर देते हैं उसे कोई नहीं बसा सकता।) और जिसको रामचन्द्रजी (धन-संपत्ति से) भर देते हैं उसे खाली कौन कर सकता है ? जिसकी रामचन्द्रजी स्थापना करते हैं उसे कौन उखाड़ सकता है ? जिसको रामचन्द्रजी स्थान से हटा देते हैं उसे कौन स्थापित कर सकता है ? (कोई नहीं।) तुलसीदास कहते हैं कि अपने मन में यह सब जानकर मैं स्वप्न में भी काल से नहीं डरता हूँ। अगर रामचन्द्रजी की कृपा है तो औरों के क्रोध से कुछ हानि नहीं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मत्तगयंद सवैया—७ भगण + २ गुरु :

ब्याल कराल महाविष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे।
सांसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे।
नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केवल हो रे।
कौन को त्रास करै 'तुलसी' जो पै राखिहै राम तो मारिहै को रे ॥४८॥

टिप्पणी—ब्याल=साँप। कराल=भयंकर। महाविष=हलाहल। पावक=अग्नि। मत्तगयंद=उन्मत्त हाथी। रद=दाँत। सांसति=कष्ट। संकि=शंका करके, डरकर। डरपे हुते=जो डरते थे। किंकर=सेवक। ते=वे सेवक। करनी मुख मोरे=स्वामी के आज्ञापालन-रूपी कर्म करने से मुख मोड़ लिया। नेकु=जरा॰ भी। बिषाद=दुःख। कारन हो=कारण था। केहरि=नृसिंह। त्रास=भय।

भावार्थ—हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के मारने को भयंकर जहरीले साँप भेजे, (वे भाग गये); हलाहल पिलाया (इससे भी कुछ असर न हुआ); आग में फेंक दिया (तो आग भी शीतल हो गयी); मस्त हाथी भेजे, पर उनके भी दाँत तोड़ दिये (इससे भाग गये); और भी जो कष्ट दिये वे सब (भगवान के) डर से भाग गये; और हिरण्यकशिपु से जो सेवक डरते थे उन्होंने भी आज्ञापालन-रूपी कर्म करना छोड़ दिया। प्रह्लाद को कुछ भी दुःख न हुआ। इसके कारण केवल नृसिंह भगवान थे। तुलसीदास कहते हैं कि डरें किससे? अगर रामचन्द्रजी रक्षक हैं तो मार कौन सकता है? (अर्थात् कोई नहीं।)

उपजाति सवैया :

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते जो, बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरे।
'तुलसी' जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे।
कहा भवभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे ॥४९॥

टिप्पणी—काज=लाभ। अकाज=हानि। मुख मोरे=नाराज होने से, प्रतिकूल होने से। दिन दौरे फिरैं=प्रतिदिन दौड़ते फिरते हैं। रीझत=प्रसन्न होते हैं। भवभीर=सांसारिक कष्ट। धरनी=पृथ्वी। तिन सों=जिनकी कृपा अथवा अकृपा से कुछ नहीं बनता-बिगड़ता, ऐसे लोगों से। तिन=(तृण) तिनका। तोरे=सम्बन्ध छोड़कर, कुछ सरोकार न रखकर।

भावार्थ—जिनकी कृपा से न कुछ लाभ ही होता है, न जिनके प्रतिकूल होने से कुछ हानि ही होती है, उनकी परवाह वे ही करते हैं जो सदा बिना सींग और पूँछ के पशु की तरह मारे-मारे फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके रामचन्द्रजी के समान समर्थ स्वामी हैं, जो थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं, उनको सांसारिक कष्टों की क्या चिंता? अतएव ऐसे लोगों से सम्बन्ध छोड़कर वह निःशंक विचरता है।

मत्तगयंद सवैया :

कानन, भूधर, बारि बयारि, महाविष, ब्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी' सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे।
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥५०॥

टिप्पणी—भूधर=पर्वत। बारि=जल। बयारि=हवा। महाविष=हलाहल। ब्याधि=शारीरिक रोग। दवा=दावानल। अरि घेरे=शत्रु से घिर जाने पर। हित=मित्र। नेरे=निकट। जेहि केरे=जिसके। नाक=स्वर्ग। रसा=पृथ्वी। रसातल=पाताल।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वन में, पर्वत में, जल में, वायु में, हलाहल खाने पर, रोग में, दावाग्नि में फँस जाने पर, शत्रु के घेरे में पड़ जाने पर और जहाँ करोड़ों संकट आ पड़ें और पुत्र, माता, पिता, भाई-बन्धु कोई निकट न हो वहाँ जिसके हनुमान-सरीखे सेवक हैं ऐसे कृपालु रामचन्द्रजी मेरी रक्षा करेंगे। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल—तीनों लोकों में केवल रामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं।

जो जमराज-रजायसु तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया।
सांसति घोर, पुकारत, आरत कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।
एक कृपाल तहाँ 'तुलसी' दसरत्थ को नंदन बंदि-कटैया ॥५१॥

टिप्पणी—जो=जब। रजायसु=(राजा+आयसु) राजा की आज्ञा। भट=यमराज के दूत। नटैया=गर्दन। बँटैया=बँटानेवाला, सहभोगी, हिस्सेदार। सांसति=कष्ट। डटैया=धमकानेवाले। बंदि-कटैया=बंधनों से छुड़ानेवाला।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब यमराज की आज्ञा से यम के दूत मुझको गर्दन बाँधकर ले चलेंगे उस समय मेरी उस बड़ी भारी विपत्ति का साझेदार पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र और भाई-बन्धु कोई भी न होगा, और अत्यन्त कष्ट के कारण दुःख की मेरी पुकार कौन सुनेगा, सब धमकानेवाले ही होंगे। उस समय मुझे विपत्ति से छुड़ानेवाला दशरथ के पुत्र कृपालु रामचन्द्रजी के अतिरिक्त और कोई न होगा।

उपजाति सवैया :

जहाँ जम जातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया।
'तुलसी' जहँ मातु पिता न सखा, नहि कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ॥५२॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—जम जातना=यमकृत पीड़ा, मरने के समय का कष्ट। घोर नदी=वैतरणी नदी। दंत-टेवैया=दाँत पैना या तेज करनेवाले। बोहित=जहाज। नीक खेवैया=चतुर मल्लाह।

भावार्थ—जहाँ यम-यातना के देनेवाले करोड़ों यमचर हैं, घोर वैतरणी नदी है, जिसमें तीक्ष्ण दाँतोंवाले जलजंतु हैं जिनकी भयंकर धारा का वार-पार नहीं सूझता है और न कोई जहाज या नाव पास में है, न कोई चतुर केवट ही है, जहाँ न कोई माता, पिता और मित्र है, और न कोई सहारा देनेवाला है, तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ अपनी लम्बी भुजाओं से पकड़कर निकालनेवाले केवल बिना कारण कृपा करनेवाले रामचन्द्रजी ही हैं।

उपजाति सवैया :

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया।
'तुलसी' तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया ॥५३॥

टिप्पणी—काय=शरीर। काय गिरा मन के=त्रिविध पाप—कायिक, वाचिक, मानसिक। छमैया=क्षमा करनेवाला। दारुण=कठिन। दमैया=दमन अर्थात् नाश करनेवाला। रमैया=जो सबमें रमण करे और सबको अपने में रमावे अर्थात् रामजी।

यस्मिन्रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥

—अध्यात्मरामायण

भावार्थ—जहाँ (यमपुरी में) मित्र नहीं, स्वामी नहीं, संगी-सखा नहीं, स्त्री, पुत्र, भाई, माता, पिता नहीं (अर्थात् कोई नहीं), उस समय कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार के पापों को भुलाकर क्षमा करनेवाले और घोर दुःखों का नाश करनेवाले कृपालु रामचन्द्रजी के अतिरिक्त और कौन है? जहाँ सब प्रकार के कठिन कष्टों का सोच आ पड़ता है वहाँ मेरे स्वामी रामचन्द्रजी ही रक्षक हैं।

मत्तगयंद सवैया—७ भगन+२ गुरु :

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठि कै जोरत तोरत ठाढ़े।
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े?
आरत के हित, नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े ॥५४॥

टिप्पणी—तापस=तपस्वी। बरदायक=वरदान देनेवाले। देव=ब्रह्मादि देवता। बाढ़े=बढ़ने पर, बलिष्ठ होने पर। बैठि कै जोरत तोरत ठाढ़े=क्षण-भर में प्रीति जोड़ते हैं और उसी क्षण उससे अलग हो जाते हैं। जोड़ने और तोड़ने में कुछ भी देर नहीं लगती। ठोंकि बजाय लखे=खूब परीक्षा लेकर देख लिया कि कौन कैसा है। गजराज=हाथी, जिसको ग्राह ने ग्रस लिया था। केहि सों रद काढ़े=किस-किसके सामने दाँत न काढ़ा (निपोरा)। किस-किस देवता के आगे विनय न की? आरत के हित=विपत्ति पड़ने पर हित करनेवाले। सही=सच्चे। दिन गाढ़े=विपत्ति के पड़ने पर।

भावार्थ—ब्रह्मादि देवता तपस्वी को ही वरदान देते हैं और जब बलिष्ठ होने पर वह उपद्रव करता है तो उससे सभी देवता बैर बढ़ाते हैं। देवता थोड़ी बात में क्रोध कर बैठते हैं और फिर थोड़ी ही बात पर कृपा भी कर देते हैं। मित्रता जोड़ने और तोड़ने में तो उनको कुछ भी देर नहीं लगती। ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर गजेन्द्र ने सब देवताओं की खूब अच्छी तरह परीक्षा ले ली और जान लिया कि कौन कैसा है। उसने किस-किससे विनय न की, यह मैं कहाँ तक कहूँ (अर्थात् उसने सब देवताओं से प्रार्थना की), पर (उसे ज्ञान हो गया कि) दुःखी जन के हितकारी, अनाथों के नाथ और विपत्ति पड़ने पर सच्चे सहायक केवल रामचन्द्रजी ही हैं।

दुर्मिल सवैया :

जप, जोग, बिराग, महामख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै।
निगमागम ज्ञान, पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ॥५५॥

टिप्पणी—बिराग=सांसारिक विषयों से प्रेम न करना। महामख-साधन=बड़े-बड़े अश्वमेध, राजसूय यज्ञों का अनुष्ठान। दम=इन्द्रियों का दमन करना। निगम=वेद। आगम=शास्त्र। तपसानल=तपस्या-रूपी अग्नि में अथवा तपस्या की अग्नि में। जुग-पुंज=अनेक युगों तक। पन रोपि कहै=दृढ़तापूर्वक कहते हैं।

भावार्थ—चाहे कोई जप, योग, विराग, बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान, दान, दया, इंद्रियदमन आदि करोड़ों उपाय करे, अथवा मुनि, सिद्ध, इंद्र, गणेश, शिवजी सदृश देवताओं की जन्म-जन्मान्तर सेवा कर-करके मरे, अथवा वेद-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे, अथवा पुराण पढ़े अथवा अनेक युगों तक तपस्या की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दे पर तुलसीदास हृदय से दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि रामचन्द्रजी के बिना दुःख से कौन छुड़ायेगा? (अर्थात् कोई नहीं।)

मत्तगयंद सवैया :

[illegible]
[illegible]
राम को किंकर सो 'तुलसी' समुझेहि भलो कहिबो न रहा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न, भजे बिन बानर के चरवाहे ॥५६॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—पातक-पीन=पाप से दुबला। कुदारिद=बुरी दरिद्रता, भोजनाच्छादनहीन। मलीन=मैला। कथरी=फटे-पुराने वस्त्र। करवा=मिट्टी का पात्र। अपने बाहै बर=अपनी बाहुओं में बल। रवा=(फा०) उचित। ऐसे को=निकम्मे को। ऐसो=समर्थ। चरवाहे=चरानेवाला।

भावार्थ—पाप से दुबला अर्थात् बहुत पापी, अन्न-वस्त्र न होने से दुखी, वस्त्र के नाम पर फटी गुदड़ी और बतन के नाम पर करवा धारण किये है, ऐसे आदमी की दशा देखकर लोग कहते हैं कि न तो ब्रह्मा ने ही इसके भाग्य में कुछ लिखा, न स्वप्न में भी इसकी भुजाओं में बल है अर्थात् न यह उद्यम ही करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अगर वही जन रामचन्द्रजी का दास हो जाय तो उसकी जो दशा होगी वह समझने योग्य है; उसका वर्णन करना उचित नहीं (वर्णन हो ही नहीं सकता)। बिना बानर के चरवाहे अर्थात् रामचन्द्रजी को भजे, ऐसा निर्बल मनुष्य ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं हो सकता।

मातु, पिता जग जाय तज्यो बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई।
राम-सुभाउ सुन्यो 'तुलसी' प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई ॥५७॥

टिप्पणी—जाय=जन्म देकर, पैदा होते ही। भाल=कपाल, माथा, भाग्य। निरादर-भाजन=निरादर का पात्र। कादर=डरपोक। कूकर टूकन लागि ललाई=कुत्ते के टुकड़े अर्थात् जूठे भोजन के लिए ललचाता फिरता था। बारक=एक बार। पेट खलाई=पेट को खाली दिखाकर (कुछ भोजन माँगना)। खोरि न लाई=दोष नहीं लगाया। अलंकार—प्रहर्षण।

भावार्थ—इस सवैया में तुलसीदास अपने जीवन का संक्षेप वृत्तान्त कहते हैं। पैदा होते ही माता-पिता ने छोड़ दिया। ब्रह्मा ने भी भाग्य में कुछ भलाई न लिखी। इससे मैं नीच, निरादर का पात्र और डरपोक था और जूठे भोजन के लिए लालायित रहता था। जब रामचन्द्रजी का स्वभाव सुना कि वह दीनदयालु हैं, तो मैंने उनसे एक बार अपनी क्षुधाकुलता कही, जिससे रामचन्द्रजी के समान समर्थ स्वामी ने स्वार्थ अर्थात् लौकिक सुख और परमार्थ अर्थात् पारलौकिक सुख को पूरा करने में तनिक भी कोर-कसर न रखी।

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई।
काल बिलोकि कहै 'तुलसी' मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह-सगाई ॥५८॥

टिप्पणी—परिताप=दुःख। हंस कियो=हंस की तरह विवेकी बना दिया। बक तें=बक की तरह पाखंडी से। अधिकाई=आधिक्य। काल बिलोकि=अपना

मरण-काल निकट देखकर। परतीति=(प्रतीति) विश्वास। अघाई=परिपूर्ण, पूरा-पूरा। भरि देह=जीवन-भर। सनेह सगाई निबहै=स्नेह का संबंध बना रहे।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, आपने मेरे पापों का नाश किया, दुःखों से छुड़ाया, मेरे तन को पूज्य किया, हृदय में शांति आई और मुझे पाखंडी से विवेकी बना दिया, मैं बलिहार होता हूँ। मैं आपकी करुणा की अधिकता कहाँ तक कहूँ। मेरे मन में आपकी प्रीति का पूरा विश्वास है, अतः अपना मरणकाल निकट देखकर विनय करता हूँ कि जहाँ-जहाँ जन्म लूँ वहाँ जन्म-भर आपसे मेरे स्नेह का संबंध बना रहे।

लोग कहैं, अरु हौंहुँ कहौं, जन खोटो-खरो रघुनायक ही को।
रावरी राम बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायक ही को।
कै यह हानि सहौं बलि जाउँ कि मोहूँ करो निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करो ज्यौं, हौं ध्यानु धरौं धनुसायक ही को ॥५९॥

टिप्पणी—हौं हूँ=मैं भी। जन=दास, भक्त। खोटो खरो=बुरा-भला। लघुता=छोटापन, अप्रतिष्ठा।

भावार्थ—बुरा-भला जैसा भी हूँ, रामचन्द्रजी का ही भक्त हूँ ऐसा मैं भी कहता हूँ और ऐसा ही लोग भी कहते हैं। हे रामचन्द्रजी, इसमें आपकी बड़ी अप्रतिष्ठा है। आप-सदृश स्वामी का सेवक होने का जो यश मुझको प्राप्त हुआ वह मेरे हृदय को सुख देता है। मैं आपकी बलैया लूँ। या तो आप अपनी इस अप्रतिष्ठा की हानि को सहिए या मुझको अपना सेवक होने योग्य बनाइए। अपने हृदय में यह विचार कर और मेरा भला जानकर, ऐसा कीजिए जिससे मैं आपके धनुषधारी रूप का ही ध्यान करूँ।

आपु हौं आपु को नीकें कै जानत, रावरो राम! भरायो-गढ़ायो।
कीर ज्यौं नाम रटै 'तुलसी' सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो।
सोई है खेद, जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ॥६०॥

टिप्पणी—भरायो गढ़ायो=बनाया हुआ। आपु=स्वयं। नीके कै=अच्छी तरह। कीर=तोता। खर को असवार=मामूली आदमी, जन-साधारण। गयंद चढ़ायो=हाथी पर चढ़ाया, पूज्य बनाया।

भावार्थ—हे राम, मैं स्वयं अपने को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपका ही बनाया हुआ हूँ। तोते की तरह नाम रटता हूँ और सारा संसार यही कहता है कि इसको रामचन्द्रजी ने ही पढ़ाया है। (अर्थात् आप ही की कृपा से मुझमें भक्ति का संचार हुआ है।) पर मैं केवल तोते की तरह राम-राम रटता हूँ (भक्ति से नहीं), इसी बात का मेरे मन में दुःख है। क्योंकि वेद कहते हैं कि जिस आदमी को रामजी बढ़ाते हैं वह कभी नहीं घटता (अर्थात् जिस पर रामजी की कृपा होती

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है उसकी कभी अवनति नहीं होती। मैं तो सदा एक साधारण पुरुष था, आप ही के नाम के प्रताप से पूज्य हुआ हूँ)।

मनहरण कवित्त ;

छार तें सँवारिकै पहार हू ते भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तो जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै।
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज,
मेरी ओर फेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ! विषहू को रूख लाइकै ॥६१॥

टिप्पणी—छार ते सँवारिकै=छार अर्थात् राख की तरह निकम्मे को सँभाल कर। गारो=गौरव, बड़ाई। पंच में=आदमियों में। अधमाई कै कै=नीचता करके। मेरी ओर फेरिकै=मेरी करनी की ओर दृष्टि करके। रिसाइकै=क्रोध करके। ब्याल-बाल=साँप का बच्चा। रूख=(वृक्ष=प्रा० रुक्ख) पेड़।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी! आपने मुझ राख या धूल की तरह निकम्मे की रक्षा करके पहाड़ से भी भारी बना दिया है। आपके तुल्य पवित्र का पक्ष पाकर मैं लोगों में पूज्य हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ, और आपके गुण गा-गाकर नीचता से अपना पेट पालता हूँ। हे महाराज, मेरी करनी की ओर देखकर अप्रसन्न होकर मत बैठिए। जिसको आपने कृपा कर बड़ाई दी उसकी लाज तो रखिए। क्योंकि हे कृपालु नाथ, पालन करके साँप के बच्चे को भी नहीं मारना चाहिए और विष के पेड़ को भी लगाकर काटना नहीं चाहिए।

बेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।
नाहिन बिराग, जोग, जाग भाग, 'तुलसी' के,
दया-दान दूबरो हौं पाप ही की पीनता।
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मो सो कौन?
कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता ॥६२॥

टिप्पणी—साधन-प्रबीनता=साधनों में चतुरता। जाग=यज्ञ। दया-दान-दूबरो=दया और दान से दुर्बल हूँ। पाप ही की पीनता=महापापी। पीनता=मोटाई। कोह=क्रोध। दोष-कोष=दोषों का खजाना। मो सों=मेरे समान। कलिहूँ=कलियुग ने भी। मेरियै=मेरी ही।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि न तो मैं वेद और पुराण का पढ़ना जानता हूँ, न ज्ञान और विज्ञान जानता हूँ, न ध्यान; धारणा, समाधि आदि साधनों में ही निपुण हूँ और न मेरे भाग्य में विराग, योग-यज्ञादि ही हैं। दया और दान में तो मैं दुर्बल हूँ और पाप की ही मोटाई है अर्थात् महापापी हूँ। मेरे समान लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दोषों का खजाना कौन है? यहाँ तक कि कलियुग ने भी मलिनता मुझसे ही सीख ली है। परन्तु हे रामचंद्रजी, मुझे भरोसा केवल यही है कि मैं आपका कहलाता हूँ और आप दीनों के बंधु और दयालु हैं और मैं दीन हूँ। (अर्थात् यदि आप सच्चे दीनबंधु हैं तो मुझ दीन पर दया करते ही बनेगा।)

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं।
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहि आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै ही परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि; छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—कानि=मर्यादा, लाज। गुमान=गर्व। पाँच=पंचदेवता (विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य और देवी)। परि=निश्चित रूप से। गढ़ि गुढ़ि=बना-बनाकर। छोलि छालि=काट-कूटकर। कुंद की सी भाई=खराद पर चढ़ायी हुई। जीय=मन। कुंदा=खराद का औजार।

भावार्थ—हे रामचंद्रजी, मैं आप ही का दास कहलाता हूँ और आप के ही गुण गाता हूँ, और आप ही की लाज से मैं रोटी पा जाता हूँ। मैंने आपही के अतिरिक्त किसी दूसरे को न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा। इस बात को संसार जानता है और मेरे मन में भी बड़ा गर्व है। न तो मुझे पंचदेवताओं का ही विश्वास है और न कर्त्तव्य का ही भरोसा है। आपने मुझे अपना लिया है, इस बात को मैं तभी निश्चित रूप से जानूँगा जब काट-कूटकर खराद पर चढ़ायी हुई बातें बना-बनाकर जैसे मुख से कहता हूँ वैसे ही भाव मन में भी हो जायें। (अर्थात् जब मुझमें अंतःकरण से आपकी भक्ति आ जायगी।)

बचन बिकार, करतबऊ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलिमलि को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि-बेचि खाइ, सेवा,
संगति न जाइ पाछिलें को उपखानु है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ते हू, 'तुलसी' को लोग भलो भलो कहैं, ताको,
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥६४॥

टिप्पणी—खुआर=(फा० ख्वार) खराब; बुरा। कलिमलि=पाप। निधानु=खजाना। सेवा संगति न जाय=ऐसी संगति में नहीं जाता; जहाँ सेवा करनी पड़े। पाछिले को उपखानु हैं=जैसा कि प्राचीन लोगों ने कहा है (कि 'सेवा चोर निवाले हाजिर' अथवा 'काम का न काज का दुश्मन अनाज का' इत्यादि)। उपखान=(उपाख्यान) कहावत। निदानु=निश्चय। स्वान=कुत्ता। अलंकार—विभावना से पुष्ट उपमान-प्रमाण।

भावार्थ—जिसके (तुलसी के) वचन में विकार है (कटुवादी है), जिसके कर्म भी बुरे हैं तथा मन भी सुविचारहीन है और जो पापों का खजाना ही है, जो (तुलसीदास) कहलाता तो है रामदास, पर सच्चा दास न होकर केवल पेट-पालनार्थ राम-राम जपता है और जो (तुलसी) बड़ों के पास नहीं जाता कि सेवा करनी पड़ेगी, जिस (तुलसी) पर प्राचीन कहावत (काम का न काज का दुश्मन अनाज का) खूब चरितार्थ होती है, उस (तुलसीदास) को भी लोग भला आदमी कहते हैं; इसका कोई अन्य हेतु नहीं है, वरन् अच्छी तरह से यही निश्चित होता है और लोक-व्यवहार में विदित है तथा जहाँ-तहाँ देखने में भी आता है कि बड़े के स्नेह-पात्र कुत्ते का भी लोग सम्मान करते हैं।

स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मो[सो दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयौं, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है।
रावरी सपथ, राम नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूँठो झूँठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
'तुलसी' को भलो पै तुम्हारे ही किए कृपालु,
कीजे न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है ॥६५॥

टिप्पणी—स्वारथ को साज=सांसारिक सुख-भोग की सामग्री (स्त्री-पुत्रादि)। परमारथ को समाज=मोक्ष-साधन के उपाय (तीर्थ, जप-तप आदि)। दगा-बाज (उर्दू)=धोखेबाज। जगजाल=इस मायामय संसार में। कै न आयौं=न मैंने पहले किया। करतूति=कर्म। बिरंचि=ब्रह्मा। भूलि=भूलकर भी। भाल=भाग्य, ललाट, माथा। नाम=राम-राम। गति=शरण, पहुँच। इहाँ=आपसे। पानी भरी खाल है=यह शरीर नाशवान् हैं। पै=निश्चय। अलंकार=छेकोक्ति।

भावार्थ—न मेरे पास सांसारिक सुख-भोग की सामग्री है, न कोई मोक्ष प्राप्त करने का उपाय ही जानता हूँ और न इस मायामय संसार में मेरे समान

कोई धोखेबाज है। अच्छे कर्म तो न मैंने पहले किये, न वर्तमान काल में करता हूँ और न भविष्य में कभी करूँगा। भलाई करना तो ब्रह्मा ने भूल से भी मेरे भाग्य में नहीं लिखा। हे राम, मुझे आपकी शपथ है, मेरी तो 'राम' नाम तक ही पहुँच है। मैं सत्य कहता हूँ; क्योंकि जो आपसे झूठ बोलता है, वह तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में झूठा है। (अर्थात् कोई उसका विश्वास न करेगा।) हे कृपालु, तुलसीदास का भला तो निश्चय ही आपके द्वारा हो सकता है, अतः बलि जाऊँ, देर न कीजिए; क्योंकि यह शरीर क्षणभंगुर है, कब नष्ट हो जाय, कुछ ठीक नहीं (अर्थात् कृपा करके शीघ्र ही अपनाइए)।

राग को न साज, न बिराग जोगजाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
'तुलसी' बनी है राम रावरे बनाए, ना तो,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥६६॥

टिप्पणी—राग को न साज=सांसारिक सुख-भोग की सामग्री। राग=(सांसारिक विषयों पर) प्रेम या अनुराग। काया=शरीर। कुठाट को ठाटिबो=(सांसारिक सुख-भोग के हेतु) अनुचित उपाय करना। मनोराज=मनोरथ, वासनाएं। अकाज=(अकार्य) हानि। चारु चीर=सुन्दर वस्त्र। पै=परन्तु। लहै=पाता है [लाभ से लभना (लहना) किया]। टूक=टुकड़ा। टाट=सन का मोटा और भद्दा कपड़ा। करतार=(कर्तार) ईश्वर, रामचन्द्रजी। कूर=निकम्मा। नाम-प्रेम-पारस=राम-नाम का प्रेम ही जो पारसवत् है। पारस एक प्रकार का पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। हौं=मैं। बराट=कौड़ी। बनी है=सुधरी है। ना तो=नहीं तो। धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को=(कहावत) न इधर का न उधर का, अर्थात् रामचन्द्रजी की कृपा न होगी तो लोक-परलोक एक भी न बन पड़ेगा। अलंकार=छेकोक्ति।

भावार्थ—न मेरे पास सांसारिक सुख-भोग की ही सामग्री है और न मन में विराग, न कभी योग-यज्ञादि ही किये। यह शरीर सांसारिक सुख के लिए अनुचित उपाय करना भी नहीं छोड़ता। अनेक वासनाएँ करते-करते आज तक हानि ही होती रही; क्योंकि मैं चाहता तो हूँ सुन्दर शाल दुशाले, पर पाता नहीं हूँ टाट का टुकड़ा भी। कृपालु रामचन्द्रजी, मुझ निकम्मे पर भी आप बड़े कृपालु हुए हैं जो मुझ कौड़ी के लालची ने राम-नाम का प्रेम-रूपी पारस पाया (अर्थात् तुच्छ विषय-भोग के लालची को रामभक्ति मिल गई)। तुलसीदास कहते हैं कि हे राम! आप ही की कृपा से मेरी बनेगी, नहीं तो मैं लोक और परलोक दोनों में से एक भी नहीं सुधार सकता।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज, भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
'तुलसी' की बाजी राखी राम के नाम, न तु,
भेंट पितरन को न मूड़हू में बारु है ॥६६॥

टिप्पणी—मन=मनोरथ। रुचि=इच्छा। निपट=अत्यन्त, बिलकुल। लोकरीति लायक न=लोगों से व्यवहार करने के लायक भी नहीं हूँ। लंगर=ढीठ, नटखट। लबार=झूठा। स्वारथ अगम=स्वार्थ अर्थात् भोजन-वस्त्र भी इच्छा-पूर्वक मिलना कठिन है। परमारथ=परमार्थ, परलोक, मोक्ष। परमारथ की कहा चली=मोक्ष प्राप्त करने की बात क्या कहूँ। जवारु=(फा० जवाल) भार, जंजाल, झंझट। चाकरी=सेवकाई, नौकरी। आकरी=खान खोदने का काम। बनिज=वाणिज्य। किसब (अ०)=कारीगरी। कबारु=कबाड़, व्यवसाय, रोजगार। बाजी=प्रतिष्ठा, प्रतीक्षा। भेंट पितरन को न मूड़ हूँ में बारु हैं=(कहावत) पास में कुछ भी नहीं है (रामचन्द्रजी के शरणागत होने को मुझमें कोई गुण नहीं)। अलंकार—छेकोक्ति।

भावार्थ—मेरी अभिलाषाएँ बड़ी-बड़ी हैं, रुचि भी ऊँची है, पर भाग्य अत्यन्त हीन है। लोक-व्यवहार के योग्य भी नहीं हूँ; क्योंकि ढीठ और झूठा हूँ। यहाँ तो भोजन-वस्त्र मिलना भी कठिन है, मोक्ष प्राप्त करने की कौन बात कहूँ? मुझे भर-पेट भोजन मिलना कठिन हो रहा है। (दूसरों पर निर्भर रहने के कारण) संसार के लोगों के लिए भार हो रहा हूँ। न मैं कोई नौकरी कर सकता हूँ, न खान-खुदाई कर सकता हूँ, न खेती ही कर सकता हूँ, न वाणिज्य ही कर सकता हूँ, न भीख माँग सकता हूँ, और मैं निकम्मा न कुछ कारीगरी या व्यवसाय ही जानता हूँ। अतः तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी प्रतिष्ठा तो रामनाम के प्रताप से ही रह सकती है, नहीं तो मेरे पास (और तो और) पितरों को भेंट देने के लिए सिर में बाल भी नहीं हैं, अर्थात् मेरे पास राम तक पहुँचने के लिए रामनाम-प्रेम के अतिरिक्त और कोई भी गुण नहीं।

अपत उतार, अपकार को अगार, जग,
जाकी छाँह छुएँ सहमत ब्याध बाधको।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को पयोधि अपराध को।
'तुलसी' से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साध को।
रामनाम ललित-ललाम कियो लाखनि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ॥६७॥

टिप्पणी—अपत=अप्रतिष्ठित। उतार=सबसे उतरा हुआ, अधम। सहमत=डरते हैं। बाधको=बाधक भी, विघ्नकर्ता भी। पातक-पुहुमि=पाप-रूपी पृथ्वी को। पुहुमि=भूमि। सहसानन=शेषनाग। बाम=कुटिल भी। दाहिनो=अनुकूल हुए। सिहात=ईर्ष्या करते हैं। ललित=सुन्दर। ललाम=भूषण। लाखनि को=लाखों के मोल का। कौड़ी आध को=जो आधी कौड़ी मोल का था।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं अति अधम और अपकार का घर हूँ, पापी इतना कि संसार में जिसकी छाया को स्पर्श करते हुए विघ्नकर्ता जीवहिंसक व्याध भी डरते हैं। मैं पापरूपी पृथ्वी को पालने के लिए शेषनाग के समान हूँ (अर्थात् जैसे शेषनाग ने पृथ्वी के बोझ को धारण कर रखा है, ऐसे ही मैंने भी पाप का बोझ सिर पर धारण कर रखा है)। मैं कपट का वन हूँ अर्थात् अनेक कपट करता हूँ और अपराधों का समुद्र हूँ अर्थात् महा अपराधी हूँ; ऐसे कुटिल तुलसीदास पर दयालु रामचन्द्र जी अनुकूल हुए, ऐसा सुनकर सब सिद्ध, साधु और साधक भी ईर्ष्या करते हैं। मैं बड़ा कपटी, कायर, कुपुत्र, आधी कौड़ी के मोल का अर्थात् निकम्मा था, उसको रामनाम ने लाखों के मोल का सुन्दर भूषण कर दिया अर्थात् सबसे पूज्य बना दिया।

सब अंगहीन, सब साधन बिहीन, मन
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन,
गुन, ग्यान हीन, हीन भाग हू बिभूति हौं।
'तुलसी' गरीब की गई बहोरि रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं ॥६८॥

टिप्पणी—सब अंगहीन=योग के आठों अंगों से रहित। हीन कुल-करतूति हौं=अपने कुल के योग्य कर्म भी नहीं करता हूँ। भाव=प्रेम। बिभूति=ऐश्वर्य। गई बहोरी=गयी हुई वस्तु को लौटा दिया, बिगड़ी हुई बात सुधार दी। जीह=जिह्वा। बैठो धूति हौं=छल लिया है। प्रतीति=विश्वास। प्रसाद=प्रसन्नता से। पायँ पसारि सूतिहौं=पाँव फैलाकर सोऊँगा अर्थात् निःशंक होकर सोऊँगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने योग का एक भी अंग नहीं किया और मुक्ति-साधन के जो उपाय हैं वे भी मैंने नहीं किये। मन और वचन से पापी हूँ, अपने कुल के करने योग्य कर्त्तव्य भी मैंने नहीं किये, बुद्धि और बल भी मुझमें नहीं है, प्रेम और भक्ति से भी वंचित हूँ और भाग्य और धन-संपत्ति से भी हीन हूँ। जो राम का नाम गरीबों की गयी हुई सम्पत्ति को फिर लौटा देता है उसी ने मेरी भी बिगड़ी बात बना दी है, उसी नाम को अपनी जिह्वा से जपकर मैंने रामचन्द्रजी को भी छल लिया है। उसी रामनाम से मेरी प्रीति है, उसी रामनाम की

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मुझे भरोसा है, और उसी रामनाम के प्रसाद से मैं निश्चित होकर सोऊँगा (मेरा ऐसा ही विश्वास है)।

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं, 'हौं गुलाम राम को'।
नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु-नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै सो भलाई, न तो,
'तुलसी' जो खुलैगो खजानो खोटे दाम को ॥७०॥

टिप्पणी—मेरे जाने=मेरी समझ में। बेसाह्यो=खरीदा। लोह=लोभ। कोह=क्रोध। तिनहीं=लोभादिकों की ही। भाव=प्रेम। नीको=अधिक। बचन बनाई कहौं=मन से सत्य नहीं कहता हूँ, वरन् बनाकर अर्थात् झूठ ही कहता हूँ। गुलाम (अ०)=दास। पै=परन्तु। खुलैगो खजानो खोटे दाम को=(मुहावरा) खोटाई प्रकट हो जायगी, भंडाफोड़ हो जायगा।

भावार्थ—मेरी समझ में, जब से मैंने इस संसार में जन्म पाया है तब से, लोभ, क्रोध और काम ने मुझे दाम देकर मोल ले लिया है। अतएव मेरा मन उन्हीं की सेवा में लगता है और उन्हीं से मुझे अतिशय प्रेम है। परन्तु झूठ बोलकर प्रकट करता हूँ कि मैं राम का सेवक हूँ। मुझे अयोग्य जानकर स्वामी (रामचन्द्रजी) ने भी नहीं अपनाया; झूठ ही यह प्रसिद्धि हो गयी कि मैं राम का सेवक हूँ, परन्तु रामचन्द्रजी के नाम का प्रताप रामचन्द्रजी से भी प्रबल है। अतः हे नाथ, अपनी स्वाभाविक भलाई से आप मेरा भला करें तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे (तुलसीदास के) पापों का भंडाफोड़ हो जायगा। (तब आप ही की बदनामी होगी कि रामदास बुरे होते हैं।)

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेद बिधि किमि है।
'तुलसी' सो पोच न भयो है नहिं ह्वै है कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै।
मेरे तो न डर रघुबीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं, तुम्हैं, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिं तुला तौलिए तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै ॥७१॥

टिप्पणी—जोग=अष्टांग योग। बिराग=संसार से उदासीनता। जप=विधिपूर्वक मंत्रों को जपना। जाग=अश्वमेध यज्ञ। तप=तपस्या करना। त्याग=दान। व्रत=चांद्रायणादि। वेदविधि=वेद का विधान। किमि=किस प्रकार, कैसा। सब=सब लोग। याके=इस (तुलसीदास) के। अघ=पाप। छमिहै=क्षमा करेंगे। खल=दुष्ट। अनखैहैं=अप्रसन्न होंगे, बिगड़ेंगे। न गमिहै=गम न करेंगे, गम न खाएँगे (वे भी आपको लेथारेंगे कि यह क्या बात है)। सुकृती=पुण्य कर्म करनेवाला। तुला=तराजू। प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा। भार=बोझ, पल्ला। मेरी ओर नमिहै=मेरी तरफ झुकेगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं योग, वैराग्य जप, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, तीर्थ और धर्म कुछ नहीं जानता और वेद का विधान कैसा है, यह भी नहीं जानता। मेरे समान नीच न कभी हुआ है, न होगा। इसलिए सब लोग सोचते हैं कि रामचन्द्रजी कैसे इसके अपराधों को क्षमा करेंगे। हे रामचन्द्रजी, मुझे तो डर नहीं है और न सच-सच कहता हूँ। सुनिए, अगर आप मुझे क्षमा करेंगे तो दुष्ट लोग तो आपसे अप्रसन्न हो जायँगे और सज्जन लोग भी गम न खायेंगे। अगर आप मुझे किसी अतिशय पुण्यात्मा के साथ तराजू में तौलें तो आपके नाम से पलड़ा मेरी ही ओर झुकेगा अर्थात् मैं ही भारी होऊँगा।

जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागिबस,
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किये पाप सतिभाय,
राम को कहाय दास, दगाबाज पुनी सो।
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
'तुलसी' सो जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देख सुनी सो ॥७२॥

टिप्पणी—पेटागिबस=जठराग्नि के वश, भूख के कारण। टूक=टुकड़े। बिदित=प्रकट हैं। दुनी=दुनिया, संसार। मानस=मन। काय=शरीर। सतिभाय=सद्भाव। दगाबाज=(फा०) धोखेबाज। पुनी=पुनः, फिर। पाउ=पाया। महामुनी=वाल्मीकि मुनि। अनुरागत=प्रेम करता है (अनुराग से 'अनुरागना' क्रिया ली)। एतो=इतना। अचरज=आश्चर्य।

भावार्थ—पेट भरने के लिए मैंने अपनी जाति, अपने से ऊँची जाति और अपने से नीची जाति अर्थात् सबसे रोटी के टुकड़े माँगकर खाये, यह बात संसार जानता है। मन, वचन और शरीर से अनेक पाप किये, राम का भक्त कहलाया और फिर भी वैसा ही धोखेबाज बना रहा, पर मुझ-जैसे कुटिल ने भी रामनाम के प्रभाव से महिमा और प्रताप पाया और संसार में महामुनि वाल्मीकि के समान मान्य हो गया। हे मूर्ख, इतना बड़ा भारी आश्चर्य देख-सुनकर भी तू बड़ा ही अभागा है, जो रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम नहीं करता।

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हों चारि फल चारि ही चनक को।
'तुलसी' सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥७३॥

टिप्पणी—जायो कुल मंगन=दरिद्रों के कुल में जन्म लिया। बधावनो बजायो=आनंदसूचक बाजे बजाये। परिताप=संताप। पाप=कष्ट। बारे तें=बचपन से। ललात=ललचाता था। बिललात=बिललाते हुए। जानत हों=जानता था। चारि फल=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चनक=चने। सिहात=ईर्ष्या करता है। बिधिहू गनक को=ज्योतिषी ब्रह्मा भी। सयानो=(सज्ञान) चतुर। बावरो=उन्मत्त, पागल। किधौं=अथवा। जो तृन तें तनक को गिरी तें गरु करत=जो तृण के समान हलके को पहाड़ से भी भारी करता है (मेरे समान पतित को भी अपना सेवक बनाकर इतना पूज्य बना देता है)।

भावार्थ—मैं भिक्षुकों (ब्राह्मणों) के कुल में उत्पन्न हुआ, यह सुनकर बधावा बजवाया गया। परन्तु मैं माता-पिता के लिए संताप और दुःख का देनेवाला हुआ। मैं दरिद्र, बचपन से भूख से व्याकुल होकर लालच के मारे घर-घर भटकता-फिरता था, और चार दाने चने पाकर ही इतना प्रसन्न हो जाता था कि उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फलों के बराबर जानता था। वही मैं (तुलसीदास) अब समर्थ स्वामी रामचन्द्रजी का सेवक हूँ, यह सुनकर ज्योतिषी ब्रह्मा तक (जिसका लेख झूठा नहीं हो सकता) ईर्ष्या करता है और सोचता है (कि यह अभागा राम-सेवक कैसे हुआ)। हे रामचन्द्रजी, आपका नाम न जाने समझदार है अथवा उन्मत्त, जो तृण समान हलके व्यक्ति को भी पहाड़ समान गरू बना देता है अर्थात् पतितों को पवित्र और पूज्य बना देता है।

बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
राम-नाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासीहू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है।
छाँछी को ललात जे, ते राम-नाम के प्रसाद,
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम, राम! रावरो तो चाम की चलाई है॥७४॥

टिप्पणी—रीझे=मन लगाने से। सोई=वही राम का नाम। साधना=मोक्ष प्राप्त करने के अनेक उपायों को। चितई न चित लाई है=न उसकी ओर देखा, न ध्यान दिया। छाँछी=मट्ठा। ललात=ललचाते थे। खुनसात=नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सौंधा=पका हुआ। रामराज सुनियत राजनीति की अवधि=सुना जाता है कि राम के राज्य में सबसे राजनीति के अनुसार अर्थात् योग्यता के अनुसार (बड़े से बड़ी, छोटे से छोटी) व्यवस्था की जाती थी। अवधि=सीमा। चाम की चलाई है=चमड़े का सिक्का चला दिया है, पतितों को भी उबारकर पूज्य बना दिया है। अलंकार—लोकोक्ति।

भावार्थ—वेद-पुराणों में भी कहा गया है और लोक में भी देखा जाता है कि रामनाम में ही मन लगाने से सब प्रकार की भलाई है। काशी में मरते समय भी महादेवजी (मोक्ष-प्राप्ति के लिए) रामनाम जपने का ही उपदेश देते हैं, न और साधनों की ओर देखते हैं, न उन पर कुछ ध्यान ही देते हैं। (यह तो वेद-पुराणों की बात हुई) लोक में भी देखा जाता है कि जो मट्ठा पीने के लिए लालायित रहते थे वे ही अब रामनाम के प्रसाद से (इतने समृद्धिशाली हो गये हैं कि) पके दूध की मलाई खाने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। हे रामचंद्रजी! सुना जाता है कि आपके राज्य में तो राजनीति की पराकाष्ठा थी अर्थात् सबसे न्यायानुकूल व्यवहार किया जाता था, पर आपके नाम ने तो चमड़े का सिक्का चला दिया है, अर्थात् पतितों को भी मान्य बना दिया है।

सोच-संकटनि सोच-संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियो तरति बिगरीयो सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाय बिधि बाम को।
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग
जागत, आलसि 'तुलसी' हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत राम-नाम को॥७५॥

टिप्पणी—सोच-संकटनि सोच-संकट परत=शोक-संकटों को भी शोक-संकट पड़ जाता है, अर्थात् शोक-संकट मिट जाता है। जर जरत=ज्वर भी जल जाता है, अर्थात् ज्वर भी दूर हो जाता है। ललित=सुन्दर। ललाम=भूषण, श्रेष्ठ। बूड़ियो=डूबता हुआ भी। तरति=तर जाता है। बिधि बाम को सुभाय दाहिनो होत देखियत=प्रतिकूल विधाता का स्वभाव भी अनुकूल होता हुआ जान पड़ता है, दुर्भाग्य भी सौभाग्य हो जाता है। अनुरागत बिराग=वैराग्य भी प्रेम करने लगता है, अर्थात् उदासीन भी प्रेम करने लगता है। निकाम=निकम्मा, व्यर्थ। धारि=झुण्ड (लुटेरों का)। फिरि कै=लौटकर। गोहारि=रक्षक। मीचु=(सं० मृत्यु; प्रा०)। अलंकार—व्याघात से पुष्ट हेतु।

भावार्थ—रामनाम जपते ही शोक और दुःख मिट जाते हैं। उस सुन्दर श्रेष्ठ नाम के प्रभाव से ज्वर भी दूर हो जाता है, डूबता हुआ भी पार हो जाता है, बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है, प्रतिकूल विधाता भी अनुकूल हो जाता है, अभाग्य भाग जाता है, उदासीन भी प्रेम करने लगता है। तुलसीदास के समान आलसी और निकम्मे के भी भाग्य उदय हो जाते हैं। लूटने को आयी हुई लुटेरों

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

की सेना भी उलटे रक्षक और हितकारी हो जाती है और आयी हुई मौत भी मिट जाती है। (भाव यह कि रामनाम के जपने मात्र से ही सब अमंगल भी मंगल हो जाते हैं, यहाँ तक कि मौत भी मिट जाती है।)

आंधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में।
गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परी गो काल-फँग में।
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोक-पति-लोक गयो,
नाम के प्रताप, बात विदित है जग में।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन,
ताको महिमा क्यों कही है जाति अगमें ॥७६॥

टिप्पणी—आंधरो=अंधा। जड़=मूर्ख। जाजरो जरा=वृद्धावस्था के कारण जर्जर अर्थात् निर्बल। जवन=यवन। सावक=बच्चा। ढका ढकेल्यो=धक्का देकर गिरा दिया। हिये=हृदय में। हहरि=डर के मारे। हराम=सूअर (अरबी भाषा)। 'हराम हो हराम हन्यो'=हराम, मुझे हराम (सूअर) ने मार दिया। काल-फँग में परी गो=काल के पंजे में फँस गया, मर गया। बिसोक=विगत-शोक, शोक से रहित। त्रिलोक पति-लोक=विष्णु-लोक। अगमें=(महिमा का विशेषण है) न कही जा सकने योग्य।

भावार्थ—किसी समय एक अंधे, नीच, मूर्ख और वृद्धावस्था के कारण निर्बल यवन (म्लेच्छ) को एक सूअर के बच्चे ने धक्का देकर ढकेल दिया। वह मार्ग में गिरा और हृदय में भयभीत होकर 'मुझे हराम (सूअर) ने मार डाला', इस प्रकार हाय-हाय करते हुए मर गया। तुलसीदास कहते हैं कि वह रामनाम के प्रताप से शोक-रहित हो वैकुंठ लोक को चला गया, यह बात संसार में प्रकट है। अतः इस रामनाम की, जिसे आदमी स्नेहपूर्वक जपता है, अकथनीय महिमा कैसे कही जा सकती है? (भाव यह कि अज्ञानावस्था में राम-नाम लेने से तो मोक्ष हो गया: प्रेम से रामनाम जपने से तो अपूर्व ही फल मिलेगा।)

जाप की न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको।
भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरी हू सों,
बल अपनो न, हितू जननी जनक को।
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव-सेवा न सहाय, गर्ब धाम को न धन को।
राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाय कछू 'तुलसी' के मन को ॥७७॥

टिप्पणी—जाप की न=मैंने जप नहीं किया। न तप खप कियो=न खूब अच्छी तरह से तप ही किया। खप=खपकर, पचकर, कष्ट सहकर। तमाइ=(तमअ—अरबी) लालच। न तमाइ जोग=योग द्वारा कुछ प्राप्त होने का भी मुझे लालच नहीं। बिराग=सांसारिक सुखों से उदासीनता। त्याग=दान। तनको=थोड़ा भी। खरो सो=अच्छी तरह। हितू=हितकारी। धाम=घर। नीको=अच्छा।

भावार्थ—न मैंने मंत्र का जप ही किया, न कष्ट सहकर तपस्या ही मुझसे हो सकी, न मुझे योग द्वारा कुछ सिद्धि प्राप्त करने का ही लालच है, न मैंने कोई यज्ञ ही किया, न कुछ वैराग्य, न दान या तीर्थ ही किया, न मुझे अपने भाई का कुछ भरोसा है और न मेरा किसी वैरी से ही अच्छी तरह वैर है। अपने शरीर में बल भी नहीं है और हितकारी माता-पिता का भी बल नहीं है, न मुझे इस लोक का डर है, न परलोक की ही चिंता है, न आज तक मैंने किसी देवता की सेवा ही की, जिससे मैं उस देवता से कुछ सहायता की आशा रखूँ, न मेरा कोई घर, न मेरे पास संपत्ति ही है, जिसका मैं गर्व करूँ (भाव यह कि मैंने न कुछ पुण्य कर्म ही किये, न मेरे पास कुछ है)। तुलसीदास कहते हैं कि मेरे मन का स्वभाव तो कुछ ऐसा ही विचित्र है कि रामचन्द्रजी के ही नाम से जो कुछ भी हो, वही मुझे अच्छा लगता है।

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तारिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोए सपने।
'तुलसी' है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय, कीजिए जु अपने।
जानकी-रमन! मेरे, रावरे बदन फेरे,
ठाऊँ न, समाउँ कहाँ सकल निरपने ॥७८॥

टिप्पणी—ईस=महादेव। दिनेस=सूर्य। धनेस=कुबेर। सुरेस=इन्द्र। गिरापति=सरस्वती के पति, ब्रह्मा। भव=संसार। बागत=चलते-फिरते। सौं=शपथ। रावरे बदन फेरे=आपके मुँह फेरने पर, आपके विमुख होने से, आपके रूठने से। ठाउँ=स्थान। समाउँ=रहूँ। निरपने=(निर+अपने) अपने नहीं, अर्थात् पराये, बेगाने।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्र और अन्य देवता, पार्वती और ब्रह्माजी किसी का जप-पूजन नहीं करता। बैठे में, उठे में, चलते में, जागते में, सोते में, सपने में हर समय संसार से तारने के लिए आप ही के नाम का भरोसा है। मैं बावला आप ही का दास हूँ, यह मैं आपकी ही शपथ लेकर कहता हूँ। अतः अपने मन में यह जानकर कि मैं आपका ही हूँ, मुझे अपना कीजिए। हे सीतापति रामचन्द्रजी; आपके नाराज होवे से मेरे लिए कहीं भी स्थान नहीं, कहाँ रहूँगा? सब मेरे लिए बेगाने हो गये हैं। (किसी से भी मेरा सम्बन्ध नहीं।)

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु ! तेरे,
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए।
'तुलसी' तिहारो मन बचन करम, तेहि,
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज ! राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥७९॥

टिप्पणी—जाहिर=प्रकट। जहान=संसार। जमानो=समय। जमानो एक भाँति भयो=समय बहुत खराब आ गया है। बिबुध-धेनु=देवताओं की गाय, कामधेनु। रासभी=गदही। बेसाहिए=मोल लीजिए। त्रिताप=दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के कष्ट। दाहिए=जलाते हैं। तेहि नाते=उस सम्बन्ध से। नेह-नेम=स्नेह का नियम। रंक=दरिद्र, दीन। उमरि=(अ०) आयु। दराज=(फा०) दीर्घ।

भावार्थ—संसार में प्रकट है कि समय ऐसा बुरा आ गया है कि लोग कामधेनु को बेचकर गदही खरीदने लगे हैं। हे कृपालु, ऐसे भयंकर कलियुग में भी आपके नाम के प्रताप से मैं दैहिक, दैविक, भौतिक—तीनों तापों से नहीं जलता। तुलसीदास कहते हैं कि मैं मन-वचन-कर्म से आपका ही भक्त हूँ, उसी सम्बन्ध से अपनी ओर से मेरे स्नेह के नियम का निर्वाह कर दीजिएगा। हे दीनदयालु, राजाओं के राजा महाराज रामचन्द्रजी ! आपकी आयु बड़ी हो, मैं ऐसी ही कामना रखता हूँ।

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है।
कलि को कुचालि देखि दिन-दिन दूनी देव !
पाहरूई चोर हेरि, हिय हहरानु है।
'तुलसी' की बलि, बार-बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है ॥८०॥

टिप्पणी—स्वारथ सयानप=स्वार्थ-साधन करने अर्थात् अपना काम सिद्ध करने में ही अपनी चतुराई समझता हूँ। प्रपंच परमारथ=मोक्ष-प्राप्ति के उपायों में छल करता हूँ। जहानु=दुनिया। बाप=हे पिता ! आगे को=भविष्य में मेरा निर्वाह करने को। सुजानु=अच्छी तरह जानकर। पाहरूई=पहरुआ ही। हेरि=देखकर। हिय हहरानु है=हृदय डर गया है। कीबी=कीजिए।

भावार्थ—तुलसीदास कहते कि यह सारा संसार जानता है कि मैं स्वार्थ-साधन करने में ही अपनी चतुरता समझता हूँ; और परमार्थ के कार्यों में छल करता हूँ। हे पिता ! अपने नाम के प्रताप से आपने आज तक मेरा अच्छी तरह निर्वाह किया है। भविष्य में भी इसी प्रकार मेरा निर्वाह करने को हे स्वामी, आप समर्थ

और सुजान हैं। हे देव, कलि की कुचाल दिन-प्रतिदिन दूनी देख और पहरुवे को ही चोर देखकर मेरा हृदय डर के मारे भयभीत है। हे कृपालु, मैं आपकी बलि जाऊँ। यद्यपि आप अपने भक्तों की रक्षा करने को सदा सावधान रहते हैं तथापि मैं प्रार्थना करता हूँ कि बार-बार मेरी सँभाल कीजिएगा, जिससे मेरे मन में विकार न आवे।

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुःख,
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है।
आपने तो एक अवलंब, अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
'तुलसी' की साहसी सराहिए कृपालु राम !
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है ॥८१॥

टिप्पणी—दारिद=दरिद्रता। दुकाल=अकाल, अन्न के अभाव का समय। दुरित=पाप। दुराज=दुष्ट राज्य, राज्य-विप्लव। सुकृत=पुण्य। सकोच है=घटते जा रहे हैं; कम हो रहे हैं। पैंत=दाँव। पावत=पा जाते हैं, विजय पाते हैं। पोचु=बुरा। अवलंब=सहारा। अंब=माता। डिंभ=बच्चा, बच्चे को जैसे माता का सहारा रहता है। संकट-बिमोचु=संकटों से छुड़ानेवाले। परिनाम को निसोचु है=परिणाम के बारे में निश्चिन्त है।

भावार्थ—दिनों-दिन दरिद्रता, अकाल, दुःख, पाप और राज्य-विप्लव बढ़ते जा रहे हैं, जिससे सुख और पुण्य घटते जा रहे हैं। समय ऐसा विपरीत हो गया है कि बड़े-से-बड़े पापी को इच्छित वस्तु मिल जाती है, और भले का बुरा होता है। तुलसीदास कहते हैं कि मेरा एकमात्र सहारा समर्थ, और सब संकटों से छुड़ानेवाले सीतापति रामचन्द्रजी का ही है; जैसे बच्चे का सहारा केवल माता ही है। हे कृपालु रामचन्द्रजी, मेरी हिम्मत की प्रशंसा तो कीजिए; क्योंकि मुझे आपके नाम के भरोसे परिणाम की कुछ भी चिंता नहीं है।

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत मुँह आवै सो कहत, कछु
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है।
'तुलसी' अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥८२॥

टिप्पणी—मोह-मद-मात्यो=अज्ञानता-रूपी मद अर्थात् शराब से उन्मत्त हूँ। रात्यो=आसक्त, अनुरक्त। कुमति-कुनारि=कुबुद्धि-रूपी वेश्या। बिसारि—

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भुलाकर। थाँकरो=गहरा। अचेतु=बेसुध। भावै=जो अच्छा लगता है। सरकस=सरकश, प्रबल। हेतु=कारण। अधमाई=नीचता। कपट-निकेतु=कपट का घर। जैबे को=नष्ट होने को। अनेक टेक=अनेक आश्रय हैं, अनेक कारण हैं। टेक=आसरा। ह्वैबे को=भलाई होने के लिए। पेट-प्रिय-पूत-हित=पेटरूपी प्रिय पुत्र के लिए। अलंकार—रूपक से पुष्ट व्यतिरेक।

भावार्थ—(तुलसीदास अजामिल से अपना रूपक बाँधते हैं) अजामिल शराब में मस्त रहता था, मैं (तुलसीदास) अज्ञानता में मस्त रहता हूँ। अजामिल सदा वेश्याओं में आसक्त रहता था, मैं कुबुद्धि में रत रहता हूँ। उसने वेदमार्ग भुला दिये थे, मैंने लोक-लाज छोड़ दी है। उसकी तरह मैं भी बहुत बेसुध रहता हूँ। उसको जो अच्छा लगता था वही करता था और मैं जो मुख से निकलता है कह देता हूँ। वह भी किसी बात को नहीं सह सकता था, मैं भी राम का भरोसा होने के प्रबल कारण से किसी को नहीं मानता हूँ। मेरी नीचता तो अजामिल से भी अधिक है; उसपर भी कपट का घर कलियुग भी मेरा सहायक है। नष्ट होवे के लिए तो अनेक कारण हैं, पर भलाई होने के लिए, भवसागर पार होने के लिए केवल एक ही कारण है। वह यह कि उसने अपने प्यारे पुत्र का नाम लिया था, मैं अपने पेट-रूपी पुत्र को पालने के लिए राम का नाम लेता हूँ।

जागिये न सोइए, बिगोइए जनम जाय,
दुःख रोग रोइए कलेस कोह काम को।
राज, रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये,
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को।
'तुलसी' कबंध कैसो धाइबो बिचारु अंध!
धुंध देखियत जग, सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥८३॥

टिप्पणी—बिगोइए=बिगाड़िए। जाब=व्यर्थ ही। रागी=सांसारिक सुखों के अनुरागी। भूरि भागी=बड़े भाग्यवान्। कबंध=रुंड। अंध=मूर्ख। धुंध=धुंधला, अस्पष्ट।

भावार्थ—इस संसार में न तो हम जागते ही हैं न सोते ही हैं (विलक्षण भ्रम में पड़े हैं)। व्यर्थ ही जीवन नष्ट करते हैं, दुःख और रोग से रोते हैं, क्रोध और काम का क्लेश सहते हैं। राजा, रंक, रागी, विरागी, भाग्यवान् और अभागी सब जीव जले जाते हैं; इस कुटिल कलिकाल का यही प्रभाव है। तुलसीदास कहते हैं कि हे मूर्ख! यह (अपना चलना-फिरना, काम करना इत्यादि) कबंध का-सा दौड़ना समझो। संसारी लोगों में परिणाम की चिंता बहुत धुंधली-सी दिखाई पड़ती है (बहुत कम लोग परिणाम की चिंता करते हैं)। अगर तुम सोना चाहते हो तो रामप्रेम की सुखद समाधि में सोओ—यही तो ठीक सोना है, और जागना चाहते हो तो जीभ से अच्छी तरह से रामनाम जपो—यही ठीक जागना है।

बरन-धरम गयो, आश्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग, बेष, जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय 'तुलसी' है जाहि,
रामनाम जो भरोसो, ताहू को भरोसो है ॥८४॥

टिप्पणी—त्रासन चकित=अधर्म के भय से भयभीत होकर। परावनो सो परो है=भगदड़ पड़ गयी है, भाग गये हैं। करम उपासना कुबासना बिनास्यो=कुवासना ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञान बचन=ज्ञानियों के-से वचन बोलकर। बिराग बेष=विरागियों का-सा वेश बनाकर। हरो सो है=ठग-सा लिया है। भगति भगायो लोक=लोगों को हरि-भक्ति से भगा दिया है। निगम=वेद। नियोग=आज्ञा। केलि ही=खेल ही में। छरो सो है=छल लिया है।

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों ने अपना अपना धर्म छोड़ दिया है; ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करना भी लोगों ने छोड़ दिया है। अधर्म के भय से भयभीत होकर वर्णाश्रम धर्मों में भगदड़ पड़ गयी है। कुवासनाओं ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञानियों के-से वचन बोलकर और विरागियों का-सा वेश धारण कर संसार को ठग-सा लिया है। गोरख ने लोगों में योग क्या फैलाया, उसको राम-भक्ति से विमुख कर दिया तथा वेदों की आज्ञाओं को तो खेल ही में छल लिया है अर्थात् वेद की आज्ञा का कपट से निर्वाह कर देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिनको कर्म-मन-वचन से स्वभावतः रामनाम का भरोसा है उसी का सच्चा भरोसा है। (कलिकाल में मोक्ष के अन्य साधन सफल नहीं हो सकते हैं।)

मत्तगयंद सवैया :

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है।
बर्न-बिभाग न आश्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है ॥८५॥

टिप्पणी—बिहाइ=छोड़कर। सुपंथ=सुमार्ग। राजसमाज=मंत्री आदि। दुनी=दुनिया को। दली है=पीड़ित कर दिया है।

भावार्थ—कलियुग के कारण लोगों ने वेदों और पुराणों में कहे हुए सुन्दर मार्ग को छोड़ दिया है; और कुमार्ग में चलकर करोड़ों कुचालें की हैं। समय भी विपरीत हो गया है। राजा अगर कृपालु भी हैं तो उनके दीवान, मंत्री आदि कर्मचारी बड़े कपटी हैं। वर्ण-विभाग और आश्रम-धर्म सब मिट गये हैं। दुःख,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दोष और दरिद्रता ने संसार को पीड़ित कर दिया है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस कलिकाल में सांसारिक सुख-भोग के लिए और मोक्ष प्राप्त करने के लिए रामचंद्रजी के नाम का प्रताप ही बड़ा बली है।

न मिटै भवसंकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ-जटो।
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
'तुलसी' जु सदा सुख चाहिए तौ रसना निसिबासर राम रटो ॥८६॥

टिप्पणी—दुर्घट=न कर सकने योग्य। अटो=घूमो। फोकट=निस्सार, झूठ। जटो=झूठ से जड़ा हुआ, दिखावा-मात्र, पाखंड। जनि=मत। कुपेटक=बुरे पिटारे से (जैसा बाजीगर रखते हैं)। चेटक=मंत्र, टोटके इत्यादि। कौतुक ठाठ जनि ठटो=कौतुक की सामग्री मत बनो, हँसी मत कराओ। रसना=जिह्वा से। निसिबासर=रात-दिन।

भावार्थ—तप करना कठिन है, अतः सांसारिक दुःख नहीं मिट सकते। अनेक जन्मों तक तीर्थों में भ्रमण करो, पर कलियुग में ज्ञान और वैराग्य कहीं भी प्राप्त न होगा, सब निस्सार और पाखंडमय हैं। अतः नट की तरह अपने पेट-रूपी बुरे पिटारे से मंत्रों द्वारा करोड़ों खेल-तमाशे मत करो। तुलसीदास कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वा से रात-दिन राम का नाम रटो।

दम दुर्गम, दान, दया, मख-कर्म, सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सो होइ नहीं दृढ़ता तन को।
कलिकाल कराल में, राम कृपालु यहै अवलंब बड़ो मन को।
'तुलसी' सब संजम हीन सबै इक नाम अधार सदा जन को ॥८७॥

टिप्पणी—दम=इन्द्रियों को रोकना। दुर्गम=कठिन। मख=यज्ञ। तन को=शरीर को। अवलंब=सहारा।

भावार्थ—इस भयंकर कलिकाल में इंद्रियों का दमन करना कठिन है। दान, दया, यज्ञकर्म और सुधर्म सब ही धन के अधीन हैं। तपस्या, तीर्थ, साधना, योग और वैराग्य हो नहीं सकते; अतः शरीर दृढ़ नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि इस कलिकाल में मन का सबसे बड़ा अवलंब यही है कि रामचन्द्रजी कृपालु हैं। सब ही सब संयमों से हीन हैं, अतः भक्तों को सदा एक आपके नाम का ही आधार है।

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की।
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की ॥८८॥

टिप्पणी—सुदेह=नरदेह। बिमोह-नदी-तरनी=अज्ञानतारूपी नदी को पार करने के लिए नाव। ध्रू=ध्रुव। जोर=जोरदार, भरपूर। जरा=बुढ़ापा। गात=(गात्र) शरीर। गलानि=(ग्लानि) घृणा। कुबानि=बुरा स्वभाव।

मूकी=(सं० मुच् धातु से) छोड़ी। नीके कै=अच्छी तरह से। ठीक दई=निश्चय कर दिया है। आखर दू की=दो अक्षर अर्थात् 'रा' और 'म' की।

भावार्थ—अगर नरदेह के समान सुन्दर देह पाकर अज्ञानता-रूपी नदी को पार करने के लिए नाव न पाई, इस संसार में आकर कुछ अच्छा कर्त्तव्य भी न किया, रामचंद्रजी के चरित्र की कथा बनाकर औरों से न कही, प्रह्लाद और ध्रुव की कथा भी न सुनी; और अब भरपूर वृद्धावस्था से शरीर गल गया है तब भी मन में ग्लानि मानकर अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ा, अर्थात् इनमें से कुछ भी न किया तो तुलसीदास कहते हैं कि मैंने अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि ऐसे समय में दो अक्षर 'राम' नाम का ही मन में बड़ा भारी सहारा है।

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी।
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दू की ॥८९॥

टिप्पणी—बिहाय (सं० विहाय)=छोड़कर। कवि-कोकिल=वाल्मीकि। चल चूकी=चंचलता और अपराध। चलि गै=चल गयी, निभ गयी। कुसमाज=दुष्ट दुर्योधन की सभा में। पति=प्रतिष्ठा, लाज। बजाइ रही पति=प्रतिष्ठा (राम नाम के प्रताप का डंका बजाकर बनी रही)। पांडु-बधू=द्रौपदी।

भावार्थ—शुद्ध 'राम' शब्द को जपना छोड़कर महामुनि वाल्मीकि ने 'मरा' शब्द को जपा, तब भी उनकी बिगड़ी हुई बात सुधर गयी। नाम ही के प्रताप से हाथी की, वेश्या की और अजामिल की चंचलता और उनके सब अपराध निभ गये। रामनाम के प्रताप से दुष्ट दुर्योधन की बड़ी भारी सभा में द्रौपदी की प्रतिष्ठा डंका बजाकर बनी रही। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको दो अक्षर 'रा' और 'म' पर प्रीति और विश्वास है, उसका अब भी भला है।

नाम अजामिल-से खल, तारन तारन बारन बार-बधू को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पितामय सांसति-सागर सूको।
नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल, न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिएँ, 'तुलसी' हुलसै बल आखर दू को ॥९०॥

टिप्पणी—तारन=तारनेवाले। बारन=हाथी। बार बधू=वेश्या। बिषाद=दुख। पितामय सांसति-सागर सूको=पिता के भय के कष्ट का समुद्र सूख गया, अर्थात् पिता द्वारा कष्ट पाने का भय दूर हो गया। गिल्यो=निगल गया। न चूको=चूका नहीं अर्थात् नहीं छोड़ा। हुलसै=उमगता है।

भावार्थ—रामनाम ने ही अजामिल के समान पापियों को तारा और हाथी तथा वेश्या को भी तारा। नाम ही ने प्रह्लाद के दुःखों को दूर किया और नाम ही ने पिता के डर का संकट-रूपी सागर सुखा दिया अर्थात् पिता के भय से छुड़ा दिया। जिसको रामनाम से प्रीति और प्रतीति न थी उसको कराल कलियुग निगल

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ही गया, छोड़ा नहीं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके हृदय में उसी रामनाम के दो अक्षरों का बल उमगता है उसकी रामचंद्रजी रक्षा करेंगे।

जीव जहान में जायो जहाँ तहाँ सो 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख लेस लहो है।
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोउ हिएँ, रसना ही कहो है।
कीयो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोइ रहो है ॥९१॥

टिप्पणी—जहान=संसार। जायो=पैदा होता है। तिहुँ दाह=त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक)। दहो है=जलता है, पीड़ित होता है। लेस=थोड़ा भी। लहो है=पाता है। सोउ=रामनाम। रसना=जिह्वा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि संसार में जहाँ कहीं प्राणी पैदा होता है वहाँ तीनों प्रकार के दुःखों से पीड़ित होता है। इसमें किसी का भी दोष नहीं है, सब अपने पूर्वकृत कर्मों का फल है, जो स्वप्न में भी जरा-सा सुख नहीं पाया। न मैंने आज तक कुछ किया, न अब मुझे कुछ करना है, न कुछ कहना है, केवल मरना ही रह गया है, अतः रामनाम के ही प्रताप से जो हो सो हो। उस रामनाम को भी मन से नहीं जपता हूँ केवल मुख से ही कहता हूँ।

जीबे न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालयहू को न संबल मेरे।
नाम रटो जमवास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकरु नेरे?
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिअ सौं, तुम्ह ही, बलि हो मोको ठाहरु हेरे।
बैरख बाँह बसाइए पै, 'तुलसी'-घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥९२॥

टिप्पणी—जीबे=जीवित रहने को। ठाउँ=स्थान। सुरालयहू को न संबल मेरे=स्वर्ग में जाने के लिए भी मेरे पास संबल नहीं है, अर्थात् मैंने इतने पुण्य नहीं किये हैं जो स्वर्ग जा सकूँ। जमवास=यमलोक। जमकिंकर=यमदूत। नेरे=निकट। तुम्हारिअ सौं=आपकी ही शपथ। ठाहरु=स्थान। हेरे=दिखलाई देता है। बैरख=(तु० बैरक) पताका, झंडा। प्राचीनकाल में अगर किसी को घर, कुआँ, मंदिर आदि बनाने होते थे तो जिस भूमि में बनाना चाहता था उसी भूमि को राजा से माँग लेता था और उस भूमि में राजा की अनुमति सूचित करने को एक झंडा गाड़ दिया जाता था, जिससे कोई उसमें राजा की आज्ञा समझकर बाधा नहीं पहुँचा सकता था। पै=निश्चय। तुलसी-घरु=तुलसीदास का घर। खेरे=घरों का एक छोटा समूह।

भावार्थ—जीवित रहने को न कोई स्थान है, न मेरा कोई अपना गाँव है, न मेरे पास स्वर्ग में जाने को ही संबल है (अर्थात् मैंने ऐसे सुकृत भी नहीं किये, जो मेरे स्वर्ग जाने में सहायक हों)। यमलोक मैं जाऊँ क्योंकर? मैं राम का नाम रटता हूँ, कौन यमदूत मेरे निकट आ सकता है? तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मुझे आपकी ही शपथ है, मैं सब प्रकार से आपका हूँ। मैं आपकी बलि जाऊँ, आप ही मुझको स्थान दिखलाई देते हैं। अपनी आज्ञासूचक पताका देकर

अपनी शरण में बसाइए। तुलसीदास का घर व्याध और अजामिल के ही गाँव में हो (अर्थात् मैं उन्हीं के साथ आपके लोक में बसूँ)।

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई?
ब्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाई।
करुनाकर की करुना करुना-हित, नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय? रीझिय पै तुलसीहु सों है, बलि सोई सगाई ॥९३॥

टिप्पणी—जोग=योग। पेम=प्रेम। मति पेम पगाई=प्रेम में मन लगाया। करुना-हित=करुणा के लिए है। नाम सुहेत जो देत दगाई=नाम से प्रेम करने में जो धोखा करते थे, अर्थात् जो धोखे से भी राम का नाम नहीं लेते थे। खीझिय=अप्रसन्न होइए। रीझिय=प्रसन्न होइए। तुलसीहु सों=तुलसीदास से भी। सगाई=सम्बन्ध, प्रेम।

भावार्थ—अजामिल ने क्या योग किया था? वेश्या की बुद्धि क्या कभी आपके प्रेम में अनुरक्त हुई थी? व्याध (वाल्मीकि) की साधुता को क्या कहें, वह तो भारी अपराधों में ही जनाई पड़ती थी अर्थात् वह नरहत्या को ही अच्छी बात समझता था। दयालु रामचन्द्रजी की दया, दया करने के लिए है। (अर्थात् अकारण ही दयापात्र के ऊपर दया करना रामचन्द्रजी का काम है) उनका नाम जपकर जो उनसे अपने ऊपर करुणा कराना चाहता है वह तो उनसे दगा ही करता है अर्थात् उनको कलंकित करना चाहता है (कि रामजी नाम जपने पर दया करते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि हे भगवान, मैं आपकी बलैया लूँ, मुझसे भी वही नाता है। (अर्थात् मैं पापी हूँ अतः आप मुझपर दया कीजिए।) अतः आप मुझसे अप्रसन्न क्यों होते हैं? मेरे ऊपर तो आपको निश्चय कृपा करनी चाहिए (क्योंकि मैं यह दावा नहीं करता कि मैं आपका नाम जपता हूँ)।

जे मद-मार-बिकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में जन भाखिहै दूसर दीन न पाहीं?
जो कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुम तें तुम हो उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हो हम हैं तुम्हरे, तुममें सक नाहीं ॥९४॥

टिप्पणी—मद-मार-बिकार भरे=घमंड और कामदेव के विकार से भरे हुए, अर्थात् मदोन्मत्त और काम-पीड़ित। अचार-बिचार=(मुहावरा) धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा-पाठ आदि। जानकी-जीवन=जानकी के प्राणनाथ (रामचन्द्रजी)। सक नाहीं=इसमें कुछ सन्देह नहीं।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो मदोन्मत्त और काम-पीड़ित हैं वे धार्मिक कृत्यों के पास भी नहीं फटकते। तब भी अपने मन में अभिमान रखते हैं कि यह जन दूसरे से दीन वचन न बोलेगा (तात्पर्य यह कि घमंड के मारे औरों को तुच्छ समझकर उनसे बोलने में भी अपनी हीनता समझते हैं)। यदि मैं आपसे कुछ झूठ कहता हूँ तो आप मेरे हृदय में हैं हो (अतएव झूठ या सच आपसे छिपा नहीं रहेगा)। हे सीतापति रामचन्द्रजी, आप जानते ही हैं कि मैं आपका ही हूँ और आपकी शरणागतपालकता में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।
जाचक, दानि दुतीय नहीं तुम ही सबकी सब राखत बाजी।
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भए हौ गरीब-नेवाज गरीब नेवाजी ॥९५॥

टिप्पणी—अहीस=शेषनाग आदि बड़े-बड़े सर्प। महीस=राजा लोग। महामुनि=बड़े-बड़े मुनि। तापस=तपस्वी। समाजी=सांप्रदायिक जन। सब राखत बाजी=सब बातें निभाते हो सब, मनोरथ पूर्ण करते हो। गरीब (अ०)=दीन। नेवाज (फा०)=रक्षक। गरीब-नेवाज=दीनदयालु। अलंकार=विधि।

भावार्थ—हे रामचन्द्रजी! दानव, देवता, बड़े-बड़े सर्पों के राजा, राजा लोग, बड़े-बड़े मुनि-जन, तपस्वी, सिद्ध और अन्य सम्प्रदायों के लोगों समेत सारा संसार माँगनेवाला है। पर दानी आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं; आपही सब याचकों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करते हैं। आप ऐसे महानुभाव हैं, तब भी शबरी के दिये हुए (जूठे) बेर खाये बिना आपकी भूख न मिटी। अतएव हे दीनों के रक्षक रामचन्द्रजी! आप दीनों की रक्षा करके ही दीन-दयालु कहलाये हैं।

मनहरण कवित्त :

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन बन अहन अखेटकी।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥९६॥

टिप्पणी—किसबी=परिश्रमी, मजदूर। भाट=गा-गाकर माँगनेवाले। चाकर=नौकर सेवक। चार=हलकारे। चेटकी=तमाशा करनेवाले, बाजीगर। पेट को=पेट भरने के लिए, आजीविका करने के लिए। अटत=भटकते हैं। अहन=दिन-दिनभर (सं० अहः=दिन)। अखेटकी=शिकारी। पेट ही को पचत=पेट भरने के लिए मर मिटते हैं। बेटकी=बेटी। घनश्याम=काला बादल। ('घनश्याम' शब्द यहाँ पर साभिप्राय है। आग बुझाने के लिए रामचन्द्रजी को 'घनश्याम' कहना अति ही उपयुक्त हुआ है)। बड़वागि=बड़वाग्नि, समुद्र की अग्नि। आगि पेट की=जठराग्नि। अलंकार—'घनश्याम' में परिकर अलंकार है।

भावार्थ—मजदूर, किसानों का समूह, बनिये, भिखारी, भाट, नौकर, चंचल नट, चोर, हलकारे, बाजीगर आदि सब लोग पेट भरने के लिए ही पढ़ते हैं और (पेट भरने को ही) अपने मन से अनेक गुणों को गढ़ते हैं (अर्थात् अनेक उपाय करते हैं), (पेट ही के लिए) पहाड़ों पर चढ़ते हैं और (पेट ही के लिए) शिकारी लोग घने वनों में दिन-भर भटकते फिरते हैं। भले-बुरे सब प्रकार के कर्म और धर्म-अधर्म करके पेट के लिए मर-मिटते हैं। यहाँ तक कि वे पेट के लिए अपने बेटा-बेटी तक को बेच देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह पेट की अग्नि (जठराग्नि) बड़वाग्नि से भी बड़ी है। और केवल घने बादल-रूपी रामचन्द्रजी से ही बुझ सकती है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान, सोच-बस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?'
बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥९७॥

टिप्पणी—सीद्यमान=(सं०) दुःखित। साँकरे=संकट के अवसर पर। दारिद-दसानन=दारिद्र्य रूपी रावन ने। दुनी=दुनिया। दबाई दुनी=संसार को पीड़ित किया है। दुरित-दहन=पापों को जलानेवाला। हहा करी=विनती करता है। अलंकार—रूपक (दारिद-दसानन)।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचंद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ, अब ऐसा कुसमय आ गया है कि किसान की तो खेती नहीं लगती, भिखारी को भीख नहीं मिलती, बनिये के पास वाणिज्य का साधन नहीं और नौकर को कहीं नौकरी नहीं मिलती। इस प्रकार जीविका से हीन होने के कारण सब लोग दुःखित हैं और शोक के वश होकर एक-दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ, क्या करें (कुछ नहीं सूझ पडता)। हे रामजी, वेद और पुराणों में भी कहा गया है और संसार में देखा भी जाता है कि संकट पड़ने पर आपने सब पर कृपा की है। दरिद्रता-रूपी रावण ने संसार को पीड़ित किया है, अतः दीनबंधु रामचन्द्रजी, आपको पापनाशक समझकर विनती करता हूँ।

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जोबन जरत जर, परै न कछू कहीं।
राजकाज कुपथ, कुसाज, भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाई बिबस बलकही।
गति तुलसीस की लखै न कोऊ, जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक हीं।
कासों कीजै रोष? दोष दीजै काहि? पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक हीं ॥९८॥

टिप्पणी—कुल=वंश। करतूति=अच्छे काम, बड़े-बड़े काम। भूति=ऐश्वर्य। जर=ज्वर। बिबस=बेबस होकर। बलकही=प्रलाप करते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तुलसीस=श्रीरामजी। पब्बइ=पर्वत। कुलि=समस्त। खाक (अरबी)=संसार। खलल=बाधा, अस्त-व्यस्त दशा। अलंकार—रूपक (प्रथम दो चरणों में।)

भावार्थ—यौवन-रूपी ज्वर में वंश-मर्यादा पुरुषों के अच्छे काम, ऐश्वर्य, सुयश, सुन्दर रूप और गुण सब जल रहे हैं (अर्थात् युवावस्था पाकर लोग अविचार से ये सब नष्ट कर डालते हैं।) कुछ कहा नहीं जाता कि क्या होगा। (यौवन-रूपी ज्वर में) राज्याधिकार कुपथ्य है, उसका बुरा सामान भोग करना रोग को बढ़ाना है (ज्वर में कुपथ्य हुआ और रोग बढ़ा तब), वेदपाठी जन (विद्वान् लोग) विद्या पाकर विवश होकर अंडबंड बकने लगते हैं (तात्पर्य यह कि जवानी, अधिकार और विद्या पाकर लोगों को कलिकाल में त्रिदोष ही हो जाता है), (परन्तु) रामजी की महिमा कोई नहीं जानता, जो पर्वत को क्षार और छार को एक पलमात्र में पर्वत बना देते हैं। अतः हे रामजी, मेरी रक्षा करो। मैं किससे क्रुद्ध होऊँ और किसको दोष दूँ; कलियुग ने तो सारे संसार की दशा को अस्तव्यस्त कर डाला है।

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीच हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महापातकी हँसत हरि हरहू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलि को कलुष, मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है॥९९॥

टिप्पणी—रूँधिबे को=रक्षार्थ बाग को घेरने के लिए। सुरतरु=कल्पवृक्ष। भूरिभागी=भाग्यवानों को। डाटियतु है=फटकारते हैं। कलुष=(सं०) पाप। मसक=मच्छर। पाँसुरी=हड्डी, पसली। पयोधि=समुद्र। अलंकार—छेकोक्ति।

भावार्थ—इस कलियुग में नीच लोग बबूल और बहेड़े के बागों को अच्छे प्रकार से लगाते हैं और उस बाग की रक्षा करने के लिए, बारी लगाने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं, (ऐसे निर्बुद्धि हैं) हरिश्चन्द्र और दधीचि के समान दानियों को गाली देते हैं, पर आप इतने कंजूस हैं कि चना चबाकर भी हाथ चाटते हैं (कि कहीं लगा तो नहीं है)। आप बड़े पापी हैं, पर संपूर्ण पापों का नाश करने में समर्थ विष्णु और शिवजी की भी हँसी करने लगते हैं। आप तो भाग्यहीन हैं, पर बड़े-बड़े भाग्यवानों को भी ऐसी फटकार देते हैं मानों वे उनको कुछ समझते ही नहीं। कलियुग के पापों ने बड़े लोगों के मन को अति ही मलिन कर दिया, पर वे मच्छर की पसलियों से समुद्र को पाटना चाहते हैं। (अर्थात् बड़े पाप करने पर भी यह समझते हैं कि हम भवसागर पार हो जायँगे।)

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!
जाहि घालो चाहिए कहो धौं राखै ताहि को?

हौं तो दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहि को।
काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को?
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को॥१००॥

टिप्पणी—घालो चाहिए=नाश करना चाहते हो। दूबरो=(सं०) दुर्बल। बिगारो ढारो रावरो न=(मुहावरा) आपका कुछ भी बिगाड़ा, गिराया नहीं। देखाइयत आँखि=डराते हो। एते मान=इतने परिमाण में, इतना। अकस=विरोध। आहि (सं० असि)=हो। सुजान=जानकार। स्वान (सं० श्वान)=अवध का कुक्कुर। पच्छ कियो=तरफदारी की।

भावार्थ—हे कराल कलिकाल! तुम आज राजा हो, पर मेरी बात सुनो। जिसको तुम मारना चाहते हो उसे कौन बचा सकता है? मैं तो दीन और निर्बल हूँ और मैंने आपका कुछ बिगाड़ा या गिराया नहीं। (अर्थात् मेरा आपका कुछ सरोकार नहीं है।) मैं भी और आप भी उसी ईश्वर के हैं, जिसका सारा संसार है, फिर मुझसे इतना विरोध करनेवाले आप हैं कौन, जो काम और क्रोध को मेरे पीछे लगाकर मुझे डराते हैं। मेरे स्वामी सुजान रामचन्द्रजी हैं, जिन्होंने कुत्ते का भी पक्ष किया था। मैं स्वामी रामचन्द्रजी का सेवक हूँ और मेरा नाम 'रामबोला' है।

मत्तगयंद सवैया :

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है?
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है।
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना, 'तुलसी' जग दूसरे सों करिहौं न हहा है॥१०१॥

टिप्पणी—प्रपंच=माया-जाल। मोहि सों आनि प्रपंच रहा है=मेरे ही ऊपर जाल फैलाता है। जगनायक=संसार के स्वामी। लायक=बड़े योग्य (व्यंग्य से, बड़े खराब)। पै=पर। मेरियौ=मेरी भी। कुटेव=बुरी बान, लत, हठ। हहा करिहौं=विनती करूँगा।

भावार्थ—हे कराल कलियुग, मैं सच कहता हूँ। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मेरे ऊपर काम, क्रोध, लोभ, मोह का जाल फैलाता है। (अर्थात् मुझे काम, क्रोध, लोभ और मोह में फँसाता है)। तुम संसार के स्वामी हो और सब-कुछ करने में समर्थ हो, पर मेरा भी यह बड़ा भारी हठ है कि मैं सीतापति रामचंद्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे से बिनती नहीं करूँगा।

नोट—सत्संग में सुना है कि 'मेवा' नामक एक भक्त की स्त्री ने गोस्वामीजी की परीक्षा लेनी चाही थी। कई बार एकांत में उनके पास आयी। पर गोस्वामीजी उसके चरणों पर गिरकर समझा-बुझाकर लौटा देते थे। उसी समय ये छंद (नं० १००, १०१, १०२) गोस्वामीजी ने कहे थे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मोको न लेनो न देनो कछु कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहौं।
जानि कै जोर करौ; परिनाम, तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं ॥१०२॥

टिप्पणी—नाम द्वै=सीताराम। नितै=प्रतिदिन। चितैहौं=देखूँगा। जोर करौं=जबर्दस्ती करो। परिनाम=अन्तिम फल। पै=परन्तु। भितैहौं=डरूँगा। उगिल्यो=वमन कर दिया। उरगारि=गरुड़। हौं=मैं। त्योंही=उसी प्रकार। हिये=(यहाँ पर) पेट में। हितैहौं=पचूँगा, हितकर होऊँगा।

भावार्थ—प्रतिदिन गंगाजी का जल पीता हूँ और सीता-राम ये दो नाम लेता हूँ। हे कलि! मेरा तुमसे लेना-देना कुछ नहीं है (अर्थात् मेरा तुमसे कुछ भी सरोकार नहीं), अतः मैं भूलकर भी कभी तुम्हारी ओर नहीं देखूँगा। अन्तिम फल समझकर मुझपर अत्याचार करो, अन्त में तुम्हीं पछताओगे, पर मैं तुमसे न डरूँगा। जैसे गरुड़ ने ब्राह्मण को न पचा सकने के कारण वमन कर दिया था वैसे ही मैं भी तुम्हारे पेट में न पचूँगा (और अन्त में तुमको मुझे छोड़ ही देना पड़ेगा)।

नोट—गरुड़ ने एक समय धोखे से एक ब्राह्मण को निगल लिया था। उससे उनके पेट में जलन पैदा हुई। अन्त में उन्हें उसे अपने पेट से निकाल देना पड़ा।

राजमराल के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को।
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को ॥१०३॥

टिप्पणी—राजमराल=राजहंस। पेलिकै=ठेलकर। खूसर=उल्लू, खूसट। सुचि=(शुचि) पवित्र। सालि=(शालि) धान। सकेलि=(सं०) एकत्र करके बटोरकर। सुवारिकै=जलाकर। ऊसर=अनुत्पादक भूमि। गुमान=घमंड। भभेरि=मूर्ख। मूसर को=मुशल बनाने के लिए। बिचार=धर्माधर्म का विचार। अचार=तप-शौचादि का आचरण। धमधूसर=निर्बुद्धि।

भावार्थ—सुन्दर राजहंसों के बालकों को (अर्थात् विवेकियों को) ठेलकर अब के लोग उल्लू के बच्चों का लालन-पालन करते हैं, सुन्दर धानों को एकत्र करके उनको जलाकर ऊसर भूमि में खाने के लिए दाने बटोरते फिरते हैं। उन्हें गुण और ज्ञान का बड़ा घमंड है, पर मूर्ख इतने बड़े हैं कि मुशल बनाने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं। इस कलियुग ने उनका सब आचार-विचार हर लिया है, पर बेवकूफों को कुछ सूझता नहीं।

कीबे कहा पढ़िबे को कहा? फलबूझि न वेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै।
बाद बिबाद बिसाद बढ़ाइकै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहु को, छहु को, नव को, दस आठ को, पाठ कुकाठ ज्यों फारै ॥१०४॥

टिप्पणी—स्वारथ=सांसारिक सुख। परमारथ=मोक्ष। कामद=सब कामनाओं को देनेवाला। बिसारै=भुला देता है। बिसाद=दुःख। चारिहु=चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व)। छहु=छह शास्त्र (मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, योग, वेदांत)। नव=नौ व्याकरण (इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती)। दस-आठ=अट्ठारह पुराण। पाठ कुकाठ ज्यों फारै=इन सबका पढ़ना ऐसा निष्फल है जैसा कुकाठ का फाड़ना निष्फल होता है; क्योंकि कुकाठ सीधा नहीं फटता।

भावार्थ—क्या करना चाहिए, क्या पढ़ना चाहिए, यह समझ-बूझकर वेद का भेद न विचारा तो नर-देह पाकर क्या किया? और इस प्रकार बिना विचारे पढ़ने का क्या फल रहा? यदि स्वार्थ और परमार्थ के देनेवाले, और कलियुग के सब मनोरथों के पूर्ण करनेवाले राम के नाम को भुला दिया, और व्यर्थ के वाद-विवाद से दुःख बढ़ाकर अपनी और दूसरों की भी छाती जलाई अर्थात् अपने को और दूसरों को भी चिंतित कर दिया तो चारों वेदों, छहों शास्त्रों, नवों व्याकरणों और अट्ठारहों पुराणों का पढ़ना ऐसा ही निष्फल हुआ जैसा कुकाठ का फाड़ना।

आगम बेद पुरान बखानत मारग कोटिक जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, 'तुलसी' हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ॥१०५॥

टिप्पणी—आगम=शास्त्र। लै जीव पराने=प्राणों को लेकर अर्थात् डर के मारे भाग गये।

भावार्थ—शास्त्र, वेद और पुराण वर्णन करते हैं कि मोक्ष-साधन के अनेक उपाय हैं, परन्तु वे तो समझ में नहीं आते और जो मुनिगण हैं वे अपने ही को ईश्वर और सयाने सिद्ध कहलवाते हैं, परन्तु इस कलियुग ने सब धर्मों को ग्रस लिया है; जप, योग, विराग आदि तो डर के मारे लुप्त हो गये हैं। अतएव तुलसीदास कहते हैं कि (जब मोक्ष-साधन के उपायों की दशा है तो) व्यर्थ की चिंता में पड़कर अपने को क्यों कष्ट दें। हम तो रामचन्द्रजी के हाथों बिक गये हैं, अर्थात् रामचन्द्रजी की शरण में हो गये हैं (हमें किसी की कुछ परवाह नहीं है)।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहौ कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥१०६॥

टिप्पणी—धूत=(धूर्त्त) छली। अवधूत=जोगी, भिखमंगा। रजपूत=क्षत्रिय (सं० राजपुत्र से)। जोलहा=तंतुवाय, कपड़ा बुननेवाली एक जाति-विशेष। सरनाम=प्रसिद्ध। गुलाम (अ०)=सेवक। रुचै=अच्छा लगे। ओऊ—

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

वह पीन। मसीत=मसजिद (देवालय)। लेबे को एक न देबे को दोऊ='लेना एक न देना दो'—(एक लोकोक्ति है) कुछ भी सरोकार नहीं।

भावार्थ—कोई चाहे मुझे धूर्त्त कहे, चाहे भिखमंगा कहे, चाहे क्षत्रिय कहे, चाहे जुलाहा कहे, मुझे कुछ परवाह नहीं। न मुझे किसी की लड़की से अपने लड़के का ब्याह ही करना है (जो मैं पतित होने का डर करूं), न मैं किसी जाति के साथ संपर्क रखकर उसे बिगाड़ूंगा। जिसको जो अच्छा लगे वह वही कहे। तुलसी तो रामचन्द्रजी का प्रसिद्ध सेवक है। मांगकर खाना और निश्चिन्त होकर देवालय में सो रहना, यही मेरा काम है; और किसी से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं (न मैं कलिकाल की 'गुलामी' लूंगा, न 'राम' नाम के दोनों अक्षरों को छोड़ूंगा)।

मनहरण कवित्त :

मेरे जाति-पांति, न चहौं काहू की जाति-पांति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो 'तुलसी' के एक नाम को।
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।'
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं? जो हौं सो हौं राम को ॥१०७॥

टिप्पणी—जाति-पांति=(मुहावरा) जाति-भेद। पांति=(सं०) पंक्ति। अयाने=अज्ञान। उपखानो=उपाख्यान को, कहावत को। साह=स्वामी। गोत=(सं०) गोत्र। पोच=नीच। का काहू के द्वार परौं=क्या किसी की शरण मांगता हूं, अथवा क्या किसी के द्वार पर रक्षा पाने के लिए धरना दिये बैठा हूं।

भावार्थ—मुझे जाति-भेद का घमंड नहीं, न मैं किसी की जाति-पांति चाहता हूं। न किसी से मेरा कोई कार्य सिद्ध होता है, न मैं ही किसी का कुछ प्रयोजन साध सकता हूं! मेरा तो लोक और परलोक दोनों ही रामचन्द्रजी के हाथ हैं और मुझे तो केवल रामनाम का बड़ा भरोसा है। लोग अत्यन्त मूर्ख हैं जो इस कहावत को नहीं समझते कि सेवक भी स्वामी के गोत्र का होता है। सज्जन हूं अथवा दुर्जन, भला हूं चाहे बुरा, मुझे इसकी परवाह नहीं। क्या मैं किसी के दरवाजे धरना दिये पड़ा हूं। मैं जैसा कुछ भी हूं, रामचन्द्रजी का हूं, अन्य किसी से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं।

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम, खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूठी सांची कोटि उठत हबूब है।

चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु
सब की सहत उर अंतर न ऊब है।
'तुलसी' को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है ॥१०८॥

टिप्पणी—कुसाज=कुसंग, बुरी वस्तुओं का संग्रह। खरो खूब है=अत्यंत निष्कपट है। बानी=बातें। हबूब=(अ० हुबाब=पानी के बुलबुले) चर्चा। ऊब=घबराहट।

भावार्थ—कोई कहते हैं कि यह तुलसी बुरी वस्तुओं का संग्रह करता है, अतः बड़ा छली है, और कोई कहते हैं कि यह राम का सच्चा सेवक है। सज्जन तो मुझे (तुलसीदास को) बड़ा भारी सज्जन समझते हैं और दुष्ट लोग दुर्जन ही समझते हैं। इस प्रकार करोड़ों भांति की झूठी-सच्ची चर्चाएं उठती हैं। पर मैं न किसी से कुछ चाहता हूं, न किसी के विषय में कुछ भला-बुरा ही करता हूं। सबका कथन सुन लेता हूं, चित्त में कोई घबराहट नहीं है। मेरा तो भला-बुरा सब श्रीरामचन्द्रजी के ही हाथ है। रामचंद्रजी की भक्ति भूमि है जिसमें मेरी बुद्धि दूब होकर जमी है। (अर्थात् मेरी बुद्धि रामचन्द्र की भक्ति में ही लगी हुई है।)

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के।
जागैं बुध विद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवैं सुख तुलसी, भरोसे एक राम के ॥१०९॥

टिप्पणी—जोगी=योगी। जंगम=भ्रमण करने वाले संन्यासी। जती=(यती) संयमी। जमाती=समूह में रहनेवाले संन्यासी। बाम=कुटिल। भोग ही=भोग करने के लिए।

भावार्थ—योगी, जंगम, यती, जमायती आदि संन्यासी जागते रहते हैं। क्योंकि वे एक तो परमेश्वर के ध्यान में लगे रहते हैं और दूसरे लोभ, मोह, क्रोध और काम से हृदय में सदा डरते हैं (कहीं वे उनको अपने वश में न कर लें, इस भय से सदा सावधान रहते हैं)। राजा लोग अपने राजकाज की चिंता के कारण जागते रहते हैं और सेवकगण अपने काम-काज की देखभाल के लिए जागते रहते हैं, वे अपने बड़े कुटिल शत्रु के समाचार सुनकर (उसके निवारण का उपाय) सोचते रहते हैं। बुद्धिमान पंडित जन सावधान चित्त से विद्योपार्जन के लिए जागते रहते हैं। लोभी जन भूमि और घर पाने के लालच के वश होकर जागते रहते हैं। सुख-भोग करने वाले सुख-भोग करने के लिए और विरही और रोगी शोक के कारण जागते रहते हैं, परन्तु मैं (तुलसीदास) केवल रामचन्द्रजी के भरोसे सुख से सोता हूं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

छप्पय छंद :

राम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु पूज्य, परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित।
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति।
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल।
कह 'तुलसिदास' अब जब कबहुँ एक राम ते मोर भल ॥११०॥

टिप्पणी—सुजन=(सं० स्वजन) आत्मीय। हित=हितकारी, मित्र। साहेब=स्वामी। नेह=(सं०) स्नेह। नाता=संबंध। पुनीत=पवित्र। कोस=(कोष) खजाना। गति=पहुँच, शरण। पति=प्रतिष्ठा। परमारथ=मोक्ष। स्वारथ=लौकिक सुख।

भावार्थ—मेरे माता, पिता, बंधु, आत्मीय, पूज्य गुरु, परम हितकारी, स्वामी, सखा, सहायक और जहाँ तक पवित्र मन से स्नेह के संबंध हैं सब कुछ रामचंद्रजी ही हैं। देश, कोष, वंश, कर्म, धर्म धन, घर, पृथ्वी, मेरी पहुँच और सब प्रकार से मेरी जाति-पाँति की प्रतिष्ठा रामचन्द्रजी ही तक है। स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल राम-कृपा से ही सुलभ हैं। तुलसीदास कहते हैं इस समय या जब कभी हो, मेरा भला एक रामचन्द्रजी ही से हो सकता है।

महाराज बलि जाउँ राम सेवक-सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक।
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-बिलोचन।
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल 'तुलसिदास' राखिय सरन ॥१११॥

टिप्पणी—राजीव=कमल। राजीव-बिलोचन=कमल के समान आँखोंवाले। करुनायतन=करुणा के घर। प्रनतपाल=प्रणत (शरणागत) के रक्षक।

भावार्थ—हे सेवकों को सुख देनेवाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। सुन्दर और सब प्रकार से समर्थ महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे सब संकटों से छुड़ाने वाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे कमल-नेत्र महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे दयालु शरणागत-रक्षक, पापों को दूर करने वाले रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ। हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलिहारी जाऊँ, कलियुग के भय से व्याकुल इस तुलसीदास को शरण में लीजिए।

जय ताड़का सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर।
मुनि-मख रच्छन-दच्छ सिलातारन करुनाकर।

नृप-गन-बलमद सहित संभु-कोदंड-बिहंडन।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन।
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमा-भवन।
कह 'तुलसिदास' सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकि-रवन ॥१२२॥

टिप्पणी—मानहर=घमंड चूर करने वाले। मख=(सं०) यज्ञ। दच्छ=(सं० दक्ष) चतुर। सिलातारन=शिलारूप में परिणत अहल्या का उद्धार करनेवाले। करुणाकर=(करुणा+आकर=खदान) दयालु। कोदंड=धनुष। बिहंडन=(विखंडन) तोड़ने वाले। कुठारधर=परशुराम। मंडन=भूषण। सुखमा=(सं० सुषमा) अत्यंत शोभा। जानकि-रवन=(जानकी-रमन) रामचन्द्रजी। अलंकार—आशिषालंकार (केशव के मत से)।

भावार्थ—ताड़का और सुबाहु को मारनेवाले और मारीच का दर्प दूर करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने में चतुर, शिलारूप में परिणत अहल्या का उद्धार करनेवाले, दयासागर रामचन्द्रजी की जय हो। राजसमूह के घमंडसहित शिवधनुष को तोड़नेवाले (अर्थात् राजाओं के बल का घमंड चूर कर शिवधनुष को तोड़नेवाले), परशुराम के दर्प का नाश करनेवाले, सूर्य-कुल को भूषित करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। जनकपुरी को आनंद देनेवाले, सुख के सागर और अत्यन्त सुन्दर रामचन्द्रजी की जय हो। तुलसीदास कहते हैं कि देवताओं में श्रेष्ठ जानकीपति रामचन्द्रजी की जय हो, जय हो, जय हो।

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जन जन-रंजन।
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन भय-भंजन।
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस-बिभूषन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खरदूषन।
जय दंडकबन-पावन-करन, तुलसिदास, संसय-समन।
जग बिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकि-रमन ॥११३॥

टिप्पणी—जयंत=इंद्र का पुत्र। अनंत=जिसका अंत न पाया जाय। सज्जन-जन-रंजन=सज्जनगण को आनंदित करनेवाले। बिराध-बध-बिदुष=विराध नामक राक्षस का वध करने में निपुण। बिबुध=(विशेष प्रकार से बुद्धिमान्) देवता। निसिचरी-बिरूप-करन=शूर्पणखा को (उसकी नाक, कान काटकर) कुरूपा कर देने वाले। सुभट=योद्धा। पावन=पवित्र। संसय-समन=(संशय-शमन) सन्देह को दूर करने वाले। बिदित=प्रख्यात, प्रकट। जगत-मनि=संसार में सबसे श्रेष्ठ।

भावार्थ—जयंत पर विजय प्राप्त करनेवाले, अनंत और सज्जनगण को आनन्दित करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। विराध को मारने में चतुर और देवता और मुनिगण का भय दूर करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। शूर्पणखा को कुरूप करनेवाले रघुवंश के विभूषण-स्वरूप रामचन्द्रजी की जय हो। त्रिशिरा,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

खर, दूषण के चौदह सहस्र योद्धाओं को मारनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। दंडकारण्य को पवित्र करनेवाले और तुलसीदास के सब संदेहों को दूर करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। संसार में प्रख्यात जगत्मणि सीतापति रामचन्द्रजी की जय हो, जय हो, जय हो, जय हो।

जय मायामृग-मथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंध-सूदन बिसाल तरु-ताल-बिदारन।
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक पालन कृपालु चित।
जय सियबियोग-दुखहेतु-कृत सेतु-बंध बारिधि-दमन।
दससीस-बिभीषण अभयप्रद जय जय जय जानकि-रमन ॥११४॥

टिप्पणी—मायामृग मथन=माया से हरिण बने हुए मारीच को मारनेवाले। कबंध-सूदन=कबंध नामक राक्षस को मारनेवाले। तरुताल=सात ताल के वृक्ष। दवन=(दमन) मारनेवाले। थपन=स्थापित करने वाले। संत-हित=सज्जनों के हितकर्त्ता। कटक=सेना। सियबियोग-दुःख-हेतु-कृत-सेतु-बन्ध=सीता के वियोग के दुःख के कारण किया है सेतु-बंध जिसने, ऐसे रामचन्द्रजी (बहुव्रीहि समास)। बारिधि=समुद्र। दससीस-बिभीषण अभय-प्रद=रावण से भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले।

भावार्थ—कपट के मृग को मारने वाले, गृद्धराज जटायु और शबरी का उद्धार करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। कबंध नामक राक्षस को मारनेवाले और बड़े भारी (सात) ताल के वृक्षों को (एक ही बाण से) गिरा देनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। बली बालि को मारनेवाले सुग्रीव को राजगद्दी पर स्थापित करने वाले, सज्जनों के हितकर्त्ता, वानर और भयंकर-योद्धा-भालुओं की सेना के रक्षक, दयालु रामचन्द्रजी की जय हो। सीता के वियोग के दुःख के कारण सेतु बँधानेवाले और समुद्र का दमन करने वाले रामचन्द्रजी की जय हो। रावण द्वारा भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले जानकीपति रामचन्द्रजी की जय हो, जय हो, जय हो।

कनक-कुधर-केदार, बीज सुन्दर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक-धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर।
तीरथपति अंकुर-सरूप जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकत-मय साखा सुपत्र, मंजरि सुलच्छि जेहि।
कैवल्य सकल-फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास' रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ॥१५५॥

टिप्पणी—कनक-कुधर-केदार=सुमेरु पर्वत-रूपी क्यारी में। कनक=सोना। कुधर=(कु=पृथ्वी+धर) पर्वत। केदार=क्यारी। सुरमनिवर=चिंतामणि। कामधुक=कामनाओं को दुहनेवाली अर्थात् मनोरथों को पूर्ण करनेवाली। धेनु=गाय। कामधुक-धेनु=कामधेनु नाम की देवताओं की एक गाय।

सुधामय=अमृतमय। पय=दुग्ध। बिसुद्धतर=अति शुद्ध। तीरथ-पति=प्रयागराज। जच्छेस=यक्षों के स्वामी, कुबेर। रच्छ=रक्षा करते हो। मरकत=पन्ना। मंजरि=बौर। लच्छि=लक्ष्मी। कैवल्य (सं०)=मोक्ष। बरिस=बरसावे। सरिस (सं० सदृश) समान। अलंकार=समस्त वस्तुविषयक सांग रूपक से पुष्ट अतिशयोक्ति।

भावार्थ—सुमेरु पर्वत-रूपी क्यारी में चिंतामणि-रूपी श्रेष्ठ बीज बोया जाय, उसको कामधेनु के अत्यन्त शुद्ध अमृतमय दूध से सींचे, तीर्थराज प्रयाग उसके अंकुर-स्वरूप उत्पन्न हो, कुबेर उसकी रखवाली करते हों, पन्ना रत्न ही जिसकी शाखा और पत्र हों और लक्ष्मी ही जिसकी सुन्दर मंजरी हो, ऐसा सुन्दर स्वभाववाला, सब सुखों को बरसानेवाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सब फलों का देनेवाला जब कोई कल्पवृक्ष हो तब भी (तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, क्या वह दान देने में आपके हाथ की बराबरी कर सकता है? (अर्थात् नहीं)

नोट—अत्यन्त ऊँची कल्पना है। इसी प्रकार की एक दूसरी कल्पना सीता जी के सौंदर्य के विषय में रामायण के बालकांड में है, जिसका आरम्भ "जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई' से होता है।

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै।
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि।
सुत जाय मातु-पितु भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित।
सब जाय दास 'तुलसी' कहै, जो न रामपद नेह नित ॥१५६॥

टिप्पणी—जाय=व्यर्थ। पाइ रन रारि न मंडै=युद्ध करने का सुअवसर पाकर भी युद्ध न करे। जती=संयमी। बिषय-बासना=सांसारिक वस्तुओं के सुख-भोग की इच्छा। छंडै=छोड़े। रत=अनुरक्त, लगा हुआ। पति न हित=पति प्यारा न हो। अलंकार=तुल्ययोगिता।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वह शक्तिमान् योद्धा व्यर्थ है, जो युद्ध करने का सुअवसर पाकर युद्ध न करे। वह संयमी व्यर्थ कहाता है, जो सांसारिक विषय-भोग से विरक्त न हो। दान न देनेवाला धनवान् व्यर्थ है। धर्महीन निर्धन व्यर्थ है। वह पंडित भी व्यर्थ है जो पुराणों का अध्ययन करने पर भी पुण्यकर्म में नहीं लगता। माता-पिता की भक्ति से रहित पुत्र व्यर्थ है। वह स्त्री भी व्यर्थ है जिसको पति से प्रेम न हो। परन्तु यदि रामचन्द्रजी के चरणों से नित्य स्नेह नहीं है तो उपर्युक्त सब ही व्यक्ति व्यर्थ हैं।

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन कर दीन्हों?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयन-सर?
लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सुर-नागलोक-महिमंडलहु को जो मोह कीन्हों जय न ?
कह 'तुलसिदास' सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥११७॥

टिप्पणी—निरदह्यो=जलाया, संतप्त किया। त्रासन=भयभीत। कौन=किसके। नारिनयन-सर=स्त्रियों के कटाक्ष। लोचनजुत=लोचनयुक्त होते हुए भी। श्री=लक्ष्मी, धन, सम्पत्ति। नागलोक=पाताल। ऊबरै=छूट जाता है, बच जाता है। अलंकार=काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—ऐसा कौन है जिसको क्रोध ने नहीं जलाया? काम ने किसको वश में नहीं किया? लोभ ने दृढ़ फंदे में बाँधकर किसको भयभीत नहीं किया? स्त्रियों के तीव्र कटाक्ष ने किसके हृदय में कुछ असर नहीं किये? धन-वैभव पाकर आँख होते हुए भी कौन मनुष्य अन्धा नहीं हुआ? स्वर्ग, पाताल और पृथ्वीमंडल में ऐसा कौन है जिसको मोह ने न जीता हो? (तात्पर्य यह कि ऐसा कोई भी नहीं, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और स्त्री के वश में न हुआ हो।) तुलसीदास कहते हैं कि इनसे तो वही बच सकता है जिसको कमलनेत्र रामचन्द्रजी अपनी शरण में ले लें।

सवैया :

भौंह-कमान-सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे।
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी', पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥११८॥

टिप्पणी—भौंह-कमान-संधान सुठान=भौंह-रूपी धनुष में अच्छे प्रकार किया गया है संधान जिनका। नारि-बिलोकनि-बान=स्त्रियों के कटाक्ष-रूपी वाण। कोप-कृसानु=कोपरूपी अग्नि। गुमान-अवाँ=अहंकार-रूपी भट्ठी में। आँच न आँचे=गरमी से संतप्त नहीं हुए।

भावार्थ—जो साधु स्त्रियों के भौंह-रूपी धनुष में अच्छे प्रकार संधान किये हुए कटाक्ष-रूपी बाणों से बच गये हों (अर्थात् उनके लक्ष्य न हुए हों), अहंकार-रूपी भट्ठी में क्रोध-रूपी अग्नि की आँच से जिनके मन घड़े की तरह न तपे हों, लोभरूपी नट के वश में होकर जो संसार में अनेक प्रकार नाच न नाचे हों (अर्थात् लोभ के कारण जिन्होंने अनेक भाँति के कृत्य न किये हों), तुलसीदास कहते हैं कि वे ही साधु रामचन्द्रजी के सच्चे सेवक हैं; यों तो सब साधु अच्छे कहे ही जाते हैं।

मनहरण कवित्त :

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम के ही नाम की।
प्रगटैं उपासना, दुरावैं दुरबासनाहि,
मानस निवास-भूमि लोभ, मोह काम की।

राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे,
'तुलसी' से भगत भगति चहैं राम की! ॥ ११९॥

टिप्पणी—भेष सुबनाइ=सुन्दर साधुओं का-सा वेश बनाकर। चुवाइ=शांत और मधुर करके। गति=पहुँच, शरण। उपासना=पूजा-पाठ, भक्ति। दुरावैं=छिपाता है। दुरबासनाहि=दुर्वासना को, बुरी इच्छाओं को। मानस=मन। निवास-भूमि=रहने का स्थान। राग=सांसारिक विषयों से प्रेम। रोष=क्रोध। ईरषा=(सं० ईर्ष्या) पराची उन्नति देखकर जलना।

भावार्थ—मन से पृथ्वी, धन और घर की चिंता नहीं छूटती, पर सुन्दर साधुओं का वेश बनाकर मुख से शांत और मीठे वचन बनाकर कहते हैं। करोड़ों प्रकार के भले-बुरे उपायों से अपनी देह का लालन-पालन करते हैं, पर मुख से कहते हैं कि हम तो राम-नाम की शरण हैं। उपासना को तो प्रकट करते हैं, पर अपने मन में कुवासनाओं को छिपाये रखते हैं। मन तो लोभ, मोह और काम का निवास-स्थान ही है। इस प्रकार के राग, रोष, ईर्ष्या, कपट और कुटिलता से भरे तुलसीदास के समान भक्त भी राम की भक्ति चाहते हैं। क्या ही आश्चर्य की बात है!

'कालिह ही तरुन तन' 'कालिह ही धरनि धन',
'कालिह ही जितौंगो रन', कहत कुचालि है।
'कालिह ही साधौंगो काज' "कालिह ही राजा समाज,'
मसक ह्वै कहै 'भार मेरें मेरु हालिहै'।
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालिह है' ॥ १२०॥

टिप्पणी—साधौंगो=सिद्ध करूँगा। मसक=मच्छर। हालिहै=हिल जायगा। यही कुभाँति=इसी प्रकार की दुर्बुद्धि। घने=बहुत, असंख्य। घालना=नष्ट करना। सूझै न=समझ में नहीं आता।

भावार्थ—कुचाली लोग कहते हैं कि कल ही हमारे शरीर में यौवन आयगा, कल ही पृथ्वी और धन पैदा करेंगे, कल ही युद्ध में जय प्राप्त करेंगे, कल ही अपने सब कार्य-साधन कर लेंगे और कल ही राज-समाज जोड़ लेंगे। (अर्थात् राजा हो जायेंगे)। मच्छर के समान छोटे होकर भी कहते हैं कि हमारे बोझ से सुमेरु पर्वत भी हिल जायगा। तुलसीदास कहते हैं कि यही दुर्बुद्धि बुरी तरह से असंख्य घरों को नष्ट कर आयी, अनेक घर उजाड़ रही है, और अनेक घरों को उजाड़ेगी। ऐसा सब देखते-सुनते और समझते हुए भी किसी की बुद्धि में यह न सूझा और न किसी ने कभी यह कहा कि 'कल ही काल (मौत) का भी काल है।' (कौन निश्चय है कि 'कल' आयेगा ही, संभव है आज ही अंतिम दिवस हो।)

भयो न तिकाल तिहूँ लोक 'तुलसी' सो मंद,
निंदैं सब साधु सुनि मानौं न सकोचु हौं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जानत न जोग, हिय हानि मानैं जानकीस,
    काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं।
पेट भरिबे के काज महाराज को कहायो
    महाराज हू कह्यो है, 'प्रनत बिमोचु' हौं।
निज अघ-जाल, कलिकाल की करालता,
    बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं।।१२१।।

टिप्पणी—तिकाल = त्रिकाल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान, तीनों कालों में)। परेखो = उलाहना। पातकी = पापी। प्रपंची = छली। पोचु = नीच। प्रनत = भक्त, शरणागत। प्रनत-बिमोचु = भक्तों को संकट से छुड़ानेवाला। अघ-जाल = पापों का समूह।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेरे समान तीनों कालों में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों लोकों में (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) कोई बुरा नहीं हुआ; इसलिए सब सज्जन लोग मेरी निंदा करते हैं, पर मैं इसपर कुछ भी संकोच नहीं मानता। रामजी मुझे अपने योग्य नहीं मानते, इसलिए मुझे अपनाने में अपनी हानि (बदनामी) समझते हैं। अत: हे जानकीश, मैं आपको क्योंकर उलाहना दूँ। मैं वास्तव में पापी, छली और नीच हूँ। मैं अपना पेट भरने के लिए आपका कहलाता हूँ। और आपने भी कहा है कि "मैं शरणागतों को संकट से बचानेवाला हूँ।" परन्तु मैं अपने असंख्य पाप, और उसपर कलियुग की कड़ाई देखकर व्याकुल होता हूँ। इसी कारण मुझे चिन्ता है।

धरम के सेतु जगमंगल के हेतु भूमि,
    भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु चालि मान,
    लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
    सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोइ कीजै, बलि,
    'तुलसी' तिहारो घरजायऊ है घर को।।१२२।।

टिप्पणी—धरम के सेतु = धर्म की मर्यादा। हेतु = कारण। पन = प्रण। कनावड़े = एहसानमन्द, ऋणी। प्रसंग = कथा, वार्त्ता। अनुचर = सेवक (तुलसीदास)। घरजायऊ = घरजाया, गुलाम।

भावार्थ - श्रीरामचन्द्रजी धर्म की मर्यादा हैं। उन्होंने संसार का मंगल करने और पृथ्वी का भार हरण करने के लिए मनुष्य का अवतार लिया है। प्रभु की चाल है कि विश्वास और प्रीति का पालन करते हैं। लोक और वेदों की मान-रक्षा करना रामचन्द्रजी का प्रण है। तुलसीदास कहते हैं कि हे राम-

चन्द्रजी, आप विभीषण और वानरों के ऋणी हैं, यह कथा सुनकर मुझ सेवक को ईर्ष्या होती है (कि मेरे भी ऋणी क्यों न हुए)। अतएव, मैं आपकी बलैया लूँ, अपने प्रण की रक्षा करके जो हो सके वही कीजिए। मैं तो आपके घर का घर जाया सेवक हूँ।

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
    सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर
    ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं।
'तुलसी' बिलोकि कलिकाल की करालता,
    कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
    आपनो न सोच, स्वामी-सोच ही सुखात हौं।।१२३।।

टिप्पणी—नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर = उर (में) महाराज के नाम के संग नीको निबाह कीजै। बार यहि = इस बार। चखकोर कीजै = सुदृष्टि फेरिए। ताहि लगि = उस सुदृष्टि के लिए। रंक ज्यों = दरिद्र की तरह। सनेह = घी। ललात हौं = इच्छुक रहता हूँ। लोक एक भाँति को = लोग बहुत बुरे हो गये हैं। तिलोकनाथ लोकबस = क्या त्रिलोकीनाथ भी लोगों की तरह हो गये ?

भावार्थ—रामचन्द्रजी के नाम के साथ अच्छे प्रकार निर्वाह करनेवाला (अर्थात् रामनाम जपनेवाला) सबको मन से अच्छा लगता है; पर मैं लोगों को अच्छा नहीं लगता, अत: हे रामचन्द्रजी, इस बार मेरी ओर अपनी शुभ दृष्टि फेरिए। आपकी उस सुदृष्टि के लिए मैं उसी प्रकार लालायित रहता हूँ जैसे दरिद्री घृत के लिए (अच्छे पकवानों का) इच्छुक रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग की इस करालता को देखकर (अर्थात् घोर कलियुग देखकर) और कृपालु रामचन्द्रजी का स्वभाव समझकर (अर्थात् रामचन्द्रजी पापियों का उद्धार करनेवाले हैं, यह समझकर) मैं सकुचाता हूँ (कि रामचन्द्रजी किस-किस का उद्धार करेंगे और उनमें मेरा नम्बर कैसे आवेगा ?) संसार के लोग तो बहुत बुरे हो गये हैं; पर क्या त्रिलोकीनाथ भी वैसे ही हो गये हैं ? हे स्वामी, मुझे अपने बुरे होने का शोच नहीं, मैं तो आपके शोच से सूखा जाता हूँ (कि लोग यह कहने लगेंगे कि रामजी भी कलियुग में अपना स्वभाव छोड़कर ऐसे करुणा-रहित हो गये कि अपने भक्त तुलसी को न तार सके।)

नोट—निहायत उत्तम व्यंग्य है।

तौ लौं लोभ-लोलुप ललात लालची लबार,
    बार बार लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग-रोग सोग, भोग जातना को
    जुग सम लगत जीवन जाम को।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तो लौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु,
'तुलसी' है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौ लौं जन भयो न बजाइ राजा राम को॥१२४॥

टिप्पणी—तौ लौं=तब तक। लोलुप=इन्द्रिय सुखों का लालची। लबार=झूठा। जातना=(सं० यातना) कष्ट। जुग=युग। जाम=(याम) प्रहर। तनु=शरीर। किंकर=सेवक। निरापने=(निर+आपने) अपने नहीं अर्थात् पराये। जन=भक्त। बजाइ=डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला। जौ लौं=जब तक।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक मनुष्य खुल्लमखुल्ला राजा रामचन्द्रजी का भक्त नहीं हो जाता तभी तक वह इन्द्रिय-सुख-लोलुप, टुकड़े-टुकड़े को लालायित रहनेवाला, धन-सम्पत्ति का लालची, बार-बार झूठ बोलनेवाला और पृथ्वी, धन तथा घर का लालची रहता है। तभी तक वियोग और रोग का शोक रहता है, तभी तक कष्ट भोगने पड़ते हैं, और पहर-पहर का जीवन युग के समान प्रतीत होता है, तभी तक दुःख और दारिद्रय नित्य ही शरीर को अतिशय कष्ट देते हैं, तभी तक वह लोभ, मोह, काम और क्रोध का दास रहता है, जिससे सब दुःख तो अपने हो जाते हैं और सब सुख पराये हो जाते हैं।

अन्वय—'तौ लौं लोभ, मोह, कोह, काम को किंकर है।' प्रथम पाद में 'लोभ' का समन्वय तृतीय पाद के उत्तरार्द्ध से करना ठीक है।

तब लौं मलीन हीन दीन सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटैं खलाय,
बाए मुँह सहत पराभौ देस देस को।
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को
साथरी को सोइबो ओढ़िबो झूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकीजीवन राम,
राजन को राज सो तौ साहेब महेस को।१२५॥

टिप्पणी—उबेने पायँ=नंगे पाँव। पेटैं खलाय=लोगों को अपना खाली पेट दिखाकर। बाए मुँह=मुँह खोलकर। पराभौ=(सं० पराभव) तिरस्कार, अपमान। दयावनो=दया का पात्र। साथर=चटाई। झूने=झीने, झांझरे, बारीक। खेस=पुरानी रुई और मोटे सूत का बना हुआ खुरदुरा कपड़ा। जीह=जिह्वा। साहेब=स्वामी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि तभी तक मनुष्य पापी, दीन-हीन रहता है, (तभी तक) स्वप्न में भी उसे सुख नहीं मिलता, (तभी तक) वह दुःखी मनुष्य जहाँ कहीं भी जाता है क्लेश का पात्र होता है, तभी तक नंगे पाँव, भूखे पेट और मुँह खोले हुए भटकता हुआ जगह-जगह अपमान सहता है, तभी तक वह दया

का पात्र है, (तभी तक) उसे दरिद्रता का असह्य दुःख है, (तभी तक) उसे चटाई पर सोना और मोटे खुरदुरे कपड़े को ओढ़ना पड़ता है, जब तक उस मनुष्य की जीभ जानकीपति रामचन्द्रजी को न भजे, जो राजाओं के राजा और महादेवजी तक के स्वामी हैं।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव! प्रान हूँ के प्रान हौ।
काल हू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हू के करम, निदान के निदान हौ।
निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।
महिमा अपार काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहबी में नाथ बड़े सावधान हौ॥१२६॥

टिप्पणी—महाभूत=पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश—ये पंचमहाभूत हैं। महाभूतन के महाभूत=पंच महाभूतों से सम्पूर्ण सृष्टि बनती है, उन पंच महाभूतों के भी आदिकारण। निदान=कारण। निगम=वेद। अगम=जहाँ कोई न जा सके, जिसकी थाह कोई न ले सके। एते मान=इतने सम्मान। बोल=वचन। अलंकार=अत्युक्ति।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, आप समर्थों के भी स्वामी हैं, महाराजाओं के भी महाराजा हैं, देवताओं के भी देवता हैं, प्राणों के भी प्राण हैं, काल के भी काल हैं, पंच महाभूतों के भी आदिकारण हैं, कर्म के भी कर्म हैं और कारण के भी कारण हैं। आप वेद को भी अगम हैं और मुझ ऐसों को (भक्तों को) सुलभ हैं। आप और मर्यादा के सागर तथा करुणा के आगार हैं। आपकी महिमा अपार है, आपके किसी वचन का वारापार नहीं (अर्थात् आपकी आज्ञा अटल है)। हे स्वामी, आप अपने इस बड़े प्रभुत्व को निवाहने में बड़े सावधान हैं।

मत्तगयंद सवैया :

आरत-पालु कृपालु जो राम, जेहीं सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े।
सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी', तिहूँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन, पाहन तें परमेसुर काढ़े॥१२७॥

टिप्पणी—आरत-पालु=दुःखियों के रक्षक। जेहि=जिसने भी। सुमिरे=स्मरण किया। अँकरे=(सं० अक्रय) महँगा। खोटेउ=निकम्मे भक्त। तिहूँ ताप=दैहिक, दैविक, भौतिक—ये तीन प्रकार के ताप। डाढ़े=दग्ध, जले हुए। बदौं=मानता हूँ। पाहन=(सं० पाषाण) पत्थर। काढ़े=निकाले, प्रकट करा दिया।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी कृपालु और दुखियों के रक्षक हैं। जिसने भी (जिस स्थान पर) उनका स्मरण किया, उसके लिए उसी स्थान पर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उपस्थित हो जाते हैं। रामनाम के प्रताप की महिमा बड़ी भारी है। इसने खोटों को भी बहुमूल्य और छोटों को भी बड़ा कर दिया। यद्यपि सेवक तो एक-से-एक बढ़कर अनेक हुए, जो तीनों तापों से दग्ध नहीं हुए, पर मैं तो प्रह्लाद का ही प्रेम श्लाघनीय मानता हूँ जिसने पत्थर से भी परमेश्वर को प्रकट करा दिया।

काढ़ि कृपान, कृपा, न कहूँ पितु काल कराल बिलोक न भागे।
'राम कहाँ?' 'सब ठाउँ हैं' 'खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे।
बैरी बिदारि भये बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी 'तुलसी' तब तें सब पाहन पूजन लागे ॥१२८॥

टिप्पणी—काढ़ि=निकालकर। कृपान=(सं० कृपाण) तलवार। ठाउँ=स्थान। नृकेहरि=नृसिंह-अवतार। जागे=प्रकट हुए। बिदारि=फाड़कर, विदीर्ण करके।

भावार्थ—हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मारने के लिए तलवार खींची। उसने अपने पुत्र पर कुछ भी कृपा न की, परन्तु प्रह्लाद भयंकर काल के समान अपने पिता को देखकर भागे नहीं। हिरण्यकशिपु ने पूछा, "बता, तेरा रक्षक राम कहाँ है (इस समय तुझे क्यों नहीं बचाता)?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "मेरे राम सर्वत्र विराजमान हैं।" हिरण्यकशिपु ने पूछा, "क्या इस खम्भे में (जिसमें प्रह्लाद को बाँधा था) भी है?" उसने उत्तर दिया, 'हाँ।' प्रह्लाद के इस 'हाँ' को सुनते ही नरसिंह खम्भा फाड़कर प्रकट हो गये और हिरण्यकशिपु को अपने नखों से विदीर्ण करके बड़े भयंकर बन गये। परन्तु प्रह्लाद की विनय से फिर भक्त के प्रेम के कारण शांत हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि तब से भगवान् पर सबका प्रेम और विश्वास बढ़ गया, और इसी कारण तब से लोग पत्थरों को (उसमें ईश्वर का अस्तित्व समझकर) पूजने लगे।

विशेष—तुलसीदासजी ने इस छंद द्वारा बड़ी युक्ति से मूर्ति-पूजा का समर्थन किया है।

अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें।
आपनी बूझि कहै 'तुलसी', कहिबे की न बावरी बात बिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें ॥१२९॥

टिप्पणी—अंतरजामी=अंतस् ही में जानने योग्य, निर्गुण। बाहरजामी=बाह्य जगत् में जानने योग्य, सगुण रूप। धेनु=गाय। पन्हाई=थन में दूध उतारती हुई। लवाई=हाल की ब्यायी हुई गाय। बावरी=पागलपन की-सी बुरी। बिये तें=दूसरे से। पैज=(सं०) प्रतिज्ञा (प्रा० पइज्जा)।

भावार्थ—ईश्वर के निर्गुण रूप से सगुण रूप श्रेष्ठ है, क्योंकि सगुण-रूप ईश्वर नाम लेते ही अपने भक्त पर कृपा करने को उसी प्रकार दौड़े आते हैं जैसे हाल की ब्यायी हुई गाय दूर से अपने बछड़े का रँभाना सुनते ही स्तनों में दूध उतारकर दौड़ी आती है। तुलसीदास कहते हैं कि मैं अपनी समझ से कहता हूँ, अपनी पागलपने की-सी बातें दूसरे से कहने योग्य नहीं हैं। प्रह्लाद की प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए भगवान् पत्थर से प्रकट हुए, न कि हृदय से।

बालक बोलि दियो बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
पापी है बाप, बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई।
भूरि दई बिषमूरि, भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई।
रामकृपा 'तुलसी' जन को, जग होत भले को भलोई भलाई ॥१३०॥

टिप्पणी—बालक=पुत्र (प्रह्लाद)। खोरि न लाई=कसर न की। भूरि=बहुत। सुधाई=सीधेपन के कारण। सुधा=अमृत। जन=भक्त।

भावार्थ—हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को बुलाकर काल को बलि दे दिया। उस कायर ने पुत्र को मारने के लिए करोड़ों कुचालें चलीं। वह बड़ा पापी पिता था, अतः उसने अपने पुत्र को बड़े-बड़े कष्ट देने में अपनी ओर से कुछ कसर न की। प्रह्लाद को बहुत-से विष-मूल दिये; पर प्रह्लाद की सिधाई के कारण वह भी अमृत की मलाई के समान गुणकारी हुए। तुलसीदास कहते हैं कि इसका कारण भक्तों पर रामचन्द्रजी की कृपा है, और संसार में रामकृपा से भले आदमी की भलाई-ही-भलाई है।

कंस करी ब्रजबासिन पै करतूति कुभांति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपाल बड़े नतपालु गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै 'तुलसी' जग होइ भले को भलाई भलोई ॥१३१॥

टिप्पणी—सुजोधन=दुर्योधन का ही नाम है। भो=हुआ। कलि छोटो=कलियुग का छोटा भाई। छलाई=छल में। कान्ह=कृष्णजी। नतपालु=शरण में आये हुए के रक्षक। नत=झुका हुआ (सं० नम्=झुकना)। खेचर=(खे=आकाश में+चर=भ्रमण करनेवाले राक्षस, घमंडी या अत्याचारी। खीस गए=नष्ट हो गये। खलाई=दुष्टता के कारण।

भावार्थ—कंस ने ब्रजवासियों से बहुत बुरा व्यवहार किया, पर ब्रजवासियों के रक्षक कृष्ण थे, अतः) उसके किये कुछ न हो सका। पांडु के पुत्र सुपुत्र थे, और कुपुत्र दुर्योधन तो छल करने में इतना निपुण था मानों वह कलियुग का छोटा भाई हो (पर कृष्णजी पांडवों के सहायक थे, अतः उनको कुछ भी हानि न पहुँचा सका)। कृष्णजी बड़े कृपालु और शरणागतों के रक्षक हैं; अतः अपनी दुष्टता के कारण दुष्ट अत्याचारी नष्ट हो गये। तुलसीदास विश्वासपूर्वक ठीक कहते हैं कि संसार में भले को भलाई-ही-भलाई है।

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं।
ते मिलए धरि, धूरि, सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँहीं।
बेद पुरान कहै, जग जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं ॥१३२॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—अवनीस=(सं० अवनि=पृथ्वी+ईश=राजा। **दानव**=कश्यप की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न संतान दानव कहलाती है (दानव लोग भी देवताओं के वैरी थे)। **सतावन**=सतानेवाला। **घाटि रच्यो**=बुराई का आयोजन किया। ते=वे। **जग जान**=संसार भी जानता है। **जे चलते बहु छत्र की छाँहीं**=जिनके ऊपर राजछत्र सदा छाया रहता था, छत्र की छाया में चलने के कारण जिन पर धूल भी नहीं पड़ने पाती थी। **गुमान**=अभिमान। **भावत**=अच्छा लगना।

भावार्थ—इस पृथ्वी पर अनेक बड़े-बड़े राजा हुए हैं, जिनके डर के कारण देवता शोच से सूख जाते थे। मनुष्य, दानव और देवताओं को सतानेवाला रावण, जिसने संसार में बुरा आयोजन किया और दुर्योधनादिक बड़े-बड़े प्रतापशाली राजा, जिनके ऊपर सदा राजछत्र तने रहते थे, केवल अभिमान के कारण धूल में मिल गये। वेद और पुराणों ने भी कहा है, और सारा संसार भी इस बात को जानता है कि भगवान् को घमण्ड अच्छा नहीं लगता।

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं तेहि सों तरजी।
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी॥१३३॥

टिप्पणी—**ठई**=ठानी। **स्याम**=कृष्ण। **स्यानी**=(सं० सज्ञान) चतुर। **हौं**=मुझे। **बरजी**=मना किया, प्रीति करने से रोका। **जान्यो**=जानती है। **झुकी**=नाराज हुई। **तरजी**=दण्ड दिया, निरादर किया। **पट**=वस्त्र। **नेह के घाले सों**=स्नेह करने से। **ब्योंत करै**=काट-छाँट करता है, दुबला बना देता है। **बिरहा दरजी**=विरह-रूपी दरजी। **भृंग**=भौंरा। **अनंग**=कामदेव। **जिय को गरजी**=प्राणों का ग्राहक।

प्रकरण—कृष्णजी के मथुरा जाने पर गोपियाँ कृष्ण के विरह में व्याकुल थीं। कृष्ण ने उद्धवजी को गोपियों को समझाने के लिए भेजा। उद्धवजी उनको प्रेम-मार्ग छोड़कर योगमार्ग में जाने का उपदेश देने लगे। अतः प्रेम-मार्ग की उपासिका गोपियाँ उद्धव को भ्रमर मानकर उलाहना देती हैं। ऐसे काव्य को 'भ्रमर-गीत' कहते हैं। इसके आगे के दो छन्द और भी 'भ्रमर-गीत' के हैं।

भावार्थ—एक गोपी उद्धव को भ्रमर संज्ञा देकर कहती है—जब मेरे इन नेत्रों ने ठग कृष्ण से प्रीति लगायी तब चतुर सखी ने मुझे (कृष्ण से प्रीति करने से) मना किया। उसने अप्रसन्न होकर कहा कि नहीं जानती कि आगे वियोग-रूपी कोई रोग भी है। तब मैंने उसको निरादर-रूपी दण्ड दिया। अब मेरा शरीर स्नेह करने के कारण वस्त्र के समान हो गया है और विरह-रूपी दरजी उस वस्त्र की काट-छाँट करता है। (तात्पर्य यह है कि विरह के कारण मेरी देह दुर्बल होती जाती है।) हे भ्रमर! सुनो, नन्द के कुमार श्रीकृष्ण के बिना कामदेव हमारे प्राणों का ग्राहक हो गया है। (अर्थात् कृष्ण के वियोग के कारण हमारे प्राण छूटना चाहते हैं।)

जोग-कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।
जाहि लगै पर जानै सोई 'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैंगी कछु मोटि कला की॥१३४॥

टिप्पणी—पठई भेजी। **सठ चेरी**=दुष्टा दासी अर्थात् कुब्जा कुबड़ी। **चाल चलाकी**=(मुहावरा) धूर्तता, चालाकी की चाल। **कुबरी**=(१) कुबड़ी (२) कु (बुरी)+बरी (ब्याहा)। **सो**=जिसको। **बरी**=ब्याहा। **नटनागर**=चतुर खिलाड़ी। **हलाकी**=मार डालनेवाला, घातक। **जाहि लगै पर जानै सोई**=जिस पर बीतती है वही जानता है। **सुहागिनि**=सौभाग्यवती। **जानपनी**=ज्ञानपना, ज्ञानीपन। **हरि**=कृष्ण। **बाँधियैंगी** (हम भी) बाँधेंगी। **मोटि**=गठरी।

भावार्थ—हे उद्धवजी! कृष्ण ने ब्रज को (आपके द्वारा हमें सिखलाने को) योग की कथा भेजी है, यह सब उसी दुष्टा कुबड़ी की धूर्तता है, जिसने चतुर खिलाड़ी और घातक कृष्ण को भी एक दृष्टि देखते ही वरण कर लिया, भला वह कुबड़ी क्यों न ऐसा सन्देश भेजे। परन्तु जिस पर बीतती है वही जानता है कि वियोग की व्यथा क्या पदार्थ है। वह तो कृष्ण की सौभाग्यवती (संयोगिनी) है। (हमारे वियोग के दुःख को क्या समझे।) अब हमने कृष्ण का ज्ञानीपन जान लिया है। (वे उसकी कुबड़ी पीठ देखकर लुब्ध हो गये।) अतः हम भी किसी कला की गठरी अपनी पीठ पर बाँध लेंगी।

मनहरण कवित्त :

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ,
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार,
खाल को कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-साल को।
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति,
निपुन बिबेक है निदेस देसकाल को।
'तुलसी' कहे न बनै, रहे ही बनैगी सब
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को॥१३५॥

टिप्पणी—पठयो है=भेजा है। **छपद**=(सं० षट्पद) भ्रमर। **छबीले**=छबिवाले, सुन्दर। **कैहूँ**=किसी प्रकार से। **कहूँ**=कहीं से। **खोजि कै**=ढूँढ़ कर। **खवास**=सेवक। **खासो**=प्रसिद्ध। **बाल**=(सोलह वर्ष की स्त्री बाल कहलाती है) युवती स्त्री। **ज्ञान को गढ़ैया**=ज्ञान की बातें बनानेवाला। **गिरा**=वाणी। **बिनु गिरा को पढ़ैया**=बिना वाणी के पढ़नेवाला। **बार-खाल को कढ़ैया**=बाल की खाल खींचनेवाला। **बढ़ैया उर-साल को**-हृदय के कष्ट को बढ़ानेवाला। **प्रीति को बधिक**=प्रीति की हत्या करनेवाला। **अधिक**=और भी अधिक (हत्यारे से भी बढ़कर)। **निदेस**=आज्ञा। **जोग**=संयोग, अवसर। **अलंकार**—हेतु (द्वितीय)—'नन्दलाल का वियोग ही योग का संयोग' होने से।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावार्थ—छबीले कृष्ण ने, किसी प्रकार (बड़ी मुश्किल से) कहीं से खोजकर कुबड़ी के उत्तम सेवक को भ्रमर-रूप से भेजा है। यह भ्रमर गढ़-गढ़कर ज्ञान की बातें करनेवाला, बिना वाणी के ही पढ़नेवाला (केवल गुंजार करनेवाला), बाल की खाल खींचनेवाला और हृदय की पीड़ा को बढ़ानेवाला है। यह प्रीति का वधिक है और इस रीति (शृंगार-भाव) के लिए तो हत्यारे से भी बढ़कर है, नीति में निपुण और विवेकी है, सो यह बात देश और काल की आज्ञा के अनुसार ही है (हमारा समय ही ऐसा बुरा आ गया है)। अतः इसकी बातों का उत्तर देना ठीक नहीं, सब सह लेना ही ठीक है; क्योंकि जब नंदलाल से वियोग हो गया, तब योग करने का संयोग आ ही गया। (अब उनके वियोग में योगिनी बनना ही उचित है।

हनुमान ह्वै कृपालु, लाड़िले लखन लाल,
भावते, भरत कीजै सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे ते आपु ही सुधार लीजै भाय जू।
मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसति
देबि! क्यों न दास को दिखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझिबे की बानि राम रीझत है,
रीझे ह्वै हैं राम की दुहाई रघुराय जू ॥१३६॥

टिप्पणी—ह्वै=होकर। लाड़िले=प्यारे। भावते=प्यारे। बिगरे ते=बिगड़ने से, अर्थात् यदि मुझसे बिनती न करते बनी हो। भाय जू=भाईजी। साहिबिनी=स्वामिनी। बिलसत=विशेष प्रकार से लसती है अर्थात् शोभायमान है। **खीझहू में**=क्रोध में भी। **रीझिबे की बानि**=प्रसन्न होने के स्वभाव से। **रीझे ह्वै हैं**=प्रसन्न हुए होंगे।

भावार्थ—हे हनुमानजी, हे प्यारे लक्ष्मणजी, हे प्यारे भरतजी, कृपालु होकर मुझ सेवक की सहायता कीजिए। मैं दीन, दुर्बल और दया का पात्र आपसे विनती करता हूँ। अगर मुझसे विनती करते न बनी हो तो आप बात सुधार लीजिएगा। हे मेरी मालकिन सीताजी, (अथवा तुलसीजी) आप तो सदा ही सबके शिरोभूषण हो, अतः हे देवि, मुझ दास को अपने चरण क्यों नहीं दिखलाती (दर्शन क्यों नहीं देतीं? श्रीरामजी का तो यह स्वभाव है कि वे क्रोध में भी रीझते हैं। अतएव मैं रामचन्द्रजी की शपथ लेकर कहता हूँ कि रामचन्द्रजी मुझसे प्रसन्न ही होंगे (अतः आप भी सिफारिश कर दीजिए तो मेरा काम बन जाय)।

मत्तगयंद सवैया :

बेष बिराग को, राग भरो मनु, माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेंचि हौं पातकी पामर प्रानिन पोसों।
एते बड़े अपराधी अघी कहुँ तैं कहु अंब! कि मेरो तू मोसों।
स्वारथ को परमारथ को परिपूरन भो फिरि घाटि न होसों ॥१३७॥

टिप्पणी—राग=सांसारिक सुखों से प्रेम। **सतिभाव**=सत्य भाव से, निष्कपट मन से। **पामर**=नीच। **पोसों**=पुष्ट करता हूँ। पालन करता हूँ। **एते**=इतने। **अघी**=पापी। **घाटि**=कमती। **घाटि न होसों**=कमती न होगी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे माता, मैं आपसे शुद्ध चित्त से कहता हूँ कि यद्यपि मेरा वेश वैरागियों का-सा है, तथापि मन अभी सांसारिक सुखों में लगा हुआ है। मैं नीच पापी आपके ही स्वामी रामचन्द्रजी का नाम बेचकर अर्थात् राम के नाम पर भीख माँगकर अपने प्राणों की रक्षा करता हूँ। हे माता, इतने बड़े अपराधी और पापी से तू कह दे, 'तू मेरा है' तो बस फिर स्वार्थ और परमार्थ सब पूरे हो जायेंगे, किसी बात की कमती न होगी। (ऐसा मेरा विश्वास है।)

कवित्त—सीतामढ़ी का वर्णन :

जहाँ बालमीकि भए ब्याध ते मुनींद्र साधु;
'मरा-मरा' जपे सुनि सिख ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुश को जनमथल
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की।
बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहै
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि
अंकित जो जानकी चरन-जलजात की ॥१३८॥

टिप्पणी—सिख=(सं०) शिक्षा। ऋषि सात की=सप्तर्षियों की। गरै=गल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। गात=(सं० गात्र) शरीर। बिटप=(सं०) वृक्ष। **सुरसरित**=गंगाजी। सीतावट=उस वृक्ष का नाम, जहाँ सीताजी रही थीं। पेखत=(सं० प्र० + ईक्ष) देखने से। बारिपुर=ग्राम-विशेष। दिगपुर=ग्राम-विशेष। जलजात=कमल। अंकित=चिह्नित।

भावार्थ—जिस स्थान पर सप्तर्षियों का उपदेश सुनकर 'मरा-मरा' (राम-नाम का उल्टा)। जपने से ही वाल्मीकि जी वधिक से सज्जन और मुनियों में श्रेष्ठ हो गये, जो स्थान सीता के रहने का था, जो लवकुश की जन्म-भूमि थी, जिस स्थान की छाया के स्पर्श से भी शरीर के (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के ताप नष्ट हो जाते हैं, जिस भूमि पर गंगाजी के समीप सीतावट नामक वृक्षों का राजा (अर्थात् अति श्रेष्ठ वृक्ष) शोभायमान है, जिसको देखने से ही पापी पवित्र हो जाता है, और जो सीताजी के चरण-कमलों से चिह्नित है। (अर्थात् जिस स्थान पर सीताजी के चरण पड़े हैं), 'सीतामढ़ी' नामक वह भूमि बारिपुर और दिगपुर के बीच शोभायमान है।

नोट—यह स्थान झाँसी से कुछ दूर पूर्व 'भीटी' नामक स्टेशन के पास गंगा तट पर है। 'दिगपुर' को अब 'दीप' वा 'दिघउर' कहते हैं। 'बारिपुर' का मुझे पता नहीं चला।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मरकत-बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख बेष हर है।
सुषमा को ढेर, कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगल को घर है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
प्रतीति मानि 'तुलसी' विचार काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनि अवनि सोहै।
राम-रमनी को बट कलि काम-तरु है ॥१३९॥

टिप्पणी—**मरकत-बरन**=पन्ना रत्न के समान, अर्थात् हरे वर्ण के। **बरन**=(सं० वर्ण) रंग। **परन**=(सं० पर्ण) पत्ते। **लसै**=सुशोभित है। **रूख**=(सं० वृक्ष; प्रा० रूक्ख) पेड़। **हर**=शिवजी। **सुषमा**=(सं० सुषमा) परम शोभा (अत्यन्त शोभा को सुषमा कहते हैं।)। **सुकृत सुमेरु**=पुण्यों का पर्वत। **सुमेरु**=यहाँ 'पर्वत' अर्थ में प्रयुक्त है। **मुद**=(सं०) आनन्द। **अभिमत**=मन का इच्छित पदार्थ। **काको थरु है**=यह किसका स्थान है। (ध्वनि से यह अर्थ निकलता है कि यह स्थान सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली जगज्जननी सीताजी का है किसी ऐसे वैसे का नहीं)। **अवनि**=पृथ्वी। **राम-रमनी**=सीताजी। **कलि**=कलियुग में। **कामतरु**=मनोकामनाओं को देनेवाला कल्पवृक्ष।

भावार्थ—(सीतावट के) पन्ना के रंग के पत्ते और मानिक-समान फल हैं। उसपर जटाजूट ऐसे शोभायमान हैं मानो साक्षात् शिवजी वृक्ष के वेष में विराजे हों, यह वृक्ष अत्यन्त शोभा का ढेर है, या पुण्यों का पर्वत है, अथवा संपत्ति और सम्पूर्ण आनन्द-मंगल का घर है। अगर प्रीति-सहित उसकी सेवा करो तो वह सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करता है। तुलसीदास कहते हैं कि वह स्थान किसका है (अर्थात् सब मनोरथों की दात्री जगज्जननी सीताजी का है)। यह विचार कर मेरी बात पर विश्वास करो। गंगा के निकट सुन्दर (सीतामढ़ी नामक) स्थान में वह सीतावट शोभायमान है, जो कलियुग में कल्पवृक्ष है।

देवधुनि-पास मुनिबास सो-निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि, डीठि बाहरी निहारि हैं।
'आयसु', 'आदेस', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध',
'तुलसी' विचार जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तो कामतरु तें अधिक,
सीयबट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

टिप्पणी—**धुनी**=(सं०) नदी। **देवधुनि**=गंगाजी। **सी**=सीताजी। **प्राकृत बट**=साधारण वट वृक्ष। **बूट**=वृक्ष। **पुरारि**=त्रिपुर नामक दैत्य के अरि

शिवजी। **पीठ**=पवित्र स्थान। **रागिन पै**=सांसारिक विषयों से अनुरक्तों के लिए। **सीठि**=नीरस। **डीठि**=(सं) दृष्टि। **आयसु** .... 'भावसिद्ध'=साधु-सन्तों के बोलचाल के वाक्य; अर्थात् वहाँ के रहनेवाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दों का व्यवहार करते हैं। **करतल फल चारि हैं**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों फलों का पाना तो इतना सुलभ है, जैसे हथेली में रखी हुई वस्तु का पाना, अर्थात् अत्यंत सुलभ है। अधिक इस कारण कि कल्पवृक्ष केवल अर्थ, धर्म, काम का देनेवाला है, पर यह वटवृक्ष मोक्ष भी देता है। **अलंकार**—समुच्चय और व्यतिरेक।

भावार्थ—साधारण वटवृक्ष भी शिव का निवास माना जाता है, फिर यह वट तो गंगा के निकट है, जहाँ मुनियों की कुटियाँ हैं और जहाँ सीताजी का निवास-स्थान रहा है। वह स्थान योग, जप और यज्ञ करने के लिए और वैराग्य-साधन के लिए पवित्र है। पर सांसारिक सुखों में लिप्त और बाहरी दृष्टि से देखने वालों के लिए वह स्थान नीरस है। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ ऐसे योगी बसते हैं, जो परस्पर शिष्टाचार-सूचक 'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो-भलो' 'भावसिद्ध' आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं। (अर्थात् अत्यंत शिष्ट साधुजन का निवास वहाँ अब भी है।) रामभक्तों के लिए तो यह सीतावट कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है, और इसकी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल करतलगत (अत्यंत सुलभ) हो जाते हैं।

चित्रकूट-माहात्म्य :

जहाँ बन पावनो, सुहावने, बिहंग मृग,
देख अति लागत अनंद खेत खूँट सो।
सीता-राम-लखन निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो।
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
'तुलसी' जो राम सो सनेह सांचो चाहिए,
तौ सेइए सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥१४१॥

टिप्पणी—**खेत खूँट सो**=खेत के टुकड़े की भाँति अत्यन्त हरा-भरा। **बिबेक**=भले-बुरे का ज्ञान। **बूट**=वृक्ष। **बारि** (सं० वारि)=जल। **मंजुल**=सुन्दर। **सेइए**=सेवा कीजिए।

भावार्थ—जहाँ पवित्र वन है, सुन्दर सुहावने पक्षी और पशु हैं, जिस स्थान को खेत के टुकड़े की भाँति हरा-भरा देखकर अत्यंत आनन्द होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण रहते थे, जो मुनियों का वासस्थान है, जो सिद्ध, साधु और साधक सभी के लिए ज्ञानरूपी वृक्ष है (अर्थात् जहाँ सभी ज्ञान प्राप्त करते हैं), जहाँ ठंडा और पवित्र जल गिराते हुए झरने झरते हैं, जहाँ महादेवजी के जटाजूट से निकली हुई सुन्दर मंदाकिनी जी हैं। यथा—सुरसरिधार नाम मंदाकिनि,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तुलसीदास कहते हैं कि अगर रामचन्द्रजी से सच्चा स्नेह चाहते हो तो स्नेहपूर्वक ऐसे (उपर्युक्त प्रकार के) विचित्र चित्रकूट पर्वत की सेवा करो (अर्थात् वहां रहो)।

मोहबन कलिमल-पल पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय को निवारिहै।
दीन्ही है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै।
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,
बारि-धार, धरि धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट-अचल अहेरी बैठ्यो घात मानों,
पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै ॥१४२॥

टिप्पणी—मोहबन=अज्ञानरूपी वन में। कलिमल=पाप। पल=मांस। पीन=पुष्ट, मोटा। पल पीन=मांस के मोटे-ताजे। निवारिहै=हटायगा। रजाइ=आज्ञा। पाइ सो=उस आज्ञा के बल पर। सहाइ लाल-लषन=और लषन की सहायता पाकर। हेरि हेरि=खोज-खोजकर। मंजुल=सुन्दर। कमान=धनुष। असि=ऐसी, समान। बारि-धार=मंदाकिनी के जल की लहरें। सुकर=(स्वकर) अपने हाथ से। अचल=(अ+चल) जो चले नहीं, यहां पर्वत से तात्पर्य है। अहेरी=आखेटी, शिकारी। घात बैठ्यो=दाँव ताककर बैठा है। पातक के ब्रात=पाप के समूह। सावज=जंगली जानवर। अलंकार=रूपक।

भावार्थ—चित्रकूट पर्वत एक शिकारी है, जो दाँव ताककर बैठा है, मानों पाप-समूह-रूपी जंगली जानवरों को अवश्य मारेगा। मोह-रूपी वन में इन पापों को मोटा-ताजा समझकर (उन्हें मारकर) साधु, गाय और ब्राह्मणों के भय को हटायगा। ऐसा करने के लिए श्रीरामजी ने उसे आज्ञा दी है, वह आज्ञा पाकर और समर्थ वीर लक्ष्मणलाल की मदद पाकर समस्त पाप-रूपी सावजों को खोज-खोजकर मारेगा। ऐसा शिकार करने के लिए उसके पास सुन्दर मंदाकिनी ऐसी कमान और उसकी जल-तरंगें ही बाण-सम हैं; उन्हीं को वह धैर्यपूर्वक अपने हाथों में धारण करेगा।

नोट—मेरी सम्मति में लेखकों के प्रमाद से, कवित्त के लिखते समय दूसरे चरण के स्थान पर तीसरा और तीसरे के स्थान पर दूसरा चरण लिख गया है, क्योंकि ऐसा करने से रूपक के संगठन में सुसंगति आ जाती है, अन्यथा कुछ शिथिलता जान पड़ती है।

सवैया :

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी।
चारुचुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।
क्यों कहि जाति महा सुषमा उपमा तकि ताकत है कबि कौ की।
मानों लसी 'तुलसी' हनुमान हिये जगजीति जराय की चौकी ॥१४३॥

टिप्पणी—दवारि=वन की अग्नि। ठही=ठहरकर, जमकर, अच्छी तरह। लहकी=लहकाई, प्रज्वलित की। खर खौकी=तृण को खानेवाली अर्थात् आग। चारु=सुन्दर। चुवा=चौवा, चतुष्पद (मृगादि)। लपटं=ज्वालाएँ। तमीचर=राक्षस। तौंकी=तौंककर, आंच से तपकर। कौ की=कब की, बड़ी देर से। तकि=तर्कना करके, विचार करके। लसी=शोभायमान हुई। जराय की चौकी=जड़ाऊ चौकी नगदार पदिक। अलंकार=उत्प्रेक्षा।

प्रकरण—एक समय चित्रकूट में हनुमान-धारा के पास दावाग्नि लगी। तुलसीदासजी उस समय वहां उपस्थित थे। उसी दृश्य का वर्णन इस छंद में है।

भावार्थ—पहाड़ में दावाग्नि खूब अच्छी तरह से इस प्रकार लगी हुई है, जैसे हनुमान ने लंका में आग लगायी थी। दावाग्नि के ताप से तपकर सुन्दर पशु चारों ओर से इस प्रकार भागे जाते हैं, जैसे लंका में आग के लपट से तपकर राक्षस लोग इधर-उधर भागे थे। उस समय की अत्यधिक सुषमा का वर्णन कैसे किया जाय। कवि (तुलसीदास) उसकी उपमा को विचारते हुए बड़ी देर से ताकते रह गये हैं, जब कोई उपमा न सूझी तब (तुलसीदास) उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानों संसार-भर में सर्वोत्तम विजयी होने के कारण हनुमानजी के हृदय में रामचन्द्रजी की ओर से जड़ाऊ पदिक (पुरस्कार-स्वरूप) शोभायमान है।

गंगा-यमुना-संगम-वर्णन :

देव कहैं अपनी अपना 'अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥१४४॥

टिप्पणी—अपनी अपना=परस्पर। अवलोकन=दर्शन को। तीरथराज=प्रयाग। निमज्जत=स्नान करते हैं। सितासित=(सित=सफेद+असित=काला) गंगा-यमुना। हुलसै=उल्लसित होता है, आनंदित होता है। हेरि=देखकर। हलोरे=तरंगें। चारु=सुन्दर। बगरे=फैले हुए। सुरधेनु=कामधेनु। धौल=(सं० धवल) सफेद। कलोरे=बछड़े। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—सब देवता परस्पर कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग के दर्शन को चलो। प्रयागराज के दर्शन से बड़े-बड़े अपराध नष्ट हो जाते हैं। वहां साधुओं के समूह स्नान करते हैं। श्वेत जलवाली गंगा और नीले जलवाली यमुना का संगम अति ही सुहावना है। उस स्थान पर दोनों नदियों की तरंगें देखकर मेरा (तुलसीदास का) मन आनन्दित होता है। वह दृश्य ऐसा दिखलाई देता है मानो इधर-उधर फैले हुए कामधेनु के सफेद बछड़े (गंगा की तरंगें) सुन्दर हरे-हरे तृणों को (यमुना की तरंगों को) चर रहे हैं।

नोट—संगम में यमुना की लहरें गंगा की लहरों में लीन हो जाती हैं (यमुनाजी गंगाजी में लीन हो जाती हैं) अत्यन्त विचारपूर्ण और उत्तम उत्प्रेक्षा है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥१४५॥

टिप्पणी—देवनदी = गंगा। उधारे = उद्धार किया। सुरनारि = यहाँ अप्सराओं से तात्पर्य है। सुरेस = इंद्र। बिरंचि = ब्रह्मा। ओक = घर। हरिलोक = वैकुंठ। अलंकार = अत्यंतातिशयोक्ति।

भावार्थ—ज्यों ही किसी ने गंगास्नान जाने की इच्छा की त्यों ही उस मनुष्य के करोड़ों पीढ़ी के पुरखे तर जाते हैं। उसको गंगास्नान करने को चला हुआ देखकर अप्सराएँ उसको वरण करने के लिए झगड़ने लगती हैं। इंद्र उसको स्वर्ग में ले जाने के लिए विमान सजाकर तैयार करने लगते हैं। ब्रह्मा, जो गंगा का माहात्म्य जानते हैं, उसकी पूजा करने की सामग्री एकत्र करने लगते हैं। तुलसी कहते हैं कि हे गंगाजी, आपकी तरंगों के दर्शन से ही (निकट पहुँचते ही) दर्शक के लिए वैकुंठ में घर की नींव पड़ जाती है (तो स्नान करने का महात्म्य मैं क्या कहूँ ?)।

ब्रह्म जो ब्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को।
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को ॥१४६॥

टिप्पणी—जो = जिसको। गम नाहिं = गम्य नहीं है (जिसको जान नहीं सकते)। गिरा = सरस्वती। करता = उत्पन्न करनेवाला। भरता = भरण-पोषण करनेवाला। हरता = संसार करनेवाला। दुनी = दुनिया। द्रवरूप = जल-रूप। सही = सत्य ही, वास्तव में। देवधुनि = गंगा।

भावार्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा को वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिस परमात्मा के गुण और ज्ञान की थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सके, जो ब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता है, देवताओं में श्रेष्ठ और दीन-दुनिया का स्वामी है, जो वास्तव में ब्रह्मा, शिव और मुनियों का स्वामी है, वही विष्णु भगवान् जल रूप हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह विश्वास मानकर नित्य गंगा-जल का सेवन क्यों नहीं करते हो ?

विशेष—गंगाजी विष्णु के चरणों से निकली हैं और ऐसा ही माना जाता है कि गंगाजी परमेश्वर का द्रवरूप हैं।

बारि तिहारो निहारि, मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो।
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तब तीर रहौंगो।
भागीरथी ! बनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो ॥१४७॥

टिप्पणी—बारि = जल। मुरारि = मुर नामक दैत्य के शत्रु, विष्णु भगवान। परसे = स्पर्श करने से। पद = पैरों से। लहौंगो = (सं० लभ् से लह) प्राप्त करूँगा। ईस = शिव। दोष दहौंगो = दोष से दग्ध होऊँगा। बरु = भले ही। बारहिं बार शरीर धरौं = बार-बार जन्म धारण करूँ। तीर = तट पर। बहोरि = फिर। न खोरि लगै = दोष न लगे।

भावार्थ—हे गंगे ! यह जानकर कि तुम जलरूप ईश्वर ही हो, तुम्हें अपने चरणों से स्पर्श करने से मुझे पाप लगेगा (इसीसे मैं तुममें पैठकर स्नान नहीं करता) शिव के समान सिर पर धारण करने में भी डरता हूँ कि बड़ों की बराबरी करने से बड़े भारी दोष में दग्ध हो जाऊँगा (इसीसे सिर पर भी तुम्हारा जल नहीं छिड़कता)। (तुम्हारा इस प्रकार अनादर करने से) मुझे भले ही अनेक बार जन्म लेना पड़े, पर मैं तो रामचन्द्रजी का भक्त होकर तुम्हारे तट पर निवास करूँगा (स्नान चाहे न करूँ)। हे गंगे, मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि जिससे फिर मुझे दोष न लगे। मैं ऐसा ही सत्य वचन कहूँगा। (तात्पर्य यह है कि गंगातट पर रहकर भी जो मैं गंगा-स्नान करने नहीं जाता उसका कारण आपका निरादर नहीं वरन् रामभजन में संलग्नता है।)

कवित्त :

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
　　बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै, बिबाह कै, उछाह कछू,
　　डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना।
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
　　चाहत अहारन पहार, दारि घूरना।
सोक को अगार दुखभार-भरो तौ लौं जन,
　　जौ लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥१४८॥

टिप्पणी—बिसूरना = चिन्ता, शोच। सराध = (सं० श्राद्ध) पितृ-कर्म। उछाह = उत्सव। डोलै = भटकता है। लोल = चंचल। बूझत सबद ढोल तूरना = ढोल और तूरी के शब्द सुनकर पूछने लगता है (कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं)। अहारन पहार = आहारों के पहाड़, अर्थात् अपरिमित भोजन। दारि = दाल का दाना। घूरना = घूरे पर बीनने से भी नहीं मिलता। दुखभार-भरो = दुःख के बोझ से भरा हुआ। द्रवै = पिघले अर्थात् दया करे।

भावार्थ—लालची टुकड़े-टुकड़े के लिए लालायित होकर दरवाजे-दरवाजे दीन होकर बिललाता है, उसका मुँह मलिन हो जाता है और मन की चिन्ता नहीं मिटती। कहीं श्राद्ध या विवाह या कोई उत्सव तो नहीं, इसकी टोह में लगा रहता है। अस्थिर होकर इधर-उधर फिरता रहता है और ढोल और तूरी के शब्द सुनकर पूछने लगता है कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं, जिसमें कुछ खाने को मिले। अत्यंत प्यासा होने पर भी उसे पीने को जल नहीं मिलता, अतिशय भूखा होने पर भी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उसे खाने को चने के चार दाने भी नहीं मिलते। वह चाहता तो है अपरिमित भोजन, पर उसे घुरबिनिया करने पर भी एक दाना दाल का भी नहीं मिलता। ऐसा आदमी तभी तक शोक का घर है और दुःख के बोझ से दबा हुआ रहता है जब तक उसपर भवानी अन्नपूर्णाजी कृपा न करें।

छप्पय :

भस्म अंग, मर्दन, अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर।
मुंडमाल बिधुबाल, भाल, डमरू करालकर।
बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चंद, सुख छंद, सूलधर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिष भोजन भवभय-हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ सिव सिव संकरसरन ॥१४९॥

टिप्पणी—**मर्दन**=नाश करनेवाले। **अनंग**=कामदेव। **संतत असंग**= निरंतर एकांत में रहनेवाले। **हर**=संहारकर्त्ता। **गिरिजा**=गिरि (हिमालय) की पुत्री पार्वतीजी। **अधंग**=(सं० अर्द्धांग) आधे (वाम) अंग में। **भुजंगबर**=श्रेष्ठ साँप। **बालबिधु**=द्वितीया का चंद्रमा। **भाल**=मस्तक पर। **डमरू**=शिवजी का बाजा। **कपाल**=खप्पर। **बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चंद**=देव-समूह रूपी नवीन कुमुदों को प्रफुल्ल करने के लिए चंद्रमा के समान। **सुखकंद**=सुख के मूल। **सूल**=त्रिशूल। **त्रिपुरारि**=त्रिपुर नामक दैत्य का शत्रु। **दिग्बसन**=दिशाएँ ही हैं वस्त्र जिनके, अर्थात् नंगे।

भावार्थ—अंग पर विभूति रमाये हुए, कामदेव को भस्म करनेवाले, सदा एकाकी रहनेवाले, जगत् के संहारकर्त्ता, शिर पर गंगा, बाएँ अंग में पार्वतीजी को धारण किये हुए, श्रेष्ठ सर्पों के भूषण पहने हुए, गले में मुंडमाला, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा और हाथों में डमरू और खप्पर लिये हुए, देवगण-रूपी नवीन कुमुदों को प्रफुल्लित करने के लिए चंद्रमा के तुल्य, सुख के मूल, त्रिशूल धारण किये हुए, त्रिपुर दैत्य के शत्रु, त्रिलोचन, नग्न, कालकूट विष का भक्षण करनेवाले, सांसारिक अर्थात् जन्म-मरण के भय से छुड़ानेवाले और जिनकी सेवा करने से तीनों लोकों, तीनों कालों में कल्याण प्राप्त करना सुलभ है, तुलसीदास कहते हैं कि मैं ऐसे शंकर (कल्याण-कर्त्ता) की शरण हूँ।

गरल असन, दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जन-रंजन।
कुंद-इंदु-कपूर-गौर, सच्चिदानन्द घन।
बिकट बेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव, अकाम, अभिराम, धाम, नित रामनाम रुचि।
कन्दर्प-दर्प दुर्गम दवन, उमारवन गुनभवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जय त्रिदस-बर ॥१५०॥

टिप्पणी—**गरल**=विष, हलाहल। **असन**=(सं० अशन) भोजन। **ब्यसन-भंजन**=बुरे स्वभाव को तोड़नेवाले। **जन-रंजन**=लोगों को आनन्दित करनेवाले। **कुन्द**=एक प्रकार का फूल। **इंदु**=चन्द्रमा। **कुन्द-इंदु-कपूर-गौर**=कुन्द, चन्द्रमा और कपूर के समान श्वेत वर्णवाले। **सच्चिदानन्द घन**=सत्, चित् और आनन्द का समूह। **बिकट**=भयंकर। **सेष**=सर्प। **अकाम**=इच्छा-रहित। **सिव**= (सं० शिव) कल्याण-स्वरूप। **अभिराम**=आनंद। **धाम**=घर। **कंदर्प**=कामदेव। **दुर्गम कंदर्प-दर्प दवन (दमन)**=कामदेव के बड़े भारी अभियान का नाश करनेवाले। **उमा-रमन**=उमा-रमण। **हर**=संहार-कर्त्ता। **त्रिगुन पर**=सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों से परे। **त्रिदस-बर**=देवताओं में श्रेष्ठ।

भावार्थ—विषभोजी, नग्न, दुःखों का नाश करनेवाले, लोगों को आनन्द-दायक कुन्द, चन्द्रमा और कपूर के समान गौर वर्ण; सत्, चित् और आनन्द के समूह; भयंकर वेश धारण किये हुए; छाती पर साँप का जनेऊ पहने हुए; सिर पर स्वभाव से ही पवित्र गंगाजी को धारण किये हुए; कल्याण स्वरूप, इच्छा-रहित, आनन्द के घर, नित्य रामनाम से प्रेम करनेवाले, कामदेव के बड़े भारी अभिमान को चूर-चूर करनेवाले, पार्वतीजी के स्वामी, समस्त सद्गुणों के घर, जगत् के संहार-कर्त्ता, तुलसीदास के स्वामी, त्रिलोचन, सत्त्व, रज—और तम इन तीनों गुणों से परे, त्रिपुर का नाश करनेवाले और देवताओं में श्रेष्ठ—ऐसे शिवजी की जय हो।

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।
बिषम असन, दिग-बसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति।
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष भूति बिभूषन।
नाम सुद्ध अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।
बिकराल भूत-बेताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ 'तुलसिदास' संसयसमन ॥१५१॥

टिप्पणी—**अंगना**=स्त्री। **जोगीस**=योगियों के स्वामी। **जोगपति**= योग के पति। **बिषम असन**=भाँग, धतूरा आदि भोजन करनेवाले। **बिस्वेस**= (सं० विश्वेश) संसार के स्वामी। **बिस्वगति**=संसार-भर को शरण देनेवाले। **ब्याल**=सर्प। **भूति**=विभूति। **अबिरुद्ध**=जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी न हो। **अमर**= कभी न मरनेवाले। **अनवद्य**=निन्दा के अयोग्य अर्थात् स्तुत्य, प्रशंसनीय। **अदूषन**=दोषरहित। **भीम**=भयंकर। **भवभय**=जन्म-मरणादि के भय। **महिमा अकथ**=जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। **संसय समन**=(संशय-शमन) सन्देह को हटानेवाले।

भावार्थ—शिवजी के बाएँ अंग में स्त्री विराजमान है, पर नाम है योगियों के स्वामी और योग के पति। भाँग, धतूरा आदि का भोजन करते हैं और नग्न रहते हैं, पर नाम है संसार के स्वामी और संसार को शरण देनेवाले। हाथ में खप्पर है, सिर पर साँपों की माला लिपटाये हुए हैं, विष (गले में कालकूट विष की नीलिमा) और भस्म ही इनके आभूषण हैं, तिस पर भी नाम है शुद्ध। जिनका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है, जो अमर हैं, स्तुति करने योग्य हैं, दोष-रहित हैं, विकराल भूत-बैताल-प्रिय, ऐसा भयंकर नाम है, तब भी सांसारिक भयों को दूर करते हैं। जो

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सब प्रकार से समर्थ हैं और जिनकी महिमा कही नहीं जा सकती, वही शंकर तुलसीदास के सब संदेहों को मिटानेवाले हैं।

भूतनाथ भयहरन, भीम, भय-भवन भूमिधर।
भानुमंत भगवंत, भूति भूषन भुजंग बर।
भव्य, भाव-बल्लभ, भवेस भवभार-बिभंजन।
भूरि भोग; भैरव, कुजोग-गंजन, जनरंजन।
भारती-बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन भद्रसदन मदन-मयन ॥१५२॥

टिप्पणी—भूतनाथ=भूतों के स्वामी। भीम=भयंकर। भानुमंत=प्रकाशवान्, दिव्य प्रभा से युक्त। भगवंत=ऐश्वर्यवान्। भूति=विभूति, भस्म। भुजंगवर भूषन=सर्पों के भूषण पहने हुए। भव्य=सुन्दर, रोबदार। भाव-बल्लभ=प्रेम अथवा भक्ति को चाहनेवाले। भवेस=संसार के स्वामी। भवभार-बिभंजन=संसार के भार (पाप) का नाश करनेवाले। भूरिभोग=जिसे सब भोग सुलभ हैं। भैरव=भयंकर शब्द करनेवाले। कुजोग-गंजन=दुर्भाग्य को मिटानेवाले। जनरंजन=दासों को आनंदित करनेवाले। भारती=सरस्वती। भारती-बदन=मुँह पर जिनके सरस्वती है। अदन=खानेवाले। सिव=कल्याणकारी। ससि-पतंग-पावक-नयन=चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनकी आँखें हैं। किन भजसि=क्यों नहीं भजता? भद्र-सदन=कल्याण के घर। मयन=(सं० मदन, प्रा० मअन) कामदेव।

भावार्थ—शिवजी भूत-प्रेतों के नाथ हैं, पर लोगों के भय को दूर करते हैं। वे भयंकरों के लिए भी भय के घर हैं, पृथ्वी को धारण करनेवाले हैं, प्रकाशवान् और ऐश्वर्यवान हैं। विभूति और श्रेष्ठ साँप ही (उनके भूषण हैं)। सुन्दर प्रेमभाव ही उनको प्यारा है। वे संसार के स्वामी और पापों का नाश करनेवाले हैं। वे अनेक भोगों के भोक्ता हैं, भयंकर कुयोग के नाशक और लोगों को आनन्द-प्रद हैं। उनके मुख में सरस्वती रहती हैं अर्थात् बड़े वक्ता हैं। वे विष का भोजन करते हैं, पर कल्याण-कर्त्ता हैं; चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उनकी तीनों आँखें हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे मन, तू ऐसे कल्याण के घर, कामदेव के नाशकर्त्ता शिवजी को क्यों नहीं भजता?

नांगो फिरै, कहै मागनों देखि 'न खांगो कछू, जनि मांगिये थोरो'।
रांकनि नाकप रीझि करै, 'तुलसी' जगजो जुरै जाचक जोरो।
'नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहि पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्म कहै 'गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो' ॥१५३॥

टिप्प०—न खांगो कछू=मेरे पास (धन-सम्पत्ति किसी वस्तु की भी) कमी नहीं है। रांकनि=रंकों को, दरिद्रों को। नाकप=(सं० नाक=स्वर्ग+प) इंद्र। रीझि=प्रसन्न होकर। जग जो जुरै जाचक जोरो=संसार में जितने भी याचक जोड़े जुड़ सकते हैं, उन्हें एकत्र करते हैं। नाक सँवारत=स्वर्ग बनाते-बनाते

आयो हौं नाकहि=मेरी नाक में दम आ गया, मैं हैरान हो गया। नाहि पिनाकिहि नेकु निहोरो=शिवजी मेरा थोड़ा भी एहसान नहीं मानते। सिखवो=हटको, बरजो (कि ऐसा न करें)। बावरो=बावला। भोरो=सीधा-सादा, भोला।

भावार्थ—ब्रह्माजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे पार्वती, अपने पति को हटको बरजो)। तुम्हारा पति दानी तो है, पर साथ ही बड़ा पागल और भोला है। अर्थात् किसको किस प्रकार दान देना चाहिए, यह ज्ञान नहीं है) नंगा होकर तो इधर-उधर घूमता फिरता है, पर भिखारियों को देखकर कहता है कि मेरे पास कुछ कमती नहीं है, अतएव जो कुछ माँगना हो, भरपूर माँग लो, थोड़ा मत माँगना। संसार के जितने भी भिखारी उसके जोड़े जुड़ सकते हैं, जोड़ता है और प्रसन्न होकर दरिद्रों को इन्द्र बना देता है। उन इन्द्रों के लिए स्वर्ग बनाते-बनाते मेरी नाक में दम आ गया है, पर शिवजी मेरा जरा भी एहसान नहीं मानते।

बिष-पावक-ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बेताल सखा, भव नाम दलै पल में भव के भय गाढ़े।
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुख दारिद होहि न ठाढ़े।
भौन में भांग, धतुरोई आंगन नंगे के आगे हैं मांगने बाढ़े ॥१५४॥

टिप्पणी—पावक=(सं०) अग्नि। ब्याल=साँप। गरे=गले में। तिहुँ ताप=दैहिक, दैविक, भौतिक—ये तीन प्रकार के कष्ट। न डाढ़े=दग्ध नहीं होते, पीड़ित नहीं होते। भव=(१) शिव का नाम, (२) संसार। दलै=नाश करते हैं। गाढ़े=कठिन। भौन=(सं० भवन) घर। मांगने=भिखारी। बाढ़े हैं=बढ़ गये हैं।

भावार्थ—शिवजी के कंठ में विष है, आँखों में अग्नि है और गले में भयंकर सर्प लटकाये हुए हैं, परन्तु उस पर भी शरणागत तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक अथवा विष-अग्नि सर्प) से दग्ध नहीं होते। भयंकर भूत-बेताल इनके सखा हैं और नाम इनका 'भव' है; फिर भी संसार के बड़े-बड़े भयों को क्षण में नाश कर देते हैं। तुलसीदास के स्वामी शिवजी स्वयं तो बड़े दरिद्री-से हैं, पर उनको स्मरण करने से दुःख और दारिद्र्य पास भी नहीं फटकते। यद्यपि (शिवजी के) घर में भंग और आंगन में धतूरे के वृक्षों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, तब भी इस नंगे के सामने माँगनेवालों की भीड़ लगी रहती है।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, धरन्यो बरदा है।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास जहाँ सब लै मरे दाहैं।
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भांग की टाटनि के परदा हैं।
रांक-सिरोमनि कांकिनिभाग बिलोकत लोकप को ? करदा हैं ॥१५५॥

टिप्पणी—बरदा=(१) वर देनेवाली गंगा, (२) बैल। धाम=घर। कूरो=ढेर। सव=लाश। दाहैं=जलाते हैं। ब्याली=साँपों को (भूषण की तरह) धारण करनेवाला, शिवजी का नाम। कपाली=कपाल (खप्पर) धारण किये हुए, शिव का नाम। ख्याली=कौतुकी। रांक-सिरोमनि=(रंक-शिरोमणि) दरिद्रों में

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

श्रेष्ठ। काकिनिमाग=एक कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाला। बिलोकत=दयादृष्टि से देखते ही। लोकप=लोकपाल। करवा=धूल, मैल। लोकप को=लोकपाल क्या हैं। करवा हैं=धूल हैं, तुच्छ हैं।

भावार्थ—शिवजी के सिर पर वर देनेवाली गंगाजी विराजमान है, स्वयं भी वर देनेवाले (अथवा श्रेष्ठ दानी) हैं, बरदा (बैल) पर ही चढ़े रहते हैं, गृहिणी पार्वती भी वर देनेवाली हैं। पर घर में धतूरे और विभूति का ही ढेर है और निवास भी वहाँ है जहाँ मृतकों के शरीर ले जाकर जलाये जाते हैं (मसान)। सर्प और खप्पर धारण करनेवाले शिवजी बड़े कौतुकी है। भाँग की टट्टियों का तो घर के चारों ओर परदा है, पर दरिद्रों में श्रेष्ठ और कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाले को भी देखते ही इतना संपत्तिवान् बना देते हैं कि लोकपाल भी उसके सामने क्या हैं? केवल धूल-से जान पड़ते हैं।

दानि जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो, भलोई कियो सुमिरे तुलसी को।
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जो पै राधो नहीं पति पारवती को ॥१५६॥

टिप्पणी—चारि पदारथ=धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। सिर टीको=शिरोमणि। भोरे=भोले हैं। भले भाय=सद्भाव, शुद्ध भक्ति। सुमिरे=स्मरण करने से। साधो=सिद्ध किया, लाभ उठाया। राधो=आराधना की।

भावार्थ—जो त्रिपुरारि शिवजी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थों को देनेवाले हैं, और तीनों लोकों में सबके शिरोमणि हैं, बड़े भोले-भाले (अर्थात् थोड़े में प्रसन्न हो जानेवाले) हैं, अपने भक्तों से शुद्ध भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते और जिन्होंने केवल स्मरण करने से ही तुलसीदास का भला किया, ऐसे शिवजी का स्मरण करना छोड़कर तू आशा का दास बना रहा (अर्थात् सांसारिक सुखों की आशा लगाये रहा) और तेरे मन से लालच थोड़ा भी दूर न हुआ। अगर ऐसे पार्वतीपति शिवजी की आराधना नहीं की तो योगादि साधनों से तूने क्या लाभ उठाया?

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है।
पान कियो बिष, भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइ हियो है।
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाय दियो है।
काहे न कान करो बिनती 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियो है ॥१५७॥

टिप्पणी—लोकि लियो है=झपटकर ले लिया, देखकर विष का प्रभाव कम कर दिया। पान कियो=पी लिया। बरुनालय=(वरुण=जल+आलय=घर) समुद्र (वरुण जल के अधिष्ठाता देवता हैं)। करुना-बरुनालय=दया के सागर। किधौं कछु काहू लखाय दियो है=अथवा किसी ने आपको मेरा दोष दिखला दिया है। कान करना=(मुहावरा) सुनना। बिहाल=व्याकुल।

भावार्थ—सब लोगों को (विष से) जलता हुआ देखकर त्रिलोचन शिवजी ने उस विष को झपटकर ग्रहण कर लिया और पी गये, जिससे वह भूषण की भाँति कंठ में स्थित हो गया। अतः हे स्वामी, आपका हृदय तो करुणा का समुद्र है, पर मेरा ही कपाल फोड़ने योग्य है (अर्थात मैं ही अभागा हूँ)। अथवा किसी ने आपको मेरा कोई अपराध दिखलाया है (जो आप मुझपर कृपा नहीं करते)। तुलसीदास कहते हैं कि हे शिवजी, मुझे कलियुग ने पीड़ित किया है, मेरी विनती क्यों नहीं सुनते?

कवित्त :

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाठरी गरद की।
डमरू कपाल कर भूषण कराल ब्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन बरद की।
'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
धर्म अर्थ काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जगति मरद की ॥१५८॥

टिप्पणी—कालकूट=हलाहल विष। अजर=जिसकी जरा (वृद्धावस्था) न आये। अमर=जो मरे नहीं। भवन=घर। मसान=(सं० श्मशान) मरघट। गथ=धन। गरद=विभूति। डमरू=बाजा-विशेष। रीझ=प्रसन्न होते हैं। बरद=बैल। गात=(सं० गात्र) शरीर। बिलसति=सुशोभित होती है। सरद=शरद् ऋतु। चारु=सुन्दर, निर्मल। बिलोकनि=दयादृष्टि में। जोगी मरद की करामाति कासी (में) जगति=इस योगी व्यक्ति की अर्थात् शिवजी की उपर्युक्त करामात काशी में प्रकट होती है। जगति=प्रकट होती है।

भावार्थ—शिवजी ने कालकूट विष को पिया, पर मरने के बदले उनका शरीर अजर और अमर हो गया। उनका घर श्मशान में है, भस्म की पोटली ही उनका धन है, हाथों में डमरू और खप्पर है, भयंकर साँप उनके आभूषण हैं, बड़े भारी गौर-वर्ण शरीर में विभूति इस प्रकार शोभा देती है, मानों हिमालय में शरद् ऋतु की चाँदनी फैली हो; और इनकी दयादृष्टि से ही धर्मार्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि योगिराज शिवजी का सामर्थ्य काशी में प्रकट होता है।

पिंगल जटा कलाप माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना प्रताप भ्रू पर बरत है।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बाल चंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सुन्दर दिगंबर विभूति, गात, भाँग खात,
रूरे सिंगी पूरे काल-कंटक हरत है।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है॥१५९॥

टिप्पणी - पिंगल=भूरी। कपाल=समूह। पुनीत आप=पवित्र जल अर्थात् गंगाजी। पावक नैना=जिसके नेत्रों में अग्नि है। भ्रू=भौंह। बरत है बरता है, जलता है। दिगंबर=नग्न। रूरे=सुन्दर। सिंगी=शिवजी का बाजा। पूरे=बजाकर। काल कंटक= मृत्यु और बाधा। अघात न=तृप्त नहीं होते। आक ही के पात=आक के पत्ते को चढ़ाने से। औढर ढरत है=बेतहर प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ—शिवजी की भूरी जटाओं के ऊपर गंगाजी विराजमान हैं, आंखों में अग्नि है, जिसका प्रताप भौंहों पर दमकता है, बड़ी-बड़ी लाल आँखें हैं, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित है, कण्ठ में कालकूट का चिह्न वर्त्तमान है, साँपों के गहने पहनते हैं, सुन्दर और नग्न शरीर में विभूति लगाये हुए हैं, भांग खाते हैं। अच्छी तरह सिंगी बाजा बजाकर मृत्यु और बाधाओं को हरते हैं। केवल आक की पत्तियों को चढ़ाने से ही प्रसन्न हो जाते हैं, और जब योगी भोलानाथ बेतरह प्रसन्न होते हैं तब देते-देते इनको तृप्ति ही नहीं होती।

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन विभूति, भांग वृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है।
'तुलसी' महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है।
वेष तो भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबन्धु दानि दारिद-दहनु है॥१६०॥

टिप्पणी—श्रीनिकेत=(श्री=लक्ष्मी+निकेत=घर) वैकुंठ। असंग रंग=एकांत प्रेमी। अंगना=स्त्री, पार्वती जी। महनु=(सं० मथन) नाशक। भाव=प्रेम, भक्ति। निगम=वेद। अगम=शास्त्र। जानिबो=जानना। गहनु है=कठिन है। भयंक=डरावना। संकर=(सं० शं=कल्याण+कर) कल्याणकारी। दहनु=जलानेवाले।

भावार्थ—शिवजी के घर में तो विभूति, भांग और बैल की सवारी ही है; पर याचकों को धन-संपत्ति-सहित लक्ष्मी का घर (वैकुंठ) ही दे डालते हैं। नाम तो वामदेव है, पर सदा दाहिने रहते हैं (अर्थात् भक्तों पर सदा अनुकूल रहते हैं), एकाकी रहना पसंद हैं, आधे शरीर में स्त्री (पार्वती) है, पर कामदेव को भस्म करनेवाले हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी का प्रभाव भक्ति से ही सुगम है; क्योंकि उन्हें जानना शास्त्र और वेद के लिए भी कठिन है। उनका वेश तो भिखारियों का-सा है, रूप भयंकर है, पर वे कल्याण-कर्त्ता, दयालु, दीनों के बंधु और दानी हैं और दरिद्रता को दूर करनेवाले हैं।

चाहे न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को,
देबोई पै जानिये सुभाव-सिद्ध बानि सो।
बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ,
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो।
'तुलसी' भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ,
कोटिक कलस जरौ, मरौ छार छानि सो।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो॥१६१॥

टिप्पणी— अनंग-अरि=कामदेव के शत्रु शिवजी। एकौ अंग=षोडशोपचार पूजा के १६ प्रकार के अंगों में से एक भी अंग। मंगन को=माँगनेवाले से। पै=निश्चय। सुभाव-सिद्ध=स्वाभाविक। बानि=आदत। बारिबुंद=जल की बूँदें। भवेस=संसार के स्वामी। भोलानाथ=शिवजी का नाम। छार छानि मरौ=धूल छानते-छानते मर जाओ। छानि=ढूँढ़कर। दुख-दोष दाह दावानल=दुःख, दोष और ताप को भस्म करने के लिए दावाग्नि के समान। दूजो=दूसरा। सूलपानि=हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिवजी।

भावार्थ—महादेवजी भिक्षुक से षोडशोपचार पूजा का एक भी अंग नहीं चाहते। देना ही उनकी स्वाभाविक आदत है, इसे निश्चय जानिए। अगर शिवजी पर जल की चार बूँदें छिड़का दो तो वे उसे सच्ची सेवा मानकर ग्रहण करते हैं और धर्मार्थ, काम और मोक्ष चारों फल दे देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अगर संसार के स्वामी शिवजी का भरोसा नहीं है, तो चाहे करोड़ों कष्ट उठाओ, सर्व जगह की धूल छानकर मर जाओ, तो भी कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। दारिद्र्य का नाश करनेवाला, दुःख, दोष और संतापों को मिटानेवाला दानी और दयालु संसार में शिवजी के समान दूसरा नहीं है।

काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे!
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे!
'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरु-खेत रे!
पात द्वै धतूरे के दै, भोरेकै भवेस सों,
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे॥१६२॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—**जागैं मसान**=मसान जगाना, अमावस्या की रात को श्मशान में उसी दिन के मरे हुए मनुष्य की लाश पर बैठकर मंत्र जपते हैं। इसमें अनेक बाधाएँ होती हैं। पर मंत्र सिद्ध होने पर यथेष्ट फल मिलता है। **अपान**=अपनापन, आत्मसम्मान। **भोरे कै**=भोला-भाला बनाकर। **तैं**=तू। **महेस**=संसार के स्वामी, शिवजी।

भावार्थ—अरे मूर्ख, तू अनेक देवताओं की सेवा क्यों करता फिरता है? क्यों मसान जगाता है? क्यों आत्मसम्मान खोता है? और क्यों हठ करके प्रेत बनता है? अरे बेसमझ! तू क्यों करोड़ों उपाय करता हुआ इधर-उधर दौड़कर मरता है और देश-देश के राजाओं से क्यों माँगता फिरता है? तुलसीदास कहते हैं कि दूसरे जन्म में सकल पदार्थों को पाने के लिए बिना विश्वास के भी प्रयोग में देह-त्याग क्यों करता है? परलोक और अतुल धन-वैभव पाने के लिए कुरुक्षेत्र में दान क्यों देता है? धतूरे के दो पत्ते शिवजी को देकर उनको भोरा कर, संसार के स्वामी से सहज ही में इंद्र का ऐश्वर्य क्यों नहीं प्राप्त कर लेता?

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,
धन धाम-निकर, करनि हू न पूजैं क्वै।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन औ
बिनय, बिबेक, बिद्या सुभग, सरीर ज्वै।
इहाँ ऐसो सुख, परलोक, सिवलोक ओक,
जाको फल 'तुलसी' सो सुनौ सावधान ह्वै।
जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै॥१६३॥

टिप्पणी—**स्यंदन**=रथ। **गयंद**=(सं० गजेंद्र) हाथी। **बाजिराजि**=घोड़ों की पंक्ति। **भट**=योद्धा। **निकर**=समूह। **करनिहू न पूजैं क्वै**=करतूत में कोई बराबरी नहीं करता। **क्वै**=कोई। **ज्वै**=जो कुछ। **इहाँ**=इस लोक में। **ओक**=घर। **कै**=अथवा। **रिसाने**=क्रोध में। **केलि**=खेल में ही। **चढ़ाये ह्वै हैं**=चढ़ाये होंगे। **पतौवा**=पत्ते। **अलंकार**=परिवृत्त।

भावार्थ—रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे-अच्छे योद्धा, धन और घरों का समूह, सबसे बढ़कर करतूत, विनीत पत्नी, पवित्र आचरणवाला और सुन्दर पुत्र, विनय, सदसद् का ज्ञान, विद्या, सुन्दर शरीर आदि जो कुछ भी सुन्दर पदार्थ हैं (सब प्राप्त), इस लोक में तो इस प्रकार का सुख और मरने पर अन्त में शिव-लोक की प्राप्ति, यह जब जिस कर्म का फल है वह सावधान होकर तुलसी से सुन लो, (कि) ये सब फल पानेवाले ने जानकर वा बेजाने ही, रिस में या खेल में कभी शिव पर दो-दो बेलपत्र चढ़ा दिये होंगे।

रति सी रमनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारिकै।

संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै।
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ पद,
जाको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हें ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारि कै॥१६४॥

टिप्पणी—**रति**=कामदेव की स्त्री। **रमनि**=(सं० रमणी) स्त्री। **सिंधु-मेखला-अवनिपति**=समुद्र-पर्वत का राजा। सिंधु-मेखला-अवनि=सिंधु है करधनी जिसकी, ऐसी अवनि (बहुव्रीहि समास)। **औनिप**। (सं० अवनिप) राजा। **सुरनाथ**=इंद्र। **आक**=मदार। **कै**=अथवा। **डारि दीन्हें ह्वै हैं**=चढ़ाये होंगे। **बारक**-एक बार, कभी। **अलंकार**=परिवृत्त।

भावार्थ—रति की तरह सुन्दरी पत्नी हो, समुद्र-पर्वत-पृथ्वी का राज्य हो, अनेक राजा उससे हार मानकर हाथ जोड़े हुए उसके सामने खड़े हों, उसकी संपत्ति के समूह को देखकर इन्द्र को भी लज्जा हो, ब्रह्मा ने भी सब प्रकार के सुख एकत्र कर उसको दिये हों, इस लोक में तो ऐसा सुख-भोग करे, और मरने पर स्वर्ग में इन्द्र की पदवी को पाते। यह सब जिस कर्म का फल है, वह तुलसीदास विचार कर कहते हैं कि उसने कभी (इस जन्म में अथवा पूर्व जन्म में) एक बार शिवजी पर आक के चार पत्ते अथवा धतूरे के दो फूल चढ़ाये होंगे।

देवसरि सेवौं वामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं।
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं,
काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं॥१६५॥

टिप्पणी—**देवसरि**=गंगा। **वामदेव**=शिवजी। **उदर**=पेट। **एते पर हू**=इतने पर भी। **रावरो ह्वै**=आपका जन होकर। **जोर करै**=बल-प्रयोग करे। **गुदरत हौं**=कहे देता हूँ, प्रकट कर देता हूँ। **उराहनो**=उलाहना, उपालम्भ। **काल-कला**=कलिकाल की करनी। **कहे**=कहकर। **निबरत हौं**=छुटकारा पाता हूँ।

प्रकरण—एक बार शिवोपासकों ने तुलसीदासजी के प्रति ईर्ष्या कर उनको काशी से चले जाने को विवश किया। गोसाईं जी विश्वनाथ जी के मन्दिर के कपाट पर उपर्युक्त छंद लिखकर चले गये। दूसरे दिन शिवभक्तों को कपाट बंद मिले और भीतर से वाणी हुई कि तुमने भगवद्भक्त का अपमान करके भगवान् के अपमान का अपराध किया है। यह सुनकर वे सब तुलसीदासजी को लौटा लाये।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावार्थ—हे शिवजी, मैं आपके गाँव काशी में ही गंगा का सेवन करता हूँ, और रामचन्द्रजी के नाम से माँगकर पेट भरता हूँ। अगर मुझे किसी को देने की योग्यता नहीं है तो मैं किसी से कुछ लेता भी नहीं हूँ। किसी का उपकार करना तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा है, पर मैं किसी की हानि भी नहीं करता। इतने पर भी अगर आपका कोई भक्त मुझे कष्ट दे तो हे देव, मैं दीन होकर आप ही के पास उसका कष्ट देना निवेदन किये देता हूँ, । मैं रामचन्द्रजी का भक्त हूँ, अतः रामचन्द्रजी से उलाहना पाकर (कि आपने अपने भक्तों से मेरे भक्त की रक्षा क्यों न की) आप मुझे उलाहना न दीजिएगा (कि तुमने मुझसे अपना दुःख क्यों नहीं कहा)। अतः हे काशीनाथ, मैं आपसे अपना दुःख कहके छूटकारा पाता हूँ, जिससे आप समय पर उलाहना न दें।

चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर !
पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत, रघुबीर भीर हौं।
अधिभूत-बेदन बिषम होत, भूतनाथ !
'तुलसी' बिकल, पाहि, पचत कुपीर हौं।
मारिए तो अनायास कासी बास खास फल,
ज्याइए तो कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥

टिप्पणी - चेरो = दास । हर = शिव । रघुबीर भीर हौं = मैं केवल रामचंद्रजी से डरता हूँ। अधिभूत = आधिभौतिक बाधा। बेदन = वेदना, कष्ट, पीड़ा। बिषम = असह्य। पाहि = मेरी रक्षा करो। कुपीर पचत = बुरी पीड़ा से पीड़ित हूँ। अनायास = सहज ही। खास = प्रसिद्ध। निरुज (सं०) = रोगहीन।

भावार्थ—हे शिवजी, मैं राजा रामचन्द्रजी का दास हूँ, और आपका सुयश सुनकर आपके चरणों के पास आकर गंगा के किनारे रहता हूँ। हे बामदेव, आप अपने मन में राम का शील-स्वभाव जानते ही हो, और उनका मुझसे स्नेह का संबंध है यह भी जानते ही हो। मैं केवल रामचन्द्रजी से ही डरता हूँ। हे भूतनाथ, मुझे बड़ी विषम आधिभौतिक वेदना हो रही है, मैं (तुलसीदास) अत्यन्त व्याकुल हूँ। मेरी रक्षा करो। यह पीड़ा मुझे बुरी तरह से दुःख दे रही है। अगर मुझे मार डाले तो मुख्य फल यही है कि मुझे सहज ही काशीवास का फल प्राप्त होगा। अगर जीवित रखना हो तो ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मेरा शरीर नीरोग रहे।

जीबे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहि,
मालूम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु ! राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं।
रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो 'तुलसी' को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।

ज्याइए तो जानकीरमन जन जानि जिय,
मारिए तो माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥१६७॥

टिप्पणी—जीबे की = जीवित रहने की। लालसा = इच्छा। कामतरु = कल्पवृक्ष, कामनाओं को देनेवाला। कुसूत = कुप्रबंध, असुविधा। तुलसी को = तुलसी दास के लिए। पाहि = रक्षा कीजिए। गहतु हौं = पकड़ता हूँ। ज्याइए = जीवित रखिए तो।

भावार्थ—रोग से पीड़ित होकर तुलसीदास शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि हे दयालु शिवजी, मुझे जीने की इच्छा नहीं है। आपको मालूम ही है कि मैं काशी में मरकर मोक्ष पाने के लिए ही रहता हूँ। हे कामदेव के शत्रु शिवजी, आप रामजी के भक्तों को इच्छाएँ पूरी करने के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं, अतएव मैं माता पार्वती-सहित आपका सहारा चाहता हूँ। यह रोग भूत की तरह मुझे पीड़ित करता है, जिससे मेरे लिए सब प्रकार की असुविधा हो रही है। अतः हे भूतनाथ, इस रोग-रूपी भूत से मेरी रक्षा करो। मैं आपके चरण कमलों को हाथों से पकड़कर प्रार्थना करता हूँ कि अगर आप मुझे सीतापति रामचन्द्रजी का भक्त जानकर जिला दें तो अच्छा ही है, नहीं तो मैं आपसे सच कहता हूँ कि अगर आप मुझे मार दें तो मुझे मुँह-माँगी मौत मिलेगी (क्योंकि मैं तो काशी में मरने ही के लिए रहता हूँ।)

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज सिव ! आपु नीके जानिए।
नाना बेष, बाहन, बिभूषण, बसन, बास,
खानपान, बलि पूजा बिधि को बखानिए ?
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिए।
'तुलसी' की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए ॥१६८॥

टिप्पणी – भूतभव = पंच महाभूतों के कारण स्वरूप। भवत = आप। नीके = अच्छी तरह। बसन = वस्त्र। बास = निवासस्थान। को बखानिए = कौन वर्णन कर सकता है। भवानिए = भवानी ही (पार्वतीजी ही)। अलंकार = तुल्ययोगिता।

भावार्थ—हे पंच महाभूतों के कारण शिवजी, आप पिशाच, भूत और प्रेतों के प्रिय हैं (सब भूत आपके सेवक हैं)। अतः आप अपने (भूत-प्रेतादि के) समाज को अच्छी तरह जानते हैं। उनके अनेक प्रकार के वेष, अनेक प्रकार के वाहन, अनेक प्रकार के आभूषण, अनेक प्रकार के वस्त्र, अनेक प्रकार के निवास-स्थान, अनेक ढंग के खानपान और बलि-पूजा के विधान का वर्णन कौन कर सकता है ? (मैं कहाँ तक उनको प्रसन्न करने की सामग्री जुटाऊँ ?) रामचन्द्रजी के भक्तों की तो रीति-प्रीति सब सीधी-सादी है। वे सबसे स्नेह करते हैं और सबका सम्मान भी करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी बात तो शिवजी के सुधारने से ही सुधरेगी; क्योंकि मेरे माई, बाप, गुरु सब कुछ श्रीशिव-पार्वती ही तो हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत भवानीनाथ,
बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासी बासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि, केलि काटत किरात-कलि,
निठुर! निहारिए उधारि डीठि भाल की ॥१६९॥

शब्दार्थ—भवत=आप। आन=दुहाई। सही की=समर्थन किया। ससिसेखर=(शशिशेखर) शिवजी। छमुख=कार्त्तिकेय। बिहाल=व्याकुल। सुरबेलि कल्पलता। केलि=खेल ही में। किरातकलि=कलियुग-रूपी किरात। डीठि भाल की=ललाट पर का तीसरा नेत्र (जिसको उघारने या खोलने से कामदेव जलकर नष्ट हो गया था।)

भावार्थ—हे शिवजी, आप गौरीनाथ, भोलानाथ और भवानीनाथ हैं, आपकी पुरी काशी में कलियुग की दुहाई फिरी है। वेदों ने कहा है कि काशी के रहनेवाले पुरुष महादेवजी के समान और स्त्रियाँ पार्वती के समान हैं। इस बात का कृपालु शशिशेखर ने अर्थात् आपने समर्थन किया है। जो लोग शिवजी को कार्तिकेय और गणेश से भी प्यारे थे वे ही बड़े व्याकुल दिखाई देते हैं। सारी काशीपुरी को इस कलियुग ने व्याकुल कर दिया है। यह कलियुग-रूपी किरात काशी-रूपी कल्पलता को खेल-ही-खेल में काटना चाहता है। हे निष्ठुर शिवजी, अपने ललाट की आँख को खोलकर इसकी ओर देखिए (अर्थात् इसको भस्म कीजिए)।

नोट—इस छंद से अंत तक के छंद उस समय कहे गये हैं जब काशी में महामारी फैली थी।

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन, पूत गनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी।
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।
कैसे कहै 'तुलसी' बृषासुर के बरदानि,
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ॥१७०॥

टिप्पणी—ठाकुर=मालिक। ठकुराइन=मालकिन। उमा=पार्वती। ठहर=स्थान। सेनापति=कार्त्तिकेय। हरकी=मना की, रोकी। बीसी बिस्वनाथ की=साठ (प्रभव से क्षय तक) संवत्सरों को तीन भागों में बाँटा गया है—प्रथम बीस ब्रह्मा की बीसी, द्वितीय बीस विष्णु की बीसी, अन्तिम बीस संवत्सर विश्वनाथ की बीसी कहलाते हैं। यह शिवजी की बीसी (रुद्रबीसी) संवत् १६६५ से १६८५ तक रही। बृषासुर=भस्मासुर का दूसरा नाम है।

भावार्थ—जहाँ मालिक शिवजी और मालकिन पार्वतीजी के सदृश हैं, जिस स्थान की महिमा लोक और वेद दोनों में प्रकट है, जहाँ योद्धा वीरभद्रादि शिवजी के गण हैं, जिनके दोनों पुत्र गणपति और सेनापति (कार्तिकेय) सरीखे हैं, वहाँ इस कलियुग की कुचाल को किसी ने नहीं रोका। इस रुद्रबीसी में शिवजी की पुरी में बड़ा भारी दुःख है। शंकरजी के समान कल्याणकर्त्ता के नगर की ऐसी दशा क्यों हुई, यह समझ में नहीं आता। उनको तुलसीदास कैसे कह सकते हैं? वृषासुर को वरदान देनेवाले शिवजी, आपकी तो अमृत छोड़कर विष पीने की आदत प्रकट है। (अतः आप कलियुग को क्यों वरजेंगे?)

नोट—इस छंद में ध्वनि यह है कि काशी की दुर्दशा आप स्वयं करा रहे हैं; क्योंकि आपकी आदत है कि अंडबंड काम कर बैठते हैं। भस्मासुर को वरदान देकर तथा हलाहल पीकर आप स्वयं हैरान हुए, वैसे ही यह भी आपकी कोई विलक्षण लीला होगी, तुलसी आपसे क्या कहे!

लोक बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई;
बासी नरनारि ईस अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारी दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं।
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ॥१७१॥

टिप्पणी—बासी=रहनेवाले। कालनाथ=कालभैरवजी। दंडकारी=दंड देनेवाले। दंडपानि=दंडपाणि भैरवजी। गनप=गणेशजी। अमित=अनेक। तहाऊँ=वहाँ भी। कैधौं=या तो, अथवा। मूढ़=मूर्ख कलियुग। फलैं फूलैं=सफल मनोरथ होते हैं। सीदैं=कष्ट पाते हैं। पल-पल=हर घड़ी। 'खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं'=(कहावत है) दिवाली की रात-भर तो घी-तेल दियों में भरा जाता है, पर प्रभात होते समय सूप पीटे (बजाये) जाते हैं, अर्थात् दुष्टता तो करें दुष्ट और वे ही मौज उड़ावें, पर दुःख पावें सज्जन। अलंकार=छेकोक्ति।

भावार्थ—काशी की बड़ाई लोक और वेद दोनों में विदित है। यहाँ के निवासी पुरुष और स्त्री शिव-पार्वतीजी के स्वरूप हैं। कालभैरवजी के समान तो यहाँ के कोतवाल हैं, दंडपाणि भैरवजी के समान यहाँ दंड देनेवाले जज हैं, और गणेशजी के समान अनेक अद्वितीय सभासद हैं। यहाँ भी कुचाली कलियुग ने अपनी कुरीति को चलाया (बड़ा आश्चर्य है, अथवा मूर्ख कलियुग यह नहीं जानता कि यहाँ के राजा भूतनाथ (शिवजी) हैं। (उनका प्रभाव) उसे ज्ञात नहीं है; क्योंकि

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दुर्जन तो मौज उड़ाते हैं, और सज्जन लोग हर घड़ी दुःख पा रहे हैं। मानों वही कहावत है कि 'घी तो खाय दीपमालिका और पीटा जाय सूप।'

पंचकोस पुन्यकोस, स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास वास दियो है।
नीच नरनारि न सँभारि सकैं आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है।
बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारी मन भियो है।
रोष में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात,
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

टिप्पणी—पंचकोस=असी से वरुणा नदी तक काशी की परिक्रमा पाँच कोस की है। परारथ=परमारथ, पारलौकिक सुख। सुपास=(स्वपार्श्व) अपने पास। बारी=जला दी। चक्रपानि=श्रीकृष्ण। हितहानि=अपने मित्र शिवजी की हानि मानकर। मुरारि=मुर नामक दैत्य के शत्रु श्रीकृष्ण। मन भियो है—मन में संकुचित हुए, डरे। आसुतोष=शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जानेवाले शिवजी।

भावार्थ—यह पंचकोसी के भीतर की भूमि पुण्यमय है और स्वार्थ तथा परमार्थ साधने के लिए बहुत उत्तम है. ऐसा सोचकर तो आपने यहाँ के निवासियों को कृपा करके अपने पास बसाया, पर वे नीच-प्रकृति नर-नारी इस आदर को न सँभाल सके (मोह-अभिमानवश सुकर्म त्याग कर कुमर्म करने लगे), अतः वे कायर जन अपने अविचार का फल पाते हैं (अर्थात् हे शिवजी! आपका कुछ दोष नहीं, यह महामारी यहाँ के निवासियों के कर्मों का फल है)। पर आपसे तो उस समय श्रीकृष्णजी भी (जिन्होंने मुर नामक प्रबल दैत्य को मारा था) प्रेम-हानि समझकर डर गये थे जब मिथ्या वासुदेव को मारने के लिए उन्होंने सुदर्शन-चक्र छोड़ा था और उसने उसे मारकर काशी नगरी को भी (बिना कृष्ण की आज्ञा के ही) जला दिया था—(सो क्या कलिकाल आपसे न डरेगा?) और यदि यह कहो कि हम ही ने यहाँ के वासियों के कुकर्मों से नाराज होकर उन्हें दंड देने के हेतु यह महामारी फैलायी है तो हे शंकर, आपके इस क्रोध के समय में भी मुझे एक भरोसा था और मैं उसे कहे डालता हूँ कि आपका नाम 'आशुतोष' है और आप ऐसे दयालु हैं कि (पहले एक समय) आपने लोगों को विकल देखकर कालकूट पी लिया था, तो क्या अब आप इस महामारी के विष को नहीं पी सकते अर्थात् पी सकते हैं—अतः इस महामारी को आप पी जाइए।

नोट—एक समय काशी के एक 'मिथ्या वासुदेव' नामक राजा ने द्वारका पर चढ़ाई की। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र छोड़ा। चक्र ने उस राजा को परास्त करके उसकी काशी को भी जला डाला था। उस समय कृष्णजी ने शंकर से माफी माँगी थी कि चक्र ने बिना मेरी आज्ञा के आपकी पुरी जला दी है, अतः मुझे क्षमा कीजिए।

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग, अगजग-पालिके।
तोहि में बिकास, बिस्व तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके।
दीजै अवलम्ब जगदम्ब न बिलम्ब कीजै,
करुना-तरंगिनि कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी,
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥१७३॥

टिप्पणी—बिरंचि=ब्रह्मा। हरि=विष्णु। हरत=संहार करते हैं। हर=शिव। अग=अचर। जग=जंगम, चर। बिकास=उत्पत्ति। बिस्व=सृष्टि। बिलास=पालन। भूमिधर (=पर्वत हिमालय)। करुना-तरंगिनी=करुणा की नदी अर्थात् करुणामयी। कृपातरंगमालिका—कृपा-रूपी तरंगों की माला, अर्थात् अत्यंत कृपा करनेवाली। परितोष=संतुष्ट हो। मुनिमानस-मरालिके=मुनियों के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंसिनी के समान। (अर्थात् जैसे हंसिनी मानसरोवर में रहती है वैसे ही तुम मुनियों के मन में बसती हो)। अलंकार=परिकरांकुर ('जगदंब' शब्द साभिप्राय है)।

भावार्थ—हे चराचर का पालन करनेवाली, तुम्हारी ही प्रसन्नता (इच्छा) से ब्रह्मा संसार को रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। हे हिमालय की पुत्री पार्वतीजी, सारी सृष्टि तुम्हीं से उत्पन्न होती है, तुम्हीं से इसका पालन होता है, और हे माता, अन्त में यह संसार तुम्हीं में समाता है। हे करुणा की नदी और कृपा की तरंगमाला जगदम्बा, अब सबको सहारा दीजिए, विलंब न कीजिए, यह महामारी इस समय क्रुद्ध होकर सब जगत् को खाये जाती है और तू जगन्माता होकर भी संतुष्ट होकर बेफिक्र बैठी है। अतः हे मुनियों के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंसिनी के समान जगदम्बे! संसार को दीन और दुःखी देखकर सब पुत्रों पर प्रसन्न होकर इसका निवारण कीजिए।

निपट अनेरे, अघ औगुन बसेरे, नर
नारि ये घनेरे जगदम्ब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारि देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोकरीति राखी राम, साखी बामदेव जान,
जन की बिनती मानि, मातु! कहि मेरे हैं।
महामायी, महेसानि, महिमा की खानि, मोद,
मंगल की रासि, दास कासी बासी तेरे हैं ॥१७४॥

टिप्पणी—निपट=अत्यन्त। बसेरे=स्थान, निवासस्थान। औगुन=अवगुण। घनेरे=बहुत। अनेरे=अनीति में रति। चेरी चेरे=दासी-दास। भूसुर=

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ब्राह्मण। कलिमल=पाप। लोकरीति राखी=अपने पुर (अयोध्या वासियों को सुखी रखा। साखी=सं० साक्षी) गवाह)। महेसानि=पार्वतीजी। मोद=आनन्द। महामायी=जगदंबा।

भावार्थ—हे जगदम्बा, ये निपट अन्यायी, पाप और अवगुणों के घर काशी-वासी स्त्री-पुरुष, तेरे ही दास-दासी हैं। यद्यपि इनके आचरण ऐसे हैं कि दरिद्री और दुःखी ब्राह्मण और भिखारियों को देखकर डरते हैं (कि कहीं कुछ माँग न बैठें—इतने अदानियां हैं) और लोभ, मोह, काम, क्रोध की जमात से घिरे रहते हैं (तोभी तुझे इनपर दया ही करनी चाहिए)। श्री रामजी ने इस लोकरीति की (दासी-दासों पर सदा दया करते रहना) अच्छी रक्षा की है, जिसके साक्षी महादेवजी हैं। (तुम भी लोकरीति रखो) मुझ दास की विनय मानकर, हे माता! तुम भी (महा-मारी) से कह दो कि ये मेरे दास-दासी हैं, इन्हें मत सता। हे महामाया, हे महे-शानी, तुम महिमा की खानि और मोद तथा मंगल की राशि हो, और काशीवासी वास्तव में तेरे सेवक हैं (तुम्हें उनपर दया करनी ही पड़ेगी, नहीं तो संसार में तुम्हारी निन्दा होगी और तुम जगदम्बा कैसे कहलाओगी)।

लोगन के पाप, कैधों सिद्ध सुर-साप कैधों
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप तई है।
ऊँचे, नीच बीच के, धनिक, रंक, राजा, राय
हठनि बजाय, करि डीठि, पीठि दई है।
देवता निहोरे, महामारिन्ह सो कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे अपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जसरासि जहाँ तहाँ तैं ही लूटि लई है ॥१७५॥

टिप्पणी—कैधौं=अथवा। सिद्ध-सुर-साप=सिद्ध और देवताओं के शाप से। तिहूँ-ताप तई है=दैहिक, दैविक, भौतिक, तीनों तापों से तप्त हुई है। राय=छोटे-छोटे राजा। हठनि बजाय=हठ करके, खुल्लमखुल्ला। करि डीठि=देखकर। पीठि दई है=विमुख हुए हैं। निहोरे=विनती की। अपनी सी ठई है=अपनी चाही बात की है, अपना प्रभाव फैलाया है। जस रासि=यश का ढेर। तैंही=तुमने ही।

भावार्थ—लोगों के पाप के कारण, अथवा सिद्ध और देवताओं के शाप के वश, अथवा समय के फेर से इस समय काशी दैहिक, दैविक, भौतिक, तीनों प्रकार के कष्टों से पीड़ित है। उत्तम, अधम, मध्यम, धनी, दरिद्री, बड़े-बड़े राजा, छोटे राजा, सब हठपूर्वक खुले मैदान जान-बूझकर धर्म-कर्म से विमुख हो बैठे हैं (देख-सुनकर जनता की सहायता करने से विमुख हो गये हैं)। देवताओं से भी महामारी के निवारण के लिए प्रार्थना की, स्वयं महामारी से भी हाथ जोड़कर विनती की; पर सब निष्फल हुआ। शिवजी को सीधा-सादा जानकर महामारी ने अपनी मंशा पूरी की अर्थात् जो जी चाहा सो किया। ऐसे समय में हे दयासागर, वीर और बलवान् हनुमानजी, महामारी का निवारण करके आप ही यश लीजिए; क्योंकि कठिन समयों में जहाँ-तहाँ आप ही ने यश की ढेरी लूटी है (यश प्राप्त किया है)।

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात, जल थल मीचु मई है।
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥

टिप्पणी—संकर-सहर=काशी। सर=तालाव। बारिचर=जल जंतु। हहरात=हाय-हाय करते हुए। भभरि=भयभीत होकर, घबराकर। मीचु मई=मृत्युमय। मीचु=(सं०) (प्रा० मिच्चु)। पाहि=रक्षा करो।

भावार्थ—काशी मानो एक तालाव है, वहाँ के स्त्री-पुरुष मानो उस तालाब के जलजंतु हैं, वे जलजन्तु महामारी-रूपी माँजा (वर्षा ऋतु के आरम्भ का जल) के पानी से व्याकुल हो गये हैं, और उछलते हुए पानी के ऊपर उतराते हुए हाय-हाय करके मरे जाते हैं, और कोई घबराकर भाग रहे हैं। जल-थल सब मृत्युमय हैं, देवता भी दया नहीं करते, राजाओं का चित भी कृपापूर्ण नहीं है; क्योंकि काशी में नित्य ही नई-नई अनीति बढ़ रही है। हे रामचंद्रजी, तुम्हीं रक्षा करो। हे राम-दूत हनुमानजी, तुम्हीं रक्षा करो; क्योंकि तुमने तो रामचंद्रजी की भी बिगड़ी बात सुधार ली थी (रामचंद्र जी के भाई लक्ष्मण को संजीवनी बूटी लाकर जिलाया था)।

एक तो कराल कलिकाल सूलमूल ता में,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान, जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम,
रावरी ही गति बल बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज आजु जो न देत दादि दीन की ॥१७६॥

टिप्पणी—सूलमूल=दुःखों का मूल कारण। कोढ़ में की खाजु सी=(कहा-वत) एक तो कोढ़ स्वयं एक भयानक और कष्टप्रद रोग है, अगर उस में खाज भी हो जाय तो कष्ट का क्या ठिकाना; अर्थात् और भी अधिक दुःख देनेवाला। सनी-चरी है मीन की=मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा। इसका फल है राजा-प्रजा दोनों का नाश। यह योग संवत् १६६९ के आरम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। सीद्यमान=कष्ट पाते हैं। जानि रीति पाप-पीन की=इसे बड़े भारी दुष्ट पाप का फल ही जानो। दूबरे=(सं०) दुर्बल। द्वार=गति, शरण। बिभव=ऐश्वर्य। बिरुद=यश। जो=अगर। दादि न देत=न्याय नहीं करते हों तो।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावार्थ—एक तो स्वयं भयंकर कलियुग ही दुःखदायी है, उसपर भी 'कोढ़ में खाज' की तरह महा उपद्रवकारी मीन की शनीचरी पड़ गयी है, जिससे वेद और धर्म लुप्त हो गये हैं, राजा अपनी प्रजा की भूमि का हरण कर लेते हैं, और सज्जन लोग कष्ट पा रहे हैं। इसे भारी पाप का ही परिणाम समझो। हे दयालु रामचंद्रजी, दुर्बल के लिए आपके अतिरिक्त दूसरे का आश्रय नहीं है। बल और ऐश्वर्य से रहित मनुष्य के लिए आप ही शरण हैं। हे महाराज, अगर आज आप दोनों की फरियाद न सुनेंगे तो निश्चय ही आपके उस सुशोभित यश को लज्जा लगेगी (अर्थात् आप जो दीन-बन्धु कहलाते हैं उसपर बट्टा लगेगा)।

रामनाम मातुपितु स्वामि, समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम रामनाम ही सों नेम रामनाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को।
स्वारथ सकल, परमारथ को रामनाम,
रामनाम-हीन 'तुलसी' न काहू काम को।
राम की सपथ, सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को।१७८॥

टिप्पणी—हितु=हितकारी, मित्र। नेम=(सं०) नियम। मरम=भेद। अन्वय—न दाहिनो न बाम पद को मरम जानौं=सुमार्ग और कुमार्ग का भेद नहीं जानता हूँ। कामतरु=कल्पवृक्ष। छीन=(सं०) क्षीण, दुर्बल। छाम=(सं० क्षाम) दुर्बल। छीन छाम=अत्यन्त दुर्बल।

भावार्थ—रामनाम ही मेरे माता-पिता, स्वामी और समर्थ मित्र हैं। मुझे रामनाम की ही आशा है, रामनाम का ही भरोसा है, रामनाम ही से प्रेम है, रामनाम रटने का ही मैं नियम करता हूँ। रामनाम के अतिरिक्त न तो मैं सुमार्ग जानता हूँ न कुमार्ग। सम्पूर्ण सांसारिक सुख और पारलौकिक सुख प्राप्त करने के लिए मैं रामनाम ही रटता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि रामनामहीन मनुष्य तो किसी काम का नहीं है, मैं राम की शपथ लेकर सत्य कहता हूँ कि रामनाम ही मेरा सर्वस्व है और मेरे समान अत्यन्त दुर्बल के लिए रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष है।

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो :
संकर कोप सो पाप को दाम परीच्छितु जाहिगो जारि कै हीयो।
कासी में कंटक जेते भए, ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि काल्हि परों कि नरों जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥१७९॥

टिप्पणी—मारग मारि=पथिकों को लूटकर। महीसुर=ब्राह्मण। कै=करके। दाम=धन। पाप को दाम=पाप से कमाया धन। परीच्छितु=(सं० परीक्षित) निश्चय ही यह बात परीक्षा की हुई है। जाहिगो=नष्ट हो जायगा। जारि कै हीयो=हृदय जलाकर, मन में दुःख पैदा करके। कंटक=बाधक। जेते=जितने। ते गे=वे नष्ट हो गये। आपनो कीयो अघाइ कै पाइ=अपने किये का भरपूर फल पाकर, तृप्त होकर। जड़=मूर्ख, कुमार्गी। जाहिंगे=नष्ट हो जायँगे। चाटि दिवारी को दीयो=ऐसा कहते हैं कि कीट-पतंगादि दीवाली का दीया चाटकर चले जाते हैं अर्थात् दीवाली के बाद नहीं रह जाते; समय पर स्वयं नष्ट हो जायँगे।

भावार्थ—कुमार्गी लोग राहगीरों को लूटकर, ब्राह्मणों को मारकर, करोड़ों कुरीतियों द्वारा धन एकत्र करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी के कोप से पाप की कमाई मन में दुःख बढ़ाकर अवश्यमेव नष्ट हो जायगी। क्योंकि काशी में जितने भी बाधक हुए हैं; सब अपनी करनी का भरपूर फल पाकर नष्ट हो गये हैं। जैसे दीवाली के बाद कीट-पतंगादि नहीं रह जाते, उसी प्रकार मूर्ख भी आज या कल या परसों या तरसों, कभी-न-कभी समय पर स्वतः नष्ट हो जायँगे।

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सो चंद सो होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है।
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान-समै सब सोच-बिमोचन छेमकरी है॥१८०॥

टिप्पणी—कुंकुम रंग=केसरिया रंग। सुअंग=चोंच। जितो=जीत लिया है। होड़ परी है=बाजी लगी है, शर्त लगी है। समृद्धि=धन, सम्पत्ति। बिहंगिनि=पक्षिणी। मंजुल=सुन्दर। पेखि=(सं० प्रेक्ष्य) देखकर। पयान=(सं० प्रयाण) यात्रा को जाते समय। छेमकरी=सं० क्षेमकरी) (१) एक पक्षी का नाम, (२) कुशल करनेवाली। अलंकार='मुखचंद सो चंद सो होड़ परी है' में 'ललितोपमा'। तृतीय पाद में 'संदेहालंकार'।

प्रकरण—किसी यात्रा के समय तुलसीदासजी ने क्षेमकरी पक्षी को देखा और उसकी प्रशंसा में यह छंद कहा।

भावार्थ—इस क्षेमकरी ने अपनी चोंच के रंग से कुंकुम को भी जीत लिया है। इसका मुखचंद इतना सुन्दर है कि आकाशीय चन्द्रमा से समता करता है। इसके वचन बोलते ही मानों धन-वैभव टपकता है, देखते ही यह पक्षी शोच और दुःख को दूर कर देता है। क्या यह चिड़िया के वेश में पार्वती है अथवा गंगा है? अथवा आनंद से परिपूर्ण किसी अन्य सुन्दर देवी की मूर्ति? प्रस्थान करते समय प्रेम-सहित क्षेमकरी के दर्शन पाना सब चिन्ताओं को मिटाकर मंगलकारी होता है।

कवित्त :

मंगल की रासि, परमारथ की खानि, जानि,
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥१८१॥

टिप्पणी—रासि=(सं० राशि) ढेर। खानि=उत्पत्ति-भूमि। बिरचि बनाई=अच्छी तरह रचकर बनायी। केसव=विष्णु। बसाई है=पालन किया है। सूलपानि=त्रिशूल हाथ में धारण करनेवाले, शिवजी। सूल=त्रिशूल। चहत नसाई=नाश करना चाहता है। छितिपाल=राजा। परीछित=अर्जुन का पौत्र परीक्षित। निकाई=भलाई। कुहत है=मारता है।

भावार्थ—मंगलपूर्ण और मोक्ष देनेवाली जानकर ब्रह्मा ने विशेष रीति से काशी को बनाया, विष्णु ने इसका पालन किया, शिवजी ने प्रलय के समय भी इसको अपने त्रिशूल पर रखकर नाश होने से बचाया, उसी काशी को नीच कलियुग मृत्यु के वश में होकर नाश करना चाहता है। राजा परीक्षित इसको छोड़कर इस पर कृपालु हुए और इस दुष्ट का भला किया, उस उपकार को इस दुष्ट ने भुला दिया है। अतः हे हनुमान ! रक्षा करो। करुणानिधान रामचन्द्रजी ! रक्षा करो, कलिरूपी कसाई काशीरूपी कामधेनु को मारे डालता है।

बिरची बिरंची की बसति बिस्वनाथ की जो,
प्रान हू तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप लिंगमई, अगनित लिंगमई,
मोक्ष बितरनि बिदरनि जगजाल की।
देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिबर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम ! ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥१८२॥

टिप्पणी—बसति=बस्ती, पुरी। ज्योतिरूप लिंगमई=द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग (विश्वनाथजी का) काशी में भी है। मोक्ष-बितरनि=मोक्ष बाँटनेवाली। बिदरनि=काटनेवाली। जगजाल=सांसारिक प्रपंचों का जाल। लोपति=लुप्त हो जाती है। बिलोकत=दर्शन मात्र से। भोंड़े भाल की=अभागे के कपाल पर लिखी हुई। कुलिपि=दुर्भाग्य की रेखा। हा हा करै=विनती करता है। कदर्थना=दुर्दशा।

भावार्थ—जो काशी ब्रह्मा ने बनायी, जो शिवजी की पुरी है, जो दयालु भगवान् विष्णु को प्राणों से भी प्यारी नगरी है, जहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग (विश्वनाथजी का) विराजमान है, जहाँ असंख्य शिवलिंग हैं, जो मोक्ष देनेवाली है, जो सांसारिक कष्टों का नाश करनेवाली है, और जहाँ देवी, देवता, गंगा, सिद्धजन

और श्रेष्ठ मुनियों का निवास-स्थान है, जो अभागों के कपाल पर लिखे हुए दुर्भाग्य की रेखा को मिटा देती है, ऐसी काशी की कराल कलियुग ने दुर्दशा की है। अतः एव हे दया के घर रामचन्द्रजी ! मैं विनती करता हूँ कि आप काशी की रक्षा कीजिए।

आश्रम बरन कलि-बिबस बिकल भए,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जनियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी।
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
'तुलसी' सभीत पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥१८३॥

टिप्पणी—आश्रम=ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास। बरन=(वर्ण) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मोटरी=गठरी। डार दी=फेंक दी। मोटरी सी डार दी=गठरी-सी फेंक दी है, भार समझकर छोड़ दिया है। दारदी=दारिद्र्य। मोटी=अधिक। मूठि मार दी=(मुहावरा) जादू डाल दिया। समय=समय पर। सुकरुना सराहि=स्व (अपनी) करुणा की प्रशंसा कर। सनकार दी=इशारा कर दिया।

भावार्थ—चारों आश्रमों और चारों वर्णों के लोगों ने कलियुग के कारण आकुल होकर अपनी-अपनी लोक-मर्यादा भारस्वरूप जानकर छोड़ दी है। शिवजी तो क्रुद्ध हैं, यह महामारी के प्रकोप से ही जाना जाता है। स्वामी के क्रुद्ध होने से संसार में दिन-दिन दारिद्र्य बढ़ता जाता है। पुरुष-स्त्री सब आर्त्त होकर प्रार्थना करते हैं, पर कोई सुनता नहीं। जान पड़ता है कि कुछ देवताओं ने मिलकर बड़ा भारी जादू कर दिया है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे समय भयभीतों के रक्षक कृपालु रामचन्द्रजी को स्मरण करते ही, उन्होंने अपनी करुणा की प्रशंसा करके ठीक अवसर पर लोगों की सहायता का संकेत कर दिया (राम की कृपा से काशी से महामारी चली गयी)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

207

बिहारी-रत्नाकर

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

दोहा

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ ॥ १ ॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

टीकाकार का मंगलाचरण

कृपा-कौमुदी कौ करौ श्रीब्रजचंद प्रकास।
उमगै रतनाकर-हियैं बानी-बिमल-बिलास ॥

भव=संसार। बाधा=रुकावट, विघ्न। भव-बाधा=संसार के विघ्न अर्थात् दुःख, दारिद्र तथा अनेक प्रकार की चिन्ताएँ इत्यादि, जो बाधा-रूप में उपस्थित होकर संसार के मनुष्यों को किसी उत्तम अभीष्ट का एकाग्रता-पूर्वक साधन नहीं करने देतीं। स्मरण रहे कि कवि परिपाटी में दुःख-दारिद्रादि का रंग काला माना जाता है। 'भव-बाधा' का अर्थ टीकाकारों ने बहुधा जन्म-मरण का दुःख लिखा है। वह भी ठीक है। पर यहाँ पर शब्द ग्रन्थ के मंगलाचरण में आया है। अतः यहाँ कवि की यही प्रार्थना विशेष संगत है कि हमारे अनेक प्रकार के चिन्तादि-जनित विघ्नों का निवारण कीजिए जिसमें ग्रन्थ के पूर्ण होने में विघ्न न हो। झाँईं—इस शब्द के यहाँ तीन अर्थ लिए गये हैं—(१) परछाँहीं, आभा; (२) झांकी, झलक; (३) ध्यान। प्राकृत व्याकरणों के "ध्यह्योर्झः", इस सूत्र के अनुसार 'ध्य' के स्थान में 'झ' होकर 'ध्यान' शब्द से झाँईं बन जाता है। त्रिविक्रम ने अपने प्राकृत व्याकरण में 'ध्यान' शब्द का 'झाण' रूप लिखा गा है। 'न' के स्थान में बहुधा 'यँ' भाषा के शब्दों में देखा जाता है; जैसे 'दाहिने' के स्थान पर 'दायँ'। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत-व्याकरण में जो निम्नलिखित छंद अपभ्रंश के उदाहरण में रक्खा है, उसमें ध्यात्वा का अपभ्रंश रूप 'झाइवि' प्रयुक्त हुआ है—

> दहमुहु भुवण-भयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रह-वरि चडिअउ।
> चउमुहु छंमुहु झाइवि एक्कहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ॥

परैं=पड़ने से। इस शब्द के भी निम्नलिखित तीन भावार्थ 'झाँईं' के तीनों अर्थों से यथाक्रम अन्वित होते हैं—(१) तन पर पड़ने से; (२) दृष्टि में पड़ने से; (३) हृदय

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

में पड़ने से ॥ स्यामु (स्याम)—यह शब्द भी यहाँ तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(१) श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र; (२) श्रीकृष्णचंद्र; (३) काले रंग वाला पदार्थ अर्थात् कल्मष, पातक, दुःख, दारिद्रादि, जिनका रंग कवि परिपाटी में काला नियत है। उपादान लक्षणा शक्ति से 'श्याम' का अर्थ श्याम रंग का पदार्थ होता है, जैसे 'सुरंग दौड़ता है' वाक्य में 'सुरंग' शब्द का अर्थ सुरंग घोड़ा होता है। फिर साहित्य की परिपाटी के अनुसार काले पदार्थ से पातक, कल्मष इत्यादि का ग्रहण हो जाता है ॥ हरित-दुति (हरित-द्युति)—इस शब्द के भी इस दोहे में तीन अर्थ ग्रहण किये गये हैं—(१) हरे रंग वाला; (२) हरामरा, डहडहा अर्थात् प्रसन्न-वदन; (३) हृतद्युति, गतद्युति, हतप्रभ अर्थात् तेज-हीन, प्रभा-शून्य, अथवा भयंकरता-रहित। द्युति का अर्थ नाटकों में भयंकर चेष्टा भी होता है। इस अर्थ में 'हरित' शब्द हृत का अपभ्रंश है।

अवतरण—अपनी सतसई की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से कवि, इस मंगलाचरण-रूप दोहे में, श्रीराधिकाजी से सांसारिक बाधा दूर करने की प्रार्थना करता है। सतसई में यद्यपि और रसों के भी दोहे हैं, तथापि प्रधानता शृंगार ही रस की है। इसके अतिरिक्त शृंगार रस में सब रसों की स्थायियाँ संचारी होकर संचरित होता है, जिसके कारण वह रसराज कहलाता है। अतः सतसई में शृंगार रस के मुख्य प्रवर्तक श्रीराधाकृष्ण ही का मंगलाचरण रखना समीचीन है। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में भी, शृंगार रस में, प्रधानता श्रीराधिकाजी ही की है, और कवि जिस संप्रदाय का अनुयायी था, उसमें भी श्रीराधिकाजी ही प्रधान मानी जाती हैं। अतः उसने श्रीराधिकाजी ही से अपनी 'भव-बाधा' हरने की प्रार्थना की है—

अर्थ—जिसके तन की झाँईं पड़ने से श्याम हरित-द्युति हो जाता है, "राधा नागरि सोइ" (है वही राधा नागरी, अथवा वही राधा नागरी) मेरी भव-बाधा हरो (तुम हरो, अथवा हरें) ॥

इस दोहे में 'राधा नागरि' पद संबोधन भी माना जाता है, और प्रथमपुरुषवाची भी; क्योंकि 'हरो' क्रिया का अन्वय, प्रार्थनात्मक वाक्य में, मध्यम पुरुष से भी हो सकता है, और प्रथम पुरुष से भी। फिर मंगलाचरण में, आराध्य देवता से, मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष, दोनों ही रूपों में प्रार्थना करने की प्रणाली प्रशस्त है ॥

यह दोहा बिहारी की प्रतिभा का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कवि ने 'झाँईं', 'स्यामु' तथा 'हरित-दुति' शब्दों के तीन तीन अर्थ रख कर एक ही वाक्य से तीन भाव निकाले हैं, जो तीनों ही उसके इष्टार्थ के साधक हैं ॥

पहला अर्थ तो इस दोहे का यह हुआ—

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की परछाँहीं अर्थात् आभा पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र हरे रंग की द्युति वाले हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो ॥

इस अर्थ से कवि श्रीराधिकाजी के शरीर की गुराई की प्रशंसा करता है कि वह ऐसे सुनहरे रंग की है कि उसकी आभा पड़ने से श्रीकृष्णचंद का श्याम रंग हरा हो जाता है। पीले तथा नीले रंगों के मेल से हरे रंग का बनना लोक-प्रसिद्ध ही है। इसी भाव को कवि ने अपने "नित प्रति एकत ही इत्यादि" दोहे में भी कहा है, और माघ का एक श्लोक भी गौर तथा श्याम छवियों के, पारस्परिक आभा से, हरी हो जाने के वर्णन में है, जो कि "नित प्रति एकत ही इत्यादि" दोहे की टीका में उद्धृत किया गया है। इस भाँति उनके रूप की प्रशंसा कर के कवि उनसे अपनी भव-बाधा दूर करने की विनती करता है।

अब दूसरा अर्थ नीचे लिखा जाता है—

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की झाँकी अर्थात् झलक [आँखों में] पड़ने से (दिखाई देने से) श्रीकृष्णचन्द्र हरेभरे अर्थात् प्रसन्न-वदन हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो ॥

इस अर्थ से कवि, श्रीराधिकाजी के श्रीकृष्णचंद्र की अत्यन्त प्रेमपात्री होने की प्रशंसा करता हुआ उनसे अपनी भव बाधा निवारण करने की प्रार्थना करता है ॥

ऊपर कहे हुए दोनों अर्थों से कवि, श्रीराधिकाजी के रूप तथा प्रियतम-प्रियता की प्रशंसा करता हुआ, निम्नलिखित तीसरे अर्थ से उनमें भव बाधा हरने का सामर्थ्य सिद्ध कर के, उनको अपनी भव-बाधा हरने पर उद्यत करता है। इस सामर्थ्य के सिद्ध करने से कवि का यह तात्पर्य है कि, अपने सामर्थ्य का स्मरण कर के, वह शीघ्र ही उसकी भव-बाधा हरने के लिए उत्साहित हो जायँ ॥

वह तीसरा अर्थ यह है—

हे वही राधा नागरी, जिसके तन (रूप) का ध्यान पड़ने से (भक्त के हृदय में आने से) काले रंग वाला [पदार्थ अर्थात् कल्मष, पातक इत्यादि] हृतद्युति (गतद्युति अर्थात् अपनी कल्मषता से रहित) हो जाता है (अर्थात् अपना दुःखद प्रभाव छोड़ देता है), मेरी भव-बाधा (सांसारिक दुःख, दारिद्र, चिंता इत्यादि, जिनका रंग कवि-परिपाटी में काला माना जाता है) हरो ॥

ऊपर के तीनों अर्थों में 'राधा नागरि' पद संबोधन माना गया है। उसे प्रथमपुरुष-वाची मानकर भी इस दोहे के यही तीनों अर्थ हो सकते हैं ॥

हमारी पाँचों प्राचीन पुस्तकों में से चार में "मेरी भव-बाधा" यही पाठ है, और तीसरे अंक की पुस्तक आदि में खंडित है। कृष्ण कवि की टीका के अनुसार भी यही पाठ ठीक ठहरता है। कृष्ण कवि ने, अपनी टीका में, प्रत्येक दोहे की जाति का नाम तथा उसके गुरु और लघु अक्षरों की संख्या लिख दी है। इस दोहे में उन्होंने 'करभ' लिखा है, जिसमें ३२ अक्षर अर्थात् १६ गुरु और १६ लघु, होते हैं। यह संख्या 'भव-

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बाधा' ही पाठ मानने से चरितार्थ होती है, अथवा 'भौ-बाधा हरहु' पाठ रखने से। पर 'हरहु' पाठ किसी पुस्तक में नहीं मिलता। एक पुरानी लिखी हुई पुस्तक, जिसमें दोहों का क्रम पुरुषोत्तमदासजी के बाँधे हुए क्रम के अनुसार है, हमको वृन्दावन में मिली है। उसमें 'भौ-बाधा' पाठ तो है, 'हरहु' पाठ उसमें भी नहीं है। अतः यदि 'भौ-बाधा' पाठ शुद्ध माना जाय, तो यह दोहा करभ जाति का नहीं रहता, जैसा कि कृष्ण कवि ने इसको लिखा है। कृष्ण कवि ने अपनी टीका संवत् १७८२ में समाप्त की थी। अतः यह बात स्पष्ट है कि उस समय, जब कि बिहारी को मरे बहुत दिन नहीं बीते थे, भव-बाधा ही पाठ प्रसिद्ध था। पर विचारने की बात यह है कि मंगलाचरण के दोहे के आदि में बिहारी ने मेरी 'भव-बाधा' कैसे रक्खा होगा, क्योंकि इस पाठ के आदि में त-गण पड़ता है, जो कि अशुभ माना जाता है। इसी को यदि वह 'मेरी भौ-बाधा' कर देते, तो आदि में शुभ गण म-गण पड़ जाता, और छन्द में भी कोई त्रुटि न पड़ती। यह कहना तो असंगत ही होगा कि बिहारी गण विचार नहीं जानते थे; क्योंकि यह तो ऐसी सामान्य बात है कि इसको थोड़ा पढ़े हुए लोग भी जानते हैं। इसके अतिरिक्त 'भव-बाधा' को 'भौ-बाधा' कर देने में कोई कठिनाई भी न थी। फिर बिहारी ने, मंगलाचरण के दोहे के आदि में 'भव-बाधा' क्यों लिखा? इसके दो कारण हो सकते हैं—पहला तो यह कि बिहारी के दोहे बहुधा, उनके मुख से सुनकर, राज सभा के लेखक अथवा बिहारी के शिष्य लिख लिया करते थे, अतः संभव है कि यह पाठ लिखनेवालों के प्रमाद से प्रचलित हो गया हो; दूसरा यह कि बिहारी ने इस दोहे को मंगलाचरण में रखने के अभिप्राय से न बनाया हो, पर सतसई संकलित करते समय, इसको इस योग्य देखकर, मंगलाचरण में रख दिया हो, और इसके आदि के गण पर ध्यान न दिया हो। जो हो, हमारी समझ में 'मेरी भौ-बाधा हरौ' पाठ होता, तो अच्छा होता। पर प्राचीन पुस्तकों में 'मेरी भव-बाधा हरौ' ही पाठ होने के कारण यही पाठ इस संस्करण में रखा गया है॥

अपने अँग के जानि कै[1] जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥ २॥

अपने अँग के (अपने अंग के)—राजा के प्रधान, अमात्य, सेनापति तथा सेना इत्यादि राजा के अंग अर्थात् सहायक कहलाते हैं। अतः अंग का अर्थ यहाँ सहायक अथवा पक्षी होता है। 'अपने अँग के' का अर्थ अपने पक्षियों के दल में हुआ॥ इजाफा (इज़ाफ़ा)—अरबी भाषा में इज़ाफ़ा बढ़ती अर्थात् वृद्धि को कहते हैं। जब कोई बादशाह, अपने किसी सरदार अथवा कर्मचारी को अपना शुभचिन्तक समझ कर अथवा उसके किसी अच्छे काम से प्रसन्न होकर, उसकी जागीर अथवा वेतनादि में वृद्धि कर देता है, तो यह वृद्धि इज़ाफ़ा कहलाती है॥

१. कैं (२)।

अवतरण—नायक नवयौवना मुग्धा के शरीर तथा उत्साह में वृद्धि देख, रीझ कर, उसकी प्रशंसा करता हुआ, अपने मन में कहता है—

अर्थ—यौवन-रूपी प्रवीन (दान, दंड इत्यादि उपायों में निपुण) नृपति (राजा) ने [उनको] अपने अँग का (दल का, पक्ष का) समझ कर, स्तनों (कुचों), मन, नयनों [और] नितंबों का बड़ा इज़ाफ़ा कर दिया है॥

टीकाकारों ने प्रायः ऐसे दोहों को सखी का वचन सखी से, नायक से, अथवा स्वयं नायिका से माना है। पर हमारी समझ में ऐसे दोहों को, सखी का वचन मानने की अपेक्षा, नायक का वचन मानने में विशेष रस है; क्योंकि किसी गुण-ग्राहक की प्रशंसा से किसी वस्तु के गुणों की जैसी वास्तविकता प्रकट होती है, वैसी किसी अभि-प्राय से प्रशंसा करनेवाले की प्रशंसा से नहीं हो सकती। इसलिए ऐसे दोहों में हमने प्रायः नायक का स्वगत वचन माना है।

अर तैं टरत न बर-परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ाहोड़ी[1] बढ़ि चले चितु, चतुराई, नैन॥ ३॥

अर (अँड़)=किसी बात के निमित्त हठ-पूर्वक डट जाना। यहाँ 'अर' का अर्थ अपने गौरव के निमित्त हठ करना है॥ बर-परे—'बर' का अर्थ बल है। यहाँ इसका अर्थ उत्साह, उमंग है। अतः 'बर-परे' का अर्थ उमंग से भरे हुए होता है॥ मरक=बढ़ावा, चाँटी॥ होड़ाहोड़ी—होड़ बराबरी करने की स्पृहा—लागडाँट—को कहते हैं। 'होड़ाहोड़ी' का अर्थ परस्पर की लागडाँट होता है।

अवतरण—नवयौवना नायिका की शोभा से रीझकर नायक, उसकी प्रशंसा करता हुआ, अपने मन में कहता है—

अर्थ—[अहा! इस स्त्री के शरीर में यौवनागमन के कारण] उमंग से भरे हुए चित्त, चतुराई और नयन [अपने-अपने] हठ से नहीं हटते, [और] होड़ा-होड़ी (परस्पर लागडाँट करके) बढ़ चले हैं, मानो मदन ने [इन्हें] बढ़ावा दे रक्खा है।

औरै-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज।
मनौं[2] धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥ ४॥

औरै-ओप=कुछ और ही ओप वाली। यह समस्त पद 'कनीनिकनु' का विशेषण है॥ कनीनिकनु—कनीनिका आँख की पुतली को कहते हैं। 'कनीनिकनु' कनीनिका शब्द के संबंधकारक का बहुवचनांत रूप होता है। इसके पश्चात् की तृतीया

१. होड़ीहोड़ा (२,४)। २. मनी (१, ४, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

की विभक्ति का लोप है, अतः इसका अर्थ कनीनिकाओं से, अर्थात् कनीनिकाओं के कारण, हुआ ॥ गनो=गिनी गई है, मानी गई है ॥ घनी-सिरताज-घनी का अर्थ अनेक होता है। यहाँ इसका अर्थ अनेक सपत्नी है। 'सिरताज' फारसी समस्त शब्द 'सरताज' का रूपान्तर है। इसका अर्थ शिरोमणि अर्थात् श्रेष्ठतम होता है। इसलिए 'घनी-सिरताज' का अर्थ अनेक सपत्नियों में शिरोमणि अर्थात् श्रेष्ठतम पत्नी हुआ ॥ मनौं (मणि)=हीरा, नीलम, इत्यादि, अथवा सर्प इत्यादि से निकली हुई मणियाँ। मणियों में अनेक प्रकार के प्रभाव माने जाते हैं। किसी मणि के पहनने से लक्ष्मी की प्राप्ति, किसी से अन्य मनुष्यों का सम्मोहन इत्यादि माना जाता है ॥ धनी=प्रभु, स्वामी अर्थात् पति ॥ मनौं धनी के नेह की—इसका अर्थ पति के स्नेह को आकर्षित करने वाली मणियाँ होता है ॥ छनीं=आच्छादित, छिपी हुई। मणि, मंत्र इत्यादि का प्रभाव छिपे रहने पर विशेष होता है और खुल जाने पर जाता रहता है। इसी प्रकार लज्जा से आच्छादित नेत्रों में भी आकर्षण-शक्ति विशेष होती है। इसीलिए कवि ने कनीनिकाओं को मणि बनाकर लज्जा रूपी पट से ढाँप रक्खा है।

अवतरण—नवयौवना मुग्धा को आँखों की पुतलियों में यौवनागमन के कारण विलक्षण प्रभा तथा लज्जा का संचार हो गया है। उसकी प्रशंसा सखी उसके हृदय में उत्साह बढ़ाने के निमित्त, करती है—

अर्थ—[अब तू अपनी] और ही ओप (प्रभा) वाली कनीनिकाओं के कारण अनेक [सपत्नियों] में शिरोमणि गिनी गई है, [क्योंकि ये तेरी कनीनिकाएँ] लज्जा-रूपी पट में छिपी हुई (लिपटी हुई) पति के स्नेह को (पति के स्नेह को तेरी ओर आकर्षित करने वाली) मणियाँ बन गई हैं ॥

सनि-कज्जल[1] चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु ॥ ५ ॥

सनि (शनि)=शनैश्चर नामक ग्रह। इस ग्रह का रंग काला माना जाता है, और वस्तुत भी इस तारे का रंग देखने में श्याम प्रतीत होता है। सनि-कज्जल=जिसमें कज्जल शनि है ऐसी। यह समस्त पद 'चख-झख-लगन' का विशेषण है। इसमें बहुव्रीहि समास है। चख (चक्षु)=आँख। झख (झष)=मछली ॥ लगन (लग्न)—इस शब्द का धात्वर्थ लगा रहना, मिला रहना है। ज्योतिष की परिभाषा में क्रांतिवृत्त के क्षितिज में लगे रहने को लग्न कहते हैं। भारतीय ज्योतिषाचार्यों के अनुसार सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है। उस परिक्रमा-पथ को क्रांतिवृत्त कहते हैं, जो स्वयं भी प्रवह वायु द्वारा चलायमान होकर, पृथ्वी के चारों ओर घूमा करता है। यह क्रांतिवृत्त

१. कज्जलु (१)।

बारह सम भागों में विभक्त माना गया है। एक एक भाग एक एक राशि के नाम से ख्यात है। उन बारह राशियों के नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। जो राशि जितने काल तक पूर्व क्षितिज से सम्मिलित रहती है, उतने काल तक उस राशि की लग्न मानी जाती है। जैसे यदि सूर्योदय के समय क्रांतिवृत्त की मीन राशि क्षितिज से सम्मिलित हो, तो उस समय मीन लग्न मानी जायगी, और जब तक क्रांतिवृत्त के भ्रमण के कारण, वह राशि घूम कर क्षितिज रेखा का उल्लंघन न कर जायगी, और मेष लग्न रेखा पर न पहुँच जायगी, तब तक मीन लग्न का मान रहेगा। उसके पश्चात् मेष लग्न का मान आरम्भ होगा। जन्मकुण्डली के सम्बन्ध में लग्न उस लग्न को कहते हैं, जो किसी के जन्म के समय होती है। जैसे यदि किसी के जन्म समय मीन लग्न हो तो मीन लग्न कहने से उसके जन्म-काल की लग्न समझी जायगी। यदि उस मनुष्य के जन्म के समय मीन लग्न हो, और शनि ग्रह भी उस समय मीन राशि ही में हो, तो उस मनुष्य की लग्न में मीन राशि के शनि का होना कहा जायगा। ऐसा मनुष्य ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राजा होता है, यथा—

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थोऽपि शनैश्वरः।
करोति भूपतेर्जन्म वंशे च नृपतिर्भवेत् ॥
(जातक संग्रह, राजयोग-प्रकरण, श्लोक १३)

'लगन' शब्द इस दोहे में श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ तो वही है, जो ऊपर लिखा गया है, और दूसरा लगन अथवा मिलना है ॥ सुदिन=अच्छा दिन अर्थात् ऐसा समय, जो कि ग्रहों की स्थिति के कारण राजयोग के अनुकूल हो। यद्यपि शनि का मीन लग्न में होना मनुष्य को राजा बनाता है, तथापि केवल एक यही योग इस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं है। और भी ग्रहों का यथेष्ट स्थानों में होना आवश्यक है अर्थात् और प्रकार से भी वह समय सानुकूल होना चाहिए। यही सानुकूलता बिहारी ने 'सुदिन' कह कर व्यंजित की है। नेत्रों से देखने के विषय में सुदिनता का यह भाव है कि नायिका के नायक को कज्जल-कलित नेत्रों से देखने के समय ऐसा सुअवसर था कि वह आँखें भर कर उसकी ओर देख सकी ॥ सनेहु (स्नेह)=स्नेह रूपी बालक। इस दोहे में, 'उपज्यौ', 'लगन' इत्यादि शब्दों के पड़ने के कारण, अर्थ बल से बालक शब्द का ग्रहण हो जाता है। भोगवै=भोगे, भोग करे ॥ सुदेसु=सुन्दर देश। देश का सौष्ठव उसका धनधान्य तथा सानुकूल प्रजा से संपन्न होना इत्यादि है, और देह का सौष्ठव सुन्दर, युवा तथा स्निग्ध होना है ॥

अवतरण—किसी सुअवसर पर नायिका के कज्जल कलित नेत्रों से देखने से नायक के हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ, जिसने उसके सर्वांग पर अधिकार जमा लिया। उसकी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

इसी दशा का वर्णन सखी, बड़ी चातुरी से नायिका प्रति कर के, उसको नायक से मिलाया चाहती है—

अर्थ—जिसमें कज्जल-रूपी शनि [स्थित] है, ऐसी चख-रूपी मीन लग्न में (१. पृथ्वी तथा सूर्य की विशेष स्थिति के समय; २. आँखों के आँखों से मिलने के समय) शुभ दिन [नायक के हृदय में] उत्पन्न स्नेह-रूपी बालक सव देह-रूपी सुदेश (देह-रूपी सुदेश का सार्वभौमिक राज्य) पा कर, राजा बनकर क्यों न [उस पर] भोग करे (पूर्ण अधिकार जमावे) ॥

इस दोहे में सखी नायक के स्नेह की व्यवस्था का वर्णन करती हुई, वाक्य चातुरी-द्वारा, 'सुदेस' शब्द के प्रयोग से उसका सुंदर, युवा इत्यादि होना तथा 'सव' शब्द के प्रयोग से उसके सर्वांग पर स्नेह का आधिपत्य हो जाना व्यंजित करके, नायिका के हृदय में रुचि उपजाया चाहती है ॥

सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसति नाँहि ।
मनमथ-नेजा-नोक सी खुभी खुभी जिय[1] माँहि ॥ ६ ॥

सालति है = चुभ कर पीड़ा देती है ॥ नटसाल (नष्ट शल्य) = वर्छी, बाण इत्यादि की अथवा काँटे की नोक, जो टूट कर घाव के भीतर रह जाती है ॥ मनमथ-नेजा-नोक = कामदेव के भाले की नोक। कई एक टीकाकारों ने, यह कह कर कि कामदेव के आयुध बाण प्रसिद्ध हैं अतः 'मनमथ नेजा' का अर्थ कामदेव का भाला करने में प्रसिद्धि-विरुद्ध दूषण पड़ता है, "मनमथ" का अर्थ मन को मथने वाला अर्थात् पीड़ा देने वाला किया है। पर शृंगार रस के दोहे में 'मनमथ-नेजा-नोक' का अर्थ कामदेव के भाले की नोक ही करना विशेष सरस है। यद्यपि कामदेव के मुख्य आयुध तो अवश्य बाण ही माने जाते हैं, पर उनके और आयुधों—खड्ग-कुन्तादि—का भी वर्णन कवि करते हैं। अतः उसके भाले का वर्णन दूषित नहीं समझा जा सकता ॥ खुभी = कान में पहनने का एक भूषण, जो भाले के फल के आकार का होता है ॥ खुभी = चुभी हुई, धँसी हुई ॥

अवतरण—खुभी पर रीझे हुए नायक का, नायिका की किसी सखी अथवा दूती से, मिलनोत्कंठा-व्यंजक वचन—

अर्थ—[उसकी] कामदेव के भाले की नोक सी खुभी [मेरे] जी में धँसी हुई नटसाल सी सालती (खटकती) है, [और] किसी प्रकार निकलती नहीं ॥

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली[2] चली सँग जाइ ॥ ७ ॥

१. मन (२), हिय (४)। २. चली अली (१)।

जोन्ह (ज्योत्स्ना) = चाँदनी ॥ लखाइ=लक्षित ॥ सौंधे = सुगंध ॥ डोरैं = डोरे में। जिस प्रकार दीपक की किरणें तार की भाँति चारों ओर फैलती हैं, उसी प्रकार सुगन्धित वस्तु की सुगंध के तार वायु के बहाव की ओर प्रसरित होते हैं। इन्हीं तारों को डोरे कहते हैं ॥ अली=सखी। यदि यह शब्द यहाँ श्लिष्ट माना जाय, तो चमत्कार बढ़ जाता है। एक अर्थ सखी और दूसरा अर्थ भ्रमर करने से इसका अर्थ भ्रमर सी सखी हो जाता है ॥

अवतरण—शुक्लाभिसारिका नायिका की अंतरंगिनी सखियाँ उसके शरीर की गुराई तथा सुगंध का वर्णन करती हैं—

अर्थ—[देखो, यह] युवती [अपनी गौर द्युति के कारण] चाँदनी में [कैसी] मिल गई है [कि] किंचिन्मात्र भी लक्षित नहीं होती। [अतः उसको दृष्टि द्वारा लक्षित करके उसके संग चलना असंभव है, पर] अली (भ्रमर सी सखी) [उसके शरीर की] सुगंध के डोरे से लगी हुई (डोरे के सहारे पर) [उसके] संग चली जा रही है ॥

हौं रीझी, लखि रीझिहौ छबिहिं छबीले लाल ।
सोनजुही सी ह्वोति दुति-मिलत[1] मालती माल ॥ ८ ॥

दुति-मिलत = द्युति अर्थात् आभा से मिलते ही। यह पद समस्त है ॥

अवतरण—नायिका की सखी अथवा दूती नायिका के शरीर की सुनहरी आभा की प्रशंसा करके नायक के हृदय में उसके देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न किया चाहती है—

अर्थ—मैं [तो उस पर] रीझ गई, [और तुम भी,] हे [अपने को] छबीले [समझने वाले] लाल, [उसकी] छबि देखकर रीझ जाओगे। [उसकी गुराई ऐसे पीत वर्ण की है कि उसकी] आभा से मिलते ही [उसकी] माला में [लगी हुई] मालती सोनजुही सी [सुनहरी] हो जाती है ॥

बहके[2], सब जिय[3] की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न ।
छिन[4] औरे, छिन[4] और से, ए छबि छाके नैन ॥ ९ ॥

बहके=अपने वश से बाहर हुए। छबि-छाके = छवि रूपी मदिरा से छके हुए। छकना पीने को कहते हैं। पंजाब में अभी तक लोग 'जल छक लो' को जल पी लो के अर्थ में बोलते हैं। जैसे पियक्कड़ का अर्थ बहुत मदिरा पीने वाला होता है, वैसे ही 'छाके' का अर्थ मदिरा पीकर मतवाले होना है। अतः 'छवि छाके' का अर्थ छवि रूपी मदिरा पी कर मतवाले हुआ ॥

१. मिलित (५)। २. बहकैं (२)। ३. जी (४)। ४. छिनु (१, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अवतरण—सखी नायिका से कहती है कि तुझे अपना अनुराग छिपाए रखना चाहिए; इस तरह प्रेमोन्मत्त देख कर लोग तुझे क्या कहेंगे। उसकी यह शिक्षा सुनकर पूर्वानुरागिनी नायिका उससे कहती है—

अर्थ—[मैं क्या करूँ,] ये छबि-रूपी मदिरा पी कर मतवाले, बहके, [और इसी कारण] क्षण क्षण पर और ही और प्रकार के होने वाले नयन जी की सब [छिपी हुई बातें] कह देते हैं (प्रकाशित कर देते हैं), [और], ठौर कुठौर (अवसर अनवसर) नहीं देखते (समझते) ॥

यह बात प्रसिद्ध ही है कि मदिरा पान करने पर मनुष्य अपने जी की सब बातें कह देता है। इसीलिए चोर से उसकी चोरी कहला लेने के लिए उसको प्रायः मदिरा पिला दी जाती है ॥

फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी[1] लाज की लाव।
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव ॥ १० ॥

लाव=रस्सी, नाव बाँधने की लहासी ॥ लाज की लाव—लज्जा-कृत लाव, लज्जा से बनी हुई लाव अर्थात् लज्जा रूपी लाव ॥ छबि=छवि-रूपी नद। यहाँ आरोप्यमान नद का अर्थोपक्षेपण है ॥ झौंर=यह शब्द झूमर का रूपांतर है। किसी वस्तु के झूमते हुए गोलाकृति समूह को झूमर अथवा झौंर कहते हैं। हेमचन्द्र की देशी नाममाला में यही शब्द 'झौंडलिया' के रूप में मिलता है। उसका अर्थ रास के सदृश एक नाच है, जिसमें अनेक व्यक्ति मंडल बाँध कर नाचते हैं ॥

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका अंतरंगिनी सखी से अपनी स्नेह-दशा कहती है—

अर्थ—[नायक के] अंग-अंग की छवि के झूमर में [फँस कर मेरा] चित्त, भँवर की (भँवर में पड़ी हुई) नाव बना हुआ, फिर फिर कर (घूम फिर कर), उसी ओर (नायक ही की ओर) रहता है, [और किसी ओर नहीं जाता, क्योंकि उसको नायक की ओर से खींचने वाली] लज्जा-रूपी रस्सी टूट गई है।

नीकी[2] दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि ॥ ११ ॥

अनाकनी=अनसुनी। आनाकानी देना=बात को सुनकर भी न सुनना। फीकी=प्रभाव-रहित ॥ गुहारि=पुकार ॥ बिरदु=प्रशंसा, प्रशस्ति। तारन-बिरदु=तारने वाले होने की विख्याति ॥ बारक=एक बार ही, सर्वथा ॥ बारनु=हाथी।

अवतरण—भक्त का उलाहना भगवान् से—

१. तुटी (२, ५)।   २. नीकैं (२)।

अर्थ—[हे नाथ! आप ने तो] अच्छी आनाकानी दी, [हमारी] पुकार फीकी पड़ गई; मानो हाथी को तार कर [आपने] एक बार ही [अपना] तारन-बिरद (तारने वाले कहलाना) छोड़ दिया ॥

चितई ललचौहैं चखनु डटि[1] घूँघट-पट माँह।
छल सौं चली छुवाइ कै छिनकु छबीली छाँह ॥ १२ ॥

चितई—इस शब्द का प्रयोग बिहारी ने सब ठौर अकर्मक ही किया है। १४४, ३१९, ४९३ तथा ६२३ अंकों के दोहों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है, और सब में अकर्मक ही प्रयोग है ॥

अवतरण—नायक को देख कर नायिका ने जो अनुरागोत्पादक तथा अनुराग-व्यंजक चेष्टाएँ की हैं, उन पर रीझ कर नायक स्वगत, अथवा उसकी सखी से, कहता है—

अर्थ—घूँघट के पट में से [पहिले तो उसने] डट कर (स्थिरता-पूर्वक, आँखों से आँखें भली-भाँति मिलाकर) [मुझे] ललचाते हुए चक्षुओं से देखा, [और फिर किसी] ब्याज से [वह] छबीली [मुझको अपनी] छाया क्षण मात्र छुआ कर (छुआती हुई) चली ॥

'छबीली' शब्द को 'छाँह' का विशेषण भी मान सकते हैं ॥

छाया पृथ्वी पर पड़ती है। 'छुवाइ' शब्द से छाया के अंतिम भाग मात्र का स्पर्श और उससे नायिका का अपने सिर की छाया से नायक के पावों का स्पर्श करना, अर्थात् नायक को प्रणाम करने का भाव, व्यंजित होता है। छाया छुआने से यह भी सूचित होता है कि नायक उसको ऐसा प्रिय लगा कि यद्यपि वह उसको अपना शरीर लज्जावश न छुआ सकी, तथापि छाया ही को उसके शरीर से छुआ कर उसने स्पर्शाभास का सुख प्राप्त किया ॥

जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत[2] नैन ॥ १३ ॥

जोग-जुगति (योग-युक्ति)—योग शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसके दो अर्थ हैं—(१) नायक का मिलाप; (२) चित्त-वृत्तियों के निरोध द्वारा जीवात्मा का परमात्मा में लीन करना। जुगति=उपाय। जोग-जुगति (१) प्रियतम-संयोग की प्राप्ति के उपाय; (२) योग-क्रिया करने के विधान ॥ पिय=इस शब्द के भी दो भावार्थ हैं—(१) प्रियतम, नायक; (२) परमप्रेमास्पद परमात्मा ॥ अद्वैतता=अभिन्नता। नायक

१. दुरि (४)।   २ सेवति काननि (४), सेवत कानन (५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पक्ष में इसका अर्थ अपने सामने से अलग न होने देना है, और ब्रह्म पक्ष में ब्रह्म तथा जीव का ऐक्य भाव। काननु=इस शब्द के भी यहाँ दो अर्थ हैं—(१) कानों को। इस अर्थ में यह शब्द कान शब्द के संबंधकारक का बहुवचन रूप है, जो कि कर्मकारकवत् प्रयुक्त हुआ है; (२) वन। इस अर्थ में यह शब्द कानन शब्द के कर्मकारक का एकवचन रूप है॥ नैन (नयन)—यह शब्द भी यहाँ श्लिष्ट है। इसका पहिला अर्थ नेत्र है, और दूसरा उचित आचार तथा संयम रखने वाले अर्थात् योगी। इन दोनों अर्थों के संयोग से 'नैन' शब्द में श्लिष्टपद-मूलक रूपक हुआ॥

अवतरण—नवयौवना मुग्धा के नेत्रों के सौंदर्य तथा बढ़ाव को देख कर सखियाँ, उनकी प्रशंसा करती हुई, उससे परिहासात्मक तथा उत्साहवर्द्धक वाक्य कहती हैं—

अर्थ—[अब तेरे] नयन-रूपी योगी 'काननु' (श्रवण-रूपी वन) का सेवन करने लगे हैं, मानो मदन-रूपी महा योगी के द्वारा योग (१. संयोग। २. योग-क्रियाओं) की सब युक्तियाँ सिखाए हुए [वे] प्रिय-अद्वैतता (१. प्रियतम से अलग न होना; २. परमात्मा से एकता) चाहते हैं [एवं इनकी शोभा पर रीझ कर नायक सदैव तेरे सामने उपस्थित रहेगा]॥

यह सखियों का परिहास उसी प्रकार का है, जैसा सम-वयस्क युवतियाँ आपस में किया करती हैं कि अब तो तेरे मन में और ही चाव बढ़ने लगे हैं, और तेरा प्रियतम तुझ पर मोहित हो रहा है॥

खरी पातरी कान की, कौन[1] बहाऊ बानि।
आक-कली न रली करै अली, अली, जिय जानि॥ १४॥

खरी=बहुत, बड़ी, अत्यन्त॥ पातरी=पतली, सुकुमार अर्थात् जिस पर किसी बात का प्रभाव शीघ्र पड़े। 'पातरी कान की'=कान की पतली अर्थात् किसी बात को सुनकर, बिना विचारे, उसपर शीघ्र विश्वास कर लेने वाली। इस विशेषण से नायिका की अप्रौढ़ता व्यंजित होती है॥ बहाऊ=बहा देने के योग्य अथवा बहा देने वाली, अर्थात् नष्ट करने वाली॥ आक (अर्क)=मदार॥ रली=आनंद, विहार, सुख॥

अवतरण—मध्या नायिका ने, नायक को अन्य स्त्री-रत सुन कर, मान किया है। सखी उसको समझाती है—

अर्थ—[तू] कान की बड़ी पतली है। [यह तेरी] कौन (किस अर्थ की अर्थात् बहुत निकम्मी) बहाऊ (बहा देने के योग्य अथवा तुझको नष्ट करने वाली) बान (प्रकृति) है [कि तू बिना विचार किये सबकी बातों पर विश्वास कर लेती है]। हे अली (सखी) [तू अपने] जी में यह बात जान ले (निश्चित कर ले) [कि] अली (भ्रमर) मदार की कली से रली (विहार) नहीं करता॥

१. कौनु (१), कौनि (२)।

पिय-बिछुरन को दुसहु दुखु, हरषु जात प्यौसार।
दुरजोधन[1] लौं देखियति[2] तजत[3] प्रान इहि[4] बार॥ १५॥

प्यौसार (पितृशाला)=बाप के घर, नैहर। दुरजोधन (दुर्योधन)=कौरवपति धृतराष्ट्र का पुत्र। उसको शाप था कि जब उसको हर्ष तथा शोक, दोनों एक साथ ही व्यापैंगे, तब उसकी मृत्यु होगी। एक ऐसे ही अवसर पर उसके प्राण छूटे थे॥ देखियति=देखी जाती है॥ इहि बार=इस बार अर्थात् अब की बार नैहर जाते समय॥

अवतरण—पहिले तो नायिका मुग्धा थी, अतः उसे नैहर जाते समय नायक-वियोग का दुःख नहीं होता था। पर अब वह मध्यावस्था को प्राप्त हो रही है, अतएव इस बार उसको नैहर जाने के हर्ष के साथ ही नायक के विछोह का दुःख भी व्याप्त हो रहा है। अर्थात् उसको हर्ष तथा दुःख एक साथ ही हुए हैं, जिससे उसके प्राण बड़े संकट में पड़े हुए हैं। उसकी इसी दशा का वर्णन सखी सखी से करती है—

अर्थ—नैहर जाते [समय एक तो इस को नैहर वालों की दर्शन-संभावना का] हर्ष है, [और दूसरे] प्रियतम से बिछुड़ने का दुःसह दुःख है। [अतः] इस बार [की जवाई में यह] दुर्योधन की भाँति प्राण तजते समय की दशा में देखी जाती है॥

झीनैं पट मैं झुलमुली[5] झलकति[6] ओप अपार।
सुरतरु की मनु[7] सिंधु मैं लसति[8] सपल्लव डार॥ १६॥

झुलमुली=इस शब्द का अर्थ, कृष्ण कविको छोड़कर, सभी टीकाकारों ने कर्ण-भूषण विशेष, जिसको झाला अथवा पीपलपत्ता कहते हैं, लिखा है, और इसी अर्थ के अनुसार दोहे का भी अर्थ किया है। कृष्ण कवि ने इसका अर्थ और कोई भूषण—कदाचित् उरबसी—माना है। ईसवी खाँ ने इसका अर्थ उरबसी किया है और यह भी लिखा है कि "जो नायिका को कहैं झीने पट मैं ऐसी झलमलै है, तो भी हो सकै है।" हमारी समझ में 'झुलमुली' का अर्थ झुलमुलाती हुई, अर्थात् झीने पट से ढँपे रहने के कारण कभी झलकती और कभी छिप जाती हुई करके इसको 'ओप' शब्द का विशेषण मानना चाहिये। १८६ तथा ५२८ अंकों के दोहा में जो 'झलमलै' शब्द क्रिया रूप से पड़ा है, उसी शब्द से यह 'झुलमुली' शब्द विशेषण बना है। झलमलाना, झिलमिलाना तथा झुलमुलाना, ये तीनों शब्द वस्तुतः एक ही शब्द के रूपान्तर मात्र हैं। और थोड़े-थोड़े अर्थ भेद से प्रयुक्त होते हैं॥ लसति=बिलास करती है, अर्थात् मन्द-मन्द हिलती हुई सुशोभित होती है॥

१. दुर्ज्जोधन (२), दुर्जोधन (५)। २. देखियत (३), देखिए (५)।
३. तजति (४,५)। ४. जिहि (२), एहि (४)। ५. झलमली (५)।
६. झलकत (४)। ७. जनु (२)। ८. लसी (१,४), लसै (५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

214

अवतरण—झीने पट में फूटकर निकलती हुई नायिका के शरीर की झलक पर रीझ कर नायक स्वगत कहता है—

अर्थ—[अहा ! इसकी] झुलमुली (झुलमुलाती हुई) अपार ओप झीने पट में से [ऐसी] झलकती है, मानो कल्पवृक्ष की पल्लव-सहित डार समुद्र में विलास कर रही है ॥

'सपल्लव डार' इसलिए कहा है कि हाथों, पावों, ओठों तथा कानों की उपमा पल्लवों से दी जाती है ॥

डारे ठोड़ी-गाड़, गहि नैन-बटोही, मारि।
चिलक-चौंध मैं रूप-ठग, हांसी-फांसी डारि ॥ १७ ॥

ठोड़ी-गाड़=ठुड्डी का गड़हा ॥ बटोही=बाट चलने वाले, पथिक ॥ चिलक=चमक । चौंध=पथिकों को जो किसी रात को, अधिक रात्रि रहने पर भी, तारों इत्यादि के प्रकाश के कारण सवेरा होता सा प्रतीत होने लगता है, और जिससे चौंधिया कर, अर्थात् धोखा खाकर, उसी समय मार्ग चल पड़ते हैं, उस धोखा देनेवाले प्रकाश को चौंधा अथवा चौंध, अर्थात् चमक से आँखों को अन्धा करनेवाला, भ्रम में डालनेवाला कहते हैं। इसी का नाम फारसी भाषा में 'सुब्हे काजिब' है। ऐसे चौंधे से धोखा खा कर जब पथिक अधिक रात्रि रहने पर भी चल पड़ते हैं, तो ठगों की बन आती है। वे उनको फांसी डाल कर मार डालते और किसी गड़हे में डाल देते हैं।

अवतरण—नायक के नेत्र नायिका के शरीर की शोभा देखते देखते मोहित होकर उसकी ठुड्डी के गड़हे में पड़ गए हैं; और अब वहां से शोभाधिक्य के कारण नहीं टल पाते। अपने नयनों की यह व्यवस्था नायक, नायिका की शोभा का वर्णन करता हुआ, स्वगत कहता है—

अर्थ—[उसके] सौंदर्य-रूपी ठग ने चिलक-रूपी चौंध में [मेरे] नयन-रूपी पथिकों को घेर कर, हँसी-रूपी फाँसी डाल, मार कर ठोड़ी के गड़हे में डाल दिया [एवं वे बेचारे अब वहीं पड़े हुए हैं] ॥

इस दोहे के भाव से २६ वें अंक के दोहे का भाव बहुत मिलता है ॥

कीनैं हूँ[1] कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन-रूपु[2] मिलि पानी मैं कौ लौनु ॥ १८ ॥

मन=मानस। यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसका पहिला अर्थ मन और दूसरा अर्थ मान सरोवर है। इस श्लेष के कारण 'मन' शब्द में श्लेष-मूलक रूपक है। अतः मन

१. ऊ (४,५)। २. रूप (१,२,४,५)।

बिहारी-रत्नाकर

का अर्थ यहाँ मनरूपी मानसरोवर हुआ। १५० अंक के दोहे में भी 'मन' शब्द का ऐसा ही प्रयोग है।

अवतरण—सखी की शिक्षा सुन कर नायिका कहती है कि अब मेरे मन से मोहन का लावण्यमय रूप किसी रूप से निकल नहीं सकता। तेरा शिक्षा देना वृथा है—

अर्थ—मोहन का [लावण्यमय] रूप [मेरे] मनरूपी मानसरोवर में मिल कर पानी में का (पानी में घुला हुआ) लवण हो गया है। अब [तू] कह (बतला) [तो सही कि] कोटिक यत्न करने पर भी [उसको उसमें से] कौन निकाले (निकाल सकता है) ॥

प्राय: टीकाकारों ने 'मन' को कर्ता और मोहन रूप को अधिकरण मान कर अर्थ किया है। वह भी बुरा नहीं है। इस अर्थ में 'मन' को उकारांत, तथा 'मोहन-रूपु' को अकारांत मानना होगा ॥

लाग्यो सुमनु ह्वै है सफलु[1], आतप[2]-रोसु निवारि।
बारी, बारी आपनी सींचि सुहृदता-बारि ॥ १९ ॥

सुमनु=(१) सो मन; (२) पुष्प ॥ सफलु=(१) प्राप्ताभीष्ट, प्राप्तकामना; (२) फलयुत ॥ आतप-रोसु (आतप-रोष) (१) ताप देने वाला अर्थात् दुःख देने वाला रोष; (२) आतप अर्थात् घाम का रोष अर्थात् तीक्ष्णता, प्रचंडता। बारी=(१) बालिका अर्थात् अनुभव रहित स्त्री; (२) माली, उद्यान का रक्षक। वाट का अर्थ उद्यान है। अतः वाटी का अर्थ उद्यान-संबंधी मनुष्य अर्थात् माली हुआ। इसी शब्द से, ... 'र' आदेश होकर, बारी शब्द बना है जो कि इस समय एक जातिविशेष का वाचक है। इस समय बारियों का मुख्य काम पत्तल, दोना बनाना है। यह काम पहिले उपवन रक्षकों ही का था। बारी=पारी अर्थात् अपने यहाँ नायक के आने की पारी, (२) वाटिका ॥ सुहृदता=(१) मैत्री, प्रेम; (२) सात्म्य, उपयोगिता। बारि (वारि)= (१) वाक्, सरस्वती। यहाँ इसका अर्थ वचन लेना चाहिए; (२) जल ॥ सुहृदता-बारि=(१) मित्रता के वचन; (२) सुहृदता का जल, सात्म अर्थात् सानुकूल जल अर्थात् ऐसा जल, जो बारी को यथेष्ट लाभदायी हो। जिस प्रकार सुहृदता के बारि (वचन) का अर्थ ऐसा वचन, जिसमें मित्रता की सरसता हो, होता है, उसी प्रकार सुहृदता के वारि (जल) का अर्थ ऐसा जल होता है, जिसमें सानुकूलता के गुण हों, अर्थात् स्वच्छ, शीतल तथा मधुर जल, जो बारी के निमित्त हितकारी होता है ॥

कवि इस पूरे दोहे में श्लेष-बल से दो अर्थ रख कर, नायिका से उसके इष्ट की गुप्त बात, सखी द्वारा, माली तथा बहिरंगिनी सखियों के सामने ही, कहला देता है;

१. सुफल (४, ५)। २. आतपु-रोसु (१, २), आतप-रोस (४, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पर उन लोगों का ध्यान, दूसरे ही अर्थ में उलझ कर, मुख्य अभिप्राय की ओर नहीं जाने पाता।

अवतरण—आज इस नायिका के घर नायक के पधारने की पारी है, पर अभी तक वह आया नहीं है। नायिका का मन उसी में लगा हुआ है, और विलंब के कारण कुछ रुष्ट सी होकर वह, जी बहलाने के निमित्त, वाटिका में भ्रमण कर रही है, जहाँ माली तथा कुछ बहिरंगिनी सखियाँ भी उपस्थित हैं। इतने में उसकी अंतरंगिनी सखी, जो नायक के पास गई थी, आकर यह दोहा चातुरी से पढ़ती है कि नायिका तो अपना इष्टार्थ समझ ले, पर माली तथा बहिरंगिनी सखियाँ समझें कि वह यह वाक्य माली से कह रही है। नायिका-प्रति तो वह यह कहती है—

अर्थ १—हे बारी (भोली स्त्री), [तेरा] मन [जो] लगा है, सो सफल (प्राप्तामीष्ट) होगा। [तू इस] दुःखदायी रोष को निवारित कर के बारी (पारी) सुहृदता (मैत्री) के वारि (वाक्य) से सींच (सरस कर)॥

पर अन्य व्यक्तियों की जान में वह माली से यह कहती है—

अर्थ २—हे बारी (माली), [तेरी वाटिका में] लगा हुआ सुमन (फूल) सफल (फलयुत) होगा। [तू] अपनी बारी (वाटिका) सुहृदयता के वारि (सानुकूल जल) से सींच कर घाम के रोष (प्रचंड प्रभाव) को निवारित कर॥

हरिचरणदास ने लिखा है कि यह दोहा बिहारी का नहीं है। यह उनका शुद्ध भ्रम है। एक तो यह दोहा सब प्राचीन पुस्तकों में तथा हरिचरणदास के पूर्व की टीकाओं में मिलता है; और दूसरे ऐसी उच्च कोटि का है कि बिहारी के अतिरिक्त कोई विरला ही इसका रचयिता हो सकता है। इसमें उन्होंने जो क्रमभंग दोष बतलाया है, वह उनको अर्थ न समझने के कारण भासित हुआ है।

अजौं[1] तर्‌यौना[2] हीं[3] रह्यौ श्रुति सेवत इक[4]-रंग[5]।
नाक-बास बेसरि[6] लह्यौ बसि मुकुतनु[7] कैं संग॥ २०॥

अजौं (अद्यापि)=आज तक भी, अब तक भी। तरयौना—यह शब्द श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ अधोवर्ती है और दूसरा कर्ण-भूषण विशेष, जिसको ताल्पर्ण तथा ताटंक भी कहते हैं, और भाषा में उसी को तरकी कहते हैं॥ श्रुति=(१) वेद की श्रुति; (२) कान॥ इकरंग=एक रीति पर, अविच्छिन्न रूप से॥ नाक-वास=स्वर्ग-निवास; (२) नासिका का निवास॥ वेसरि=(१) नासिका-भूषण विशेष; (२) बेसरी, खच्चरी, अर्थात् महा अधम प्राणी। बेसर संस्कृत में खच्चर को कहते हैं। उसी से

१. अज्यौं (१,४)। २ तरौंना (५)। ३. ई (१, ५)। ४. एक (४)। ५. अंग (५)। ६. बेशर (५)। ७. मुक्तन (२), मुक्तनि (५)।

बेसरी, स्त्रीलिंग रूप, बनता है। यहाँ यह रूप अत्यन्त तिरस्कार तथा लघुता का व्यंजक है। लक्षणा शक्ति से 'बेसरि' का अर्थ यहाँ बेसरी-सदृश महा अधम प्राणी होता है॥ मुकुतनु=(१) जीवन-मुक्त सज्जनों; (२) मुक्ताओं॥

अवतरण—इस दोहे में कवि बेसर का वर्णन करता हुआ श्लेष-बल से सत्संग की प्रशंसा करता है। बेसर पक्ष में इस दोहे का अर्थ यह होता है—

अर्थ १—आज तक तरयौना (कर्ण-भूषण) एक ढंग से (ज्यों का त्यों) कानों का सेवन करता हुआ (अधोवर्ती अर्थात् अमुख्यस्थान-स्थित) तरयौना ही रहा, [और] बेसर ने मोतियों का संग पा कर नाक-बास (१. नासिका का बास; २. उच्च पद) प्राप्त किया॥

कान की स्थिति पार्श्व भाग में होने के कारण कवि ने उसे अमुख्य स्थान मान कर तरयौने को अमुख्यस्थान स्थित वर्णित किया है, और नाक शब्द का अर्थ लक्षणा शक्ति से प्रधान, मुख्य, श्रेष्ठ इत्यादि किया है, जैसे ऐसे वाक्यों में होता है—'यह देश सब देशों की नाक है॥'

सतसंग पक्ष में इस दोहे का अर्थ होता है—

अर्थ २—अविच्छिन्न रूप से श्रुति (वेद) का सेवन करता हुआ [मनुष्य] आज तक भी तरयौना (अधोवर्ती) ही [बना] रहा, [और] बेसरी (महा अधम प्राणी) ने [भी] मुक्तों (जीवन-मुक्त सज्जनों) के संग बस कर नाक-बास (स्वर्ग-निवास) प्राप्त किया॥

टीकाकारों ने प्रायः सत्संगति-प्रशंसा के पक्ष में, 'तर्‌यौनाहीं' का अर्थ 'तरा नहीं' किया है। वह अर्थ भी इस प्रकार लग सकता है—

एक रूप से श्रुति का सेवन करता हुआ [मनुष्य] आज तक भी बिना तरा ही रहा, [और] बेसरी (महा अधम प्राणी) ने मुक्तों (जीवन-मुक्त सज्जनों) के संग बस कर स्वर्ग निवास प्राप्त किया॥

जम-करि-मुँह-तरहरि[1] पर्‌यौ, इहिं धरहरि चित लाउ[2]।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ[3]॥ २१॥

तरहरि=नीचे॥ धरहरि=निश्चय॥ नरहरि=(१) नरसिंह भगवान्; (२) कवि के दीक्षागुरु नरहरिदास। इनके विषय में विशेष जानने के लिये, भूमिका* में बिहारी की जीवनी द्रष्टव्य है॥

अवतरण—कवि की उक्ति अपने मन में—

१. तरिहरि (१)। २. लाव (४)। ३. गाव (?)।

*. यह भूमिका 'कविवर बिहारी' नाम से प्रकाशित हो गई है।—प्रकाशक।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

216

अर्थ—[तू] यम-रूपी हाथी के मुँह के नीचे पड़ा हुआ है, इस निश्चय पर चित्त लगा, [और] अब भी विषय-तृष्णा छोड़ कर नरहरि के गुणों का गान कर ॥

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल ।
आजु[1] मिले, सु भली करी; भले बने हौ लाल ॥ २२ ॥

महावरु—पहली तथा दूसरी प्रतियों के अनुसार यह शब्द उकारांत ठहरता है, और चौथी तथा पाँचवीं प्रतियों के अनुसार अकारांत । हमने पहली तथा दूसरी प्रतियों का अनुसरण करके इसको उकारांत रक्खा है ॥ 'आजु' (अद्य)—अव्यय होने के कारण यद्यपि इस शब्द के उकारांत होने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर ब्रजभाषा के कवियों ने इसको प्रायः उकारांत ही लिखा है । सतसई में यह शब्द छः दोहों में आया है, और छवों स्थानों पर बिहारी ने इसको उकारांत ही लिखा है ॥

अवतरण—प्रौढ़ा-धीरा-खंडिता नायिका की उक्ति नायक से—

अर्थ—पलकों में [पान की] पीक, अधर पर अंजन, [तथा] भाल पर महावर धारण किये हुए (अर्थात् पलकों में अधर रँगनेवाली वस्तु, अधर पर पलकों में देने वाली वस्तु एवं भाल पर पैरों में लगानेवाली वस्तु धारण किए हुए) आज [जो तुम] मिले हो, सो अच्छी बात की; [वाहजी वाह !] अच्छे बने हो ॥

इस दोहे में 'भली' तथा 'भले' शब्द व्यंग्यात्मक हैं ।

लाज-गरब-आलस-उमग-भरे नैन मुसकात[2] ।
राति-रमी रति देति[3] कहि औरै प्रभा प्रभात ॥ २३ ॥

अवतरण—प्रातःकाल सखी, नायिका के नेत्रों की कुछ विलक्षण ही शोभा से रात्रि में रमी हुई रति के विधान को, अर्थात् विपरीत रति को, लक्षित करके कहती है—

अर्थ—लाज, गर्व, आलस्य और उमंग से भरे हुए [तेरे] नेत्र मुसकिराते हैं, [जिससे तेरी कुछ] और ही [प्रकार की बनी हुई] शोभा रात्रि की रमी हुई रति [के प्रकार को] प्रातःकाल कहे देती है (तेरा विपरीत रति का करना प्रगट किए देती है) ॥

लज्जा, गर्व तथा आलस्य, उमंग, इन विरुद्ध भावों का संघटन, यही इस दोहे में विलक्षणता है । गर्व तथा उमंग से विपरीत रति लक्षित होती है, और लज्जा तथा आलस्य से प्रमाणित होता है कि उक्त गर्व तथा उमंग रति ही के कारण हैं ॥

१. आज (५) । २. मुसिकात (१, २), मुसुक्यात (५) । ३. देत (४, ५) ।

पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसकाइ[1] ।
कै कै सबै टलाटलीं[2], अलीं[3] चलीं[4] सुखु पाइ ॥ २४ ॥

टलाटलीं=टालमटोल, ब्याज, मिष ॥

अवतरण—नायक और नायिका रंगमहल में बैठे विनोद कर रहे थे । वहाँ सखियाँ भी उपस्थित थीं । उसी समय नायक ने बातों ही बातों में रति की इच्छा प्रकट की । नायिका ने यह सुन कर अपनी मुसकिराहट से प्रसन्नता लक्षित कराते हुए अंतरंगिनी सखी की ओर इस भाव से देखा कि अब उक्त कार्य का अवसर हो जाना चाहिए । यह लक्षित करके सब सखियाँ वहाँ से एक एक कर के, किसी न किसी मिस से, टलने लगीं । सखी का वचन सखी से—

अर्थ—पति ने रति की बातें कहीं (बातों में रति की इच्छा प्रकट की), [जिसको सुन कर नायिका ने] मुसकिरा कर [अपनी मुख्य] सखी को देखा । [यह देख] सब सखियाँ सुख पा कर, टलाटली (अनेक प्रकार के ब्याज) कर करके, [वहाँ से] चलीं (हटने लगीं) ॥

सखी तथा अली (आलि) शब्द यद्यपि भाषा में प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, पर बिहारी ने इस दोहे में 'सखी' शब्द में 'अली' की अपेक्षा कुछ गुरुता रक्खी है ॥

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान ।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी-समान ॥ २५ ॥

उरबसी=उर्वशी अप्सरा । उरबसी=हृदय पर पहनने का भूषण विशेष ॥

अवतरण—राधिकाजी ने श्रीकृष्णचंद्र को अन्य-रत सुन कर मान किया है । सखी मान छुड़ाने के निमित्त कहती है—

अर्थ—हे प्रवीण राधे ! सुन, [तू तो ऐसी सुन्दर है कि और की कौन कहे, इन्द्र की अप्सरा] उर्वशी को [भी] मैं तुझ पर वार दूँ । तू [तो] मोहन के उर में उरबसी [भूषण] के समान होकर बसी है [फिर दूसरी उनके उर में कैसे बस सकती है] ॥

कुच-गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, चली डीठि[5] मुँह[6]-चाड़ ।
फिरि न टरी, परियै[7] रही, गिरी[8] चिबुक की गाड़ ॥ २६ ॥

१. मुसुकाइ (४) । २. टलाटली (२, ४, ५) । ३. अली (२, ४, ५) । ४. चली (२, ४, ५) । ५. दीठि (१) । ६. मुख (२) । ७. अरीयै (५) । ८. परी (१, ४, ५) ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

217 चाड़=लालच। यह शब्द चाट का रूपान्तर है; जैसे शाटी का साड़ी, कीट का कीड़ा इत्यादि। चिबुक=अधर के नीचे का भाग ॥

अवतरण—नायिका की शोभा का निरीक्षण करता हुआ तथा चिबुक के गड़हे पर अत्यन्त रीझा हुआ नायक स्वगत कहता है—

अर्थ—[मेरी] दृष्टि कुच रूपी पहाड़ पर चढ़ कर, अति थकित (शोभा से मुग्ध) होकर [भी], मुख की चाड़ (चाट, लालच) से [उधर] चली। [पर] चिबुक की गाड़ (गर्त, गढ़े, खाड़ी) में गिर गई, [और] फिर [वहाँ से, अत्यन्त थकित होने के कारण,] टली नहीं, [वहीं] पड़ी ही रही ॥

बेधक अनियारे नयन, बेधत करि[1] न निषेधु।
बरबट बेधतु मो हियौ तो नासा कौ बेधु ॥२७॥

अनियारे=अनी वाले, नुकीले ॥ निषेधु=वह कार्य जो अपने लिए वर्जित हो, अनुचित कार्य ॥ बरबट (बलवत्)=बलपूर्वक, बरबस ॥ बेधु=छिद्र ॥

अवतरण—नायिका के सर्वांग-सौंदर्य पर रीझा हुआ नायक कहता है—

अर्थ—[तेरे] नुकीले नयन [तो] बेधक [हैं ही, अतः वे कोई] निषेध (अपने निमित्त निषिद्ध अर्थात् वर्जित काम) करके [मेरे हृदय को] नहीं बेधते (अर्थात् वे मेरा हृदय बेधने में कोई अपने कर्तव्य के विरुद्ध काम नहीं करते)। तेरा [तो] नासा का बेध [भी, जो कि स्वयं बेधा हुआ है, और जिसका काम बेधना नहीं है] बरबट (बरबस, अपने लिए अविहित काम करके) मेरे हृदय को बेधता है [भावार्थ यह हुआ कि तेरे सब अंग की शोभा हृदय को बेधती है, यहाँ तक कि तेरी नासा का छिद्र भी] ॥

लौनैं[2] मुहुँ दीठि[3] न लगै[4], यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना, दीठि ॥ २८ ॥

दीठि=कुदृष्टि ॥ दीनौ=इस शब्द को कवि लोग प्रायः दीन्यो अथवा दीन्यौ बोलते और लिखते हैं। हमारी प्राचीन पुस्तकों के अनुसार 'दीनौ' ही पाठ ठीक ठहरता है। सतसई में और कहीं यह शब्द नहीं आया है, अतः और दोहों से इसके यथार्थ रूप का पता नहीं चलता। 'लीनौ' शब्द अवश्य ४४३ वें दोहे में आया है। उसका पाठ भी 'लीनौ' ही ठहरता है। इसलिए यहाँ 'दीनौ' ही पाठ रखा गया है ॥ ईठि=इष्ट शब्द से ईठ बनता है, जिसका अर्थ मित्र है। उसी का स्त्रीलिंग—रूप 'ईठि' है। इसका

---

१. कर (४, ५)। २. लौनै (१), लौंनें (२, ३, ५), लोने (४)।
३. डीठि (२, ४, ५)। ४. लगो (१)।

अर्थ हितकारिणी, अर्थात् सखी है ॥ दिठौना=काजल इत्यादि की काली टीकी, जो मुख पर इस अभिप्राय से लगा दी जाती है कि कुदृष्टि न लगे ॥

अवतरण—दिठौना के कारण नायिका के मुख पर अधिक शोभा हो जाने का वर्णन नायक परिहासात्मक वाक्य में, उससे करता है—

अर्थ—[तेरी] सखी ने [तो तुझे दिठौना] यों कहकर (यह विचार कर) दिया [कि तेरे] सलोने (लावण्यमय) मुख पर दृष्टि (कुदृष्टि) न लगे, [पर इस] दिठौना देने से [तो तेरे मुख की ऐसी शोभा बढ़ गई कि उस पर] दृष्टि (आँख) दूनी होकर (और भी अधिक) लगने लगी (जमने लगी) ॥

चितवनि रूखे दृगनु की, हाँसी-बिनु मुसकानि[1]।
मानु जनायौ मानिनी, जानि लियौ पिय, जानि ॥ २९ ॥

हाँसी-बिनु=बिना किसी हँसी की बात की ॥

अवतरण—मानिनी नायिका की चेष्टा से उसके मान को समझ कर खिसियाए हुए नायक की व्यवस्था सखी सखी से कहती है—

अर्थ—[नायिका की] रूखे दृगों की चितवन, [और नायक की] बिना किसी हँसी की बात ही की मुसकिराहट (अर्थात् खिसियानपने की मुसकिराहट) से [तू] समझ ले कि मानिनी ने [तो] मान जनाया, [और] प्रियतम ने [उसका यह मान जनाना] जान लिया (समझ लिया) ॥

सब ही त्यौं[2] समुहाति छिनु, चलति सबनु दै पीठि।
वाही त्यौं ठहराति यह, कविलनवी[3] लौं, दीठि ॥ ३० ॥

त्यौं=ओर ॥ समुहाति=सामने होती है ॥ कविलनवी=पाँचो प्राचीन पुस्तकों के अनुसार इस शब्द का पाठ यही अर्थात् 'कविलनवी' ठीक ठहरता है। बिहारी के सबसे पहिले टीकाकार मानसिंह ने इसका अर्थ यह लिखा है—'कविलनवी, कठपुतरी श्रीसीताजी की मूर्ति श्रीराम चित्रपट में देखि पीठि फेरै।' कृष्ण कवि का पाठ तो निश्चित रूप से नहीं ज्ञात होता, पर उन्होंने इस शब्द का अर्थ 'मन्त्र की कटोरी' किया है। जब किसी की कोई वस्तु चोरी जाती है, तो उसका पता लगाने के लिए वे लोग, जिन पर संदेह होता है, मंडल बाँधकर बैठा दिए जाते हैं, और उनके बीच में एक कटोरी जल भर कर रख दी जाती है। तान्त्रिक के मन्त्र पढ़ने पर वह कटोरी चलायमान होती है, और सबकी ओर जा जाकर लौट आती है। पर जो उनमें से चोर होता है, उसके सामने ठहर जाती है। यह क्रिया अब भी कोई-कोई करते हैं, इसको कटोरी चलाना कहते हैं। कृष्ण कवि का अभिप्राय इसी कटोरी से है। यह शब्द और कहीं

---

१. मुसुकानि (१)। २. सौं (२)। ३. कवलनबी (४), कवलनवी (५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

देखने में नहीं आया, अतः इसके मूल रूप तथा अर्थ के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह अर्थ यहाँ लगता बहुत अच्छा है। यदि कृष्ण कवि का अर्थ ठीक माना जाय, तो इसका 'कौल' शब्द से, जो कि एक तान्त्रिक संप्रदाय का वाचक है, अथवा 'कवल' शब्द से, जो कटोरा-वाचक है, किसी प्रकार बनना संभव है। प्रतीत होता है कि बिहारी के समय में भी यह शब्द एक क्रियाविशेष से सम्बन्ध रखने के कारण, सर्वसाधारण में प्रचलित नहीं था। अतः कृष्ण कवि को तो यद्यपि इसका ठीक अर्थ ज्ञात था; किन्तु अनवरचंद्रिकाकारों को इस शब्द के अर्थ में भ्रम हुआ, और उन्होंने इसका पाठ 'कविलनुमा' कर लिया। बाद को और टीकाकारों ने भी वैसा ही किया। फ़ारसी भाषा में 'क़िब्लःनुमा' दिक्प्रदर्शक यंत्र को कहते हैं। यह 'कविल-नुमा' उसी 'क़िब्लःनुमा' का अपभ्रंश है। यद्यपि 'कविलनुमा' पाठ से भी इस दोहे का अर्थ अच्छा लग जाता है, तथापि यहां मन्त्र की कटोरी का भाव विशेष संगत ज्ञात होता है। अतः हमने, अपनी प्राचीन पुस्तकों के अनुसार, 'कविलनवी' ही पाठ रख कर उसका अर्थ मन्त्र की कटोरी किया है।

अवतरण—परकीया नायिका की दृष्टि इधर-उधर से घूम फिर कर उपपति ही की ओर जा ठहरती है, जिससे सखी उसका प्रेम लक्षित करके कहती है—

अर्थ—[तेरी] यह दृष्टि क्षण मात्र सभी की ओर समुहाती (सामने जाती) है, [पर फिर] सबको पीठ देकर चलती है (सबकी ओर से लौट पड़ती है), [एक] उसी [नायक] की ओर [जाकर] कविलनवी (मंत्र की कटोरी) की भाँति ठहरती है [जिससे लक्षित होता है कि तेरा चितचोर वही है] ॥

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी¹, मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि ॥ ३१ ॥

बिरदु=प्रशस्ति, किसी उत्तम कार्य करने से प्रसिद्ध नाम ॥ देखिबी=देखने के योग्य है, देखना है ॥ बीधे=बिद्ध हुए, उलझे ॥ गीधे=ललचाए हुए, परचे हुए ॥ गीधहिं=गिद्ध को, संपाती गिद्ध को ॥

अवतरण—कवि अथवा किसी भक्त का वचन भगवान् से—

अर्थ—हे मुरारि ! अब देखना है [कि आपका तारन-] विरद किस प्रकार रहेगा; [क्योंकि आप एक सामान्य पापी] गिद्ध (संपाति) को तार कर परचे हुए मुझ [महा पापी] से आ उलझे हैं ॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत², मिलत, खिलत, लजियात³।
भरे भौन मैं करत⁵ हैं, नैननु हीं सब⁶ बात ॥ ३२ ॥

१. जानवी (२), देखवी (४,५)। २. आनि (१)। ३. खिजत (४,५)। ४. लजि जात (२)। ५. कहत (१)। ६. सौं (२)।

मिलत=मेल कर लेते हैं ॥ खिलत=खिल उठते हैं, प्रसन्नता प्रकट करते हैं ॥

अवतरण—नायक और नायिका की चातुरी से, आँखों की चेष्टा ही के द्वारा, हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कर देने का वर्णन सखी सखी से करती है—

अर्थ—[देखो, कैसी चातुरी से ये दोनों गुरुजन से] भरे हुए भवन में आँखों ही में सब [अपने अभीष्ट की] बात कर लेते हैं (अपने अभिप्राय परस्पर प्रकट कर देते हैं)। [कभी कुछ] कहते हैं, [कभी] नटते हैं (निषेध करते हैं), [कभी] रीझते हैं, [कभी] खीझते हैं, [कभी फ़िर] मेल कर लेते हैं, [कभी] खिल्ते हैं (प्रफुल्लित होते हैं), [और कभी] लजाते हैं ॥

अथवा पूर्वार्ध का अर्थ यों किया जाय—

[नायक कुछ] कहता है (रति की प्रार्थना करता है), [जिस पर नायिका "मन में भावे, मुड़ी हिलावे" न्याय से] नटती है (निषेध करती है)। [नायक उसकी इस निषेध करने की चेष्टा पर] रीझता है, [तब नायिका उसको रीझने की चेष्टा पर बनावट से] खीझती है। [फ़िर दोनों] मेल कर लेते हैं, [जिस पर नायक, नायिका के चटपट खीझ छोड़ देने पर,] हँस देता है, [और नायिका उसके हँस देने पर] लज्जित हो जाती है ॥

वाही की चित चटपटी, धरत अटपटे पाइ।
लपट बुझावत बिरह की कपट-भरेऊ¹ आइ ॥ ३३ ॥

चटपटी=उत्कट अभिलाषा के कारण कोई काम करने में आतुरता ॥ अटपटे=कहीं के कहीं, लड़खड़ाते हुए ॥ लपट=ज्वाला ॥

अवतरण—उत्तमा खंडिता की उक्ति नायक से—

अर्थ—[जिसके यहाँ रात भर रहे हो,] उसी [से फिर मिलने] की [तुम्हारे] चित्त में [आतुरता है, इसीलिए तुम] अटपटे पाँव रखते हो। [पर तो भी मुझे कुछ दुःख नहीं है, क्योंकि तुम तो] कपट-भरे भी आ कर [मेरी] विरह-ज्वाला बुझाते हो [तात्पर्य यह है कि सपत्नी का दुःख मुझे तुम्हारे दर्शन-सुख के आगे भूल जाता है] ॥

लखि गुरुजन-बिच कमल सौं सीसु छुवायौ² स्याम।
हरि-सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम ॥ ३४ ॥

अवतरण—नायक और नायिका की चेष्टा सखी सखी से कहती है—

अर्थ १—[नायिका को] गुरुजनों के बीच में देखकर श्याम ने [अपना] सिर कमल से छुवाया (पाँव पड़ने की चेष्टा करके अपना अनुराग प्रकट किया)।

१. भरे उर (२)। २. छिवायौ (२)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

219 बाम (वामा अर्थात् नायिका) ने [वह भाव समझ कर अपनी] आरसो, हरि (नायक) के सामने करके, हृदय में लगा ली (आरसी में नायक का प्रतिबिम्ब ले कर उसे हृदय में लगाने से यह सूचित किया कि मैं तुमको अपने हृदय में बसाती हूँ) ॥

अथवा यों अर्थ किया जाय—

अर्थ २–[नायिका को] गुरुजनों के बीच में देख कर श्याम ने [अपना] सिर कमल से छुवाया (पाँव पड़ने की चेष्टा कर के मिलने की प्रार्थना सूचित की)। बाम (वामा अर्थात् नायिका) ने [वह भाव समझ कर अपनी] आरसो, हरि (सूर्य) के सामने कर के, हृदय में लगा ली (आरसी में सूर्य का प्रतिबिम्ब लेकर कुच-रूपी पहाड़ों के बीच में लगाने से यह सूचित किया कि सूर्य के अस्ताचल में छिपने पर, अर्थात् रात्रि को मिलूंगी) ॥

पाइ महावर दैंन[1] कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति[2] जाइ ॥ ३५ ॥

महावरी = महावर के गाढ़े रंग में रुई को भलीभांति भिगो कर नाइनें गोली सी बना लेती हैं, और पाँव में महावर लगाते समय वे इसे ही मल मल कर रंग निचोड़ती और लगाती जाती हैं। इसी रुई की गोली को महावरी (महावर-बटी) कहते हैं॥ मीड़ति जाइ = मलती जाती है, मसलती जाती है ॥

अवतरण—सखियाँ नाइन का परिहास करती हुई नायिका की एड़ी की ललाई की आपस में प्रशंसा करती हैं—

अर्थ—पाँव में महावर देने को नाइन आ कर बैठी। [पर नायिका की एड़ी का रंग ऐसा लाल है कि उसको उसमें तथा महावर की गोली में कुछ भेद नहीं प्रतीत होता, अतः भ्रम के कारण वह] एड़ी को फिर फिर, महावर की गोली समझ कर, मोड़ती जाती है ॥

तोहीं, निरमोही, लग्यौ मो ही इहैं[3] सुभाउ।
अनआऐं[4] आवै नहीं, आऐं आवतु[5] आउ ॥ ३६ ॥

अवतरण—उपपति नायक को नायिका की उलाहने से भरी हुई पत्री—

अर्थ—हे निरमोही, मेरा हृदय तुझी से इस स्वभाव (रीति) से लगा है [कि तेरे] न आने से [वह भी मेरे पास] नहीं आता (मेरा चित ठिकाने नहीं रहता), [और तेरे] आने से आता है। [अतः निवेदन है कि तू] आ (पधार) ॥

१. दैन (४,५)। २. मीजत (४)। ३. यहै (१,२,५), इहै (४)।
४. अनआयौ (१)। ५. आवति (१,२,५)।

नेहु न, नैंननु, कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥ ३७ ॥

नेहु (स्नेह)=यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसके दो अर्थ—प्रेम तथा तेल हैं। अतएव इसमें श्लेष-मूलक रूपक है, जिससे इसका अर्थ यहाँ प्रेम-रूपी तेल हुआ॥ बलाइ (फा० बला)=विपत्ति, आपत्ति ॥

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका अपने नेत्रों की व्यवस्था अन्तरंगिनी सखी से कहती है—

अर्थ—[यह] प्रेम-रूपी तेल नहीं है, [प्रत्युत मेरे] नयनों के निमित्त कोई बड़ी बलाय उपजी है। [क्योंकि यद्यपि मेरे नयन] नित्यप्रति नीर (आँसू) से भरे हुए रहते हैं, तथापि [इनकी] प्यास (दर्शन की तृषा) नहीं बुझती ॥

शरीर-शुद्धि के निमित्त वैद्यक में जो पंचकर्म बतलाए गये हैं, उनमें एक स्नेहन भी है। इसमें रोगी को तेल अथवा घृत इत्यादि पिलाया जाता है। यदि स्नेह-पान में कुछ व्यतिक्रम पड़ जाता है, तो रोगी को बहुत तृषा लगती है। पानी से उसका पेट भर जाता है, पर तृषा बनी ही रहती है। इसी बात को नायिका ने अपने नेत्रों पर घटा कर कहा है ॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल ॥ ३८ ॥

विकासु=खिलावट। हवाल=दशा। यह अरबी शब्द हाल के बहुवचन अहवाल का अपभ्रंश है ॥

अवतरण—इस दोहे में भ्रमर के ब्याज से, कोई किसी मुग्धासक्त को शिक्षा देता है—

अर्थ—न [तो इसमें] अभी पराग (पुष्प-रज अर्थात् जवानी की रङ्गत), न मधुर मधु (मीठा मकरन्द अर्थात् सरसता) [और] न विकास (खिलावट अर्थात् यौवन के कारण अंगों में प्रफुल्लता) [ही] है। हे भ्रमर, [तू ऐसी कंज की] कली ही से बँधा है (अपने सब कर्तव्य छोड़ कर उसी में लवलीन हो रहा है), [तो] आगे [चलकर जब उसमें पराग, मकरंद तथा विकास का आगमन होगा, तो फिर तेरी] क्या दशा होगी ॥

लाल, तुम्हारे बिरह की अगनि[1] अनूप, अपार।
सरसै बरसैं नीर हूँ, झर हूँ मिटै न झार ॥ ३९ ॥

१. आगि (२), अगिनि (४)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अगनि=अग्नि ॥ अनूप=जिसकी उपमा न हो, अद्भुत, विलक्षण ॥ अपार=जिसका पार न पाया जाय, जो समाप्त न हो, बहुत ॥ सरसै=बढ़ती है । झर—इस शब्द का अर्थ अन्य टीकाकारों ने मेघ का झड़ी बाँधकर लगातार बरसना किया है, पर यहाँ इसका यह अर्थ नहीं है । यहाँ इसका अर्थ है ताप अर्थात् ग्रीष्म का प्रचण्ड ताप अथवा लूक । बिहारी ने इस शब्द का प्रयोग इस दोहे के अतिरिक्त और पाँच दोहों में छः बार किया, जिनमें से तीन बार (देखो दोहे ४०२, ५७०, ६४६) इसका प्रयोग पावक-लपट के अर्थ में हुआ है, एक बार (देखो दोहा ९८) विरह-ताप के अर्थ में और दो बार (देखो दोहे ४०२, ४८४) मेह की झड़ी के अर्थ में ॥ झार=जलन ॥

अवतरण—सखी अथवा दूती नायक से नायिका का विरह निवेदन करती है—

अर्थ हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि विलक्षण [तथा] अपार है । [इसकी] झार (जलन) नीर बरसने से भी बढ़ती है, [और] झर (ग्रीष्म के ताप) से भी नहीं मिटती ॥

पानी से उसकी जलन का बढ़ना तो विरहाग्नि की विलक्षणता है, और ताप से उसकी जलन का न मिटना उसकी अपारता । यदि कोई अंग थोड़ा बहुत जल जाता है तो सेंक देने से उसकी जलन मिट जाती है; पर यदि बहुत जल जाता है; तो सेंकने से कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि ही होती है ॥

देह दुलहिया की बढ़ै[1] ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति ।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं[2] सबै बदन[3] मलिन दुति होति ॥ ४० ॥

सौत्यैं=सौतों को । यह पद सौति शब्द के संप्रदानकारक का बहुवचन रूप है ॥

अवतरण—नवयौवना मुग्धा की सखियाँ आपस में सहर्ष कहती हैं—

अर्थ—[इस] दुलहिन की देह में ज्यौं ज्यौं यौवन की ज्योति बढ़ती है, त्यौं-त्यौं [इसको] देखकर [इसकी] सब ही सौतों के बदन में द्युति मलिन होती है ।

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि ।
ज्यौं आँखिनु सबु[4] देखियै, आँखि न देखी जाँहि ॥ ४१ ॥

जिहिं=जिसके द्वारा ॥ देखियै=देखा जाता है ॥

अवतरण—किसी आत्मज्ञानी की उक्ति स्वगत अथवा शिष्य से—

१. चढ़ै (१) । २. सोते (४), सोत्यौं (५) । ३. मलिन बदन दुति (२) ।
४. जगु (२) ।

अर्थ—जिस [चिन्मय परमात्मा] के द्वारा (जिसके हृदय में स्थित होने के कारण) सकल जगत् [तुझसे] जाना गया, वह हरि [तूने] नहीं जाना । जैसे आँखों के द्वारा सब [कुछ] देखा जाता है, [पर] आँखें [स्वयं] नहीं देखी जातीं ॥

सोरठा

मंगलु बिंदु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि[1]-आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत ॥ ४२ ॥

सुरंग=सुन्दर रंगवाला । यहाँ इसका अर्थ लाल है ॥ आड़=आड़ा तिलक ॥ नारी=यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है—(१) नारी, स्त्री । (२) चंडा, समीरा इत्यादि सात नाड़ियों में से कोई नाड़ी । वर्षाज्ञान के निमित्त ज्योतिष में सात नाड़ियाँ मानी जाती हैं । इनमें से प्रत्येक की गति चार चार नक्षत्रों में सर्पाकार होती है । जब चंद्रमा, मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों की स्थिति ऐसी होती है कि वे एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी पर होते हैं—चाहे चारों नक्षत्रों में से किसी एक ही पर, अथवा भिन्न-भिन्न पर—तो जगद्व्यापिनी वृष्टि होती है, यथा—

एकनाड़ीसमारूढ़ौ चंद्रमाधरणीसुतौ ।
यदि तत्र भवेज्जीवस्तदैकार्णविता मही ॥
(नरपतिजयचर्या, अध्याय ३, श्लो० २९)

रस—यह शब्द भी श्लिष्ट है—(१) अनुराग, शृङ्गार-रस, (२) जल । इसमें भी श्लिष्टपदमूलक रूपक है, और इसका अर्थ अनुराग-रूपी जल है ॥ किय—यह रूप कियो के स्थान पर बिहारी ने २१२ संख्यक दोहे में भी प्रयुक्त किया है । अन्य कवियों तथा गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस अर्थ में इस रूप का प्रयोग किया है ॥ लोचन-जगत् = लोचन-रूपी जगत् ।

अवतरण—नायिका के मुख पर लाल बिन्दु तथा केसर की पीली आड़ देखकर नायक की आँखें अनुरागमय हो रही हैं । अपनी यही दशा वह स्वगत, अथवा नायिका की किसी अन्तरंगिनी सखी से कहता है—

अर्थ—लालबिंदु-रूपी मंगल, मुख-रूपी चन्द्र, [एवं] केसर की [पीली] आड़-रूपी बृहस्पति [इन तीनों ग्रहों] को एक [ही] नारी (स्त्री-रूपी नाड़ी) ने साथ ही प्राप्त करके [मेरे] लोचन-रूपी जगत् को रसमय (१. अनुरागमय; २. जलमय) कर दिया ।

मंगल ग्रह का रंग लाल तथा बृहस्पति का पीला माना जाता है, और मुख का उपमान चन्द्र प्रसिद्ध ही है ।

१. केसर (४, ५) ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दोहा

221

पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ, लखैं दिठौना दीन[1]।
चंदमुखी, मुखचंदु तैं भलौ[2] चंद-समु कीन[3] ॥ ४३ ॥

भलौ=पूर्ण रूप से, पूरा पूरा ॥

अवतरण—सखी का वचन सखी से—

अर्थ—प्रियतम ने नायिका से, [यह] देखने पर [कि उसने] दिठौना दिया है, हँसकर कहा [कि] हे चन्द्रमुखी, तूने [अपने] मुखचन्द्र को [इस दिठौने के द्वारा] भला (पूरा पूरा) चन्द्र के समान कर दिया ॥

कई टीकाकारों ने अनेक शंका समाधान करके इस दोहे के अर्थ को बहुत घुमाया फिराया है। पर हमारी समझ में यह अर्थ सीधा और स्पष्ट है ॥

कौंहर सी एड़ीनु की लाली देखि सुभाइ।
पाइ महावरु देइ[4] को आपु भई बे-पाइ ॥ ४४ ॥

कौंहर (कटुफल) = इन्द्रायन का फल ॥ बे-पाइ = बिना पाँव की अर्थात् मति-पंगु, स्तब्ध ॥

अवतरण—सखी-वचन सखी से—

अर्थ—इन्द्रायन के फल सी एड़ियों की स्वाभाविक लाली देखकर [नाइन] स्वयं बेपाइ (बिना हाथ पैर की अर्थात् मति-पंगु) हो गई। [फिर भला] पाँव में महावर [दे, तो] कौन दे ॥

खेलन सिखए, अलि, भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ॥ ४५ ॥

भलैं = भली-भाँति। यहाँ इसका अर्थ बड़ी विलक्षणता से होता है ॥ अहेरी = शिकारी ॥ काननचारी—कानों तक विचरने वाले अर्थात् दीर्घ। (२) जंगल में विचरने वाले। प्राचीन परिपाटी तथा बिहारी की लेख-प्रणाली के अनुसार पहिले अर्थ के निमित्त 'कानन' शब्द को उकारांत, अर्थात् 'काननु' होना चाहिए। पर बिहारी के समय में ऐसे शब्दों को अकारांत लिखने की प्रथा प्रचलित हो चली थी, और यद्यपि बिहारी इस प्रथा का अनुकरण स्वतंत्रता पूर्वक तो नहीं करते थे, पर इस दोहे में श्लेष के निर्वाहार्थ, उन्होंने उक्त प्रचार से लाभ उठा कर, कान के बहुवचन काननु को भी अकारांत ही मान लिया, क्योंकि दूसरे अर्थ के निमित्त 'कानन-चारी' समस्त पद

---

१. दीन्ह (४)। २. भले (४)। ३. कीन्ह (४)। ४. देन कौं (५)।

का 'कानन' (जंगल) शब्द उकारांत नहीं हो सकता। श्लेषालंकार में ऐसे प्रयोगों का निर्वाह माना भी जाता है ॥

अवतरण—नायिका की अंतरंगिनी सखी उसके नेत्रों द्वारा नायक के घायल होने का वृत्तान्त उससे, परिहासात्मक वाक्य में, कहती है। वह चातुरी से नायक का नाम नहीं लेती, प्रत्युत घायल होने वाले के निमित्त बहुवचन 'नागर नरनु' पद प्रयुक्त करके सामान्यतः कहती है कि तेरे नेत्रों से प्रवीण नरों का शिकार होता है। वह सोचती है कि यह सुनकर जब नायिका पूछेगी कि मेरे नेत्रों ने किसका शिकार किया है, तब नायक का नाम बतला दूँगी—

अर्थ—हे अली! कामदेव रूपी चतुर अहेरी ने [तेरे] कानन-चारी (कानों तक जाने वाले, वन-चारी) नयन-रूपी मृगों को भली भाँति (बड़ी विलक्षण रीति से) नगर-निवासी (सुघर) नरों का शिकार करना सिखलाया है ॥

मृगों का आखेट करना तो नगर-निवासी नरों को सामान्यतः अहेरी सिखलाते ही हैं। पर काम-रूपी अहेरी ने यह विलक्षण चातुरी की है कि कानन-चारी नयन-रूपी मृगों को नगर-निवासी (सुघर) नरों का आखेट करना सिखलाया है ॥

रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु, नैन ॥ ४६ ॥

रससिंगार-मंजनु किए=शृंगार रसोचित हाव, भाव, कटाक्षादि में निमग्न, अथवा उनको माँजे हुए अर्थात् उनमें दक्ष ॥ कंजनु=कंजों को ॥ भंजनु=मान-भंग, पराजय ॥ अंजनु रञ्जनु हूँ बिना = अंजन रँगने (लगाने) के बिना भी ॥ खंजनु = भाषा में खंजन तथा खंज, दोनों रूप खंजन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। 'खंजनु' पद यहाँ खंज शब्द का बहुवचन है। इसके पश्चात् के संप्रदानार्थक कौं का लोप है, अतः यह पद यहाँ संप्रदानकारक-वत् प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ यहाँ खंजों को होता है ॥ गंजनु = तिरस्कार। यह पद यहाँ कर्मकारक-रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसके पश्चात् 'दैन' का अध्याहार होता है, और उसी "दैन" पद का यह कर्म है ॥

अवतरण—नायिका के नेत्रों की प्रशंसा नायक अथवा सखी द्वारा—

अर्थ—शृङ्गार-रस में मज्जन किए हुए (शृङ्गार-रसोचित हाव, भाव, कटाक्षादि से परिष्कृत—पानी दिए हुए, अथवा उनमें निमग्न) [ये तेरे] नयन [अपनी स्वच्छता से] कंजों को [जो कि सदैव जल में मज्जित रहने के कारण स्वच्छ रहते हैं] भंजन (मान-मर्दन, पराजय) देने वाले हैं, [और अपनी स्वाभाविक श्यामता से] अंजन लगाने के बिना भी खंजों को तिरस्कार [देने वाले]।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

साजे मोहन-मोह कौं, मोहीं करत कुचैन ।
कहा करौं, उलटे परे टोने[2] लोने[3] नैन ॥ ४७ ॥

साजे = किसी कार्य विशेष के उपयुक्त बनाए ॥ कुचैन = विकल ॥ टोने=जादू ।, विशेष: दृष्टि द्वारा किसी पर प्रभाव डालने की क्रिया, अथवा उस डाले हुए प्रभाव, को टोना कहते हैं ॥ लोने=लुनाए हुए, लवण दिए हुए, लवण द्वारा तुष्ट किए हुए, नायक के लावण्य द्वारा उसके पक्ष में किए हुए । जब किसी पर टोने अथवा कुदृष्टि का प्रभाव प्रतीत होता है, तो लवण और राई अथवा केवल लवण उस पर से वार कर टोने के निमित्त फेंक अथवा अग्नि में डाल दिया जाता है । इस क्रिया को स्त्रियाँ राई नोन करना अथवा लोनाना कहती हैं । इस लोनाने से टोना लौट जाता है, और जो प्रभाव टोना करने वाला किसी पर डालना चाहता है, वही स्वयं करने वाले पर, उसकी ओर से, पड़ जाता है । यही टोने का उलटना कहलाता है ॥

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका का वचन अंतरंगिनी सखी से—

अर्थ—[मैंने तो अपने नयन] मोहन के मोहने को [उपयुक्त उपस्करणों, अंजन तिलौंछ आदि, से] सुसज्जित किए, [पर ये तो मोहन को मोहने के पलटे] मुझी को [मोहन पर मोहित कर के] विकल किए डालते हैं । [अब मैं] क्या करूँ, [मोहन के लावण्य से] लोने हुए (लोनाए जा कर) [मेरे] नयन उलटे टोने [होकर मुझी पर] पड़े ॥

याकैं उर औरै कछू लगी बिरह की लाइ ।
पजरै नीर गुलाब कैं, पिय की बात बुझाइ ॥ ४८ ॥

औरै कछू=कुछ विलक्षण प्रकार की ॥ लाइ=लवर, अग्नि ॥ पजरै=प्रज्वलित होती है ॥ बात=(१) वार्ता । (२) वायु ॥

अवतरण—विरहिनी नायिका की व्यवस्था सखियाँ आपस में कहती हैं -

अर्थ—इसके हृदय में विरह की कुछ विलक्षण आग लगी है, [जो] गुलाब-जल [छिड़कने] से [तो] प्रज्वलित होती है, [और] प्रियतम की बात (चर्चा-रूपी वायु) से बुझती है ॥

विलक्षणता यह है कि सामान्य अग्नि तो जल से बुझती और वायु से प्रज्वलित होती है, पर यह अग्नि जल से प्रज्वलित होती एवं बात (वायु) से बुझती है ॥

कहा लेहुगे खेल पैं, तजौ अटपटी बात ।
नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहैं, सौंहैं खात ॥ ४९ ॥

१. करी (२) । २. टौने (२, ५) । ३. लौने (२, ५) ।

खेल पैं='पैं' यहाँ करणकारकार्थक है । 'खेलपैं' का अर्थ खेल से होता है ॥ अटपटी=कुढंगी ॥

अवतरण—नायिका ने मान किया था । सखी बड़ी कठिनता से, शपथ खा खाकर, उसको कुछ ढंग पर ला रही थी । इतने में नायक ने उसी स्त्री का नाम ले लिया, जिसकी ईर्षा से मान हुआ था । सखी, यह सोचकर कि कहीं मान फिर न बढ़ जाय, बड़ी वाक्यचातुरी से, नायक के उस नाम लेने को उसका खिलवाड़ ठहरा कर, इधर तो नायिका के रोष को उभरने नहीं देती और उधर नायक को सचेत करती है—

अर्थ—[तुम] खेल से क्या लोगे (इस खेल में क्या पाओगे) ! [यह] कुढंगी बात (अर्थात् खिलवाड़ के निमित्त अन्य स्त्री का नाम लेकर नायिका को चिढ़ाना) छोड़ दो । [देखो, बड़ी कठिनता से,] शपथ खाते खाते [नायिका की सरोष] भौंहें कुछ हँसौंहीं (हास्योन्मुखी) हुई हैं [ऐसा न हो कि वे कहीं फिर चिढ़ जायँ] ॥

इस दोहे की व्याख्या श्रीयुत पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने बहुत अच्छी की है । नायक के अन्य स्त्री का नाम लेने का एक कारण यह भी हो सकता है कि उसे नायिका की मान-चेष्टा बहुत अच्छी लगी, अतः वह फिर वही चेष्टा देखने के निमित्त, खिलवाड़ में, अन्य स्त्री का नाम लेकर उसको रुष्ट करना चाहता है । इस प्रकार का भाव इस कवित्त में भी है—'घरी द्वैक परम सुजान पिय प्यारी रीझि मान न मनायो, मानिनी मान देखि रह्यो ॥"

डारी[1] सारी नील की ओट अचूक, चुकैं न ।
मो मन-मृगु करबर गहैं अहे ! अहेरी नैन ॥ ५० ॥

डारी = वृक्ष की पतली शाखा, टहनी ॥ नील की = नीली ॥ करबर (कर्बर) = चीते । इस शब्द में सारोपा लक्षणा है । यहाँ वर्ण्यमान नयन की अप्रकृत कर्बर के साथ तादात्म्य प्रतीति है ॥ अहे=इस शब्द का प्रयोग किसी को संबोधित करने में होता है, विशेषतः आश्चर्य से संबोधित करने में ॥

अवतरण—नायक-वचन नायिका से—

अर्थ—हे [प्यारी, तेरे] कर्बर (चीते) [अर्थात्] अहेरी नयन नीली साड़ी रूपी डारी (डाल-पत्तों) की अचूक (कभी व्यर्थ न होने वाली) ओट में मेरे मन रूपी मृग को पकड़ लेते हैं, चूकते नहीं ॥

चीता जब मृग को पकड़ना चाहता है, तो डाल-पत्तों तथा झाड़ियों की ओट में छिप छिप कर उसके अत्यन्त समीप पहुँच जाता है, और फिर एकाएकी झपट कर उसको छोप लेता है ॥

१. सारी-डारी (२,४) ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

223

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईंहिं¹ न भूलि ।
दई दई क्यौं करतु² है, दई दई सु कबूलि ॥ ५१ ॥

दीरघ सांस=लम्बी सांस, जैसी दुःख में मनुष्य लेता है ॥ साईंहिं=स्वामी को । कबूलि=अंगीकृत कर ॥

अवतरण—किसी विपत्ति-ग्रस्त को उसका गुरु अथवा कोई मित्र धैर्य देता है—

अर्थ—[तू इस विपत्ति में] दई दई (हा देव ! हा देव !) क्यों कर रहा है [जो विपत्ति] देव ने दी है, उसको [धैर्य धर कर] अंगीकृत कर (अर्थात् सहन कर) । [तू] दुःख में लम्बी सांस न ले, [और] सुख में स्वामी को न भूल ॥

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन³ मांह⁴ ।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहति छांह⁵ ॥ ५२ ॥

सदन-तन घर का पिण्ड ।

अवतरण—स्वयंदूतिका नायिका का वचन नायक से—

अर्थ—[ऐसी प्रचंड घाम के समय तुम कहां जा रहे हो ? आओ, इस घर में घाम का निवारण कर लो । देखो,] जेठ की दुपहरी देख कर छाया भी छाया (आच्छादन) [के नीचे छिपना] चाहती है । [वह इस समय] अति सघन वन में बैठ रही है (विश्राम ले रही है), (अथवा) घर के तन (पिण्ड) के भीतर पैठ रही है (घुस रही है, अर्थात् वृक्षों के घेर की मिति के तथा घरों की भित्तियों के बाहर नहीं दिखलाई देती) ॥

जेठ के दिनों में मध्याह्न के समय सूर्य ठीक सिर पर आ जाता है, अतः वृक्षों की छाया उनके घेरे के बाहर नहीं आती, और घरों की छाया भी छतों के नीचे ही रहती है, भित्तियों के बाहर नहीं पड़ती ॥

हा हा ! बदनु उघारि, दृग सफल⁶ करैं⁷ सबु कोइ⁸ ।
रोज सरोजनु कैं परै⁹, हंसी ससी की होइ¹⁰ ॥ ५३ ॥

हा हा !=यह व्रजभाषा में किसी को सविनय संबोधन करने में प्रयुक्त होता है ॥ बदनु (वदन)=मुख । यहां इसका अर्थ मुख-रूपी चन्द्र है ॥ रोज (फारसी रोज)=दिन । उर्दू में रोज पड़ना एवं भाषा में दिन पड़ना विपत्ति तथा काठिन्य पड़ने के अर्थ में बोला जाता है ॥ सरोजनु कैं=कमलों के निमित्त । सरोज शब्द का अर्थ यहां गौणी साध्य-

१. साईं नांहि (२,४) । २. करत (४) । ३. मन (२) ।
४. मांहि (२,५) । ५. छांहि (२,५) । ६. सुफल (४) ।
७. करो (१,४) । ८. कोउ (१) । ९. परो (१) । १०. होउ (१) ।

वसाना लक्षणा से नयन-रूपी सरोज होता है ॥ ससी (शशि)=चन्द्रमा । 'ससी' का अर्थ भी यहां गौणी साध्यवसाना लक्षणा से मुख-रूपी शशि होता है ॥

अवतरण—खंडिता नायिका ने नायक को देखकर, अपनी उदासीनता प्रकट करने के लिए घूंघट काढ़ लिया है । सखी, यह सोच कर कि चार आंखें हों तो शील से मान छूट जाय, उससे घूंघट हटाने को प्रार्थना करती है । वह उसी प्रार्थना-वाक्य में, चातुरी से, नायिका के प्रभाव तथा सौन्दर्य की प्रशंसा भी, उसकी प्रसन्नता के निमित्त, करती है, और अपनी प्रार्थना का निमित्त अपनी मंडली की सखियों के नेत्रों के सफल, नायक को लज्जित एवं सपत्नी को उपहास पात्री बनाने की अभिलाषा ठहराती है ।

अर्थ—हा हा ! [सखी, घूंघट हटा कर अपना] मुख खोल [जिसमें हम] सब [सखी] जन [अपने] दृग सफल करें (तेरे मुख का सौन्दर्य, अपने पति पर तेरा प्रभाव एवं तेरी सपत्नी के सौन्दर्य का उपहास देख कर हम सब आंखें पाने का फल पावें), [नायक के] नेत्र-रूपी सरोजों पर काठिन्य पड़े (वे तुझे सरोष देख कर झंप जायें), [और उसकी दृष्टि में तेरी सपत्नी के] मुख-रूपी चंद्र की हंसी हो (अर्थात् वह उपहास-पात्र जान पड़ने लगे) ॥

कई एक टीकाकारों ने, इस दोहे का कुछ और ही अर्थ समझ कर, अनेक शंकाएं तथा उनका समाधान करने के व्यर्थ प्रयत्न किए हैं । पर ऊपर जो अर्थ लिखा गया है, उसमें न किसी शंका का अवसर है, और न समाधान की आवश्यकता ॥

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल ।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि-अगनि की ज्वाल ॥ ५४ ॥

होमति=हवन करती है, आहुति देती है ॥ ज्वालमुखी=ज्वालामुखी ॥ लगनि=चित्त की लगावट, अनुराग ॥ अगनि=अग्नि ॥

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका की सखी अथवा दूती नायक से विरह निवेदन करती है—

अर्थ—हे लाल, [वह] अनुराग-रूपी अग्नि की ज्वालामुखी सी ज्वाला को प्रज्वलित देख कर, तुमसे मिलने की कामना करके, [अपने] सुख को [उस ज्वाला में] होमती है ॥

ज्वालामुखी में लोग अनेक प्रकार की कामनाएं करके उत्तमोत्तम शाकल्य की आहुतियां देते हैं ॥

सायक¹-सम मायक² नयन, रंगे त्रिबिध रंग गात ।
झखौ बिलखि दुरि³ जात जल, लखि जलजात लजात ॥ ५५ ॥

१. साइक (१) । २. पाइक, नायक (५) । ३. जल जात दुरि (२) ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

224

सायक=इस शब्द का अर्थ अन्य टीकाकारों ने बाण किया है। पर बाण से झष के छिपने तथा जलजात के संकुचित होने का वर्णन विशेष संगत नहीं है, और न बाण के तीन रंग ही प्रसिद्ध हैं। हमारी समझ में यहाँ सायक का अर्थ सायंकाल करना उचित है। 'साय' शब्द का अर्थ सायंकाल होता है। 'सायक' शब्द को उसी में स्वार्थिक 'क' लगकर बना हुआ समझना चाहिए। अथवा 'सायक' शब्द को शायक का अपभ्रंश-रूप मानकर उसका अर्थ सुलाने वाला समय, अर्थात् सायंकाल करना चाहिए। कवि सायंकाल को लाली से नेत्रों की लाली की उपमा देते भी हैं। स्वयं बिहारी ने भी ४१० अंक के दोहे में ऐसा किया है। मायक=माया करने वाले। नेत्रों के पक्ष में इसका अर्थ अनेक प्रकार के हावभावादि करने वाले और सायंकाल के पक्ष में अनेक प्रकार के रंग बदलने में निपुण होता है। सायंकाल को 'मायक' इस कारण भी कहा जा सकता है कि उस समय मायावी जन माया विशेषतः फैलाते हैं, और वह समय सुहावना भी होता है। त्रिविध रँग=तीन प्रकार के रंग अर्थात् श्वेत, श्याम एवं अरुण। नेत्रों में यह तीनों रंग वर्णित होते हैं, और सायंकाल के समय भी ये तीनों रंग आकाश में दिखलाई देते हैं॥ झखौ=झष भी॥ बिलखि=दुखी होकर॥ दुरि जात जल=जल में छिप जाते हैं। मछलियाँ दिन को आहार की खोज में इधर-उधर विचरती और जल तल पर आती जाती रहती हैं, पर सायंकाल को जल के भीतर, पृथ्वी पर आश्रय लेती हैं॥ लजात=संकुचित होते हैं। संध्या-समय कमलों का संकुचित होना प्रसिद्ध ही है॥

अवतरण—दूती नायिका को किसी जलाशय के तट पर, संकेत-स्थल में बैठाकर और नायक के पास जाकर उससे नायिका के नेत्रों की प्रशंसा करती हुई, उसके उक्त स्थान में स्थित होने का वृत्तांत व्यंजित करती है—

अर्थ—सायंकाल के समय मायावी, [तथा] तीन रङ्गों से रँगे हुए गात्र वाले [उसके] नेत्र देखकर [उस जलाशय के] कमल लजाते हैं, [और] झष भी दुखित होकर जल में छिप जाते हैं॥

मरी डरी कि टरी बिथा, कहा[1] खरी, चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति, अब मुँह[2] आहि न आहि॥ ५६॥

कराहि कराहि=दुःखाधिक्य से हाय हाय कर के॥

अवतरण—प्रोषितपतिका नायिका की जड़ता-दशा का वर्णन सखी सखी से करती है—

अर्थ—[हे सखी, तू यहाँ] खड़ी क्या कर रही है, चलकर देख, [तो कि वह] मरी पड़ी है अथवा [उसकी] व्यथा टल गई है। [वह] बहुत कराह कराह

१. खरी कहा (२)। २. मुख (२, ४)।

कर [एकाएकी] रह गई (चुप हो गई)। अब [तो उसके] मुँह में आह [भी] नहीं है॥

कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तो मन-साथ।
उड़ी जाउ[1] कित[2] हूँ, तऊ गुड़ी[3] उड़ाइक[4] हाथ॥ ५७॥

गुड़ी=गुड्डी, पतंग॥ उड़ाइक=उड़ाने वाला॥

अवतरण—गणिका नायिका गाने बजाने के लिए कहीं परदेश गई है। वहाँ से अपने प्रेमी वैशिक नायक को उसने पत्र में यह दोहा लिखा है—

अर्थ—यदि [हम लोग इस समय] बिछुड़े हैं, तो क्या हुआ; [कोई विशेष चिंता तथा घबराने की बात नहीं है, क्योंकि] मेरा मन [तो] आपके मन के साथ [बँधा हुआ] है। [जब आपका मन चाहे, मुझे आकर्षित कर सकता है, जैसे] गुड्डी (पतंग) किसी ओर (चाहे कहीं) उड़ती हुई चली जाय, तो भी [वह] उड़ाने वाले के हाथ में है (वश में रहती है)॥

लखि लोने[5] लोइननु कैं, कोइनु, होइ न आजु।
कौनु गरीबु निवाजिबौ, कित तूठ्यौ रतिराजु॥ ५८॥

लोने=लावण्य युत॥ लोइननु=लोचनों॥ कोइनु=कोयों से। आँख की श्याम पुतली के दोनों ओर जो श्वेत भाग होते हैं वे आँख के कोए कहलाते हैं॥ गरीबु (गरीब)—यह शब्द अरबी भाषा का है। इसका अर्थ नया, अज्ञात इत्यादि है। फारसी तथा उर्दू में यह शब्द निर्धन तथा वश-हीन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी अर्थ में बिहारी ने भी इसको,इस दोहे में लिया है॥ निवाजिबौ=निवाज शब्द फारसी का है, जिसका अर्थ कृपा करना, पालना है। उसी से निवाजिबौ बना लिया गया है॥ तूठ्यो=तुष्ट हुआ है॥ रतिराजु=कामदेव॥ होइ='लखि' का अन्वय 'होइ' से है। 'लखि होइ' का अर्थ है लक्षित होता है, देख पड़ता है॥

अवतरण—कुलटा नायिका के कार्यों में कामदेव की झलक तथा उपपति से मिलने का चाव लक्षित कर के सखी परिहास पूर्वक कहती है—

अर्थ—आज [तेरे] लोने लोचनों के कोयों से [यद्यपि नायक से मिलने का चाव तो प्रकट होता है, पर यह] नहीं लक्षित होता कि किस बेचारे (दया पात्र) पर तुझे कृपा करनी है, [और] किस पर कामदेव प्रसन्न हुआ है॥

सीतलताऽरु सुबास कौ[6] घटै न महिमा-मूरु।
पीनस वारैं जौ[7] तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥५९॥

१. जाहु (२), जात (४)। २. कितऊ (५)। ३. गुड़ी तहू (२)। ४. उड़ायक (५)। ५. लोयन (४)। ६. की (५)। ७. ज्यों (२)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मूरु (मूल)=जड़, मूलधन ॥ पीनस वारैं=पीनस रोग वाले ने। पीनस एक नासा-रोग विशेष है, जिससे रोगी को गंध का अनुभव होना रुक जाता है ॥ सोरा (शोरा) = मिट्टी में से निकाला हुआ एक खारा पदार्थ ॥

अवतरण—कवि की प्रास्ताविक उक्ति है कि गुण के न जानने वाले के निरादर से गुणी के गुण की महिमा नहीं घटती—

अर्थ—यदि पीनस रोग वाले ने कपूर को शोरा समझ कर तज दिया है (ग्रहण नहीं किया है), [तो उसकी] सीतलता और सुगंध की महिमा का मूल नहीं घटता ॥

कागद[1] पर लिखत न बनत[2], कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥ ६० ॥

अवतरण—प्रोषितपतिका नायिका ने पत्री में अपने विरह का कुछ वृत्तांत निवेदित करके, यह बात जताने के लिए कि जो कुछ लिखा गया है, उससे विरह-व्यथा की पूर्ण व्यवस्था विदित नहीं हो सकती, अंत में यह दोहा लिख दिया—

अर्थ—[कंप, स्वेद, अश्रु इत्यादि के कारण] कागज पर [तो विरह-वृत्तांत] लिखते नहीं बनता, [और] संदेश [रूप से उस वृत्तांत को] कहते (अर्थात् किसी को दूत रूप से तेरे पास भेजने के निमित्त उससे अपनी मार्मिक दशा कहते) [हृदय] लजाता है। [अतः मैं यही लिखकर संतोष करती हूँ कि यदि तू विचार करेगा, तो] तेरा हृदय मेरे हृदय की सब बातें [तुझसे] कह देगा (अर्थात् अपने हृदय की व्यथा से तुझको मेरे हृदय की सच्ची दशा का अनुमान हो जायगा) ॥

बंधु भए का दीन के, को तारयौ, रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे[3] बिरद कहाइ[4] ॥ ६१ ॥

अवतरण—भक्त का वक्र वचन भगवान् से—

अर्थ—हे रघुराइ (रघुकुल-तिलक रामचंद्र), [तुम] किस दीन के बंधु हुए, [और तुमने] किस [पतित] को तारा। [दीन-बंधु तथा पतित-तारण, ये] झूठे झूठे विरद कहला कर [तुम] तूठे तूठे (प्रसन्न हुए) फिरते हो ॥

अभिप्राय यह है कि जिनके आप बंधु हुए, वे वास्तव में दीन और दुखी नहीं थे, पूरा दीन दुखी तो मैं हूँ, तथा जिनको आपने तारा, वे पूर्ण पतित नहीं थे, सच्चा पतित तो मैं हूँ। अतः ऐसे लोगों के बंधु हो कर दीन-बंधु तथा ऐसे को तार कर पतित-तारण कहलाना, और ऐसे कामों पर इन विरदों से तुष्ट होना तो झूठी प्रशंसा से

१. कागर (१)। २. बनै (४, ५)। ३. जूठे (२)। ४. बुलाइ (२)।

फूल उठने के समान है। सच तो यह है कि ये विरद आप पर तब फबें, जब आप मुझ महा दीन के बंधु बनें और मुझ घोर पापी को तारें ॥

जब जब वै सुधि कीजियैं, तब[1] तब सब सुधि जाँहि।
आँखिनु आँखि लगी रहैं[2], आँखें लागति नाँहि ॥ ६२ ॥

वै=वे नायक ॥ सुधि कीजियैं=स्मरण किए जाते हैं ॥ सुधि = चेतनाएँ ॥

अवतरण—वियोगिनी नायिका अपनी दशा सखी से कहती है—

अर्थ—जब जब वे [नायक] स्मरण किए जाते हैं, तब तब सब चेतनाएँ जाती रहती हैं। [उनकी] आँखों [के ध्यान] में [मेरे हृदय की] आँखें लगी रह जाती हैं, [और] आँखें नहीं लगतीं [नींद नहीं आती] ॥

यह विरही नायक का वचन स्वगत अथवा अपने अंतरंग सखा से भी हो सकता है ॥

कौन सुनै, कासौं कहौं, सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी ज्यौ[3] लेत हैं ए[4] बदरा बदराह ॥ ६३ ॥

बदाबदी = कह बद कर, खुल्लमखुल्ला ॥ बदराह = यह फ़ारसी का समस्त पद है। इसका अर्थ कुमार्गगामी, दुर्वृत्त, बदमाश है। यहाँ इसका अर्थ डाकू है ॥

अवतरण—प्रोषितपतिका नायिका का वचन सखी से—

अर्थ—[हे सखी,] नाह [नाथ, प्राणनाथ] ने [तो अपनी थाती अर्थात् मेरे प्राण] की सुरति (स्मृति) विस्मृत कर दी, [और] ये बदराह बादल बदाबदी [वह] प्राण [लूटे] लेते हैं। [ऐसी दशा में उस थाती को बचाने के लिए मैं] किसे पुकारूँ, [और उसका स्वामी तो यहाँ है ही नहीं, अतएव मेरी पुकार] कौन सुने ॥

मैं हो जान्यौ, लोइननु जुरत बाढ़िहै जोति।
को हो जानतु, दीठि[5] कौं दीठि किरकिटी[6] होति ॥ ६४ ॥

किरकिटी=किरकिरी, जो आँख में पड़कर पीड़ा देती है ॥

अवतरण—पूर्वानुराग में नायक अथवा नायिका का वचन स्वगत अथवा सखा या सखी से—

अर्थ—मैंने [तो] जाना था कि आँखों के मिलने से (दो और दो चार हो जाने से) ज्योति बढ़ेगी (प्रसन्नता होगी)। [यह] कौन जानता था [कि] दृष्टि के

१. तबै सबै (२)। २. रहैं (१)। ३. जिय (४)। ४. ये (४)। ५. डीठि (२)। ६. करकटी (५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

226 निमित्त दृष्टि किरकिटी हो जाती है (अर्थात् मैं ने तो समझा था कि उसके देखने से आनंद होगा, पर आँख से आँख लग जाने से अब तो दुःख से आँसू बहा करता है, जैसे किरकिटी पड़ जाने से आँखों से पानी बहता है) ॥

गहकि, गाँसु औरै गहे, रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौंहैं पिय-नयन[1] किए रिसौंहैं नैन॥ ६५॥

गहकि=उमग कर ॥ गाँसु (ग्रास)=पकड़ । किसी की ओर से, उसके अपराध के कारण, चित्त में पड़ी हुई आँट ॥ खिसौंहैं=अपराध से संकुचित ॥ रिसौंहैं (रोषोन्मुख)=रिसाए हुए से ॥

अवतरण—नायक प्रातःकाल नायिका के घर आया। नायिका पहिले तो उमंग के साथ अपनी प्रेम कहानी कहने लगी, किन्तु शीघ्र ही नायक के नेत्र खिसियाए हुए देख कर, और उनसे उसका रात को अन्य स्त्री के यहाँ रहना निश्चित कर के, उसने आँखें चढ़ा लीं। इसी लिए दूसरा ही भाव उदय हो जाने के कारण उसके वचन अध-कहे ही रह गए। सखी वचन सखी से—

अर्थ—[नायिका के] वचन उमग कर, और ही गाँस से गहे हुए, अधकहे [ही] रह गये। [उसने] प्रियतम के नयन खिसौंहैं देख कर [अपने] नयन रिसौंहैं कर लिए॥

मैं तोसौं कैवा कह्यौ, तू जिन इन्हैं पत्याइ।
लगालगी करि लोइननु उर मैं लाई लाइ॥ ६६॥

कैवा=कै बार ॥ जिन=मत ॥ पत्याइ=विश्वास कर ॥ लगालगी=लगाव-बझाव, मेलजोल ॥ लाइ=लाग, घर में चोरों के पहुँचने की घात। और टीकाकारों ने इसका अर्थ अग्नि किया है! पर यहाँ, 'पत्याइ' तथा 'लगालगी' शब्दों पर ध्यान देने से, इसका अर्थ लाग ही करना उचित प्रतीत होता है—

अवतरण—पूर्वानुराग में विकल नायिका से सखी कहती है—

अर्थ—मैं ने तुझसे कै बार कहा [कि] तू इन [लोचनों] का विश्वास मत कर (यह विश्वास मत कर कि ये नयन मेरे अंग हैं, किसी से मिल कर मुझे हानि न पहुँचावेंगे); [पर तूने नहीं माना, और इनको नायक से मिलने जुलने दिया, जिसका परिणाम अंत को यह हुआ कि] लोचनों ने [उस चितचोर से] लगालगी (मिलाप) कर के [तेरे] उर में [उसके पैठन के लिए] लाइ (लाग) लगा दी [जिससे तेरे चित्त की चोरी हो गई]॥

---

१. बदन (४)।

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ए[1] नैन॥ ६७॥

अवतरण—सखी नायक से नायिका के नेत्रों की प्रशंसा करती है—

अर्थ—हे हरि, ये नयन (इस नायिका के नयन) [तो] हरिणी के नयनों से [भी] अच्छे हैं। [इन्होंने तो] मदन के बाणों को [भी] बरबस जीत लिया है। मैंने [तो] ऐसे [नयन कभी] नहीं देखे॥

थोरैं ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए आजकाल्हि के दानि॥ ६८॥

अवतरण—कवि, इस दोहे में, श्रीकृष्णचंद को अपने पर न रीझने का उलाहना देता हुआ, बड़ी चातुरी से, अपने समय के दानियों की अगुणग्राहकता तथा अपना गुणाधिक्य व्यंजित करता है—

अर्थ—हे श्रीकृष्ण, [पहिले तो तुम] थोड़े ही गुण पर रीझ जाते थे, [पर अब तुमने] वह बान (प्रकृति) बिसरा दी (भुला दी); मानो तुम [परम उदार हो कर] भी आजकल के [कृपण] दानी हो गये हो॥

'थोरे ही गुन रीझते' तथा 'भए आज काल्हि के दानि', इन खंड-वाक्यों से व्यंजित होता है कि पहिले तो तुम थोड़े ही गुण पर रीझ जाते थे, पर अब यद्यपि मुझमें बहुत गुण है, तथापि उस पर तुम नहीं रीझते, जैसे कि आजकल के दानी कितना ही गुण हो पर उसका आदर नहीं करते॥

अंग-अंग-नग जगमगत[2] दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ उज्यारौ[3] गेह॥ ६९॥

बढ़ाएँ=बुझाने पर। दीपक बढ़ाना दीपक बुझाने के अर्थ में शिष्ट प्रयोग है॥

अवतरण—सखी नायक से नायिका की छबि-प्रशंसा करती है—

अर्थ—[उसके] अंग अंग के [आभूषणों के] नग [उसकी] दीपशिखा सी देह से जगमगाते हैं। [अतः] दीपक बुझा देने पर भी घर में बड़ा उजाला [प्रकाश] रहता है॥

जिस घर में बहुत से दर्पण लगे रहते हैं, उसमें एक ही दीपक रखने से, सब दर्पणों में उसका प्रतिबिंब पड़ने के कारण, बहुत प्रकाश हो जाता है॥

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि[4] दिपति[5] ताफता-रंग॥ ७०॥

---

१. यै (२), ये (४)। २. सँग जगति (१)। ३. उज्जारौ (२, ५)।
४. की (५)। ५. होत (५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दीपति (दीप्ति)=चमक, झलक। यह पद 'दिपति' क्रिया का कर्त्ता है। देह=देह में। दुहूनु=दोनों से ॥ ताफता-रङ्ग=ताफते के रंगवाली, अथवा ताफता की भाँति। ताफता एक प्रकार का रेशमी कपड़ा होता है, जिसका ताना और रंग का तथा बाना और रंग का होता है। दोनों रंगों के मेल से उसमें दोनों रंगों की झलक लहराती है। यह शब्द फारसी भाषा का है। भारती भाषा में इसको धूपछाँह कहते हैं ॥

अवतरण—नायिका की वय:संधि का वर्णन सखी द्वारा नायक से, अथवा नायक द्वारा स्वगत—

अर्थ—[अभी उसके शरीर में से] शिशुता (लड़कपन) की झलक नहीं छूटी है (लड़कपन तो चला गया है, पर उसकी आभा रह गई है), [और] जोबन अंग में झलक आया है (जोबन आया तो नहीं है, पर आभा देने लगा है)। दोनों [झलकों] से मिल कर [उसकी] देह में ताफते के रंग की दीप्ति दीपती (चमकती) है ॥

कब को टेरतु दीन रट[1], होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक[2], जग-बाइ ॥ ७१ ॥

जग-बाइ=संसार की वायु, अर्थात् संसार का बुरा प्रभाव ॥

अवतरण—इस दोहे में भी बिहारी ने श्रीकृष्णचंद को उलाहना देते हुए जगत् के रंग-ढंग पर कटाक्ष किया है—

अर्थ—हे स्याम, [मैं] कब का (बहुत समय से) दीन रट (दीनता से भरी हुई रट) से [तुमको] टेर (पुकार) रहा हूं, [पर तुम] सहाय नहीं होते। [ज्ञात होता है कि] तुमको भी, हे जगद्गुरु! जगन्नायक! जगत् की हवा (प्रभाव) लग गई है [अर्थात् निर्दय संसार निवासियों का प्रभाव तुम पर भी पड़ गया है, यद्यपि यह बात न होनी चाहिए थी। क्योंकि गुरु तथा नायक का प्रभाव शिष्यों तथा सामान्य जनों पर पड़ना चाहिए, पर यह उलटी बात हुई कि उनका प्रभाव तुम, जगद्गुरु तथा जगन्नायक, पर पड़ा] ॥

सकुचि न रहियै, स्याम, सुनि ए सतरौंहैं[3] बैन।
देत रचौंहौं चित कहे नेह-नचौंहैं नैन ॥ ७२ ॥

सतरौंहैं=तनेने, कड़े, रोष-भरे ॥ रचौंहौं=रचने पर आया हुआ, अनुराग की ओर ढला हुआ ॥ नेह-नचौंहैं=स्नेह से चंचल हुए, स्नेह, माव उदय होने के कारण एकटक पृथ्वी की ओर देखना छोड़कर चंचलता से, बीच बीच में, नायक की ओर जाते हुए ॥

---

१. रत (४)। २. नायक (४, ५)। ३. रिसरौंहैं (२)।

अवतरण—मानिनी नायिका को मनाते मनाते नायक कुछ दुखी सा हो गया है। सखी, यह सोचकर कि वह कहीं विशेष दुखी होकर चला न जाय, उसका उत्साह बढ़ाने तथा नायिका को हँसा देने के निमित्त यह दोहा कहती है। जैसे रूस कर मुँह फुलाए हुए बैठे मनुष्य से, उसे हँसा देने के लिए, लोग प्रायः कहते हैं कि "यह देखो, अब नाक पर हँसी आई", और ऐसे वाक्यों से वह बहुधा हँस भी देता है—

अर्थ—हे घनश्याम, [आप इसके] ये सतरौंहैं वचन सुनकर संकुचित न हो रहिए (निराश होकर मनाना छोड़ न बैठिए)। [देखिए, अब उसके] नेह से नचौंहैं [हुए] नयन [उसके] चित्त का रचौंहौं होना कहे (प्रकाशित किए) देते हैं। [तात्पर्य यह है कि कुछ देर और मनाइए, तो यह अवश्य मान जायगी] ॥

पत्रा हीं तिथि पाइयै[1] वा[2] घर[3] कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै[4] आनन-ओप-उजास ॥ ७३ ॥

पत्रा=तिथि-पत्र ॥ चहुँ पास=चारों ओर ॥ पून्यौं=पूर्णिमा ॥

अवतरण—नायिका के मुख की प्रशंसा सखी नायक से करती है, अथवा नायक स्वगत कहता है—

अर्थ—[तिथि के जानने के दो साधन हैं—एक तो तिथि-पत्र, और दूसरा चंद्रमा के उजास होने का समय। पर] उस [नायिका] के घर के आसपास [केवल] पत्रे ही से तिथि पाई (जानी) जाती है, [क्योंकि वहाँ तो] मुख की चमक के उजाले से नित्यप्रति पूर्णिमा ही रहती है (रात भर चाँदनी का सा प्रकाश रहता है,) [जिससे किस समय चाँदनी का उजाला आरंभ हुआ, यह लक्षित नहीं होता] ॥

बसि सकोच-दसबदन-बस, साँचु दिखावति बाल।
सियलौं[5] सोधति तिय तनहिं लगनि-अगनि की ज्वाल ॥ ७४ ॥

सकोच (संकोच)=लज्जा, कुलकानि का विचार ॥ दसवदन (दशवदन)=दस मुँह वाला, अर्थात् रावण। यहाँ रावण का और नाम न रखकर 'दसवदन' इसलिए रक्खा गया है कि संकोच दसों दिशाओं से, अर्थात् दस मुख वाला होकर, नायिका को अपने वश में किए हुए है। उसको नायक से मिलने नहीं देता ॥ सिय=सीता ॥ सोधति=तपा कर शुद्ध प्रमाणित करती है ॥

---

१. पाइयतु (५)। २. या (२)। ३. ग्रह (४)। ४. रहै (१), रहित (२)। ५. ज्यौं (२)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

228

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका की दशा सखी नायक से कहती है कि अब तक तो वह संकोच के वश में पड़े रहने के कारण आपसे मिल न सकी और अपने अनुराग को छिपाए रही, पर अब शनैः शनैः प्रेम के बढ़ जाने के कारण संकोच उसको दबा नहीं सकता, और उसका विरहाग्नि से संतप्त होना प्रकट हो गया है, जिससे प्रमाणित होता है कि आप पर उसका प्रेम पूर्ण तथा सच्चा है—

अर्थ—[इतने दिनों तक] संकोच-रूपी दशवदन के वश में बस कर, [और आपसे मिलने में तथा अपना प्रेम परिचय देने में असमर्थ रह कर, अब वह] बाला [अपने प्रेम का] सच्चापन दिखलाती है, [क्योंकि अब वह] स्त्री [संकोच के वश के बाहर होकर अपने] शरीर को विरहाग्नि की ज्वाला से, सीताजी की भाँति, सोधती है, (तपाती है, अर्थात् संकोच के वश में रहने का प्रायश्चित करती है) ॥

जौ न जुगति[1] पिय मिलन की, धूरि मुकति[2]-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरक हूँ की न ॥ ७५ ॥

जुगति (युक्ति) = उपाय ॥ सजन (सज्जन अथवा स्वजन) = अपना प्यारा ॥ धरक = डर ॥

अवतरण—उद्धवजी से गोपियों का वचन—

अर्थ—यदि [मुक्ति] प्रियतम-प्राप्ति की युक्ति नहीं है (अर्थात् प्रियतम प्राप्ति की युक्ति के अतिरिक्त कोई और वस्तु है), [तो हमने ऐसी] मुक्ति के मुँह में धूल झोंकी (अर्थात् ऐसी मुक्ति से हम बाज आईं); [और] यदि प्रियतम संग में प्राप्त हो, तो [हमको] नरक की भी धड़क नहीं है ॥

चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक, झपट, लपटानि।
ए जिहिं रति, सो रति मुकति; और मुकति[3] अति हानि ॥ ७६ ॥

चमक = चौंक, अंगों को एकाएकी, शीघ्रता से, चंचल करना ॥ तमक = उत्तेजित होना ॥ ससक = सिसकी ॥ मसक = अंगों को दबाना, मर्दन करना ॥

अवतरण—कोई कामी रति की प्रशंसा करता है—

अर्थ—जिस रति में चमक, तमक इत्यादि [भाव] हों, वह रति [ही] मुक्ति (परमानंददायिनी) है। अपर मुक्ति [तो] अति हानि (पूर्ण विनाश) [मात्र] है।

मोहूँ [illegible] जि मोंहु, दृग चले लागि उहिं गैल।
छिनकु छ्वाइ छबि-गुर[4]-डरी छले[5] छबीलैं छैल ॥ ७७ ॥

१. जुगुति (४)। २. मुकुति (४)। ३. रति (४)। ४. गण्ड़ की (५)। ५. छरे (२)।

गैल = मार्ग। इसका प्रयोग साथ के अर्थ में भी होता है ॥ गुर-डरी = गुड़ की डली ॥

अवतरण—पूर्वानुरागिनी नायिका का वचन सखी से—

अर्थ—क्षण मात्र छवि-रूपी गुड़ की डली छुआ कर [उस] छबीले छैल के द्वारा छले (ठगे) गए [मेरे] दृग, मुझसे भी मोह छोड़, उसी की गैल (साथ) लग कर चले ॥

एक वशीकरण-प्रयोग में गुड़ की डली अभिमंत्रित कर के काम में लाई जाती है। वह जिसको खिला अथवा छुआ दी जाती है, वह खिलाने अथवा छुआने वाले के वशीभूत होकर उसके संग हो लेता है। यह प्रयोग प्रायः ठग लोग करते हैं ॥

कंज[1]-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै, चितवति[2] नंदकुमार ॥ ७८ ॥

मंजनु = स्नान। ब्यौरति = सुलझाती है ॥ कच = बाल ॥

अवतरण—नायिका की क्रिया-विदग्धता का वर्णन सखी सखी से करती है—

अर्थ—[देखो, यह] कंज-नयनी स्नान किए, बैठी [अपने] बाल सुलझा रही है, [और इसी ब्याज से अपने] बालों तथा उँगलियों के बीच से दृष्टि दे (डाल) कर नंदकुमार को देख रही है ॥

पावक सो[3] नयननु[4] लगैं[5] जावकु लाग्यौ भाल।
मुकुरु[6] होहुगे नैंक में, मुकुरु बिलोकौ[7], लाल ॥ ७९ ॥

पावक=अग्नि ॥ जावक=महावर ॥ मुकुरु=मुकरने वाले ॥ मुकुरु=दर्पण ॥

अवतरण—खंडिता नायिका नायक के भाल में महावर लगा देख कर कहती है—

अर्थ—हे लाल, [तुम्हारे] भाल में लगा हुआ महावर [मेरे] नयनों में पावक सा लगता है। [तुम अभी] दर्पण देख लो, [नहीं तो] नैंक में (थोड़ी देर में, जब वह मिट जायगा तो) मुकर जाओगे (कहने लगोगे कि मेरे भाल में महावर लगा ही नहीं था) ॥

रहति न रन, जयसाहि-मुख लखि, लाखनु[8] की फौज।
जाँचि निराखर ऊ[9] चलै लै लाखनु की मौज ॥ ८० ॥

१. मंजनु करि खंजन नयनि (२)। २. चितवत (२, ४, ५)।
३. से (४), सम (५)। ४. लोचन (४)। ५. लसे (४)। ६. मुकरु (१) मुकर (२)।
७. बिलोकहु (४)। ८. लाखनु (५)। ९. हू (४)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

229 लाखनु—यह शब्द इस दोहे में दो बार आया है, और दोनों ही स्थानों पर टीकाकारों ने इसे संख्या वाचक लाख का बहुवचन माना है। हमारी समझ में, दोहे के पूर्वार्द्ध में, यह किसी का नाम है, जिसकी सेना जयशाह की सेना देख कर भागी थी और उत्तरार्द्ध में यह संख्या-वाचक लाख का बहुवचन है। दोनों स्थानों में इसे संख्या वाचक मानने से दोहे में एक प्रकार का पुनरुक्ति दोष आ जाता है। अब रह गई यह बात कि 'लाखनु' कौन व्यक्ति था, इसका संतोषजनक पता नहीं मिलता। संभवत: वह कोई सामान्य राजा अथवा किसी राजा का सेनापति था। इसीलिए उसके नाम का पता इतिहास से नहीं चलता। 'मआसिरुलउमरा' से एक लक्खी जादो का पता लगता है, जो दक्खिन में दौलताबाद सरकार के संदखेर का देशमुख, और निजामशाही राज्य का एक बड़ा मंसबदार था। यही लक्खी जादो छत्रपति महाराज शिवाजी का नाना था। शाहजहाँ के राज्यकाल के आरंभ में मिर्जा राजा जयशाह खानजहाँ लोदी के साथ दक्खिन में थे। संभव है, उस समय उनसे और लक्खी जादो से सामना हुआ हो। इसके अतिरिक्त उन्हीं दिनों आगरे के निकट, महावन के जाटों ने बहुत सिर उठाया था और मिर्जा राजा जयशाह, दक्खिन से लौटने पर, कासिम खाँ के साथ उनका दमन करने के निमित्त भेजे गए थे। यह भी बहुत संभव है कि उन जाटों के किसी सरदार का नाम लाखनुसिंह रहा हो॥ निराखर (निरक्षर)=बिना पढ़ा-लिखा अर्थात् मूर्ख॥ मौज—मौज अरबी भाषा में तरंग तथा लहर को कहते हैं। भाषा में इसका प्रयोग उमंग अथवा उत्साह के अर्थ में होता है। और, उमंग से दिए हुए दान के अर्थ में भी कवि इसका प्रयोग करते हैं। इस दोहे में यह इस पिछले ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अवतरण—इस दोहे में कवि राजा जयशाह की युद्धवीरता तथा दानवीरता दोनों की प्रशंसा करता है—

अर्थ—जयशाह का मुख देखकर लाखनु की सेना रणभूमि में नहीं रहती (नहीं ठहरती, अर्थात् भाग जाती है), [और जयशाह से] जांच कर (माँग कर) [पंडितों और गुणियों की कौन कहे,] मूर्ख भी लाखों [रुपयों] का दान ले कर चलता है (घर लौटता है)॥

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जापैं[1] सुखु चाहतु[2] लियौ[3], ताके दुखहिं न फेरि॥ ८१॥

आछी भाँति=अच्छी रीति से, प्रसन्नता-पूर्वक॥ अएरि=अंगीकार कर के॥

अवतरण—किसी विपत्ति-ग्रस्त को दुखी देख कर कोई समझाता है—

१. जापै चाहत सुख लहै (४)। २. चाहै (२)। ३. लयो (५)।

अर्थ—[ईश्वर ने जो दुःख अथवा सुख तुमको] दिया है, उसे, अच्छी भाँति अंगीकार कर के, सीस चढ़ा ले (सिर माथों पर धर)। जिससे [तू] सुख लेना चाहता है, उसके [दिए हुए] दुःख को फेर मत (अस्वीकृत मत कर)॥

तरिवन-कनकु कपोल-दुति बिच[1] बीच हीं बिकान।
लाल लाल चमकतिं चुनीं चौका चीन्ह[2]-समान॥ ८२॥

तरिवन=तरौना, ताटंक, तालपर्ण॥ चौका=आगे के चार दाँतों को चौका कहते हैं॥ चिन्ह (चिह्न)=निशान॥

अवतरण—अन्यसंभोगदुःखिता नायिका, नायक के पास से लौटकर आई हुई दूती के कपोलों पर दाँतों का चिह्न देखकर, चातुरी से, व्यंग्य-वचन-द्वारा कहती है कि ये तरौनों की चुन्नियाँ दाँतों के चिह्न के समान चमक रही हैं, वास्तव में ये दाँतों के चिह्न नहीं हैं। जो कहो कि तरौने तो हैं ही नहीं; फिर ये चुन्नियाँ कहाँ से आईं, तो इसका समाधान यह है कि तरौनों का सोना तो बीच में से सुनहले कपोलों की चमक में समा गया है, अतः केवल चुन्नियाँ ही दीख पड़ती हैं। यह दोहा लक्षिता नायिका से सखी का व्यंग्य वचन भी हो सकता है—

अर्थ—[तेरे] तरौने का सोना [तो सुनहले] कपोल की द्युति में बीच बीच ही से बिक गया (लुप्त हो गया)। [पर तरौने में जड़ी हुई] चुन्नियाँ दाँतों के चिह्न के समान लाल लाल चमक रही हैं॥

मोहि दयौ, मेरौ भयौ, रहतु जु मिलि जिय साथ।
सो मनु बाँधि न सौंपियै, पिय, सौतिनि कैं हाथ॥ ८३॥

अवतरण—सपत्नी पर नायक की प्रीति होते देखकर नायिका विनय करती है—

अर्थ—मुझको दिया हुआ [तथा] मेरा हो चुका हुआ [मन] जो [मेरे] जी के साथ मिल कर रहता है, अथवा जो मिल कर (जिसके मिलने के कारण) [मेरा] जी [मेरे] साथ रहता है, उस मन को बाँधकर (बरबस), हे प्रियतम सपत्नी के हाथ में मत सौंपिए [क्योंकि मेरा जी उससे ऐसा मिल गया है कि उसके साथ वह भी चला जायगा]॥

कुंजु-भवनु तजि भवन कौं चलियै नंदकिसोर।
फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर॥ ८४॥

अवतरण—उपपति ने परकीया के साथ रात भर कुंजभवन में विहार किया है, और सबेरा होने पर भी वह प्रेमाधिक्य के कारण उसको अंक में भरे हुए है। नायिका

१. बिचबिच हीर (५)। २. चिह्न (२, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कुलकानि के भय से नायक का ध्यान प्रातःकाल होने पर दिला कर घर चलने का प्रस्ताव करती है—

अर्थ—हे नंदकिसोर [अब] कुंज-भवन को छोड़ कर भवन को चलिए। [देखिए,] गुलाब की कली फूल रही है, [और उसकी] चारों ओर चटकाहट [हो रही है] ॥

गुलाब प्रातःकाल फूलता है, और फूलने के समय कलियों के चटकने से चटचट शब्द होता है। इस चटकाहट का वर्णन बहुत से कवियों ने किया है ॥

कहति न देवर की कुबत[1] कुल-तिय कलह[2] डराति[3]।
पंजर-गत मंजार-ढिग सुक ज्यौं[4] सूकति जाति[5] ॥ ८५ ॥

कुबत=बुरी बात, खुटाई ॥ पंजर-गत=पिंजड़े में पड़े हुए ॥ मंजार-ढिग=बिल्ले के समीप स्थित ॥

अवतरण—देवर अपनी भौजाई से अनुचित प्रेम करना चाहता है। पर भौजाई पतिव्रता तथा सुशीला है, अतः बड़ी चिंतित है। यदि वह देवर की खुटाई नहीं कहती, तो उसे भय है कि कहीं, अवसर पाकर, वह उसको आलिंगन इत्यादि न कर ले, और यदि कहती है, तो भाई भाई में तथा देवर देवरानी में कलह होता है। इसी अड़चन में पड़ी हुई वह सूखती जाती है। उसकी इस दशा का वर्णन सखी सखी से कहती है—

अर्थ—[वह] कुलवधू (सुशीला, पतिव्रता) कलह से डरती हुई देवर की खोटी बात नहीं कहती (विदित नहीं करती), [और] बिल्ले के पास स्थित पिंजरे में बंद सुग्गे की भाँति [दिन दिन] सूखी जाती है ॥

औरै भाँति भए[6] ऽब ए चौसरु, चंदनु, चंदु।
पति-बिनु अति पारतु बिपति मारतु मारुतु मंदु ॥ ८६ ॥

ऽब=अब ॥ चौसर=मोतियों अथवा फूलों का चौलड़ा हार ॥ पारतु=डालता है।

अवतरण—विरह-ताप से पीड़ित नायिका का ताप सखी फूलों के गजरे, चंदन, चाँदनी एवं मन्द पवन से छुड़ाया चाहती है, क्योंकि इन पदार्थों से उसको संयोगावस्था में परम सुख मिलता था। उससे नायिका कहती है—

अर्थ—[हे सखी,] अब [तो] ये चौसर, चंदन, [तथा] चंद और ही भाँति के हो गए हैं (सुखदायी न रहकर दुःखदायी हो गए हैं), [और] पति के बिना (विरह में) अति विपत्ति डालता हुआ (अति उद्दीपन करता हुआ) मंद मारुत [तो] मारे [ही] डालता है ॥

१. कुमति (४)। २. कुलहि (२, ४)। ३. लजाइ (४)।
४. लौं (५)। ५. जाइ (४)। ६. नए (२)।

चलन न पावतु निगम-मगु[1] जगु, उपज्यौ अति त्रासु।
कुच-उतंग गिरिबर गह्यौ[2] मैना मैनु मवासु ॥ ८७ ॥

निगम-मगु=(१) वेद-मग अर्थात् धर्म पथ। (२) वणिक् पथ ॥ त्रासु=भय, डर ॥ मैना=राजपूताने के जंगलों में एक जाति के मनुष्य रहते हैं, जो कि मैणा अथवा मीना कहलाते हैं। उनका काम प्रायः डाका डालना और लूटना है। मवासु=दृढ़ निवास ॥

अवतरण—नायिका के कुचों की अति कामोद्दीपिनी शोभा का वर्णन नायक स्वगत करता है—

अर्थ—कुच-रूपी उतंग (ऊँचे) गिरिवर (पहाड़) पर मदन-रूपी मैना ने [अपना] दृढ़ स्थान जमाया है। [अतः] बड़ा भय उत्पन्न हो रहा है, [और] जगत् धर्मपथ-रूपी वणिक्-पथ नहीं चलने पाता ॥

त्रिबली, नाभि दिखाइ, कर[3] सिर ढकि, सकुचि, समाहि।
गली[4], अली की ओट कै[5], चली भली बिधि चाहि ॥ ८८ ॥

सकुचि—यहाँ इसका अर्थ संकोच का मिष कर के होता है ॥ कर सिर ढकि=हाथ को सिर ढाँकने के निमित्त उठा कर ॥ समाहि=सामना करके। इसका अर्थ टीकाकारों ने प्रायः 'समा कर' किया है, जो ठीक नहीं है। अली की ओट कै=सखी की आँखों की ओट, अर्थात् बचाव कर के ॥

अवतरण—नायक को देख कर नायिका ने जो मनोहारिणी तथा अपना अनुराग प्रकट करने वाली चेष्टा की, उसका स्मरण अथवा वर्णन नायक स्वगत करता है—

अर्थ—[वह मेरा] सामना कर, संकुचित हो (संकुचित होने का ब्याज कर), हाथ से सिर ढाँक (सिर ढाँकने के निमित्त हाथ उठा), [और इस क्रिया से अपनी] त्रिबली, [तथा] नाभी दिखला, सखी की ओट कर के (सखी की आँखें बचा कर) [मुझे] भली भाँति (आँखें भर के) देख कर गली में चली ॥

इस दोहे का अन्वय कुछ कठिन है। इसका भावार्थ यह है कि मेरा सामना होने पर उसने संकोच के कारण घूँघट करने के मिष से, हाथ उठा अपनी मनोहर त्रिबली तथा नाभी मुझे दिखलाई और फिर सखी की आँखें बचा, मेरी ओर आँखें भर के देख कर गली में चली गयी।

इस दोहे के भाव से ४२४ अंक के दोहे का भाव मिलता है ॥

१. मनु (१)। २. गहे (४), गह्यौ (५)। ३. करि (२, ४)।
४. अली गली (५)। ५. ह्वै (४, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

देखत बुरै¹ कपूर ज्यौं² उपै जाइ जिन, लाल।
छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल॥ ८९॥

बुरै=उरा कर। किसी वस्तु के धीरे धीरे व्यय होते होते समाप्त हो जाने को बुराना, उराना अथवा ओराना कहते हैं। यह शब्द संस्कृत शब्द 'वर' से बना है, जिसका अर्थ रोक, ठहराव इत्यादि है। लेखकों तथा टीकाकारों ने इस शब्द को न समझने के कारण, अनेक पाठांतर कर लिए हैं, पर दो प्राचीन पुस्तकों में इसका यही शुद्ध पाठ मिला है॥ उपै जाइ=उड़ जाय, लुप्त हो जाय॥ बाल=बाला॥

अवतरण—सखी नायिका के विरह में क्षीण होने का वर्णन नायक से करती है—

अर्थ—हे लाल, [वह] छबीली बाला क्षण क्षण में अत्यंत क्षीण (दुबली) होती जाती है। [इसलिए डर है कि कहीं] देखते देखते कपूर की भाँति उरा कर उड़ न जाय (सर्वथा लुप्त न हो जाय)॥

हँसि उतारि हिय³ तैं दई तुम जु⁴ तिहिं⁵ दिना⁶, लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यौं⁷, वहै चुहुटिनी⁸-माल॥ ९०॥

चुहुटिनी—यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ घुँघची और दूसरा अर्थ पकड़ने वाली है। दूसरा अर्थ पहिले अर्थ का विशेषण होकर इस शब्द को साभिप्राय बना देता है अर्थात् इसका अर्थ पकड़ रखने वाली घुँघची कर देता है। इसी प्रकार का प्रयोग बिहारी ने ६६० अंक के दोहे में भी किया है॥

अवतरण—सखी वचन नायक से—

अर्थ—हे लाल, तुमने जो उस दिन हँस कर, [और अपने] उर से उतार कर दी थी, वही चुहुटिनी (पकड़ रखने वाली घुँघची) की माला [उसके] प्राणों को कपूर की भाँति रखती है (रक्षित किए रहती है, अर्थात् उड़ने नहीं देती)॥

कपूर के डब्बे में बहुधा लोग घुँघची, काली मिर्च अथवा लवंग रख देते हैं, क्योंकि इन वस्तुओं के रख देने से कपूर शीघ्र नहीं उड़ता॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार॥ ९१॥

कोरिक (कोटिक)=करोड़ के अनुमान॥ संग्रहौ=बटोरो, जोड़ो॥ लाख हजार=दस करोड़॥

---

१. दुरै (२), चूर (४)। २. लौ (५)। ३. उर (४)। ४. जो (४)। ५. ता (४)। ६. दिन (४) ७. लौं (५)। ८. घुटहनी (२), गुंजा की (४), चिहुटनी (५)।

अवतरण—किसी संतोषी भक्त का वचन स्वगत अथवा किसी मित्र से—

अर्थ—[चाहे] कोई करोड़ [की संपत्ति] संग्रह करे, [चाहे] कोई दस करोड़ [की], मेरी संपत्ति [तो] सदा विपत्ति के विदारण करने वाले यदुपति (श्रीकृष्ण भगवान्) हैं [मुझे और किसी संपत्ति की कुछ आकांक्षा नहीं है]॥

द्वैज-सुधादीधिति-कला वह लखि, दीठि¹ लगाइ।
मनौ अकास²-अगस्तिया एकै कली लखाइ॥ ९२॥

सुधा दीधिति=चंद्रमा॥ दीठि लगाइ=दृष्टि लगा कर अर्थात् ध्यान दे कर॥ अगस्तिया (अगस्तिका)=अगस्ति वृक्ष, जो कि शरदागम में कलियाना आरंभ करता है॥

अवतरण—नायक और नायिका ने शरदागम के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को, चंद्रास्त के समय किसी अगस्त्य के वृक्ष के पास मिलने का संकेत बद रक्खा है। आज वही दिन है। चंद्रमा दर्शन देकर अस्ताचल को जा रहा है। नायक की दूती नायिका के पास आ, और उसको गुरुजनों में बैठी देख द्वैज का चंद्रमा दिखलाने के ब्याज से; उसको नियत दिन का ध्यान दिलाती है, और चंद्रमा की उपमा अगस्त्य की कली से देकर संकेत-स्थल का स्मरण कराती है—

अर्थ—दृष्टि लगा कर [तू] वह द्वैज के चंद्रमा की कला देख, [जो ऐसा शोभित है] मानो आकाश-रूपी अगस्त्य के वृक्ष में एक ही कली दिखलाई देती है॥

अगस्त्य शरदागम के आरंभ में फूलता है। वह समय बड़ा सुखद माना जाता है। "अगस्त्य में मानो एक ही कली दिखलाई देती है", यह कह कर दूती व्यंजित करती है कि यह अवसर तेरे लिये वैसा ही सुखद है, जैसा अगस्त्य में कली आना आरंभ होने का समय होता है। इसी उत्प्रेक्षा से वह शरद् ऋतु के प्रथम शुक्ल पक्ष का होना भी दिखलाती है॥

गदराने तन गोरटी, ऐपन-आड़ लिलार।
हूठ्यौ दै, इठलाइ, दृग करै गँवारि सुवार³॥ ९३॥

गदराने=पकने पर आए हुए, जवानी पर आए हुए॥ गोरटी=गोरे शरीर वाली॥ ऐपन=चावल और हलदी को पानी में पीस कर बनाया हुआ एक प्रकार का अवलेपन॥ हूठ्यौ=गँवार स्त्रियाँ जब इठलाती अथवा किसी को बिराती हैं, तो दोनों हाथों को मुट्ठी बाँध कर कटि-स्थल पर रख लेती हैं। इस क्रिया को हूठा देना कहते हैं॥ वार=चोट, आक्रमण॥

---

१. डीठि (२, ४)। २. अगास (५)। ३. मार (२, ४)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

232 अवतरण—किसी गँवार स्त्री को इठलाते देख कर नायक स्वगत कहता है—

अर्थ—[यह] गदराए हुए तन वाली गोरी गँवारि, जिसके ललाट पर ऐंपन का आड़ा तिलक लगा हुआ है, हूँठा दे, इठला कर दृगों से [कैसी] सु (सच्ची, अचूक) वार करती है ॥

तंत्री-नाद, कबित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।

अनबूड़े बूड़े, तरे[1] जे बूड़े सब अंग ॥ ९४ ॥

तंत्री-नाद = वीणा इत्यादि का मधुर स्वर ॥ कवित्त-रस = काव्य का स्वाद ॥ **सरस राग** = रसीला स्नेह अथवा रसीला गाना ॥ रति-रंग = प्रीति का अथवा स्त्री-संग का आनंद ॥ अनबूड़े = इस शब्द का अर्थ यहाँ अधबूड़े है। 'बूड़े सब अंग' पद के विरोध से 'अनबूड़े' में 'अन' का प्रयोग ईषद् अर्थ में मानना चाहिए। विरोधाभास अलंकार के निमित्त बिहारी ने 'अधबूड़े बूड़े' न रखकर 'अनबूड़े बूड़े' रक्खा है। 'अनबूड़े' का अर्थ होता है ऐसे लोग, जो कि तंत्री-नाद इत्यादि में हाथ तो डालते हैं, पर उनमें डूबे नहीं हैं ॥ बूड़े=डूबे, नष्ट हुए ॥ तरे=बन गए, श्रेष्ठ हो गए ॥ बूड़े=निमग्न हो गए, लिप्त हो गए ॥ सब अंग=सर्वांग, पूर्ण रीति से ॥

अवतरण—कवि की प्रास्ताविक उक्ति है—

अर्थ—तंत्री-नाद, कबित्त-रस, सरस राग तथा रति-रंग में [जो] अधबूड़े [हैं, वे तो] बूड़े (नष्ट हो गए), [पर] जो पूर्ण रीति से बूड़े (प्रविष्ट हुए), [वे] तरे (प्राप्ताभीष्ट हुए, सुधर गए) [कवि का तात्पर्य यह है कि तंत्री-नाद इत्यादि पदार्थ ऐसे हैं, जिनमें बिना पूर्ण रीति से प्रविष्ट हुए कोई आनंद नहीं मिलता। यदि इनमें पड़ना हो, तो पूर्णतया पड़ो, नहीं तो इनसे दूर ही रहो] ॥

सहज सचिक्कन, स्याम-रुचि, सुचि, सुगंध, सुकुमार।

गनतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुरे सुथरे बार ॥ ९५ ॥

सहज सचिक्कन=स्वभाव ही से चिकने, बिना फुलेल इत्यादि लगाए ही चिकने ॥ **स्याम-रुचि** = श्याम रंग वाले ॥ सुचि (शुचि) = अमल ॥ सुकुमार = कोमल ॥ **गनतु न** = नहीं गिनता, नहीं विचारता ॥ पथु = अच्छा रास्ता ॥ अपथु=बुरा पथ ॥ **बिथुरे** = फैले हुए, छिटके हुए ॥ सुथरे = सुंदर ॥

अवतरण—नायिका के बालों पर रीझा हुआ नायक अपना नित्य कर्तव्य भूलकर उन्हीं के ध्यान में तथा नायिका से मिलने की चिन्ता में निमग्न रहता है। यह वृतान्त जान कर उसका कोई अन्तरंग मित्र उसे समझाता है कि यह मार्ग तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है, तुम्हें अपनी कुल-रीति पर चलना चाहिए। नायक उसे उत्तर देता है—

१. तिरे (४, ५)।

अर्थ—[उसके] स्वभाव ही से चिकने, काले, अमल, मनोहर गंध वाले, कोमल, बिथुरे. [और] सुथरे बालों को देखकर [मेरा] मन [ऐसा मोहित हो गया है कि] पथ, [और] अपथ कुछ नहीं गिनता ॥

सुदुति[1] दुराई[2] दुरति[3] नहिं, प्रगट करति[4] रति-रूप।

छुटैं पीक, औरै उठी लाली ओठ अनूप ॥ ९६ ॥

प्रकट करति रति-रूप=रति का रूप अर्थात् चिह्न प्रगट करती हुई। यह खंड-वाक्य 'लाली' का विशेषण है ॥

अवतरण—नायक ने नायिका का अधर-पान किया था, जिससे उसमें लाली आ गई। नायिका ने वह लाली पान के रंग से छिपा रक्खी थी। पर पीक के छूट जाने पर वह लाली प्रकट हो गई। इससे सखी उसकी रति लक्षित करके कहती है—

अर्थ—सुंदर द्युति छिपाए नहीं छिपती (यद्यपि तू ने पान के रंग से अधर की चुंबन-कृत लाली छिपा रक्खी थी, पर भला वह कहीं छिप सकती है)। [देख, अब] पीक छूटने पर [तेरे] अधर में, रति का चिह्न प्रकट करती हुई, और ही प्रकार की (अधर की स्वाभाविक लाली से भिन्न प्रकार की) अनूप लाली उठी है (निकल आई है) ॥

यह दोहा अन्यसंभोगदुःखिता नायिका का वचन दूती से भी हो सकता है। ऐसी अवस्था में 'सुदुति' का प्रयोग व्यंग्यात्मक होगा ॥

वेई गड़ि गाड़ैं परीं, उपट्यौ हारु हियैं न।

आन्यौ मोरि मतंगु मनु[5] मारि गुरेरनु मैन ॥९७॥

गाड़ैं=गड़हे ॥ **उपट्यो**—किसी कोमल वस्तु पर किसी कड़ी वस्तु के दबने पर या लगने के कारण चिह्न पड़ जाने को उपटना कहते हैं ॥ **गुरेरनु**=गुल्लों से। गुल्ले अथवा गुलेल (गुरेर) उन छोटी छोटी गोलियों को कहते हैं, जो एक प्रकार के धनुष के द्वारा चलाई जाती हैं। उस धनुष विशेष को भी गुलेला अथवा गुलेल कहते हैं ॥

अवतरण—नायक के हृदय पर मोतियों के हार का चिह्न उपटा हुआ देख कर खंडिता नायिका कहती है—

अर्थ—[आप संकुचित क्यों होते हैं, यह जो आपके हृदय पर चिह्न है, वह] हृदय पर हार नहीं उपटा हुआ है, [प्रत्युत आप ऐसे] मतंग (मातंग, बड़े हाथी) को मानो मदन गुलेलों से मार कर फेर लाया है, [सो] वे ही

१. सुरति (२, ४)। २. दुंराए (४)। ३. ना दुरति (४)। ४. होत (४)।
५. मन (४, ५)।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

[गुल्ले] गड़ कर [ये] गाड़ें पड़ गई हैं (अर्थात् आप इस समय मदन से पीड़ित होकर यहाँ आए हैं, क्योंकि दिन में परकीया की प्राप्ति कठिन है। नहीं तो भला आप के दर्शन कहाँ मिलते, आप तो निरंकुश हाथी के समान इधर उधर घूमा करते हैं)॥

नैंक न झुरसौ[1] बिरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति[2]।
नित[3] नित होति हरी हरी, खरी झालरति जाति[4] ॥९८॥

झुरसौ=जली ॥ झर=लपट, ताप, ज्वाला ॥ झालरति जाति=नए नए डाल और पत्तों से सम्पन्न होती जाती है ॥

अवतरण—सखी नायक से नायिका के, अथवा नायिका से नायक के प्रेम के प्रति दिन बढ़ने का वर्णन करती है—

अर्थ—विरह की ज्वाला से झुलसी हुई [उसको] स्नेह-लता किंचिन्मात्र भी कुम्हिलाती नहीं; [प्रत्युत] नित्यप्रति हरी [ही] हरी होती [और] भली भाँति झलराती जाती है ॥

हेरि हिंडोरैं गगन तैं परी परी सी टूटि।
धरी धाइ पिय बीच हीं, करी खरी रस लूटि ॥९९॥

हिंडोरैं गगन तैं=हिंडोले-रूपी आकाश से ॥ परी सी=अप्सरा सी ॥ करी खरी=खड़ी कर दी ॥

अवतरण—नवोढ़ा नायिका सखियों के साथ हिंडोला झूल रही थी। इतने में नायक भी वहाँ आ पहुँचा। उसको देखकर नायिका हिंडोले पर से भागने के निमित्त कूद पड़ी। प्रियतम ने फुर्ती से उसे बीच ही में लोक लिया, पृथ्वी पर गिरने नहीं दिया, और आलिंगन का रस लूट कर खड़ी कर दिया। सखी का वचन सखी से—

अर्थ—[प्रियतम को] देख कर [वह] हिंडोले-रूपी आकाश से [मारे शीघ्रता के] परी सी टूट पड़ी (भागने के निमित्त कूद पड़ी)। [यह देख] प्रियतम ने दौड़ कर बीच (अधर) ही में [उसे] लोक लिया, [गिरने नहीं दिया, और] रस लूट कर (आलिंगनादि का सुख लेकर) [उसको पृथ्वी पर] खड़ी कर दिया ॥

नैंक हँसौहीं बानि तजि, लख्यौ परतु मुहुँ नीठि।
चौका-चमकनि-चौंध मैं परति चौंधि सी डीठि[5] ॥१००॥

१. झरसी (४)। २. कुम्हिलाइ (२)। ३. खिन खिन (४), छिन छिन (५)।
४. जाइ (२)। ५. दीठि (१)।

चौका=आगे के चार दाँत ॥ चौंध=आँखों में अँधेरी छा देने वाली तड़प ॥ परति चौंधि सी=चौंधियाँ सी जाती है, अर्थात् तड़प के कारण अँधेरी छाई हुई सी हो जाती है ॥

अवतरण—नायक पर अपराधी होने की शंका कर के नायिका मुसकिराहट द्वारा कुछ मान सूचित करती है, जिससे नायक की आँखें संकुचित हो जाती हैं। यह देख कर सखी, बड़ी चातुरी से, इस दोहे के द्वारा, नायक पर तो यह प्रकट करके कि नायिका का स्वभाव ही मुसकिराते रहने का है, उसका संकोच छुड़ाया चाहती है, जिसमें उसके संकोच से उसके सिर अपराध सिद्ध न हो जाय, और नायिका से नायक के सामने न देख सकने का कारण उसके दाँतों की चमक बतलाती है, जिसमें वह उसको संकोच के कारण अपराधी न निर्धारित कर ले—

अर्थ—[हे सखी, तू अपनी] हँसौंहीं (हँसते रहने की) बान (प्रकृति) नैंक छोड़ दे। [इस प्रकृति के कारण तेरा] मुख नीठि (कठिनता से) दिखलाई देता है; [क्योंकि तेरे] चौके की चमक की चकाचौंध में आँखें चौंधिया सी जाती हैं ॥

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

234

चिंता

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता—कहो उसे जड़ या चेतन।
दूर दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय-समान,
नीरवता-सी शिला-चरण से टकराता फिरता पवमान।
तरुण तपस्वी-सा वह बैठा साधन करता सुर-स्मशान,
नीचे प्रलयसिंधु लहरों का होता था सकरुण अवसान।
उसी तपस्वी-से लंबे थे देवदारु दो चार खड़े,
हुए हिम-धवल, जैसे पत्थर बन कर ठिठुरे रहे अड़े।
अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार,
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।
चिंता-कातर वदन हो रहा पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत।
बँधी महावट से नौका थी सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल-प्लावन, और निकलने लगी मही।
निकल रही थी मर्म वेदना करुणा विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती-सी पहचानी-सी।

"ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप-सी मतवाली!

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खलरेखा !
हरी-भरी-सी दौड़-धूप, ओ जल-माया की चल-रेखा !
इस ग्रहकक्षा की हलचल—री तरल गरल की लघु-लहरी,
जरा अमर-जीवन की, और न कुछ सुनने वाली, बहरी !
अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी—अरी आधि, मधुमय अभिशाप !
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी, पुण्य-सृष्टि में सुंदर पाप।
मनन करावेगी तू कितना ? उस निश्चित जाति का जीव—
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी गहरी डाल रही है नींव।
आह ! घिरेगी हृदय-लहलहे-खेतों पर करका-घन-सी,
छिपी रहेगी अंतरतम में सब के तू निगूढ़ धन-सी।
बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता तेरे हैं कितने नाम !
अरी पाप है तू, जा, चल जा यहाँ नहीं कुछ तेरा काम।
विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते ! बस चुप कर दे,
चेतनता चल जा, जड़ता से आज शून्य मेरा भर दे।"

"चिंता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती जातीं रेखायें दुख की।
आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम असफल हुए, विलीन हुए,
भक्षक या रक्षक जो समझो, केवल अपने मीन हुए !
अरी आँधियो ! ओ बिजली की दिवा-रात्रि तेरा नर्त्तन,
उसी वासना की उपासना, वह तेरा प्रत्यावर्त्तन।
मणि-दीपों के अंधकारमय अरे निराशा पूर्ण भविष्य !
देव-दंभ के महामेध में सब कुछ ही बन गया हविष्य।
अरे अमरता के चमकीले पुतलो ! तेरे वे जयनाद—
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बन कर मानो दीन विषाद।
प्रकृति रही दुर्जय, पराजित हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में।

वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार—
उमड़ रहा था देव-सुखों पर दुःख-जलधि का नाद अपार।"

"वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ! स्वप्न रहा या छलना थी !
देवसृष्टि की सुख-विभावरी ताराओं की कलना थी।
चलते थे सुरभित अंचल से जीवन के मधुमय निश्वास,
कोलाहल में मुखरित होता देव जाति का सुख-विश्वास।
सुख, केवल सुख का वह संग्रह, केंद्रीभूत हुआ इतना,
छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।
सब कुछ थे स्वायत्त, विश्व के—बल, वैभव, आनंद अपार,
उद्वेलित लहरों-सा होता उस समृद्धि का सुख-संचार।
कीर्त्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती अरुण-किरण-सी चारों ओर,
सप्तसिंधु के तरल कणों में, द्रुम-दल में, आनंद-विभोर।
शक्ति रही हाँ शक्ति—प्रकृति थी पद-तल में विनम्र विश्रांत,
कँपती धरणी उन चरणों से होकर प्रतिदिन ही आक्रांत।
स्वयं देव थे हम सब, तो फिर क्यों न विशृंखल होती सृष्टि ?
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।
गया, सभी कुछ गया, मधुर तम सुर-बालाओं का शृंगार,
उषा ज्योत्स्ना-सा यौवन-स्मित मधुप-सदृश निश्चित विहार :
भरी वासना-सरिता का वह कैसा था मदमत्त प्रवाह,
प्रलय-जलधि में संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।"

"चिर-किशोर-वय, नित्य विलासी—सुरभित जिससे रहा दिगंत
आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसंत ?
कुसुमित कुंजों में वे पुलकित प्रेमालिंगन हुए विलीन,
मौन हुई हैं मूर्च्छित तानें और न सुन पड़ती अब बीन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अब न कपोलों पर छाया-सी पड़ती मुख की सुरभित भाप,
भुज-मूलों में शिथिल वसन की व्यस्त न होती है अब माप।
कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार,
मुखरित था कलरव, गीतों में स्वर लय का होता अभिसार।
सौरभ से दिगंत पूरित था, अंतरिक्ष आलोक-अधीर,
सब में एक अचेतन गति थी, जिससे पिछड़ा रहे समीर।
वह अनंग-पीड़ा-अनुभव-सा अंग-भंगियों का नर्त्तन,
मधुकर के मरंद-उत्सव-सा मदिर भाव से आवर्त्तन।
सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे नयन भरे आलस अनुराग,
कल कपोल था जहाँ बिछलता कल्पवृक्ष का पीत पराग।
विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाये चले गये,
आह! जले अपनी ज्वाला से फिर वे जल में गले, गये।"

"अरी उपेक्षा-भरी अमरते! री अतृप्ति! निर्बाध विलास!
द्विधा-रहित अपलक नयनों की भूख-भरी दर्शन की प्यास!
बिछुड़े तेरे सब आलिंगन, पुलक-स्पर्श का पता नहीं,
मधुमय चुंबन कातरतायें, आज न मुख को सता रहीं।
रत्न-सौध के वातायन, जिनमें आता मधु-मदिर समीर,
टकराती होगी अब उनमें तिमिंगिलों की भीड़ अधीर।
देवकामिनी के नयनों से जहाँ नील नलिनों की सृष्टि—
होती थी, अब वहाँ हो रही प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि।
वे अम्लान-कुसुम-सुरभित—मणि-रचित मनोहर मालायें,
बनीं शृंखला, जकड़ीं जिनमें विलासिनी सुर-बालायें।
देव-यजन के पशुयज्ञों की वह पूर्णाहुति की ज्वाला,
जलनिधि में बन जलती कैसी आज लहरियों की माला।"

"उनको देख कौन रोया यों अंतरिक्ष में बैठ अधीर!
व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय यह प्रालेय हलाहल नीर!
हाहाकार हुआ क्रंदनमय कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव बार-बार होता था क्रूर।
दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज-तट के!
सघन गगन में भीमप्रकंपन, झंझा के चलते झटके।
अंधकार में मलिन मित्र की धुँधली आभा लीन हुई,
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा स्तर-स्तर जमती पीन हुई।
पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के शकल-निपात
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।
बार बार उस भीषण रव से कँपती धरती देख विशेष,
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष!
उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों सी,
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वाला-मुखियों के निश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।
सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिंधु के, विचलित-सी—
व्यस्त महाकच्छप-सी धरणी ऊभ-चूभ थी विकलित-सी।
बढ़ने लगा विलास-वेग-सा वह अतिभैरव जल-संघात,
तरल-तिमिर से प्रलय-पवन का होता आलिंगन, प्रतिघात।
वेला क्षण-क्षण निकट आ रही क्षितिज क्षीण, फिर लीन हुआ;
उदधि डुबाकर अखिल धरा को बस मर्य्यादा-हीन हुआ!
करका क्रंदन करती गिरती और कुचलना था सब का,
पंचभूत का यह तांडवमय नृत्य हो रहा था कब का।"

"एक नाव थी, और न उसमें डाँड़े लगते, या पतवार,
तरल तरंगों में उठ-गिरकर बहती पगली बारंबार।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लगते प्रबल थपेड़े, धुँधले तट का था कुछ पता नहीं,
कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं।
लहरें व्योम चूमती उठतीं, चपलायें असंख्य नचतीं,
गरल जलद की खड़ी झड़ी में बूँदें निज संसृति रचतीं।
चपलायें उस जलधि-विश्व में स्वयं चमत्कृत होती थीं,
ज्यों विराट बाड़व-ज्वालायें खंड-खंड हो रोती थीं।
जलनिधि के तलवासी जलचर विकल निकलते उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी कौन ! कहाँ ! कब ! सुख पाते ?
घनीभूत हो उठे पवन, फिर श्वासों की गति होती रुद्ध,
और चेतना थी बिलखाती, दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध।
उस विराट् आलोड़न में ग्रह, तारा बुद-बुद से लगते,
प्रखर प्रलय-पावस में जगमग, ज्योतिरिंगणों-से जगते।
प्रहर दिवस कितने बीते, अब इसको कौन बता सकता,
इनके सूचक उपकरणों का चिह्न न कोई पा सकता।
काला शासन-चक्र मृत्यु का कब तक चला, न स्मरण रहा,
महामत्स्य का एक चपेटा दीन पोत का मरण रहा।
किंतु, उसी ने ला टकराया इस उत्तरगिरि के शिर से,
देव-सृष्टि का ध्वंस अचानक श्वास लगा लेने फिर से।
आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दंभ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम-पात्र मय सा विष्कंभ !"

"ओ जीवन की मरु-मरीचिका, कायरता के अलस विषाद !
अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय मोहमुग्ध जर्जर अवसाद !
मौन ! नाश ! विध्वंस ! अँधेरा ! शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते ! तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।
मृत्यु, अरी चिर-निद्रे ! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती काल-जलधि की-सी हलचल।
महानृत्य का विषम सम अरी अखिल स्पंदनों की तू माप,
तेरी ही विभूति बनती है सृष्टि सदा होकर अभिशाप।
अंधकार के अट्टहास-सी मुखरित सतत चिरंतन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू यह सुंदर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी-संधि-सा सुंदर क्षण भर रहा उजाला में।"

पवन पी रहा था शब्दों को निर्जनता की उखड़ी साँस,
टकराती थी, दीन प्रतिध्वनि बनी हिम-शिलाओं के पास।
धू-धू करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य,
आकर्षण-विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे भृत्य।
मृत्यु सदृश शीतल निराश ही आलिंगन पाती थी दृष्टि,
परमव्योम से भौतिक कण-सी घने कुहासों की थी वृष्टि।
वाष्प बना उड़ता जाता था या वह भीषण जल-संघात,
सौरचक्र में आवर्त्तन था प्रलय निशा का होता प्रात !

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

श्रद्धा

"कौन तुम ? संसृति-जलनिधि तीर-तरंगों से फेंकी मणि एक ,
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक ?
मधुर विश्रांत और एकांत —जगत का सुलझा हुआ रहस्य ,
एक करुणामय सुंदर मौन और चंचल मन का आलस्य !"

सुना यह मनु ने मधु गुंजार मधुकरी का - सा जब सानंद ,
किये मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद ,
एक झिटका - सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लुटे - से, कौन—
गा रहा यह सुंदर संगीत ? कुतूहल रह न सका फिर मौन ।
और देखा वह सुंदर दृश्य नयन का इंद्रजाल अभिराम ,
कुसुम-वैभव में लता समान चंद्रिका से लिपटा घनश्याम ।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लंबी काया, उन्मुक्त
मधु-पवन-क्रीड़ित ज्यों शिशु साल, सुशोभित हो सौरभ-संयुक्त ।
मसृण, गांधार देश के नील रोम वाले मेषों के चर्म ,
ढँक रहे थे उसका वपु कांत बन रहा था वह कोमल वर्म ।
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग ।
आह वह मुख ! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घन श्याम ;
अरुण रवि - मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम ।
या कि, नव इंद्रनील लघु शृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत—
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घनशावक-से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।
और, उस मुख पर वह मुसक्यान! रक्त किसलय पर ले विश्राम—
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम।
नित्य-यौवन छवि से ही दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ति,
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहिली लेखा कांत, माधुरी से भींगी भर मोद,
मद भरी जैसे उठे सलज्ज भोर की तारक-द्युति की गोद।
कुसुम कानन अंचल में मंद—पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित-परमाणु-पराग-शरीर खड़ा हो, ले मधु का आधार।
और, पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु-राका मन की साध,
हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध!

कहा मनु ने "नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का-सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।
शैल निर्झर न बना हतभाग्य, गल नहीं सका जो कि हिम-खंड,
दौड़ कर मिला न जलनिधि-अंक आह वैसा ही हूँ पाषंड।
पहेली-सा जीवन है व्यस्त, उसे सुलझाने का अभिमान—
बताता है विस्मृति का मार्ग चल रहा हूँ बन कर अनजान।
भूलता ही जाता दिन-रात सजल-अभिलाषा-कलित अतीत,
बढ़ रहा तिमिर-गर्भ में नित्य, दीन जीवन का यह संगीत।
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रांत? विवर में नील गगन के आज!
वायु की भटकी एक तरंग, शून्यता का उजड़ा-सा राज।
एक विस्मृति का स्तूप अचेत, ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिंब;
और जड़ता की जीवन-राशि, सफलता का संकलित विलंब।"

"कौन हो तुम वसंत के दूत विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन-तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार!
नखत की आशा-किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कांत—
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस-हलचल शांत!"

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष,
दे रहा हो कोकिल सानंद सुमन को ज्यों मधुमय संदेश:—

"भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गंधर्वों के देश, पिता की हूँ प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास बढ़ा था मुक्त-व्योम-तल नित्य,
कुतूहल खोज रहा था, व्यस्त[1] हृदय-सत्ता का सुंदर सत्य।
दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर प्रश्न करता मन अधिक अधीर,
धरा की यह सिकुड़न भयभीत आह, कैसी है? क्या है पीर?
मधुरिमा में अपनी ही मौन एक सोया संदेश महान,
सजग हो करता था संकेत, चेतना मचल उठी अनजान।
बढ़ा मन और चले ये पैर, शैल-मालाओं का शृंगार,
आँख की भूख मिटी यह देख आह कितना सुंदर संभार!
एक दिन सहसा सिंधु अपार लगा टकराने नग तल क्षुब्ध,
अकेला यह जीवन निरुपाय आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न, भूत-हित-रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव, हुआ ऐसा मन में अनुमान।

1. व्यस्त = छिन्न : द्रष्टव्य—वृत्रो अशयद्व्यस्त:—ऋग्वेद १–२–७, सायण ने भी व्यस्त के भाष्य में कहा है "व्यस्त: विविधं क्षिप्त:"।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तपस्वी ! क्यों इतने हो क्लांत ? वेदना का यह कैसा वेग ?
आह ! तुम कितने अधिक हताश—बताओ यह कैसा उद्वेग !
हृदय में क्या है नहीं अधीर—लालसा जीवन की निश्शेष ?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग तुम्हें, मन में धर सुंदर वेश !
दुःख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बन कर अनजान !
कर रही लीलामय आनंद—महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम—इसी में सब होते अनुरक्त।
काम-मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम।"

"दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात,
एक परदा यह झीना नील छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल—
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल।
विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पंदित विश्व महान,
यही दुख-सुख, विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण-जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख-मणिगण द्युतिमान।"

लगे कहने मनु सहित विषाद:—"मधुर मारुत-से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध उठाते मानस में सविलास।
किंतु जीवन कितना निरुपाय ! लिया है देख, नहीं संदेह,
निराशा है जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह !"

कहा आगंतुक ने सस्नेह:—"अरे, तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते मर कर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन-सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा—सो रहा आशा का आह्लाद।
प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।
पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनंद किये है परिवर्तन में टेक।
युगों की चट्टानों पर सृष्टि डाल पद-चिह्न चली गंभीर,
देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति अनुसरण करती उसे अधीर।"

"एक तुम, यह विस्तृत भू-खंड प्रकृति वैभव से भरा अमंद,
कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन—आनंद।
अकेले तुम कैसे असहाय यजन कर सकते ? तुच्छ विचार।
तपस्वी ! आकर्षण से हीन कर सके नहीं आत्म-विस्तार।
दब रहे हो अपने ही बोझ खोजते भी न कहीं अवलंब,
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न उऋण होऊँ मैं बिना विलंब ?
समर्पण लो—सेवा का सार, सजल-संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद-तल में विगत-विकार।
दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास !
बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्व-भर सौरभ से भर जाय सुमन के खेलो सुंदर खेल।"

"और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान—
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो' विश्व में गूँज रहा जय-गान।
डरो मत, अरे अमृत संतान ! अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,
पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

देव-असफलताओं का ध्वंस प्रचुर उपकरण जुटाकर आज,
पड़ा है बन मानव-सम्पत्ति पूर्ण हो मन का चेतन-राज।
चेतना का सुंदर इतिहास—अखिल मानव भावों का सत्य,
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य-अक्षरों से अंकित हो नित्य।
विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण,
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानंद,
आज से मानवता की कीर्ति अनिल, भू, जल में रहे न बंद।
जलधि के फूटें कितने उत्स—द्वीप-कच्छप डूबें-उतरायें,
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़-मूर्त्ति अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार—
हँसाता रहे उसे सविलास शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय!"

१. देखिये—पादटिप्पणी पृष्ठ २३

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चिन्ता-सर्ग

कथानक—कामायनी की कथा का श्रीगणेश एक भयंकर जल-प्लावन से बचे हुए मानव-जाति के आदि-प्रवर्त्तक वैवस्वत मनु से होता है। वैवस्वत मनु देवजाति के व्यक्ति हैं। पुराणों की गणना के अनुसार वैवस्वत मनु को सातवें मन्वन्तर का आरम्भ-कर्त्ता माना गया है और आजकल सातवां मन्वन्तर ही चल रहा है। अतः वैवस्वत मनु आधुनिक मानव-जाति के आदि-पुरुष हैं। जल-प्लावन के उपरान्त कथानायक मनु हिमालय की एक पर्याप्त उन्नत चोटी पर बैठे हैं तथा वहाँ से जल-प्लावन के विध्वंसकारी दृश्यों को देख रहे हैं। इस जल-प्लावन में उनकी समस्त देव-जाति नष्ट हो चुकी है और वे जैसे-तैसे एक नौका द्वारा बचे हैं, जिसे एक महामत्स्य ने अपने प्रबल चपेटे के द्वारा हिमालय के इस उन्नत शिखर पर ला टकराया है। अब वह जल-प्लावन धीरे उतरने लगा है और कुछ पृथ्वी भी निकलने लगी है। मनु के समीप ही महावट से बँधी हुई उनकी नौका भी पड़ी है और वे इस शून्य प्रकृति में बैठे-बैठे अपनी वैभव-सम्पन्न देव-जाति के भयंकर विनाश के बारे में सोच रहे हैं।

मनु जानते हैं कि उनकी देव-जाति कितनी समृद्धिशालिनी थी। सम्पूर्ण देव-गण अनन्त शक्ति-सम्पन्न थे। उनमें अपार बल, वैभव और आनन्द भरा हुआ था तथा सभी दिशाओं में उनकी कीर्ति-दीप्ति एवं शोभा का प्रसार था। उन देवताओं ने ऐसी अजेय शक्ति का संग्रह किया था, जिसे देखकर सम्पूर्ण, विश्व उनका लोहा मानता था, परन्तु कुछ काल के उपरान्त इस अपार बल-वैभव एवं अजेय शक्ति के परिणामस्वरूप देवताओं में दम्भ, विलास, उच्छृंखलता आदि की अधिकता हो गई। वे विलासिनी सुर-बालाओं के साथ मधुप-तुल्य निश्चिन्त विहार करने लगे; निरन्तर नृत्य, गान, सुरा-पान आदि विलास-क्रीड़ाओं में निमग्न रहने लगे और कुसुमित कुंजों, आपान-गृहों एवं रत्न-जटित भवनों के अन्तर्गत अपनी देव-कामिनियों के साथ निर्बाध विलास में लीन हो गए। इतना ही नहीं, उस देवजाति में पशु-यज्ञों की भी अधिकता हो गई और वे लोग देव-यजनों में निस्संकोच भाव से निरीह पशुओं की बलि देने लगे। अतः देवों के दंभ, अहंकार, उच्छृंखलता, निर्बाध विलास, पशु-बलि आदि की

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अधिकता के कारण दिव्य-शक्तियाँ कुपित हो गईं, जिससे प्रलयकारी हलाहल नीर बरसने लगा, कठोर कुलिश चूर-चूर होने लगे, क्षितिज के चारों ओर विनाशकारी जलधर उठने लगे, वज्रपात होने लगा और इतनी घनघोर वर्षा हुई कि सम्पूर्ण पृथ्वी जल-मग्न हो गई। इसी प्रलयकारी वृष्टि के कारण ऐसा भयंकर जल-प्लावन आया कि उसमें सम्पूर्ण देव-जाति डूब गई, उसका सारा वैभव नष्ट हो गया और केवल एक मनु ही महान् मत्स्य की कृपा से एक नौका द्वारा बचे।

मनु देवताओं के मिथ्या अहंकार, दम्भ आदि के बारे में बार-बार विचार करते हैं और कहते हैं कि देवगण अपने व्यर्थ-अभिमान के कारण ही स्वयं को अमर समझा करते थे, परन्तु उनकी वह अमरता कहाँ रही ? उनका तो सर्वस्व नष्ट हो गया। अतः यह अमरता सत्य नहीं है, अपितु मृत्यु ही सत्य है जो सृष्टि के कण-कण में छिपी हुई है और जीवन भी जिसका एक छोटा-सा तुच्छ अंश मात्र है, जो क्षण भर प्रकाश में रहकर पुनः मृत्यु की गोद में उसी तरह लीन हो जाता है, जिस तरह नीले बादलों में चमककर बिजली विलीन हो जाती है। अतः यह अमरता की भावना मिथ्या है। जीवन भी नश्वर है और इसके लिए मिथ्या गर्व करना व्यर्थ है, क्योंकि कभी किसी का वैभव सदैव नहीं रहता।

इधर मनु देव-जाति के विनाश के बारे में यही सोच रहे थे कि उधर विस्तृत जल-समूह भाप बनकर उड़ने लगा। सहसा आकाश में सूर्य-मण्डल के अन्दर चक्कर काटने वाले ग्रह-उपग्रह भी चमकने लगे और प्रलय की घोर रात्रि के स्थान पर प्रभात की सुनहरी छटा दिखाई देने लगी।

संक्षिप्त समीक्षा—इस चिंता-सर्ग में कवि ने चिंता नामक मनोभाव का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है—एकाकी दुःखी जीवन में चिंता का उदय किस तरह होता है, अकेला व्यक्ति निर्जन में बैठा हुआ किस तरह चिन्ता में व्यथित रहता है आदि-आदि बातों का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। भारतीय ग्रन्थों के आधार पर ही कवि ने खंड-प्रलय का वर्णन किया है, परन्तु इसकी पुष्टि बेबीलोनिया, चैल्डिया चीन, रोम आदि की कथाओं से भी हो जाती है। देव-जाति के मिथ्याभिमान के कारण प्रलय हुई थी, इस बात की पुष्टि भारतीय ग्रन्थों से नहीं होती, परन्तु इसका संकेत बाइबिल, कुरान, ग्रीस की कथाओं आदि में मिलता है। कवि ने देवों की विलास-क्रीड़ाओं के साथ-साथ प्रकृति के भयंकर रूप की जो झाँकी प्रस्तुत की है, वह अत्यन्त मार्मिक है। इसके अतिरिक्त कवि ने मनु के मुख से जीवन की क्षणभंगुरता, अमरता की मिथ्या भावना, मृत्यु की सत्यता आदि के बारे में जो विचार प्रकट किए हैं, वे भी पूर्णतया मनोवैज्ञानिक हैं। कवि ने अपनी उर्वर कल्पना एवं प्रशस्त लेखनी द्वारा सम्पूर्ण सर्ग में करुणा की नदी को अविरल गति से प्रवाहित किया है तथा मानव-सृष्टि की आरम्भिक अवस्था का भी सजीव चित्र अंकित किया है।

हिमगिरि .... प्रलय-प्रवाह।

शब्दार्थ—हिमगिरि=हिमालय पर्वत। उत्तुंग=उन्नत। छाँह=छाया। भीगे नयनों से=अश्रुपूर्ण नेत्रों से। प्रलय-प्रवाह=सम्पूर्ण देव-सृष्टि को विलीन करने वाला जल-प्रवाह।

व्याख्या—हिमालय पहाड़ की ऊँची चोटी पर बर्फ से ढकी हुई एक पर्वत-शिला की शीतल छाया में एक व्यक्ति चुपचाप बैठा हुआ था। अनन्त वैभव-सम्पन्न देव-जाति के विनाश के कारण उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे और वह अपनी उन्हीं अश्रुपूर्ण आँखों से देव-सृष्टि को विलीन करने वाले उस भयङ्कर जल-प्रवाह को देख रहा था।

टिप्पणी—(१) 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर' द्वारा कवि ने यह सूचना दी है कि उस जल-प्लावन में सम्पूर्ण देव-जाति का निवास-क्षेत्र जल-मग्न हो गया था और केवल हिमालय की एक उन्नत चोटी शेष रह गई थी। शतपथ ब्राह्मण में इस चोटी का नाम "मनोरवसर्पण" लिखा है। महाभारत में इसका नाम "नौबन्धन" मिलता है। भविष्यपुराण में इसे "शिशिणा" कहा गया है। बाइबिल में इसके स्थान पर 'अराराट्' पर्वत का उल्लेख मिलता है और कुरान में इसका नाम 'जूदी' पर्वत दिया गया है।

(२) 'एक पुरुष' से तात्पर्य वैवस्वत मनु से है, परन्तु प्रसाद ने अपने कथा-नायक का नाम स्पष्ट नहीं किया है, क्योंकि ऐसा लिखने से पाठकों के हृदय में कुतूहल की सृष्टि होती है और वे नाम जानने की उत्सुकता में बड़े चाव से दूर तक पढ़ते चले जाते हैं। प्रसाद की यह एक प्रमुख विशेषता है। उनकी 'आकाशदीप' कहानी में भी यही विशेषता द्रष्टव्य है।

(३) 'शिला की शीतल छाँह' कहने पर प्रायः यह शंका होती है कि उन्नत चोटी पर बैठे हुए व्यक्ति के ऊपर किसी शिला की छाया कैसे हो सकती है ? इसका समाधान यह है कि यद्यपि मनु हिमालय की उन्नत चोटी पर बैठे हुए थे, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि वे चोटी के सर्वोच्च भाग पर बैठे थे। उस चोटी के ऐसे भाग के पास उनकी नौका जाकर रुकी थी, जहाँ कुछ ठहरने के लिए समतल भूमि थी और उस पर्वत-श्रेणी की कुछ चोटियाँ और भी उन्नत होकर खड़ी थीं, उन्हीं पर्वत श्रेणियों में से किसी एक पर्वत-शिला के नीचे बैठे हुए मनु प्रलय के प्रवाह को देख रहे थे।

(४) इस पद में मंगलाचरण की सामग्री उपस्थित है। जैसे 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर' से ऐश्वर्य, कल्याण आदि का; 'शीतल छाँह' से शान्ति एवं आनन्द का; 'पुरुष' से पराक्रम का और शिला पर बैठकर एक सुरक्षित स्थान से प्रलय-प्रवाह देखने में मनस्कामना-पूर्ति का संकेत मिल रहा है। अतः यहाँ वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण है। सम्पूर्ण पद में भावात्मक हृदय बिम्ब भी विद्यमान है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(५) इस पद में १६ और १५ मात्राओं पर यति होने वाले वीर छंद का प्रयोग हुआ है।

(६) 'भीगे नयन' पद में लक्षणलक्षणा है और 'उत्तुंग' शब्द में उपसर्ग-वक्रता का चमत्कार है।

नीचे जल .... जड़ या चेतन।

शब्दार्थ—हिम=बर्फ। तरल=बहने वाला। सघन=ठोस। तत्त्व=मूल पदार्थ।

व्याख्या—हिमालय के उन्नत शिखर पर बैठे हुए उस पुरुष ने नीचे की ओर देखा, तब उसे सर्वत्र प्रलय का जल हिलोरें लेता हुआ दिखाई दिया और जब उसने ऊपर की ओर दृष्टि डाली, तब उसे हिमालय पर सर्वत्र बर्फ ही बर्फ दिखाई दी। इन दोनों में से जल तो बह रहा था, इसलिए वह तरल था, और बर्फ जमी हुई थी, इसलिए वह सघन थी। वस्तुतः जल और बर्फ दोनों में एक ही जल नामक मूल पदार्थ की प्रधानता थी। पहला उसका चेतन रूप था, दूसरा जड़ रूप था अर्थात् प्रवहमान होने के कारण जल उस मूल पदार्थ का चेतन रूप था और जमी रहने के कारण बर्फ उस मूल पदार्थ के जड़ रूप को प्रस्तुत करती थी। वैसे दोनों एक ही थे।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जड़ और चेतन को उस एक ही मूल चेतन सत्ता के दो रूप कहा है, क्योंकि वहाँ पर "तत्र आभास-रूपा एव जड़चेतनपदार्थाः" कहकर संसार के समस्त जड़ एवं चेतन पदार्थों को उस परम ब्रह्म या चिति का आभास माना गया है और कहा गया है कि वह चिति या चेतना-शक्ति ही समस्त जड़-चेतन पदार्थों के रूप में यहाँ प्रकट होती है। इसे दार्शनिक भाषा में 'आभासवाद' तथा 'अभेदवाद' कहते हैं। प्रसाद भी इसी विचार से अत्यधिक प्रभावित हैं। इसीलिए 'जनमेजय का नागयज्ञ' नामक नाटक में आपने लिखा है कि "जिन पदार्थों की शक्ति अप्रकाशित रहती है, उन्हें लोग जड़ कहते हैं, किन्तु देखो, जिन्हें हम जड़ कहते हैं, वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते हैं तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है, स्पन्दन होता है, जिसे जड़ता नहीं कह सकते। वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है, जड़ता कहाँ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है। यदि तुम कहो कि इनका तो नाश होता है और चेतन की सदैव स्फूर्ति रहती है, तो यह भी भ्रम है। सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाय, किन्तु उसका नाश नहीं होता। .....उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती और न उसका चेतनमय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक 'अद्वैत' है। यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है।"

—जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १३

(२) ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी भास्कराचार्य ने भी जगत् के समस्त जड़-चेतन पदार्थों को चिन्मय या चेतन ही बतलाया है। उनका कहना है कि चेतन ब्रह्म का समस्त परिणाम भी चेतन ही है। परन्तु वह चैतन्य सभी वस्तुओं में एक सा दिखाई नहीं देता। इसीलिए किसी में उसकी अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष गोचर है, जैसे जीव में और

किसी में वह सर्वथा अगोचर है, जैसे पत्थर में। इसीलिए इनको चेतन और जड़ कहकर पुकारने लगते हैं। (भास्कर भाष्य)

(३) इन पंक्तियों में आधुनिक विज्ञान की "थ्योरी ऑव दी कन्वरटेबिलिटी ऑव मैटर" की ओर भी संकेत मिलता है।

(४) भारतीय दार्शनिकों के मत से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पाँच मूल तत्त्व हैं। प्रसाद ने 'एक तत्त्व' कहकर यहाँ जल-तत्त्व की प्रधानता बताई है, क्योंकि जमी हुई बर्फ और बहता हुआ पानी दोनों एक जल-तत्त्व के ही दो रूप हैं। इस कथन की पुष्टि ऋग्वेद के नासदीय सूक्त से भी हो जाती है क्योंकि वहाँ पर भी "तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्" कहकर सृष्टि के आरम्भ में सर्वत्र जल ही जल फैला हुआ था—यह स्वीकार किया गया है।

(५) पंतजी ने भी इसी तरह लिखा है :—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास। —पल्लव, पृ० ८७

(६) यहाँ पर १६ और १४ मात्राओं की यति से ३० मात्रा वाला ताटंक छंद अपनाया गया है। इस तरह सम्पूर्ण सर्ग में जहाँ ३१ मात्राएँ हैं वहाँ वीर छंद है और जहाँ ३० मात्राएँ हैं वहाँ ताटंक छंद है।

दूर-दूर ... . फिरता पवमान।

शब्दार्थ—विस्तृत=विस्तार के साथ फैला हुआ। स्तब्ध=नीरव, शान्त। शिला चरण=पर्वत श्रेणी का निम्न प्रदेश। पवमान=वायु।

व्याख्या—उस हिमालय पर्वत के ऊपर बर्फ बहुत दूर तक विस्तारपूर्वक फैली हुई थी और उस बर्फीले प्रदेश में पूर्णतया शान्ति छाई हुई थी, क्योंकि उस चुपचाप बैठे हुए पुरुष के शान्त हृदय की भाँति वह बर्फ भी पूर्णतया शान्त थी, परन्तु पर्वत के निचले भाग में वायु चल रही थी, जो नीरवता के समान फैले हुए शान्त पर्वत के निचले भाग से टकरा रही थी।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने 'दूर-दूर' शब्दों द्वारा स्वर-मैत्री का प्रयोग करते हुए ऊकार की दीर्घता द्वारा हिमालय के ऊपर जमी हुई बर्फ के विस्तार की उपयुक्त सूचना दी है।

(२) इन पंक्तियों में आधुनिक विज्ञान द्वारा प्राप्त बातों का भी संकेत विद्यमान है; क्योंकि हिमालय पर्वत की अधिक ऊँचाई पर वायु नहीं है, वहाँ केवल नीरव हिम का ही साम्राज्य है, परन्तु नीचे की ओर आने पर वायु के दर्शन होते हैं। इसी कारण कवि ने यहाँ वायु को पर्वत-शिला के चरणों से टकराता हुआ कहा है और इसी से यह भी सिद्ध है कि वह पुरुष पर्वत की चोटी के सर्वोच्च भाग पर नहीं बैठा था, अपितु निचले भाग पर ही किसी ऊँची शिला की छाया में बैठा था, जहाँ उसे प्राण-वायु मिल रही थी।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(३) हिम को हृदय के समान स्तब्ध कहकर पूर्णोपमा अलंकार अपनाया गया है। पर्वत को नीरवता के समान कहकर धर्मलुप्तालुप्तोपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है तथा यहाँ छायावादी प्रवृत्ति के अनुसार मूर्त शिला के लिए अमूर्त नीरवता जैसे उपमान का प्रयोग करके कवि ने उपचार-वक्रता को भी अपनाया है। 'दूर-दूर' में पुनरुक्ति अलंकार है।

तरुण तपस्वी ... ... सकरुण अवसान।

शब्दार्थ—तरुण=युवा। श्मशान-साधन=इच्छित सिद्धि की प्राप्ति के हेतु श्मशान-भूमि में बैठकर भूत, प्रेत, काली, चामुण्डा आदि को प्रसन्न करने के लिए तांत्रिक पद्धति से की जाने वाली साधना। प्रलय-सिन्धु=प्रलय करने वाले जल-प्लावन द्वारा बना हुआ समुद्र। सकरुण=करुणा-सहित। अवसान=विराम, समाप्ति, शान्त होना।

व्याख्या—हिमालय की उन्नत चोटी पर शान्ति के साथ बैठा हुआ वह पुरुष ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी युवा तपस्वी की तरह देवताओं की श्मशान-भूमि में बैठकर अपनी किसी अभीष्ट-सिद्धि के लिए साधना कर रहा हो और हिमालय पर्वत के समस्त पदार्थों को नष्ट करने वाले जल-प्लावन द्वारा बने हुए सागर की उत्ताल तरंगें अत्यन्त करुणा के साथ दूसरों पर दया दिखाती हुई-सी शान्त होती जा रही थीं, क्योंकि अब वे लहरें विध्वंस के कार्य को छोड़कर हृदय में करुणा धारण करती हुई अधिक ऊँची न उठकर धीरे-धीरे बह रही थीं।

टिप्पणी—(१) कवि प्रसाद ने कामायनी की इन प्रारम्भिक सोलह पंक्तियों में हिमालय पर्वत के ऊपर और नीचे की स्थिति का साथ-साथ वर्णन किया है।

(२) यहाँ पर कवि का अभिप्राय वातावरण की शान्ति के साथ-साथ अकेले बैठे हुए चिन्ता-निमग्न मनु की स्थिति के चित्रण से है। इसी कारण कवि ने मनु को एक तपस्वी के समान तपस्या करते हुए कहा है, जो सर्वथा उपयुक्त है और जिसके द्वारा पाठक अनायास ही मनु की चिन्तन-मनन-युक्त स्थिति से अवगत हो सकते हैं।

(३) 'लहरों के सकरुण अवसान' द्वारा कवि ने यह सूचित किया है कि पहले ये लहरें प्रचंड एवं उग्र होकर देव-जाति के समस्त वैभव का विनाश कर रही थीं, परन्तु अब वे करुणशील होकर शान्त होती जा रही थीं।

(४) प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार है तथा 'सकरुण अवसान' में मानवीकरण अलंकार है।

उसी तपस्वी .... रहे अड़े।

शब्दार्थ—देवदारु=हिमालय पर्वत पर पैदा होने वाला एक प्रसिद्ध वृक्ष। दो चार=थोड़े से। धवल=सफेद। ठिठुरे=संकुचित हो गये। रहे अड़े=बिना तनिक भी हिले-डुले खड़े रहे।

व्याख्या—हिमालय पर्वत पर उस तरुण तपस्वी के समान लम्बे-लम्बे कुछ देवदारु के वृक्ष खड़े हुए थे, जो बर्फ से ढक जाने के कारण सफेद हो गये थे और शीत से ठिठुर कर पत्थर के समान अड़कर रह गये थे अर्थात् पत्थर की शिलाओं के समान उन वृक्षों पर भी पर्याप्त बर्फ जमी हुई थी।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने बर्फ से ढके हुए दो-चार देवदारु के वृक्षों का वर्णन करके प्रकृति की नीरवता का सुन्दर चित्रण किया है।

(२) तपस्वी से लम्बे और पत्थर जैसे ठिठुरे और अड़े कहकर कवि ने दोनों स्थानों पर उपमा अलंकार का प्रयोग किया है।

अवयव की .... संचार।

शब्दार्थ—अवयव=शरीर के अंग। दृढ़ मांसपेशियाँ=शरीर के अन्दर परस्पर जुड़े हुए शक्तिशाली मांस-पिंड (muscles)। ऊर्जस्वित=उमड़ा हुआ। वीर्य=शक्ति। स्फीत=समृद्ध, घनी, मोटी। शिराएँ=रक्तवाहिनी नाड़ियाँ। स्वस्थ रक्त=स्वास्थ्यवर्द्धक शुद्ध रक्त। संचार=गमन।

व्याख्या—उस पुरुष के शरीर का प्रत्येक अंग ऐसी सुदृढ़ मांसपेशियों से बना हुआ था, जिनमें अतुलित बल उमड़ रहा था और उसके शरीर की समस्त रक्त-वाहिनी नाड़ियाँ अत्यन्त समृद्ध थीं, जिनमें होकर स्वास्थ्यवर्द्धक विशुद्ध रक्त निरन्तर बहता रहता था।

टिप्पणी—(१) कवि प्रसाद ने अपने कथानायक के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण भारतीय परम्परा के आधार पर किया है, क्योंकि ऋग्वेद में इन्द्र के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसे ओजस्वी (ओजायमान), वज्रबाहु, वृषभ आदि कहा गया है और महाकवि कालिदास ने भी राजा दिलीप के अपार शक्तिमय ओजस्वी शरीर के सौन्दर्य का चित्रण इसी प्रकार किया है :—

> व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
> आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्मइवाश्रितः॥
> सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
> स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥

(२) यहाँ कवि ने दृढ़, ऊर्जस्वित, अपार, स्फीत, स्वस्थ आदि विशेषणों के द्वारा मनु की शरीर-यष्टि के स्वाभाविक सौंदर्य की अभिव्यक्ति की है। अतः यहाँ विशेषण-वक्रता का चमत्कार विद्यमान है। साथ ही भावात्मक दृश्य बिम्ब भी है।

चिन्ता-कातर .... मधुमय स्रोत।

शब्दार्थ—कातर=व्याकुल, उद्विग्न। वदन=मुख। पौरुष=पुरुषार्थ, पराक्रम। ओतप्रोत=परिपूर्ण। उपेक्षामय=तिरस्कृत। मधुमय स्रोत=मधुर भावों का प्रवाह।

व्याख्या—यद्यपि उस शक्तिशाली पुरुष का मुख चिन्ता के कारण व्याकुल हो

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

रहा था, फिर भी वह पुरुषार्थ एवं पराक्रम की भावना से परिपूर्ण था। इसके अतिरिक्त यद्यपि उसके हृदय में यौवन के मधुर भावों का प्रवाह निरन्तर बह रहा था, फिर भी वह अपनी जाति के विनाश से इतना व्यथित था कि अपने यौवन की मधुर भावनाओं की ओर उसका ध्यान तनिक भी नहीं जाता था।

टिप्पणी—(१) कवि का यह वर्णन पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि शोक के कारण चिंता में डूबे हुए स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को भी अपने पुरुषार्थ तथा हृदय के मधुर भावों का ज्ञान नहीं रहता।

(२) शोकाकुल मनु की सहज स्थिति का चित्रण होने से यहाँ 'सहजा-वाक्य-वक्रता' विद्यमान है।

बँधी महावट ... ... लगी मही।

शब्दार्थ—महावट=विशाल वट-वृक्ष। जल-प्लावन=पानी की बाढ़।

व्याख्या—उस पुरुष की नौका विशाल वृक्ष से बँधी हुई थी। पहले उसके समीप सर्वत्र जल ही जल था, किन्तु अब जल की बाढ़ उतरने लगी थी और कुछ पृथ्वी भी निकल आई थी, जिससे अब वह नाव सूखी भूमि पर पड़ी हुई थी।

टिप्पणी—प्रसाद ने यहाँ 'महावट' से नौका को बाँधने का जो उल्लेख किया है, उसका मूल आधार शतपथ-ब्राह्मण है। क्योंकि शतपथ-ब्राह्मण में ही "वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व" कहकर वृक्ष से नाव के बाँधने का वर्णन किया गया है, जबकि महाभारत में मनु की नौका का पर्वत के शिखर से बाँधे जाने का उल्लेख मिलता है और इसी कारण उस शिखर का नाम "नौबन्धन" बताया गया है। (देखिए, वनपर्व, अध्याय १८७।५०)। किन्तु महाभारत में प्रलय के समय इस 'महावट' के बचे रहने का उल्लेख भी मिलता है (देखिए, वनपर्व, अध्याय १८८।९०-९२)। इसी कारण प्रसाद ने शतपथ-ब्राह्मण के वृक्ष को 'महावट' कहा है।

निकल रही ... ... पहचानी सी।

शब्दार्थ—मर्म-वेदना=हृदय की गहन पीड़ा। करुण-विकल कहानी=ऐसी कहानी, जिसमें करुणा की अधिकता होती है और जिसकी करुणापूर्ण घटनाओं को सुनकर सुनने वालों के हृदय में भी व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है।

व्याख्या—उस पुरुष के हृदय की गहन वेदना अभी तक उसके हृदय में ही छिपी हुई थी, किन्तु अब अपनी करुणा-पूर्ण घटनाओं से व्याकुल बना देने वाली कहानी के समान वह हृदय की गहन वेदना शब्दों का रूप धारण करके हृदय से बाहर निकलने लगी। परन्तु उसके हृदय की कथा को सुनने वाला वहाँ था कौन! अकेली प्रकृति ही उसकी कहानी सुन रही थी, जिससे उसका अत्यन्त प्राचीन परिचय था और जो उसकी कथा सुनकर हँसती हुई सी प्रतीत होती थी।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ मनु की 'मर्म-वेदना' को करुणा-विकल कहानी' के समान कहकर यह बात स्पष्ट की है कि मनु के हृदय की इस वेदना में अनन्त

वैभव-सम्पन्न देव जाति के विनाश की कथा भरी हुई है और जो एक ऐसी कहानी है जिसकी करुणापूर्ण घटनाओं को सुनकर हृदय व्याकुल हो उठता है।

(२) कवि ने मनु की इस हृदय-विदीर्णकारी मर्म-कथा को सुनकर भी चिर, परिचित प्रकृति को हँसता-सा कहा है। इसका मूल कारण यह है कि प्रकृति तो यह अच्छी तरह जानती है कि देव-जाति कितनी उन्नत एवं वैभव-सम्पन्न थी और उसके दंभ एवं अहंकार के कारण ही प्रकृति ने उस जाति का विनाश किया है। अतः मनु का पुनः अपनी जाति के बल-वैभव का वर्णन करना और उसके विनाश का उल्लेख करना प्रकृति के लिए कोई नई बात नहीं है। इसी कारण कवि प्रसाद ने मनु के इस अरण्य-रोदन को सुनने वाली प्रकृति को 'हँसती-सी', 'पहँचानी-सी' कहा है। वैसे सुनना, हँसना और पहँचानना मानवीय चेतन क्रियाएँ हैं, परन्तु जड़ प्रकृति के साथ इनका प्रयोग करके कवि ने क्रिया-विचलन को अपनाया है।

(३) 'करुणा-विकल कहानी' में विशेषण-विपर्यय अलंकार है, क्योंकि कहानी कभी करुणा से विकल नहीं होती, अपितु कहानी कहने वाला या सुनने वाला उसके करुणापूर्ण अंशों को कहकर या सुनकर व्याकुल होता है। दूसरे, यहाँ उपमा अलंकार है, क्योंकि अमूर्त्त 'मर्म-वेदना' की समानता अमूर्त्त 'करुणा-विकल कहानी' से की गयी है। तीसरे, हँसती हुई प्रकृति को कहानी सुनने में लीन कहकर कवि ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। शैली विज्ञान की दृष्टि से यहाँ 'विकल' शब्द विशेषण-विचलन का द्योतक है।

ओ चिन्ता ... ... मतवाली।

शब्दार्थ—व्याली=सर्पिणी। ज्वालामुखी=वह पहाड़, जिसकी चोटी के पास किसी गड्ढे में जलता हुआ तरल पदार्थ, लावा, जलती गैस आदि बाहर निकलती हैं। स्फोट=फूटकर निकलना। भीषण=भयंकर। कम्प=काँपना, हलचल। मतवाली=उन्मत्त।

व्याख्या—वैभव-सम्पन्न निश्चित देव-जाति के मनु को आज अपनी जाति के सर्वनाश के कारण प्रथम बार चिन्ता का अनुभव हुआ है। इसलिए वे इस चिन्ता-मनोभाव को संबोधन करके कहते हैं कि अरी चिन्ता! तू आज प्रथम बार मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न हुई है। परन्तु तू बड़ी भयंकर है, क्योंकि इस संसार रूपी वन में तू सर्पिणी के समान भय उत्पन्न करने वाली है, अर्थात् जिस प्रकार किसी सर्पिणी के छिपे रहने के कारण किसी वन में स्वच्छन्दतापूर्वक आनन्द से विचरण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार तेरे कारण इस संसार में आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करना कठिन है। इतना ही नहीं, तू बड़ी उन्मत्त है और अपनी उन्मत्तता से लोगों के हृदय में ऐसा कम्पन उत्पन्न कर देती है जैसा कि ज्वालामुखी पर्वत के प्रथम भयंकर विस्फोट के समय धरातल पर होता है और जिसे लोग भूकम्प कहा करते हैं।

टिप्पणी—(१) चिन्ता-मनोभाव का यह सारा वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है, क्योंकि चिन्ता के उत्पन्न होते ही मानव-जीवन में भय, हलचल, कम्पन आदि उत्पन्न होते हैं। यहाँ चिन्ता का भाव-बिम्ब चित्ताकर्षक है।

(२) 'पहली रेखा' और 'प्रथम कम्प' कहकर कवि ने इस बात की सूचना दी है कि वैभव-सम्पन्न देव-जाति के पुरुष मनु को इससे पूर्व कभी चिन्ता का अनुभव नहीं हुआ था और इसी कारण उनके लिए यह पहला ही मनोभाव था जिसने पहले-पहल मनु के हृदय में हलचल उत्पन्न की थी।

(३) 'विश्व-वन की व्याली' में परम्परित रूपक है, क्योंकि विश्व में वन का आरोप किया गया है और उसी के आधार पर चिन्ता में व्याली का आरोप किया गया है। दूसरे, 'प्रथम कम्प सी' में उपमा अलंकार है। साथ ही यहाँ 'ओ', 'अरी' जैसे विस्मयादि बोधक शब्दों में रूप-समानान्तरता का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

(४) चिन्ता नामक अमूर्त्त मनोभाव में 'व्याली' आदि मूर्त्त पदार्थों का आरोप करके कवि ने चिन्ता के सम्पूर्ण वर्णन में 'उपचार-वक्रता' का भी सुन्दर प्रयोग किया है जिसे प्रसाद छायावाद की एक विशेषता बताते हैं। (देखिए, 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में संकलित 'छायावाद' निबन्ध, पृ०१२८।)

हे अभाव ... ... चल रेखा।

शब्दार्थ—चपल बालिके=चंचल पुत्री। ललाट=भाग्य। खल-लेखा=कुलेख या बुरे अंक। हरी भरी सी=किंचित् आशापूर्ण। दौड़-धूप=भरपूर उद्योग, जोरदार कोशिश। जल-माया=जल का मिथ्या रूप या मृग-मरीचिका का जल। चल रेखा=चंचल लहर।

व्याख्या—अरी चिन्ता! तू अभाव की चंचल पुत्री है, क्योंकि तू सदैव अभाव के कारण ही उत्पन्न होती है। अरी, तू मानव के भाग्य की दुष्ट रेखा है, क्योंकि तेरे उदय होते ही मानव को बुरे अक्षरों में लिखे हुए अपने दुर्भाग्य की सूचना मिल जाती है। अरी, तू किंचित् आशा से भरी हुई दौड़-धूप है, क्योंकि तेरे उत्पन्न होते ही मनुष्य आशा और निराशा के बीच भटकता हुआ प्रयत्न करता रहता है। अरी, तू मृग-मरीचिका के जल की मिथ्या एवं चंचल लहर है, क्योंकि जिस तरह मरु-प्रदेश में जल की इच्छा से प्यासा मृग सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने वाले जल के आभास को सत्य मानकर पानी के लिए भटकता फिरता है, उसी प्रकार मानव चिन्ता में फँसकर इस संसार में भटकता रहता है।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ क्रमशः चिन्ता की उत्पत्ति, उसका स्वरूप तथा उसके कार्यों की सुन्दर व्याख्या करते हुए चिन्ता का मार्मिक भाव-बिम्ब अंकित किया है।

(२) प्रायः संसार में तीन प्रकार की दौड़-धूप होती हैं—सूखी दौड़-धूप, हरी भरी दौड़-धूप और हरीभरी-सी दौड़-धूप। सूखी दौड़-धूप से अभिप्राय ऐसी दौड़-धूप से है जो पूर्णतया निष्फल होती है। हरी-भरी दौड़-धूप से अभिप्राय पूर्णतया सफल दौड़-धूप से है और हरी-भरी-सी दौड़-धूप वह कहलाती है। जिसमें मनुष्य आशा-निराशा के बीच दौड़ता रहता है और सफलता प्राप्त नहीं करता। यहाँ चिन्ता को कवि ने तीसरी प्रकार की दौड़-धूप बताया है, जिसमें चिन्ता का व्यापार पूर्णतया स्पष्ट हो गया है, क्योंकि हरी-भरी-सी दौड़-धूप के समान ही मनुष्य चिन्ता में सदैव आशा-निराशा के झूले पर झूलता रहता है।

(३) चारों पंक्तियों में निरंगरूपक तथा उल्लेख अलंकार हैं।

इस ग्रह-कक्षा .... बहरी।

शब्दार्थ—ग्रह-कक्षा=ग्रहों के भ्रमण का मार्ग। तरल=द्रव। गरल=विष। लघु लहरी=छोटी तरंग। जरा=वृद्धावस्था। अमर जीवन=अविनाशी या जरा रहित युवा जीवन। बहरी=जिसे कुछ सुनाई न दे।

व्याख्या—अरी चिन्ता! तू ग्रहों के भ्रमण-मार्ग में भी हलचल उत्पन्न करने वाली है, अर्थात् तू केवल पृथ्वी पर ही हलचल नहीं मचाती, अपितु नक्षत्र-लोक में भी हलचल पैदा कर देती है, जिससे सभी ग्रह-उपग्रह रात-दिन चक्कर लगाते हुए दिखाई देते हैं। तू द्रव या घुले हुए विष की छोटी लहर है, अर्थात् जिस प्रकार विष-पान कर लेने पर शरीर में पीड़ा की लहरें उठने लगती हैं उसी प्रकार तेरे उदय होते ही मस्तिष्क में व्यथा की तरंगें उठने लगती हैं। तू अविनाशी अथवा वृद्धावस्था से विहीन युवा जीवन की वृद्धावस्था है, अर्थात् चिन्ता के कारण मनुष्य समय से पूर्व ही वृद्ध जैसा दिखाई देने लगता है। और हे चिन्ता! तू किसी भी व्यक्ति की कोई भी बात न सुनने वाली बिल्कुल बहरी है, अर्थात् तू अपने अनुकूल परिस्थिति देखकर सभी दुर्बल और सबल व्यक्तियों के मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाती है तथा किसी के निषेध आदि को नहीं सुनती।

टिप्पणी—(१) चिन्ता को 'ग्रह-कक्षा की हलचल' कहकर कवि ने मनु की मानसिक स्थिति का चित्रण किया है, क्योंकि जिस तरह चिन्ता ने उनके सम्पूर्ण शरीर में हलचल पैदा की है, उसी तरह वे यह समझते हैं कि चिन्ता के कारण ही सूर्य, चन्द्र, तारागण दिन-रात घूमते रहते हैं।

(२) विष की लघु लहर तथा वृद्धावस्था कहकर कवि ने चिन्ता के द्वारा उत्पन्न होने वाली शारीरिक हलचल तथा उसके परिणाम का अच्छा दिग्दर्शन कराया है, क्योंकि नाना प्रकार की चिन्ताओं में लीन व्यक्ति असमय में ही वृद्ध हो जाता है।

(३) चारों पंक्तियों में निरंगरूपक तथा उल्लेख अलंकार हैं। इसके अतिरिक्त 'जरा अमर जीवन की' पद में विरोधाभास अलंकार भी है; क्योंकि देवों के जीवन को अजर-अमर कहा गया है और उस जरा-हीन जीवन में भी जरा का प्रवेश दिखाने के कारण यहाँ विरोधाभास है। यहाँ भी चिन्ता का सजीव भाव-बिम्ब अंकित हुआ है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अरी व्याधि .... सुन्दर पाप ।

शब्दार्थ—व्याधि=शारीरिक पीड़ा । सूत्रधारिणी=सूत्र धारण करने वाली अथवा आरम्भ करने वाली । आधि=मानसिक पीड़ा । मधुमय=माधुर्यपूर्ण । अभिशाप=अनिष्ट करने वाली । गगन=आकाश । धूमकेतु=पुच्छलतारा । पुण्यसृष्टि=मंगलमय जगत् । सुन्दर पाप=ऐसा अमांगलिक कर्म जो केवल देखने में ही सुन्दर हो ।

व्याख्या—अरी चिन्ता ! तू समस्त शारीरिक पीड़ाओं को आरम्भ करने वाली है, क्योंकि तेरे कारण ही शरीर को नाना प्रकार के दुःख, रोग आदि सताया करते हैं । तू ही मानसिक पीड़ा है, क्योंकि तेरे उदय होते ही समस्त मानसिक हलचलें, मानसिक रोग आदि उत्पन्न होते हैं । अरी चिन्ता ! तू माधुर्यपूर्ण अभिशाप है, क्योंकि जिस समय तू उत्पन्न होती है, उस समय तो मधुर प्रतीत होती है, परन्तु तेरा परिणाम सदैव अनिष्टकर होता है । तू हृदय-रूपी आकाश में पुच्छलतारे के समान उदित होती है, क्योंकि जिस तरह आकाश में पुच्छलतारे के उदय होने पर कोई न कोई अमंगलकारी घटना होती है उसी तरह हृदय में चिन्ता के उदय से भी पीड़ा, बेचैनी, व्यग्रता आदि अमंगल होते हैं । इतना ही नहीं, तू इस पुण्यमय जगत् में ऐसा पाप है, जो केवल देखने मात्र के लिए सुन्दर है, किन्तु जिसका परिणाम अन्य पापों की भाँति सदैव अमंगलकारी ही होता है ।

टिप्पणी—(१) इन पंक्तियों में कवि ने चिन्ता के परिणाम का यथार्थ चित्रण किया है, क्योंकि चिन्ता के कारण ही राजयक्ष्मा, क्षय, उन्माद, अपस्मार आदि अनेक रोग हो जाते हैं । प्रायः मानसिक रोग तो चिन्ता के कारण ही होते हैं । जैसे कि चरकसंहिता में भी लिखा है कि "चिन्तोद्वेगादिभि···जनयन्ति उन्मादम् ।" अर्थात् चिन्ता, उद्वेग आदि के कारण उन्माद का रोग उत्पन्न हो जाता है (चरकसंहिता, निदान-स्थान, अध्याय ७) और "यदा हृदयमिन्द्रियायतनानि चेरिताः········चिन्तोद्वेगादिभिर्भूयः सहसाऽभिपूरयन्ति तदा जन्तुरपस्मरति ।" अर्थात् जब चिन्ता, उद्वेग आदि प्रेरित होकर हृदय और इन्द्रियस्थानों को पुनः सहसा आक्रान्त कर लेते हैं तब प्राणी को अपस्मार होता है । (चरकसंहिता, निदान-स्थान, अध्याय ८)

(२) 'सूत्रधारणी', 'अभिशाप' और 'पाप' में में निरंगरूपक अलङ्कार है । 'हृदय-गगन में धूमकेतु-सी' पद में रूपक तथा उपमा दोनों अलङ्कार हैं । साथ ही 'मधुमय अभिशाप' और सुन्दर पाप' में विरोधाभास अलङ्कार है । यहाँ भी चिन्ता का मार्मिक बिम्ब अंकित हुआ है ।

(३) यहाँ पर चिन्ता के लिए 'अभिशाप', 'धूमकेतु' और 'पाप' ये तीन उपमान आये हैं, जिनमें लिंगदोष है; क्योंकि चिन्ता स्त्रीलिंग है, जबकि ये उपमान पुल्लिंग हैं । परन्तु ये सभी नये उपमान हैं जो 'चिन्ता' के लिए प्रयुक्त हुए हैं । अतः शैली विज्ञान की दृष्टि से इनमें उपमा-विचलन विद्यमान है ।

मनन करावेगी ··· ···· है नींव ।

शब्दार्थ—निश्चिन्त जाति=वैभव-सम्पन्न देव-जाति । अमर=देवता ।

गहरी नींव डालना=अच्छी तरह कार्य आरम्भ करना अथवा पूर्णतया अपना प्रभाव डालना ।

व्याख्या—अरी चिन्ता ! तू मुझसे और कितना चिन्तन करायेगी ! अरे मैं तो उस देव-जाति का प्राणी हूँ, जो अत्यन्त वैभव-सम्पन्न होने के कारण कभी चिंतन करना जानती ही न थी और जो अनन्त शक्तिशालिनी होने के कारण अमर कहलाती थी, किन्तु आज क्या चिन्ता के कारण उसी अमर-जाति का जीव मृत्यु को प्राप्त होगा ? अरी तू मेरे हृदय में अपना कितना गहरा प्रभाव डालती चली जा रही है ?

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने 'निश्चिन्त जाति' कहकर देवों के अपार बल-वैभव और समृद्धि आदि की ओर संकेत किया है, क्योंकि अनन्त शक्ति एवं अनन्त वैभव के कारण ही देवगण सदैव निश्चित रहते थे ।

(२) 'निश्चिन्त जाति के जीव का मनन करना' तथा 'अमर मरेगा क्या' इन पदों में विरोधाभास अलङ्कार है ।

आह ! घिरेगी .... ··· घन-सी ।

शब्दार्थ—लहलहे=हरे-भरे । करका-घन=ओलों की वर्षा करने वाले बादल । अन्तरतम=आन्तरिक भाग या हृदय । निगूढ़ घन=गहरा गढ़ा हुआ धन ।

व्याख्या—अरी चिंता ! मुझे खेद है कि तू अब मानवों के आनन्द और उल्लास को नष्ट करने के लिए उनके हृदय में इस तरह घिरी रहेगी जिस तरह लहलहाते हुए खेतों पर ओलों की वर्षा करने वाले बादल घिर आते हैं । इतना ही नहीं, तू अब सभी व्यक्तियों के हृदय में गहरे गढ़े हुए धन की भाँति सदैव छिपी रहेगी ।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ चिन्ता को 'करका-घन' के समान कहकर यह स्पष्ट किया है कि ओलों की वर्षा से जिस तरह लहलहाती हुई खेती नष्ट हो जाती है, उसी तरह चिन्ता से भी व्यक्तियों के समस्त आनन्द और उल्लास नष्ट हो जाते हैं ।

(२) कवि ने चिन्ता को 'निगूढ़ धन' के समान कहकर इस बात की ओर संकेत किया है कि इस सृष्टि में कोई भी व्यक्ति चिन्ता-रहित नहीं होता, सभी के हृदय में यह चिंता-मनोभाव किसी न किसी अभाव के कारण उत्पन्न होकर सदैव छिपा रहता है ।

(३) हृदय लहलहाते खेतों में रूपक अलङ्कार है और 'करका-घन सी' तथा 'निगूढ़ धन-सी' पदों में उपमा अलङ्कार है ।

बुद्धि, मनीषा ··· ··· तेरा काम ।

शब्दार्थ—मनीषा=इच्छा । तेरा कुछ काम नहीं=तेरी कोई आवश्यकता नहीं ।

व्याख्या—अरी चिन्ता ! तू बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता आदि अनेक

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

249

नामों से पुकारी जाती है, क्योंकि बुद्धि का कार्य है निश्चय करना और चिंतन या मनन किये बिना कभी कोई निश्चय नहीं होता। अतः जो कार्य चिन्ता का है उसी का आश्रय बुद्धि भी लेती है। इसी कारण चिन्ता को 'बुद्धि' कहा है। मनीषा का कार्य है इच्छा करना या विचार करना और इच्छा या विचार के लिए भी चिंता या मनन अपेक्षित है। इसीलिए चिंता 'मनीषा' भी कहलाती है। मति का कार्य है मत या राय देना, परन्तु राय देने का कार्य भी बिना चिंतन या मनन के हो नहीं सकता। इसी से चिंता को 'मति' कहा गया है; और आशा का कार्य है किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए किंचित् विश्वास या भरोसा दिलाना और इसी विश्वास या भरोसे के बल पर आशा किसी व्यक्ति को उलझन में डाल देती है। यही किंचित् विश्वास या भरोसा दिलाकर उलझन में डालने का कार्य चिन्ता का भी है। इसी कारण इसे 'आशा' कहा गया है। इसके उपरान्त मनु कहते हैं, अरी चिन्ता ! तू पापमयी और अनिष्ट-रूपा है। इसलिए मेरे हृदय को छोड़कर शीघ्र भाग जा या कहीं चली जा, क्योंकि यहाँ, मेरे मस्तिष्क में, तेरे ठहरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर चिंता के व्यापार की ओर ध्यान देने के कारण कवि ने उसे बुद्धि, मनीषा आदि कहा है। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—"मतिर्मननं तर्को मन्तव्य विषय आदरः" अर्थात् मति का अर्थ है मनन, तर्क और मंतव्य विषय के प्रति आदर (७।१८।१)। 'आशाप्राप्तवस्त्वाकांक्षा, आशातृष्णा काम इति यस्याहुः पर्यायैः" अर्थात् अप्राप्त वस्तु की इच्छा का नाम आशा है और तृष्णा व काम इसके पर्यायवाची हैं (छां० उ० ७।१४।१)। यहाँ 'बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता' नामक पाँच वाक्यांशों को भाषिक साम्य के आधार पर रखकर वाक्यांशीय समानान्तरता का सुन्दर प्रयोग किया है।

(२) यहाँ चिन्ता को 'पापिनी' न कहकर पुनः 'पाप' कहा है। इसीलिए यहाँ भी लिंगत्व दोष आ गया है।

विस्मृति आ ... ... मेरा भर दे।

शब्दार्थ—विस्मृति=विस्मरण, भूल। अवसाद=उदासीनता, शिथिलता। नीरवता=शान्ति। चेतनता=ज्ञान, होश। जड़ता=अज्ञान, बेहोशी। शून्य=रिक्तस्थान या हृदय।

व्याख्या—मनन करते-करते मनु चिन्ता के कारण दुःखी हो गये हैं। इसीलिए अब वे कहते हैं कि हे विस्मृति ! तुम मेरे समीप आओ, जिससे मैं अतीत की सभी घटनाओं को भूल जाऊँ। अरे अवसाद ! तुम मुझे आकर चारों ओर से घेर लो, जिससे मैं शिथिल हो जाऊँ और अतीत का चिन्तन न कर सकूँ। अरी नीरवते ! तू बस मुझे चुप कर दे, जिससे मैं और अधिक न कुछ कह सकूँ और न कुछ सुन सकूँ तथा हे चेतनते ! तू भी मेरे निकट मत रह, अपितु मेरे रिक्त हृदय को बेहोशी से भरकर कहीं दूर चली जा, जिससे मैं चेतनाहीन होकर शान्ति का अनुभव करूँ।

टिप्पणी—(१) इन पंक्तियों में कवि ने चिन्ता से व्यथित व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, क्योंकि चिन्ता में अधिक उलझे हुए व्यक्ति की यही दशा होती है कि वह शराब पीकर या किसी प्रकार से बेहोश होकर चिन्ता को भूलने का प्रयास किया करता है।

(२) इन पंक्तियों में कामायनी की कथावस्तु का 'बीज' विद्यमान है, क्योंकि यहाँ पर मनु सचेतनता या चिन्ता आदि को दूर भगाकर, विस्मृति एवं जड़ता का आह्वान करते हुए अपने हृदय में शून्यता भरना चाहते हैं, जिससे उनके हृदय की समस्त हलचल शान्त हो जाय और उन्हें चिरशान्ति या आनन्द प्राप्त हो सके। कामायनी का मुख्य 'कार्य' भी आनन्द की प्राप्ति है। अतः इन पंक्तियों में मनु इसी आनन्द के लिए बेचैन दिखाई देते हैं और इसी कारण यहाँ 'बीज' नामक अर्थ-प्रकृति है।

चिन्ता करता .... दुःख की।

शब्दार्थ—अतीत=बीता हुआ समय। अनन्त=हृदय (लक्षणा)।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि मैं अपने बीते हुए समय की जितनी अधिक चिंता करता हूँ अथवा मुझे अपने वैभव-सम्पन्न जीवन के सुखों की जितनी अधिक याद आती है, उतनी ही अधिक मेरे हृदय में दुःख की रेखाएँ बनती जाती हैं, अर्थात् बीते हुए सुखमय दिवसों का स्मरण मुझे अधिक से अधिक बेचैन बना रहा है।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने 'अनन्त' शब्द का प्रयोग लक्षणा के सहारे 'हृदय' के लिए किया है, क्योंकि जिस तरह आकाश अनन्त होता है, उसी तरह हृदय भी अनन्त भावों का भण्डार है। अतः 'हृदय' के लिए 'अनन्त' का प्रयोग साभिप्राय है और यहाँ जहत्स्वार्था लक्षणा या लक्षणलक्षणा है। साथ ही यहाँ शैली-विज्ञान की दृष्टि से अर्थ-विचलन का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(२) 'अनन्त' शब्द में परिकरांकुर तथा रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार हैं।

आह सर्ग ... ... मीन हुए।

शब्दार्थ—सर्ग=सृष्टि। अग्रदूत=पहले आने वाले या पहले उत्पन्न होने वाले। भक्षक=नाश करने वाला। रक्षक=रक्षा करने वाला। मीन=मछली।

व्याख्या—मनु कहते हैं, हे सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले देवताओ ! तुम अपने मिथ्या अभिमान अथवा उच्छृङ्खलता के कारण अपने अस्तित्व को सदैव बनाये रखने में सफल नहीं हुए, क्योंकि प्रकृति के प्रकोप से जो प्रलय हुई, उसमें तुम सब नष्ट हो गये। अब तुम्हें मैं परस्पर एक-दूसरे का नाश करने वाला कहूँ या रक्षा करने वाला, क्योंकि तुमने अपनी देव-जाति के साथ मछलियों का सा व्यवहार किया। जिस तरह समुद्र में बड़ी मछली अपने जीवन की रक्षा के लिए दूसरी छोटी मछलियों को खा जाती है और उस बड़ी मछली को उससे भी अधिक बड़ी और शक्तिशाली मछली खा जाती है, उसी तरह तुमने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के

For More Book Download Here- http://GKTrickHindi.com

लिए अथवा अपनी जाति की रक्षा के लिए जो-जो कार्य किये वे कार्य ही तुम्हारे विनाश के कारण हो गये।

टिप्पणी—(१) 'सर्ग के अग्रदूत' से कवि का अभिप्राय यह है कि मानव-सृष्टि से पूर्व यहाँ देवसृष्टि थी, जो पहली सृष्टि थी और जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, (११।१।२।१२), जैमिनीय ब्राह्मण (३।३८०-३८१), ऐतरेय ब्राह्मण (२।१।३), वायु-पुराण (६।६३-६४), मार्कण्डेय पुराण (४७।३४), श्रीमद्भागवत पुराण (३।१०।१३।२५) आदि वैदिक तथा लौकिक ग्रन्थों में मिलता है और मनुस्मृति के प्रथम श्लोक में भी इस देव-जाति के व्यक्तियों को 'अग्रजन्मा' कहकर पुकारा गया है—'एतद् शप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मना।' प्रसाद ने उक्त आधारों पर ही देवताओं को 'अग्रदूत' कहा है (देखिए कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० १७६)।

(२) 'केवल अपने मीन हुए' से कवि का अभिप्राय 'मीन-मत्स्य-न्याय' से है, जिसका अर्थ यह है कि जिस तरह बड़ी मछली अपने जीवन की रक्षा के लिए छोटी मछली को खा जाती है, उसी तरह इन्द्र आदि देव-जाति के शक्तिशाली देवताओं ने त्वष्टा, वृत्र आदि देव-जाति के लोगों का विनाश करके अपना साम्राज्य स्थापित किया था। अन्त में इस देव-जाति को भी महान् प्राकृतिक शक्ति ने नष्ट कर दिया।

(३) 'अग्रदूत' शब्द साभिप्राय विशेषण के रूप में आया है। अतः इसमें परिकर अलङ्कार है।

अरी आँधियो .... प्रत्यावर्तन।

शब्दार्थ—बिजली की दिवा-रात्रि=कड़कती हुई बिजली से युक्त बादलों से घिरे हुए दिन और रात। नर्त्तन=नृत्य, किन्तु लक्षणा से अर्थ है उपस्थित रहना। वासना की उपासना=भोग-विलास में लीन रहना। प्रत्यावर्तन=बार-बार लौटकर आना।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि अरी भयङ्कर आँधियो तथा कड़कती बिजली से युक्त बादलो! तुम रात-दिन यहाँ छाये रहे, अर्थात् देवताओं को सावधान करने के लिए पहले आँधियाँ चलीं, फिर कड़कती हुई बिजली से युक्त गरजते हुए बादल दिन-रात घिरे रहे। परन्तु देव-गण भोग-विलास में इतने लीन थे कि उन्होंने प्रकृति के द्वारा दी हुई भावी विनाश की चेतावनी की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। यहाँ तक कि प्रकृति बार-बार आँधी और झंझावात के द्वारा उन्हें सचेत करती रही, किन्तु देवता लोग भोग-विलास में ही डूबे रहे।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने 'नर्त्तन' तथा 'प्रत्यावर्त्तन' शब्दों द्वारा यह संकेत किया है कि प्रकृति ने आँधी और तूफानों द्वारा देवों को विलास-वासना से हटाने के लिए बार-बार प्रयत्न किये थे, किन्तु देव-गण उसे प्रकृति का प्रकोप न समझकर केवल स्वाभाविक वर्षाकाल ही समझते रहे और प्रकृति के इस भयङ्कर

वर्षाकाल को अपनी विलास-वासना के अनुकूल जानकर अधिकाधिक विलास में डूबे रहे।

(२) आँधी तथा बिजली की दिवा-रात्रि के नर्त्तन एवं प्रत्यावर्त्तन में कवि ने मानवीकरण अलङ्कार का प्रयोग किया है। साथ ही यहाँ प्रकृति का सजीव बिम्ब अंकित हुआ है।

मणि-दीपों .... बन गया हविष्य।

शब्दार्थ—मणि-दीप=मणियों के बने हुए दीपक। देव-दम्भ=देवों का मिथ्या अभिमान। महामेध=बड़ा यज्ञ। हविष्य=यज्ञ में आहुति के रूप में डाली गई सामग्री।

व्याख्या—मनु कहते हैं, अरे देवताओ! यद्यपि तुम्हारे भवनों में रात्रि के समय मणियों के दीपक जलते थे, जिनसे रात में भी दिन का सा प्रकाश रहता था और तुम रात-दिन आलोक में रहते थे, फिर भी तुम्हारा भविष्य कितना अन्धकार एवं निराशा से भरा हुआ था; क्योंकि तुम्हारी सम्पूर्ण देव-जाति में मिथ्या अहंकार अधिक मात्रा में बढ़ गया था और उसी मिथ्या अहंकार में सारा वैभव इस तरह भस्म हो गया, जिस तरह एक बड़े यज्ञ की अग्नि में आहुति के रूप में डाली गई सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म हो जाती है।

टिप्पणी—(१) 'मणि-दीपों' से कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि देवगण अत्यन्त समृद्धिशाली थे, उनके घर मणियों से जगमगाते रहते थे और उन्हें तनिक भी अपने जीवन में निराशा न थी; परन्तु प्रलय में नष्ट हो जाने के कारण उसी प्रकाश या आशा से भरी हुई देवजाति का भविष्य अन्धकार या निराशा से परिपूर्ण हो गया।

(२) 'मणिदीपों के अन्धकारमय' पद में विरोधाभास अलङ्कार है तथा देवदम्भ के महामेध में सम्पूर्ण वैभव का हविष्य बन जाना कहकर कवि ने परम्परित रूपक अलंकार का प्रयोग किया है।

अरे अमरता .... दीन-विषाद।

शब्दार्थ—अमरता के चमकीले पुतले=अमरता की झूठी भावना से भरे हुए वैभव-सम्पन्न देवतागण। जयनाद=विजय का स्वर। विषाद=उदासी, शोक।

व्याख्या—अरे अमरता का मिथ्या गर्व करने वाले वैभव-सम्पन्न देवगणो! तुमने अपनी शक्ति द्वारा संसार में जो विजय प्राप्त की थी और तुम्हारी जो विजय-ध्वनि संसार में गूँजा करती थी, आज प्रलय द्वारा तुम्हारा सर्वनाश हो जाने पर तुम्हारी विजय-ध्वनि के वे स्वर प्रलय की लहरों से टकराते हुए प्रतिध्वनि बनकर काँप रहे हैं और ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो उन्होंने दैन्य से भरे हुए शोक का रूप धारण कर लिया हो।

टिप्पणी—(१) 'अमरता के चमकीले पुतले' कहकर कवि ने इस बात की

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ओर संकेत किया है कि देवताओं में अनन्त शक्ति एवं अतुलित वैभव के कारण यह भावना भर गई थी कि हम अमर हैं और हमारा कोई नाश नहीं कर सकता, परन्तु अन्त में उनकी यह भावना मिथ्या सिद्ध हुई और प्रलय में वे अमर (देवता) भी मर गये।

(२) 'जयनाद के प्रतिध्वनि बनकर कांपने' में मानवीकरण अलङ्कार है और अन्तिम पंक्ति में उस जयनाद को 'दीन-विषाद' कहकर कवि ने वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग किया है।

(३) 'पुतलो ! तेरे वे जयनाद' में च्युत-संस्कृति दोष है, क्योंकि 'पुतलो' शब्द बहुवचन में आया है, जबकि 'तेरे' शब्द का प्रयोग एकवचन में ही हुआ है। यहाँ 'तेरे' के स्थान पर 'तुम्हारे' पद होना चाहिए, परन्तु कवि ने मात्रा के बढ़ जाने के भय से 'तेरे' शब्द ही रहने दिया है।

प्रकृति रही .... नद में।

शब्दार्थ—दुर्जेय=जिस पर विजय पाना कठिन हो। पराजित=हारे हुए। मद=अहंकार। भोले=अजान, मूर्ख। तिरते=पानी पर तैरते। नद=समुद्र।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि देवगण प्रकृति पर भी अपना अधिकार करके उसे पराजित करना चाहते थे, किन्तु वे प्रकृति को न जीत सके और स्वयं ही प्रकृति के सम्मुख पराजित हो गये। इसका कारण यह है कि वे अहंकार में सब-कुछ भूल गये। वे मूर्ख थे; क्योंकि वे सब-कुछ छोड़कर केवल विलासिता के समुद्र में ही तैरा करते थे।

टिप्पणी—(१) "प्रकृति रही दुर्जेय" कहकर कवि ने आधुनिक वैज्ञानिकों को भी सचेत किया है और बताया है कि प्रकृति पर विजय पाना सर्वथा कठिन है।

(२) "विलासिता के नद" में रूपक अलङ्कार है। इस रूपक द्वारा कवि ने यह स्पष्ट किया है कि देवगण अहर्निश विलासिता में ही मग्न रहते थे।

वे सब डूबे .... नाद अपार।

शब्दार्थ—विभव=ऐश्वर्य, वैभव। पारावार=सीमाहीन समुद्र। जलधि का नाद=समुद्र की लहरों का गर्जन-तर्जन।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि उसी विलासिता के समुद्र में समस्त देवगण डूब गये, जिससे उनका वैभव भी प्रलय के समुद्र में नष्ट हो गया और उनका सर्वस्व अथाह एवं असीम दुःख-सागर के रूप में बदल गया। आज वही दुःख का सागर घोर गर्जना करता हुआ देवों के सुखों पर ऊँची-ऊँची लहरों के रूप में उमड़ रहा है।

टिप्पणी—'पारावर' शब्द सीमाहीन समुद्र का भाव बताने के लिए विशेष अभिप्राय से प्रयुक्त हुआ है। अतः इसमें परिकरांकुर अलङ्कार है और 'दुःख-जलधि' में रूपक अलङ्कार है।

वह उन्मत्त ... . कलना थी।

शब्दार्थ—उन्मत्त विलास=संयमहीन भोग-विलास की भावना। छलना=धोखा, प्रवंचना। विभावरी=रजनी। कलना=आभा या चमक।

व्याख्या—इन पंक्तियों में मनु देवों के वैभव विलास के बारे में विचार करते हुए कहते हैं कि देवों की वह उन्मत्तता से भरी हुई संयमहीन विलासिता आज कहाँ चली गई ? क्या वह स्वप्न था अथवा धोखा था ? अरे, वह देव-सृष्टि के सुखों की आभा सर्वत्र ऐसी चमकती थी जैसी कि रात्रि के समय असंख्य तारों की आभा आकाश में चमकती है।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने देवों के सुख की तुलना 'विभावरी के तारावों की कलना' से करके यह संकेत किया है कि जिस तरह तारे रात्रि में अपनी आभा फैलाकर प्रभात होते ही छिप जाते हैं, उसी तरह देवों के सुख भी थोड़े ही दिनों में समाप्त हो गये।

(२) 'स्वप्न रहा या छलना थी' पंक्ति में संदेह अलंकार है और 'सुख-विभावरी' में रूपक है।

चलते थे ... . सुख-विश्वास।

शब्दार्थ—सुरभित अंचल=सुगन्धित वस्त्र, किन्तु लक्षणा से उसका अर्थ है सुवासित शरीर। मधुमय निश्वास=आनन्द एवं उल्लास से भरी हुई साँसें। मुखरित=ध्वनित।

व्याख्या—देवगण अपने शरीरों पर सुगन्धित अंगराग लगाते थे और अपने वस्त्रों को पुष्पों की मधुर गंध से सुवासित किया करते थे। इसी कारण उनके वस्त्रों तथा उनकी साँसों से मधुर गंध आया करती थी, जो उनके उल्लास एवं आनन्दमय जीवन की द्योतक थी। इतना ही नहीं, उस देवजाति में अपने आनन्द या सुख का विश्वास इतना सुदृढ़ हो गया था कि वह कोलाहल के रूप में ध्वनित होकर सर्वत्र सुनाई पड़ता था।

टिप्पणी—'सुरभित अंचल से' 'मधुमय निश्वास' के चलने में कवि ने लाक्षणिक पदावली का प्रयोग किया है, क्योंकि कभी अंचल से निश्वास नहीं चलते, अपितु नासिका या मुख से निश्वास चला करते हैं। परन्तु यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि देवों के सम्पूर्ण शरीर से सुमधुर गंध आया करती थी। अतः यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है और गन्ध-संवेदना के द्वारा घ्रातव्य बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

सुख, केवल ... ... होता जितना।

शब्दार्थ—केन्द्रीभूत=केन्द्रित, स्थान-विशेष में एकत्र। छायापथ=आकाश-गंगा, किन्तु लक्षणा से यहाँ छायापथ का अर्थ अंतरिक्ष है। तुषार=हवा में मिली भाप, जो जमकर श्वेतकणों के रूप में पृथ्वी पर गिरती है, कुहासा या कुहरा।

व्याख्या—इन देवताओं ने नाना प्रकार के सुखों का अपने यहाँ संग्रह किया था। वे समस्त सुख देवों के समीप इस तरह केन्द्रित हो गये थे, जिस तरह शीत-

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कालीन प्रभात या सन्ध्या के समय अन्तरिक्ष में भाप के नये-नये श्वेतकणों के पुंजीभूत हो जाने से घना कुहरा छा जाता है।

टिप्पणी—(१) प्रसाद ने 'छायापथ' शब्द का प्रयोग कहीं भी 'बर्फ से ढकी हुई पर्वत-रेखा' के लिए नहीं किया है। कुछ टीकाकारों ने भूल से उक्त अर्थ कर दिया है। उन्हें प्रसाद की 'इन्द्रजाल' कहानी-संग्रह में संग्रहीत 'चित्र वाले पत्थर' नामक कहानी पढ़नी चाहिए, जिसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"समीप ही सफेद चट्टानों पर जलधारा के लहरीले प्रवाह में कितना संगीत था। चाँदनी में वह कितना सुन्दर हो जाता, जैसे इस पृथ्वी का छाया-पथ।"

(२) प्रसाद ने सुख के संग्रह की तुलना घने कुहरे से करके यह संकेत किया है कि जिस तरह अन्तरिक्ष में घना कुहरा अधिक देर नहीं ठहरता और क्षणिक होता है, उसी प्रकार देवों का पुंजीभूत सुख भी स्थायी न रहा, अपितु कुछ ही काल में नष्ट हो गया।

(३) इन पंक्तियों में दृष्टान्त अलङ्कार है।

सब कुछ .... सुख-सञ्चार।

शब्दार्थ—स्वायत्त=अपने अधिकार में। उद्वेलित=उछलती हुई। समृद्धि=उन्नति, अभ्युदय। संचार=गमन, उमड़ना।

व्याख्या—देवताओं ने संसार भर के अनन्त बल, अपार वैभव तथा असीम आनन्द को अपने अधिकार में कर लिया था। इसी कारण उनके अभ्युदय से उत्पन्न होने वाला सुख समुद्र की उछलती हुई स्वच्छन्द लहरों के समान सर्वत्र उमड़ता हुआ सा प्रतीत होता था।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ 'उद्वेलित लहरों' के समान 'सुख-संचार' बताकर यह संकेत किया है कि देवतागण अनन्त वैभव-सम्पन्न होने के बाद उच्छृंखल भी हो गये थे। इन पंक्तियों में 'उपमा' अलङ्कार है।

(२) यहाँ देवों के सर्वत्र अधिकार का जो वर्णन किया गया है उसका उल्लेख ऋग्वेद में इस प्रकार मिलता है :—

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अंतरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२।१०।२॥

कीर्ति, दीप्ति .... आनन्द-विभोर।

शब्दार्थ—कीर्ति=यश। दीप्ति=कान्ति। शोभा=सौन्दर्य। नचती थी=नाचती थी, किन्तु लक्षणा से यहाँ नचती का अर्थ है 'सर्वत्र फैली हुई थी।' अरुण-किरण=सूर्य की किरणें। सप्तसिन्धु=सात समुद्र अथवा विश्व के समस्त महासागर। द्रुम-दल=वृक्षसमूह अथवा सम्पूर्ण वन-प्रदेश। विभोर=लीन।

व्याख्या—देवताओं के यश, कान्ति और सौन्दर्य आनन्द में लीन होकर पृथ्वी की चारों दिशाओं में, सम्पूर्ण समुद्रों के जल-कणों में और सम्पूर्ण वन-प्रदेशों में इस तरह फैल गये थे जिस तरह सूर्य की किरणें इन सभी स्थानों पर फैल जाती हैं।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने देवों की कीर्ति आदि को सर्वत्र नृत्य करती हुई दिखाकर यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी, समुद्र और वन-प्रदेश सभी स्थानों पर देवों का प्रभुत्व था। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार मिलता है—

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ —ऋग्वेद २।१२।७

(२) 'कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती' में मानवीकरण अलङ्कार है और 'अरुण किरण सी' पद में उपमा अलङ्कार है।

शक्ति रही .... आक्रान्त।

शब्दार्थ—पद-तल में=पैरों के नीचे। विनम्र=झुकी हुई। विश्रान्त=थकी हुई, शान्त। कँपती=काँपती थी। आक्रान्त=पराभूत, दबी हुई।

व्याख्या—उन देवताओं में अजेय शक्ति थी। उनकी शक्ति का लोहा मानती हुई प्रकृति भी थककर उनके चरणों में झुक गई थी। इतना ही नहीं, उन देवताओं के चरणों से प्रतिदिन आक्रान्त होने के कारण यह पृथ्वी थर-थर काँपती रहती थी।

टिप्पणी—(१) देवताओं की शक्ति-सम्पन्नता का ऐसा ही वर्णन ऋग्वेद में भी मिलता है, क्योंकि ऋग्वेद (२।१२।२) में लिखा है कि "यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेताम्" अर्थात् इन्द्र के अपार बल को देखकर पृथ्वी और अन्तरिक्ष सभी काँपते थे। "द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते" अर्थात् उस इन्द्र के चरणों में द्यौ और पृथ्वी दोनों झुक जाते थे और उसकी प्रचण्डता को देखकर पर्वत भी भयभीत रहते थे। अतः 'कामायनी' का यह वर्णन वेद-सम्मत है।

(२) 'शक्ति रही हाँ शक्ति' में वीप्सा अलङ्कार है।

स्वयं देव .... की वृष्टि।

शब्दार्थ—देव=सर्वशक्तिसम्पन्न। विश्रृङ्खल=नष्ट-भ्रष्ट। आपदाओं की वृष्टि=आपत्तियों की वर्षा, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ है—अनेक आपत्तियों का आगमन।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि हम देवतागण अपनी अजेय शक्ति के मिथ्या अभिमान में स्वयं को सर्वशक्तिसम्पन्न समझने लगे थे। फिर हमारी सृष्टि नष्ट-भ्रष्ट क्यों न होती? अरे, हमारे इसी मिथ्या अभिमान के कारण अचानक हमारे ऊपर अनेकानेक आपत्तियों की वर्षा होने लगी।

टिप्पणी—(१) 'देव' शब्द पाणिनि के अनुसार क्रीडार्थक 'दिव्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर बना है। निरुक्तकार यास्क ने दानार्थक 'दा' धातु, द्योतनार्थक 'द्युत्' और दीपनार्थक 'दिप्' धातु से 'व' प्रत्यय करके वर्ण का विकार या नाश करके 'देव' शब्द का बनना सिद्ध किया है और वहाँ लिखा है कि "दान और दीपन के लिए जो द्युस्थानगत हों, वे ही देव या देवता हैं।" योगी याज्ञवल्क्य का मत है कि जो दीप्ति

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पाते हैं, क्रीड़ा करते हैं, स्वर्ग में शोभा पाते हैं, द्युति-विशिष्ट हैं, वे ही 'देव' कहलाते हैं। इन सभी गुणों का आरोप मनु की जाति वाले व्यक्तियों ने अपने ऊपर कर लिया था, इसी तथ्य का संकेत कवि ने 'देव' शब्द द्वारा किया है। इतना ही नहीं, आगे चलकर मनु के मुख से यह भी कहलवा दिया है कि—

"देव न थे हम और न ये हैं सब परिवर्तन के पुतले।" (आशा सर्ग, पृ० २५)

(२) यहाँ देव-सृष्टि के विनाश का कारण दे दिया है। अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

गया सभी .... निश्चिन्त विहार।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चाँदनी। स्मित=हँसी। मधुप=भौंरा। विहार=भ्रमण करना।

व्याख्या—मनु कहते हैं, आज उस देव-जाति का सर्वस्व नष्ट हो चुका है। न तो अब देवांगनाओं का माधुर्य्यपूर्ण शृङ्गार कहीं दिखाई देता है, न उषा के समान देवों के यौवन की गुलाबी झलक ही कहीं दिखाई पड़ती है, न चन्द्रमा की उज्ज्वल चाँदनी के समान देवों की हँसी का रूप ही कहीं दिखाई देता है और न विकसित फूलों पर मँडराने वाले भौंरों के समान देवगण अब देवांगनाओं के साथ निश्चिन्त होकर कहीं घूमते हुए ही दिखाई देते हैं।

टिप्पणी—कवि ने यहाँ रंगसाम्य तथा भावसाम्य के आधार पर उपमाओं का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है, क्योंकि उषा के समान यौवन कहकर लाल या गुलाबी रंग का साम्य दिखाया है और ज्योत्स्ना के समान स्मित कहकर श्वेत रङ्ग का साम्य उपस्थित किया है। काव्यशास्त्र में स्मित या हँसी का रङ्ग श्वेत माना गया है। दूसरे यहाँ यथासंख्य अथवा क्रम अलङ्कार भी है, क्योंकि 'उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित' पंक्ति में क्रमशः उषा सा यौवन और ज्योत्स्ना सा स्मित बताया गया है। 'मधुप सदृश निश्चिन्त विहार' में कवि ने भाव-साम्य के आधार पर उपमा अलङ्कार का प्रयोग किया है।

भरी वासना .... उठा कराह।

शब्दार्थ—मदमत्त प्रवाह=उन्मत्तता से भरा हुआ प्रबल वेग। प्रलय-जलधि=सम्पूर्ण पदार्थों को नष्ट करने वाला सीमाहीन समुद्र। संगम=मिलन।

व्याख्या—जिस तरह बाढ़ आ जाने पर कोई नदी अपने प्रबल वेग से तटवर्ती पदार्थों को नष्ट-भ्रष्ट करती हुई अन्त में समुद्र में जा गिरती है, उसी तरह देवों की विलास-वासना भी अपने मदोन्मत्त वेग से देवों का विनाश करती हुई अन्त में प्रलय के अथाह सागर में लीन हो गई अर्थात् विलास के कारण ही देव-सृष्टि का विनाश हो गया। देवों के विलास का यह भयंकर परिणाम देखकर मनु का हृदय कराहने लगा।

टिप्पणी—(१) प्रसाद ने देव-सृष्टि के विनाश का एक कारण उनका निरंतर विलास-वासना में लीन रहना सिद्ध किया है।

(२) यहाँ वासना-सरिता में रूपक अलंकार है।

चिर किशोर ... . अनन्त वसन्त।

शब्दार्थ—चिर किशोर वय=अपने को सदैव युवा समझने वाले। दिगंत का सुरभित रहना=दिशाओं का सुगन्धित रहना, किन्तु लक्षणा से यहाँ इसका अर्थ है सभी दिशाओं में धूम मचना। तिरोहित=छिपना, लुप्त होना। मधु=माधुर्य। अनन्त वसन्त=चिर वसन्त, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ है चिर यौवन।

व्याख्या—मनु देवों के विलास का स्मरण करते हुए कहते हैं कि स्वयं को सदैव युवा समझने वाले और रात-दिन विलास में लीन रहने वाले देवताओं का वह माधुर्यपूर्ण चिर यौवन आज कहाँ लुप्त हो गया, जिसकी धूम सम्पूर्ण दिशाओं के छोरों तक मची हुई थी!

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने छायावाद की लाक्षणिक पदावली का प्रयोग करते हुए 'सुरभित', 'मधु', 'अनन्त वसन्त' आदि प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है तथा वसन्त के विकास द्वारा यौवन की मादकता, प्रफुल्लता आदि की ओर भी संकेत किया है।

(२) 'अनन्त वसन्त' में उपमेय के स्थान पर केवल उपमान का प्रयोग होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कुसुमित कुंजों .... अब बीन।

शब्दार्थ—कुसुमित कुंजें=ऐसी कुंजें, जहाँ नाना भाँति के पुष्प खिले हुए हों। पुलकित=पुलक या कम्प से परिपूर्ण। प्रेमालिंगन=प्रेमियों का परस्पर प्रेमपूर्वक आलिंगन करना। विलीन=लुप्त। मूर्च्छित तानें=संगीत में सातों स्वरों का क्रम से आरोह-अवरोह मूर्च्छना कहलाता है और इसी मूर्च्छना से भरी हुई तानें मूर्च्छित तानें कहलाती हैं। बीन=वीणा।

व्याख्या—इस विलासी देव-जाति के प्रेमी और प्रेमिकाएँ नाना प्रकार के विकसित फूलों से भरी हुई कुंजों में एकत्र होकर प्रेम से पुलकायमान होते हुए जो परस्पर आलिंगन किया करते थे, आज वे प्रेमालिंगन भी न जाने कहाँ लुप्त हो गये? इतना ही नहीं, उन कुंजों में मूर्च्छना से भरी हुई मधुर संगीत की जो तानें सुनाई पड़ती थीं, आज वे भी मौन हो चुकी हैं और अब वीणा की मधुर ध्वनि भी कहीं सुनाई नहीं पड़ती है।

टिप्पणी—(१) 'पुलकित प्रेमालिंगन' में विशेषण-विपर्यय (Transferred epithed) अलंकार है, क्योंकि आलिंगन कभी पुलकित नहीं होता, अपितु आलिंगन करने वाले पुलकित हुआ करते हैं। साथ ही 'मूर्च्छित तानों के मौन होने' में मानवीकरण (Personification) अलंकार है।

(२) **मूर्च्छना**—संगीताचार्यों का मत है कि "क्रमात्स्वराणां सप्तानाम् आरोहश्चावरोहणम्, सा मूर्च्छना इति उच्यते। ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च।" अर्थात् क्रम से सातों स्वरों के आरोह एवं अवरोह को 'मूर्च्छना' कहते हैं। प्रत्येक ग्राम में सात-सात मूर्च्छनाएँ होती है और संगीत में तीन ग्राम होते हैं। अतः कुल मिला कर २१ मूर्च्छनाएँ होती हैं। इसी कारण लिखा है—"ग्रामत्रयेऽपि प्रत्येकं सप्त सप्त मूर्च्छना

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

इत्येकविंशतिमूर्च्छना: भवन्ति ।" सात स्वरों के समूहों को ग्राम कहते हैं और षड्ज, मध्यम तथा गन्धार नामक तीन ग्राम होते हैं।

(३) इन पंक्तियों में देवों की संगीतप्रियता की ओर संकेत किया गया है। ऋग्वेद में भी देवों के द्वारा कर्करि, नाली तथा सप्तस्वर वाली वीणा के बजाने का उल्लेख मिलता है (देखिए, ऋग्वेद २।४३।३, १०।३२।४, १०।१३४।४ तथा १।८५।२)। अतः प्रसाद का यह वर्णन वेद-सम्मत है।

अब न .... अब माप।

शब्दार्थ—कपोल=गाल। सुरभित=सुगन्धित। भुजमूल=बगल, काँख, कक्ष। शिथिल वसन=अंगों से खिसके हुए वस्त्र। व्यस्त=इधर-उधर पड़े हुए या फैले हुए। माप=परिमाण।

व्याख्या—परस्पर चुम्बन करते समय देव और देवांगनाओं के मुखों की जो सुगन्धित भाप पहले एक दूसरे के कपोलों पर छाया के समान पड़ा करती थी आज वह न जाने कहाँ लुप्त हो गई? इतना ही नहीं, परस्पर आलिंगन करते समय इन प्रेमियों के अंगों से ढीले होकर जो दुपट्टे, उत्तरीय आदि वस्त्र खिसक-खिसक कर उनकी बगलों के इधर-उधर आ पड़ते थे, आज वैसे ढीले वस्त्र भी अंगों पर कहीं पड़े हुए दिखाई नहीं देते।

टिप्पणी—(१) "अब शिथिल बसन की माप भुजमूलों में व्यस्त नहीं होती"—इस कथन से कवि का अभिप्राय यह है कि उन प्रेमियों के ढीले या अंगों से खिसके हुए वस्त्रों का परिमाण अब उनकी बगलों में व्यस्त दिखाई नहीं देता, अर्थात् जिस समय वे प्रेमीजन एक दूसरे की बगलों में हाथ डालकर परस्पर आलिंगन किया करते थे, उस समय उनके दुपट्टे, उत्तरीय आदि वस्त्रों का कुछ भाग तो बगलों में ही फँसा रह जाता था और कुछ ढीला होकर अंगों से इधर-उधर खिसक जाता था, किन्तु आज वस्त्रों का वैसा रूप कहीं दिखाई नहीं देता। इस कथन में भी देवों की विलास-भावना की सुन्दर व्यंजना हुई है।

(२) 'छाया सी भाप' में उपमा अलंकार है।

कंकण क्वणित .... होता अभिसार।

शब्दार्थ—कंकण=कंगन। क्वणित थे='क्वण-क्वण' की ध्वनि करते हुए बजते थे। नूपुर घुँघरू। रणित थे='रण-रण' की ध्वनि करते हुए बजते थे। मुखरित=शब्दायमान। कलरव=कोमल ध्वनि। अभिसार=मधुर मिलन या मधुर संयोग।

व्याख्या—नृत्य करते समय देव-बालाओं के हाथों में कंगन बजने लगते थे, पैरों में घुँघरू मधुर ध्वनि उत्पन्न किया करते थे और उनकी छाती पर हार हिला करते थे। इस तरह उनके संगीत की कोमल ध्वनि चारों ओर गूँज उठती थी और उनके गीतों में स्वर और लय का मधुर संयोग रहता था।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ 'क्वणित' और 'रणित' शब्दों द्वारा क्रमशः कंकण और नूपुरों की यथार्थ ध्वनि को प्रस्तुत करते हुए वर्ण-वक्रता के साथ-साथ नाद-सौन्दर्य की सृष्टि की है। अतः यहाँ ध्वन्यर्थव्यंजना (Onomatopoeia) अलंकार है और श्रव्यबिम्ब विद्यमान है।

(२) काव्य की दृष्टि से 'अभिसार' शब्द का प्रयोग भी उचित है, क्योंकि 'अभिसार' का शाब्दिक अर्थ है, किसी संकेत-स्थल पर प्रेमी और प्रेमिका का लुक-छिपकर मिलना। यहाँ 'स्वर' पुल्लिंग है और 'लय' स्त्रीलिंग है। अतः गीतों रूपी संकेत-स्थल पर स्वर-लय का अभिसार करना काव्य के चमत्कार को बढ़ाता है।

(३) देवांगनाओं या अप्सराओं के नृत्य का ऐसा ही मनोहर एवं चित्ताकर्षक वर्णन महाभारत में इस प्रकार मिलता है—

घृताची मेनका रम्भा पूर्वचित्तिः स्वयंप्रभा।
उर्वशी मिश्रकेशी च दण्डगौरी वरूथिनी॥
गोपाली सहजन्या च कुम्भयोनिः प्रजागरा।
चित्रसेना चित्रलेखा सहा च मधुरस्वरा॥
एताश्चान्याश्च ननृतुस्तत्र तत्र सहस्रशः।
चित्तप्रसादने युक्ताः सिद्धानां पद्मलोचनाः॥
महाकटितट श्रोण्यः कम्पमानैः पयोधरैः।
कटाक्षहावमाधुर्यैश्चेतो बुद्धिमनोहरैः॥

—महाभारत, वनपर्व ४३।२९-३२

सौरभ से .... रहे समीर।

शब्दार्थ—सौरभ=सुगंध। दिगन्त=दिशाओं के छोर। अन्तरिक्ष=पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का सम्पूर्ण स्थान। आलोक-अधीर=प्रकाश से बेचैन अथवा अत्यन्त प्रकाश से परिपूर्ण। अचेतन गति=उन्मत्त चाल। समीर=वायु।

व्याख्या—देवगण सुगंधित द्रव्यों का इतना अधिक प्रयोग करते थे कि सम्पूर्ण दिशाएँ सदैव सुगन्ध से परिपूर्ण रहती थीं। सारा अन्तरिक्ष रात-दिन तीव्र प्रकाश से भरा रहता था, क्योंकि देवगण रात को भी मणियों के दीपक जलाकर विलास में डूबे रहते थे। इस विलासप्रियता के कारण उनमें भोग-विलासों के लिए उन्मत्तता से भरी हुई एक ऐसी तीव्र गति दिखाई देती थी, जिसका सामना वायु भी नहीं कर सकती थी।

टिप्पणी—(१) कवि ने दिगन्त और अन्तरिक्ष को क्रमशः सौरभ और आलोक से परिपूर्ण और अधीर दिखाकर इस बात की ओर संकेत किया है कि देवगणों की विलासप्रियता चरमसीमा पर पहुँच गई थी, क्योंकि वे अपने शरीरों को सुसज्जित करने के लिए नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करते थे, जिससे रात-दिन दिशाएँ सुगन्धि से भरी रहती थीं और दिन के अतिरिक्त रातों में भवनों, कुंजों आदि में अत्यन्त प्रकाश रहता था, इस कारण अन्तरिक्ष आलोक से सदैव अधीर बना रहता था, क्योंकि उसे एक क्षण भी प्रकाश से छुटकारा नहीं मिलता था।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(२) 'अचेतन गति' से कवि का अभिप्राय यह है कि देवगण विलास में निरन्तर लीन रहने के कारण अपनी सुध-बुध खो बैठे थे, उन्हें अपने भविष्य का तनिक भी ज्ञान नहीं रहा था और वे अपने उत्थान-पतन की तनिक भी चिन्ता न करके अबाध गति से भोगों में निमग्न रहते थे।

(३) 'जिससे पिछड़ा रहे समीर' में व्यतिरेक अलंकार है, क्योंकि देवों की विलास-गति से वायु की गति को भी पिछड़ी हुई बताकर उपमेय की अपेक्षा उपमान को हीन कहा गया है।

वह अनंग ... . **आवर्त्तन।**

शब्दार्थ—अनंग-पीड़ा=काम-जन्य वेदना। अंग-भंगियों का नर्त्तन=अंगों की विविध चेष्टाओं द्वारा मनोभावों को प्रकट करना। मधुकर=भौंरे। मरन्द=मकरन्द या पुष्प-रस। मदिर भाव से=मदिरा से उन्मत्त होकर। आवर्त्तन=झूमना या चक्कर खाना।

व्याख्या—प्रायः देव-कामिनियाँ और देव अपने अंगों की विविध चेष्टाओं द्वारा अपने-अपने मनोभावों को इस तरह प्रकट किया करते थे, जिस तरह कोई व्यक्ति अपनी काम-वेदना को दूसरों के सम्मुख प्रकट किया करता है। इतना ही नहीं, वे मदिरा से उन्मत्त होकर झूमते हुए अपनी प्रेमिकाओं के साथ इस तरह उत्सव मनाया करते थे, जिस तरह भौंरे वसंत ऋतु में सम्मिलित होकर फूलों के रस का पान करते हुए झूम-झूम कर मकरन्दोत्सव मनाया करते हैं।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने दोनों स्थानों पर भावसाम्य के आधार सुन्दर उपमाओं का प्रयोग किया है।

(२) यहाँ पर भी देवों की तीव्र विलास-भावना व्यंजित है।

सुरा सुरभिमय .... **पीत पराग।**

शब्दार्थ—सुरा सुरभिमय=मदिरा की गंध से सुवासित। वदन=मुख। अरुण=लाल अथवा लालिमा-युक्त। अनुराग=प्रेम। कल=सुन्दर और चिकने। बिछलता=फिसलता। पीत=पीला। पराग=फूलों के अन्दर की धूल या पुष्प-रज।

व्याख्या—मदिरा पान करने के कारण देव और देवांगनाओं के मुखों से मदिरा की गंध आती रहती थी और उनके चेहरों पर लालिमा झलकती रहती थी। रात-दिन जागने के कारण उनकी आँखों में आलस्य भरा रहता था तथा विलास वासना में डूबे रहने के कारण उन आँखों से अनुराग टपकता रहता था। इसके अतिरिक्त उनके कपोल इतने सुन्दर और चिकने थे कि जब वे उन पर कल्पवृक्ष का पीला पराग मल लेते थे, तब वह पराग भी उन कपोलों पर फिसलने लगता था।

टिप्पणी—(१) इन पंक्तियों में कवि ने नये ढंग से नख-शिख का वर्णन किया है। यहाँ स्मृतिजन्य घ्रातव्य भाव-बिम्ब भी है।

(२) 'कपोलों पर पराग बिछलता हुआ' कहकर कवि ने देव और देवांगनाओं द्वारा कपोलों पर पाउडर की तरह फूलों का पराग लगाने की ओर संकेत किया है।

(३) 'कल कपोल''''''पीत पराग' में व्यतिरेक अलंकार है, क्योंकि कपोलों को पराग से भी अधिक मृदुल बताकर उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष दिखाया गया है।

विकल वासना ... ... **गये, गये।**

शब्दार्थ—विकल वासना=बेचैन बना देने वाली विलास-भावना। मुरझाये=शक्तिहीन हो गये।

व्याख्या—समस्त देव-जाति के व्यक्ति बेचैन बना देने वाली काम-वासना के प्रतिनिधि थे, अर्थात् वे काम-वासना के मूर्तिमान स्वरूप थे। अतः अपनी काम-वासना के कारण ही वे सब धीरे-धीरे शक्तिहीन होते चले गये। अरे! खेद है कि पहले तो वे स्वयं अपनी वासना की अग्नि में ही जलते रहे और फिर उन्हें प्रलय के जल ने गला दिया। इस तरह अपनी काम-वासना के परिणामस्वरूप वे जलते और गलते हुए पूर्णतया विनष्ट हो गये।

टिप्पणी—कवि ने यहाँ पहले मुरझाना लिखा है, फिर आग में जलना बताया है और अन्त में पानी में गलना कहा है। ऐसा वर्णन करके प्रसाद ने किसी पदार्थ के विनाश की स्वाभाविक प्रक्रिया की ओर भी संकेत किया है, क्योंकि मुरझाकर कोई वस्तु आसानी से जल सकती है, फिर जली हुई वस्तु को जल भी सुगमता से गला देता है। अतः कवि की इन पंक्तियों में पदार्थों के क्रमिक विनाश की सुन्दर व्यंजना हुई है।

अरी उपेक्षा .... **दर्शन की प्यास।**

शब्दार्थ—उपेक्षा भरी अमरता=तिरस्कार के योग्य अमरता की भावना। अतृप्ति=निरन्तर भोगों में लीन रहकर भी तृप्त न होना। निर्बाध विलास=निरन्तर विघ्न और बाधाओं से रहित भोगों में लीन रहना। द्विधा=दुविधा, चिन्ता। भूख भरी=तीव्र उत्कण्ठा से युक्त। दर्शन की प्यास=देखने की बलवती इच्छा।

व्याख्या—यहाँ पर मनु देवों की विलास-वासना को घृणा की दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि अरी अमरता की भावना! तेरे कारण ही देवतागण सब कुछ छोड़ कर निरन्तर विलास में मग्न हो गये थे। अतः तू अत्यन्त तिरस्कार के योग्य है। अरी अतृप्ति! अरे विघ्न बाधाओं से रहित भोग-विलास! तुम्हारे कारण ही देवजाति के सम्पूर्ण नर-नारी निश्चिन्त होकर अपने-अपने प्रेमी और प्रेमिकाओं को टकटकी लगाकर देखते रहते थे और उनके नेत्रों में तीव्र उत्कंठा सहित अपने प्रेमी-प्रेमिकाओं के देखने की बलवती लालसा भरी रहती थी।

टिप्पणी—(१) कवि ने अमरता को उपेक्षा से भरी हुई कहकर इस बात की ओर संकेत किया है कि देवगण जब यह समझने लगे कि हम अमर हैं, हमें कोई मार नहीं सकता और हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता; तब वे अपनी उन्नति करना छोड़कर निर्बाध विलास में डूब गये। अतः देवों के विनाश में इस अमरता की भावना

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

का ही सबसे अधिक हाथ रहा, और इसी कारण मनु उसे उपेक्षा से भरी हुई बताकर अपनी घृणा प्रकट कर रहे हैं।

(२) 'भूख भरी दर्शन की प्यास' में कवि ने लाक्षणिक पदावली का प्रयोग किया है, क्योंकि कभी देखने की प्यास नहीं होती, पानी की प्यास होती है; और फिर प्यास कभी भूख से भरी हुई नहीं होती। अतः 'भूख' और 'प्यास' दोनों पर लक्षणा के द्वारा तीव्र उत्कण्ठा और बलवती लालसा या तृष्णा का आरोप किया गया है।

बिछुड़े तेरे .... सता रहीं।

शब्दार्थ—स्पर्श=प्रेमियों का परस्पर अंगों को छूना। कातरता=अधीरता, बेचैनी। मधुमय=आनन्दपूर्ण।

व्याख्या—हे भोग-विलास! तेरे कारण देवांगनाएँ और देव जो परस्पर आलिंगन किया करते थे, आज वे आलिंगन भी न जाने कहाँ चले गये? अरे, प्रेमावेश में पुलकित होकर वे आपस में एक-दूसरे के अंगों का जो स्पर्श किया करते थे, आज उन स्पर्शों का भी कहीं पता नहीं है। इतना ही नहीं, अत्यन्त अधीर होकर वे एक दूसरे के मुखों का जो चुम्बन किया करते थे, आज चुम्बन की वह अधीरता भी उनके मुखों को बेचैन बनाती हुई कहीं दिखाई नहीं देती।

टिप्पणी—आलिंगन, स्पर्श, चुम्बन आदि के द्वारा कवि ने यहाँ विलासी देवों की सम्पूर्ण काम-चेष्टाओं का स्पष्ट उल्लेख किया है। कवि का यह वर्णन वात्स्यायन के काम-सूत्र पर अवलम्बित है।

रत्न सौध .... भीड़ अधीर।

शब्दार्थ—रत्न सौध=रत्नों से जड़े हुए ऊँचे-ऊँचे महल। वातायन=झरोखा, खिड़की या छज्जा। मधु=शराब। मधु मदिर समीर=जिस तरह शराब उन्मत्त बना देती है, उसी तरह अपनी शीतलता, मन्दता और सुगन्धि से उन्मत्त बना देने वाली हवा। तिमिङ्गल=समुद्र में रहने वाले बड़े-बड़े आकार के मत्स्य।

व्याख्या—देवताओं के ऊँचे-ऊँचे महल रत्नों से जड़े हुए थे और उन महलों के झरोखों से मदिरा के समान उन्मत्त बना देने वाली हवा निरन्तर आती रहती थी, किन्तु आज वे सभी रत्न-जटिल महल प्रलय के अथाह सागर में डूब चुके हैं। इसलिए अब उन झरोखों में हवा के स्थान पर समुद्र के बड़े-बड़े मत्स्यों की भीड़ टकरा रही होगी।

टिप्पणी—(१) 'मधु मदिर समीर' का 'मधु के समान' मदिर बनाने वाला 'समीर' अर्थ करने के कारण यहाँ उपमा अलंकार है।

(२) इन पंक्तियों में देवों के विशाल तथा भव्य भवनों का वर्णन किया गया है, जिनका संकेत ऋग्वेद (४।३०।२०, १।१६६।८, ७।१५।१४), पद्मपुराण (सृष्टिखंड १५।१०), कूर्मपुराण (अध्याय ४६) आदि ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक मिलता है (विशेष अध्ययन के लिए देखिए, लेखक कृत कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन', पृ० २९९-३००)।

देव-कामिनी .... भीषण वृष्टि।

शब्दार्थ—देव-कामिनी=देवांगनाएँ। नील नलिन=नीले कमल। प्रलय-कारिणी=सर्वनाश करने वाली। भीषण वृष्टि=भयंकर वर्षा। सृष्टि=उत्पन्न होना।

व्याख्या—उन देवांगनाओं के नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे। अतः वे जिधर देखती थीं उधर ही नीले कमल उत्पन्न हो जाते थे, अर्थात् उनके नेत्र नीले कमलों को उत्पन्न करने वाले होने के कारण उन कमलों से भी अधिक सुन्दर थे, किन्तु जहाँ देव-कामिनियों के नयनों से नील-कमल उत्पन्न हुआ करते थे, आज उन स्थानों पर सर्वस्व नाश करने वाली प्रलय की भयंकर वर्षा हो रही है।

टिप्पणी—(१) कवि ने 'नयनों से नील नलिनों की सृष्टि' कहकर उपचार-वक्रता का प्रयोग करते हुए नेत्रों के अपार सौन्दर्य की ओर संकेत किया है।

(२) नेत्रों से कमल उत्पन्न होने के वर्णन हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियों के काव्यों में भी मिलते हैं। जैसे, जायसी द्वारा पद्मावती के नेत्रों की प्रशंसा करते हुए 'पद्मावत' में लिखा है—

"नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर समीर।"

इसी तरह गोस्वामी तुलसीदास ने सीता के नेत्रों की प्रशंसा करते हुए 'रामचरितमानस' में लिखा है—

"जहँ विलोक मृगसावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल-सित-श्रेनी॥"

(३) यहाँ पर दार्शनिक दृष्टि से प्रतिबिम्बवाद की झलक विद्यमान है।

(४) आँखों से कमलों की उत्पत्ति दिखाकर आँखों की अपेक्षा कमलों को तुच्छ दिखाया गया है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

वे अम्लान .... सुरबालाएँ।

शब्दार्थ—अम्लान=खिले हुए। शृङ्खला=जंजीर। सुरबालाएँ=देवांगनाएँ।

व्याख्या—प्रायः विलास में मग्न देवांगनाएँ खिले हुए सुगन्धित फूलों तथा मणियों की बनी हुई मनोहर मालाओं को नित्य धारण किया करती थीं, परन्तु आज प्रलय के सागर में डूब जाने के उपरान्त वे मालाएँ उन देवांगनाओं को जकड़ने वाली जंजीरें बन गई होंगी।

टिप्पणी—'अम्लान कुसुम' से कवि का अभिप्राय: पारिजात आदि सदैव विकसित रहने वाले पुष्पों से है, जो देवों के नन्दन-वन में खिलते रहते थे।

(२) प्रायः जल में डूब जाने पर शरीर के ढीले वस्त्र, उत्तरीय आदि जिस तरह शरीर को स्वतः जकड़ लेते हैं, उसी तरह कवि ने देवांगनाओं के मालाओं से जकड़ जाने की कल्पना की है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

देव यजन .... की मस्त।

शब्दार्थ—देव यजन=दिव्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए किए गये यज्ञ,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अनुष्ठान आदि। पशु यज्ञ=ऐसे यज्ञ जिनमें पशुओं का बध करके उनके मांस की आहुति दी जाती थी। पूर्णाहुति=यज्ञ की समाप्ति पर दी गई समस्त सामग्री की अन्तिम आहुति। ज्वाला=आग की लपटें। जल-निधि=प्रलय का सागर।

व्याख्या—देवगण अन्य दिव्य शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए पशुओं का बध करके उनके मांस की आहुति देकर बड़े-बड़े यज्ञ किया करते थे। आज उन्हीं पशुओं की पूर्णाहुति से उत्पन्न होने वाली आग की ऊँची-ऊँची लपटें प्रलय के समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरों का समूह बनकर कैसी जल रही हैं!

टिप्पणी—(१) ऋग्वेद में "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" (१।१६४।५०) कहकर देवों को भी यज्ञ करते हुए बताया है तथा "ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" (१।१६४।५०) कहकर यह भी लिखा है कि यज्ञ द्वारा ही देवों ने स्वर्ग को प्राप्त किया था।

(२) पशु-यज्ञ का सर्वप्रथम विस्तृत वर्णन शुक्ल यजुर्वेद के छठे अध्याय में मिलता है। वहाँ लिखा है कि यज्ञ-कूप से पशु को बाँधकर मंत्रों का उच्चारण करते हुए पशु का बध किया जाता था। इसके उपरान्त यह प्रार्थना की जाती थी कि 'हे पशो! तेरा मन दिव्य शक्तियों के मन से और तेरे प्राण दिव्य शक्तियों के प्राणों के साथ सम्मिलित हों।' इस प्रार्थना के पश्चात् यज्ञ के समाप्त होने पर पशु की वसा (चर्बी) को यजमान खाने के लिए ग्रहण करता था। इसके अनन्तर शतपथ ब्राह्मण (३।७।३।२-४), ऐतरेय ब्राह्मण (६।६), जैमिनीय ब्राह्मण (१।५, १।३८, १।६०) आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी पशु-यज्ञों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

(३) कवि ने यज्ञ में उत्पन्न आग की ऊँची-ऊँची लपटों से प्रलय-सागर की ऊँची-ऊँची लहरों का सम्बन्ध स्थापित करते हुए यह बताया है कि जिस तरह पहले यज्ञों में पशुओं की आहुति से आग की लपटें उठती थीं, उसी तरह आज उन पशु-यज्ञ करने वाले देवों की आहुति से प्रलय-सागर में लहरें उठ रही हैं। देवों ने पहले पशुओं का बध किया था, इसी से आज प्रलय ने उन देवगणों का विनाश कर दिया है। यहाँ ज्वाला में लहरों का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

उनको देख .... हलाहल नीर।

शब्दार्थ—व्यस्त=फैलकर, तितर-बितर होकर। प्रालेय=प्रलय सम्बन्धी या सर्वस्व नाश करने वाला। हलाहल=विषमय। नीर=जल।

व्याख्या—यज्ञों में उन निरीह पशुओं के बध को देखकर अन्तरिक्ष में बैठी हुई न जाने कौन-सी दैवी शक्ति बेचैन होकर रोने लगी, जिसकी आँखों से आँसुओं के रूप में ऐसा विषमय जल बरसने लगा, जिसने इधर-उधर फैलकर, देव जाति का सर्वस्व नष्ट कर दिया।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने प्रलयकारिणी भीषण वर्षा के लिए यह कल्पना है कि पशु-बध को देखकर कोई दैवी शक्ति उन निरीह पशुओं पर सहानुभूति प्रकट

करती हुई रोने लगी थी और उसके आँसू ही प्रलय की वर्षा का रूप धारण कर बरसने लगे थे। इस कल्पना के कारण यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

(२) इस कथन द्वारा कवि ने पशु-बध को भी प्रलय का एक कारण सिद्ध किया है और इस कारण द्वारा साध्य का चमत्कारपूर्वक ज्ञान कराया गया है। अतः यहाँ अनुमान अलंकार है।

हाहाकार .... था क्रूर।

शब्दार्थ—क्रन्दनमय=रुदन या विलाप से युक्त। कुलिश=वज्र या बिजली। बधिर=बहरे। भीषण रव=भयंकर ध्वनि। ध्वनि। क्रूर=डरावनी, परपीड़क।

व्याख्या—उस प्रलय-काल में चारों ओर हाहाकार मच गया। सर्वत्र रोने की आवाज सुनाई पड़ने लगी, क्योंकि आकाश से बिजली कड़कती हुई चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर रही थी, जिसकी भयंकर और डरावनी ध्वनि बार-बार सुनाई पड़ती थी और जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ बहरी हो गयी थीं अर्थात् कड़कड़ाहट की वह ध्वनि दिशाओं के छोर तक व्याप्त हो गई थी।

टिप्पणी—यहाँ स्मृतिजन्य दृश्य बिम्ब है। 'हाहाकार' में ध्वन्यर्थव्यंजना अलङ्कार है, 'हुए दिगन्त बधिर' में मानवीकरण अलङ्कार है और 'बार-बार' में वीप्सा अलंकार है। यहाँ अगूढ़ व्यंग्या लक्षणा है और वर्ण-वक्रता का चमत्कार है।

दिग्दाहों से .... चलते झटके।

शब्दार्थ—दिग्दाह=दिशाओं का जलना। जलधर=बादल। क्षितिज=वह स्थान, जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले हुए दिखाई देते हैं। सघन=बादलों सहित तथा घना। गगन=आकाश। भीम=भयंकर। प्रकम्पन=अत्यधिक काँपना। झंझा=तीव्र वायु या आँधी।

व्याख्या—उस समय आकाश में सर्वत्र उमड़ते हुए बादल दिखाई देते थे, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि या तो दिशाएँ जल रही हैं, जिससे उनके जलने से यह घना धूम-समूह आकाश में इकट्ठा हो गया है अथवा क्षितिज के किनारे से बड़े-बड़े बादल उठे हैं, जो आकाश में आकर छा गये हैं। उस क्षण बादलों से घिरा हुआ यह आकाश भयंकरता के साथ अत्यधिक काँप रहा था और आँधी भी तीव्र झटकों के साथ चल रही थी।

टिप्पणी—(१) कवि ने इन बारह पंक्तियों में प्रलय का जो वर्णन किया है, वह बहुत कुछ वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा पुराणों के वर्णन से मिलता-जुलता है। जैसा श्रीमद्भागवतपुराण में लिखा है—

ततः प्रचण्ड पवनो वर्षाणामधिकं शतम्।
परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम्॥
ततो मेघाकुलान्याङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः।
शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति नभसस्वनैः॥

(श्रीमद्भागवत पुराण, १२।४।११-१३)

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(२) "सघन गगन······झटके" पंक्ति में कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिनमें से स्वयं गगन के काँपने तथा झंझावात के चलने की ध्वनि आ रही है। अतः यहाँ नाद-सौंदर्य द्रष्टव्य है और ध्वन्यर्थव्यंजना अलङ्कार है। साथ ही यहाँ 'भीम' शब्द का अर्थ प्रकरण के अनुसार द्वितीय पांडव न होकर 'भयंकर' है। अतः इसमें प्रकरण-सम्भवा अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है।

(३) यहाँ दिशाओं के जलने से उठने वाले धुँए के चित्रण द्वारा प्रलयकारी बादलों का मार्मिक बिम्ब अंकित किया गया है। बिहारी ने भी ऐसे ही बिम्ब का निर्माण किया है—

धुरवा होंइ न ये सखी धुँआ उठत चहुँ कोद।
जारतु आवतु जगतु कों पावस सेषम पयोद॥

अन्धकार में ··· ··· पीन हुई।

शब्दार्थ—मलिन=धुँधले प्रकाश वाले। मित्र=सूर्य। आभा=ज्योति। लीन=छिप जाता। वरुण=अन्तरिक्ष तथा समुद्र के सबसे श्रेष्ठ देवता। घनी कालिमा=गहन अन्धकार। स्तर=परत। पीन=सघन होना।

व्याख्या—उस समय आकाश में घने बादलों के घिर जाने के कारण चारों ओर अन्धकार छा गया। उस अन्धकार में थोड़ा-थोड़ा प्रकाश देने वाले सूर्य की रही-सही ज्योति भी पूर्णतया लुप्त हो गई; किन्तु अन्तरिक्ष के देवता वरुण घनघोर वर्षा कर रहे थे, जिससे गहन अन्धकार के परत पर परत जमने लगे और सभी जगह सघन अन्धकार व्याप्त हो गया।

टिप्पणी—(१) मित्र—यह ऋग्वेदकालीन देवता है। इसका उल्लेख प्रायः वरुण के साथ ही हुआ है। केवल एक मन्त्र (३।५६।१) में इस देवता का स्वतन्त्र वर्णन मिलता है। यह ऋग्वेद में मनुष्यों का संगठन करने वाला देवता माना गया है और कृषकों की देखभाल करने वाला भी बतलाया गया है। इसे महान् आदित्य भी कहा गया है, जो जनता का सेनापति है। इसे सविता भी कहा गया है, क्योंकि यह नियमन करने वाला है। विष्णु भी इसके ही नियमानुसार तीन पग चलता है। मित्र का जन्म अग्नि से माना गया है। अथर्ववेद में मित्र को प्रभात का तथा वरुण को सायंकाल का देवता कहा गया है तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मित्र का सम्बन्ध दिन से तथा वरुण का सम्बन्ध रात्रि से माना गया है। वैदिक ग्रन्थों के आधार पर मित्र एक सौरमण्डल का देवता है, जिसका उल्लेख अवेस्ता में 'मिथ्र' के रूप में मिलता है तथा जिसे वहाँ पर भी सूर्य-देवता या प्रकाश का देवता माना गया है और उसका विशेष सम्बन्ध सूर्य से ही बतलाया गया है। अवेस्ता में 'मिथ्र' को श्रद्धा या विश्वास का संरक्षक भी माना गया है। (वैदिक रीडर, पृ० ७८-७९)

(२) वरुण—यह ऋग्वेदकालीन देवता है। ऋग्वेद में इसके हाथ, पैर, भुजा आदि का उल्लेख मिलता है। इसे बड़ा दूरदर्शी, सहस्र चक्षुवाला, पापियों का नियमन

करने वाला तथा सम्पूर्ण जगत् का सम्राट् कहा है। इन्द्र को इसका अभिन्न साथी बताया गया है। इसे अन्तरिक्ष का अधिष्ठाता कहकर चन्द्रमा, राशि एवं तारों को इसी की आज्ञा से अन्तरिक्ष में विचरण करते हुए बताया गया है। वेदों में वरुण को ही सब ऋतुओं का प्रवर्त्तक, वर्षा करने वाला तथा समुद्र एवं अन्तरिक्ष दोनों का स्वामी कहा गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसे केवल रात्रि और चन्द्रमा पर शासन करने वाला देवता माना गया है। अथर्ववेद में भी संध्या की अग्नि को वरुण कहकर संध्या तथा रात्रि से वरुण का सम्बन्ध जोड़ा गया है और उसका रंग काला बताया गया है। आगे चलकर उत्तर वैदिक काल में वरुण केवल जलों के स्वामी रह जाते हैं और महाभारत में आकर वरुण को केवल जलेश्वर कहा गया है। इस तरह जो वरुण वैदिक युग में अन्तरिक्ष तथा समुद्र दोनों के स्वामी थे, वे आगे चलकर अन्तरिक्ष के देवता नहीं रहते और उनका सार्वभौम सत्ताधारी अथवा सम्राट् का रूप भी लुप्त हो जाता है और वे केवल समुद्र के देवता रह जाते हैं। प्रसाद ने वरुण का ऋग्वेद-कालीन रूप ही अपनाया है। इसी कारण आपने अपने 'करुणालय' में भी वरुण को अन्तरिक्ष तथा समुद्र दोनों का स्वामी कहा है—

हे समुद्र के देव! देव आकाश के!
शान्त हूजिए, क्षमा कीजिए दीन को।

(३) यहाँ 'मित्र' शब्द का अर्थ 'सखा' न होकर प्रकरण के अनुसार सूर्य है। अतः यहाँ पर प्रकरण-सम्भवा अभिधामूला व्यंजना है। 'स्तर-स्तर' में पुनरुक्ति अलंकार है।

पंचभूत का ···· ··· खोया प्रात।

शब्दार्थ—पंचभूत=पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश नामक पाँच तत्त्व। भैरव=भयंकर। मिश्रण=मिल जाना। शम्पा=विद्युत, बिजली। शकल=टुकड़े। निपात=गिरना। उल्का=मशाल। अमर शक्तियाँ=प्राकृतिक दिव्य शक्तियाँ।

व्याख्या—उस प्रलय में पाँचों तत्त्व भयंकर गति के साथ मिल रहे थे। बिजली कई टुकड़ों में विभक्त होकर पृथ्वी पर गिर रही थी। उस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ बिजली के रूप में मशालें लेकर इस अन्धकार में खोये हुए प्रभात को इधर-उधर ढूँढ़ रही हों।

टिप्पणी—(१) 'पंचभूत के भैरव मिश्रण' से कवि का अभिप्राय यह है कि प्रलय के कारण पृथ्वी, जल आदि पाँचों प्रमुख तत्त्व अस्त-व्यस्त हो गये थे, जिससे सर्वत्र भयानक स्थिति उत्पन्न हो गया था।

(२) अमर शक्तियों के द्वारा प्रातःकाल के खोजने में कवि ने अच्छी कल्पना की है, क्योंकि बिजली के टुकड़े-टुकड़े होकर चमकने में यह मशाल सी दिखाई दे सकती है। यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

बार बार ··· ··· हेतु अशेष ।

शब्दार्थ—भीषण रव=भयानक ध्वनि । धरती=पृथ्वी । व्योम=आकाश । अशेप=सम्पूर्ण ।

व्याख्या—प्रलयकारिणी भीषण वर्षा के कारण पृथ्वी और आकाश दोनों मिल-कर एक हो रहे थे । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि बार-बार कड़कने वाली बिजली की भयानक ध्वनि सुनकर यह पृथ्वी विशेष रूप से कांपने लगी है और इस कांपती हुई पृथ्वी को ही मानो धैर्य बंधाने के लिए यह सम्पूर्ण आकाश पानी की बूंदों के रूप में नीचे आकर पृथ्वी का आलिंगन कर रहा हो ।

टिप्पणी—कवि ने प्रलयकाल में भी 'आलिंगन' का वर्णन करके अपनी माधुर्य भावना का परिचय दिया है । यहां पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

उधर गरजतीं ···· ···· व्यालों सी ।

शब्दार्थ—कुटिल काल=विकराल मृत्यु । फेन=झाग । व्याल=सर्प ।

व्याख्या—उधर समुद्र में विकराल मृत्यु के जालों के समान ऊँची-ऊँची लहरें गरजती हुई सी उठ रही थीं । उन लहरों के ऊपर झाग छाये हुए थे, जिन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता था जैसे अनेक बड़े-बड़े विषैले सर्प अपने-अपने फनों को ऊपर उठाये हुए और फेन उगलते हुए इधर चले आ रहे हों ।

टिप्पणी—(१) लहरों को कुटिल काल के जालों के समान कहने में कवि का अभिप्राय यह है कि जिस तरह क्रूर मृत्यु अपने जाल में फंसाकर प्राणियों का विनाश करती है, उसी तरह ये समुद्र की लहरें भी सम्पूर्ण देव-जाति का विनाश कर रही थीं । इसके अतिरिक्त व्यालों से समानता देने में 'च्युत संस्कृति' दोष है; क्योंकि लहर स्त्रीलिंग है और 'व्याल' शब्द पुल्लिग है, परन्तु इन पंक्तियों में चित्रोपम शैली को अपनाया गया है । दोनों स्थानों पर उपमा अलंकार है और गरजती हुई लहरों का बिम्ब बड़ा मार्मिक है

(२) 'कामायनी' की इन पंक्तियों में गरजती हुई लहरों का जैसा वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन 'महाभारत' के वन-पर्व में भी मिलता है ।

नृत्यमानमिवोर्मीभिः गर्जमानमिवाम्भसा ।
क्षोभ्यमाण महावातैः सा नौस्तस्मिन्महोदधौ ।। (वनपर्व, १२७।३३)

धंसती धरा ··· ···· था ह्रास ।

शब्दार्थ—धरा=पृथ्वी । निश्वास=आहें, किन्तु यहां लक्षणा से निश्वास का अर्थ है, बाहर निकली हुई आग की तीव्र लपटें । संकुचित=सिमटे हुए । अवयव=पृथ्वी के भाग । ह्रास=क्षीणता, कमी ।

व्याख्या—उस भयानक वर्षा के अतिरिक्त पृथ्वी में ज्वालामुखी फूट रहे थे, जिनके मुखों से आग की तीव्र लपटें निकल रही थीं और इधर-उधर पृथ्वी पर आग धधक रही थी, जिसके कारण पृथ्वी धंसकती चली जा रही थी और संकुचित होने के कारण उसके भाग भी क्षीण होते जा रहे थे ।

टिप्पणी—'धंसती धरा, धधकती ज्वाला' में कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिनसे पृथ्वी के धंसने एवं आग के धधकने की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है । अतः यहां नाद-सौन्दर्य विद्यमान है और यहां ध्वन्यर्थ-व्यंजना अलंकार है ।

सबल तरंगाघातों ···· ···· विचलित सी ।

शब्दार्थ—सबल=अत्यन्त तीव्र । तरंगाघात=लहरों के थपेड़े । क्रुद्ध=क्रोधित या क्षुभित, किन्तु लक्षणा से यहां क्रुद्ध का अर्थ है तीव्र लहरों से परिपूर्ण । व्यस्त=संकुचित । कच्छप=कछुआ । ऊभ-चूभ थी=कभी डूबती और कभी उतराती थी ।

व्याख्या—क्रोधित समुद्र की ऊंची-ऊंची लहरों के तीव्र थपेड़ों से विचलित होकर यह पृथ्वी संकुचित होती हुई उस समय प्रलय-समुद्र में इस तरह डूबती-उतराती दिखाई देती थी, जिस तरह लहरों के तीव्र थपेड़े खाकर कोई बड़ा कछुआ अपने अङ्गों को समेट कर समुद्र में डूबता-उतराता दिखाई देता है ।

टिप्पणी—(१) यहां कवि ने पृथ्वी की उपमा महाकच्छप से देकर तत्कालीन स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है । इन पंक्तियों में उपमा अलङ्कार है और 'कच्छप' के द्वारा डूबती-उतराती पृथ्वी का सुन्दर दृश्य-बिम्ब अंकित हुआ है ।

(२) यहां पर भी 'च्युत संस्कृति' दोष है, क्योंकि पृथ्वी स्त्रीलिंग है, जबकि उसकी उपमा कच्छप पुल्लिग से दी है ।

बढ़ने लगा ··· ···· प्रतिघात ।

शब्दार्थ—भैरव जल-संघात=भयंकर जल-समूह । तरल तिमिर=वर्षा के कारण तरलीभूत अन्धकार । प्रलय पवन=भयंकर वायु । प्रतिघात=आघात के बदले किया गया आघात अथवा झोंके पर झोंके लगना ।

व्याख्या—प्रलय की प्रखर वर्षा के कारण वह अत्यन्त भयंकर जल-समूह इस तरह बढ़ रहा था, जिस तरह विलासी व्यक्तियों में विलास का वेग बढ़ता है । वर्षा के कारण तरलीभूत अन्धकार से प्रलय की तीव्र वायु अपने प्रत्येक झोंके द्वारा मिल रही थी, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वे परस्पर एक दूसरे का आलिंगन कर रहे हों ।

टिप्पणी—प्रसाद माधुर्य के कवि हैं । इसी कारण पुनः उन्हें प्रलय के विध्वंस-कारी दृश्य में तिमिर और पवन परस्पर आलिंगन करते हुए दिखाई देते हैं । इस आलिंगन की कल्पना से तिमिर और पवन नायक-नायिका जैसे प्रतीत होते हैं । अतः प्रस्तुत तिमिर और पवन के द्वारा अप्रस्तुत नायक-नायिका की प्रतीति होने के कारण यहां समासोक्ति अलंकार है । इससे पूर्व जल-संघात को 'विलास-वेग' के समान कह कर कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है ।

बेला क्षण ···· ···· हीन हुआ ।

शब्दार्थ—बेला=समुद्र-तट । क्षीण=धुंधला सा दिखाई देना । लीन=

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पूर्णतया लुप्त हो जाना या छिप जाना। उदधि=सागर। अखिल धरा=सम्पूर्ण पृथ्वी। मर्यादाहीन=सीमारहित, असीम।

व्याख्या—अधिक वर्षा से जल-समूह के बढ़ जाने पर अब धीरे-धीरे समुद्र-तट देवों के निवास-स्थान तक आ गया। पहले तो क्षितिज कुछ धुंधला-सा दिखाई देता था, किन्तु चारों ओर पानी के फैल जाने से फिर क्षितिज पूर्णतया लुप्त हो गया था। इस तरह वह प्रलय का सागर सम्पूर्ण पृथ्वी को जलमग्न करके बस सीमाहीन हो गया था।

टिप्पणी—कवि प्रसाद ने प्रलय के सीमाहीन समुद्र का जैसा वर्णन यहाँ 'कामायनी' में किया है, वैसा ही वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण में मिलता है—

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम्।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ (२४/४१)

ऐसा ही, सम्पूर्ण पृथ्वी को समुद्र के द्वारा जल-मग्न कर देने का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी आया है—

सहसाभूत् ततो वेगाद् भीमवेगो महोदधिः।
योजनं व्यतिचक्रामे वेलामन्यत्र सम्प्लुवात् ॥ (युद्धकाण्ड, ७/१५)

करका क्रन्दन .... कब का।

शब्दार्थ—करका=ओले। क्रन्दन करती=गड़गड़ाते हुए। कुचलना=नष्ट-भ्रष्ट कर देना। तांडवमय नृत्य=विनाशकारी कार्य।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि उस प्रलय के समय गड़गड़ाते हुए ओले गिर रहे थे, जिनसे सभी पदार्थ नष्ट-भ्रष्ट होते जा रहे थे। इस तरह पाँच तत्त्वों का यह विनाशकारी कार्य न जाने कब से हो रहा था, इसका कुछ पता नहीं है।

टिप्पणी—तांडवमय नृत्य—भगवान् रुद्र जब संसार का संहार करते हैं, तब वे जो नृत्य करते हैं, वह तांडव नृत्य कहलाता है। इसी आधार पर तांडवनृत्य को एक प्रकार का उद्धत नृत्य भी कहा गया है और इसके द्वारा संहार-कार्य होने से इसे विनाशकारी नृत्य भी कह सकते हैं। यहाँ लक्षण-लक्षणा है, वर्णवक्रता है और 'तांडव नृत्य' के द्वारा अंकित विनाश का दृश्य बिम्ब अत्यन्त मार्मिक है।

एक नाव .... बारम्बार।

शब्दार्थ—डाँड़=नाव खेने का बाँस या बल्ली। पतवार=नाव में पीछे की ओर लगी हुई वह तिकोनी लकड़ी, जिसके द्वारा नाव को इधर-उधर घुमाते या मोड़ते हैं। तरल=तीव्रगामी, चंचल। पगली=पागल स्त्री के समान इधर-उधर भटकने वाली नौका।

व्याख्या—अब मनु प्रलय से अपने बचने का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि मेरे पास एक नाव थी जो प्रलय के अथाह सागर के ऊपर तैर रही थी, परन्तु सागर

की भीषणता के कारण न तो उसे खेने के लिए बल्ली ही लगती थी और न पतवार से ही काम चलता था। मेरी वह नाव सागर की चंचल तरंगों में बारम्बार कभी ऊपर उठती हुई और कभी नीचे गिरती हुई ऐसे भटक रही थी, जैसे कोई पागल स्त्री इधर-उधर मारी-मारी फिरती हो।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने 'पगली' के द्वारा नाव की स्थिति का यथार्थ दृश्य-बिम्ब अंकित किया है, क्योंकि जैसे कोई स्त्री इधर-उधर भटकती हुई कहीं गिरती और कहीं पड़ती अपना जीवन व्यतीत करती है, यही दशा मनु की उस नौका की थी, जो प्रलय-सागर की उत्ताल तरंगों में इधर-उधर भटक रही थी।

(२) पगली शब्द का प्रयोग करके कवि ने मानवीकरण अलङ्कार का प्रयोग किया है।

लगते प्रबल .... बनी वहीं।

शब्दार्थ—थपेड़े=लहरों के धक्के। कातरता=विवशता। नियति=वह नियामिका शक्ति, जो सम्पूर्ण संसार का नियमन करती है तथा जो सदैव प्राणियों के कल्याण में लगी रहती है। पथ बनी=मार्ग दिखाने वाली बन गई।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि मेरी उस नाव में तीव्र लहरों के बड़े जोर से धक्के लगते थे। समुद्र का जो धुंधला किनारा पहले थोड़ा-बहुत दिखाई देता था, पीछे बिल्कुल लुप्त हो गया था। ऐसी दशा में मुझे अपने जीवन के बारे में कुछ भी आशा नहीं रही थी और मेरी वह निराशा विवशता से भरी हुई थी, परन्तु मेरी उस निराशा को देखकर वहाँ विश्व की वह नियामिका शक्ति ही मेरी पथ-प्रदर्शिका बन गई थी।

टिप्पणी—नियति—इस नियति के बारे में कामायनी के टीकाकारों एवं व्याख्याताओं में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। वे इसे भाग्य का पर्यायवाची मानते हैं, परन्तु नियति भाग्य से पूर्णतया पृथक् है। भाग्य एक सीमित क्षेत्र में ही कार्य करता है, जबकि नियति विश्व-भर का नियमन करती है और उसके शासन में अखिल ब्रह्माण्ड का सारा कार्य चलता है, जैसा कि श्री अभिनवगुप्ताचार्य ने अपने तन्त्रालोक में भी लिखा है—

"नियतिर्योजनां धत्ते विशिष्टे कार्यमंडले।" (भाग ६, पृ० ६०)

इस 'नियति' को तन्त्रों या शैवागमों में ३६ तत्त्वों में से एक तत्त्व भी माना गया है, जो भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न कारणों की योजना करता है। शैवागमों में से मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, मृगेन्द्रतन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र आदि में सर्वत्र नियति को विश्व के सम्पूर्ण कार्य-कलापों की योजना करने वाली नियामिका शक्ति बताया है।

इसके अतिरिक्त योगवाशिष्ठ में 'नियति' को महासत्ता, महाचिति, महाशक्ति, महादृष्टि, महाक्रिया, महोद्भव, महास्पन्द आदि नामों से पुकारा गया है और लिखा है कि तृण से लेकर महारुद्र पर्यन्त जितना भी विश्व है, उसमें सर्वत्र नियति के ही

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

नियमों का पालन दिखाई देता है। (योगवाशिष्ठ, २।१०।१,३।६२।६-११,६।३७।२१)। अतः प्रसाद की 'नियति' एक सीमित क्षेत्र में कार्य करने वाले 'भाग्य' की पर्यायवाची नहीं है, अपितु वह परब्रह्म की एक शक्ति होने के कारण समस्त ब्रह्माण्ड का नियमन एवं शासन करने वाली है और ब्रह्म रूप ही है।

लहरें व्योम .... संसृति रचतीं।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। चपलाएँ=बिजलियाँ। असंख्य=अगणित। गरल-जलद=विष-तुल्य विनाशकारी जल बरसाने वाला बादल। खड़ी झड़ी=तीव्र मूसलाधार वर्षा। संसृति=संसार।

व्याख्या—उस समय समुद्र की लहरें इतनी ऊँची-ऊँची उठ रही थीं कि वे आकाश को चूमती हुई सी ज्ञात होती थीं। उधर आकाश में असंख्य बिजलियाँ नृत्य करती हुई सी चारों ओर चमक रही थी और जल की बूँदें विष बरसाने वाले बादलों की मूसलाधार वर्षा द्वारा अपना एक नया जलमय संसार बना रही थीं, अर्थात् उस समय की उस भयंकर वर्षा ने सम्पूर्ण संसार को जल-मग्न करके एक जल-जगत् का निर्माण कर दिया था, क्योंकि आकाश और पृथ्वी दोनों जलमय हो रहे थे।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ चित्र-भाषा का प्रयोग करके प्रलय-सागर का सजीव चित्र अंकित किया है और 'बूँदें निज संसृति रचतीं' से कवि का अभिप्राय वर्षा की उन बूँदों द्वारा जगत् के जल-मग्न हो जाने से है।

(२) लहरों के आकाश चूमने तथा चपलाओं के नाचने में कवि ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है।

चपलाएँ उस .... रोती थीं।

शब्दार्थ—जलधि विश्व=जलमय जगत्। चमत्कृत=आश्चर्य में पड़कर चमकना। विराट वाडव ज्वाला=विशाल समुद्र के अन्दर रहने वाली आग की तीव्र लपटें। खण्ड-खण्ड हो=टुकड़े-टुकड़े होकर।

व्याख्या—प्रलय के उस विशाल जलमय जगत् में बरसते हुए पानी के अन्तर्गत बिजलियाँ आश्चर्य में पड़ी हुई सी बार-बार चमक रही थीं, जिन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता था, मानो विशाल वाड़वाग्नि की लपटें टुकड़े-टुकड़े होकर रो रही हों।

टिप्पणी—(१) प्रलय की घनघोर वर्षा में ऊपर-नीचे सर्वत्र पानी ही पानी दिखाई देने के कारण कवि ने उसे 'जलधि-विश्व' कहा है और उस समय चमकने वाली बिजलियों को 'विराट वाडव ज्वालाएँ' बताकर एक अनूठी कल्पना की है, जो सर्वथा न्यायसंगत है और बिजली तथा वाडवाग्नि दोनों में साम्य भी है। इसके अतिरिक्त बरसते हुए पानी के द्वारा वाडवाग्नि के रोने की कल्पना भी अद्भुत है। इन सभी सम्भावनाओं के कारण यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार है और प्रकृति का सुन्दर दृश्य-बिम्ब है।

(२) यहाँ तक महाप्रलय के सम्पूर्ण चित्रण में 'काल-वैचित्र्य-वक्रता' का चमत्कार विद्यमान है।

जलनिधि .... सुख पाते।

शब्दार्थ—तलवासी=समुद्र के निचले भाग या तली में रहने वाले। जलचर=जल के जीव-जन्तु। उतराते=तैरने लगते। विलोडित=मथित या नष्ट-भ्रष्ट।

व्याख्या—समुद्र के अन्तर्गत उसके निचले भाग में रहने वाले जीव-जन्तु जल के तीव्र प्रवाह से बेचैन होकर ऊपर निकल-निकल कर तैरने लगे थे। लहरों के तीव्र थपेड़ों ने उनके घर मथ डाले थे, जिससे उनके घर नष्ट हो चुके थे और घरों के विनष्ट हो जाने पर संसार में कोई भी प्राणी किसी स्थान पर कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

टिप्पणी—यहाँ पर समुद्र के जीव-जन्तुओं की बेचैनी का समर्थन करने के लिए यह सामान्य बात कही गई है कि 'गृह के विनष्ट हो जाने पर कोई भी प्राणी कहीं सुख नहीं पाता।' अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

घनीभूत हो उठे .... थी रुद्ध।

शब्दार्थ—घनीभूत=ठोस होना, सघन होना अथवा किसी स्थान पर हवा का भर जाना। रुद्ध=रुकना। चेतना=ज्ञान, होश, प्राण। बिलखाती=बेचैन होती। दृष्टि विफल होती=कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। क्रुद्ध=क्षुभित, व्यथित।

व्याख्या—जब किसी एक स्थान पर वायु भर जाती है और उसके निकलने को उचित स्थान नहीं मिलता, तब वहाँ वायु सघन हो जाती है और उस स्थान पर श्वास लेना कठिन हो जाता है। इसी भाँति प्रलय में सर्वत्र जल के बढ़ जाने से वायु रुक गई थी, जिससे श्वासों की गति भी रुकने लगी थी अर्थात् दम घुटने लगा था। उस समय साँस लेने के लिए वायु के न मिलने के कारण प्राण बेचैन हो रहे थे और क्षुभित होने के कारण आँखों से भी कुछ दिखाई नहीं देता था।

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने वायु के किसी एक स्थान पर भर जाने या रुक जाने पर जो दम घुटने (Suffocation) की स्थिति पैदा हो जाती है, उसका यथार्थ चित्रण किया है, क्योंकि ऐसे स्थान पर पहले साँस लेने में कष्ट होता है, फिर दम घुटने लगता है और उसके बाद आँखों के सामने भी अँधेरा छा जाता है तथा कुछ दिखाई नहीं देता।

उस विराट .... से जगते।

शब्दार्थ—विराट आलोड़न=विशाल समुद्र-मंथन। बुद-बुद=बुलबुले। प्रखर प्रलय-पावस=भयंकर विनाशकारिणी तीव्र वर्षा। ज्योतिरिंगण=जुगनू या खद्योत।

व्याख्या—प्रलय के समय ऊँची-ऊँची लहरों के तीव्र थपेड़ों से उत्पन्न होने वाले उस विशाल समुद्र-मंथन में सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रह और अश्विनी, भरिणी, ध्रुव आदि तारागण बुलबुले के समान दिखाई देते थे। इसके अतिरिक्त उस भयंकर विनाशकारिणी तीव्र वर्षा में वे सभी ग्रह और तारे इस तरह चमक रहे थे, जैसे वर्षाकाल में जुगनू इधर-उधर चमका करते हैं।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

टिप्पणी—यहाँ कवि ने ग्रह और तारों को बुलबुले तथा जुगनुओं के समान कहा है। बुलबुले से समानता देने में कवि का अभिप्राय यह है कि जिस तरह दही या दूध के मथने पर बुलबुले उठते हैं और वे फूटते तथा बनते रहते हैं, उसी तरह प्रलय के इस विशाल मंथन में ग्रह और तारे कभी दिखाई देते थे और कभी नहीं दिखाई देते थे, किन्तु दीखने और छिपने की यह क्रिया बड़ी तेजी के साथ हो रही थी। दूसरे, जुगनुओं के समान बताने से कवि का अभिप्राय: यह है कि उनमें अधिक प्रकाश नहीं रहा था और वे टिमटिमाते से जुगनुओं की तरह कभी चमक जाते थे और कभी नहीं चमकते थे। अतः दोनों बिम्ब अतीव सुन्दर हैं और यहाँ उपमा अलंकार है।

प्रहर दिवस .... पा सकता।

शब्दार्थ—प्रहर=एक दिन का आठवाँ भाग। २४ घण्टे में ८ प्रहर होते हैं। अतः एक प्रहर ३ घण्टे का होता है। सूचक=संकेत करने वाले या बताने वाले। उपकरण=साधन।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि वह प्रलय कितने पहर और कितने दिनों तक चलती रही, इस बात को कौन ठीक-ठीक बता सकता है, अर्थात् कोई भी नहीं बता सकता; क्योंकि जिस सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों की सहायता से पहर और दिवसों का संकेत मिलता है, उन उपकरणों का तो उस समय चिह्न भी कहीं दिखाई नहीं देता था।

टिप्पणी—यहाँ पर अन्तिम पंक्तियों में पहर और दिवस का ज्ञान न होने का कारण भी दे दिया गया है। अतः इन पंक्तियों में काव्यलिंग अलंकार है।

काला शासन .... मरण रहा।

शब्दार्थ—काला शासन-चक्र=दमन करने वाली बुरी राज्य-प्रणाली, किन्तु लक्षणा से यहाँ इसका अर्थ है—विनाशकारी कार्य। महामत्स्य=बड़ी मछली। चपेटा=धक्का, टक्कर। दीन पोत=दयनीय अवस्था वाली नाव।

व्याख्या—मनु कहते हैं कि उस प्रलयकाल में मृत्यु का यह विनाशकारी कार्य कब तक चलता रहा, इसका मुझे आज स्मरण नहीं है। बस केवल इतना ही स्मरण है कि मेरी उस इधर-उधर भटकने वाली असहाय नाव में एक बड़ी मछली ने बड़े जोरों से धक्का लगाया था, जिससे उस समय तो यही ज्ञात होता था कि यह दुर्बल एवं असहाय नाव टुकड़े-टुकड़े होकर इसी प्रलय के समुद्र में डूब जायेगी।

टिप्पणी—(१) काला शासन-चक्र—काला शब्द अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि का द्योतक है। अतः मृत्यु का 'काला शासन-चक्र' कहकर कवि ने यह संकेत किया है कि उस समय प्रलय के द्वारा मृत्यु संसार के सभी पदार्थों का विनाश इस तरह कर रही थी, जिस तरह कोई क्रूर एवं नृशंस राजा अपने शासन की दमनकारी नीति द्वारा हिंसा-कार्य करता हुआ अपनी सम्पूर्ण प्रजा का विनाश करता है। अतः यहाँ प्रलयकारी प्रकृति का बिम्ब-विधान तथ्यपूर्ण है।

(२) **दीन पोत का मरण**—कवि ने यहाँ लक्षणा-शक्ति द्वारा पोत की क्षीण अवस्था तथा उसके नष्ट-भ्रष्ट होकर डूब जाने की आशंका प्रकट की है। इसी कारण उसे पहले 'दीन' कहकर पुनः उसके 'मरण' की ओर संकेत किया है। अतः दीन और मरण शब्दों द्वारा यहाँ नौका में चेतना का आरोप किया गया है। इसी से इस पंक्ति में मानवीकरण अलङ्कार है।

किन्तु उसी ने .... फिर से।

शब्दार्थ—उत्तर गिरि=भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत। शिर=ऊँची चोटी। देव-सृष्टि का ध्वंस=देवजाति का विनाश। श्वास लेने लगा=पुनः प्राणवान् हो उठा।

व्याख्या—मनु कहते हैं, किन्तु बड़ी मछली के उस तीव्र धक्के ने मेरी नौका को हिमालय की इस ऊँची चोटी पर पहुँचा दिया। मैं तो समझ रहा था यदि मैं भी डूब गया तो समस्त देव-जाति पूर्णतः नष्ट हो जायगी, परन्तु इस हिमालय की उन्नत चोटी पर अचानक आ जाने के कारण वह नष्टप्राय देव-जाति फिर से जीवित हो उठी।

टिप्पणी—'ध्वंस फिर से श्वास लेने लगा' में कवि का अभिप्राय यह है कि ध्वंसित जाति मनु के रूप में फिर से साँस लेने लगी। कवि ने यहाँ विशेषण को संज्ञा रूप देकर चमत्कार उत्पन्न किया है। अतः यहाँ विशेषण-विपर्यय अलङ्कार है। दूसरे, जिस वस्तु का ध्वंस हो चुका है वह फिर कैसे श्वास ले सकती है। अतः यहाँ विरोधाभास अलङ्कार भी है।

आज अमरता .... विष्कंभ।

शब्दार्थ—भीषण=भयानक। जर्जर=थोथा, हीन, तुच्छ। दम्भ=अहंकार। सर्ग=(१) सृष्टि, (२) अध्याय। प्रथम अंक=(१) पहला चरण, (२) काव्य या नाटक का पहला अंक। अधम पात्रमय=नीच पात्र से युक्त। विष्कंभ=अंकों के आदि या मध्य में रखा जाने वाला वह अंश, जिसमें बीते हुए अथवा भविष्य में होने वाले कथांशों का संकेत किया जाता है।

व्याख्या—मनु अपनी देव-जाति की अहम्मन्यता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहते हैं कि आज मैं देवताओं के उस थोथे एवं मिथ्या अभिमान के रूप में जीवित हूँ जो अत्यन्त भयानक था और जिसके परिणामस्वरूप देव-जाति अमरता की तुच्छ भावना में लीन होकर नष्ट हो गई। हाय! आज मैं नई सृष्टि के विकास से पूर्व एक तुच्छ व्यक्ति की तरह संसार में सबसे पहले उत्पन्न होने वाली देव-जाति के विनाश की उसी तरह सूचना दे रहा हूँ, जिस तरह नाटकों में किसी अंक के आरम्भ होने से पहले विष्कंभक के अन्तर्गत कोई अधम पात्र कुछ बीती हुई बातों को दर्शकों अथवा पाठकों की जानकारी के लिए सुनाया करता है।

टिप्पणी—(१) 'अमरता का भीषण जर्जर दंभ' कहकर कवि ने यह संकेत

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

किया है कि देवगण अमरता के मिथ्या गर्व में अपने को पूर्णतया भूल गये थे और वही मिथ्या गर्व उसके विनाश का कारण बन गया।

(२) विष्कंभ को संस्कृत नाट्य शास्त्रों में 'विष्कंभक' भी कहा गया है और दशरूपककार धनंजय ने विष्कंभ की परिभाषा इस प्रकार की है—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कंभो मध्यपात्र प्रयोजितः॥

अर्थात् जो कथांश बीत चुके हों या जो भविष्य में होने वाले हों, संक्षेप में उन कथांशों का दिग्दर्शन कराने वाला अर्थोपक्षेपक 'विष्कम्भ' कहलाता है। साहित्य-दर्पणकार ने इसकी परिभाषा यह दी है—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भः आदावंकस्य दर्शितः॥

अर्थात् बीते हुए अथवा आगामी कथांशों को संक्षेप में दिग्दर्शन कराने वाला विष्कम्भ होता है और यह अंक के प्रारम्भ में आता है। आचार्यों ने इस विष्कम्भ को दो प्रकार का बताया है—"एकानेककृतः शुद्धः, संकीर्णो नीचमध्यमैः।" अर्थात् जिसमें एक या अनेक मध्यम श्रेणी के पात्र हों, वह शुद्ध विष्कम्भ होता है और जिसमें नीच तथा मध्यम श्रेणी के पात्र मिले हुए हों वह संकीर्ण विष्कम्भ कहलाता है।

(३) कवि ने 'सर्ग का प्रथम अंक' कहकर देवताओं को सृष्टि में सबसे पहले उत्पन्न होने वाला माना है और मनु को 'विष्कंभ' के समान कहकर सुन्दर एवं सटीक नाटकीय बिम्ब प्रस्तुत किया है, क्योंकि नाटकों में कथावस्तु दो प्रकार से सूचित की जाती है; उसका कुछ भाग तो अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जो 'दृश्य' कहलाता है और कुछ भाग रङ्गमंच पर पात्रों के मुखों से कहलवा दिया जाता है, जो 'सूच्य' कहलाता है। इस 'सूच्य' कथा के लिए ही विष्कंभ, प्रवेशक आदि की अवतारणा होती है। यहाँ पर भी देव-सृष्टि का विनाश पाठकों को दिखाया नहीं गया है, अपितु उसका वर्णन मनु अपने मुख से एक 'सूच्य' कथा-भाग की तरह कर रहे हैं। अतः इस उपमा द्वारा कवि ने काव्य में अच्छा चमत्कार उत्पन्न किया है।

(४) यहाँ 'भीषण जर्जर दम्भ' में रूपक अलंकार है। 'सर्ग' में श्लेष है और अन्तिम पंक्ति में उपमा अलंकार है।

ओ जीवन .... जर्जर अवसाद।

शब्दार्थ—मरु-मरीचिका=मृग-जल, मृग-तृष्णा या मिथ्या जलाभास। अलस विषाद=आलस्यपूर्ण उदासी या उत्साहहीनता। पुरातन अमृत=देवताओं की पुरानी अमरता की भावना। अगतिमय=उन्नतिहीन, प्रगतिहीन अथवा अवनति की ओर ले जाने वाली। मोहमुग्ध=मोह के कारण मूढ़ बना देने वाली। जर्जर अवसाद=दुर्बलता से भरी हुई शिथिलता।

व्याख्या—मनु यहाँ पर देवों की उस पुरानी अमरता की भावना को घृणा

की दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि अरी देवों का सर्वनाश करने वाली अमरता की प्राचीन भावना! तेरे कारण ही देवों का जीवन मृग-तृष्णा के तुल्य हो गया था, जिससे वे तृषित होकर विषयों में उसी तरह अधिकाधिक प्रवृत्त होते थे, जिस तरह प्यासा हिरन मरुस्थल में सूर्य की किरणों से उत्पन्न मिथ्या जल के पीछे पागल होकर दौड़ता रहता है। अरे, तेरे कारण ही देवों में आलस्यपूर्ण उत्साहहीनता भर गई थी, जो उनकी कायरता को प्रकट करती थी। अरे, तेरे कारण ही आगे चलकर उनकी प्रगति रुक गई, जिससे वे गतिहीन होकर दुर्बलता से भरी हुई शिथिलता के शिकार हो गये और मोह से विमूढ़ होकर अवनति की ओर बढ़ने लगे।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर 'अमरता' से कवि का अभिप्राय सम्पन्नता से है और सब प्रकार से सम्पन्न होने पर व्यक्तियों की जो दशा होती है, उसका यथार्थ चित्र कवि ने यहाँ अंकित किया है। अतः यह वर्णन मनोवैज्ञानिक है।

(२) 'मोह' और 'मुग्ध' दोनों शब्द 'मुह' धातु से बने हैं। मुग्ध कहने से भी 'मुग्धमोह' की ही प्रतीति होती है, परन्तु दोनों शब्दों का समासगर्भित प्रयोग मोह की अतिशय व्यंजना का रहा है। अतः यहाँ समास-जन्य वृत्ति-वक्रता है।

(३) यहाँ 'पुरातन अमृत' को कवि ने मरु-मरीचिका, अलस विषाद, जर्जर अवसाद आदि कहा है। अतः इन पंक्तियों में रूपक अलंकार है। साथ ही 'अमृत' के 'अगतिमय' कहने में विरोधाभास अलंकार भी है। इसके अतिरिक्त अमरता की भावना के लिए मरीचिका, विषाद आदि कहकर साभिप्राय विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ पर परिकर अलंकार भी है।

मौन नाश .... अब ठाँव।

शब्दार्थ—मौन=चुप हो जाना। विध्वंस=सब कुछ नष्ट हो जाना। अभाव=कमी। अमरते=अमरता की भावना। ठाँव=स्थान।

व्याख्या—मनु पुनः देवों की अमरता को हेय दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि अरी अमरता की भावना! तेरे उत्पन्न होने से ही देव-जाति में सर्वत्र सुख और आनन्द का कोलाहल मच गया था, वे अपने वैभव को स्थायी समझकर उन्मत्त हो उठे थे और वे स्वयं को निरन्तर आलोकपूर्ण, अभावहीन, सर्वसम्पन्न आदि समझने लगे थे, परन्तु आज पता चला है कि अमरते! तेरे द्वारा उत्पन्न होने वाला वह आनन्द का कोलाहल सत्य नहीं था, अपितु आज मृत्यु की यह मौन अवस्था सत्य है। वह उनका वैभवपूर्ण अस्तित्व सत्य नहीं था, अपितु उनका यह विनाश एवं विध्वंस सत्य है। उनका वह आलोक सत्य नहीं था, अपितु आज का यह अन्धकार सत्य है। उनकी वह अभावहीनता सत्य नहीं थी, वरन् यह अभाव सत्य है, जो आज शून्य बनकर सर्वत्र दिखाई दे रहा है। इसलिए अरी अमरते! इस संसार में तेरे लिए कहीं भी स्थान नहीं है, क्योंकि तू सत्य नहीं है।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ मनु की विषादपूर्ण अवस्था का सुन्दर मनोवैज्ञा-

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

निक चित्रण किया है, क्योंकि एक दुःखी व्यक्ति को यह संसार ऐसा ही मौन, नाश, विध्वंस आदि से परिपूर्ण दिखाई देता है। वैसे प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा के अनुसार यह संसार 'चिति का विराट शरीर' होने के कारण अखण्ड आनन्दपूर्ण है, परन्तु संसार की इस स्थिति का ज्ञान बड़ी साधना अथवा गहन चिंतन के उपरान्त होता है।

(२) यहाँ कवि ने जिस तरह अमरता की निन्दा और मृत्यु की प्रशंसा की है, वैसे ही महादेवी जी भी लिखती हैं—

अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास।

—आधुनिक कवि, पृ० ३५

मृत्यु, अरी .... सी हलचल।

शब्दार्थ—चिर निद्रा=एक लम्बी अवधि तक सुलाने वाली नींद। अंक=गोद। हिमानी=हिम-समूह या बर्फ का ढेर। शीतल=(१) ठण्डी, (२) शान्ति-दायिनी। अनन्त=अखिल ब्रह्माण्ड। लहर बनाती=क्रमशः विनाश कार्य करती रहती है। काल-जलधि=युग रूपी समुद्र।

व्याख्या—अब मनु अमरता के विपरीत मृत्यु को सत्य बताते हुए उसको सम्बोधित करके कहते हैं—अरी मृत्यु ! तू दीर्घकाल तक सुलाने वाली नींद है और तेरी गोद बर्फ के ढेर के समान अत्यन्त शीतलता एवं चिर शान्ति देने वाली है। तू प्रत्येक युग में अखिल विश्व के अन्तर्गत पदार्थों का क्रम-क्रम से विनाश करती हुई ऐसी हलचल पैदा करती है, जैसी कि समुद्र में लहरों के कारण होती है।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने संसार के पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश का सम्बन्ध समुद्र की लहरों से जोड़ा है और यह सिद्ध किया है कि संसार के सभी पदार्थ बनते-बिगड़ते रहते हैं तथा यह कार्य मृत्यु द्वारा होता रहता है। अतः किसी को 'अमर' कहना ठीक नहीं है।

(२) 'चिर निद्रा' में रूपक है, 'हिमानी-सा शीतल' में पूर्णोपमा है, 'अनन्त' में श्लेष है और 'काल-जलधि' में पुनः रूपक अलंकार है। साथ ही 'हिमानी' और 'जलधि' द्वारा सुन्दर एवं सजीव प्राकृतिक बिम्बों का निर्माण किया गया है। अतः यहाँ स्पृश्य अलंकृत बिम्ब है।

महानृत्य का .... अभिशाप।

शब्दार्थ—महानृत्य=संहारकारी तांडवनृत्य। विषम=भयंकर। सम=सङ्गीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरम्भ होता है। अखिल स्पंदन=संसार की समस्त गतिशीलता। माप=सीमा। विभूति=(१) ऐश्वर्य, (२) धूल या राख। अभिशाप=अनिष्ट का हेतु।

व्याख्या—अरी मृत्यु ! तू संसार के संहारकारी तांडवनृत्य का वह भयंकर

सम है, जहाँ पहुँचते ही जीवन की सम्पूर्ण लय समाप्त हो जाती है और फिर जीवन के एक नये ताल का प्रारम्भ होता है। अरी मृत्यु ! तू जगत् की सम्पूर्ण गतिशीलता को समाप्त कर देती है, क्योंकि तू जगत् की गतिविधियों की सीमा है। हे मृत्यु ! तेरे द्वारा नष्ट-भ्रष्ट पदार्थों की धूल या राख से ही पुनः नव-सृष्टि का निर्माण होता है किन्तु वह नव-सृष्टि भी सदैव अनिष्ट का हेतु बनकर विकसित होती है, क्योंकि तू उसका पुनः विनाश कर डालती है।

टिप्पणी—(१) यहाँ मृत्यु का यथार्थ चित्रण किया गया है, क्योंकि वह एक ओर विनाश करती है, तो दूसरी ओर उसी विनाश से नई सृष्टि का विकास भी करती है। अतः यहाँ 'महानृत्य' के द्वारा अंकित सांस्कृतिक बिम्ब बड़ा ही मार्मिक है।

(२) 'विषम सम' में विरोधाभास अलंकार है। 'विभूति' में श्लेष है तथा मृत्यु को 'विषम सम' और 'माप' कह कर रूपक अलंकार का भी प्रयोग किया है।

अन्धकार के .... है नित्य।

शब्दार्थ—अट्टहास=जोर की हँसी, किन्तु 'अन्धकार के अट्टहास' का लाक्षणिक अर्थ है, अन्धकार का घनीभूत होकर सर्वत्र छा जाना। मुखरित=ध्वनित, सर्वत्र सुनाई पड़ने वाला। सतत=निरंतर। चिरंतन=सनातन, सर्वकालीन। नित्य=सदैव रहने वाला।

व्याख्या—अरी मृत्यु ! तू सर्वत्र व्याप्त सघन अन्धकार के समान है, क्योंकि जिस तरह घना अन्धकार अपने अन्दर सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को विलीन कर लेता है, वैसे ही तू भी प्रत्येक पदार्थ को विलीन कर लेती है। तू एक ऐसा सनातन सत्य है, जो तीनों कालों में निरन्तर सुनाई देता है, क्योंकि तेरा अस्तित्व सदैव रहता है। तू सृष्टि के प्रत्येक कण में सदैव छिपी रहती है और अवसर आते ही उसे नष्ट करके उनको नया रूप देती हुई फिर उसमें अपना स्थान बना लेती है। तेरा यह सुन्दर रहस्य सदैव विद्यमान रहता है।

टिप्पणी—(१) 'हास' साधारण हँसी को कहते हैं, परन्तु 'अट्टहास' वह हास कहलाता है जो दूर तक सुनाई दे तथा जो अधिक व्यापक हो। अतः कवि ने यहाँ 'अन्धकार के अट्टहास सी' कहकर लक्षणा के सहारे अन्धकार की अधिक व्यापकता की ओर संकेत किया है। इसमें उपमा अलंकार है और 'अट्टहास' के द्वारा मृत्यु का सजीव बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

(२) मृत्यु के कण-कण में छिपे रहने को कवि ने 'सुन्दर रहस्य' कहा है। यह रहस्य तो इसलिए है कि मृत्यु किसी को दिखाई नहीं देती और सदैव सर्वत्र छिपी बैठी रहती है। परन्तु 'सुन्दर' इसलिए कहा है कि यह मृत्यु तुच्छ, हेय एवं अयोग्य पदार्थों का विनाश करके नित्य छिपे-छिपे नव-निर्माण का कार्य भी करती रहती है। अतः मृत्यु का यह रहस्य निस्संदेह सुन्दर है। मृत्यु की नित्यता और अनिवार्यता का निरूपण अध्यात्म रामायण में इस प्रकार मिलता है—

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जन्मवान् यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात् ।
तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदः ॥
(अध्यात्म रामायण, अयो०, ७/६६)

जीवन तेरा .... उजाला में ।

शब्दार्थ—क्षुद्र=तुच्छ, लघु । अंश=भाग । व्यक्त=प्रकट, प्रत्यक्ष । नील घनमाला=नीले बादलों की घटाएँ । सौदामिनी - बिजली । संधि=दरार ।

व्याख्या—अरी मृत्यु ! संसार का सम्पूर्ण जीवन तेरा एक तुच्छ एवं लघु अंश है, क्योंकि यह जीवन तुझमे ही तो उत्पन्न होता है । यह जीवन इस जगत् में क्षण भर के लिए प्रकट होकर पुनः तुझ में इस तरह विलीन हो जाता है, जिस तरह आकाश में घिरी हुई कृष्णवर्ण की मेघमाला में बिजली की दरार एक क्षण के लिए सुन्दर ढंग से चमककर पुनः उसमें ही विलीन हो जाती है ।

टिप्पणी—(१) कवि ने जीवन और मृत्यु का अंशाशी सम्बन्ध बताया है । यहाँ जीवन अंश और मृत्यु अंशी है । यह ठीक भी है, क्योंकि ऊपर कवि 'तेरी ही विभूति बनती है सृष्टि' कहकर पहले ही यह सिद्ध कर चुका है कि जीवन सदैव मृत्यु से ही उत्पन्न होता है ।

(२) कवि ने जीवन को बिजली के समान क्षणिक कहा है । उसके ऐसे ही विचार 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भी व्यक्त हुए हैं । यथा—"मनुष्य की अदृष्ट लिपि वैसी ही है जैसी अग्निरेखाओं से कृष्णमेघ में बिजली की वर्णमाला—एक क्षण में प्रज्वलित, दूसरे क्षण में विलीन होने वाली ।" (पृ० १२६)

(३) जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में अध्यात्म रामायण में भी लिखा है—

ब्रह्मांडकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः ।
शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते ॥
चलपत्रान्तलग्नाम्बु बिन्दुवत् क्षणभंगुरम् ॥
(अयो०, ७।१०१, १०२)

अर्थात् करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेक सृष्टियाँ बीत गईं, ये सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायेंगे, फिर इस क्षणिक जीवन में भला क्या आस्था की जाय ? यह आयु हिलते हुए पत्ते की नोंक पर लटकती हुई जल की बूँद के समान क्षणभंगुर है ।

(४) जीवन को 'सौदामिनी सन्धि सा' कहकर कवि ने भाव-साम्य के आधार पर सुन्दर पूर्णोपमा अलंकार का प्रयोग किया है और कवि का यह दार्शनिक बिम्ब मार्मिक है ।

पवन पी रहा .... के पास ।

... विलीन हो रहे थे । निर्जनता की

उखड़ी साँस=नीरवता समाप्त हो गई । दीन प्रतिध्वनि=विवशता से भरी हुई आवाज ।

व्याख्या—कवि कहता है कि मनु के ये शब्द शनैः-शनैः वायु में विलीन होते जा रहे थे, जिनके परिणामस्वरूप अब वहाँ नीरवता समाप्त हो गई थी और मन के शब्द की वह ध्वनि हिमालय की बर्फीली चोटियों से टकराती हुई खिन्नता एवं विवशता से भरी हुई प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई पड़ती थी ।

धू-धू .... थे भृत्य ।

शब्दार्थ—धू-धू करना=धू-धू की विनाशकारी ध्वनि करता हुआ । अनस्तित्व =विध्वंस । तांडव नृत्य=विनाशकारी कार्य । विद्युत्कण = अणु-परमाणु आदि (electron, Proton etc.) । भारवाही=बोझा ढोने वाले । भृत्य= दास ।

व्याख्या—अभी तक विध्वंस का वह विनाशकारी कार्य समाप्त नहीं हुआ था, अपितु वह चारों ओर धू-धू की भंयकर ध्वनि करता हुआ सृष्टि के पदार्थों को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा था । उस समय पारस्परिक आकर्षण-शक्ति के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण सम्पूर्ण अणु-परमाणु बोझा ढोने वाले दासों के समान इधर-उधर बिखरकर बोझा ढोते हुए से दिखाई देते थे ।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने 'धू-धू' शब्दों द्वारा विध्वंसकारी कार्य की भयंकर ध्वनि को भी अङ्कित कर दिया है । अतः यहाँ नाद-सौन्दर्य विद्यमान है और ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार है साथ ही क्रिया विशेषण-वक्रता भी है ।

(२) कवि ने यहाँ आधुनिक विज्ञान के अणु-परमाणु एवं विद्युत्कण सम्बन्धी सिद्धान्त की ओर भी संकेत किया है, क्योंकि वैज्ञानिकों की राय है कि सृष्टि के अन्दर सदैव बिजली के कण जैसे अणु-परमाणु चक्कर लगाते रहते हैं । जब वे परस्पर मिलते हैं तो उनसे निर्माण कार्य होता है और जब वे आकर्षणहीन होकर बिखर जाते हैं, तब विनाश कार्य होता है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने इनके नाम इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन दिए हैं ।

(३) आकर्षण-विहीन विद्युत्कणों की 'भारवाही भृत्य' के रूप में सुन्दर एवं समीचीन कल्पना की गई है । यहाँ रूपक अलङ्कार है और एक मार्मिक प्राकृतिक बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।

मृत्यु सदृश .... थी वृष्टि ।

शब्दार्थ—शीतल निराशा=अवसादपूर्ण निराशा । आलिंगन पाती थी= अनुभव होता था । परम व्योम=विस्तृत एवं व्यापक आकाश । भौतिक कण= पृथ्वी, जल आदि पंच तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व के स्थूल कण । घने कुहासों= सघन कुहरा । वृष्टि=वर्षा ।

व्याख्या—उस विध्वंस कार्य को देखकर आँखों को मृत्यु के समान एकमात्र अवसादपूर्ण निराशा का ही अनुभव होता था, परन्तु अब वातावरण में परिवर्तन होने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लगा था और इस विस्तृत एवं व्यापक आकाश से पृथ्वी या जल के स्थूल कणों की भाँति सघन कुहरे की वर्षा होने लगी थी, अर्थात् चारों ओर घना कुहरा छा गया था।

टिप्पणी—'मृत्यु सदृश····पाती थी दृष्टि'—यहाँ कवि ने यह बताया है कि जिस तरह मृत प्राणी को देखकर एकमात्र शिथिलता अथवा अवसाद से भरी हुई निराशा होती है, उसी तरह देव-जाति का विनाश देखकर मनु की आँखों में भी अवसादपूर्ण निराशा छा गई थी। यहाँ उपमा अलङ्कार है और 'मृत्यु' के द्वारा निराशा का एक सजीव भाव-बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है।

वाष्प बना .... होता प्रात।

शब्दार्थ—वाष्प = भाप। अति भैरव=अत्यन्त भयंकर। जल संघात=जल-समूह। सौर चक्र=मंगल, चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रहों का मण्डल। आवर्तन=चक्कर लगाना। प्रलय निशा=सृष्टि का विनाश करने वाला घना अन्धकार।

व्याख्या—अब वह अत्यन्त भयंकर जल-समूह धीरे-धीरे भाप बनकर ऊपर उड़ने लगा था। मंगल, चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रह अपनी पूर्व गति के अनुसार पुनः आकाश में चक्कर लगाने लगे थे। सृष्टि के पदार्थों का विनाश करने वाला प्रलय का गहनतम अन्धकार भी क्रमशः कम होता जा रहा था तथा प्राचीन दिशा में प्रभात के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

टिप्पणी—'प्रलय निशा का होता प्रात' इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जा सकता है कि प्रलय रूपी रात्रि का प्रभात हो रहा था, अर्थात् अब प्रलय उसी तरह समाप्त हो रही थी, जिस तरह प्रभात होते-होते रात्रि समाप्त होने लगती है। इस तरह अर्थ करने पर यहाँ रूपक अलङ्कार होगा। साथ ही 'प्रातः' कहकर कवि ने नवीन सृष्टि आरम्भ का एक सजीव एवं संश्लिष्ट प्राकृतिक बिम्ब भी अंकित किया है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

267

श्रद्धा-सर्ग

कथानक—एक दिन श्रद्धा नामक एक देव-युवती उधर हिमालय पर घूमती हुई मनु की इस निर्जन गुफा के समीप आ निकली और वहाँ आकर चिन्ता में निमग्न मनु से अचानक यह पूछने लगी कि "आप कौन हैं ? यहाँ अकेले बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं और आप इतने निराश और शिथिल क्यों दिखाई देते हैं ?" श्रद्धा की इस कोमल एवं मधुर वाणी के सुनते ही मनु के हृदय को एक झटका-सा लगा, वे लुटे हुए से देखने लगे और उस अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। श्रद्धा उस समय गांधार देश के नीले रोम वाले मेषों के कोमल चर्म धारण किए हुए थी। उसकी वेशभूषा अत्यन्त अद्भुत थी। उसने अपने आधे-आधे अंगों को ही चर्म से ढक रखा था। शेष आधे अंग खुले हुए थे, जिनमें से उसका अद्भुत रूप-सौन्दर्य झलक रहा था। उसके बाल खुले हुए थे और पीछे की ओर कंधों पर पड़े थे। उसके मुख पर मुस्कान छाई हुई थी। उसकी कोमल वाणी ने मनु के रोम-रोम को झंकृत कर दिया। उस अद्भुत रूप-सौन्दर्य-सम्पन्न दिव्य नारी के प्रश्न ने मनु के हृदय में हलचल उत्पन्न कर दी। पहले तो वे कुछ उत्तर न दे सके और बहुत देर तक उसकी नैसर्गिक छवि को देखते रहे, किन्तु फिर कहने लगे कि "मुझसे क्या परिचय पूछते हो ? मैं एक अत्यन्त अनाथ, असहाय और निराश प्राणी हूँ। मैं रात-दिन चिन्ताओं में डूबा रहता हूँ और मेरा जीवन पहेली के समान उलझा हुआ है। मैं क्या कहूँ कि मैं क्या हूँ ? बस इतना ही समझो कि मैं एक ऐसा उद्भ्रान्त प्राणी हूँ, जिसका सर्वस्व उजड़ चुका है और जिसे जीवन में केवल असफलताएँ ही प्राप्त हुई हैं, परन्तु यह तो बताओ कि इस तरह अचानक आकर मेरे निराश जीवन में आशा का संदेश देने वाले तुम कौन हो ?"

मनु का इतना परिचय पाकर तथा मनु को अपने बारे में उत्सुक जानकर श्रद्धा ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया कि मुझे ललित कलाओं से बड़ा प्रेम था और मैं इधर गन्धर्वों के देश में ललित कलाएँ सीखा करती थी। मुझे जब अवकाश मिलता था तब मैं इस हिमालय की सुन्दर श्रेणियों पर घूमा करती थी।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अचानक एक दिन हिमालय की इन चोटियों से समुद्र आकर टकराने लगा, जिसमें मेरे देखते-देखते गन्धर्वों का वह नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया। तब से मैं अकेली ही निरुपाय होकर इस हिमालय पर्वत पर इधर-उधर घूम रही हूँ। इधर आकर मैंने कुछ दूरी पर परोपकार की भावना से किसी अन्य प्राणी के लिए रखा हुआ बलि का अन्न देखा। उसे देखते ही मैंने अनुमान लगाया कि अवश्य ही यहाँ निकट में कोई प्राणी अभी जीवित है, जो दूसरों के जीवन हेतु इस तरह का उपकार करता रहता है, परन्तु तुम्हें देखकर मुझे आश्चर्य होता है। अरे तपस्वी ! तुम इतने दुःखी क्यों हो ? तुम्हारे हृदय में यह कैसी वेदना है ? अरे क्या कहीं तुम जीवन की जटिलताओं का अनुमान करके उनसे डर तो नहीं गये हो ? अथवा अपने भविष्य से अनजान होकर काम से तो नहीं झिझक रहे हो ? याद रखो, वह चेतना शक्ति सारे संसार में व्याप्त होकर निरन्तर आनन्दपूर्वक लीलाएँ कर रही है और उसकी लीला के कारण ही संसार का उद्भव और विनाश होता है। साथ ही जिस काम से तुम झिझक रहे हो, वह तो मंगलदायक है, श्रेयस्कर है और यह सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है। अतः उसे भूलकर तुम अपने जीवन को ही नहीं, अपितु सारे जगत् को असफल बना रहे हो। अतः तनिक से दुःखों के कारण निराश होने की आवश्यकता नहीं। ये सुख-दुःख तो दिन और रात की तरह आते-जाते ही रहते हैं। इसलिए दुःख से घबड़ाकर जीवन की उपेक्षा करना ठीक नहीं है।

इतना सुनकर भी मनु के हृदय का क्षोभ दूर न हुआ और वे यही कहते रहे कि "मैंने मान लिया कि आपकी वाणी में उत्साह उत्पन्न करने की बड़ी शक्ति है; किन्तु मैं इस जीवन को अच्छी तरह जानता हूँ कि यह कितना निरुपाय है और इसमें निराशा और असफलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

मनु के इन निराशा भरे वचनों को सुनकर श्रद्धा ने पुनः मनु को धीरज बँधाया और कहा कि जीवन में निराश होना ठीक नहीं, मानव को सदैव वीर पुरुषों की भाँति निरन्तर कर्म करते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिए। यदि तुम्हें कर्म करने में कुछ झिझक है, तो आज से मैं भी तुम्हें बराबर सहायता दूँगी और तुम्हारे निराश एवं असफल जीवन को आशाप्रद एवं सफल बनाऊँगी। इन शब्दों के साथ ही श्रद्धा ने मनु को भावी कार्यक्रम की कुछ रूपरेखा भी समझाई और उन्हें स्वयं शक्तिशाली होकर संसार में बिखरी हुई समस्त मानव-शक्तियों के समन्वय द्वारा विजयी होने की प्रेरणा दी।

संक्षिप्त समीक्षा—कामायनी का यह श्रद्धा-सर्ग अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है। इसका श्रीगणेश नाटकीय ढंग से हुआ है और श्रद्धा तथा मनु के सभी कथोपकथनों में अभिनेयता के साथ-साथ तीव्रता, प्रवाह, ओजस्विता, मार्मिकता, सजीवता आदि गुण विद्यमान हैं। परस्पर एक-दूसरे के प्रश्नों में कवि ने जादू सा भर दिया है और उन्हें पूर्णतया रंगमंच के अनुकूल ढाल दिया है। इन कथोपकथनों को लेकर एक सुन्दर संगीतमय नाटक (Opera) की योजना की जा सकती है। यहाँ कवि ने श्रद्धा

के जिस अनुपम एवं अपार्थिव सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत की है वह छायावाद की एक अपनी अद्भुत देन है। छायावादी कवि भक्तिकालीन अथवा रीतिकालीन कवियों की भाँति पुराने ढंग के नखशिख वर्णनों में उलझना पसन्द नहीं करता, अपितु वह थोड़ी सी रेखाओं, कुछ रंगों एवं कुछ सीन-सीनरियों द्वारा अंकित चित्रों की भाँति अपने पात्रों के अनिद्य सौन्दर्य की ऐसी अनुपम झाँकी प्रस्तुत कर देता है कि पाठक के हृदय पर उस सौन्दर्य की अमिट छाप पड़ती है और वह आजीवन उस सौन्दर्य-चित्र को भूल नहीं पाता। श्रद्धा के सौन्दर्य-चित्र में कवि प्रसाद ने इसी नवीन प्रणाली को अपनाया है। कवि ने बीच-बीच में मानव-जीवन की जटिलताओं का भी आभास दिया है तथा अपने पुष्ट दार्शनिक विचारों द्वारा मानव को संसार से विरक्त होकर पलायन करने की अपेक्षा संसार में ही रह कर कर्मशील बनते हुए आनन्द प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। कवि का यह कर्मण्यता का संदेश गीता के संदेश से किसी प्रकार कम नहीं है, क्योंकि इसमें मानव-जीवन को उन्नत बनाने के लिए दुःख और जीवन की अज्ञात जटिलताओं से न डरने, सदैव कर्मशील रहने, संसार के उद्भव और विनाश को उस ईश्वर की लीला मानने, दुःख को ईश्वर का वरदान समझने, नित्य नूतनता की ओर अग्रसर होने, शक्ति-संचय करने, विश्व की दुर्बलता को सबल बनाने, मानवता को विजयिनी बनाने के लिए समन्वय की भावना को अपनाने आदि की जो प्रेरणाएँ प्रदान की गई हैं, वे आधुनिक भ्रमित मानव के लिए श्रीमद्-भगवद्गीता की भाँति ही पथ-प्रदर्शन का कार्य कर रही हैं।

कौन तुम .... से अभिषेक ?

शब्दार्थ—संसृति-जलनिधि=भव-सागर। मणि=देदीप्यमान एवं श्रेष्ठ रत्न। निर्जन=नीरव स्थान, शून्य प्रदेश। प्रभा की धारा=कान्ति की किरणें, तेजोमय प्रवाह या तेज-समूह। अभिषेक=स्नान कराना, जल छिड़कना, किन्तु यहाँ लक्षणा से अर्थ है सुशोभित करना, आलोकमय बनाना या चमका देना।

व्याख्या—हिमालय की उस निर्जन घाटी में मनु की नीरव गुफा के समीप अचानक आकर श्रद्धा मनु से इस प्रकार पूछने लगती है—समुद्र की लहरें जिस तरह अपने थपेड़ों से मणियों को किनारे पर फेंक देती हैं, उसी तरह इस भव-सागर के थपेड़ों से आहत होकर इस शून्य प्रदेश में पड़े हुए तुम कौन हो ? अरे, जिस तरह समुद्र के किनारे पर पड़ी हुई कोई मणि उस नीरव तट को अपनी कान्तिपूर्ण किरणों से प्रकाशमय बना देती है, उसी तरह इस निर्जन प्रदेश में चुपचाप बैठ कर इसे अपने तेज-समूह से आलोकमय बनाने वाले तुम कौन हो ?

टिप्पणी—(१) श्रद्धा के इन शब्दों में यौवन के तेज से देदीप्यमान मनु का परिचय जानने की उत्सुकता तथा उस शून्य प्रदेश में अकेले पुरुष को बैठा हुआ देखकर उससे उत्पन्न कौतूहल एवं आश्चर्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

(२) समुद्र की लहरों द्वारा फेंकी हुई मणि से मनु की तुलना करके कवि ने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मनु की उस एकाकी जीवन की निराशापूर्ण स्थिति का सुन्दर एवं मार्मिक बिम्ब अङ्कित किया है ।

(३) संसृति में जलनिधि का तथा मनु में मणि का आरोप होने के कारण परम्परित रूपक अलङ्कार है तथा 'मणि' शब्द श्रेष्ठता का भी द्योतक है और उससे मनु के श्रेष्ठ पुरुष होने का भी आभास मिल रहा है । अतः सार्थक होने के कारण इस शब्द में परिकर अलङ्कार भी है ।

(४) यहाँ 'मणि' शब्द मनु के लिए आया है, किन्तु मनु शब्द पुल्लिग है और मणि स्त्रीलिंग है । अतः मनु के लिए स्त्रीलिंग उपमान मणि का आना लिंगत्व दोष के अन्तर्गत आता है, परन्तु कवि का मंतव्य यहाँ पर सादृश्य योजना द्वारा लिंगत्व बोध कराना प्रतीत नहीं होता, अपितु वह यहाँ पर मनु के शौर्य, तेज एवं प्रभाव को व्यक्त करना चाहता है । इसके अतिरिक्त मणि को साहित्य में श्रेष्ठ भी माना गया है । इसलिए श्रेष्ठ पुरुष को 'शिरोमणि' कहते हैं । अतः लिंगत्व दोष के रहते हुए भी 'मणि' शब्द अनुपयुक्त नहीं है ।

(५) इस सम्पूर्ण सर्ग में १६ मात्राओं का शृङ्गार छन्द अपनाया गया है ।

मधुर विश्रान्त .... मन का आलस्य ।

शब्दार्थ—मधुर=मधुरता से भरा हुआ । विश्रान्त=थकावट से परिपूर्ण । एकान्त=नीरवता से भरा हुआ । मौन=शान्ति, नीरवता । आलस्य=अकर्मण्यता का स्वरूप ।

व्याख्या—श्रद्धा मनु को अपने सम्मुख बैठा हुआ देख रही है, किन्तु मनु से पूर्णतया अपरिचित है, इसलिए मनु उसके लिए एक रहस्यमय व्यक्ति हैं । मनु की मुखाकृति से उसे इतना अवश्य ज्ञात हो रहा है कि वे संसार के थपेड़े खाए हुए एक थके और चिन्ताग्रस्त व्यक्ति हैं और उनके मुख से करुणा झलक रही है । इसी कारण यह अपरिचित मनु से कहती है—तुम मुझे इस मधुरता, थकावट तथा नीरवता से भरे हुए जगत् के एक सुलझे हुए रहस्य से जान पड़ते हो अर्थात् अपरिचित होने के कारण तुम मेरे लिए रहस्य हो, किन्तु प्राकृतिक सुषमा से भरे हुए इस नीरव प्रदेश में तुम एक थके हुए व्यक्ति की भाँति अकेले बैठे-बैठे कुछ सोच रहे हो और तुम्हारे हृदय के बहुत कुछ मनोभाव तुम्हारी मुखाकृति से स्पष्ट हो रहे हैं । इसलिए तुम रहस्य होकर भी मेरे लिए बहुत कुछ सुलझे हुए से ज्ञात हो रहे हो । इसके साथ ही तुम करुणा से भरे हुए एक सुन्दर मौन के रूप में दिखाई देते हो और इस तरह चुपचाप चिन्तन करते हुए एक अकर्मण्य व्यक्ति की भाँति बैठा हुआ देखकर मुझे ऐसा ज्ञात होता है, मानो तुमने चंचल मन के आलस्य का रूप धारण कर लिया हो । अतः बताओ तुम कौन हो ?

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने निराश एवं अकर्मण्य मनु की स्थिति का पूरा-पूरा चित्र अङ्कित करने के लिए उन्हें (i) 'सुलझा हुआ रहस्य' (ii) 'करुणामय सुन्दर मौन' तथा (iii) 'चंचल मन का आलस्य' कहा है । इन तीनों वाक्यों द्वारा लेखक ने क्रमशः मनु के जीवन-संघर्ष की भयानक स्थिति, उनके मुख पर छाई हुई निराशा एवं नीरवता तथा उनकी अकर्मण्यता का सजीव भाव-बिम्ब अंकित किया है ।

(२) यहाँ पर मनु में 'रहस्य', 'मौन' और 'आलस्य' का आरोप होने के कारण निरङ्ग रूपक अलङ्कार है । साथ ही कवि-कल्पना होने से गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है और सभी वाक्य मनु की विशेषता के द्योतक हैं । अतः यहाँ उल्लेख अलंकार भी है । इसके अतिरिक्त 'करुणामय सुन्दर मौन' में विशेषण-विपर्यय तथा 'चंचल मन का आलस्य' में विरोधाभास अलंकार भी हैं ।

सुना यह .... सुन्दर छन्द ।

शब्दार्थ—मधु-गुञ्जार=मधुर गूँज, मनोहर स्वर । मधुकरी=भौंरी, भ्रमरी । प्रथम कवि=आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ।

व्याख्या—उस नीरव प्रदेश में अकेले बैठे हुए मनु ने जब श्रद्धा की वह मधुर वाणी सुनी तब उन्हें कितना आनन्द प्राप्त हुआ, इसी अवस्था का चित्र अंकित करता हुआ कवि कहता है कि मनु उस नीरव प्रदेश में अपना मुख नीचा किए हुए अकेले बैठे थे कि अचानक उनके कानों में श्रद्धा की वह मनोहर वाणी आकर गूँजने लगी । उस समय कमल के समान अपना मुख नीचे की ओर झुकाए हुए मनु ने भ्रमरी की मधुर गुंज के समान श्रद्धा की मधुर वाणी सुनी । श्रद्धा का वह मधुर स्वर मनु के लिए इतना आनन्दमय था जितना कि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का वह प्रथम सुन्दर अनुष्टुप छन्द था, जो क्रौंच-वध के समय अनायास उनके मुख से निकल पड़ा था ।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने मनु के मुख को 'कमल' तथा श्रद्धा की वाणी को भ्रमरी की मधुर गूँज कहकर सुन्दर सादृश्य विधान द्वारा उस स्थिति का सजीव एवं संश्लिष्ट बिम्ब अंकित किया है, क्योंकि खड़ी हुई श्रद्धा अपनी मधुर वाणी द्वारा नत मुख होकर बैठे हुए मनु से जो प्रश्न कर रही है, वह स्थिति पूर्णतया ऐसी ही है, जैसे कोई भ्रमरी किसी झुके हुए कमल के फूल के समीप आकर गूँज रही हो । अतः इन प्राकृतिक उपमानों द्वारा कवि ने मार्मिक बिम्ब-विधान किया है ।

(२) कवि ने श्रद्धा के मधुर स्वर का सादृश्य देने के लिए आदि कवि वाल्मीकि ने प्रथम छन्द की ओर संकेत किया है । कहा जाता है कि एक बार महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे टहल रहे थे । उस समय उन्होंने किसी शिकारी के बाण से आहत होकर एक क्रौञ्च पक्षी को पेड़ से नीचे गिरते हुए देखा । क्रौञ्च पक्षियों का वह जोड़ा परस्पर क्रीड़ा में निमग्न था और उसी समय शिकारी ने उनमें में से एक को मार डाला था । अतः इस करुण दृश्य को देखते ही मुनि वाल्मीकि का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

हृदय भर आया और उनके मुख से अनायास शाप के रूप में यह श्लोक निकल पड़ा—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

(हे निषाद ! तुझे जीवन-पर्यन्त कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि तूने काम-क्रीड़ा में निमग्न क्रौञ्च के जोड़े में से एक पक्षी का वध कर डाला है ।) आदि कवि का यह श्लोक लौकिक संस्कृत साहित्य का शृंगार माना जाता है और इसी श्लोक से लौकिक संस्कृत की कविता का श्रीगणेश हुआ है । यही श्लोक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामायण' का मूलाधार है । अतः संस्कृत साहित्य में इसे अत्यन्त सुन्दर, सरस, करुणापूर्ण एवं मार्मिक माना गया है ।

(३) यहाँ पर सुन्दर सादृश्य योजना के साथ उपमा अलङ्कार का प्रयोग हुआ है । 'मधुकरी' शब्द में लिंग-वैचित्र्य-वक्रता भी है ।

एक झिटका .... फिर मौन ।

शब्दार्थ—झिटका सा लगना=शरीर में बिजली सी दौड़ जाना । लुटे से=हक्के-बक्के से, आश्चर्य-चकित से । सुन्दर संगीत=मनोहर या मधुर वाणी । गा रहा=बोल रहा । कुतूहल मौन न रह सका=वे अपने आश्चर्य को रोक न सके अर्थात् उस वाणी को सुनकर वे शान्ति के साथ नीचा मुख किये हुए बैठ न सके, अपितु इसकी ओर देखने के लिए बाध्य हो गये ।

व्याख्या—श्रद्धा की उस मधुर वाणी को सुनते ही मनु के हृदय में प्रसन्नता के साथ-साथ एक झटका सा लगा अर्थात् उनके सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गई और वे आश्चर्य-चकित से होकर यह जानने के लिए ऊपर की ओर देखने लगे कि ऐसी मधुर एवं चित्ताकर्षक वाणी कौन बोल रहा है ? उस वाणी को सुनते ही उनकी मौनता भंग हो गई, उनके हृदय में उस मधुरभाषी को जानने का कौतूहल जाग्रत हो गया और वे कुतूहलवश ही श्रद्धा की ओर देखने के लिए बाध्य हो गये ।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने एक आश्चर्यचकित व्यक्ति का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है, क्योंकि प्रायः आश्चर्यमयी वाणी सुनकर एक नीरव स्थान में रहने वाले व्यक्ति की ऐसी ही स्थिति हो सकती है ।

(२) "कुतूहल रह न सका फिर मौन"—इस पद में कवि ने विशेषण-विपर्यय अलंकार का प्रयोग किया है और 'कुतूहल' को करण कारक से कर्त्ता कारक के रूप में बदलकर रूप-विन्यलन का भी प्रयोग किया है । सुन्दर संगीत में उपादान लक्षणा है । साथ ही यहाँ 'झटका' के स्थान पर 'झिटका' का प्रयोग करके ध्वन्यात्मक लिंग-परिवर्तन प्रस्तुत किया गया है ।

और देखा .... लिपटा घनश्याम ।

शब्दार्थ—सुन्दर दृश्य=अत्यन्त सौन्दर्यमयी दर्शनीय वस्तु । अभिराम इन्द्रजाल=आकर्षक जादू । कुसुम वैभव=फूलों से लदी हुई । चन्द्रिका=चाँदनी । घनश्याम=बादल ।

व्याख्या—कुतूहलवश मनु ने जब ऊपर की ओर देखा, तब उन्हें अलौकिक सौन्दर्यमयी श्रद्धा अपने समीप खड़ी दिखाई दी, जो उन्हें एक अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण दर्शनीय वस्तु के रूप में प्रतीत हुई । उसे उन्होंने नेत्रों को आकृष्ट करने वाले एक जादू के रूप में देखा । वह उन्हें फूलों से लदी हुई एक छविमयी लता के तुल्य जान पड़ी और उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ जैसे चन्द्रमा की शीतल चाँदनी से लिपटा हुआ कोई बादल का टुकड़ा उनके सामने खड़ा हो ।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने नखशिख की नवीन पद्धति को अपनाते हुए श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है, जिसमें पार्थिवता की अपेक्षा अतीन्द्रिय सौन्दर्य की झलक अधिक दिखाई गई है ।

(२) कवि ने श्रद्धा में 'दृश्य', 'इन्द्रजाल' तथा 'घनश्याम' का आरोप करके निरंग रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलङ्कारों को अपनाया है, 'लता के समान' कहकर उपमा अलङ्कार का भी प्रयोग किया है, यह सम्पूर्ण सादृश्य योजना रंगसाम्य एवं प्रभावसाम्य पर आधारित है और इनके द्वारा श्रद्धा का सजीव सौन्दर्य-बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।

हृदय की .... सौरभ संयुक्त ।

शब्दार्थ—अनुकृति=प्रतिमूर्ति, नकल । बाह्य=बाहरी अंग या सम्पूर्ण शरीर । काया=शरीर । उन्मुक्त=खुला हुआ । मधु पवन=वसंत ऋतु में चलने वाली मन्द पवन । क्रीड़ित=खेलता हुआ, झूमता हुआ । शिशु शाल=शाल का छोटा वृक्ष । सौरभ संयुक्त=सुगंधित ।

व्याख्या—श्रद्धा के शरीर का अधिकांश भाग खुला हुआ था और उसकी काया पर्याप्त लम्बी थी, जिसे देखकर ऐसा ज्ञात होता था जैसे उसका वह विस्तृत एवं लम्बा बाहरी शरीर उसके उदार एवं विस्तृत हृदय की ही प्रतिमूर्ति है अर्थात् जिस तरह उसका हृदय अत्यन्त विस्तृत एवं उदार है उसी तरह उसका शरीर भी विस्तृत एवं लम्बा है । इसके साथ ही मधुर संलाप के समय झूमता हुआ श्रद्धा का वह सुन्दर लम्बा शरीर वसन्त की मन्द-मन्द पवन के साथ अठखेलियाँ करते हुए शाल के किसी छोटे से वृक्ष के समान सुगन्धि से परिपूर्ण होकर वहाँ शोभायमान लग रहा था ।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ श्रद्धा को 'हृदय की अनुकृति उदार' कहकर इस बात की ओर संकेत किया है कि श्रद्धा में हृदय के सभी उदात्त गुण विद्यमान हैं, अर्थात् उसमें उदारता, विशालता, गम्भीरता, परदुःखकातरता, मधुरिमा, ममता आदि सभी भाव भरे हुए हैं और वह हृदय पक्ष का प्रतीक है । ऋग्वेद में भी श्रद्धा का सम्बन्ध हृदय से जोड़ा गया है—

८

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु । —ऋग्वेद १०।१५१।४

(२) कवि ने इन पंक्तियों में उपमा अलंकार का प्रयोग किया है तथा 'शिशु शाल' से उपमा देकर श्रद्धा के शरीर की लम्बाई, उसकी स्वाभाविक गंध, मस्ती एवं युवाजीवन का एक सजीव चित्र पाठकों के सम्मुख अङ्कित कर दिया है। साथ ही यहाँ अलंकृत ऐन्द्रिय (घ्रातव्य एवं दृश्य) बिम्ब भी है।

मसृण गांधार ···· ···· कोमल वर्म ।

शब्दार्थ—मसृण=चिकने । गांधार देश=अफगानिस्तान में स्थित आधुनिक कन्दहार या कंधार प्रदेश। मेषों के चर्म=भेड़ों की खाल। कान्त वपु=देदीप्यमान शरीर। वर्म=कवच।

व्याख्या—यहाँ कवि श्रद्धा की वेश-भूषा का वर्णन करता हुआ कहता है कि गांधार देश में उत्पन्न होने वाली भेड़ों की नीले रोम वाली चिकनी खाल से श्रद्धा का वह देदीप्यमान शरीर ढँका हुआ था। उस शोभापूर्ण तथा जहाँ-तहाँ से खुले हुए शरीर को इन नीले रोम वाली खाल के आवरण से ढँका हुआ देखकर ऐसा ज्ञात होता था मानो वह खाल श्रद्धा ने अपने सौन्दर्यपूर्ण अङ्गों की रक्षा के लिए कवच के रूप में धारण की हो।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने मेषों के चर्म को श्रद्धा के शरीर पर कवच के रूप में धारण किए हुए लिखा है। कवच प्रायः कोमल एवं सुकुमार अंगों की रक्षा के लिए धारण किया जाता है और सर्वत्र न होकर शरीर के कुछ अवयवों पर ही पहना जाता है। यहाँ पर श्रद्धा ने भी शरीर के कुछ भागों को ही मेषों के चर्म से ढँक रखा है और वे सभी भाग अत्यन्त सुकुमार एवं कोमल हैं। अतः मेष-चर्म की एक कवच के रूप में कल्पना करना अत्यन्त सुन्दर एवं मार्मिक है।

(२) वैदिक युग में गांधार देश की घने रोम वाली भेड़ें अधिक प्रसिद्ध थीं और पहले यहाँ पर प्रायः उन भेड़ों के रोम वाले चर्मों को धारण करने की प्रथा थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है—

सर्वाहमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका ।

—ऋग्वेद १।१२६।७

इतना ही नहीं, ऋग्वेद में इन्द्र को उन भेड़ों की ऊन के वस्त्र धारण करते हुए लिखा है, जो परुष्णी या पर्वतप्रदेशीय कहलाती थीं और खूब गर्म रहती थीं—

वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यमुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥

—ऋग्वेद ४।२२।२

(३) यहाँ पर गम्योत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

नील परिधान ···· ···· गुलाबी रंग ।

शब्दार्थ—नील परिधान=नीले रंग की वेशभूषा या पहिनावा। मृदुल=कोमल। मेघ=नीले बादल।

व्याख्या—श्रद्धा नीले रंग का मेष-चर्म धारण किए हुए थी। उसकी उस नीली वेश-भूषा में से जहाँ-तहाँ उसका कुछ कोमल एवं सुकुमार अंग दिखाई दे रहा था, जो ऐसा ज्ञात होता था, मानो नीले बादलों के वन में गुलाबी रंग का सुन्दर बिजली का फूल खिला हुआ हो।

टिप्पणी—(१) कवि ने श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए यहाँ उसके गोर वर्ण के शरीर को नीले रंग के परिधान से परिवेष्ठित दिखाया है, जो सौन्दर्य-विधान की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है, क्योंकि गोरे अङ्गों पर नीले रंग का वस्त्र अधिक शोभायमान लगता है। इस चित्रण में कवि का ध्यान सौंदर्य-चित्र अङ्कित करने के लिए अपेक्षित वर्ण-दीप्ति तथा रस-एवं भाव के रंग-विधान की परम्परा की ओर भी गया है, क्योंकि नीला वस्त्र चिरस्थायी प्रेम का प्रतीक होता है। सूरदास जी ने भी राधा की वेशभूषा का उल्लेख करते हुए उसे नीली फरिया पहनाई है और बिहारी ने भी नायिका को नीली साड़ी पहन कर अधिक रमणीय बताया है—

डारी सारी नील की ओट अचूक, चुकै न।

ऐसा ही सौंदर्य-चित्र महाकवि कालिदास ने उर्वशी का भी अंकित किया है—

सुसूक्ष्मेणोत्तरीयेण मेघवर्णेन राजता ।
तगुरभ्रावृतां व्योम्नि चन्द्रलेखेव गच्छति ॥

(अत्यन्त महीन मेघ के समान श्याम रंग की सुन्दर ओढ़नी ओढ़े तन्वंगी उर्वशी आकाश में बादलों से ढकी हुई चन्द्रलेखा सी चली जा रही थी।)

(२) यहाँ श्रद्धा के रूप-वर्णन में आहार्य शोभा का चमत्कार होने से 'आहार्या-वाक्य-वक्रता' का सौंदर्य विद्यमान है।

(३) कवि ने नीले परिधान को मेघ-वन तथा श्रद्धा के तीव्र कान्तिपूर्ण उज्ज्वल एवं सुकुमार अंगों को बिजली के फूल के तुल्य कहकर एक मार्मिक मानवीय रूप-बिम्ब प्रस्तुत किया है। अंतः इस सादृश्य योजना द्वारा श्रद्धा के सुकुमार अंगों की कान्ति एवं उनकी दिव्य आभा का चित्रण किया गया है। यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है तथा मेघ-वन में रूपक है।

आह वह मुख ···· ···· छवि धाम ।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। घनश्याम=काले बादल। अरुण रवि मण्डल=लाल रंग का सूर्य-मण्डल। भेद=चीर कर। छविधाम=अपार सौन्दर्य से युक्त।

व्याख्या—श्रद्धा के उस कालिमापूर्ण कान्तिमय मुख का क्या कहना! काले रंग के बालों से घिरा हुआ वह लालिमा युक्त मुख ऐसा दिखाई देता था मानो सन्ध्या के समय पश्चिम की ओर आकाश में काले-काले बादल घिरे हुए हों और लाल रंग का सूर्य-मण्डल उन काले बादलों को चीरकर आकाश में शोभायमान हो।

टिप्पणी—कवि ने यहाँ 'आह' शब्द द्वारा श्रद्धा के मुख पर छाई हुए अनन्त

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सौंदर्य की ओर संकेत किया है। इसके साथ ही रंग-सादृश्य के आधार पर काले बादलों की तुलना घनश्याम से तथा स्वाभाविक लालिमा से युक्त मुख की तुलना अरुण रविमण्डल से की है। रंग-साम्य के कारण तो यह सादृश्य-योजना सुन्दर दिखाई देती है, किन्तु मृदुल एवं सुकुमार मुख के लिए संध्याकालीन सूर्य जैसे उपमान का जुटाना उपयुक्त दिखाई नहीं देता। स्वयं प्रसाद को भी इस सादृश्य-योजना में कठिनाई अनुभव हुई होगी, इसी कारण उन्होंने 'सूर्य' के साथ 'छविधाम' विशेषण जोड़ा है। यहाँ पर भी कवि ने वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है और तेज एवं ओजपूर्ण मुखमण्डल का संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत किया है।

या कि नव .... में अश्रान्त।

शब्दार्थ—इन्द्र नील लघु शृङ्ग=नीलम के पहाड़ की छोटी चोटी। कान्त=सुन्दर। अचेत=विस्फोट-रहित, शान्त। माधवी रजनी=वसन्त ऋतु की रात्रि। अश्रान्त=लगातार, निरन्तर।

व्याख्या—अरुण रवि मण्डल के अतिरिक्त श्रद्धा का वह नव यौवन का लालिमा से युक्त मुख ऐसा दिखाई देता था मानो वसन्त की रात्रि में एक छोटा-सा शान्त ज्वालामुखी नीलम के पहाड़ की किसी नवीन एवं छोटी-सी चोटी को फोड़ कर सुन्दरता के साथ लगातार धधक रही हो, किन्तु वह किसी प्रकार का विस्फोट न कर रहा हो।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ पर श्रद्धा की नीली वेशभूषा तथा काले बालों की तुलना 'नव इन्द्र नील लघु शृङ्ग' से की है और उसके लालिमायुक्त मुख को 'एक लघु ज्वालामुखी' के तुल्य धधकते हुए बताया है। कवि की यह सादृश्य-योजना परम्परा के विरुद्ध है, नारी के कोमल एवं सुकुमार मुख को किसी भी कवि ने 'ज्वालामुखी' के सादृश्य नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त इस योजना द्वारा नारी के सौंदर्य-सम्पन्न सुकुमार-रुख का कोई रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित नहीं होता, अपितु एक क्रोध एवं उग्रता से भरे हुए मुख का चित्र सामने अङ्कित हो जाता है। अतः यह उपमान भी सौंदर्य-चित्र उपस्थित करने में अधिक उपयुक्त दिखाई नहीं देता फिर भी कवि ने यहाँ एक अत्यन्त तेजोमय एवं लालिमापूर्ण मुखमण्डल का सौंदर्य-बिम्ब प्रस्तुत करने के लिए इन उपमानों का प्रयोग किया है।

(२) यहाँ पर 'या कि' के कारण संन्देह अलंकार है तथा ज्वालामुखी की कल्पना में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

घिर रहे थे .... के पास।

शब्दार्थ—अंस अवलम्बित=कन्धे पर पड़े हुए। नील घन-शावक=नीले रंग के छोटे-छोटे बादल। सुधा=अमृत। विधु=चन्द्रमा।

व्याख्या—श्रद्धा के उस कान्तिपूर्ण मुख के समीप ही कोमल एवं घुँघराले बाल घिरे हुए थे, जो पीछे की ओर दोनों कन्धों पर पड़े थे। उन्हें देखकर ऐसा ज्ञात

होता था जैसे नीले रंग के छोटे-छोटे सुकुमार बादल अमृत भरने के लिए चन्द्रमा के समीप घिरे हुए हों।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने काले-काले बालों की तुलना 'नील घन शावक' से तथा मुख की तुलना 'विधु' से की है। यह सादृश्य-योजना सर्वथा उपयुक्त, सुन्दर एवं चित्ताकर्षक है और श्रद्धा के रमणीय मुख का एक सजीव बिम्ब प्रस्तुत करती है। इसमें रंगसाम्य, गुणसाम्य एवं प्रभावसाम्य का बराबर ध्यान रखा गया है। इसी कारण यहाँ अलंकार-औचित्य के भी दर्शन होते हैं।

(२) 'विधु' को 'सुधाकर' कहा जाता है तथा उसका एक नाम 'सुधादीधिति' भी है और 'विधु' नारी के सुकुमार एवं मृदुल मुख का प्रसिद्ध उपमान भी है। अतः मुख के समीप बालों के घिरे रहने को बादलों का विधु के समीप सुधा भरने के लिए घिरे हुए कहना एक सजीव एवं उत्कृष्ट कल्पना का द्योतक है।

(३) यहाँ पर पूर्णोपमा अलङ्कार है।

और उस मुख .... हो अभिराम।

शब्दार्थ—मुसक्यान=मुस्कराहट। रक्त किसलय=लाल रंग की नवीन एवं कोमल पत्तियाँ अथवा कोंपलें। अरुण=प्रभातकालीन उगता हुआ सूर्य। अम्लान=शुभ्र, उज्ज्वल। अलसाई=आलस्य के साथ पड़ी हुई।

व्याख्या—श्रद्धा के स्वाभाविक लालिमा-युक्त होठों से सुशोभित उस कान्तिपूर्ण मुख पर मृदुल एवं मन्द मुस्कान छायी हुई थी, जो ऐसी जान पड़ती थी, मानो प्रभातकालीन बाल-सूर्य की कोई एक उज्ज्वल किरण लालिमापूर्ण नई-नई कोंपलों पर विश्राम कर रही हो और वहीं अँगड़ाई लेती हुई अलसा रही हो।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने श्रद्धा के स्वाभाविक लालिमापूर्ण होठों की तुलना नई-नई कोंपलों से और श्वेत एवं मन्द मुस्कान की तुलना बालसूर्य की 'अम्लान किरण' से की है। रंग-साम्य एवं प्रभाव-साम्य की दृष्टि से यह सादृश्य-योजना अत्यन्त मार्मिक एवं स्वाभाविक है तथा इन उपमानों द्वारा कवि ने मुस्कराहट जैसे अमूर्त उपमेय का एक मर्मस्पर्शी एवं आकर्षक अलंकृत दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत किया है।

(२) यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

नित्य यौवन .... जड़ में स्फूर्ति।

शब्दार्थ—नित्य यौवन छवि=चिर यौवन का सौंदर्य। दीप्त=देदीप्यमान, सुशोभित। करुण कामना मूर्ति=करुणा से भरी हुई कामना की मूर्ति। स्पर्श का आकर्षण=छूने या आलिंगन करने अथवा चिरकाल तक अपने समीप रखने की अभिलाषा जगाने वाली। जड़=भावनाहीन। स्फूर्ति=चेतना, कर्मण्यता, जागृति।

व्याख्या—श्रद्धा के दिव्य सौंदर्य को देखकर ऐसा ज्ञात होता था जैसे वह अनन्त काल तक रहने वाले यौवन के अलौकिक सौंदर्य से सुशोभित है अर्थात् वह

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

चिरयौवना है। उसकी वह भोली प्रतिमा ऐसी जान पड़ती थी मानो वह संसार भर की करुण-भावना से भरी हुई कामना की सौम्य एवं साकार मूर्ति हो। श्रद्धा की उस आकर्षक छवि को देखकर प्रत्येक के हृदय में उसे प्राप्त करने या छूने अथवा आलिंगन करने की स्वाभाविक भावना जाग्रत हो सकती थी, क्योंकि उस अलौकिक सौंदर्य में जड़ अथवा भावना-हीन व्यक्तियों के हृदय में भी चेतना या जागृति उत्पन्न करने की अपूर्व क्षमता थी।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने श्रद्धा को अलौकिक सौन्दर्य से ओतप्रोत दिखाकर उसे 'विश्व की करुण कामना मूर्ति' कहा है अर्थात् श्रद्धा को संसार की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली देवी माना है। इसका सुन्दर चित्रण सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है और वहाँ पर भी श्रद्धा को सभी प्रकार की कामना-पूर्ति करने वाली एवं सभी कार्यों को सम्पन्न करने वाली देवी बतलाया है। वहाँ श्रद्धा-सूक्त में लिखा है—

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ।
श्रद्धां देव यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्याऽऽकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥

—ऋ० १०।१५१।१-४

इसके अतिरिक्त श्रद्धा का दूसरा नाम 'कामायनी' भी है, जिसका अर्थ है काम या कामना का अयन या आश्रय। जैसा कि ऋग्वेद १०वें मंडल के १५६वें सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा भी है—"काम गोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका। तया चानुक्रम्यते। श्रद्धया श्रद्धा कामायनी।" अतः 'कामना-मूर्ति' कहकर कवि ने श्रद्धा के 'कामायनी' नाम की सार्थकता की ओर भी संकेत किया है।

(२) यहाँ कामना-मूर्ति में रूपक तथा अन्य पंक्तियों में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

उषा की पहली .... द्युति की गोद।

शब्दार्थ—कान्त लेखा=उज्ज्वल किरण। माधुरी से भीगी=मधुरिमा में डूबी हुई। भर मोद=आनंद एवं उल्लास से परिपूर्ण। मदभरी=मस्ती से भरी हुई। सलज्ज=लज्जा युक्त, लजीली। भोर=प्रातःकाल। तारकद्युति=तारों की आभा।

व्याख्या—नवयौवन की स्वाभाविक अरुणिमा से भरे हुए श्रद्धा के मुख पर जो उज्ज्वल मुसकान छाई हुई थी वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो प्रभातकालीन तारागणों की आभापूर्ण गोद में माधुर्य में डूबी हुई, आनन्द एवं उल्लास से भरी हुई, मस्ती एवं लज्जा से युक्त उषा की सबसे पहली उज्ज्वल किरण शोभायमान हो।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने श्रद्धा के अरुणिम होठों एवं यौवन की अपूर्व दीप्ति से देदीप्यमान मुख पर छाई शुभ्र मुसकान का एक सजीव दृश्य-बिम्ब अङ्कित किया है, जिसमें होठों के लिए 'उषा' मुस्कान के लिए 'कान्त किरण', और दाँतों के लिए 'तारक द्युति की गोद' जैसे उपमान एकत्र किये गये हैं। इतना ही नहीं, उस किरण को 'माधुरी', 'मोद', 'मद' और 'लज्जा' से भरा हुआ कह कर श्रद्धा की मुस्कराहट में भरे हुए माधुर्य, उल्लास, मद एवं लज्जा का भी निरूपण किया गया है। अतः यहाँ अलंकृत बिम्ब-विधान अनुपम एवं अद्वितीय है।

(२) इस सौन्दर्य-चित्र में मुख एवं मुस्कान के लिए अद्भुत कल्पना की गई है। अतः यहाँ पर भी वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

कुसुम कानन .... सदृश अबाध।

शब्दार्थ—कुसुम कानन अञ्चल=फूलों के भरे हुए वन-प्रदेश। मन्द पवन प्रेरित सौरभ=मन्द-मन्द वायु के द्वारा बहाकर लाई गई सुगन्ध। परमाणु पराग रचित=फूलों के सुगन्धित पराग के परमाणुओं से निर्मित। ले मधु का आधार=पुष्परस में सानकर बनाया गया। शुभ्र=उज्ज्वल, निर्मल। नवल मधुराका=वसन्तकालीन पूर्णिमा की नवीन चाँदनी। मन की साध=मन को अच्छी लगने वाली मनोहर, मन को प्रिय। मद-विह्वल प्रतिबिम्ब=मस्ती एवं चञ्चलता से भरी हुई प्रतिमूर्ति, प्रतिमा या स्वरूप। मधुरिमा-खेला=माधुर्य पूर्ण क्रीड़ा। सदृश=समान। अबाध=निर्विघ्न।

व्याख्या—श्रद्धा के उस दिव्य यौवन-सम्पन्न शरीर से नारी-सुलभ स्वाभाविक सुगन्ध आ रही थी और उसके अलौकिक सौन्दर्यशाली मुख पर उज्ज्वल मुस्कान छाई हुई थी। अतः उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो वह श्रद्धा फूलों से भरे हुए वन-प्रदेशों में से वसन्त की मन्द-मन्द पवन के द्वारा बहाकर लाई हुई सुगंध की साकार मूर्ति हो तथा पुष्प-रस में सानकर पराग के परमाणुओं से उसके शरीर का निर्माण किया गया हो। इसी कारण वह शरीर एक दिव्य गन्ध की साकार मूर्ति के रूप में सम्मुख खड़ा था और उसके सुन्दर मुख पर मस्ती एवं चंचलता से भरी हुई हँसी का जो स्वरूप विद्यमान था, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उस दिव्य गन्ध की साकार मूर्ति के ऊपर वसन्त-रजनी की नवीन, उज्ज्वल एवं निर्मल पूर्णिमा की अत्यन्त मनोमोहक एवं चित्ताकर्षक चाँदनी पड़ रही हो तथा श्रद्धा के सुरम्य होठों पर खेलती हुई वह हँसी ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वयं मधुरिमा ही यहाँ आकर अपनी निर्विघ्न क्रीड़ाएँ कर रही हो।

टिप्पणी—(१) कवि ने श्रद्धा को सौरभ की साकारमूर्ति बताने के लिए उसके शरीर को मधु में सानकर पराग के परमाणुओं से निर्मित कहा है तथा उसकी हँसी का शुभ्र एवं अलौकिक रूप प्रस्तुत करने के लिए वसन्त-रजनी की निर्मल पूर्णिमा की चाँदनी से ओतप्रोत बताया गया है। इस तरह कवि ने यहाँ श्रद्धा के सौन्दर्य का एक अतीन्द्रिय एवं अपार्थिव चित्र तथा एक मार्मिक एवं चित्ताकर्षक अलंकृत ऐन्द्रिय बिम्ब प्रस्तुत किया है। इस बिम्ब-विधान की तुलना कुछ-कुछ सूफी कवियों से की

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जा सकती है, क्योंकि सूफी कवियों में से कवि मलिक मंझन ने भी इसी प्रकार अपार्थिव शरीर के निर्माण की ओर संकेत किया है—

> वर कामिनि तोहि प्रीत कै नीरू। माहि पानि भा सानि सरीरू ॥
> पूर्व दिनन सो जानहि, तुम्हरी प्रीत कै नीर ।
> मोहि माटी विधि सानि कै, तौ यह बोला सरीर ॥
>
> —मधुमालती (सूफी काव्य संग्रह), पृ० १३७

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी सीताजी के दिव्य एवं अलौकिक शरीर को छवि रूपी अमृत-सागर से उत्पन्न सौन्दर्यमूल लक्ष्मी से भी बढ़कर कहते हुए सीता जी के अतीन्द्रिय सौन्दर्य की कल्पना की है—

> जो छवि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
> सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पङ्कज निज मारू ॥
> एहि विधि उपजै लच्छि जव सुन्दरता सुख मूल ।
> तदपि सँकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल ॥
>
> —रामचरितमानस, बालकाण्ड २४७ ॥

(२) कवि ने यहाँ पर श्रद्धा के नखशिख का वर्णन नवीन पद्धति के अनुसार किया है। पाश्चात्य दृष्टि से इस सौन्दर्य-चित्र में अन्विति (unity), सामंजस्य (harmony), सुडौलपन (symmetry), अंगों का व्यवस्थित क्रम (order), मसृणता (smoothness), कोमलता (delicacy), वर्ण-दीप्ति (lightness of colours), शुद्धता (purity), सुगन्धि, कांति, शोभा आदि अनेक तत्त्व विद्यमान हैं।

(३) यहाँ श्रद्धा को नारी-मूर्ति के रूप में नहीं, वरन् पराग से निर्मित एक प्रतिमा बताया गया है। यह अभिप्रेयार्थ अपनी ही सुकुमारता से पेशल बन पड़ा है। अतः यहाँ पर्याय-वक्रता का रमणीय प्रयोग मिलता है।

(४) यहाँ कवि ने प्रथम चार पंक्तियों में प्रभावसाम्य के आधार पर वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग किया है तथा अन्तिम चार पंक्तियों में हँसी के लिए 'राका' तथा 'मधुरिमा खेला' की कल्पना करते हुए वस्तूत्प्रेक्षा और उपमा दोनों अलङ्कारों को अपनाया है। यहाँ तक श्रद्धा के सौन्दर्य-वर्णन में अलंकृत बिम्बों का चमत्कार विद्यमान है।

कहा मनु ने .... हूँ असहाय।

शब्दार्थ—रहस्य=उलझन, पहेली। निरुपाय=जिसके लिये कोई उपाय न सूझ सके। उल्का=टूटा हुआ तारा। भ्रान्त=इधर-उधर भटकने वाला। शून्य=(१) आकाश, (२) निर्जन प्रदेश। असहाय=निराश्रित, अनाथ।

व्याख्या—उस दिव्य सौन्दर्यमयी श्रद्धा का प्रश्न सुनकर तथा उसे परिचय जानने के लिए अपने समीप खड़ा देखकर मनु बोले—"पृथ्वी और आकाश के बीच में इस निर्जन प्रदेश के अन्दर मेरा यह एकाकी जीवन एक ऐसी पहेली बना हुआ है, जिसे सुलझाने के लिए मुझे कोई उपाय नहीं दिखाई देता। मैं इस शून्य प्रदेश में आश्रयहीन होकर अपनी आन्तरिक वेदना से जलता हुआ उसी तरह इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा हूं, जिस तरह एक जलता हुआ तारा टूट कर तथा निराश्रित होकर आकाश में इधर-उधर भटकता फिरता है।"

टिप्पणी—यहाँ कवि ने मनु की उस दयनीय स्थिति का सुन्दर निरूपण करते हुए मनु की तुलना टूटे हुए तारे से की है, जो आकाश में अनिश्चित दिशा की ओर गिरता हुआ दिखाई देता है। इस तुलना द्वारा कवि ने मनु की वस्तुस्थिति का यथार्थ अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया है। यहाँ पर पूर्णोपमा अलंकार है तथा 'शून्य' में श्लेष अलंकार है।

शैल निर्झर ... . हूँ पाषण्ड।

शब्दार्थ—शैल=पर्वत। निर्झर=झरना। हत भाग्य=भाग्यहीन, अभागा। हिमखण्ड=बर्फ का टुकड़ा। जलनिधि अङ्क=समुद्र की गोद में अर्थात् समुद्र में। पाषण्ड=स्वयं ठगा हुआ तथा दूसरों को भी ठगने वाला, वंचक, व्यर्थ का जीवन व्यतीत करने वाला।

व्याख्या—मनु अपनी दयनीय स्थिति का निरूपण करते हुए पुनः कहने लगे—मैं उस भाग्यहीन पर्वत के समान हूं, जिससे कोई झरना फूटकर नहीं निकला हो और मैं उस अभागे बर्फ के टुकड़े के समान हूं, जो पिघल कर नदी का रूप धारण करता हुआ समुद्र की गोद में जाकर न मिला हो। हाय, मेरा यह निरर्थक जीवन संसार के लिए पाखण्ड रूप है, प्रवंचक है अथवा व्यर्थ है।

टिप्पणी—(१) इन पंक्तियों में मनु के निरर्थक जीवन की तुलना पर्वत तथा बर्फ के टुकड़े से की गई है। संसार में वही पर्वत सबसे अधिक उपयोगी माना गया है, जिससे झरने फूटते हैं और उन झरनों का जल सरोवर या नदी का रूप धारण करके पीने या खेती की सिंचाई के काम आता है अथवा ऐसे बर्फीले पर्वत भी उपयोगी होते हैं, जिनकी बर्फ गर्मियों में पिघल कर नदी का रूप धारण करती हुई भूमि को शस्य-श्यामला बना देती है और अन्त में समुद्र के अन्दर गिरकर उसकी जलराशि को बढ़ाती है, जो पुनः बादल बनकर हमारे लिए अधिकाधिक उपयोगी बन जाती है; किन्तु मनु का जीवन किसी प्रकार भी उपयोगी नहीं हुआ है। इसी करण ये स्वयं को 'हतभाग्य' तथा 'पाषण्ड' कहते हैं और अपनी तुलना निर्झरहीन पर्वत तथा न पिघलने वाले 'हिमखण्ड' से करते हैं और इनके द्वारा कवि ने मनु का सुन्दर अलंकृत दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत किया है।

(२) इन पंक्तियों में वाचक-शब्द-लुप्ता-लुप्तोपमाएँ तथा आठों पंक्तियों को मिलाकर मालोपमा अलङ्कार हो सकता है।

पहेली सा जीवन .... कर अनजान।

शब्दार्थ—व्यस्त=उलझा हुआ। अभिमान=अहंकार या मिथ्या गर्व।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विस्मृति=भूल। विस्मृति का मार्ग बताता है=सब कुछ भुला देता है या कुछ भी समझ में नहीं आता। चल रहा हूँ=जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। अनजान=अनभिज्ञ, अज्ञानी।

व्याख्या—मेरा यह एकाकी जीवन एक पहेली के समान नाना प्रकार की उलझनों से भरा हुआ है। मैं बड़े अहंकार के साथ सुलझाने का बराबर प्रयत्न करता हूँ, परन्तु मेरी कुछ समझ में नहीं आता। इसी कारण अब मैं एक अनजान व्यक्ति की तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने पहेली के द्वारा उलझन में पड़े हुए मनु का अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक अलंकृत दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत किया है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति न तो ठीक सोच सकता है, न ठीक निष्कर्ष पर पहुँचता है और न वह ठीक मार्ग पर ही चलता है, अपितु वह अज्ञानी की भाँति इधर-उधर भटकता हुआ मारा-मारा फिरता है।

(२) पहेली से समानता करने के कारण यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

भूलता ही जाता ... . यह संगीत।

शब्दार्थ—सजल=रमणीक। अभिलाषा कलित=इच्छाओं या भावनाओं से भरा हुआ। अतीत=बीता हुआ जीवन। सजल अभिलाषा कलित अतीत=सुन्दर एवं रंगीन भावनाओं से भरा हुआ सुखमय भूतकाल। तिमिर गर्भ=अन्धकार के अन्दर। दीन-जीवन=असहाय जीवन।

व्याख्या—मैं अब दिन-रात अपने उस भूतकाल को निरन्तर भूलता चला जा रहा हूँ, जो आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण होने के कारण सुन्दर-सुन्दर अभिलाषाओं अथवा रंगीन भावनाओं और उल्लास से भरा हुआ था और जिसके पुनः प्राप्त होने की अब मुझे कोई आशा नहीं है। इसी कारण मेरे इस असहाय जीवन का यह संगीत नित्यप्रति अन्धकार के गर्भ में बढ़ता चला जा रहा है अर्थात् मुझे अपना भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय दिखाई देता है।

टिप्पणी—(१) 'सजल अभिलाषा कलित अतीत' के भूलने में कवि ने यह दिखाया है कि मनु अपने इस एकाकी जीवन में इतने अधिक निराश एवं निरुपाय हो गये हैं कि अब उन्हें अपने उस आनन्द एवं उल्लास से भरे हुए अतीत काल के पुनः लौटने की कोई आशा नहीं रही है। इसी कारण वे अपने उन सुखमय अतीत के दिनों को अब भूलते जा रहे हैं और उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई दे रहा है।

(२) 'दीन जीवन के संगीत का तिमिर-गर्भ में बढ़ने से' कवि का अभिप्राय यह है कि जिस तरह कोई मधुर संगीत की ध्वनि किसी भी व्यक्ति के द्वारा न सुने जाने पर अन्त में बहुत दूर जाकर अन्धकार में विलीन हो जाती है और फिर नहीं सुनाई पड़ती, उसी तरह मनु का यह निराशा एवं असहायावस्था से परिपूर्ण दीन-जीवन अब निरन्तर भविष्य के अन्धकार की ओर ही बढ़ता चला जा रहा है और

जीवन-साथी के अभाव में उन्हें अपने इस जीवन में आनन्द एवं उल्लास के प्रकाश की प्राप्ति होने की कोई आशा नहीं है। यहाँ संगीत से जीवन की तुलना करना अत्यन्त मार्मिक है और यह एक सजीव अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत करती है।

(३) 'सजल अभिलाषा' में विशेषण-विपर्यय तथा 'जीवन के संगीत' में रूपक अलंकार है।

क्या कहूँ ... . उजड़ा सा राज।

शब्दार्थ—उद्भ्रांत=लक्ष्यभ्रष्ट, भटकता हुआ। विवर=बिल, गुफा, अवकाश। नील गगन का विवर=अन्तरिक्ष। शून्यता का उजड़ा राज=ऐसा राज जहाँ सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर केवल शून्यता शेष रही हो अर्थात् अत्यन्त अभावों से परिपूर्ण नीरवता का राज्य।

व्याख्या—मैं अपने इस अभावपूर्ण जीवन के विषय में क्या बताऊँ? मैं तो एक लक्ष्यभ्रष्ट व्यक्ति की तरह इस शून्य प्रदेश में उसी तरह भटकता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ, जिस तरह अन्तरिक्ष में वायु की कोई लहर इधर-उधर भटकती फिरती हो। मेरा यह जीवन अभावों से भरे हुए नीरवता के पूर्णतया उजड़े हुए राज्य के समान बन गया है। अतः मैं अपने इस जीवन के बारे में क्या कह सकता हूँ?

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने भटकती हुई वायु की एक तरंग से भ्रमित एवं लक्ष्यभ्रष्ट जीवन की तुलना करके मनु की दयनीय स्थिति का अत्यन्त सजीव अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया है। यह सादृश्य योजना अत्यन्त मार्मिक एवं वस्तुस्थिति की सफल परिचायिका है तथा कवि का यह वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है।

(२) यहाँ 'क्या' सर्वनामों के कारण अतिशय भावावेगों को एक गति प्राप्त हो गई है और वे उनसे संवृत होकर विशेष अर्थवान् हो गये हैं। अतः यहाँ संवृति-वक्रता का चमत्कार है।

(३) यहाँ कवि ने उपचार-वक्रता के आधार पर सुन्दर उपमा अलङ्कार का प्रयोग किया है।

एक विस्मृति .... सङ्कलित विलम्ब।

शब्दार्थ—विस्मृति=भूल, विस्मरण। स्तूप=राशि, ढेर, शिखर। अचेत=जड़तायुक्त। ज्योति=प्रकाश। संकलित विलम्ब=विलम्ब की राशि, अत्यधिक देरी का स्वरूप।

व्याख्या—मेरा यह अभावपूर्ण दीन जीवन विस्मृति के एक चेतना-हीन स्तूप के समान है, जिसे कुछ स्मरण नहीं रहा है और जो समस्त ज्ञान-विज्ञान को भूल गया है। मैं इस अपने जीवन को प्रकाश के एक धुँधले से प्रतिबिम्ब के समान मानता हूँ, क्योंकि न इसमें आनन्द-उल्लास है और न भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कोई कामना शेष रही है। मुझे तो वह जीवन जड़ता का एक जीता-जागता ढेर सा दिखाई देता है, क्योंकि इसमें प्राण तो शेष हैं, किन्तु अन्य सभी आशा-आकांक्षाएँ

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

नष्ट हो चुकी हैं। इतना ही नहीं, मुझे तो अपना यह अभावपूर्ण जीवन सफलता के उस विलम्ब के समान जान पड़ता है, जिसमें व्यक्ति रात-दिन बेचैन बना रहता है; उसका एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से कटता है और अन्त तक वह आशा-निराशा के झूले में झूलता रहता है।

टिप्पणी—(१) यहाँ कवि ने उपचार-वक्रता का प्रयोग करते हुए मनु की दयनीय दशा का चित्रण करने के लिए बड़ी उत्कृष्ट सादृश्ययोजना की है तथा इस योजना द्वारा मनु के भ्रमित एवं अनाश्रित जीवन का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक दृश्य-बिम्ब अङ्कित किया है।

(२) 'सफलता का संकलित विलम्ब' कह कर कवि ने मनु की उस दयनीय स्थिति की तुलना विद्यार्थी के उस जीवन से की है, जिसमें वह परीक्षा देने के उपरान्त परिणाम के लिए अत्यन्त उत्सुक एवं बेचैन रहता है और परिणाम के प्राप्त होने में जितना भी विलम्ब होता है, उतनी ही उसकी व्यग्रता, उत्सुकता एवं बेचैनी क्षण-क्षण बढ़ती जाती है। अतः उस 'संकलित विलम्ब' में एक विद्यार्थी को जितनी व्यथा, वेदना, व्यग्रता, बेचैनी आदि से भरी हुई जीवन की कठिनाइयों का अनुभव होता है, उतनी ही कठिनाइयाँ मनु को भी अपने इस अभावपूर्ण जीवन में हो रही हैं।

(३) यहाँ मनु के जीवन के लिए समस्त उपमाएँ दी गई हैं। अतः यहाँ मालोपमा अलङ्कार है।

कौन हो तुम .... हलचल शान्त।

शब्दार्थ—वसन्त के दूत=वसन्त की सूचना देने वाली कोकिल, लक्षणा से इसका अर्थ होगा जीवन में आशा बँधाने वाले। विरस पतझड़=नीरसता से भरा हुआ पतझड़ का समय, लक्षणा से इसका अर्थ होगा निराश जीवन। घन तिमिर=गहन अन्धकार, लक्षणा से इसका अर्थ है घोर निराशा। चपला की रेख=बिजली की रेखा, लक्षणा से इसका अर्थ है आशा की किरण। तपन=ग्रीष्म ऋतु, लक्षणा से इसका अर्थ है व्यथा और वेदना से भरा हुआ जीवन। शीतल-मन्द बयार=मन्द-मन्द गति से बहने वाली ठण्डी हवा, लक्षणा से इसका अर्थ है कोमल एवं मधुर वाणी। नखत=तारागण। कान्त=उज्ज्वल, रमणीक। दिव्य लहरी=उज्ज्वल एवं महान् तरंग। मानस=(१) मानसरोवर, (२) चित्त।

व्याख्या—श्रद्धा को अपनी दयनीय एवं अभावपूर्ण स्थिति से अवगत कराने के उपरान्त अब मनु श्रद्धा का परिचय प्राप्त करने के लिए उससे पूछते हैं—हे अत्यन्त सुकुमार अङ्गों वाले व्यक्ति! तुम कौन हो? तुमने अचानक इस निर्जन प्रदेश में आकर मेरे इस अभावपूर्ण निराश जीवन को उसी प्रकार आशा का सन्देश दिया है, जिस प्रकार नीरस पतझड़ के समय कोकिल अचानक आकर अपनी मीठी वाणी से वसन्त के आगमन की सूचना देती है। तुम मुझे अपने इस घोर निराशापूर्ण जीवन में एक आशा-किरण के समान उसी तरह दिखाई दे रहे हो, जिस तरह गहन अन्धकार के समय बिजली की रेखा चमक कर कुछ प्रकाश प्रदान करती हुई एक पथभ्रष्ट व्यक्ति को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। तुम मुझे इस व्यथा और वेदना से भरे हुए जड़ जीवन में अपनी कोमल और मधुर वाणी से उसी तरह चेतना का संचार करते हुए दिखाई दे रहे हो,—जिस तरह ग्रीष्म ऋतु की भयंकर धूप के समय मन्द-मन्द गति से बहने वाली शीतल पवन नवीन चेतना उत्पन्न कर देती है।

तुम्हारी वाणी में मुझे उसी तरह आशा की किरणें निकलती हुई दिखाई दे रही हैं, जिस तरह एक निराश व्यक्ति को तारों में से आशा की किरणें फूटती हुई दिखाई देती हैं और उन्हें देखकर ही वह अपनी व्ययामयी रातों को काट देता है। इतना ही नहीं, तुम्हारी यह कोमल, सुन्दर एवं दिव्य वाणी मेरे चित्त की हलचल को उसी प्रकार शान्त कर रही है, जिस प्रकार किसी कोमल हृदय वाले कवि की उज्ज्वल एवं रमणीक कल्पना की एक छोटी सी दिव्य लहर पाठकों के चित्त रूपी सरोवर की समस्त हलचल को शान्त कर देती है और वह कुछ क्षणों के लिए तन्मय होकर आनन्द-विभोर हो जाता है।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ पर उपचार-वक्रता का प्रयोग करते हुए सुन्दर-सुन्दर उपमानों द्वारा श्रद्धा के शुभागमन से मनु को प्राप्त होने वाले आनन्द का मार्मिक एवं संश्लिष्ट अलंकृत भाव-बिम्ब प्रस्तुत किया है। कवि के इस कथन में शब्द-चयन अत्यन्त सुन्दर है; 'बयार', 'नखत' आदि शब्दों का प्रयोग करके उसने कोमल-कान्त पदावली को अपनाया है और यह रूप-चयन कोमलता एवं सरसता का प्रतीक है। यहाँ नाटकीयता का भी गुण विद्यमान है और कवि की उदात्त कल्पना के दर्शन होते हैं।

(२) यहाँ पर कवि ने साध्यवसाना लक्षणा का प्रयोग करते हुए केवल उपमानों द्वारा उपमेय श्रद्धा की विशेषताओं का उल्लेख किया है। अतः सामूहिक रूप से उल्लेख अलङ्कार है, किन्तु प्रथम चार पंक्तियों में रूपकातिशयोक्ति एवं परम्परित रूपक अलङ्कार है। 'नखत की आशा किरण समान' में उपमा अलङ्कार है। 'कल्पना की लघु लहरी' में रूपक है तथा 'मानस' में श्लेष अलङ्कार है। साथ ही यहाँ विशेषण-वक्रता भी है।

(३) कवि ने यहाँ, प्रतीकात्मक एवं लाक्षणिक शैली को अपनाया है, जो छायावाद की प्रमुख विशेषता मानी जाती है और जिसका सुन्दर आभास इससे पहले कवि के 'आँसू' काव्य में भी मिल जाता है—

> **पतझड़ था झाड़ खड़े थे सूखी सी फुलवारी में,**
> **किसलय नव कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में।**
>
> —आँसू, पृ० १६

लगा कहने .... मधुमय संदेश।

शब्दार्थ—आगन्तुक व्यक्ति=आया हुआ, नवागत व्यक्ति अर्थात् श्रद्धा। उत्कण्ठा=जिज्ञासा, उत्सुकता। सविशेष=शीघ्र। सानंद=आनन्दपूर्वक। सुमन=

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(१) सुन्दर मन, (२) फूल। मधुमय सन्देश=(१) आशा से भरा हुआ सन्देश, (२) वसन्त की सूचना।

व्याख्या—मनु जब नवागत व्यक्ति के रूप में आई हुई श्रद्धा से उसका परिचय जानने के लिए अधिक उत्सुक हो गये, तब उस आए हुए व्यक्ति (श्रद्धा) ने मनु की उस तीव्र उत्सुकता को मिटाने के लिए अपना परिचय देना प्रारम्भ किया। मनु के उत्कण्ठापूर्ण सुन्दर मन को आनन्दपूर्वक आशा से भरा हुआ सन्देश देने वाली वह श्रद्धा उस समय ऐसी प्रतीति होती थी, जैसे कोई कोकिल बड़े आनन्द के साथ किसी फूल को आशा से भरा हुआ वसन्त का सन्देश दे रही हो।

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ भाव-साम्य के आधार पर बड़े सुन्दर उपमानों का चयन किया है, जिससे कविता में मार्मिकता एवं भाव-प्रेषणीयता की वृद्धि हो गयी है, क्योंकि श्रद्धा की वह मधुर वाणी उतनी ही आनन्दप्रद थी, जितनी कि फूलों को वसन्त की सूचना देने वाली कोकिल की मधुर वाणी आनन्दप्रद होती है। अतः यहाँ श्रद्धा की मधुर वाणी का श्रव्य-बिम्ब अत्यन्त आकर्षक है और यहाँ शब्दों का चुनाव भी कवि की कला-कुशलता का द्योतक है। जैसे 'उत्कण्ठा' शब्द अनुभाव-बोधक है।

(२) 'सुमन' तथा 'मधुमय' में श्लेषालङ्कार है तथा पूरी पंक्ति में वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

भरा था मन .... प्यारी संतान।

शब्दार्थ—ललित कला=वस्तु, मूर्ति, चित्र, सङ्गीत तथा काव्य कला को ललित कला कहते हैं, अंग्रेजी में इन्हें Fine Arts कहते हैं। गन्धर्व=एक देव-जाति, जो संगीत-कला में अत्यन्त निपुण मानी जाती थी।

व्याख्या—श्रद्धा अपना परिचय देती हुई कहती है कि इधर गन्धर्वों के नगर में रहकर ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मेरा मन नवीन उत्साह से भरा हुआ था और मेरे पिता मुझे अत्यधिक प्यार करते थे।

टिप्पणी—(१) 'ललित कला का ज्ञान' कह कर कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि श्रद्धा का हृदय कला का मर्म जानने के कारण अत्यधिक कोमल एवं उदार था, वह आद्यानारी जंगली अवस्था में न थी, अपितु उसके हृदय में मृदुलता, सहृदयता, उदारता आदि उदात्त भावनाएँ विद्यमान थीं, जिसके परिणाम-स्वरूप वह भ्रमित मानव को सन्मार्ग पर पर लाने की क्षमता रखती थी।

(२) गन्धर्वों के देश का वर्णन पुराणों में स्थान-स्थान पर मिलता है। प्रायः सभी पुराणों में गंधर्वों को सुमेरु पर्वत पर रहते हुए लिखा है और उस सुमेरु पर्वत को अत्यन्त दिव्य एवं नैसर्गिक छटा से युक्त कहते हुए नाना प्रकार के मणि-रत्नों से सुसज्जित बताया है, जैसा कि वायु पुराण में लिखा है—

स पर्वतो महान्दिव्यो दिव्यौषधिः समन्वितः।
भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः॥

तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः।
शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसां गणाः॥
मणिरत्नमयं चित्रं नाना वर्णं प्रभायुतम्।
अनेकवर्णनिचयं सौवर्णम् अरुणप्रभम्॥
कान्तं सहस्रपर्वाणं सहस्रोदकरन्दम्।
सहस्र शतपत्रं तं विद्धि मेरुं नगोत्तमम्॥

—वायुपुराण, ३४-५४-५५ तथा ६५-६६

घूमने का .... सुन्दर सत्य।

शब्दार्थ—मुक्त व्योमतल=खुले आकाश के नीचे। कुतूहल=आश्चर्य, जिज्ञासा की भावना। व्यस्त=तल्लीन। हृदय-सत्ता=भाव-जगत्।

व्याख्या—मैं गन्धर्वों के देश में रहती हुई इधर खुले आकाश के नीचे प्रायः नित्य-प्रति घूमा करती थी। मेरा घूमने का यह अभ्यास दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही चला जाता था, क्योंकि मेरा हृदय जिज्ञासा की भावना से भरा हुआ था और उस जिज्ञासा में तल्लीन रहने के कारण मैं भाव-जगत् के उस सुन्दर सत्य को जानना चाहती थी, जो समस्त कला-कृतियों में तथा विधाता की इस कलामयी व्यापक सृष्टि में छिपा हुआ है।

टिप्पणी—(१) यहाँ प्रसाद ने एक जिज्ञासु की भावना का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। इस चित्रण में कला के मर्म तक पहुँचने वाले व्यक्ति की स्थिति का सुन्दर निरूपण मिलता है।

(२) 'हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य' से कवि का अभिप्राय यह है कि जिस तरह मानव के शरीर में हृदय छिपा हुआ है; उसी तरह संसार की समस्त कला-कृतियों के अन्दर तथा सम्पूर्ण जगत् में भावों की सत्ता छिपी हुई है। एक उच्चकोटि का कलाकार या सहृदय कवि उसी भाव-सत्ता की खोज में रात-दिन बेचैन रहता है और वह जो कुछ भी खोज कर लेता है, उसी के आधार पर अपनी कला कृतियों का प्रदर्शन करता है अथवा भावों का निरूपण करता है। अतः इस व्यापक सृष्टि में और इस सृष्टि की सम्पूर्ण कला-कृतियों में जो भावों का सुन्दर सत्य छिपा हुआ है वही एक कलाकार या सहृदय व्यक्ति अथवा एक दार्शनिक के लिए 'हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य' है। वह इसी की खोज करता हुआ अनेकानेक भाव-रत्न जनता के लिए यहाँ छोड़ जाता है तथा उन भाव-रत्नों का समूह ही संसार के गौरव-ग्रन्थों अथवा अन्य कला-कृतियों के रूप में स्थान-स्थान पर मिलता है।

(३) श्रद्धा के कुतूहल को व्यस्त होकर हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य की खोज में लगा हुआ कहकर कवि ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि श्रद्धा हृदय की प्रतीक है और इस प्रतीकात्मक रूप का निर्वाह प्रसाद ने अन्त तक किया है। ऋग्वेद में भी श्रद्धा को "श्रद्धां हृदय्याऽऽकूत्या" (ऋ० १०।१५१।४) कहकर श्रद्धा का सम्बन्ध हृदय से जोड़ा गया है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(४) यहाँ कुतूहल को व्यस्त होकर सुन्दर सत्य का खोजने वाला कहा है। अतः इसमें मानवीकरण अलङ्कार है तथा कुतूहल में व्यस्तता दिखाने के कारण विशेषण-विपर्यय अलङ्कार को भी अपनाया गया है।

दृष्टि जब जाती .... क्या है पीर ?

शब्दार्थ—अधीर=उत्सुक। धरा=पृथ्वी। पीर=पीड़ा, व्यथा।

व्याख्या—घूमते-घूमते जब मेरी दृष्टि उन्नत शैलमालाओं वाले इस हिमालय पर्वत की ओर जाती थी, तब इन ऊँची-ऊँची चोटियों को देखकर मेरा यह अत्यन्त उत्सुक मन यह प्रश्न करने लगता था कि क्या इन ऊँची-ऊँची पर्वत-शिखरों के रूप में यह पृथ्वी ही भयभीत होकर सिकुड़ गई है? किन्तु यह सिकुड़न क्यों हुई? अरे, इस पृथ्वी के हृदय में कौनसी ऐसी व्यथा थी, जिससे इसने सिकुड़कर पर्वत का रूप धारण कर लिया?

टिप्पणी—(१) कवि ने यहाँ पर हिमालय को पृथ्वी की सिकुड़न कहकर एक सिकुड़ी हुई तथा भयभीत नारी के माध्यम से हिमालय का अत्यन्त आकर्षक दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत किया है और सिकुड़न के लिए भय तथा पीड़ा की कल्पना करके कवि ने अपनी इस उक्ति में और भी मार्मिकता भर दी है।

(२) कवि ने श्रद्धा के इस कथन द्वारा यह भी स्पष्ट किया है कि श्रद्धा में हृदय पक्ष की प्रधानता है, उसका हृदय कोमल भावनाओं से भरा हुआ है, वह करुण कामना की मूर्ति है और उसे सर्वत्र एक व्यापक चेतना के दर्शन होते हैं। इसी कारण वह पृथ्वी के अन्दर भी भय एवं पीड़ा के दर्शन करती है और उसे एक कोमल नारी की भाँति भयभीत होते हुए सिकुड़ कर एक पर्वत के रूप में खड़ा देखती है।

(३) यहाँ पर मानवीकरण अलंकार है तथा एक भयभीत नारी का चित्र उपस्थित करने के कारण समासोक्ति अलङ्कार की भी व्यंजना है।

मधुरिमा में अपनी ... ... सुन्दर सम्भार।

शब्दार्थ—मधुरिमा=माधुर्य, सौन्दर्य। सोया संदेश=छिपा हुआ संदेश। चेतना=उत्सुकता। मचल उठी=अत्यधिक तीव्र हो गई। आँख की भूख=दर्शन की तीव्र लालसा। सुन्दर सम्भार=सौम्य सजावट, दिव्य वैभव।

व्याख्या—उस खुले आकाश के नीचे घूमते समय जब मैं हिमालय की इस नैसर्गिक छटा को देखती थी, तब मुझे उस अपार सौन्दर्य के अन्दर मौन रूप में छिपा हुआ एक महान् संदेश सुनाई पड़ता था, जो सजग होकर बार-बार मुझे आगे बढ़ने के लिए संकेत करता, जिसके परिणामस्वरूप उस सौन्दर्य को देखने के लिए अचानक मेरी उत्सुकता भी अत्यधिक बढ़ गई है और मैं उसके बारे में कुछ जान न सकी। फिर क्या था! हिमगिरि की उन्नत शैलमालाओं के अनुपम शृंगार को देखने के लिए सहसा मेरा मन आगे बढ़ा और उसके साथ-साथ मेरे पैर भी आगे बढ़ने लगे। अहा! हिमालय का दिव्य वैभव कितना रमणीक है कि जिसे देखते ही मेरी सौन्दर्य-दर्शन की तीव्र लालसा शान्त हो गई।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर कवि ने हिमालय के दिव्य सौन्दर्य का उल्लेख करते हुए उसको अनन्त प्रेरणा का भण्डार सिद्ध किया है। हिमालय की गौरव गाथा का गान गाते हुए आधुनिक कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी हिमालय को अनन्त सौन्दर्यशाली एवं अनन्त प्रेरणा का स्रोत बताया है—

मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार दिव्य गौरव विराट्! पौरुष के पुंजी भूत ज्वाल!
मेरी जननी के हिम किरीट! मेरे भारत के दिव्य भाल!
× × ×
ले अंगड़ाई उठ हिले धरा, कर निज विराट् स्वर में निनाद,
तू शैलराट्! हुंकार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद, रे तपी आज तप का न काल,
नव युग शंख ध्वनि जगा रही, तू जाग जाग मेरे विशाल!

यहाँ 'सोये हुए सन्देश' के द्वारा संकेत कराने में मानवीकरण अलङ्कार है, किन्तु सोये हुए सन्देश का सजग होना कहकर कवि ने विरोधाभास अलङ्कार का प्रयोग किया है। 'मधुरिमा' में प्रत्यय-वक्रता का चमत्कार है।

(३) 'आँख की भूख' में प्रयोजनवती लक्षणा है तथा यहाँ देखने की उत्कट अभिलाषा दिखाने के लिए आँख का भूख से सम्बन्ध जोड़ा गया है, अन्यथा भूख का सम्बन्ध पेट से है। अतः यहाँ लक्षणा शक्ति द्वारा कवि ने भाषा में अर्थ गाम्भीर्य की सृष्टि की है।

एक दिन सहसा .... रहा विश्रब्ध।

शब्दार्थ—अपार सिंधु=अनन्त सागर। नग तल=हिमालय पर्वत की तलहटी। क्षुब्ध=ऊँची-ऊँची लहरों द्वारा क्रोध प्रकट करता हुआ। अकेला यह जीवन=अकेली मैं। निरुपाय=किसी प्रकार का उपाय करने में असमर्थ होकर। विश्रब्ध=निर्भीक, शान्त।

व्याख्या—जब मैं हिमालय की उन सौन्दर्यमयी उन्नत श्रेणियों पर घूम रही थी, तब एक दिन मैंने देखा कि अचानक अनन्त समुद्र अपनी मर्यादा को भंग करके ऊँची-ऊँची लहरों द्वारा क्रोध प्रकट करता हुआ हिमालय की तलहटी से आकर टकराने लगा। तब से आज तक मैं निरुपाय होकर इस शून्य प्रदेश में अकेली ही निर्भीकता के साथ घूम रही हूँ।

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने 'निरुपाय' शब्द द्वारा अकेली श्रद्धा के असहाय एवं विवश जीवन की ओर संकेत किया है, क्योंकि उस नीरव प्रदेश में वह बेचारी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अकेली होने के कारण कुछ कर नहीं सकती थी। कहावत भी प्रसिद्ध है कि 'अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है' परन्तु 'विश्रब्ध' विशेषण द्वारा कवि ने श्रद्धा की दृढ़, निर्भीक एवं निश्चल मानसिक स्थिति की ओर भी इङ्गित किया है; जिससे वह अकेली एवं निरुपाय होकर भी एक सुदृढ़ एवं साहसी बाला के रूप में मनु के सम्मुख उपस्थिति होती है।

यहाँ देखा .... मन में अनुमान।

शब्दार्थ—बलि=पंचमहायज्ञों के अन्तर्गत चौथा भूत यज्ञ, जिसमें देवता, पितर आदि को हवि प्रदान करने के उपरान्त कुछ अन्न संसार के अन्य प्राणियों के लिए यज्ञ-स्थान से कुछ दूरी पर रख दिया जाता है। भूत-हित-रत=प्राणियों के कल्याण में संलग्न। सजीव=जीवित।

व्याख्या—घूमते-घूमते जब मैं इधर आई, तब मैंने यहाँ पर बलि का अन्न रखा हुआ देखा, जिसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि इस निर्जन प्रदेश में प्राणियों की कल्याण-कामना में लीन होकर यह किसने अन्न-दान किया है! तब मेरे मन में यह अनुमान हुआ कि निस्सन्देह यहाँ निकट ही कोई व्यक्ति जीवित होगा, जो इस तरह के सेवा-कार्य में लगा रहता है।

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने भूत-हित बलि का उल्लेख करते हुए मनु के द्वारा निस्वार्थ भाव से किये गये 'भूत-यज्ञ' का वर्णन किया है। गीता में ऐसे ही निस्वार्थ भाव से किये गये यज्ञ को सात्विक यज्ञ कहा गया है—

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ १७।११

इसके अतिरिक्त ऐसे ही सात्विक यज्ञ करने वाले व्यक्ति के हृदय में श्रद्धा का भी आविर्भाव होता है, क्योंकि जिस व्यक्ति का जैसा अन्तःकरण होता है, उसके अन्दर वैसे ही श्रद्धा उत्पन्न होती है; जैसा कि गीता में भी लिखा है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ १७।३

अतः मनु के निस्वार्थ यज्ञ के उपरान्त सात्त्विक भावों से युक्त श्रद्धा का मनु से मिलना सर्वथा युक्ति-संगत है।

तपस्वी क्यों ... ... कैसा उद्वेग।

शब्दार्थ—क्लान्त=दुःखी। वेग- तीव्रता। हताश=आशा-हीन, निराश। उद्वेग=अशान्ति, घबराहट, चित्त की अस्थिरता, क्षोभ।

व्याख्या—श्रद्धा पुनः कहने लगी—हे तपस्वी! तुम इतने दुःखी क्यों हो रहे हो? तुम्हारे हृदय में वेदना की तीव्रता क्यों दिखाई दे रही है? आश्चर्य है कि तुम पुरुष होकर भी कितने निराश हो गये हो! यह बताओ कि तुम्हारे चित्त में यह कैसा क्षोभ उत्पन्न हो रहा है?

टिप्पणी—यहाँ पर पुनः कवि ने मनु की व्यथापूर्ण निराश स्थिति का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है तथा प्रत्येक वाक्य में नाटकीय गुण विद्यमान है। यहाँ 'क्यों' 'क्या' आदि पदों द्वारा संवृति-वक्रता का चमत्कार प्रस्तुत किया गया है।

हृदय में क्या ... ... सुन्दर वेश!

शब्दार्थ—निश्शेष=पूर्ण रूप से या पूर्णतया। वंचित करना=ठगना।

व्याख्या—हे अधीर पुरुष! क्या तुम्हारे हृदय में जीवित रहने की उत्कट लालसा पूर्णतया नहीं रही है? अर्थात् क्या तुम जीवित रहना नहीं चाहते हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे मन में त्याग की भावना सुन्दर वेश धारण करके प्रविष्ट हो गई हो और वही तुम्हें वंचित कर रही हो!

टिप्पणी—(१) 'अधीर' को 'लालसा' का विशेषण बनाकर प्रथम दो पंक्तियों का यह अर्थ भी किया जा सकता है कि "क्या तुम्हारे हृदय में जीवन की वह लालसा पूर्णतया नहीं रही है, जो मनुष्य को बेचैन बना देती है अथवा जिसके कारण वह जीवित रहने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता है।"

(२) त्याग के वंचित करने में मानवीकरण अलंकार है।

दुःख के डर .... कर अनजान।

शब्दार्थ—जटिलताओं=जीवन की कठिनाइयों या समस्याओं। काम=कामना या जीने की इच्छा।

व्याख्या—श्रद्धा पुनः मनु से इस तरह कहने लगी कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दुःख से भयभीत होकर जीवन की अज्ञात कठिनाइयों अथवा अनजान समस्याओं का अनुमान करके तथा अपने भविष्य के बारे में अनजान बनकर काम से झिझक रहे हो अर्थात् आनन्द सहित जीवित रहने की अभिलाषा नहीं रखते हो।

टिप्पणी—(१) 'अज्ञात जटिलताओं' द्वारा कवि ने मानव की उन कठिनाइयों एवं समस्याओं की ओर संकेत किया है, जिनके कारण वह रात-दिन बेचैन रहता है तथा जिनका उसे पहले कभी आभास नहीं मिलता।

(२) 'काम' शब्द कामायनी में एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में काम को 'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।" ऋ० १०।१२९।४१। १-२ कहकर मन का रेतस् या मूलतत्त्व कहा है। वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्र में काम को ऐसी मूल प्रवृत्ति कहा है, जिससे बिना जीवन का कोई कार्य नहीं होता। मनुस्मृति (२-४) में लिखा है कि जो भी कर्म किया जाता है, वह सब काम की ही चेष्टा है तथा शैवागमों में काम को संकल्प, इच्छा एवं सृष्टि का उत्पादक, अक्षर, अव्यक्त, स्वयंभू, सम्पूर्ण संसार का बीज, शिवरूप आदि कहा है (देखिए, तन्त्रालोक; भाग २, पृ० १४७-१५१)। अतः 'काम' यहाँ वासना का द्योतक न होकर जीवन की उस मूल इच्छा का द्योतक है जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है, जिससे जीवन के सभी

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कार्य सम्पन्न होते हैं और जो मानव की उन्नति का मूलाधार है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड के काम (Libido) को मूल शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

कर रही लीलामय .... होते होते अनुरक्त।

शब्दार्थ—लीलामय=क्रीड़ा पूर्ण-सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं तिरोधान नामक पाँच कार्यों में लीन होकर। महाचिति=विराट् चेतना-शक्ति। उन्मीलन=विकास, उदय। अनुरक्त=व्यामोहित।

व्याख्या—अब श्रद्धा इस सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त उस चेतना-शक्ति के कार्यों का उल्लेख करती हुई इस सृष्टि के सुन्दर विकास की ओर मनु का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कहती है कि वह व्यापक एवं महान् चेतना-शक्ति नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हुई इस विश्व में आनन्द कर रही है। उसका कोई एक रूप नहीं है, अपितु वह विश्व के कण-कण में जाग्रत होती हुई सी सदैव अभिव्यक्त रहती है। उस महान् चेतना-शक्ति के अन्दर ही उसकी अपनी इच्छा से इस विश्व का सुन्दर उन्मीलन होता है अर्थात् वह महाचिति ही इस अनन्त सौन्दर्य-सम्पन्न विश्व के रूप में प्रकट होती है। इसी कारण संसार का प्रत्येक प्राणी इस विश्व में अनुरक्त होता है अथवा अन्त में सभी इसी चिति शक्ति में विलीन होते हैं।

टिप्पणी—(१) **कर रही लीलामय आनन्द**—यहाँ प्रसाद ने उस चिति या ब्रह्म को आनन्दमयी क्रीड़ा करते हुए दिखाकर ब्रह्म के आनन्दमय रूप का दार्शनिक बिम्ब प्रस्तुत किया है। उपनिषदों में भी ब्रह्म को आनन्दमय ही बतलाया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है लिखा है कि 'यदि वह आकाश की भाँति परिपूर्ण आनन्दस्वरूप ब्रह्म न होता, तो कौन जीवित रहता, कौन प्राणों की क्रिया करता। सचमुच वह ब्रह्म ही सब को आनन्द प्रदान करता है।' 'यह आनन्द ही ब्रह्म है, उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीते हैं और अन्त में आनन्द में ही लीन हो जाते हैं। जो ब्रह्म के इस आनन्दमय रूप को जानता है, वह किसी से भयभीत नहीं होता है।' (तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली, षष्ठ अनुवाक)।

(२) सृष्टि के उन्मूलन-निमीलन एवं महाचिति सम्बन्धी प्रसाद के दार्शनिक्त विचारों पर काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-दर्शन की छाप है। 'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' में लिखा है कि "चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्ध हेतुः ॥ १ ॥ अर्थात् वह महाचिति परम स्वतन्त्र है तथा इस विश्व के उन्मेष का कारण है। "स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति" ॥ २ ॥ अर्थात् अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ही वह अपनी भित्ति पर अर्थात् अपने अन्तर्गत ही इस विश्व का उन्मीलन (उदय) करती है। "बललाभे विश्वमात्मसात्करोति" ॥ १५ ॥ अर्थात् अन्त में अपने उन्मग्न स्वरूप का आश्रय लेकर अपने अन्तर्गत ही पृथ्वी से लेकर सदाशिव पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व को आत्मसात् कर लेती है। इसी कारण उस चिति को "तथापि तद्वत् पंचकृत्यानि करोति" ॥१०॥ कहकर सर्वदा पंचकृत्यों—सृष्टि, स्थिति, विलय, अनुग्रह और संहार—में लीन रहते हुए निरन्तर

क्रीड़ा में मग्न कहा है। 'स्पंद-कारिका' में स्पष्ट ही "इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्" ॥३।३॥ कहकर सम्पूर्ण जगत् को उस चिति की क्रीड़ा कहा है। अतः प्रसाद ने उक्त दर्शन के न केवल विचार ही लिए हैं, अपितु 'क्रीड़ा', 'चिति', 'उन्मीलन' आदि शब्दावली को भी अपना लिया है।

(३) प्रत्यभिज्ञादर्शन में विश्व को चिति का स्वरूप कहा गया है और उसे इसी कारण सत्य माना गया है। जैसा कि प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में लिखा है—"श्रीमत्परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्ण-विश्वात्मक-परमानंदमय-प्रकाशैकघनस्य एवं विधिमेव शिवादि-धरण्यन्तम् अखिलम् अभेदेनैव स्फुरति। न तु वस्तुतः अन्यत् किंचित् ग्राह्य' ग्राहकं वा; अपितु श्री परमशिव भट्टारक एव इत्थं नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति।" (पृ० ८)

(४) **'इसी में सब होते अनुरक्त'**—यहाँ कवि ने एक ओर तो विश्व को चिति का ही सुन्दर एवं आकर्षक रूप बताकर इसके मनोहर रूप पर सभी के अनुरक्त होने का संकेत किया है। दूसरी ओर 'अनुरक्त' का अर्थ तल्लीन होना या विलीन तथा निमीलन होना भी है। अतः इससे यह संकेत भी मिलता है कि अन्त में सभी इसी चिति में ही विलीन हो जाते हैं जैसा कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' अर्थात् एक तो यह चिति विश्व का उन्मीलन करती है और दूसरी ओर 'बललाभे विश्वमात्मसात्करोति' अर्थात् सारे विश्व को अपने अन्तर्गत ही विलीन कर लेती है। उपनिषद् में भी लिखा है कि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रन्त्यभिसंविशान्ति' अर्थात् उसी ब्रह्म से सारा जगत् उत्पन्न होता है उसी में जीवित रहता है और अन्त में उसी में लय हो जाता है। (तैत्तिरीय उपनिशद् ३।१)

(५) 'स्पंदकारिका' में भी "यस्योन्मेष निमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ" कहकर शिव या परब्रह्म से ही जगत् का उन्मीलन और उसी में जगत् के निमीलन का वर्णन किया गया है। (स्पंदकारिका १)

काम मङ्गल ... ... असफल भवधाम।

शब्दार्थ—मंगल से मंडित=कल्याण से सुशोभित। श्रेय=मंगलमय परिणाम से युक्त। सर्ग=सृष्टि, विश्व। इच्छा=कामना, अभिलाषा या काम (Desire)। तिरस्कृत कर=उसकी उपेक्षा करके। असफल=निष्फल। भवधाम=विश्व।

व्याख्या—श्रद्धा पुनः इस विश्व के मंगलमय स्वरूप की ओर संकेत करती हुई कहती है कि यह विश्व काम के मंगलमय स्वरूप से सुशोभित है, इसी कारण यह अन्ततः मंगलमय है, श्रेयस्कर है और फिर इस विश्व का विकास ही जब काम से हुआ है अथवा चित् शक्ति की इच्छा से हुआ है, तब इस विश्व को काम या इच्छा-शक्ति से सर्वथा परे समझना तुम्हारी भूल है। सम्भवतः तुम काम के इसी रहस्य को न जानने के कारण इसकी उपेक्षा कर रहे हो और इस तरह काम की उपेक्षा करके तुम इस विश्व को निष्फल बना रहे हो।

टिप्पणी—(१) प्रत्यभिज्ञादर्शन में महाचिति की अनंत शक्तियाँ मानी गई हैं,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जिनमें से पाँच प्रमुख हैं—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने अपने 'तन्त्रसार' में इन पाँच शक्तियों का उल्लेख करते हुए "तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः" कहकर इच्छा को उस महाचिति का चमत्कार कहा है, क्योंकि इसी शक्ति के कारण वह विश्व के निर्माण का संकल्प करती है (देखिए, तन्त्रसार, पृ० ६) प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में तो स्पष्ट ही इस विश्व को उस चिति की इच्छा का परिणाम कहा है—"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति" ॥ १२ ॥ साथ ही तंत्रालोक में भी लिखा है कि शिव ही चित्-रूप है और अपनी इच्छा से ही वे अपने भीतर व्याप्त विश्व को प्रकाशित करते हैं। (तंत्रालोक, भाग ६, पृ० ८-११) इसके अतिरिक्त ऐतरेय उपनिषद् में भी लिखा है कि पहले वह आत्मा अकेली ही थी। उसके सिवाय और कोई भी चेष्टा करने वाला न था। तब उसने समस्त लोकों को रचने की इच्छा की और उसकी इच्छा के परिणामस्वरूप ही समस्त लोक बने। (ऐ० उ० १।१।१-२)। अतः उपनिषद् एव शैवागम दोनों आधारों पर यह विश्व, उस चेतना शक्ति की इच्छा का ही परिणाम सिद्ध होता है।

(२) प्रसाद ने इस विश्व को काम के मंगलमय स्वरूप से सुशोभित कहा है और उस काम को ही इच्छा का रूप कह कर उसी से विश्व की उत्पत्ति सिद्ध की है। इस तरह प्रसाद ने यहाँ ब्रह्म की 'इच्छा शक्ति' का निरूपण किया है। प्रसाद की इस विचारधारा के मूलाधार शैवागम हैं। शिवपुराण में काम को ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन त्रिदेवों का मूर्तिमन्त स्वरूप माना है। वहाँ पर लिखा है कि सबकी उत्पत्ति काम से होती है और काम में ही सबका अध्यवसान होता है। यह काम सुषुप्ति एवं जाग्रत दोनों अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। वह दिव्य एवं स्वर्गीय आनन्द भी काम का ही विकार है. जिसे हम ब्रह्मानन्द कहते हैं। यह काम ही इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप शक्तित्रय है। यह काम ही सृष्टि का उत्पादक है। यही संकल्प, इच्छा और कल्पना है तथा इसके बिना कोई भी स्पन्दन सम्भव नहीं है। (देखिए, शिवपुराण; धर्म-संहिता अध्याय ८)। महाभारत में भी "यथा पुष्प-फलं काष्ठात् कामः धर्मार्थयोः वरः" कहकर काम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त शैवग्रन्थों में काम को विशुद्ध प्रेम एवं सौन्दर्य का प्रतीक मानकर 'काम कला' के रूप में उसकी पूजा का विधान मिलता है और उसे संसार की उत्पादिका शक्ति माना है (देखिए, कामकला-विलास, अध्याय ८)। (काम के स्वरूप का विशेष अध्ययन करने के लिए देखिए, लेखक कृत "कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन", पृ० ३८२-९२)

(३) श्रद्धा का यह सम्पूर्ण कथन प्रवृत्तिमूलक है। वह मनु की निवृत्तिमयी भावना का खण्डन करती हुई उन्हें वैराग्य, संन्यास आदि के स्थान पर सांसारिक कार्यों की ओर प्रवृत्त करने की सलाह दे रही है। प्रसाद की मूल विचारधारा भी प्रवृत्तिमयी थी और वे संन्यास या वैराग्य लेकर जंगल में ब्रह्म का चिंतन करते हुए अकेला जीवन व्यतीत करने की उपेक्षा संसार में रह कर यहाँ सेवा, परोपकार आदि शुभ कार्यों में निरत रहना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। आधुनिक कवि 'दिनकर'

ने भी 'कुरक्षेत्र' में संन्यास या वैराग्य का तिरस्कार करके निवृत्ति-मार्ग की घोर निंदा की है तथा प्रवत्ति मार्ग का समर्थन किया है—

> जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो निकल भागना वन में,
> धर्मराज, है घोर पराजय नर की जीवन-रण में।
> यह निवृत्ति है ग्लानि, पलायन का यह कुत्सित क्रम है,
> निःश्रेयस् यह श्रमित, पराजित, विजित बुद्धि का भ्रम है।

इसी कारण आगे चलकर प्रवृत्ति मार्ग का उपदेश देते हुए लिखा है—

> जाओ शमित करो निज तप से नर के रागानल को,
> बरसाओ पीयूष, करो अभिषिक्त दग्ध भूतल को।
> × × × ×
> ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
> धर्मराज ! जो कुछ है, वह है मिट्टी में, जीवन में।

(४) यहाँ विश्व के मंगलमय रूप की सहज व्याख्या होने के कारण 'सहजा-वाक्य-वक्रता' का सौन्दर्य विद्यमान है।

दुःख की पिछली .... सुख गात।

शब्दार्थ—पिछली रजनी=रात का पिछला पहर। विकसता=विकसित होता, निकलता। नवल प्रभात=नवीन प्रातःकाल। झीना=महीन, बारीक, पारदर्शी। नील परदा=नीला आकाश रूपी परदा। गात=शरीर।

व्याख्या—अब श्रद्धा मनु को इस संसार के सुख-दुःख के क्रम को समझाती हुई कहती है कि जिस तरह रात्रि के पिछले पहर के व्यतीत होते ही नवीन प्रभात का विकास होता है, उसी तरह दुःख की अन्तिम घड़ियों के बीतते ही मानव को सुख की भी प्राप्ति होती है। अतः जिस तरह रात में आकाश के इस महीन नीले परदे के पीछे प्रभात अपना शरीर छिपाए बैठा रहता है और समय आते ही तुरन्त निकल आता है, उसी तरह दुःख के इस महीन नीले परदे के पीछे सुख भी अपना शरीर छिपाये बैठा है और वह भी समय आते ही तुरन्त निकल आयेगा अर्थात् दुःख के उपरान्त अवश्य ही तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी।

टिप्पणी—(१) दुःख-सुख के इस क्रम का वर्णन कितने ही प्राचीन कवियों ने किया है। महाकवि भास ने अपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में लिखा है कि "चक्रार इव परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च।" अर्थात् पहिए की तीलियों के समान दुःख और सुख सदैव परिवर्तित होते रहते हैं। महाकवि कालिदास ने भी लिखा है—

> कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा।
> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

अर्थात् किसी को केवल सुख अथवा एकमात्र दुःख नहीं मिलता, अपितु दुःख

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

और सुख रथ के पहिए की परिधि की भाँति कभी ऊपर और कभी नीचे घूमते रहते हैं।

(२) यहाँ 'रजनी' और 'प्रभात' के वर्णन द्वारा दुःख और सुख का अत्यन्त मार्मिक भाव-बिम्ब अंकित किया गया है।

(३) यहाँ पर कवि ने दुःख में रजनी का तथा सुख में प्रभात का आरोप किया है। अतः यहाँ परम्परित रूपक है तथा 'नील परदा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जिसे तुम समझे .... जाओ भूल।

शब्दार्थ—अभिशाप=अमंगल, अनिष्ट का हेतु। ज्वालाओं=आपत्तियों। मूल=उद्गम, उत्पादक। ईश=परमेश्वर। रहस्य वरदान=गुप्त वरदान अथवा ऐसा वरदान जिसके मर्म को कोई नहीं जानता।

व्याख्या—मनु की दुःखमयी स्थिति को देखकर श्रद्धा कहती है कि तुम जिस दुःख को अपने लिए अमंगल समझ रहे हो और जिसे संसार की सम्पूर्ण आपत्तियों का उत्पादक मान बैठे हो, वह दुःख भी परमेश्वर का रहस्यपूर्ण वरदान है, इस बात को तुम्हें कदापि भूलना नहीं चाहिए।

टिप्पणी—संसार में प्रायः दुःख को अमंगलमय तथा समस्त आपदाओं का मूल माना गया है परन्तु कवियों ने उस दुःख को भी ईश्वर की देन या ईश्वर का उपहार कहकर उसे दृढ़तापूर्वक सहन करने का आग्रह किया है; जैसा कि महाकवि बिहारी ने लिखा है—

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साँईहि न भूलि।
दई-दई क्यों करतु है, दई-दई सु कबूलि॥
दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अएरि।
जापै सुखु चाहत लियौ, ताके दुखहि न फेरि॥

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी गीतांजलि में 'तोरा शुनिस ना कि' गीत में दुःख और सुख दोनों को ईश्वर का रूप बताते हुए लिखा है—

जब दुख पर दुख आता है;
वह दुख नहीं उसी के चरण हृदय को छूते हैं।
जब सुख का भान होता है;
उसी के चरणों का स्पर्श मन को पुलकित करता है॥

विषमता की पीड़ा ... ... मधुमय दान।

शब्दार्थ—विषमता=प्रकृति की साम्यावस्था के विरुद्ध संसार की वह स्थिति जिसमें निरन्तर सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कार्य होते रहते हैं। स्पंदित=गतिशील, प्रगतिमय। भूमा=विराट् शक्ति। मधुमय दान=माधुर्यपूर्ण देन या रमणीक वरदान।

व्याख्या—दुःख के रहस्यमय स्वरूप को समझाने के उपरान्त अब श्रद्धा मनु को दुःख और सुख के वैषम्य से भरे हुए इस जगत् के स्वरूप का बोध कराती हुई

कहती है कि इस विश्व में कभी एक स्थिति दिखाई नहीं देती। यहाँ कभी सृष्टि होती है, तो कभी संहार होता है; कभी स्थिति दिखाई देती है, तो कभी तिरोधान का कार्य चलता है। अतः इन्हीं विषम स्थितियों से उत्पन्न होने वाली पीड़ा में लीन होकर यह महान् विश्व निरन्तर गतिशील बना रहता है। इन्हीं विषम परिस्थितियों से सुख और दुःख का भी विकास होता है। अतः विषमता ही सृष्टि के साथ-साथ सुख और दुःख की भी जननी है और यह विषमता हमें और किसी से प्राप्त नहीं होती, अपितु यह भी उस विराट् शक्ति तथा महाचिति (भूमा) की माधुर्यपूर्ण देन है, जो हमें विश्व के उन्मीलन के साथ प्राप्त होती है।

टिप्पणी—(१) **विषमता**—प्रसाद ने इस शब्द का प्रयोग समरसता के विरुद्ध किया है। समरसता जीवन की वह साम्यावस्था है, जिसमें सुख-दुःख सब लीन हो जाते हैं, पाप और पुण्य घुलमिल जाते हैं तथा एकमात्र आनन्द रूप परमार्थ तत्त्व ही शेष रह जाता है। अतः विषमता जीवन की वह स्थिति हुई जिसमें सुख और दुःख का भेद बना रहता है, पाप-पुण्य पृथक्-पृथक् रहते हैं, जो भेदपूर्ण सृष्टि का स्वरूप कहलाती है तथा जिसमें सुख, दुःख, ग्राह्य, ग्राहक, मूढ़ भाव आदि विद्यमान रहते हैं, किन्तु इसके विरुद्ध समरसता परमार्थसत्ता की स्थिति है, जहाँ उक्त सभी बातें नहीं रहतीं; जैसा कि 'स्पंदशास्त्र' में लिखा भी है—

न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यं ग्राहको न च।
न चास्ति मूढभावोऽपि तदस्ति परमार्थतः॥—स्पंदकारिका १।५

(२) **भूमा**—यह शब्द ब्रह्म का द्योतक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है : "अतिशयेन बहु इति भूमा" अर्थात् भूमा शब्द अतिशयता, बहुलता या बहुत्व का वाचक है। 'बहु' शब्द को 'भू' आदेश करके 'इमनिच्' प्रत्यय लगाने पर यह भूमा शब्द बनता है। छांदोग्य उपनिषद् में नारद तथा सनत्कुमार के प्रसंग में इस 'भूमा' शब्द का विवेचन मिलता है। वहाँ भूमा-प्रकरण में सनत्कुमार ने नारद से कहा है कि 'जहाँ पहुँचकर न अन्य किसी को देखता है, न अन्य को सुनता है, न अन्य को जानता है, वह 'भूमा' है। जहाँ अन्य को देखता, सुनता और जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह नाशवान है।' इस पर जब नारद ने पूछा—'भगवन्! वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है?' तब सनत्कुमार ने उत्तर दिया—'अपनी महिमा में।' और बताया कि धन, सम्पत्ति, मकान आदि जो महिमा के नाम से प्रसिद्ध हैं, ऐसी महिमा में 'भूमा' प्रतिष्ठित नहीं है। परन्तु वह नीचे, ऊपर, आगे, पीछे, दायें और बायें है, तथा वही यह सब कुछ है।' तदनन्तर भूमा को ही आत्मा और ब्रह्म बताया गया है और लिखा है कि "यो वै भूमा तत्सुखम्", "नाल्पे सुखमस्ति, भूमा वै सुखम्" अर्थात् जो भूमा है वही सुख है; अल्प में सुख नहीं है, अपितु भूमा ही सुख है। इतना ही नहीं, आगे यह भी लिखा है : "जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य है।" इससे यह सिद्ध है कि भूमा अल्प के विरुद्ध बहुत्व, विराट् या ब्रह्म का वाचक है। इसके अतिरिक्त इस

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

'विषमता' को 'भूमा का मधुमयदान' इसलिए कहा है कि इस माधुर्यपूर्ण सृष्टि का निर्माण भूमा या विराट् सत्ता द्वारा हुआ है और यह सृष्टि उसी समय उत्पन्न हुई अब वह विराट् सत्ता (भूमा) अपनी समरसता की अवस्था को छोड़कर विषमावस्था को प्राप्त हुई। किन्तु यह कार्य उसकी इच्छा से हुआ। जैसा कि "प्रत्यभिज्ञाहृदयम्" में लिखा है कि वह "स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।" अतः इस 'विषमता' को उस विराट् सत्ता ने इसलिए अंगीकार किया कि वह एक से अनेक होना चाहती थी; जैसा कि उपनिषदों में भी लिखा है—"एकोऽहं बहुस्याम।" अथवा यों कह सकते हैं कि इस अनन्त वैभव-सम्पन्न विश्व का निर्माण करने के लिए ही 'भूमा' ने इस 'विषमता' को धारण किया था। इसी प्रकार प्रसाद ने इस विषमता को भूमा का मधुमय दान कहा है। (विषमता का विशेष अध्ययन करने के लिए देखिए लेखक कृत 'प्रसाद-दर्शन' पृ० २०८-२१०)।

नित्य समरसता .... मणि गण द्युतमान।

शब्दार्थ—समरसता=सामरस्य या आनन्द की स्थिति। कारण=विषमता (लक्ष्यार्थ)। जलधि=समुद्र। मणिगण=मणि-समूह। द्युतिमान=देदीप्यमान।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से पुनः कहती है कि जब यह सम्पूर्ण विश्व विषमता से भरा हुआ है, तब इससे घबड़ाने की आवश्यकता नहीं, अपितु यहीं रह कर शुभ कर्म करते हुए इस विषमता से भरे हुए संसार में ही समरसता की उस स्थिति को प्राप्त करना चाहिए, जो कि अखंड आनन्द की अवस्था है और जिसे प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को है। परन्तु इस अवस्था को यहाँ प्राप्त कौन करता है ? यहाँ तो प्राणी अपने तुच्छ सुखों की खोज में पागल बना रहता है, इसलिए उसे समरसता की बजाय केवल विषमता ही हाथ लगती है अथवा समरसता का अधिकारी होकर भी यह प्राणी तुच्छ सुखों की लालसा में लीन होने के कारण विषमता को ही प्राप्त करता है। इसीलिए श्रद्धा कह रही है—यहाँ पर प्रत्येक प्राणी को समरसता के प्राप्त करने का अधिकार है, किन्तु वह समरसता को प्राप्त न करके प्रायः तुच्छ सुखों के मोह में लीन होकर विषमता को प्राप्त करता है; क्योंकि संघर्षयुक्त संसार को जन्म देने वाली अथवा संसार की कारणस्वरूपा यह विषमता ही नित्यप्रति एक समुद्र के समान उमड़ती रहती है, जिसमें व्यथा से नीली-नीली लहरें उठती रहती हैं और उन लहरों के बीच में प्राणियों के समस्त सुख देदीप्यमान मणियों की भाँति इधर-उधर बिखरते रहते हैं अर्थात् उसे समरसता की प्राप्ति न होने के कारण सुख और दुःख से भरी हुई इस विषमता के थपेड़े सहने पड़ते हैं।

टिप्पणी—(१) प्रसाद ने 'समरसता' शब्द का प्रयोग प्रत्यभिज्ञादर्शन के आधार पर किया है। 'स्वच्छन्द तन्त्र' में लिखा है कि जिस तरह एक नदी समुद्र में मिलकर एकरूपता को प्राप्त होती है और समुद्र तथा उस नदी में कोई भेद नहीं रहता, उसी तरह जब आत्मा परमात्मा-भाव को प्राप्त होकर पूर्णतः शिवरूप हो जाती है, उसे 'समरसता' कहते हैं (देखिए, स्वच्छन्दतंत्र, भाग २, २७६-७७)। नेत्रतंत्र में लिखा है कि जब योगी को यह प्रतीति होने लगती है कि न तो मैं हूँ और न कोई मुझ से अन्य है; न कोई ध्याता है और न कोई ध्येय है, अपितु सर्वत्र एक शिवरूप ही विद्यमान है; तब उसका मन आनन्द-पद-संलीन हो जाता है। योगी की इसी स्थिति को 'समरसता' कहते हैं (देखिए, नेत्रतंत्र भाग १, पृ० १९८)' माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने भी लिखा है कि "आनन्दशक्ति विश्रान्ते, योगी समरसो भवेद्" (तन्त्रालोक, भाग १, पृ० २९) अर्थात् आनन्दशक्ति में विश्रान्ति पाने या अखण्ड आनन्द की प्राप्ति को 'समरसता' कहते हैं। 'बोधसार' में भी नरहरि स्वामी ने भी लिखा है—

> जाते समरसानंदे द्वैतमप्यमृतोपमम्।
> मित्रयोरिव दाम्पत्यो जीवात्मपरमात्मनोः। —बोधसार, पृ० १०७

अर्थात् जिस प्रकार परस्पर अत्यन्त प्रेम करने वाले दम्पति का द्वैत भाव दोनों के समरस हो जाने पर अत्यन्त आनन्ददायक हो जाता है, उसी तरह जीवात्मा तथा परमात्मा के समरस हो जाने पर जीवात्मा को जो आनन्द निर्बाध रूप से प्राप्त होता है, उसमें यह कल्पित द्वैत या भेद-भाव भी ब्रह्मानन्द के तुल्य हो जाता है। अतः जीवात्मा तथा परमात्मा के समरस हो जाने पर जो अखण्ड आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है, उसी अवस्था को 'समरसता' कहते हैं (समरसता का विशेष अध्ययन करने के लिए देखिए, लेखक कृत 'कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन', पृ० ४३५-३६ और 'प्रसाद-दर्शन' पृ० २१०-२१३।

(२) यहाँ पर कवि ने विषमता को हलचलपूर्ण जगत् का कारण और इस हलचलपूर्ण स्पंदित जगत् को उसका कार्य कहा है और बताया है कि जिस तरह कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है, उसी तरह विषमता रूपी कारण से संघर्षमय जगत् की उत्पत्ति होती है, जिसमें व्यथा के कारण ऐसी लहरें उठती रहती हैं जिनमें प्राणी के सारे सुख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्राणी समरसता के अधिकारी होकर भी समरसता को प्राप्त नहीं करते, अपितु मनु की तरह निराश एवं हताश होकर तुच्छ सुखों की लालसा में पड़े रहते हैं, जिससे समरसता की बजाय उन्हें यहाँ विषमता ही प्राप्त होती है। अतः यह विषमता ही विश्व का कारण है और जो इसे भली प्रकार समझ लेता है, वही समरसता को प्राप्त कर सकता है। अतः विश्व में कारण रूप से व्याप्त विषमता का चित्र अङ्कित करके यहाँ कवि ने उससे आगे बढ़कर समरसता या अखण्ड आनन्द को प्राप्त करने की प्रेरणा दी है।

(३) यहाँ पर कवि ने विषमता को संघर्षमय जगत् का कारण कह कर उसकी उपमा समुद्र से दी है और जिस तरह समुद्र में लहरें उठती हैं तथा उन लहरों में मणियाँ इधर-उधर बिखरती रहती हैं, उसी तरह समरसता का अधिकार प्राप्त होने वाले प्राणी के जीवन में विषमता के कारण व्यथाएँ आती रहती हैं और उन व्यथाओं की हलचल में फँसे रहने के कारण उसके सारे सुख इधर-उधर बिखरते रहते हैं। अतः यहाँ पर समुद्र कारण है और लहरों का उठना तथा मणियों का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विद्यमान रहती है (देखिए, तन्त्रालोक, भाग २, पृ० १४७ तथा भाग १, पृ० १३१-३५)। प्रसाद ने इसी आधार पर जड़ पृथ्वी को चेतन आनन्द से युक्त कहा है और 'कामायनी' से पहले प्रसाद ने अपने 'जनमेजय का नागयज्ञ' में इस तथ्य को और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए लिखा है—"सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाय, किन्तु उसका नाश नहीं होता। गृह का रूप न रहेगा तो ईंटें रहेंगी, जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप परिवर्तित हुआ तो मिट्टी हुई, राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती और न उसका चेतन-मय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक 'अद्वैत' है। यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है। अखिल विश्व एक सम्पूर्ण सत्य है।" (जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १३) इसके साथ ही इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सहित शरीर जड़ माना गया है और आत्मा चेतन है। अतः संचित कर्मों का भोग और आगामी भोगों के लिए कर्म करने में यह जड़ शरीर चेतन के आनन्द को प्राप्त करता है।

(२) 'जड़ का चेतन आनन्द' पद में विरोधाभास अलंकार है।

अकेले तुम .... बिना विलम्ब।

शब्दार्थ—यजन=यज्ञ, किन्तु यहाँ यज्ञ से कवि का अभिप्राय सृष्टि निर्माण की क्रिया से है। आत्म-विस्तार=अपना विकास। अपने ही बोझ से दबना=अपना ही जीवन अपने लिए भारस्वरूप होना। अवलम्ब=सहायक। सहचर=जीवन-संगी। उऋण होना=अपने कर्त्तव्य का पालन करना।

व्याख्या—निराश एवं दुःखी मनु को कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ करने के लिए श्रद्धा मनु की सहचरी बनने का प्रस्ताव करती हुई कहती है—हे तपस्वी! तुम सर्वथा अकेले हो और असहाय हो, भला सोचो तो सही ऐसी दशा में तुम कैसे सृष्टि निर्माण-सम्बन्धी इस यज्ञ को पूरा कर सकते हो? यह विचार अत्यन्त तुच्छ है। ऐसा प्रतीत होता है कि दीर्घकाल से अकेले रहने के कारण तुम्हारा हृदय सभी प्रकार के आकर्षण से रहित हो गया है और इसीलिए तुम अपना विकास नहीं कर सके हो। तुम्हारा यह जीवन तुम्हारे लिए भार होता जा रहा है और तुम अपने लिए कोई सहायक नहीं ढूँढ़ रहे हो। क्या बिना विलम्ब किये हुए आज से ही तुम्हारी जीवनसाथी बनकर मैं तुम्हारी सहायता करती हुई अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकती?

टिप्पणी—'यजन' या यज्ञ शब्द का साधारण अर्थ है हवन-कुण्ड में कुछ हव्य पदार्थ डालकर देवताओं के लिए आहुति देना या अग्निहोत्र करना, परन्तु गीता में केवल अग्निहोत्र को ही यज्ञ नहीं कहा है, अपितु वहाँ द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, ज्ञान यज्ञ आदि अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है। (श्रीमद्भगवद्गीता, ४।२८,३३) साथ ही एन० वी० पवगी ने महाभारत, शतपथ-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के आधार पर यज्ञ को सृष्टि-निर्माण की क्रिया भी बताया है (देखिए, The Mystery of the Mahabharat, Vol. II, pp. 242-43)। इसके अतिरिक्त स्वयं प्रसाद ने भी कर्म-सर्ग में यज्ञ को 'रचना मूलक सृष्टि' कहा है—

> रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह यज्ञ-पुरुष का जो है,
> संसृति सेवा भाग हमारा उसे विकसने को है।
>
> —कामायनी, पृ० १३२

इसी कारण यहाँ कवि का 'यजन' से अभिप्रेत अर्थ सृष्टि-रचना-सम्बन्धी क्रिया से है।

समर्पण लो .... विगत विकार।

शब्दार्थ—समर्पण=अपना सर्वस्व अर्पण करना। लो=स्वीकार करो। सेवा का सार=सेवा का मूल तत्त्व। सजल संसृति=जलमय जगत् या भवसागर। पतवार=नौका को पार लगाने का साधन। उत्सर्ग=न्योछावर। पद तल में=चरणों में, आपकी सेवा में। विगत विकार=निर्विकार, शुद्ध-हृदय से।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है—मैं तुम्हारी जीवन-संगिनी बनने के लिए आत्म-समर्पण कर रही हूँ। इस समर्पण को स्वीकार करो। यह समर्पण सेवा का मूलतत्त्व है और व्यथा के जल से भरे हुए इस संसार रूपी सागर में तुम्हारी जीवन-नौका को पार ले जाने के लिए पतवार के समान है। अतः आज से मैं निर्विकार होकर एक-मात्र सेवा की भावना से तुम्हारे चरणों में अपने इस जीवन को न्योछावर करती हूँ।

टिप्पणी—(१) प्रसाद ने समर्पण को सेवा का सार इसलिए कहा है कि सच्ची सेवा वही होती है जिसमें आत्म-समर्पण की भावना रहती है, किन्तु जो कुछ धन लेकर या स्वार्थ के कारण किसी की सेवा करता है, वह सच्ची सेवा नहीं होती। अतः सेवा का मूलतत्त्व आत्म-समर्पण है और जो अपना सर्वस्व अर्पण करके किसी की सच्चे हृदय से सेवा करता है उसी को उच्चकोटि का सेवक या भक्त कहते हैं।

(२) कवि ने 'सजल' शब्द का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है, क्योंकि जिस तरह जलमय जगत् या चारों ओर भरे हुए जल में से नौका को पार करने के लिए पतवार की आवश्यकता होती है, उसी तरह व्यथा और वेदना से भरे संसार में जीवन-यापन हेतु एक ऐसे जीवन-साथी की आवश्यकता होती है, जो व्यथा और कष्ट की घड़ियों में अपनी निस्वार्थ सेवा से सहायता करता हुआ जीवन व्यतीत कराने में सहायक होता है। अतः यहाँ 'पतवार' द्वारा नौका से पार होने का वर्णन करके श्रद्धा के समर्पण का अलंकृत भाव-बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

(३) संसृति में समुद्र का तथा समर्पण में पतवार का आरोप होने के कारण यहाँ परम्परित रूपक अलङ्कार है।

दया, माया .... खुला है पास।

शब्दार्थ—माया=मोह। मधुरिमा=माधुर्य। अगाध=गहन, गम्भीर। रत्न निधि=रत्नाकर, रत्नों का भंडार। तुम्हारे लिए खुला है=समर्पित है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

व्याख्या—श्रद्धा कहती है—मेरा हृदय स्वच्छ रत्नों का भण्डार है, जिसे मैं आज बड़ी प्रसन्नता के साथ तुम्हें समर्पित करती हूँ। इसमें दया, माया, ममता, माधुर्य, गम्भीर विश्वास आदि अनेक भाव-रत्न भरे हुए हैं, जिन्हें तुम इच्छानुसार ले सकते हो।

टिप्पणी—(१) श्रद्धा के हृदय में दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि का निवास कह कर प्रसाद ने श्रद्धा को हृदय की सम्पूर्ण सात्विक वृत्तियों का प्रतीक सिद्ध किया है। 'त्रिपुरा-रहस्य' में भी श्रद्धा को वात्सल्य एवं स्नेह से भरी हुई ऐसी दयामयी माता कहा है, जो भयभीत प्राणी की रक्षा करती है, जो श्री, सुख एवं यश प्रदान करती है, जो सम्पूर्ण जगत् की धात्री है और जो सबका जीवन है—

> श्रद्धा माता प्रपन्नं सा वत्सलेन सुते सदा।
> रक्षति पोद्भीतिभ्यः सर्वथा न हि संशयः॥
> आप्तेष्वश्रद्धितं मूढं जहाति श्रीः सुखं यशः।
> स भवेत सर्वतो हीनो यः श्रद्धारहितो नरः॥
> श्रद्धाहि जगतां धात्री श्रद्धा सर्वस्व जीवनम्॥
>
> —त्रिपुरा-रहस्य, ज्ञान खण्ड, ६।२३-२७

(२) यहाँ दया, माया, ममता, मधुरिमा आदि समान मात्रिक वाक्यांशों के कारण वाक्यांशीय समानान्तरता का प्रयोग हुआ है।

(३) यहाँ 'रत्ननिधि' द्वारा मधुर भावों से भरे हुए हृदय का अतीव मनोमोहक अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया गया है और 'हृदय रत्ननिधि' में रूपक अलङ्कार है।

बनो संसृति .... सुन्दर खेल।

शब्दार्थ—संसृति=सृष्टि। मूल रहस्य=मूल कारण, प्रवर्त्तक। बेल=सृष्टि की लता। सौरभ=सुगन्धि। सुमन=फूल।

व्याख्या—श्रद्धा आत्म-समर्पण के उपरान्त मनु को नवीन मानव-सृष्टि के प्रवर्त्तक बनने की प्रेरणा देती हुई कहती है कि अब देव-सृष्टि तो नष्ट हो चुकी है और एक नवीन सृष्टि का विकास होना है। अतः तुम इस नवीन सृष्टि के प्रवर्त्तक बनो, क्योंकि तुम्हीं से यह नवीन सृष्टि की लता चारों ओर फैलेगी। इस सृष्टिलता के फूलों द्वारा तुम ऐसे-ऐसे सुन्दर खेल खेलना, जिससे यह सारा विश्व उन फूलों की सुगन्धि से परिपूर्ण हो जाय अर्थात् नई सृष्टि का विकास करके तुम ऐसे-ऐसे सुन्दर कार्य करना, जिससे तुम्हारा यश सारे विश्व में फैल जाय।

टिप्पणी—यहाँ पर श्रद्धा ने बेल के रूपक द्वारा मनु को यह समझाया है कि जिस तरह कोई बेल फैलती है, उसमें फूल खिलते हैं और उन फूलों की सुगन्धि से वहाँ का सारा वातावरण सुरभित हो जाता है, उसी तरह तुम से इस मानव-सृष्टि का विकास होगा, उसमें मानवों के रूप में नये-नये फूल खिलेंगे और उनके शुभ कर्मों के द्वारा उनके यश के रूप में उनकी सुगन्धि चारों ओर फैलेगी। अतः यहाँ सांग-रूपक अलंकार की व्यंजना है, किन्तु 'बेल', 'सौरभ', 'सुमन' आदि केवल उपमान वाचक शब्दों का प्रयोग होने के कारण यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और 'विश्व भर सौरभ से भर जाय' पद में 'भर' शब्दों में यमक अलंकार है। साथ ही यहाँ एक हरी भरी एवं फूलों से लदी बेल के द्वारा मानव-सृष्टि के विकास का अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

और यह क्या .... जय गान।

शब्दार्थ—विधाता=सृष्टि-कर्त्ता। मंगल वरदान=कल्याणकारी वरदान।

व्याख्या—और क्या तुमने इस सृष्टि की रचना करने वाले उस विधाता का वह कल्याणकारी वरदान नहीं सुना, जिसमें उन्होंने कहा है कि "शक्तिशाली होकर सर्वदा विजय प्राप्त करो।" उनके विजयगान की यह ध्वनि आज विश्व के कोने-कोने में गूँज रही है।

टिप्पणी—यहाँ कवि ने उद्बोधन गीत के रूप में दुर्बल भारत राष्ट्र को सफल बनाने की प्रेरणा देते हुए अपनी राष्ट्रीय भावना प्रस्तुत की है।

डरो मत .... सकल समृद्धि।

शब्दार्थ—अमृत सन्तान=अमर पुत्र, देव-पुत्र। अग्रसर है=सामने उपस्थित है। मंगलमय वृद्धि=कल्याणमयी उन्नति। सकल समृद्धि=सम्पूर्ण वैभव।

व्याख्या—अब श्रद्धा मनु को नवीन सृष्टि का विकास करने के लिए कर्मण्यता का संदेश देती हुई कहती है—हे देव-पुत्र! तुम इस नवीन सृष्टि का विकास करने के लिए तैयार हो जाओ। किसी प्रकार की आशंका से मत डरो। देखो, मंगलमय वृद्धि तुम्हारे सामने उपस्थित है, अर्थात् तुम्हारा भविष्य मंगलमय है और तुम्हारा यह जीवन-केन्द्र आकर्षण से भरा हुआ है। अतः समस्त वैभव तुम्हारे समीप स्वतः खिचकर चला आयेगा।

टिप्पणी—प्रसाद के सभी नारी पात्र शक्ति और चेतना के साक्षात् अवतार हैं, श्रद्धा की वाणी में जैसा तेज, ओज एवं चैतन्य भरा हुआ है, वैसा ही तेज, ओज एवं चैतन्य हमें 'स्कन्दगुप्त' नाटक में कमला की वाणी में दिखाई देता है। वहाँ पर कमला निराश, असहाय एवं अपने को अकेला समझने वाले 'स्कन्दगुप्त' से कहती है—

> "कौन कहता है तुम अकेले हो? समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जाग्रत करो। यदि भविष्यत् से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है, तो तुम ःस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वासपूर्ण पदाघात से विन्ध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न-स्रोत को लौटा देगा।"
>
> —स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य, पृ० १३०

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

देव असफलताओं .... चेतन राज।

शब्दार्थ—ध्वंस=खण्डहर। प्रचुर उपकरण=विपुल सामग्री। जुटाकर=एकत्र करके। मानव-सम्पत्ति=मानव-सृष्टि का वैभव। मन का चेतन राज=सेवा, दया, अहिंसा, परोपकार आदि से भरी हुई मन की चेतनावस्था।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि दंभ, अहंकार एवं विलास-वासना में लिप्त रहने के कारण देव-सृष्टि नष्ट हो गई। आज हम लोगों के रूप में उस देव-सृष्टि की असफलता के कुछ खण्डहर इधर-उधर बिखरे हुए पड़े हैं और आगामी नवीन मानव सृष्टि के लिए इन खण्डहरों के रूप में ही विपुल सामग्री पड़ी हुई है। तुम मानव सृष्टि के वैभव का निर्माण करने के लिए इस समस्त सामग्री को एकत्र करो, अर्थात् देव-सृष्टि की असफलताओं के खण्डहरों पर पुनः वैभव-सम्पन्न नवीन मानव-सृष्टि के प्रासाद का निर्माण करो, जिससे अभी तक विलासिता, दंभ, अहंकार आदि में फँसे रहने के कारण सृष्टि का जो मन अचेतनावस्था को प्राप्त होकर अपूर्ण बना हुआ था, वह मन इस आगामी मानव-सृष्टि में दया, सेवा, अहिंसा, परोपकार आदि उदात्त भावों को अपनाता हुआ चेतना से युक्त होकर पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाय।

टिप्पणी—(१) कवि ने श्रद्धा के मुख से यहाँ दो बातों का स्पष्टीकरण किया है। प्रथम यह कि आगामी मानव-सृष्टि का निर्माण देव-सृष्टि के अवशिष्ट प्राणी श्रद्धा, मनु आदि के द्वारा होगा और द्वितीय यह कि अब तक देव-सृष्टि का मन विलास-वासना में रँगा रहने के कारण अचेतनता के राज्य में पड़ा हुआ था, अब वह मन नवीन मानव-सृष्टि का विकास होते ही चेतना के राज्य में पहुँच कर अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा।

(२) 'देव-असफलताओं का ध्वंस'—इस पद में रूपक अलंकार है।

चेतना का सुन्दर .... अंकित हो नित्य।

शब्दार्थ—चेतना=दया, सेवा आदि उदात्त भावों से भरी हुई मन की चेतनावस्था। पटल=पट, चित्र खींचने या कुछ लिखने का कागज या कपड़े का टुकड़ा। दिव्य अक्षर से=सुन्दर अक्षरों में या स्वर्णाक्षरों में। अंकित=लिखा हुआ।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि तुम मन की चेतनावस्था से भरी हुई जिस नवीन मानव-सृष्टि का विकास करोगे, उसका इतिहास चेतना का ही सुन्दर इतिहास कहलायेगा, क्योंकि उसमें विश्व भर के मानव-समुदाय के हृदय में रहने वाले भावों का सत्य अन्तर्निहित होगा। अतः मैं चाहती हूँ कि चेतना का इतिहास विश्व के हृदय रूपी पर्दे पर स्वर्णाक्षरों में अंकित होकर सर्वदा विद्यमान रहे।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर 'चेतना का सुन्दर इतिहास ... दिव्य अक्षरों में हो नित्य' से श्रद्धा ने यह कामना प्रकट की है कि देव-सृष्टि का इतिहास तो अहंकार, दंभ, विलासिता आदि से भरा हुआ होने के कारण अचेतनता का सुन्दर इतिहास था। अतः वह दिव्याक्षरों में अंकित करने योग्य न था, किन्तु मानव-सृष्टि का

को 'निश्रेयस्' कहा जाता है। मनुस्मृति में अभ्युदय और निश्रेयस् की प्राप्ति के उपाय को धर्म कहते हैं और स्वामी करपात्री जी ने संस्कृति की परिभाषा करते हुए 'अभ्युदय एवं निःश्रेयसोपयोगी व्यापार' को संस्कृति कहा है। (देखिए, कल्याण—हिन्दू-संस्कृति अंक, पृ० ३६)।

(२) यहाँ कछुए के डूबने-उतराने का वर्णन करके समुद्र में डूबने-उतराने वाले द्वीपों का अनन्त मनोरम दृश्य-बिम्ब अंकित किया गया है।

(३) द्वीप में कच्छप का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

विश्व की दुर्बलता ... ... क्रीड़ामय संचार।

शब्दार्थ—पराजय=हार, असफलता। उसे=मानव-सृष्टि को। सविलास=क्रीड़ा सहित, आनन्दपूर्वक। शक्ति का क्रीड़ामय संचार=मानव-सृष्टि में भरी हुई व्यापक शक्ति का वेग।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि आगे चलकर यह मानव-सृष्टि इतनी अधिक शक्ति-सम्पन्न हो जाय जिसके परिणामस्वरूप विश्व में कहीं भी दुर्बलता दिखाई न दे और यदि कहीं किसी दुर्बलता के कारण इसे पराजित भी होना पड़े, तो उस पराजय के कारण यह मानव-सृष्टि दुःखी न हो, अपितु इसकी व्यापक शक्ति इसे आनन्दपूर्वक सदैव हँसाती रहे।

टिप्पणी—'दुर्बलता बल बने' में विरोधाभास अलंकार है।

शक्ति के विद्युत्कण .... मानवता हो जाय।

शब्दार्थ—विद्युत्कण=बिजली के कण, इलैक्ट्रॉन्स (Electrons)। व्यस्त=एक-एक होकर या पृथक्-पृथक् होकर (समस्त के विपरीत)। विकल=खण्डित, एक एक टुकड़े के रूप में। निरुपाय=जिनके इकट्ठे करने का कोई उपाय न हो। समन्वय उसका=उस मानवसृष्टि का समन्वित स्वरूप। करे समस्त=उन्हें इकट्ठा करे, उनका संग्रह करे। विजयिनी=सफल। मानवता=मानव-सृष्टि।

व्याख्या—अन्त में श्रद्धा सम्पूर्ण शक्ति-कणों के समन्वय पर बल देती हुई कहती है कि आज शक्ति के सम्पूर्ण विद्युत्कण पृथक्-पृथक् होकर एक-एक टुकड़े के रूप में बिखरे हुए पड़े हैं और उनके एकत्र करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता, किन्तु यह मानव-सृष्टि यदि समन्वय का रूप अपनाकर चले और उसका यह समन्वित स्वरूप उन बिखरे हुए शक्ति-कणों को इकट्ठा कर ले, तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि तुम्हारी यह मानवता या नवीन मानव-सृष्टि एक दिन अवश्यमेव सफल होगी।

टिप्पणी—(१) श्रद्धा के इस सम्पूर्ण कथन में गीता के कर्म-रहस्य की भाँति कर्मण्यता का सन्देश छिपा हुआ है, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए समन्वय की भावना को अपनाकर सफल होने की प्रेरणा दे रहा है।

(२) शक्ति के व्यस्त विद्युत्कणों को समस्त करने की प्रेरणा देकर कवि ने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

को 'निश्रेयस्' कहा जाता है। मनुस्मृति में अभ्युदय और निश्रेयस् की प्राप्ति के उपाय को धर्म कहते हैं और स्वामी करपात्री जी ने संस्कृति की परिभाषा करते हुए 'अभ्युदय एवं निःश्रेयसोपयोगी व्यापार' को संस्कृति कहा है। (देखिए, कल्याण—हिन्दू-संस्कृति अंक, पृ० ३६)।

(२) यहाँ कछुए के डूबने-उतराने का वर्णन करके समुद्र में डूबने-उतराने वाले द्वीपों का अनन्त मनोरम दृश्य-बिम्ब अंकित किया गया है।

(३) द्वीप में कच्छप का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

विश्व की दुर्बलता ... ... क्रीड़ामय संचार।

शब्दार्थ—पराजय=हार, असफलता। उसे=मानव-सृष्टि को। सविलास=क्रीड़ा सहित, आनन्दपूर्वक। शक्ति का क्रीड़ामय संचार=मानव-सृष्टि में भरी हुई व्यापक शक्ति का वेग।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि आगे चलकर यह मानव-सृष्टि इतनी अधिक शक्ति-सम्पन्न हो जाय जिसके परिणामस्वरूप विश्व में कहीं भी दुर्बलता दिखाई न दे और यदि कहीं किसी दुर्बलता के कारण इसे पराजित भी होना पड़े, तो उस पराजय के कारण यह मानव-सृष्टि दुःखी न हो, अपितु इसकी व्यापक शक्ति इसे आनन्दपूर्वक सदैव हँसाती रहे।

टिप्पणी—'दुर्बलता बल बने' में विरोधाभास अलंकार है।

शक्ति के विद्युत्कण ... ... मानवता हो जाय।

शब्दार्थ—विद्युत्कण=बिजली के कण, इलैक्ट्रॉन्स (Electrons)। व्यस्त=एक-एक होकर या पृथक्-पृथक् होकर (समस्त के विपरीत)। विकल=खण्डित, एक एक टुकड़े के रूप में। निरुपाय=जिनके इकट्ठे करने का कोई उपाय न हो। समन्वय उसका=उस मानवसृष्टि का समन्वित स्वरूप। करे समस्त=उन्हें इकट्ठा करे, उनका संग्रह करे। विजयिनी=सफल। मानवता=मानव-सृष्टि।

व्याख्या—अन्त में श्रद्धा सम्पूर्ण शक्ति-कणों के समन्वय पर बल देती हुई कहती है कि आज शक्ति के सम्पूर्ण विद्युत्कण पृथक्-पृथक् होकर एक-एक टुकड़े के रूप में बिखरे हुए पड़े हैं और उनके एकत्र करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता, किन्तु यह मानव-सृष्टि यदि समन्वय का रूप अपनाकर चले और उसका यह समन्वित स्वरूप उन बिखरे हुए शक्ति-कणों को इकट्ठा कर ले, तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि तुम्हारी यह मानवता या नवीन मानव-सृष्टि एक दिन अवश्यमेव सफल होगी।

टिप्पणी—(१) श्रद्धा के इस सम्पूर्ण कथन में गीता के कर्म-रहस्य की भाँति कर्मण्यता का सन्देश छिपा हुआ है, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए समन्वय की भावना को अपनाकर सफल होने की प्रेरणा दे रहा है।

(२) शक्ति के व्यस्त विद्युत्कणों को समस्त करने की प्रेरणा देकर कवि ने

यहाँ आधुनिक विज्ञान के इलैक्ट्रॉन सिद्धान्त (Electron Theory) की ओर संकेत किया है, जिसके अनुसार वैज्ञानिकों की यह राय है कि ये विद्युत्कण अपार संख्या में जगत् में निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं, जिन्हें इलैक्ट्रान (Electron), प्रोटोन (Proton) और न्यूट्रॉन (Neutron) नाम दिये गये हैं। यदि इन विद्युत्कणों को इकट्ठा कर लिया जाय, तो अपार मात्रा में शक्ति एकत्र की जा सकती है। आधुनिक अणु-बम्ब तथा परमाणु बम्ब इसी सिद्धान्त के आधार पर बनाए गये हैं। (कामायनी में अणु, परमाणु सम्बन्धी सिद्धान्त का विशेष अध्ययन करने के लिए देखिए, लेखक कृत 'कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन', पृ० ४५७-५८)

(३) यहाँ पर 'समन्वय उसका करे समस्त' में 'उसका' सर्वनाम का सम्बन्ध शक्ति के विद्युत्कणों से मानने पर व्याकरण की दृष्टि से दोष दिखाई देता है, किन्तु यदि इसका अन्वय इस प्रकार किया जाय—"उसका (मानव-सृष्टि का) समन्वय, (शक्ति के विद्युत्कणों को) समस्त (एकत्र) करे", तो फिर उक्त दोष नहीं रहता।

(४) प्रसाद ने 'व्यस्त' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया है। कहीं वह तल्लीन या संलग्न के अर्थ में आया है, तो कहीं इधर-उधर फैले हुए या बिखरे हुए' के अर्थ में आया है। यहाँ पर यह शब्द समस्त अर्थात् एकत्र के विरुद्ध एक-एक करके बिखरे हुए या पृथक्-पृथक् फैले हुए के ही अर्थ में आया है।

(५) यहाँ कवि ने यत्र-तत्र बिखरे हुए शक्ति-कणों का अत्यन्त मनोरम एवं आकर्षक अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

राम की शक्ति-पूजा

रवि हुआ अस्त : ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ - गर्जित - स्वर
प्रतिपल - परिवर्तित - व्यूह-भेद - कौशल - समूह,–
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,–क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि - राजीवनयन - हत - लक्ष्य - बाण,
लोहितलोचन – रावण - मदमोचन - महीयान,
राघव - लाघव–रावण-वारण–गत - युग्म - प्रहर,
उद्धत - लंकापति-मर्दित - कपि-दल-बल - विस्तर,
अनिमेष-राम–विश्वजिद्दिव्य-शर - भङ्ग - भाव,–
विद्धाङ्ग–बद्ध-कोदण्ड - मुष्टि–खर-रुधिर-स्राव,
रावण - प्रहार - दुर्वार - विकल - वानर दल - बल,–
मूर्च्छित-सुग्रीवाङ्गद - भीषण-गवाक्ष - गय-नल,–
वारित - सौमित्र-भल्लपति–अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित - प्रलयाब्धि-क्षुब्ध - हनुमत्-केवल-प्रबोध,
उद्गीरित - वह्नि-भीम - पर्वत-कपि-चतुः प्रहर,–
जानकी-भीरु - उर–आशाभर–रावण - सम्वर।

लौटे युग - दल। राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार - बार आकाश विकल।
वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न;
प्रशमित है वातावरण; नमित-मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता - पल, पीछे वानर - वीर सकल;
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटिबन्ध स्रस्त–तूणीर-धरण,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

291

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के, मन्थर,
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर,
सेनापति दल-विशेष के, अंगद, हनूमान
नल, नील, गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर-दल आश्रय-स्थल।
वैठे रघु-कुल-मणि श्वेत शिला पर; निर्मल जल
ले आये कर-पद-क्षालनार्थ पटु हनूमान;
अन्य वीर सर के गये तीर सन्ध्या-विधान—
वन्दना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर;
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण, भल्लधीर,
सुग्रीव, प्रान्त पर पाद-पद्म के, महावीर;
यूथपति अन्य जो, यथास्थान, हो निर्निमेष
देखते राम का जित-सरोज-मुख-श्याम-देश।

है अमानिशा: उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य—श्रान्त,—
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार - हार;
ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी - तनया - कुमारिका - छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण,—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान - पतन,—

काँपते हुए किसलय,—झरते पराग—समुदय,—
गाते खग-नव-जीवन-परिचय—तरु मलय-वलय,—
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,—
जानकी - नयन - कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।
सिहरा तन, क्षण-भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर - धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व - विजय - भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत,—
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर;
फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन;
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन,—
खिंचे गये दृगों में सीता के राममय नयन;
फिर सुना—हँस रहा अट्टहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल।

बैठे मारुति देखते राम - चरणारविन्द—
युग 'अस्ति-नास्ति' के एक-रूप, गुण-गण-अनिन्द्य;
साधना-मध्य भी साम्य—वाम-कर दक्षिण-पद,
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गद्गद
पा सत्य सच्चिदानन्दरूप, विश्राम - धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम - नाम।
युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल;—
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ,—
सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ;
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल,
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वही कमल-लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख, निश्चेतन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

गरजता चरण - प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु;
दशदिक - समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर;
लख महाभाव - मंगल पदतल धँस रहा गर्व—
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व।"
फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर से अन्तर सींचते हुए—
"चाहिये हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर,
कम-से-कम, अधिक और हों, अधिक और सुन्दर,
जाओ देवीदह, उषःकाल होते सत्वर,
तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।"
अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व, स्थान,
प्रभु - पद - रज सिर धर चले हर्ष भर हनुमान।
राघव ने विदा किया सबको जानकर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय।

निशि हुई विगत : नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी, रघुनन्दन के दृग महिमा - ज्योति - हिरण;
है नहीं शरासन आज हस्त—तूणीर स्कन्ध,
वह नहीं सोहता निविड़-जटा-दृढ़ मुकुट-बन्ध;
सुन पड़ता सिंहनाद,—रण-कोलाहल अपार,
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार;
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण,
गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।
क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पञ्च दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस;
कर-जप पूरा कर एक चढ़ाते इन्दीवर,
निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।
चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन,
प्रति जप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण;
सञ्चित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर-थर-थर अम्बर;
दो दिन निष्पन्द एक आसन पर रहे राम,

अर्पित करते इन्दीवर, जपते हुए नाम;
आठवाँ दिवस, मन ध्यान-युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर,
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देवता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध,
रह गया एक इन्दीवर, मन देखता—पार
प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार,
द्विप्रहर रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर,
हँस उठा ले गयीं पूजा का प्रिय इन्दीवर।
यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल;
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चञ्चल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल,
देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयनद्वय:—
"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध!
जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका।"
वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत - गति, हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन:
"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
"कहती थीं, माता मुझे सदा राजीवनयन!
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक;
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन।
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय:—

"साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!"

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने—सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध-अस्त्र-सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बाँयें रण - रंग राग,
मस्तक पर शंकर। पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर।
"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!"
कह महाशक्ति राम के बदन में हुईं लीन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

2.(आ) राम की शक्तिपूजा

व्याख्या भाग

1. रवि हुआ अस्त —————————— रावण-सम्वर।

शब्दार्थ – ज्योति के पत्र पर = आकाश के फलक पर अथवा अस्तमान सूर्य के प्रकाश में। तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर = तीक्ष्ण बाणों को धारण किये उनके हाथ शीघ्रता से प्रहार कर रहे थे। शतशेलसम्वरणशील = सैंकड़ों भालों को भेदने में समर्थ। नील नभ गर्ज्जित-स्वर = नीले आकाश में प्रतिध्वनित गर्जन स्वर। प्रत्यूह = प्रत्याक्रमण। विच्छुरित = विकीर्ण। हत लक्ष्य-बाण = लक्ष्य भेद करने में विफल। गत-युग्म-प्रहर = दो प्रहर बीत गये। मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर = वानर सेना के बल के विस्तार को कुचल डाला। अनिमेष-रामविश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव = विश्वविजयी बाणों के भंग होने से राम हतप्रभ होकर अपलक यह दृश्य देख रहे थे। बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि = धनुष को कसकर मुट्ठी में पकड़ रखा था। गर्ज्जित-प्रलयाब्धि = प्रलय का सागर गर्जन कर रहा था। उद्गीरित-वह्नि = आग उगलता रहा। चतुःप्रहर = चारों प्रहर। जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वर = जानकी के भयत्रस्त हृदय में आशा का संचार करने वाले तथा रावण का प्रतिरोध करने में समर्थ।

संदर्भ – निराला कृत राम की शक्तिपूजा में यह अंश राम और रावण के युद्ध से सम्बंधित है।

व्याख्या – सूर्य अस्त हो गया तथा इसी के साथ आज का युद्ध भी समाप्त हो गया था। परन्तु उसका प्रभाव वातावरण में अभी शेष था। ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश के फलक पर राम और रावण का आज का अनिर्णीत युद्ध अंकित हो गया था। इस युद्ध में दोनों सेनाओं के योद्धा अपने हाथों में तीक्ष्ण बाण धारण किये अत्यंत क्षिप्रता के साथ शत्रु पर प्रहार कर रहे थे और यह युद्ध तीव्र वेग के साथ हो रहा था। एक पक्ष के योद्धा सौ-सौ शेलों (भालों) से प्रहार करते थे और प्रतिपक्ष के योद्धा तत्काल उसका प्रतिरोध कर देते थे। इन योद्धाओं के सिंहगर्जन से प्रतिध्वनित होकर आकाश गुंजायमान था। युद्ध की गति इतनी तीव्र थी कि एक सेना के सेनापति प्रतिक्षण नये व्यूहों का निर्माण करते थे और प्रतिपक्ष के महारथी अपने कौशल से उसका ध्वंस कर देते। राक्षस सेना आगे बढ़ रही थी और उसके प्रत्याक्रमण में वानर सेना के वीर भीषण हुंकार कर रहे थे। राम के कमलरूपी नेत्रों से आज अग्नि विकीर्ण हो रही थी क्योंकि रक्तिम नेत्रों वाले रावण के गर्व को खंडित करने के लिए जो बाण उन्होंने छोडे थे वे सभी लक्ष्यभ्रष्ट हो गये थे। जितने लाघव और कौशल से राम रावण पर प्रहार करते थे उतने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ही पराक्रम से रावण उन्हें विफल कर देता था। इस घात-प्रतिघात में दो प्रहर व्यतीत हो गये। अपनी विजय से उद्धत होकर लंकापति रावण वानर सेना के बल-विस्तार को रौंदने-कुचलने लगा। इस दृश्य को तथा अपने विश्वजित् बाणों को भंग होते हुए राम अपलक नेत्रों से देख रहे थे। रावण के बाणों से उनका अंग-प्रत्यंग बिंध चुका था और उनसे लहू का तेज स्राव हो रहा था। उनकी मुट्ठी में धनुष कसा हुआ था। रावण के अमोघ प्रहारों से वानर की सेना का सम्पूर्ण बल विकल हो गया था। सुग्रीव, अंगद, विभीषण, गवाक्ष, गय, नल आदि मूर्च्छित हो गये थे। लक्ष्मण तथा जाम्बवान युद्धक्षेत्र से हटने को विवश हो गये थे। अगणित योद्धा मिलकर रावण के अवरोध का प्रयास कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों रणभूमि में प्रलय के समुद्र में तूफान आ गया हो। ऐसे समय में केवल हनुमान ही ऐसे वीर थे जो संज्ञाशून्य नहीं हुए थे तथा वानर सेना को उत्साहित कर युद्ध की प्रेरणा दे रहे थे। चार प्रहर तक अर्थात् युद्धारम्भ से अवसान तक पर्वताकार वज्रांग हनुमान युद्धरत रहे। उनके भीमाकार शरीर से मानों आग की लपटें निकल रही थीं। रावण के भय से त्रस्त सीता के हृदय का एकमात्र अवलम्ब हनुमान ही थे क्योंकि वे ही रावण का प्रतिरोध करने में समर्थ थे।

विशेष — 1. काव्य का प्रारंभ 'रवि हुआ अस्त' शब्दों के साथ किया गया है। कवि प्रारंभ ही में संकेत दे रहा है कि आज के युद्ध में भानुकुलभूषण राम का पक्ष निर्बल रहा। यह अनिर्णीत युद्ध इतना प्रभावशाली था कि आकाश के फलक पर उसके चिन्ह अभी भी शेष थे।

2. युद्ध के वर्णन में कवि ने दृश्य, नाद और वेग पर बल दिया है। इन तीनों की अनुभूति कराने के लिए शब्द-शक्ति, वाक्य-विन्यास तथा वर्णन की संश्लिष्ट पद्धति का पूरा-पूरा प्रयोग किया है। दीर्घ समासयुक्त पदावली द्वारा कवि ने यदि युद्ध में होने वाले घात-प्रतिघात का चित्र प्रस्तुत किया है, तो बहुव्रीहि समास वाले पदों 'तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर', 'शतशेल-सम्वरणशील', 'प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह' द्वारा युद्ध की गति का चित्रण किया है। ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा जिनमें महाप्राण ध्वनियों एवं कठोर अक्षरों की सहायता ली गयी है, रण के कोलाहल को चित्रित किया गया है।

3. वीर, भयानक एवं रौद्र रसों का परिपाक यहाँ हुआ है। वीर रस का प्रसंग होने के कारण भव्य शैली लाने के लिए गौणी रीति का प्रयोग हुआ है। भाषा में ओजगुण की तेजस्विता विद्यमान है।

4. कवि ने गाढ़बन्ध, सघन समस्त पदावली एवं भाषा की ध्वन्यात्मकता का प्रयोग किया है जिससे एक ओर घमासान युद्ध का साक्षात् दृश्य उपस्थित हुआ है तथा बिम्ब-निर्माण में सहायता भी मिली है।

5. 'शर-भंग-भाव' जैसी भाववाचक संज्ञाओं के नये प्रयोग से कवि ने चमत्कार सृष्टि तो की ही है, उससे अर्थ में प्रभविष्णुता का आगमन भी हुआ है।

6. मध्यवर्ती तुक और लय (राघव-लाघव, रावण-वारण, प्रहार-दुर्वार, विकल-दल) तथा पंक्ति में तुक (प्रहर-विस्तर, भाव-स्राव) भी काव्य-सौंदर्य को बढ़ाते हैं तथा इनसे युद्ध की भयानकता स्वयं प्रकट हो जाती है।

7. हनुमान के रौद्र रूप और पराक्रम को चित्रित करने के लिए कवि ने 'उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत' के विराट एवं उदात्त बिंब का श्लाघ्य प्रयोग किया है।

8. ऐसे भयानक युद्ध के मध्य जानकी की करुण दशा का स्मरण करा कर कारुण्य के हल्के स्पर्श से इस भयानक चित्र को और प्रभावशाली बना दिया है।

9. अलंकार — रूपक — ज्योति के पत्र, राजीवनयन
अनुप्रास एवं पदमैत्री — प्रायः सम्पूर्ण छन्द
सभंगपद यमक — राघव-लाघव
विरोध, असंगति — विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन।

10. बिंब विधान — उद्गीरित वह्नि, गर्जित प्रलयाब्धि, नील नभ गर्जित स्वर।

2. लौटे युग-दल ------------------------ ज्यों हो कहीं पार।

शब्दार्थ — टलमल = कम्पित। स्थविर-दल = बौद्ध संन्यासियों का समूह। धनु-गुण = धनुष की प्रत्यंचा। श्लथ = ढीला। विपर्यस्त = बिखर कर। नैशान्धकार = रात्रि समय का अंधकार।

प्रसंग — इस उद्धरण में दोनों सेनाओं के अपने-अपने शिविरों की ओर लौटने का वर्णन किया गया है तथा कवि ने दोनों पक्षों की अलग-अलग मनःस्थिति को प्रकृति के माध्यम से अंकित किया है।

व्याख्या — युद्ध विराम होने पर दोनों पक्षों की वाहिनी अपने-अपने शिविरों की ओर लौट पड़ीं। राक्षस आज के युद्ध की विजय के गर्व से उद्धत थे। विजयगर्वित भारी कदमों से दलित होकर शांत पृथ्वी भी आज कंपित-विचलित हो रही थी। इतना ही नहीं, अत्यधिक हर्ष के कारण उनके बार-बार स्वरगर्जन के कोलाहल से धीर-गंभीर आकाश तक व्याकुल हो उठा था। इधर दूसरी ओर राम की वानर सेना पराजय के कारण अत्यंत खिन्न थी तथा अपने स्वामी राम के चरण-चिन्हों का अनुसरण करती हुई अपने शिविर की ओर इस प्रकार चल रही थी, मानो संसार से विमुख बौद्ध भिक्षुओं का समूह जा रहा हो। सम्पूर्ण वातावरण अत्यंत शांत था। सन्ध्या के समय कमल-पुष्प मुरझाने लगे थे। उन्हीं की भांति लक्ष्मण का भी मुख पराजय-अवसाद से मुरझाया हुआ था तथा वे चिंता में डूबे चल रहे थे। उनके पीछे सम्पूर्ण वानर सेना के योद्धा चले आ रहे थे। सबसे आगे राम कठोर पृथ्वी पर अपने नवनीत के समान कोमल चरण रखते चल रहे थे। उनका रूपचित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि उनके धनुष की प्रत्यंचा ढीली हो गयी थी, तरकश को धारण करने वाला कटिबन्ध भी ढीला होकर खिसक गया था, उनके सिर पर कसकर बंधा हुआ जटामुकुट भी बिखरकर अनेक जटाओं के रूप में उनकी पीठ पर, उनकी बांहों पर तथा वक्षस्थल पर फैल गया था। इन काली लटों से आवृत राम के विशाल शरीर को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों किसी विशाल उत्तुंग पर्वत पर रात्रि का घना अंधकार उतर आया हो और उनके मध्य कहीं दूर से मानो तारे चमक रहे हों। इस प्रकार राम के नेत्र दैदीप्यमान हो रहे थे।

विशेष — 1. निराला की विशेषता यह है कि वे पात्रों की मनःस्थिति के अंकन में मनोविश्लेषणात्मक उपकरणों का आश्रय लेते हैं, जो अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक होते हैं। राक्षसों के विजयजनित उद्धत उल्लास के कारण पृथ्वी कांपती है और आकाश विकल होता है। इधर पराजय की खिन्नता से भरी वानरवाहिनी को वे स्थविरदल की भांति दिखाते हैं। यह उचित भी है क्योंकि पराजय की स्थिति में मनुष्य निराश एवं संसार के विमुख होने लगता है। और विजय के क्षणों में वह अपनी प्रसन्नता को सबमें बांट देना चाहता है।

2. कवि ने वानर सेना की तुलना स्थविर दल से कर उनकी बाह्य गति-शिथिलता

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

298

का अंकन नहीं किया है वरन् उनके मन में छायी जड़ता एवं उदासीनता का भी परोक्ष संकेत दिया है।

3. यहाँ राम का जो बाह्य स्वरूप कवि ने अंकित किया है वह राम की आन्तरिक मनोदशा का भी परिचायक है। मानों राम का दृढ़ जटामुकुट ही नहीं बिखारा वरन् राम का अपने विश्वदजिद्यि शस्त्र कौशल के प्रति विश्वास बिखर आया हो। रात्रि का अंधकार केवल राम के शरीर पर ही लटों के रूप में नहीं उतरा मानों निराशा का अंधकार राम के दृढ़संकल्पी आत्मविश्वासी हृदय पर उतर आया हो। किंतु कवि यहाँ भी संकेत दे देता है कि इन निविड़ अवसाद तम में भी आशा की ज्योति दूर चमकती ताराओं के समान विद्यमान है।

4. राम का यह विशाल चित्र और साथ ही दी गई उपमा के विषय में डा. रामविलास शर्मा का यह कथन दृष्टव्य है - 'मंच पर खड़े हुए, ऊंचा हाथ उठाकर 'चमकती दूर हों ताराएं ज्यों कहीं पार का भाव निराला ही प्रदर्शित कर सकते हैं।' और वास्तव में यह ऐसा है कि राम की यह छवि स्वयं निराला की ही छवि है - बाह्यतः भी और आंतरिक रूप से भी।

5. राम के चरणों का स्मरण करते हुए निराला एक बार यह विस्मृत कर जाते हैं कि वे उन्हें आधुनिक मानव के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, तथा उनमें तुलसीदास की भांति भक्तिभाव उमड़ आता है। इसीलिए वे उनके चरणों की कोमलता की अभिव्यक्ति करते हुए चरण-कमल का प्रयोग न करके नवनीत चरण कहते हैं जो अत्यधिक कोमलता का प्रतीक है।

6. राम के स्वरूप-वर्णन में कवि ने विराट एवं संश्लिष्ट बिंब प्रस्तुत किया है जो एक ओर उपमेय पक्ष अर्थात राम का विराट शरीर, जटामुकुट की विपर्यस्त घनी काली लटें तथा उनके तेजस्वी नेत्र; तथा दूसरी ओर उपमान पक्ष यथा विशाल पर्वत, नैशान्धकार तथा उसके पार चमकती हुई ताराएं को समाहित किए हुए है। इस चित्र से इस कृति में महाकाव्यात्मक औदात्य स्फुरित हुआ है।

7. इस उद्धरण से भी द्रष्टव्य है कि कवि कथानक का विकास दृश्य विधान के माध्यम से कर रहा है। वर्णनात्मकता कहीं भी नहीं है।

8. अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से कवि विभिन्न प्रयोग करता है। पिछले उद्धरण में जहाँ समासयुक्त संस्कृतनिष्ठ पदावली, महाप्राण अक्षर कठोर वर्ण आदि का प्रयोग किया गया था तो यहाँ कवि युद्धोपरांत प्रसंग को ध्यान में रखकर भावानुरूप सरल प्रसादगुण युक्त शब्दावली को प्रयुक्त करता है। भाषा की गति भी पहले जैसी क्षिप्र नहीं किंतु वानरवाहिनी की गति के समान शिथिल एवं मंथर है।

9. इस उद्धरण में टलमल शब्द विशेष विचारणीय है। यहाँ कवि इस शब्द के माध्यम से पृथ्वी का कांपना ही नहीं, भयभीत होना विचलित होना भी व्यंजित करता है।

10. **अलंकार** – ध्वन्यर्थव्यंजना – पृथ्वी टलमल
विशेषण विपर्यय – प्रशमित वातावरण
उत्प्रेक्षा – स्थविर दल ज्यों विभिन्न, उतरा ज्यों.....कहीं पार
रूपक – नमित मुख सांध्यकमल
मानवीकरण – आकाश विकल, पृथ्वी टलमल, उतरा ज्यों नैशान्धकार
उपमा – नमित मुख सान्ध्य कमल, दृढ जटा मुकुट ---- नैशान्धकार
पदमैत्री एवं अनुप्रास – पूरे बंध में।

3. आये सब शिविर ------------ जित-सरोज-मुख-श्याम-देश।

शब्दार्थ – सानु = चोटी। फेर = पहुंचाकर। रघुकुलमणि = राम। कर-पद-क्षालनार्थ = हाथ एवं पैरों को धुलाने के लिए। पटु = प्रवीण। सर = सरोवर। सत्वर = शीघ्र। तत्पर = तैयार। भल्लधीर = धैर्यवान् जाम्बवान। पाद-पद्म = चरण कमल। निर्निमेष = बिना पलक झपकाये। जित-सरोज-मुख श्याम-देश = जिसने सरोज को जीत लिया है ऐसा राम का श्यामवर्णी मुख।

प्रसंग – इस उद्धरण में कवि ने वानर सेना के अपने शिविर में पहुंचने, तथा यूथपतियों द्वारा उस दिन के युद्ध पर विचार करने तथा आगे की योजना आदि के लिए राम के शिविर में एकत्र होने का वर्णन किया है।

व्याख्या – शिविर में सभी लौट आये। फिर सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदि वानर तथा विशेष दलों के सेनापति अंगद, हनुमान, नल नील, गवाक्ष आदि अपने वानर-समूहों को विश्राम के लिए उनके शिविरों में जाने की आज्ञा देकर आज के रण की समीक्षा तथा त्रुटियों के समाधान पर विचार करने के लिए पर्वत के शिखर पर स्थित राम के शिविर में धीरे से एकत्रित हो गये। रघुकुल के मणि रामचन्द्र स्फटिक शिला पर विराजमान हुए। उनके अनन्य भक्त एवं सेवक जो उनकी सेवा में अत्यंत कुशल एवं प्रवीण हैं उनके हाथ-पैर धोने के लिए स्वच्छ जल ले आये। अन्य योद्धा भी संध्या-उपासना तथा ईश्वर की अभ्यर्थना करने के लिए सरोवर के किनारे चले गये तथा जल्दी ही लौट आये। वे सब राम के आस-पास बैठकर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। राम के पीछे लक्ष्मण विद्यमान थे, उनके सामने विभीषण, जाम्बवान, सुग्रीव बैठे थे। राम के चरण-रूपी कमलों के पास स्थान पर महावीर उपस्थित थे तथा अन्य योद्धागण अपने-अपने स्थान पर विराजमान होकर अपलक नेत्रों से राम के श्यामवर्णी मुख को निहार रहे थे जो कमल को भी लज्जित करने वाला है।

विशेष – 1. इस दृश्य विधान में राम के शिविर में कवि ने सभी योद्धागणों के एकत्रित होने का अंकन किया है। यहाँ वह इस सेना के महत्त्वपूर्ण महारथियों के नाम गिनाता हुआ राम की सेना के अतुलित बल की परोक्ष व्यंजना करता है।

2. हिन्दू संस्कृति में संध्यावंदन एवं ईशोपासना विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए इस कृति के पात्र भी अवसादग्रस्त एवं युद्धशिथिल होने के बावजूद अपना धार्मिक कर्तव्य नहीं भूलते।

3. पारिषदों की स्थिति में कवि ने उनकी पद-मर्यादा का ध्यान रखते हुए ही उनकी आसन-व्यवस्था का वर्णन किया है। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि एवं नैतिक तथा सामाजिक मर्यादा के प्रति सम्मान भाव का सूचक है। अनुज लक्ष्मण छोटा होने के नाते पीछे ही बैठने योग्य है जबकि मित्र विभीषण तथा अनुभवी सलाहकार जाम्बवान समादृत होने के कारण सामने बैठने के अधिकारी हैं। हनुमान तो अपने चिरस्थान अर्थात् राम के चरणों की सेवा में आसीन हैं ही।

4. निराला ने हनुमान के लिए पटु विशेषण का प्रयोग साभिप्राय किया है। हनुमान राम के अनन्य सेवक हैं जो राम की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते हैं तथा समय पर प्रत्येक वस्तु को उपस्थित कर देने में सक्षम हैं। इस शब्द में कवि का थोड़े में अधिक कहने वाला गुण भी लक्षित होता है।

5. समास प्रयोग होते हुए भी भाषा सरल एवं प्रसादगुण से युक्त है। बहुव्रीहि समास का प्रयोग करते हुए कवि ने 'जित सरोज मुख श्याम देश' को परम्परागत अर्थ में प्रयुक्त किया

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है। इससे पहले भी कई कवि विशेषतः राम के श्यामवर्णी मुख को नीलकमल से भी अधिक सुंदर बता चुके हैं।

6. राम की सभा के चित्र के समानान्तर ही तुलसीदासकृत रामचरितमानस से उद्धृत यह सभा-चित्र देखा जा सकता है –

"प्रभु धर सीस कपीस उछंगा। बाम-दहिन दिसि चाप निषंगा।
दुहुं कर-कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना।
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान-सरासन।
बड़भागी अंगद-हनुमाना। चरन-कमल चापत विधि नाना।"

7. राम के संदर्भ में कवि ने प्रायः रघुनायक, राघव, रघुकुलमणि आदि अभिधानों का प्रयोग किया है। सम्राट रघु जैसे दिग्विजयी, पराक्रमी वीर के कुल में उत्पन्न होकर राम ने इस कुल की शोभा को द्विगुणित किया है। इसीलिए वे रघुकुल के नायक अथवा रघुकुल की मणि के रूप में कवि द्वारा अभ्यर्थित होते हैं।

8. अलंकार – रूपक – पाद-पद्म, रघुकुलमणि
प्रतीप – जित सरोज मुख
परिकरांकुर – महावीर, भल्लधीर।

4 है अमानिशा ---------------------------- उद्यत हो हार-हार।

शब्दार्थ – अमानिशा = अमावस्या की रात्रि। चार = संचरण। अप्रतिहत = निरंतर। रिपु-दम्य-श्रान्त = शत्रु द्वारा दमित एवं थकित। अयुत-लक्ष = दस हजार एवं लाखों। दुराक्रान्त = दुर्दमनीय।

प्रसंग – इस उद्धरण में कवि उस समय के प्राकृतिक वातावरण का सजीव चित्रण करता है तथा राम की मनःस्थिति को भी अंकित करता है।

व्याख्या – यह अमावस्या की रात्रि है तथा आकाश रूपी दैत्य मानों निरंतर अंधकार का वमन कर रहा है अर्थात् आकाश में अंधकार लगातार गहरा होता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप दिशाओं के संकेत-सूचक, उनका ज्ञान लुप्त हो रहा है तथा इस कारण पवन का संचरण अवरुद्ध हो गया है। पर्वत के पीछे विशाल सागर की लहरें लगातार भयानक गर्जन कर रही हैं। इसके ठीक विपरीत भूधर अपने स्थान पर ध्यानमग्न साधु की भांति स्थिर है, गंभीर है, वहाँ केवल मशाल जल रही है। इस वातावरण के साथ राम के आन्तरिक मनोद्वन्द्व को चित्रित करता हुआ कवि कहता है कि वे राम जो स्वभाव से स्थिर एवं धीर गंभीर हैं, उनके हृदय को आज संशय विचलित कर रहा है। बार बार उनके मन में सम्पूर्ण विश्व में रावणत्व की परिव्याप्ति एवं आसुरी राज्य की स्थापना भय को जागृत कर रही थी। उनका वही हृदय जो कभी सबल शत्रु से भी दमित एवं श्रान्त नहीं हुआ था, जो हजारों लाखों के समूह में अकेला रहकर भी अविजित ही रहा वह स्वभाव से योद्धा होने के कारण अगले दिन के रण के लिए बार-बार व्याकुल हो जाता है, किंतु तत्पर होकर भी किसी असमर्थता के बोध से बार-बार हार जाता है।

विशेष – 1. इस कृति में प्रकृति का चित्रण मनोवैज्ञानिक एवं शैलीवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से अत्यंत मार्मिक है।

2. इस प्रकृति-चित्र के माध्यम से कवि परोक्षतः राम के आंतरिक भावनाओं का भी चित्रण

करता है। जो प्राकृतिक दृश्य बाहर है वही राम के भीतर भी है। राम भूधर के समान बाहर से शांत एवं गंभीर हैं। किंतु उनका हृदय सागर की भांति लगातार व्याकुल हो रहा है, अन्तःगर्जन कर रहा है। आज के युद्ध में रावण से पराजित होने के कारण राम के हृदय में निराशा का अंधकार लगातार बढ़ रहा है, किंतु सीता का स्नेह ही मानों उस गहन अंधकार में मशाल के समान आशा की क्षीण ज्योति विकीर्ण कर रहा है।

3. राम को काव्यपरंपरा ने धीरोदात्त नायक माना है। स्थिर स्वभाव धीरोदात्त नायक का आवश्यक गुण है। इसीलिए कवि राम को मूलतः स्थिर स्वभाव वाला कथित करता है। किंतु निराला के राम विष्णुअवतार नहीं हैं, वे हैं सामान्य मानवोचित गुण-दोषों एवं दुर्बलताओं से युक्त साधारण मानव। इसीलिए वे संशय से विचलित होते हैं

4. यहाँ कवि ने लघु बिंबों के माध्यम से सघन भयावह एवं विराट बिंब की सृष्टि की है। यहाँ प्रत्येक लघु बिंब का अपना महत्त्व है, अपनी व्यंजना है। यदि उगलता गगन घन अंधकार में गगन रावण के प्रतीक के रूप में है, तो उसके प्रत्युत्तर में जलती मशाल राम के हृदय में दीपित सीता के प्रणय का प्रतीक है।

5. कवि का शब्दावली चयन विशेष द्रष्टव्य है। कवि यहाँ पर पर्वत के लिए पर्यायवाची शब्द 'भूधर' का प्रयोग करता है, जो वातावरण के अनुरूप पर्वत के भीमकाय स्वरूप को मूर्तिमान करने के उद्देश्य से एकदम सटीक है। इसी प्रकार 'केवल' शब्द अत्यंत सार्थक है। प्रतिक्षण घनीभूत होते दिगन्तव्यापी अंधकार में जहाँ दिशाओं का ज्ञान खो गया है शक्तिशाली पवन का संचरण तक अवरुद्ध हो गया है वहाँ एक अकेली मशाल उसका सामना कर रही है। इसी प्रकार अप्रतिहत में वर्णों के परस्पर आघात से तरंगाघात को तथा विशाल के स्वर विस्तार के द्वारा सागर के विस्तार एवं विराट आयाम को व्यंजित किया गया है।

6. है अमानिशा.....केवल जलती मशाल में प्रायः महाप्राण एवं सघोष वर्णों का प्रयोग किया गया है। छन्द की लय में विराम और त्वरा का अद्भुत योग है। यहाँ वर्ण-योजना, बिंब-रचना, लय-विधान तथा विरोध, श्लेष जटिलता आदि गुणों का अद्भुत प्रयोग मिलता है। जिस विशाल चित्रफलक पर इस अंश की योजना की गई है तथा उदात्त एवं विराट चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, वह महाकाव्य की गरिमा के सर्वथा अनुकूल है।

7. अन्तिम दो पंक्तियों में आत्मविश्वास से वंचित होते जाते राम की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा गया है। प्रतिशोध की भावना से उत्तेजित होना युद्ध करने के लिए तत्क्षण व्याकुल हो उठना तथा अगले क्षण ही अपनी असमर्थता का भान किसी भी साहसी मनुष्य के लिए जो निराश एवं पराजित हो चुका हो, स्वाभाविक ही है।

8. समासयुक्त पदावली का प्रयोग यहाँ भी है जो कवि की शब्दमितव्ययिता का परिचायक है यथा - रावण-जंय-भय, रिपु-दम्य-श्रान्त।

9. फिर-फिर, रह-रह, हार-हार, बार-बार में पुनरुक्ति अलंकार के प्रयोग से राम की विचलित अधीर मनोदशा की प्रतीति होती है।

10. अलंकार – मानवीकरण – है अमानिशा ------ केवल जलती मशाल
उपमा – भूधर ज्यों ध्यान मग्न
परिकरांकुर – राघवेन्द्र
विरोधाभास – स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

5. ऐसे क्षण अंधकार ------------------------- कम्पन तुरीय।

शब्दार्थ – पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि = पृथ्वी की पुत्री सीता के कौमार्य स्वरूप की छवि। अच्युत = दृढ़-स्थिर तथा विष्णु का पर्याय। लतान्तराल = लताओं के मध्य। समुदय = हर्ष के साथ। तरु मलय-वलय = चन्दन के वृक्षों का समूह। ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय = दिव्य ज्योति का झरना। स्वीय = अपनी। तुरीय = एकांत ध्यानमग्न।

प्रसंग – इस उद्धरण में कवि पूर्व निराशा के क्षणों से राम को निकाल कर उनके हृदय में अचानक प्रिया जानकी की स्मृति एवं उनके प्रथम मिलन के प्रणयोदय को चित्रित करता है।

व्याख्या – ऐसे क्षण में जब राम का हृदय निराशा के गहन अंधकार में डूब गया था तो मानों सघन मेघ के मध्य विद्युत की भांति पृथ्वी की पुत्री सीता की कौमार्यावस्था की छवि का चित्र उनकी स्मृति में कौंध गया। वे रामचन्द्र जो स्वभाव से स्थिर हैं अपलक नेत्रों से जनकवाटिका के अतीतगत दृश्य को मानों प्रत्यक्ष देखने लगे। उन्हें वह प्रथम मिलन याद आया जिसमें लताओं की ओट से सीता और राम ने एक दूसरे के प्रथम दर्शन किये थे। दोनों के ही नयनों की सुकुमार पलकें इस नवोदित प्रणय भाव की लज्जा एवं शील के भार से बार-बार झुकती एवं उठती थीं किंतु दोनों के ही नेत्र गुपचुप आपस में प्रणय संदेश का आदान-प्रदान कर रहे थे।

इस प्रेमी युगल की प्रणय भावनाओं से मानों उपवन भी मनोरमता से युक्त हो गया था। इस मधुर अनुभूति से रंजित होकर नवविकसित पत्ते कंपित हो रहे थे। पुष्पों से हर्षातिरेक के कारण पराग झर रहा था। उपवन के पक्षी जीवन के इस अभिनव परिचय पर विमुग्ध होकर मधुर गीत गा रहे थे तथा चंदन के वृक्ष समूहबद्ध होकर सुगंध बिखरा रहे थे तथा आकाश से दिव्य प्रकाश का मानों निर्झर निःसृत हो रहा था। सीता के सरल स्निग्ध नयनों में अपने प्रति एकाग्र अगाध स्नेह को लक्षित कर राम को पहली बार अपने पुरुषत्व की अनुभूति हुई, मानों उनकी एकांत ध्यानमग्नावस्था में पहली बार कंपन हुआ हो।

विशेष – 1. यहाँ निराला ने नाट्यकला की व्यतिरेकी तथा पूर्वदीप्ति प्रविधि (फ्लैश बैक) का युगपद प्रयोग किया है।

2. जनक वाटिका का रम्य वातावरण उपस्थित करते हुए कवि ने प्रतीकात्मक रूप में राम की मनोदशा का अंकन किया है। कांपते हुए किसलय राम के शरीर में रोमांच एवं ओठों के स्फुरण का द्योतक हैं। झरते पराग-समुदय द्वारा उन्होंने राम के हृदय में होने वाले प्रेम भाव के वर्णन का संकेत दिया है। गाते खग नवजीवन परिचय से राम के अनुरागपूर्ण मन में उठने वाले नवीन सुकोमल भावों का उदय संकेतित है। तरु मलय वलय भुजपाश की आकांक्षा के अवचेतन प्रतीक हैं।

3. भाषा की शैली कोमल, माधुर्यगुण से सम्पन्न है जिससे चित्र साकार एवं अर्थ गांभीर्य से युक्त हो गया है। ह्रस्व स्वरों एवं कोमल वर्णों का प्रयोग भाषा को माधुर्य से मंडित कर रहा है। कवि की शब्दावली प्रतीकात्मक होने के कारण राम और सीता के हृदय में स्थित अभिलाषा, उल्लास, अनुराग आदि भावों की भी व्यंजना करती है।

4. 'नव' शब्द द्वारा सीता को मुग्धा नायिका बताया गया है। प्रथम मिलन की छवि का वर्णन निराला के समान पंत में भी मिलता है –

"एक पल मेरी प्रिया के दृग पलक
थे उठे उपर, सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बंध था।"

5. लतान्तराल मिलन के सन्दर्भ में रामचरितमानस की पंक्ति 'लता ओट तब सखिन लखाये' द्रष्टव्य है।

6. जनकवाटिका का एक प्रसंग मानस में भी वर्णित है

"नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर-रुख लखाए।
चातक कोकिल कीर-चकोरा। कूजत बिहग चकित चित मोरा।
कंकनं किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व विजय कहं कीन्हीं।
असकहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय-मुख-ससि भए नयन चकोरा।
भये विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल।"

उल्लेखनीय है कि मानस के वाटिका-उद्धरण में केवल वस्तु-वर्णन शैली का प्रयोग है, जबकि आलोच्य कृति में अवचेतन प्रतीकों द्वारा अत्यंत मार्मिक रीति से पूर्वराग की व्यंजना की गई है।

7. यहाँ कवि ने रति भाव की व्यंजना की है जिसमें स्मृति संचारी भाव सहायक हुआ है।

8. अलंकार – उपमा – जैसे विद्युत
श्लेष – घन (मेघ एवं घना)
परिकरांकुर – अच्युत, पृथ्वी-तनया
विशेषण–विपर्यय – नव पलकों
मानवीकरण – कांपते हुए किसलय नव-जीवन-परिचय
अनुप्रास – पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन
रूपक – ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय।

6. सिहरा तन -------------------------- गिरे दो मुक्ता-दल।

शब्दार्थ – हर धनुर्भंग = शिवजी का धनुष तोड़ने। पुनर्वार = दुबारा। मन्त्रपूत = मन्त्रों द्वारा पवित्र किये हुए, महानिलय = अत्यंत विशाल, अतुल-बल शेषशयन = अतुलनीय बल से युक्त शेषनाग पर शयन करने वाले विष्णु के अवतार राम, भावित = भाव-द्रवित।

प्रसंग – सीता की स्मृति राम के मन में पुनः पराक्रम एवं शौर्य का भाव उद्दीप्त करती है तथा वे अतीत की स्मृति करते हुए अपने वीरत्व की पूर्ववर्ती घटनाओं को एक एक करके स्मृति में दोहराते चले जाते हैं।

व्याख्या – वर्तमान काल की संशयजनित निराशा को क्षण भर भूल कर राम का हृदय इस नवोदित प्रणय भाव की स्मृति से सिहर उठा तथा लंकायुद्ध में रावण से पराजय आदि को भूलकर वे मानों मिथिला में पहुंच गये तथा उनका हाथ मानों एक बार फिर से शिवजी का धनुष भंग करने को उठ गया। सीता के ध्यान में डूबे राम के होठों पर स्मिति उभर आयी तथा प्रिया के स्मरण में उनका अवचेतन पौरुष चेतन हो उठा और एक बार फिर विश्व-विजय की

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भावना हृदय में जागृत हो उठी। उन्हें उस क्षण अपने वे मंत्र से पवित्र किये गये अनगिनत दिव्य बाण स्मरण हो आये तथा वे मानों देवदूतों की भांति पंख फड़फड़ाकर सहसा आकाश में विचरण करने लगे। अतीत के अनेक विजय-दृश्य राम की कल्पना में प्राणवान हो उठे। उन शरों की अग्नि से प्रताड़ित होकर राक्षस यूँ जल रहे थे, जैसे पतंगे, तथा उनमें ताड़का, सुबाहु, विराध, त्रिशिरा तथा खरदूषण आदि पराक्रमी भी थे। तभी उसी क्षण राम को आज प्रातः रण में देखी हुई उस विशालकाय विकराल महाशक्ति की मूर्ति की याद आई जो उनके समक्ष सारे आकाश को ढंक कर खड़ी हुई थीं। उस महाशक्ति के सामने राम के वे ज्योति से पूर्ण अस्त्र जो अग्नि की वर्षा करने वाले थे, सब के सब बुझ कर तेजहीन हो गये तथा उस विराट शरीर में जाकर विलयित हो गये। यह दृश्य देखकर अतुलनीय बल के स्वामी शेषशायी विष्णु के अवतार रामचन्द्र संशय से भर उठे तथा उनकी आँखों के समक्ष रावण के पास बंदिनी ध्यानमग्न सीता के नेत्र उभर आये जिनमें केवल राम की छवि ही अंकित थी। इसके पश्चात् उन्हें रावण का विजयगर्व से युक्त विद्रूप अट्टहास सुनाई दिया। अपनी पराजय का अनुभव कर राम भावद्रवित हो उठे तथा उनके नयनों से मोतियों के समान आँसू की दो बूँदें मोचित हो गईं।

विशेष – 1. यहाँ निराला ने मनोविज्ञान के सिद्धांतों के अनुकूल प्रसंग की अवतारणा की है। यहाँ मूल लक्ष्य सीता की प्राप्ति है। सीता के स्वयंवर में भी जब राम का हाथ शिवजी के धनुष की ओर उठा था तब भी उनका लक्ष्य सीता को स्वयंवर में प्राप्त करना था और आज जब सीता रावण द्वारा अपहृता एवं उसकी बंदिनी है तो उसे प्राप्त करने का एकमात्र साधन यही धनुष है। अतएव कल्पना करते हुए अनायास ही उनका हाथ धनुष की ओर बढ़ आया हो, तो यह अत्यंत स्वाभाविक है।

2. राम के आवेश को व्यक्त करने के लिए कारकों के विपर्यय से चमत्कार सृष्टि की गई है।

3. निराला के विचारों में नारी नर की शक्ति है उसकी प्रेरणा है। स्वयं उनकी पत्नी मनोहरादेवी उनके साहित्य एवं संगीत की प्रेरणा थीं। इसी विचार को लेकर उन्होंने निराश राम के हृदय में फिर से पराक्रम को उद्भूत करने के लिए सीता-स्मृति का विधान किया है। किंतु साथ ही कवि नारी की शक्ति के अंधे ममत्व के रूप में महाशक्ति द्वारा अधर्मी रावण के सहायतार्थ खड़े होना भी चित्रित करता है।

4. सीता के नेत्रों के लिए राममय नयन विशेषण का भावमय प्रयोग निराला ने अद्भुत रूप में तथा पहली बार किया है। यह विशेषण-वक्रता का अपूर्व उदाहरण है। प्रथम दर्शन का वर्णन करते हुए तुलसीदास का कथन है

लोचनमग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक-कपाट सयानी।

किंतु इस भाव को निराला राममय विशेषण में समाविष्ट करते हैं।

5. यहाँ भावशबलता की स्थिति है। परस्पर विरोधी होने के कारण एक दूसरे के विरोधी अनेक भावों का चित्रण भाव-शबलता कहलाता है। रति जनित पुरुषोचित उत्साह भाव, तदोपरांत शक्ति की विपरीतगामिता से उत्पन्न शंका एवं शंका से पुष्ट होते भय आदि नितांत विरोधी भावनाओं के मिश्रण से भाव शबलता की स्थिति उत्पन्न हुई है।

6. निराला हनुमान के, राम के एवं गोस्वामी तुलसीदास के भक्त हैं। इसलिए वे राम को मानवरूप में स्थापित करते हुए भी उनको विष्णुअवतार के रूप में स्मरण कर लेते हैं यथा

अतुलबल शेष-शयन। किंतु इससे राम का मानवीय रूप अस्वाभाविक नहीं पड़ता।

7. यहाँ केवल भाववाचक सौंदर्यपूर्ण शब्दों के द्वारा पंक्तियों को भावों से सिक्त किया गया है।

9. अवतरण में दृश्य बिंब 'जल रहे शलभ दूषण खर' में तथा भावात्मक बिंब 'खिंच गये राममय नयन में द्रष्टव्य है।

10. **अलंकार** – उत्प्रेक्षा – ज्यों उठा हस्त
उपमा – उड़े सकल ज्यों देवदूत, शलभ ज्यों रजनीचर
विरोधाभास – लख शंकाकुल हो गये अतुलबल शेष नयन
वीप्सा – खलखल
बिंब–प्रतिबिंब – खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।
रूपक – मुक्तादल
परिकरांकुर – शेष-शयन

7. बैठे मारुति ---------------------------------- निश्चेतन।

शब्दार्थ – चरणारविन्द = चरण रूपी कमल। अस्ति-नास्ति = है अथवा नहीं है। अनिन्द्य = निर्दोष। विश्रामधाम = मुक्ति स्थल। विभक्त हो = द्वैत भाव से। चिर-प्रफुल्ल = सदैव प्रसन्न रहने वाला। निश्चेतन = चेतना रहित। अजपा = एक विशेष प्रकार का जाप जिसमें साधक के श्वास-प्रश्वास के साथ स्वतः अनायास ही जाप होता रहता है।

प्रसंग – ऐसे समय में जब राम निराशा के अंधकार में खोये हुए हैं, उनके अनन्य भक्त हनुमान उनके चरणकमलों को निहार रहे थे। राम के अश्रु देखकर महावीर के हृदय में उत्पन्न विविध भावों का कवि ने अंकन किया है।

व्याख्या – राम के पदप्रान्त पर नीचे बैठे महावीर उनके चरण-कमलों की भक्ति-भाव से वन्दना कर रहे थे। इस भाव में निमग्न हनुमान उनके विषय में सोच रहे थे कि निन्दा से रहित गुणों के समूहों से मंडित राम के वे चरण युगल मानों ब्रह्म साधना के द्वैत अद्वैत तथा ब्रह्म के होने न होने की धारणाओं के साक्षात् रूप हैं। राम का बांया हाथ दाहिने चरण पर तथा दाहिनी हथेली बायें पैर पर रखी थीं। राम के प्रति भक्ति साधना की अवस्था में लीन राम की ऐसी मुद्रा को देखकर हनुमान हर्षातिरेक में विह्वल हो रहे थे। परम शांति, सत्य एवं पूर्ण आनन्द के मूल तथा मोक्ष के धाम भगवान राम के सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति कर हनुमान भक्ति के साथ इस क्षण द्वैत भावना से युक्त होकर राम के नाम का अजपा जाप कर रहे थे। अर्थात् उनके हर श्वास से स्वयमेव राम नाम निकल रहा था। तत्क्षण राम के दोनों चरणों पर उनके दो अश्रुबिन्दु आ गिरे। ध्यानमग्न कपि ने उन्हें देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश में दो तारे चमक रहे हों। पुनः उन्हें आभास हुआ कि ये राम के चरण न होकर कालीरुपिणी महाशक्ति के चरण हैं तथा उनके मध्य में दो हीरे अथवा दो कौस्तुभ मणियां चमक रही हों। तभी अचानक हनुमान की भक्ति-एकाग्रता भंग हो गई तथा उनका अब तक स्थिर मन व्याकुल हो उठा। यथार्थ स्थिति का भान होते ही ज्योंही आंख उठाकर उन्होंने संदेह की दृष्टि से राम की ओर देखा। उस स्थान पर कमलरूपी नयनों वाले रामचन्द्र ही विद्यमान थे किन्तु उनके नेत्र अश्रुओं से आर्द्र थे। वह मुख जो हमेशा प्रसन्न एवं प्रफुल्ल रहता था, कुछ व्याकुल एवं उदास था तथा वे संज्ञाहीन-से हो रहे थे।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विशेष – 1. हनुमान की भक्ति में कवि की अपनी भक्ति भावना यहाँ परोक्षतः प्रकट हुई है। राम अतुलबलधामा हैं, स्वयं सच्चिदानन्द हैं अतः उनमें किसी प्रकार की निराशा अवसाद के उदय का विश्वास हनुमान को हो ही नहीं सकता था। हनुमान की दास्य भक्ति का अभूतपूर्व चित्रण यहाँ हुआ है साथ ही भक्ति मार्ग का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है।

2. हनुमान के चिंतन में कवि की छायावादकालीन रहस्यवादी जिज्ञासा की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

3. यहाँ कवि की दार्शनिक चिन्ताधारा ने काव्य में स्थान ग्रहण किया है। अस्ति-नास्ति, एकरूप, सच्चिदानन्द, अजपा-जाप आदि सभी शब्द वेदान्त दर्शन के हैं जिनका योग काव्य को गंभीरता तथा गौरव प्रदान करता है।

4. संत साहित्य में 'जाप' शब्द का बहुल प्रयोग हुआ है। जाप के कई भेद हैं वाचिक जाप में इष्ट के नाम का सस्वर जाप होता है। मौन जाप में मन में भक्त नाम जपता है। अजपा जाप में साधक के श्वास-प्रश्वास के साथ अपने आप ही जाप होता रहता है।

5. श्यामा शब्द में श्लेष है। श्यामा एक ओर महाशक्ति का पर्याय है तो श्यामा का अर्थ अगर रात्रि किया जाये तो इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी मानों वे रात्रि के दो प्रहर हैं जिनके मध्य तारे रूपी हीरे जगमग रहे हैं।

6. चमके नभ में ज्यों तारादल – ऐसी उत्प्रेक्षा तुलसीदास में भी मिलती है - **"श्रम सीकर सांवरी देह लसैं जिमि राति महातम तारक में।"** यह उत्प्रेक्षा निराला ने वर्ण सादृश्य के आधार पर की है। राम के चरणों की श्यामलता तथा अश्रु-बिन्दुओं की शुभ्रता के कारण हनुमान की कल्पना ने उन्हें आकाश में चमकते दो तारे समझ लिया।

7. व्याकुल-व्याकुल में वीप्सा का प्रयोग सोद्देश्य है तथा यह राम के हृदय की खिन्नता एवं म्लानता का चित्र अंकित करने में पूर्ण समर्थ है।

8. अलंकार – रूपक – चरणारविन्द, कमल-लोचन
संदेह – देखा कपि ने ------ दो कौस्तुभ
विरोधाभास – स्थिर मन हुआ विकल,
व्याकुल–व्याकुल कुछ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन
उपमा – चमके नभ में ज्यों तारादल
अपह्नुति – ये नहीं चरण राम के बने श्यामा के शुभ
पदमैत्री – गुण-गण, अस्ति-नास्ति, जपते सभक्ति अजपा विभक्त
हो राम नाम, विश्राम-धाम
परिकरांकुर – मारुति, श्यामा।

8. 'ये अश्रु राम के' ———————— क्षुब्ध कर अट्टहास।

शब्दार्थ – उद्वेलित = आंदोलित। शक्ति-खेल-सागर = शक्ति की तरंगों से क्रीड़ा करने वाले हनुमान का सागर रूपी विराट रूप। पवन उनचास = प्रलय काल के समय प्रवाहित होने वाली पवन। पिता-पक्ष = पूर्वज गण। तुमुल = भयंकर। शतघूर्णावर्त = सैंकड़ों चक्कर लगाते हुए। बन्ध-प्रतिसन्ध = बांध तथा सीमा। स्फीत वक्ष = विशाल वक्ष, शत-वायु-वेग-बल = सौ पवनों की तीव्र गति के बल से। महाराव = विशाल घोष। वज्रांग तेजघन = वज्र जैसे कठोर अंगों वाले तथा गहन तेजस्विता वाले। एकादश रुद्र = शिवजी के ग्यारहवें अवतार हनुमान।

प्रसंग – अभी तक हनुमान भक्ति भाव में रत होकर राम के अश्रुकणों के प्रति विभिन्न कल्पनायें कर रहे थे। किंतु यथार्थ का ज्ञान होते ही उनके क्रोध का पारावार न रहा। भक्त अपने स्वामी की यह दशा न देखा सका तथा क्रोध में उसकी सामर्थ्य अपना विस्तार पाने लगी।

व्याख्या – जैसे ही रामभक्त हनुमान को यह ज्ञान हुआ कि ये राम के अश्रु हैं, उनका व्यक्तित्व शक्ति रूपी तरंगों से खेलने वाले विराट समुद्र की भांति उद्वेलित हो उठा। उसी क्षण उनके पितृ-स्थान अर्थात् पवन लोक से उनचासों पवन एक साथ भयानक रूप में प्रवाहित हो उठे। इन पवनों के तीव्र वेग से समुद्र के वक्ष पर सघन वाष्पराशि आकाश में विलयित होने लगी। जिस प्रकार प्रलय के समय सागर के भीतर सैंकड़ों भंवर चक्कर काटते हुए सागर का मंथन करते हैं, लहरें अपने आवेग से उठती गिरती हैं, उन उत्ताल तरंगों के कारण सागर के वक्ष पर जल के पहाड़ उठते एवं गिरते हैं, उसी प्रकार तरह-तरह के प्रबल आवेग हनुमान के हृदय को उद्वेलित करने लगे। उनके हृदय में कभी कोई विचार जन्म लेता था कभी कोई विचार उठता था परन्तु परस्पर विरोधी होने के कारण कुछ निश्चय न हो सकने के कारण वे उनके हृदय में ही विलीन हो जाते थे। जिस प्रकार प्रलंकारी समुद्र अपने मार्ग के प्रत्येक अवरोध को दूर करता हुआ पृथ्वी को अपने स्फीत वक्ष में समाता हुआ उसे जलमग्न कर अपना विस्तार करता है और प्रतिपल वेग के साथ सम्पूर्ण दिशाओं को दिग्विजय करने के लिए बढ़ता जाता है उसी प्रकार हनुमान का वक्षस्थल भी अपने विराट व्यक्तित्व के गर्व से विस्तार पाने लगा। सौ वायु के वेग का बल धारण कर दिशाओं की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए विशालजलराशि का मंथन करते हुए वायुमंडल को अपने घोर गर्जन से गुंजायमान करते हुए वातावरण में वज्र का वेग तथा सघनता को फैलाते हुए राम के दुःख से क्षुब्ध शिव के ग्यारहवें रुद्रावतार हनुमान विशाल आकाश में पहुंच गये।

विशेष – 1. यहाँ हनुमान के व्यक्तित्व एवं समुद्र के रूपक के माध्यम से हनुमान की उत्तेजना का आवेग एवं आक्रोश प्रकट किया गया है।

2. पौराणिक भूगोल में उनचास प्रकार के पवन माने गये है। ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सात मरुत् गणों का वर्णन है तथा प्रत्येक गण में सात मरुत हैं अर्थात् उनचास मरुत या पवन।

3. विराट पृष्ठभूमि, विराट प्रतीक, उदात्त शैली इस अवतरण की विशेषता हैं जो राम की शक्तिपूजा को महाकाव्यात्मक औदात्य से युक्त करती हैं।

4. पद्य की पंक्तियों की भाषा में प्रसंग एवं भाव के अनुरूप अपार वेग एवं शक्ति है। संयुक्त अक्षरों, समासयुक्त पदावली, कठोर एवं महाप्राण वर्णो के प्रयोग से चित्र को उदात्तता प्रदान की गई है। श्वसित, तुमुल, तरंग-भंग, घूर्णावर्त, स्फीत वक्ष आदि ध्वन्यार्थ शब्दों के प्रयोग से चित्र की भयावहता एवं विराटता में वृद्धि हुई है।

5. 'जल राशि राशि जल' में शब्दों का व्यतिक्रम स्वयमेव पाठक के समक्ष विपरीत दिशाओं से आती हुई लहरों का चित्र साकार कर देता है।

6. इस पद्य के छन्द की लय भी अत्यंत सुघड़ एवं चमत्कारपूर्ण है। पंक्ति के अंत में ही नहीं, वरन निराला ने मध्य में भी तुकबंदी का आश्रय लिया है, यथा शत- घूर्णावर्त, तरंग-भंग, चढ़ता-खाता, बन्ध-प्रतिसन्ध आदि। यति का प्रयोग भी छन्द के भाव की अनुकूल गति के अनुसार किया गया है। जैसे चौथी पंक्ति में पहले शब्द 'पहुंचा' के बाद ही यति है।

7. इस बंध में उत्साह, भय, क्रोध आदि स्थायी भावों की प्राणवान् व्यंजना की गई है।

8. अलंकार – रूपक – शक्ति खेल.....सागर अपार, शत घूर्णावत्.....खाता पछाड़

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मानवीकरण – जलराशि ------ खाता पछाड़
अनुप्रास – सम्पूर्ण बंध में
परिकरांकुर – एकादश रुद्र

9. रावण-महिमा ---------------------------------- होगा दूर रोध।

शब्दार्थ – विभावरी = रात्रि। तेजःप्रसार = तेजस्विता का प्रसार। दशस्कन्ध-पूजित = रावण द्वारा पूजित। रघुनन्दन-कूजित = राम द्वारा की गई। भारधरण = भार धारण करने वाले। श्रृंगार-युग्म-गत = श्रृंगारिक भावनाओं के साथ कामिनी में लिप्त। चिर-ब्रह्मचर्य-रत = हमेशा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला। लीला-सहचर = विष्णु के रामावतार में लीला करने पर हनुमान उनके प्रमुख सहचर हुए। दिव्यभावधर = अलौकिक भावनाओं से युक्त। रोध = संकट।

प्रसंग – हनुमान आक्रोश एवं क्षोभ में जब महाकाश में अपना विराट रूप एवं विनाश का भाव लेकर पहुंचे तो सर्वशक्तिमान शिव भी उनकी गहन भक्ति के इस व्यापक विस्तार से विचलित हो उठे।

व्याख्या – रावण की महिमा एवं शक्ति का प्रसार रात्रि के अंधकार के समान तामसी वृत्तियों से परिपूर्ण था। किंतु दूसरी ओर राम द्वारा शिव के पूजन का पराक्रम तथा तेजस्विता का प्रतीक हनुमान थे। कवि हनुमान तथा महाशक्ति की तुलना करते हुए कहता है कि एक ओर रावण के द्वारा अर्चित शिव की वह शक्ति थी जो रावण के अधर्म एवं अन्याय के पक्ष में लड़ रही थी। किंतु दूसरी ओर शिव की पूजा थी जो राम द्वारा मधुर जापों में गुंजायमान हुई थी। आज इन महाशक्ति की तामसिक एवं हनुमान की भक्ति की सात्विक वृत्तियों का संघर्ष होना संभव था। जब हनुमान पूरे आकाश को अपना ग्रास बनाने का संकल्प लेकर आगे बढ़े तो वे शिव जो सदैव अचल हैं, ब्रह्मरूप हैं वे भी ब्रह्माण्ड के सर्वनाश की संभावना का ध्यान कर कुछ क्षण के लिए विचलित हो गये तथा उनकी समाधि भंग हो गई । वे शिव जो महाशक्ति महाकाली के चरणों का भार हृदय पर धारण करते हैं , धीमे स्वर में उनसे बोले कि हे देवि! अपने तेज का अपवर्जन कर लो। यह साधारण वानर नहीं है, अतः अपने तेज और शक्ति से इसकी परीक्षा लेने का प्रयास मत करो। यह हनुमान महावीर हैं तथा श्रृंगार भावना में लिप्त नर-नारी संयोग से उत्पन्न होने वाले प्राणियों में से यह नहीं हैं। यह राम की पूजा उपासना के साक्षात् प्रतीक हैं। वे भौतिक प्राणी नहीं हैं अपितु अक्षय शरीर धारण किये हुए हैं। वे स्वयं ग्यारहवें रुद्र हैं जो सदैव ब्रह्मचर्य व्रत में रत रहे हैं। इतना ही नहीं, मर्यादा पुरुषोत्तम राम द्वारा इस जगत में की गई विभिन्न लीलाओं में वे उनके सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक अन्तरंग सहयोगी के रूप में अवतरित हुए हैं अतएव ये धन्य हैं। इतना कहकर वे शक्ति को हनुमान के इस प्रभाव को रोकने का परामर्श देते हुए कहते हैं कि हे देवि, यह वानर दिव्य भक्ति भाव को धारण करने वाला है अतएव अपनी शक्ति एवं तेज से यदि तुम इन पर प्रहार करोगी तो निश्चित ही तुम्हारी बुरी तरह पराजय होगी। अतः उचित यही होगा कि तुम विद्या एवं ज्ञान का सहारा लेकर इसके भक्त हृदय का प्रबोधन करो, इससे इसका आक्रोश निश्चय ही शांत हो जायेगा। हनुमान स्वभाव से ही विनम्र एवं विनयशील है। तुम्हारे समझाने से उनकी विरोध भावना स्वतः ही दूर हो जायेगी तथा इस समय ब्रह्माण्ड पर जो संकट उपस्थित हुआ है वह भी दूर हो जायेगा।

विशेष – 1. कवि ने रावण की शक्ति एवं राम के पूजन की तुलना श्यामा के अंधकार एवं तेजः प्रसार से की है जो तामसिक एवं सात्विक वृत्तियों के प्रतीक हैं।

2. भक्ति में कवि का अत्यंत विश्वास है और राम के अनन्य सेवक भक्ति के मूर्तिमान स्वरूप हनुमान के समक्ष तो स्वयं महाशक्ति के प्रहार भी विफल होंगे, यह कहकर कवि भक्ति की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित करता है।

3. शिव जी को यहाँ पर श्यामा पदतल भारधरण कहा गया है। शाक्त मत में प्रचलित है कि महाशक्ति के रौद्र रूप को शांत करने तथा संसार को विनाश से बचाने के लिए देवताओं ने शिवजी से अनुरोध किया। शिवजी उनके मार्ग में लेट गये तथा क्रोधावेश में आती हुई महाकाली का पैर उनकी छाती पर पड़ गया तो वे स्तम्भित हो गई। इसी कथा के संदर्भ को यहां प्रयुक्त किया गया है।

4. यहाँ हनुमान जी को अक्षय शरीर एवं दिव्यभावधर माना गया है। हनुमान की उत्पत्ति शिव एवं पवन के तेज से हुई थी उनकी देह पंचभूत निर्मित नहीं थी। कवि के अनुसार वे स्वयं रामचन्द्रजी की शिवोपासना का साकार रूप थे, इसलिए वे अक्षय शरीर थे, अनन्य भक्ति के एकमात्र भाव को धारण करने के कारण वे दिव्यभावधर थे।

5. यहां कवि ने प्रसंग के अनुरूप प्रसादगुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है। कहीं कहीं सामासिक पदावली चिर-ब्रह्मचर्य-रत, श्रृंगार-युग्म-गत आदि तथा मध्यवर्ती तुक का सौंदर्य भी विद्यमान है।

6. **अलंकार** - उपमा – रावण–महिमा ------ तेजःप्रसार
तुलना – उस ओर ----- रघुनन्दन कूजित
विरोधाभास – लख महाविनाश शिव अचल हुए क्षण भर चंचल
अपह्नुति – नहीं वानर यह ------- दिव्यभावधर
उल्लेख – अर्चना राम की ----- दिव्यभावधर
पुनरुक्ति – श्यामा विभावरी
परिकरांकुर – रुद्र, दशस्कन्ध, हर, महावीर, रघुनन्दन, श्यामा, एकादश रुद्र।

10. कह हुए मौन ------------------------ प्रभु-पद हुए दीन।

शब्दार्थ – पवनतनय = पवनपुत्र हनुमान। अंजना-रूप = हनुमान की माता अंजना का रूप। असम्भाव्य = असंभव कार्य। धार्य = स्वीकार करने योग्य। गह = पकड़कर।

प्रसंग – हनुमान के क्रोध एवं क्षोभ का शमन करने का उचित एवं विवेकपूर्ण परामर्श शिवजी ने महाशक्ति को दिया। तदोपरांत महाशक्ति मातृरूप धारण कर हनुमान के समक्ष उपस्थित हुई तथा वात्सल्यजनित स्नेह के साथ उन्हें समझाने लगीं।

व्याख्या – परामर्श देने के बाद शिवजी मौन हो गये। तब महाशक्ति ने शिवजी के कहे अनुसार हनुमान की माता अंजना का रूप धारण किया तथा नभ में प्रकट हो गई। सहसा मां को समक्ष पाकर पवनपुत्र हनुमान आश्चर्य से भर उठे। उनकी बालक्रीड़ाओं का स्मरण कराती हुई वे बोलीं कि तुमने एक बार बचपन में सूर्य को निगलने का दुस्साहस किया था। उस समय तुम अबोध बालक थे तथा तुम्हें उचित-अनुचित का बोध नहीं था, अतएव तुम क्षम्य थे किंतु आज भी उसी बालपन की क्रीड़ा को फिर से दोहराने का भाव जो तुम्हें व्याकुल कर रहा है जिस चपलता एवं अविवेक को तुम प्रदर्शित कर रहे हो तो मैं तुम्हारे कारण बार-बार ग्लानि का कष्ट उठाऊं, यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात है। अब तुम बड़े हो, तुममें स्वयमेव विवेक होना चाहिए।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जिस महाकाश को निगलने का क्षोभ तुम्हारे भीतर है तथा यह भयानक प्रयास तुम करने जा रहे हो, वहाँ उन शिवजी का पुण्य निवास-स्थान है जिनकी पूजा स्वयं तुम्हारे इष्ट रामचन्द्र जी करते हैं। जो तुम्हारे स्वामी के ईश्वर हैं, क्या वे तुम्हारे लिए पूजनीय नहीं हैं? उनके निवास-स्थान को ग्रसने का प्रयास करके क्या तुम अनर्थ नहीं कर रहे हो, क्या यह दुस्साहस तुम्हारा दुष्कृत्य नहीं है? इन बातों पर विवेक से काम लो। जो कुछ तुम करने जा रहे हो, क्या इस कार्य के लिए तुम्हारे प्रभु रामचन्द्र ने तुम्हें आज्ञा दे दी है? तुम उनके सेवक हो, किंतु उनकी आज्ञा अथवा अनुमति लिए बिना यह कार्य कर रहे हो। इस प्रकार तुम अपने सेवक धर्म का परित्याग करके क्या अपराध नहीं कर रहे हो। क्या तुम्हारे मन में यह धारणा बन गई है कि चूँकि राम को अपनी विजय असंभव प्रतीत हो रही है तो उसे संभव कर दिखाने का मिथ्या अभिमान तुम्हारे अन्दर जागृत हो रहा है। इस प्रकार तुम अपने आपको अहंकारी सिद्ध कर रहे हो। माता की स्नेहिल फटकार सुन कर हनुमान का आवेग विलीन हो गया। वे विनम्र भाव से भर उठे। अपना उद्देश्य पूरा कर अंजना रूपी महाशक्ति तुरंत लीन हो गई। हनुमान धीरे-धीरे विनम्र भाव से आकाश से उतर आये तथा श्रीराम के चरणों को दैन्य भाव से पकड़कर बैठ गये।

विशेष – 1. यहां नाट्य-शिल्प की गर्भ-दृश्य युक्ति का प्रयोग है। अंजना के सहसा प्रकट होने तथा हनुमान को उपदेश देने की घटना को गर्भदृश्य के रूप में सम्मिलित किया गया है।

2. शिव के परामर्श के अनुसार महाशक्ति ने विवेक प्रयोग करते हुए मातृ रूप धारण किया। यहां कवि ने मनोविश्लेषणात्मक संवादों का प्रणयन किया है। जिस प्रकार कोई मां अपने पुत्र को कुमार्ग पर जाने से रोकने के लिए तरह-तरह से समझाती है उसी प्रकार अंजना के रूप में महाशक्ति कभी पुचकार कर, कभी उनके मन में मां के प्रति पुत्र के कर्तव्य का भान कराकर, कभी अपने वात्सल्य के साथ अपनी अक्षमता तथा कभी उनके कार्य के औचित्य एवं अनौचित्य का ज्ञान कराकर उन्हें प्रबोध देती हैं।

3. यद्यपि इस प्रसंग का सीधा सम्बंध एवं संदर्भ कथानक से नहीं जुड़ता, किंतु प्रमुख कथा के विकास की गति में यह प्रसंग प्रभावशाली रूप से सहकारी सिद्ध होता है।

4. अंजना के प्रश्नगर्भित वाक्य - 'क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनन्दन ने' तथा 'क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिए धार्य' द्वारा कवि हनुमान की निष्ठा पर मनोवैज्ञानिक व्यंग्य करते हैं।

5. भाषा की सरल शब्दावली का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं शब्दों के प्रयोग में कवि ने अपनी मनमानी की है जैसे असम्भाव्य एवं धार्य। और कहीं देशज शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे गह, ग्रसना।

6. रह-रह, सह-सह शब्दों में पुनरावृत्ति से मां की वेदना गहन होकर प्रकट हुई है।

7. 'रवि को जब लिया निगल' में वह प्रसंग निहित है, जब हनुमान ने अबोध बालवय में सूर्य को निगल लिया था, किंतु उसका ताप असह्य होने के कारण उगल दिया था। तुलसीदास की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं –

"बाल समय रवि भक्ष लियो जब तिहूँ लोक भयो अंधियारो।
ताहि सो त्रास भयो जग को, यह संकट काहु सों जात न टारो।
देवन आनि करी बिनती तब, छाड़ि दियो रवि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जग में कपि, संकट मोचन नाम तिहारो।।"

8. अलंकार – पुनरुक्तिप्रकाश – रह-रह, सह-सह, धीरे-धीरे
विषम – यह महाकाश ------ ग्रसने को चल
वक्रोक्ति – क्या दी आज्ञा ----- राघव के लिए धार्य
परिकरांकुर – पवन-तनय।

11. राम का विषण्णानन ------------------ राघव, धिक्-धिक् !

शब्दार्थ – विषण्णानन = उदास मुखमण्डल। वदन = मुख। निर्जर = शक्ति-सम्पन्न। भल्लूक = भालू। विगतश्रम = शैथिल्य से रहित। प्रमन = सुहृद। अप्रतिभट = अद्वितीय योद्धा। अर्बुद = करोड़ों। भाव-प्रहर = भाव का आगमन होना। कल्मष = पाप। गताचार = सदाचार हीन। दुराचारी। कल-कूजित-पिक = कोयल की मधुर वाणी। पारिषद-दल = सभासदों का समूह।

प्रसंग – हनुमान के आकाशगमन एवं माता द्वारा प्रबोध के सहायक प्रसंग के बाद कवि मूल कथा तत्त्व को आगे बढ़ाता है। राम को निराशा में निष्क्रिय देखकर विभीषण विभिन्न वचनों द्वारा उनके उद्बोधन का प्रयास करते हैं।

व्याख्या – राम के मुख की उदासी को लक्षित करते हुए विभीषण कहने लगे कि हे मित्र, आज आपके मुखमण्डल पर वह प्रसन्नता का भाव नहीं, वह सहज-स्मित नहीं जिसे देखकर सभी वानर एवं भालू योद्धागण अपनी थकान दूर कर लेते थे और पुनः स्फूर्त होकर नवीन जीवन प्राप्त कर लेते थे। हे रघुकुल के वीर, आपके तरकस में सभी दिव्यास्त्र सुरक्षित हैं। आपके हाथ अब भी युद्ध में प्रवीण हैं तथा अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग पहली-सी ही निपुणता से करते हैं। आपका विशाल वक्षस्थल एवं उसके भीतर पराक्रम से भरा दृढ़ संकल्पी हृदय भी वही है, और अतुलनीय शौर्य भी आपमें विद्यमान है। इस प्रकार आपके व्यक्तिगत पराक्रम एवं साहस में तो कोई कमी है ही नहीं। जहाँ तक आपके अपने सैन्य-बल का प्रश्न है तो मेघनाद को समर में धराशायी करने वाले सुमित्रा के यशस्वी पुत्र लक्ष्मण भी अपने पराक्रम के साथ उपस्थित हैं, बुद्धिमान जाम्बवान भी आपके साथ हैं तथा वानरराज सुग्रीव आदि सभी सुहृद आपके प्रति निष्ठावान हैं। बलि एवं तारा के पुत्र अंगद भी हैं तथा सभी महाबलशाली श्वेत-धीर हैं। इन सबसे अधिक पराक्रमी एवं अद्वितीय वीर हनुमान स्वयं आपकी सेवा में उपस्थित हैं जिनकी समता कोई नहीं कर सकता तथा जो अकेले ही करोड़ों योद्धाओं के समान शक्तिवान हैं। आपके ये सभी सेनानायक पहले की ही भांति दक्ष एवं कुशल हैं। युद्ध का स्वरूप भी परिवर्तित नहीं हुआ है। सब कुछ पूर्ववत् होने पर भी अब जब युद्ध की निर्णायक स्थिति का क्षण है और विजय प्राप्त करने का उत्साह हृदय में जागृत रहना चाहिए तो लक्ष्य पर पहुंचते-पहुंचते आपके हृदय में यह अमंगलकारी निराशा का भाव कैसे उदित हो गया। आपके सूर्य की कांति वाले तेजस्वी मुख पर सहसा रात्रि के प्रहर का आगमन असमय कहां से हो गया।

इतना कहकर जब विभीषण ने राम के मुख को प्रभावहीन देख तो उन्होंने पुरुष चेतना पर प्रहार करने की युक्ति अपनाई। वह कहने लगे - आप रघुवंश के अद्वितीय शूरवीर तथा कुल के गौरव के प्रतीक हैं। अतः इस प्रकार लघुता एवं हीनता के भाव से त्रस्त हो जाना उचित नहीं। जब रण में हमारी ही विजय होने वाली है जब लक्ष्य निकट ही है तो अब आप युद्ध से पलायन कर रहे हैं। जानकी को स्वतंत्र कराने के लिए आपके इन मित्रों एवं सहयोगियों

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ने निष्काम भाव से आपके साथ मिलकर संघर्ष किया है जो आपकी इस मनःस्थिति के कारण व्यर्थ हो रहा है। इस जानकी के विषय में सोचो जो राक्षस की बंदिनी है तथा आपके विरह के दुःख को झेलती हुई आपसे मिलन की प्रतीक्षा कर रही है। आपके द्वारा अपनी मुक्ति की आशा हृदय में संजोये हैं। अब जब वह क्षण समीप आ रहा है तो आप निर्दयी बनकर उसके प्रति उदासीनता अपना रहे हैं। आपका यह आचरण कितना कठोर है।

अंत में विभीषण रावण के अत्याचारों तथा राम द्वारा खुद को दिये गये वचन का स्मरण कराकर उनकी वीरता जागृत करने का अंतिम प्रयास करते हैं कि रावण का केवल नाम ही रावण नहीं है वरन् वह स्वभाव एवं कर्म से भी रावण अर्थात् दूसरों को रुलाने वाला एवं पीड़ा देने वाला है, धूर्त, दुष्ट, अत्याचारी एवं महापापी है। मैंने उसे सद्परामर्श दिया किंतु उसने बदले में पैरों का प्रहार करके मुझे अपमानित किया। आपके इस पलायन से स्वयं को विजयी समझकर वह पापी अशोकवाटिका में जहाँ उसने वसंत को बंदी बना रखा है, अपने सभासदों से घिरा हुआ दर्पपूर्ण भाव से प्रवेश करेगा। वसंत की मनोरमा से युक्त उस वाटिका में कोयल के मधुर स्वरों की गुंजार सुनता हुआ आनन्द मनायेगा। तथा बंदिनी बनाई हुई सीता को अधिक यातनायें देगा। उसका उपहास करके उसके मर्म को विदीर्ण करेगा। हे राघव, आपने मुझे वचन दिया था कि रावण को जीतकर आप मुझे लंका का राज्य प्रदान करेंगे। किंतु आज आप अपने ही वचन से विमुख हो रहे हैं। आपकी शरणागतवत्सलता, मित्र-धर्म, धर्म रक्षा का आज आप स्वयं पालन नहीं कर पा रहे, हे रघुवंश के वीर, आपको धिक्कार है, धिक्कार है।

विशेष – 1. विभीषण के इन प्रश्नों में कवि ने नाट्य शिल्प का प्रयोग किया है। विभीषण द्वारा तर्कप्रणाली का आश्रय लेकर कवि राम को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास करता है। नाटकीय कौशल ने विभीषण के तर्कों एवं इस उद्धरण को प्रभावोत्पादक बना दिया है। डा. शान्ति स्वरूप गुप्त के शब्दों में **"वस्तुतः निराला की इस सम्पूर्ण कविता में नाट्य शिल्प का जितना अधिक और कुशल प्रयोग हुआ है, वह अन्यत्र नहीं मिलता।"**

2. निराला की मौलिक उद्‌भावनाओं में से एक विभीषण के चरित्र की विशेषतायें भी हैं। कवि ने परंपरा के विरुद्ध उसे निष्क्रिय पात्र के रूप में न लेकर अत्यंत सक्रिय, समझदार एवं मानव की मनःस्थिति के मनोविज्ञान को जानने वाला व्यक्त किया है। वह व्यंग्य वक्रता का आश्रय लेकर राम के क्षत्रियत्व एवं पौरुष को ललकारते हैं। इस प्रकार विभीषण का चरित्र एवं उसके मनोविज्ञानसम्मत तर्क इस काव्य की विशेषता बन गये हैं

3. इस प्रसंग में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का विशेष प्रयोग किया गया है।

4. 'मैं बना किंतु लंकापति धिक् राघव, धिक् धिक्' के विषय में यह संदर्भ उल्लेखनीय है कि राम ने अपने शिविर में आते ही विभीषण को लंकापति घोषित कर दिया था। रामचरितमानस में लिखा है –

"अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भई अपारा।"

5. यह बात परंपराप्रसिद्ध है कि वसंत को रावण द्वारा बन्दी बना लिया गया था जिससे प्रत्येक ऋतु में वसंत का प्रभाव वहाँ बना रहता था। इसी को कवि ने काव्य में आभिनाव्य लाने के लिए ग्रहण किया है।

6. मैं बना किंतु लंकापति में किंतु शब्द का कवि ने सार्थक प्रयोग किया है। इससे

विभीषण की व्यंग्योक्तियां और तीखी हो जाती हैं। कुंतक ने इस प्रकार के प्रयोग को निपात वक्रता कहा है।

7. भाषा शैली अत्यंत सहज एवं व्यंग्यमिश्रित है। कम शब्दों में बहुत कुछ कहने की योग्यता निराला रखते हैं वह इस उद्धरण से भी स्पष्ट है।

8. हाथ खींचना, पीठ फेरना आदि मुहावरों का प्रयोग यहाँ हुआ है जो शैली को अत्यंत सहज, रोचक, भाव-विदग्ध एवं प्रभावमयी बना रहा है।

9. **अलंकार** – अनुप्रास – वीर वानर, प्रसन्न वदन, कल-कूजित-पिक
यमक – रावण / नाम /, रावण / स्वभाव /
वीप्सा – धिक-धिक
उपमा – अर्बुद-सभ
विरोधाभास – रघुकुल गौरव ——— जानकी से निर्दय
वक्रोक्ति – रघुवीर तीर सब वही --- यह भाव प्रहर
परिकरांकुर – मेघनाद-जित-रण
रूपक – फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव-प्रहर।

12. सब सभा रही ———————— वातावरण विषम।

शब्दार्थ – स्तमित = अर्धोन्मिलित। विमन = अन्यमनस्क। दुराव = छिपाव। गह युग-पद = दोनों पैर पकड़ कर। मसक दण्ड = पुष्ट भुजायें। समनुरक्ति = परस्पर प्रेम भाववश। स्पन्दित = आंदोलित।

प्रसंग – विभीषण ने विभिन्न युक्तियुक्त मनोवैज्ञानिक वचनों से राम को उद्‌बुद्ध करना चाहा किंतु राम के अवसादग्रस्त हृदय पर ये सभी प्रभावहीन सिद्ध हुए।

व्याख्या – विभीषण के उत्तेजक शब्दों से राम की सभा हतप्रभ हो गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया। किंतु राम के अधखुले नेत्रों में कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। वे पूर्व की भांति स्निग्ध आभा से भरे हुए थे, किंतु हृदय से अन्यमनस्क हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों विभीषण के ओज एवं ललकार युक्त वचनों का कोई प्रभाव उन्होंने ग्रहण नहीं किया था। न उन्हें इन शब्दों की गहराई में जाने की रुचि थी और न ही उन्हें सुनकर उन्होंने अपनी दुर्बलता को छिपाने का कोई यत्न ही किया था। वे शब्द मानों अर्थ एवं अभिप्राय से हीन शब्द थे अथवा मित्रों की औपचारिक स्नेहपूर्ण वार्ता मात्र थे जिसमें किसी अनुभूति गांभीर्य को ग्रहण करने या करवाने की सामर्थ्य नहीं थी। कुछ क्षण तक इसी मनोदशा में रहकर उन्होंने अपना मौन भंग किया तथा अपने स्वभावानुकूल सहज कोमल स्वर में रघुकुल के मणि राम कहने लगे कि हे मित्र श्रेष्ठ, इस युद्ध में अब हमारी विजय संभव नहीं है क्योंकि अब यह मनुष्य एवं वानरों का असुरों से युद्ध नहीं रहा है जिसमें विजय-पराजय पराक्रम के आधार पर निर्णित होती। अभी तक हम आत्मबल की शक्ति से राक्षसों के दुर्धर्ष प्रहारों पर विजय पाते रहे। किंतु अब रावण की उपासना के वरदानस्वरूप स्वयं महाशक्ति रावण के आह्वान पर युद्ध में उपस्थित हो गई हैं। अतः अब राक्षसों पर विजय पाना असंभव हो गया है। कैसी विडम्बना एवं विसंगतियुक्त स्थिति है कि महाशक्ति स्वयं न्याय एवं धर्म के साथ न होकर अन्यायी एवं अधर्मियों का साथ दे रही हैं। कहते-कहते भावविह्वल होकर उनके नेत्र अश्रुओं से छलछला आये तथा अश्रुओं की कुछ बूँदें पुनः गिर पड़ीं। उनका कण्ठ असामर्थ्य का अनुभव कर अवरुद्ध हो

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

गया। राम की यह दशा देखकर स्वभाव से उग्र एवं तेजस्वी लक्ष्मण का प्रचण्ड प्रताप एकदम उद्दीप्त हो उठा। राम के चरणों को पकड़े हनुमान अपनी विवशता की लज्जा से मानों पृथ्वी में धंस गये। किंतु जाम्बवान अपने स्वभाव के अनुकूल स्थिर ही रहे तथा राम की मनोदशा तथा वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास करने लगे। सुग्रीव राम की विचलित दशा देखकर स्वयं भी व्याकुल हो गये मानों उनके मर्म पर गहन आघात हुआ हो। विभीषण जो अपना धैर्य एवं स्थिरता बनाये हुए थे, आगे के कार्यक्रम के विषय में अपने हृदय में रूपरेख बनाने लगे। वातावरण में नीरवता व्याप्त हो गई। बाहर से सब शांत था किंतु भीतर ही भीतर सभाजनों के मध्य उत्तेजना का प्रसार एवं आंदोलन हो रहा था।

विशेष – 1. इस विश्व का इतिहाससिद्ध सत्य यही है कि शक्ति प्रायः उन्हीं के पास होती है जो अत्याचारी हैं दुष्ट हैं, अन्यायी हैं। निराला ने अपने जीवन में स्वयं इसी का अनुभव किया था। यही हर युग की विडम्बना है तथा इसका कोई व्यावहारिक हल नहीं है। इस सत्य को व्यक्त करती हुई निराला की यह कृति इस संदर्भ में युग प्रासंगिक एवं कालजयी सिद्ध हुई है।

2. राम स्वभाव से स्थिर हैं किंतु मानवीय दुर्बलतायें उनमें भी हैं। वे स्थितप्रज्ञ नहीं हैं वरन् इस समय निराशा एवं अवसाद से घिरे हुए हैं इसीलिए विभीषण के अत्यंत मनोवैज्ञानिक वचनों-तर्कों का भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ सका। यह राम के भीतरी अन्तर्द्वन्द्व की बाह्य स्थिति हैं अर्थात् अन्दर से संघर्ष करते हुए राम बाहर से अन्यमनस्क हैं, प्रतिक्रियाहीन हैं, चुप हैं।

3. युद्ध का स्वरूप बदल गया था जिसका अहसास केवल राम को हुआ था क्योंकि उन्होंने देखा था कि 'उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण'।

4. लक्ष्मण का क्रोधावेग एवं स्वभाव की उग्रता जगत्प्रसिद्ध है। कवियों ने उग्रता के प्रतीक के रूप में लक्ष्मण को मानकर उसे लाक्ष्मण्य भी कहा है।

5. पात्रों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं एवं अनुभावों के चित्रण द्वारा कवि ने प्रायः सभी पात्रों के चरित्र की विशेषताओं एवं स्वभाव-वैभिन्नय पर थोड़ा सा प्रकाश डाला है।

6. पृथ्वी में धंस जाना मुहावरे का प्रयोग कवि ने हनुमान की शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाओं को अभिव्यक्त करने के कारण किया है।

7. कवि ने अत्यंत सरल एवं प्रवहमान भाषा में पात्रों के मनोभावों एवं प्रतिक्रियाओं को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। राम के अनुभाव विशेष दर्शनीय हैं

8. अलंकार – विरोधाभास – मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम, अन्याय
जिधर है उधर शक्ति
विशेषण-विपर्यय – चमका लक्ष्मण तेजः प्रचण्ड
उत्प्रेक्षा – ज्यों हो वे शब्द मात्र, हुआ उर में ज्यों विषम घाव
निश्चित–सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम
पुनरुक्ति – छल-छल
विशेषोक्ति – जैसे ओजस्वी शब्दों ---- न हो कोई दुराव।

13. निज सहज रूप में ------------------------ मैं हुआ त्रस्त।

शब्दार्थ – संयत = स्थिर। दैवी विधान = ईश्वर का नियम। योजित = संधान किया। शर-निकर = बाणों का समूह। निशित = तीक्ष्ण। संसृति = संसार। शत-शुद्धि-बोध = पूर्णतः शुद्ध ज्ञान। क्षात्र धर्म का धृत पूर्णाभिषेक = क्षात्र धर्म के पालन करने का पूर्ण संकल्प। श्रीहत = शोभा से रहित। समवृत्त = रोकना। वह्नि = अग्नि। वामा = नारी।

प्रसंग – विभीषण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए पूर्व प्रसंग में राम स्पष्ट कर चुके थे कि समर का स्वरूप पूर्ववत् नहीं रहा। उसके बाद अपनी पराक्रम शिथिलता-सम्बंधी संदेह का निवारण करते हुए जो दृश्य आज उन्होंने रणभूमि में देखा उसका वर्णन करते हैं –

व्याख्या – कुछ क्षण के मौन के बाद जानकी को प्रेम करने वाले राम प्रकृतिस्थ हुए तथा अपने सहज रूप में कहने लगे - मुझे नियति का यह विधान समझ में नहीं आया। मेरी यह धारणा थी कि महाशक्ति पुण्यकर्मी का साथ देती हैं। फिर यह विपरीत स्थिति कैसे उत्पन्न हो गई। रावण जो अधर्म अत्याचार में लिप्त रहता है महाशक्ति उसका साथ दे रही हैं और पुण्य मार्ग का अनुयायी होने पर भी मैं उनके लिए पराया बन गया हूँ। यह मेरे भाग्य की विडम्बना ही तो है। अब यह युद्ध न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म आदि का नहीं रहा। अब तो यह महाशक्ति का क्रीड़ास्थल मात्र है जहां न्याय एवं धर्म की विजय की आशा नहीं की जा सकती। अब तो शंकर भगवान ही सहायता करें।

आज मैं समर में बार-बार अपने तीक्ष्ण से तीक्ष्ण बाण-समूहों का संधान करता रहा। ये मेरे सभी बाण ऐसे दिव्य एवं अपार तेजयुक्त हैं जिनमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर विजय पा लेने की क्षमता है। इतना ही नहीं इनमें संसार के प्राणियों की रक्षा का शुभ उद्देश्य भी विद्यमान है तथा पापों को नष्ट करने वाली क्षात्रधर्मी संस्कृति का अपार गौरव निहित है। ये सभी दिव्य बाण अत्यंत शुचिता का बोध एवं मन के गहनतम विवेक को भी धारण करते हैं तथा क्षात्रधर्म की रक्षा का पूर्ण संकल्प लिए हुए हैं। प्रजापतियों ने अपने संयमयुक्त तपोबल से इनकी रक्षा की है। दिव्य, पवित्र, अपार मंत्रबल से युक्त ये अविजित बाण जिनका प्रयोग सदैव पुण्य रक्षा एवं पाप-विनाश, सद्संस्कृति के उत्थान के लिए किया गया है, आज युद्ध-क्षेत्र में निस्तेज एवं टुकड़े-टुकड़े हो गये।

इसका कारण जानने के लिए जब मैंने सामने देखा तो पाया कि स्वयं महाशक्ति रावण को अपनी गोद में लिए बैठी हैं तथा उसकी रक्षा कर रही है। श्यामवर्णी रावण को गोद में लिए शुभ्रवर्णा महाशक्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे चन्द्रमा अपने लांछन को लेकर बिना किसी लज्जा एवं भय के आकाश में विचरण कर रहा हो। वे मेरे द्वारा छोड़े गये मंत्रपूत बाणों को बीच में ही बार-बार रोककर नष्ट कर रहीं थीं। उनके समक्ष मेरे तीव्र गति वाले सभी प्रहार लक्ष्य अर्थात् रावण तक पहुंचते ही विफल हो रहे थे। अपनी वानर-सेना को व्याकुल देखकर मैं क्रोध में भर कर जब भी युद्ध के लिए प्रवृत्त होता, उसी क्षण महाशक्ति के नेत्रों से भड़कती हुए ज्वालायें निकलती प्रतीत होतीं। इसके बाद उन्होंने अत्यंत तीव्र दृष्टि से मेरी ओर देखा जिससे मैं सम्मोहित हो गया। मेरे हाथ मानो बंध गये जिस कारण मैं अपने धनुष का फिर संचालन न कर सका। विचित्र बंधन के इस अनुभव ने मुझे असमर्थ बना दिया तथा मुझमे एक आतंक का भाव भर दिया।

विशेष – 1. इस उद्धरण में कवि ने राम के दिव्यशरों की विशेषताओं को बताते हुए परोक्ष में राम के चरित्र की गरिमा का उल्लेख किया है। यहाँ राम का मूल आत्मविश्वास भी अभिव्यक्त हुआ है।

2. कवि ने इस अंश में जानकी-प्राण पद का प्रयोग किया है। यह पद पिछले उद्धरण में राम के प्रति आक्षेप 'हस्त खींच रहे जानकी से निर्दय' का प्रत्युत्तर है जहाँ कवि यह बताना चाहता है कि जानकी राम को अब भी प्राणों से प्रिय है। बहुव्रीहि समास से जानकी प्राण का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

307 अर्थ भी है - जानकी प्राण है जिनकी। इस प्रकार उस अर्थ व्यंजना द्वारा विभीषण द्वारा लगाये गये आरोप का निराकरण किया गया है।

3. शिव-शिव, राम-राम आदि शब्द युग्म आदि वाक्यों का प्रयोग प्रायः सामान्य व्यवहार में आश्चर्य और दुःख को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। इसी भाव से अभिभूत राम के द्वारा यहाँ कवि ने शंकर-शंकर शब्द-युग्म का प्रयोग करवाया है। इस प्रकार यह युग्म जहाँ काव्य में नाटकीयता का समावेश करता है, वहीं राम के हृदय की व्याकुल स्थिति एवं असहायता की व्यंजना भी प्रभावपूर्ण ढंग से करता है।

4. महाशक्ति का रंग श्वेत माना गया है। नवदुर्गा में काली को छोड़कर अन्य सभी दुर्गा स्वरूपों का वर्ण गौर है। अतएव कवि ने यहाँ शक्ति की तुलना चन्द्रमा से तथा रावण की तुलना चन्द्र-लांछन से की है। साथ ही शक्ति देवी हैं, शुभ हैं, सात्विक वृत्तियों का साकार रूप हैं और रावण तामसी वृत्तियों का प्रतीक है। इस दृष्टि से भी यह उपमा उपयुक्त है।

5. महाशक्ति ने रावण जैसे महापापी को आश्रय देकर स्वयं को ही लांछित किया था, इस तथ्य का भी परोक्ष वर्णन कवि ने इस दृष्टांत द्वारा किया है।

6. क्षिप्र वार पर वार में चित्रात्मकता है, बाणों के त्वरित वेग से संधान करने का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

7. उपयुक्त शब्द चयन, प्रसंगानुरूप भाषा शैली, कठोर वर्णों के प्रयोग द्वारा इस अंश में उदात्तता का समावेश हुआ है।

8. इस दृश्य में करुण एवं भय के भावों का संयोग हुआ है।

9. अलंकार – विरोधाभास – रावण, अधर्मरत भी अपना, मैं हुआ अपर, मुक्त ज्यों बंधा मैं
दीप्सा – शंकर शंकर, ज्यों-ज्यों, त्यों-त्यों
अनुप्रास – शरनिकर निशित, समर शंकर शंकर, संसृति सम्पूर्ण, शत-शुद्धि
विषम, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा – देखा है महाशक्ति रावण को लिए अंक / लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक
विशेषोक्ति – करता मैं योजित श्रीहत खण्डित ध्वन्यर्थ व्यंजना झक झक झलकती वहि।

14. कह हुए भानुकुलभूषण ------------ जहाँ भी होगा भय।

शब्दार्थ – भानुकुल भूषण = सूर्य वंश की गरिमा। अशुद्ध = पापी। महावाहिनी = विशाल सेना। विश्वस्त = आत्मविश्वास से पूर्ण। पुरुष-सिंह = अत्यंत पराक्रमी। वरो = प्राप्त करो। संयत प्राणों से प्राणों पर = अपनी प्राण शक्ति द्वारा रावण की प्राणशक्ति को परास्त करो।

प्रसंग – जब राम ने अपनी निराशा का वास्तविक कारण प्रकट किया तो जाम्बवान जो अत्यंत बुद्धिमान थे, राम को ढांढस बंधाते हुए उन्हें उपाय बताते हैं।

व्याख्या – युद्ध में विजय के प्रति संदेह एवं उसके कारणों को प्रकट कर सूर्यवंश की गरिमा के प्रतीक राम क्षण भर के लिए जब मौन हुए, तब स्थिति को समझते हुए जाम्बवान आत्मविश्वास के साथ राम को समझाने लगे – हे राम, इस सब स्थिति के होते हुए भी आपके हताश होने का कोई उचित कारण नहीं है। आप व्यर्थ ही चिंताकुल हो रहे हैं। आप तो

पुरुष के रूप में स्वयं सिंह हो जिसका पराक्रम अतुलनीय है। आप स्वयं उसी युक्ति से काम लें जिससे रावण आपको हरा रहा है। आप भी इस शक्ति को धारण करें। रावण ने महाशक्ति को भौतिक बल से नहीं वरन् पूजा-अर्चना से प्रसन्न किया है। आपको भी इसका उत्तर उससे अधिक दृढ़ एवं गहन आराधना से देना चाहिए। तुम उसकी आराधना पर अपनी सात्विक आराधना द्वारा विजय प्राप्त कर सकोगे। रावण तो पापी दुराचारी है, तामसी प्रवृत्तियों का प्रतीक है जब वह पामर होकर भी महाशक्ति की सहायता से आपको आतंकित कर सकता है तो आप तो अपनी सात्विक प्रवृत्तियों की आराधना द्वारा उसका नाश भी कर सकते हैं। आप परम्परा को छोड़कर मौलिक एवं नवीन भाव से महाशक्ति की परिकल्पना एवं उनकी साधना करें और जब तक आपकी साधना का लक्ष्य पूर्ण न हो, आप युद्ध क्षेत्र में न जायें। तब तक हमारी विशाल सेना का नेतृत्व केन्द्र में स्थित रहकर लक्ष्मण करेंगे। दक्षिण पार्श्व का संचालन अंगद करेंगे तथा श्वेत उनके सहायक होंगे। भालुओं की सेना का संचालन मैं करुंगा। वामपार्श्व के अधिनायक हनुमान रहेंगे तथा नल नील तथा अन्य सामान्य वानर वीर उनके सहायक रहेंगे। सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य योद्धागण, जहाँ भी हमारा सैन्य बल दुर्बल होगा, रक्षा के लिए पहुंच जायेंगे।

विशेष – 1. इस बंध में कवि का उद्देश्य निहित है। संसार समर में लड़ने के लिए शक्ति की मौलिक कल्पना अनिवार्य है क्योंकि यह हर युग का सत्य है – 'अन्याय जिधर, है उधर शक्ति'। अतएव नवीन मार्ग आत्मबल का संचयन करना ही होगा।

2. इस प्रसंग में देशकाल के प्रभाव भी निहित है। स्वतंत्रतापूर्व जब जनशक्ति के आधार पर सामूहिक सत्याग्रह आंदोलन असफल हुआ था तो गांधी जी ने आत्मबल का आह्वान कर व्यक्तिगत आंदोलन का प्रयास किया था।

3. जाम्बवान राम की सेना के अनुभवी वयोवृद्ध योद्धा एवं कुशल रण-संचालक थे। उनके द्वारा राम की अनुपस्थिति में युद्ध संचालन के लिए व्यूह रचना की पूरी योजना प्रस्तुत कर देना तर्कसंगत तो हैं ही, साथ ही स्वाभाविक भी है।

4. राम का कथन है कि अब युद्ध का स्वरूप बदल चुका है। उसी का उत्तर देते हुए जाम्बवान ने भी उपाय प्रस्तुत किया है कि राम भी युद्ध अब भौतिक स्तर पर न करके, आध्यात्मिक स्तर पर ही लड़ें। तथा परामर्श देते हैं कि शक्ति की मौलिक कल्पना करें।

5. 'पुरुष सिंह' का प्रयोग कवि ने यहाँ विशेषतः किया है क्योंकि सिंह महाशक्ति का वाहन है तथा जाम्बवान इस समय उन्हें महाशक्ति की उपासना का परामर्श दे रहे हैं। और राम तो पुरुष सिंह हैं ही जिसका अर्थ है अतीव पराक्रमी वीर।

6. भाषा भावानुकूल एवं सहज है तथा व्यास शैली के प्रयोग से भावों की कुशल अभिव्यक्ति की गई है।

7. अलंकार – रूपक – पुरुषसिंह
अनुप्रास – भानुकुल भूषण, नल नील, यूथपति यथासमय प्राणों से प्राणों पर।

15. खिल गई सभा ------------------ करुँगा अभिनन्दित।

शब्दार्थ – इन्दीवर-निन्दित = नीलकमल को भी लज्जित करने वाला। मज्जित = निमग्न। महिषासुर = एक बलवान असुर जिसका वध महादुर्गा ने किया था। मर्दित = चूर किया

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

हुआ। जनरंजन = संसार को आनंद देने वाला। प्रतीक = परिचय चिन्ह। अभिनन्दित = पूजित। निष्पलक भाव = पूर्णतः।

प्रसंग – जाम्बवान राम की सेना के सर्वाधिक बुद्धिमान सेनापति थे। अतएव उनके द्वारा बताया गया उपाय अपितु निर्णय सभी को मान्य हो गया जो तर्कसंगत भी था।

व्याख्या – जाम्बवान् का यह प्रस्ताव सुनकर अवसादग्रस्त हुई सभा प्रफुल्लित हो उठी। राम ने कहा – हे भल्लनाथ जाम्बवान, आपके द्वारा बताया गया यह परामर्श उत्तम है। इस प्रकार राम ने वृद्ध जाम्बवान के समक्ष मस्तक झुकाते हुए आभार प्रकट किया। फिर हृदय में कुछ विचार करते हुए पुनः ध्यानस्थ हो गये। सभा के सभी गण राम की ओर निहार रहे थे तथा पुनः आशान्वित होने के कारण उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे। कुछ समय बाद कमल की कोमलता को भी लज्जित करने वाले नेत्र खुल गए। किंतु अभी भी वे पूर्णतः किसी भाव में निमग्न थे। शांत एवं संयमित स्वर में राम आत्मविश्वास के साथ कहने लगे – हे माता, हे दशभुजाधारिणी, हे विश्व की ज्योति। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करें। आपकी शक्ति से बिद्ध होकर दुराचारी महिषासुर का गर्व चूर-चूर हो चुका है तथा आपके भक्तों के मन को प्रसन्न करने वाले चरणरूपी कमलों के नीचे गर्जन करता सिंह है जो आपकी सेवा का सौभाग्य पाने के कारण धन्य है। यह सिंह ही मेरा प्रतीक है। हे माता, मुझे संकेत मिल गया है। क्षत्रिय होने के नाते मैं भी पुरुष सिंह हूँ तथा इसी भाव से मैं आपकी आराधना करुंगा। अर्थात् सिंह पराक्रमी भी है तथा देवी का शरणागत भी। इसी प्रकार राम भी देवी-पूजा करने का संकल्प लेते हैं।

विशेष – 1. पिछले प्रसंग में जाम्बवान ने राम को पुरुष-सिंह कहकर साधना के मार्ग का संकेत दे ही दिया था। राम स्वयं दुर्गा के स्वरूप की कल्पना कर तथा उनके वाहन सिंह को देखकर इस संकेत का अर्थ समझ जाते हैं तथा सिंह भाव से महाशक्ति की आराधना का संकल्प लेते हैं। यह निराला की मौलिक भावमय उद्भावना है।

2. जाम्बवान के परामर्श को सुनने तथा उस पर विचार करने के बाद राम की मनः स्थिति में जो परिवर्तन हुआ कवि ने उसका अंकन कुशलता से मनोवैज्ञानिक स्तर पर किया है।

3. कवि ने वक्र शैली का प्रयोग करते हुए बहुव्रीहि समास द्वारा 'इन्दीवर निन्दित लोचन' का प्रयोग किया है – इन्दीवर जिसके द्वारा निन्दित है वे लोचन।

4. महादेवी के स्वरूप का ध्यान करते हुए राम ने उनके दशभुजाधारिणी, महिषासुरमर्दिनी आदि विशेषणों का कथन किया है। निराला कुछ समय बंगाल में रहे थे जहाँ देवी पूजा विशेष प्रचलित है। निराला के ध्यान में देवी का यही स्वरूप रहता था।

5. मातः एवं जनरंजन शब्दों से देवी के वात्सल्यसिक्त शरणागतवत्सल रूप का स्मरण राम करते हैं। राम उनकी सिंह वाहिनी दुर्गा के रूप में कल्पना कर रहे हैं जबकि रावण ने देवी के श्यामा स्वरूप की पूजा करके उन्हें अपने पक्ष में किया है। इसी प्रकार राम देवी के सात्विक वृत्तियों के प्रकाशपुंज का रूप स्मरण करते हैं तथा उनके द्वारा आसुरी शक्तियों के हनन का भी ध्यान करते जाते हैं। इस प्रकार राम देवी की सात्विक रूप में शक्ति की नवीन रूप में कल्पना करते हैं।

6. अलंकार – व्यतिरेक – इन्दीवर निन्दित लोचन
उपमा – चरण-कमल
विशेषण-विपर्यय – निष्पलक भाव।

16. कुछ समय स्तब्ध ---------------------- हो रहा खर्व।

शब्दार्थ – कमल-ज्योतिर्दल = ज्योतिकमल की पंखुड़ियों के समान। ध्यान-लग्न = विचारों में लीन। स्मित आनन = मुस्कुराता हुआ मुख। भाव = भाव में डूबे हुए। चन्द्रमुख-निन्दित = जिनका मुख चन्द्रमा के मुख सौंदर्य को भी लज्जित करने वाला है। स्वर मेघमन्द्र = मेघ के समान गंभीर ध्वनि वाली वाणी। शत-हरित-गुल्म-तृण = सैंकड़ों हरी औषधियों एवं वनस्पतियों। मकरन्द बिंदु = पराग कण। चरण-प्रान्त = पैरों के पास। सिन्धु = सागर। दशदिक = दशों दिशायें। शशिशेखर = भगवान शंकर। महाभाव-मंगल = कल्याण के महत् भाव। खर्व = नष्ट।

प्रसंग – राम को अपनी विजय प्राप्ति का उपाय मिल गया था। हृदय से माता दुर्गा की आराधना करते हुए वे कुछ विचार मग्न हुए।

व्याख्या – कुछ समय तक राम दुर्गा देवी के रूप की उस छवि में भावतल्लीन रहे। फिर उन्होंने अपने ध्यानोन्मीलित पलकों को खोला तथा उस क्षण ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ज्योति कमल की पंखुड़ियां खुलकर प्रकाश विकीर्ण कर रही हों। समक्ष बैठे हुए सभी मन्त्री, सेनापति आदि इस बात को लक्षित कर रहे थे कि वीरासन में बैठे राम का वही मुखमण्डल जो कुछ क्षण पहले विषादयुक्त था शिथिल हो रहा था। इस क्षण वह मुस्कान से सुशोभित एवं आंतरिक भाव से विह्वल दिखाई पड़ रहा था। उसी प्रकार भाव में लीन रहते हुए चन्द्रमा के सौंदर्य को भी लज्जित करने वाले रामचन्द्र प्राणों में सात्विक उल्लास से परिपूर्ण होकर मेघ जैसे गंभीर स्वर में कहने लगे - हे बन्धु, नाना प्रकार की हरित श्यामल बूटियों एवं वनस्पतियों से सुशोभित जो यह पर्वत सामने खड़ा है वह पर्वतपुत्री पार्वती का ही साकार रूप है। इसके पुष्पों से पराग के कण झर रहे हैं जो माता के स्नेह का रूप हैं। इस चरण स्थल पर जो सागर गर्जन करता हुआ तरंगित हो रहा है वह मानों सागर नहीं अपितु भयंकर गर्जन करता सिंह ही है। दशों दिशाओं का प्रसार उनकी दस भुजाएं हैं तथा उनके ऊपर जो चन्द्रमा को धारण करता शून्य आकाश है मानो स्वयं चन्द्रमा को धारण करने वाले दिगम्बर भगवान शंकर हैं। इस महान भाव, महान मूर्तिमयी शुभ कल्पना को देखकर मेरे मानवमन का जड़मय गर्व मानों उसी प्रकार नष्ट हो रहा है जिस प्रकार असुर महिषासुर महाशक्ति के पददलित होकर मर्दित हुआ है।

विशेष – 1. कवि ने 'पार्वती कल्पना है इसकी' का प्रयोग किया है। यहाँ दृष्टव्य है कि कवि ने देवी के विभिन्न नामों में से पार्वती का ही चयन किया है जो पर्याय वक्रता का सुन्दर उदाहरण है। पर्वत के संदर्भ में पार्वती का प्रयोग सार्थक है क्योंकि वे पर्वत कन्या हैं। इसके साथ हरीतिमा के रूप में पार्वती का हरित दुकूल, मकरंद कणों के रूप में देवी के नेत्रों से स्नेहबिन्दुओं का झरना, समुद्र के रूप में उनके वाहन सिंह का गरजना, दशों दिशाओं का उनकी दस भुजाओं के रूप में परिकल्पना आदि द्वारा कवि ने अष्टभुजा दुर्गा की मूर्ति के पूरे स्वरूप का प्रतीकात्मक वर्णन कर दिया है।

2. इस अंश में प्रस्तुत यह कल्पना-चित्र अत्यंत मौलिक एवं उदात्त है। इस प्रकार के विराट एवं उदात्त बिंबों के कारण ही इस कविता को महाकाव्यात्मक प्राण से युक्त माना गया है।

3. कवि ने यहाँ छायावादी मानवीकरण की प्रवृत्ति का अत्यंत सुन्दर एवं मनोरम प्रयोग किया है। छायावादी सौंदर्य चेतना का अद्भुत उदाहरण यह अंश है।

4. मकरन्द बिंदु में छायावाद की अर्धव्यक्त अभिव्यंजना शैली का अवलम्ब लिया गया है

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

जिसका अर्थ व्यक्त करने के लिए पाठक को अपनी कल्पना भी दौड़ानी पड़ती है।

5. चन्द्रमुखनिन्दित में पुनः बहुब्रीहि समास का प्रयोग किया है। वस्तुतः निराला की वक्र शैली के लिए तत्समास से अधिक बहुब्रीहि समास ही उपयोगी है।

6. फिर खोले पलक कमल ज्योतिर्दल-ध्यानमग्न में कवि राम की योगसाधना का भावी संकेत करता है। अंतस्थ ज्योतिकमल पर ही अन्तर्दृष्टि केन्द्रित कर योगी साधना करता है।

7. महाकवि केशव दास ने भी पंचवटी वर्णन में पार्वती को बाह्य प्रकृति के रूप में प्रस्तुत किया है यद्यपि उनके बिंब में चमत्कार-प्रवृत्ति अधिक है तथापि तुलनीय है :-

"भौंहे सुरचाप चारु अमुदित पयोधर
भूषण तड़ित ज्योति रलित रलाई है।
दूरि करी मुख-सुख-सुषमा ससी की नैन
अमल कमल-दल दलिन निकाई है।
केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अम्बर बलित पति मोहै नीलकण्ठ जू की
कालिका कि बरषा हरखि हिय आई है।"

8. अलंकार – रूपक – पलक कमल ज्योतिर्दल, मन का असुर मंद
व्यतिरेक – चन्द्रमुखनिन्दित
मानवीकरण – सामने स्थित जो यह भूधर पार्वती कल्पना है
अपहुति – गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह नहीं सिंधु
अनुप्रास – प्राणों में पावन, शशि शेखर, समस्त हैं हस्त
सभंगपद यमक – अम्बर में हुए दिगम्बर
उपमा – दशदिक समस्त हैं हस्त
परिकरांकुर – पार्वती।

17. फिर मधुर दृष्टि -------------------- सोचते हुए विजय।

शब्दार्थ – सत्वर = शीघ्र। अवगत = परिचित। प्रभु-पद-रज = प्रभु के पैरों की धूलि। सदय = राम। देवीदह = लंका में एक कुंड जिसमें नीलकमल लगते थे।

प्रसंग – रामचन्द्र ने देवी की आराधना करने का निश्चय किया तथा पूजा-अर्चना के लिए नीलकमल लाने का दुष्कर कार्य महाबली हनुमान को सौंप दिया।

व्याख्या – राम ने मन में आराधना का संकल्प ले लिया। तत्पश्चात् उन्होंने प्रिय सेवक हनुमान को अपनी मधुर स्नेहसिक्त दृष्टि का संकेत कर उन्हें बुलाया। उनकी दृष्टि का संकेत समझने वाले हनुमान आकर्षित से निकट चले आये। राम ने उन्हें दृष्टि से भी अधिक मधुर एवं स्नेहपूर्ण वाणी में आदेश दिया जिसे सुन कर हनुमान रससिक्त एवं विह्वल हो उठे। राम ने कहा – हनुमान हमें पूजा आराधना के लिए कम से कम एक सौ आठ कमल चाहिएं। यदि अधिक मिल सकें तो अच्छा है। ये कमल देवीदह नामक कुंड से प्राप्त होंगे, प्रातःकाल होते ही तुम वहाँ शीघ्र जाकर कमल तोड़कर ले आना तथा वापिस आकर युद्ध में लड़ने के लिए तत्पर हो जाना। हनुमान जी ने आदेश प्राप्त कर जाम्बवान से यह ज्ञात किया कि देवीदह तक जाने का मार्ग कौन-सा है, वह कितनी दूर तथा कहाँ पर स्थित है। फिर राम की चरणधूलि मस्तक पर धारण कर अत्यंत उल्लास के साथ हनुमान ने प्रस्थान किया।

सबके विश्राम का समय जानकर राम ने भी सभाजनों को विदा किया। वे सभी दयानिधि राम की विजय की कामना करते हुए अपने-अपने शिविर की ओर चल पड़े।

विशेष – 1. कवि ने इस पूजा में कमल के स्थान पर इन्दीवर अर्थात् नीलकमल का उल्लेख किया है क्योंकि देवी की पूजा नील कमलों से ही की जाती है।

2. प्रारंभ की पंक्तियों में राम का चरित्र दृष्टव्य है। राम की दृष्टि ही मधुर एवं स्नेहपूर्ण नहीं है, उनकी वाणी उससे भी अधिक प्रिय एवं मधुर है जो भक्तों के हृदय को परम आनन्द का आस्वाद देती है।

3. 'कम से कम, अधिक और हों, अधिक और सुन्दर' इस पंक्ति में अंग्रेजी के वाक्य दि मोर दि मैरियर की ध्वनि है।

4. सदय का अर्थ दयालु है तथा यह राम के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है तथा यदि इसे क्रियाविशेषण के रूप में देखा जाये तो सब चले सोचते हुए सदय/ राम की विजय के रूप में प्रयुक्त होगा और यहाँ इसका अर्थ राम के प्रति सभाजनों का संवेदनाभाव होगा।

5. भाषा में नाटकीय त्वरा दर्शनीय है। अत्यंत सहजता एवं स्वाभाविकता इस पद्य की सरल शब्दावली का गुण है।

6. अलंकार – अनुप्रास – अधिक और हों अधिक और
श्लेष – सदय।

18. निशि हुई विगत ------------------------ रहे हैं पूरा कर।

शब्दार्थ – विगत = समाप्त। महिमा-ज्योति-हिरण = स्वर्ण ज्योति के समान तेजयुक्त। शरासन = धनुष। निविड़-जटा-दृढ़-मुकुट-बंध = घनी जटाओं को कसकर बांध कर सिर पर धारण करना। गुणग्राम = गुणों का समूह। समाराधन = उपासना। इष्ट = देवी। क्रम-क्रम से = एक के बाद एक। निरलस = आलस्यरहित। पुरश्चरण = सिद्धि के निमित्त किये जाने वाले मंत्र =जाप।

प्रसंग – इस अवतरण में कवि ने हनुमान द्वारा कमल लाने का दृश्य आदि छोड़ दिया है तथा वह सीधे राम की आराधना के प्रारंभ एवं विभिन्न चरणों का वर्णन प्रारंभ कर देता है।

व्याख्या – रात्रि का समय बीत गया। आकाश के मस्तक पर पूर्व दिशा में सूर्य की प्रथम रश्मि प्रस्फुटित हुई और इधर आराधना के संकल्प में रत राम के नेत्रों में तेजस्विता से मंडित स्वर्णमयी ज्योति विकीर्ण होने लगी। आज राम योगी साधक के वेश में हैं उनके हाथों में आज धनुष नहीं है न ही कन्धों पर तरकश लटका है। आज उनके मस्तक पर घनी केश-जटाओं को कसकर बांधा गया मुकुट बंध भी सुशोभित नहीं हो रहा। निकट ही क्षेत्र से जहाँ युद्ध हो रहा है वहाँ योद्धाओं का सिंहगर्जन एवं युद्ध में होने वाला भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। किंतु आज राम के मन को कुछ भी विचलित नहीं कर रहा। वे आज साधक की भांति देवी के ध्यान में मग्न शांत एवं निश्चल हैं। पूजा-अर्चना के पश्चात् राम दुर्गा के दशभुजा आदि नामों का जाप कर रहे हैं तथा प्रत्येक नाम के गुणसमूहों का भी मन में स्मरण करते जाते हैं। साधना का प्रथम दिवस व्यतीत हुआ और राम का हृदय देवी के चरणों में केन्द्रित होने लगा और उनकी आराधना अधिक से अधिक गहरी होने लगी। इस प्रकार पूजा-आराधना करते हुए राम के पांच दिवस एक-एक करके व्यतीत हो गये और इसके साथ उनका हृदय योग

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

310 चक्रों को एक के बाद एक आरोहित करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बिना आलस्य बढ़ता रहा। प्रत्येक जप पूरा करने के बाद वे एक इन्दीवर देवी के चरणों में अर्पित कर देते हैं और इस प्रकार अपना अनुष्ठान पूरा कर रहे हैं।

विशेष – 1. यहाँ पर द्रष्टव्य है कि काव्य का प्रारंभ रवि हुआ अस्त से हुआ था अर्थात् निराशा का प्रारंभ तथा है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार में निराशा के निविड़तम हो जाने का अंकन किया गया था। अब जब राम को उपाय मिल गया है तो आशा रूपी प्रभात के आगमन का संकेत कवि निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण इन शब्दों द्वारा करता है।

2. प्रकृति एवं मानवीय भावों का सुन्दर समन्वय प्रथम दोनों पंक्तियों में द्रष्टव्य है। प्रसादजी ने भी कामायनी के आशा सर्ग में उषा के आगमन एवं मनु के हृदय में उगती आशा का तादात्म्य उपस्थित किया है –

"उषा सुनहले तीर बरसती
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अन्तर्निहित हुई।"

3. कवि ने राम को मन में नामों के गुणग्राम की गणना करते हुए दर्शित किया है। क्योंकि कबीर ने कहा भी है –

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि
मनुआ तो दस दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नांहि।"

और इसीलिए कवि ने राम को एकाग्रचित्त होकर जाप करते दिखाया है।

4. राम ने योगसाधना का मार्ग अपनाया है इसलिए वे चक्र से चक्र को पार करते हुए ऊर्ध्वगमन करते जाते हैं। इस साधना में साधक अपनी कुंडलिनी को जागृत करता है तथा वह शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों को पार करती हुई अन्त में सहस्रार में पहुंचती है। वहाँ पहुंचते ही साधक को अनहद नाद सुनाई पड़ता है, सहस्रदल कमल से अमृत झरने लगता है तथा साधक तुरीयावस्था में पहुंचकर परमानन्द की अनुभूति करता है। योगतंत्र में सात चक्र माने गये है – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार।

5. उंगली पर गणना करने वाले जाप को कर-जाप कहा जाता है।

6. कवि ने यहाँ पर योगसाधना के साथ साथ नवधा भक्ति की ओर भी संकेत किया है जिसमें चिन्तन, मनन, गुण-कीर्तन, जाप, नाम-स्मरण आदि सम्मिलित हैं।

7. निशि हुई विगत.....महिमा-ज्योति-हिरण में प्रतीकात्मक बिंब का प्रयोग किया गया है जो दृश्य-साम्य पर आधारित है। पूरे बंध में चित्रभाषा का भावव्यंजक प्रयोग हुआ है।

8. **अलंकार** – मानवीकरण – निशि हुई विगत नभ के ललाट पर प्रथम किरण
रूपक – महिमा-ज्योति-हिरण
उल्लेख – है नहीं शरासन ------ स्तब्ध सुधी है ध्यान धार
यमक – मन करते हुए मनन, कर-जप पूरा कर
अनुप्रास – दुर्गा दशभुजा, स्तब्ध सुधी है ध्यान धार, गहन से गहनतर
पुनरुक्ति – क्रम-क्रम
वीप्सा – चक्र से चक्र।

19. चढ़ षष्ठ दिवस ------------------------- प्रिय इन्दीवर।

शब्दार्थ – आज्ञा = हठयोग का आज्ञा चक्र जो भृकुटियों के मध्य स्थित है। समाहित = स्थित। द्विदल = दो दल वाले कमल के आकार-रूपी आज्ञा चक्र। निष्पन्द = निश्चल। अतिक्रम = पार करना। समारब्ध = कष्ट एवं बाधायें। द्विप्रहर रात्रि = रात के दूसरे पहर में।

प्रसंग – राम सात्विकता, धर्म एवं न्याय के प्रतीक हैं। इसलिए जब वे कठोर आराधना करते हैं तो उनका एकाग्रचित्त ध्यानस्थ मन शीघ्र ही सभी चक्रों को एक-एक करके पार करने लगता है।

व्याख्या – छठे दिन राम का ध्यानमग्न हृदय आज्ञा चक्र पर स्थित हो गया। राम की आराधना इतनी गहन हो गई थी कि उनके प्रत्येक जाप के प्रभाव से मानों ब्रह्माण्ड ही उनके हृदय में समाहित होने के लिए खिंच कर आने लगा। दो दल वाले कमल के आकार वाले आज्ञा चक्र जो त्रिकुटी पर स्थित होता है, पर अवस्थित ध्यान देवी के चरणों में तल्लीन हो गया था। राम के गहन जप के स्वरों से स्वयं आकाश थर-थर कंपित होने लगा। इस प्रकार देवी के नामों का स्मरण एवं जाप करते हुए तथा उन्हें इन्दीवर अर्पित करते हुए दो दिन तक राम एक ही आसन पर निश्चल बैठे रहे।

यह तप का आठवां दिवस था और राम का ध्यानावस्था में लीन हृदय ऊर्ध्व की ओर आरोहित होता जा रहा था यहाँ तक कि वह ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की ईश्वरीय सीमाओं का भी अतिक्रमण कर गया, उनसे भी अधिक महत्तम को प्राप्त कर गया। राम के इस तप से सम्पूर्ण सृष्टि उनके वश में हो गई। इस गहन समाराधन को देखकर देवता भी आश्चर्य विमग्न हो उठे। अब केवल एक ही अति दुर्गम चक्र सहस्रार रह गया था जिसे पार करने के लिए राम का हृदय संकल्पबद्ध हो अपने उस लक्ष्य को निहार रहा था। जप को पूरा करने के लिए राम के पास नीलकमल भी एक ही रह गया था। तभी अचानक रात के दूसरे प्रहर में जब राम जप में लीन थे, दुर्गा साक्षात् प्रकट हुई तथा पूजा का अत्यावश्यक अंतिम नीलकमल उठाकर हंसती हुई इस प्रकार ले गई मानों उनकी परीक्षा लेना चाहती हों।

विशेष – 1. राम की साधना में कवि ने योगसाधनामूलक तत्त्वों को जोड़कर अपनी विशिष्ट बहुज्ञानी मानसिकता का परिचय दिया है।

2. ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर में सामान्य अर्थ के अतिरिक्त योगशास्त्र में इसका अर्थ सुषुम्ना नाड़ी में स्थित तीन ग्रंथियाँ – ब्रह्म, विष्णु एवं रुद्र – से है। जब साधक प्राणवायु को सुषुम्ना नाड़ी में संचरित करता है तो ये तीनों ग्रंथियां नष्ट हो जाती हैं तथा कुंडलिनी का ब्रह्मरंध्र तक अबाध प्रसार हो जाता है।

3. सहस्रार · यह सातवां एवं अंतिम चक्र है। सहस्रदल कमल के आकार का यह चक्र कपाल में उलटा लटका रहता है। इसी में सृष्टि, स्थिति और लय का परिबिन्दु रहता है।

4. कवि ने देवी दुर्गा के कमल चुराने में 'हंसकर' पद का प्रयोग उनके विनोद भाव को दर्शाने के लिए किया है।

5. अंतिम पंक्तियों में फलागम से पूर्व महाशक्ति द्वारा कमल को चुरा लिये जाने का दृश्य अंकित कर कवि ने नाटकीय अनिश्चय (ड्रैमेटिक सस्पेंस) का प्रयोग किया है जो उसके नाटकीय कौशल का परिचायक है।

6. द्विदल शब्द पंक्ति में कुछ इस प्रकार रख गया है कि उससे अनेक अर्थ ध्वनित होने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लगते हैं। आज्ञा चक्र दो दल वाले कमल के आकार का है अर्थात् द्विदल। देवी के दो चरण मानों कमल की दो पंखुड़ियां थे अतः द्विदल देवी-चरण।

7. पार शब्द में श्लेष है। मन देखता पार पढ़ने पर अर्थ होगा मन अपने लक्ष्य के उस पार देखता है। तथा मन देखता पार प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार की पंक्ति में इसका अर्थ होगा कि मन लक्ष्य की ओर देखता हुआ सहस्रार नामक दुर्गम चक्र को पार करने को उद्यत हुआ।

8. दुर्ग शब्द का सार्थक प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है। दुर्ग दुर्गम शब्द से उत्पन्न है अतः इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है जहां कठिनाई से पहुंचा जा सके। सहस्रार भी ऐसा ही चक्र है साधना की ऐसी ही अंतिम एवं कठिनतम अवस्था है जिस तक पहुंचना अत्यंत कठिन है।

9. 'खिंच-खिंच' में वीप्सा अलंकार प्रयुक्त है किंतु इससे अधिक आकर्षक है इसमें से ब्रह्माण्ड के धीरे-धीरे राम के हृदय में आकर्षित होने की क्रमिक गति का आभास।

10. **अलंकार** – ध्वन्यर्थ-व्यंजना – थर-थर-थर
मानवीकरण – लगा कांपने थर-थर-थर अम्बर
श्लेष – द्विदल, पार
अनुप्रास – द्विदल देवी पद पर।

20. यह अन्तिम जप ---------------- प्रिया का हो न सका।

शब्दार्थ – चरण युगल = देवी के दोनों चरण। असिद्धि = साधना भंग होना। द्वय = दोनों। शोध = खोज। धिक् = धिक्कार।

प्रसंग – राम के अन्तिम जाप करने से पूर्व दुर्गा अन्तिम नीलकमल चुपचाप उठाकर ले गई। ध्यानमग्न राम को इस बात का पता न चला।

व्याख्या – साधना पूर्ण करते हुए राम ने अन्तिम जप पूर्ण किया तथा देवी के दोनों चरणों में ध्यान लगाये हुए जैसे ही राम ने नीलकमल उठाने के लिए अभ्यासवत् हाथ बढ़ाया तो उनको वहाँ कुछ न मिला। इस बाधा का अनुभव कर उनके चित्त की एकाग्रता सहसा भंग हो गई। उनकी ध्यानावस्था सहसा भंग हो गई तथा कारण जानने के लिए उन्होंने अपने उज्जवल नेत्र खोल कर देखा तो पाया कि स्थान रिक्त पड़ा है अन्तिम कमल अपने स्थान पर नहीं है। यह बड़ी विषम स्थिति थी और राम के लिए यह नियति की विडम्बना भी थी क्योंकि यह जप को पूर्ण करने का समय था। इस क्षण आसन छोड़कर उठने से साधना असफल हो जाती। इस द्विविधापूर्ण स्थिति में राम का हृदय शोकाकुल हो उठा तथा वे परिताप कर उठे मेरे इस जीवन को धिक्कार है जिसमें सदैव ही बाधाओं एवं कठिनाइयों का ही सामना करना पड़ा। धिक्कार है मेरे सभी उपायों एवं साधनों को जिनका संधान मैं इनसे संघर्ष करने तथा इनसे छुटकारा पाने के लिए करता रहा। आज सब कुछ व्यर्थ हो गया क्योंकि मैं पुरुष होकर अपनी पत्नी जानकी की रक्षा भी न कर सका।

विशेष – 1. राम के व्यक्तित्व में उनके आत्मप्रलाप में कवि की अपनी जीवन-गाथा मुखरित हुई है। सरोज स्मृति में कवि ने कई स्थानों पर नियति-विडम्बना पर शोक व्यक्त किया है –

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

वनवेला में भी कवि ने इसी प्रकार के उद्गार व्यक्त किये हैं –

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार।

2. निराला की यह विशेषता है कि वे दुःखों का विवरण नहीं देते वरन् एक ही कथन द्वारा गागर में सागर भर देते हैं। सरोज स्मृति में केवल दुख ही जीवन की कथा रही कहते हैं अपने दुःख का बखान वे नहीं करते।

3. इसी बंध को देखते हुए डा. रामविलास शर्मा ने कहा है कि राम के मानसिक संघर्ष का चित्र जितना प्रभावशाली बन पड़ा है उतना विजय का नहीं। स्वयं निराला की विजयकामना अन्त तक अपूर्ण ही रही है। राम के माध्यम से निराला ने अपने ही मन की ग्लानि, अनुताप, संघर्ष एवं व्यथा को व्यक्त किया है।

4. इस बंध में रस की पूर्ण स्थिति है क्योंकि भट्टतौत के अनुसार जब नायक कवि और श्रोता की चेतना का तादात्म्य हो जाता है तभी रस की पूर्ण स्थिति होती है

नायकस्य कवेः श्रोतुः समानोनुभवस्ततः

5. भाषा राम की मनोस्थिति के अनुरूप है तथा उनके आन्तरिक भावों को उनके अन्तःप्रलाप को व्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ है।

6. अंग्रेजी साहित्य में फलागम के समय विपरीत स्थिति को आइरनी कहते हैं जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति यहाँ पर हुई है। यह अन्तिम जप कह कर कवि फलागम की प्राप्ति का संकेत कर ही रहा होता है कि देखा वह रिक्त स्थान यह जप का पूर्ण समय। और साथ ही आसन छोड़ना असिद्धि, इसका ध्यान कर राम के नयन द्वय विवशता के अश्रुओं से भर गये।

7. **अलंकार** – विरोधाभास – हुआ सहसा स्थिर मन चंचल।

21. वह एक और मन ------------------ मातः एक नयन।

शब्दार्थ – दैन्य = दीनता। मायावरण = माया का जाल। हतचेतन = चेतना रहित। प्रमन = प्रसन्नता। मन्द्रित = गंभीर स्वर में। राजीवनयन = कमल जैसे नेत्र हैं जिसके। पुरश्चरण = अनुष्ठान।

प्रसंग – राम का मानवीय दौर्बल्ययुक्त मन अपनी असफलता के लिए प्रलाप कर रहा था किंतु उनका अवचेतन मन जो इस साधना से अत्यंत ऊंचाई तक पहुंच गया था, जो अब भी जागरूक था उसे इस विषम स्थिति का सामना करने का उपाय सूझ गया।

व्याख्या – राम की अन्तःचेतना उनके चेतन मन की निराशा, पराजय-अवसाद से मुक्त थी। इस अवचेतन मन ने न कभी दीनता का अनुभव किया और न ही किसी विशाल विपत्ति में भी अवनत हुआ। उसने तत्काल देवी द्वारा आच्छादित माया के जाल को बेध दिया तथा उस पर विजय पाता हुआ बिजली की-सी त्वरित गति से बुद्धि के अधिष्ठान आज्ञा चक्र पर आरुढ़ हो गया। इसी से संज्ञाहीन हो रहे राम के मन में एक नये भाव तथा बाल्यकालीन स्मृति का उदय हुआ। इस युक्ति को पाकर वे पुनः चेतनायुक्त होकर प्रसन्न हो गये। वे मेघ के समान गंभीर स्वर में बोले कि इस समस्या का समाधान मुझे मिल गया है। मेरी माता मुझे बाल्यकाल में सदैव राजीवनयन कहा करती थी। इस प्रकार मेरे पास दो नीलकमल मेरे नेत्रों के रूप में अभी भी शेष हैं। अतएव इनमें से एक नेत्र को महाशक्ति को अर्पित करके इस अनुष्ठान को पूरा कर सकता हूँ।

विशेष – 1. आधुनिक मनोविज्ञान के नवीनतम सिद्धांतों में चेतन मन के अतिरिक्त

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

312

अवचेतन मन की परिकल्पना भी शामिल है। अवचेतन मन हमारी छठी इन्द्रिय है जो सदैव सक्रिय रहती है।

2. कवि का मानना है मानव मन अपराजेय है, वह अपनी सात्विक शक्ति से हर बुराई पर विजय पा सकता है। एक अन्य स्थल पर तो उसने मानव को ही ब्रह्म तक मानकर उसे सर्वशक्तिमान कहा है

तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता।
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार।

3. यहां पर एक मनोवैज्ञानिक तथ्य और भी द्रष्टव्य है कि यदि एक मां परीक्षा ले रही है तो दूसरी मां उपाय बता रही है। वात्सल्य का यह परम भाव अनन्य है। इसीलिए कवि ने महाशक्ति के लिए देवी शब्द का प्रयोग न कर मातः का ही प्रयोग किया है क्योंकि मां का प्रत्युत्तर मां ही दे सकती है।

4. कवि ने थका एवं विनय शब्दों का रुढार्थ से अलग प्रयोग किया है। थका का सामान्य वाच्यार्थ है क्लान्त होना, किंतु लोक भाषा में इसे हारने के संदर्भ में भी प्रयुक्त किया जाता है तथा यही अर्थ यहाँ लिया गया है। इसी प्रकार विनय - विनम्रता के अर्थ में प्रयुक्त होता है किंतु यहाँ उसका शब्दार्थ नत होना, झुकना ही ग्रहण करना चाहिए।

5. कवि ने प्रसाद गुण से युक्त भावों को अभिव्यंजित करने के लिए समासविहीन सरल भाषा का प्रयोग किया है।

6. गोस्वामी तुलसीदास ने स्मृति को स्वाति के समान माना है, यथा –

"हृदय सिन्धु मति सीप सनाना।
स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।"

अर्थात् हृदय यदि सागर है तो मति उसमें समाई सीप की भांति है जिसके भीतर सरस्वती अथवा स्मृति स्वाति की भांति रहती हैं, ऐसा ज्ञानियों का कहना है।

7. **अलंकार** – उत्प्रेक्षा – कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन
स्मरण – कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन
रूपक – बुद्धि के दुर्ग, दो नीलकमल हैं शेष अभी
यमक – माता – यह कौशल्या माता के लिए प्रयुक्त हुआ है
मातः – यह महाशक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है
अतिशयोक्ति – वह एक और मन रहा राम का जो न थका
व्यतिरेक – कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।

22. कह कर देखा ———— राघव का हस्त थाम।

शब्दार्थ – ब्रह्मशर = ब्रह्ममंत्रों से अभिपूत बाण। महाफलक = विशाल फलक वाला। लक-लक करता = जगमगाता हुआ। वाम कर = बायें हाथ में। दक्षिण कर = दायें हाथ में। उद्यत = तत्पर। सुमन = प्रसन्न हृदय से। त्वरित = शीघ्र। धर्म-धन = धर्म का साकार रूप।

प्रसंग – राम ने अपने नीलकमल के समान एक नेत्र को अर्पित कर अपनी साधना पूरी करने का संकल्प धारण कर लिया तथा इस कार्य के लिए वे तुरंत उद्यत हो गये।

व्याख्या – यह निश्चय करके राम ने अपने तरकश की ओर देखा जिसमें ब्रह्ममंत्रों से अभिषिक्त बाण चमक रहा था। उन्होंने दिव्य तेज से जगमगाते उस ब्रह्मास्त्र के तीक्ष्ण महाफलक को अपने हाथ में उठा लिया। उस बाण को अपने बायें हाथ में पकड़ा तथा दायें हाथ से दायीं आँख को सहारा दिया। इस प्रकार वे प्रसन्न मन से उस नेत्र को अर्पित करने को तैयार हो गये। जैसे ही वे दृढ़ निश्चय के साथ अपना नेत्र बेधने को हुए, उसी क्षण ब्रह्माण्ड कंपित हो उठा तथा देवी शीघ्रता से साकार रूप में राम के समक्ष प्रकट हो गई। उन्होंने नेत्रविच्छेदन को तत्पर राम के हाथ को थाम लिया तथा उन्हें साधुवाद देती हुई कहने लगीं – हे धैर्यशाली साधक, तुम अत्यंत महान हो, तुम ही धर्म के प्राण हो उसकी रक्षा करने वाले हो। हे राम, तुम वास्तव में धन्य हो।

विशेष – 1. किसी शुभ एवं पूजा के कार्य के लिए पुरुष द्वारा दायें अंगों से आहुति अर्पित की जाती है। इसीलिए राम ने अपने अनुष्ठान को पूर्ण करने के लिए दाहिने हाथ से दायीं आंख को पकड़ा तथा उसे अर्पण करने का उद्योग किया।

2. यहाँ कवि ने पूर्णतः नाटकीय त्वरा एवं कौतुहल का प्रयोग किया है। देवी का आगमन नाटकीयता के फलस्वरूप ही हुआ है। क्रियायें जल्दी-जल्दी घटित होने से वर्णन में गत्यात्मकता आ गई है।

3. अनुप्रास एवं वीप्सा अलंकारों का प्रयोग तथा ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा इस अंश में प्रभावोत्पादकता स्वयमेव आ गई है। ऐसा प्रतीत होता है मानों दृश्य का प्रसादन किसी मंच पर हो रहा हो।

4. यहाँ 'सुमन' शब्द से दो अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं - राम के अर्थ में प्रसन्न मन से तथा उनके नेत्र के अर्थ में नेत्रपुष्प से।

5. **अलंकार** – श्लेष – सुमन
पुनरुक्तिप्रकाश – लक-लक
अनुप्रास – दृग दृढ़; बंध गया बेधने को; साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य
रूपक – धर्म-धन
वीप्सा – साधु-साधु।

23. देखा राम ने ———— वंदन में हुई लीन।

शब्दार्थ – भास्वर = तेजस्वी। असुर-स्कन्ध = महिषासुर के कन्धों पर। वामपद = बायां पैर। हरि = सिंह। हस्त दश = दस हाथ। लख = देखकर। श्री = शोभा। रण-रंग-राग = युद्ध के राग से रंजित। पदपद्म = चरण कमल। प्रणत = नतमस्तक। वन्दन = स्तुति। पुरुषोत्तम = पुरुषों में श्रेष्ठतम। वदन = मुख।

प्रसंग – राम की परीक्षा पूरी होते ही दुर्गा साकार रूप में राम के समक्ष प्रकट हो गई तथा अपने सम्पूर्ण स्वरूप के उनको दर्शन दिये।

व्याख्या – महाशक्ति की वाणी सुनकर राम ने अपने सामने देखा तो पाया कि अत्यंत तेजस्वी आभा से मंडित श्री दुर्गा देवी स्वयं सामने विराजमान थीं। उनका बायां पैर महिषासुर के कंधे पर था तथा दायां पैर उनके वाहन सिंह की पीठ पर था। उनका वह रूप अत्यंत दिव्य प्रभा से सुशोभित था। उनके दस हाथ थे तथा वे सभी विविध अस्त्र-शस्त्रों द्वारा सुशोभित थे। उनके वात्सल्ययुक्त मुख पर मंद हास की रेखा थी। महादुर्गा के इस स्वरूप को देखकर सम्पूर्ण

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

विश्व की शोभा भी तुच्छ मालूम देती थी। महाशक्ति के दायीं ओर स्वयं विष्णु-पत्नी लक्ष्मी विराजमान थीं तथा बायीं ओर ब्रह्मा की अर्द्धांगिनी सरस्वती उपस्थित थीं। दक्षिण में लक्ष्मी के साथ महादेवी के कनिष्ठ पुत्र गणेश विद्यमान थे तथा बाईं ओर देवताओं के युद्धोत्साह के प्रतीक शूरवीर सेनापति तथा महाशक्ति के बड़े पुत्र कार्तिकेय सुशोभित थे। दुर्गा अपने मस्तक पर महाधिदेव शंकर को धारण किये हुए थीं। महाशक्ति के इस स्वरूप के दर्शन कर राम धन्य हो उठे तथा उनके चरणकमलों पर श्रद्धाभाव से नतमस्तक हो कर मन्द स्वरों में उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें विजय का आशीर्वाद दिया तथा कहा कि हे पुरुषों में श्रेष्ठ नये मानव, तुम्हारी विजय अवश्य होगी। यह कह कर महाशक्ति राम के मुख में विलीन हो गई।

विशेष – 1. निराला ने बंगाल में दुर्गा के महिषासुरमर्दिनी एवं महादुर्गा के स्वरूप की पूजा होते देखी थी। इसके साथ ही वे रामकृष्णपरमहंस की काली पूजा से भी अनुप्राणित थे। इस लिए वे त्रिदेवी के भास्वर रूप की कल्पना करते हैं जिसमें महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का संयोग है।

2. साधारणतः राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। किंतु परम्परा से हटकर कवि ने उन्हें देवी के मुख से पुरुषोत्तम नवीन कहलवाया है। कारण स्पष्ट है कि राम यहाँ विष्णु अवतार नहीं, अपितु साधारण मानव हैं जो अपने प्रयासों, कठोर तप-साधना एवं मौलिक परिकल्पना द्वारा उद्देश्य की सिद्धि करते हैं। इस प्रकार राम नये पुरुष के रूप में उभरते हैं जो सभी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं।

3. प्रायः पौराणिक कथाओं में देखा जाता है कि देवता वरदान देकर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, अपने लोक को वापिस चले जाते हैं। किंतु यहाँ निराला ने मौलिक उद्भावना की है। राम के मुख में देवी को लीन दिखाकर उनकी विजय सुनिश्चित कर दी है।

4. प्रथम पंक्ति में सामने शब्द का कवि ने अत्यंत कुशल प्रयोग किया है इसे 'देखा राम ने सामने' के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है तथा सामने श्री दुर्गा भास्वर के रूप में भी।

5. यहाँ कविता का अंत कवि ने बड़ी तीव्रता के साथ देवी के संवादों से राम को वरदान देते हुए कर दिया है। कवि का नाटकीय विधान सम्पूर्ण कविता में अत्यंत कुशल एवं क्षिप्र रहा है। 'रवि हुआ अस्त से आरंभ हुई कविता महाशक्ति के राम के वदन में लीन होते ही समाप्त हो जाती है।

6. इस कविता का कथानक सुखांत में परिणत हुआ है तथा ऐसी ही हमारी भारतीय साहित्य परम्परा रही है।

7. नाटकीय विधान के अनुरूप कवि ने चयनित शब्दावली का प्रयोग किया है। दुर्गा के भास्वर स्वरूप के लिए भास्वर शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। देवी के स्वरूपांकन के कारण सम्पूर्ण बंध में चित्रात्मकता है।

8. अलंकार – रूपक – पूरे बंध में
प्रतीप – मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित
अनुप्रास – रण-रंग-राग, पदपद्म
सभंगपद यमक – पद पद्म
परिकरांकुर – पुरुषोत्तम नवीन
वीप्सा – होगी जय होगी जय
मीलित – महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कुकुरमुत्ता : १

एक थे नव्वाब,
फ़ारस से मँगाये थे गुलाब !
बड़ी बाड़ी में लगाये
देशी पौधे भी उगाये
रखे माली कई नौकर
गजनवी का बाग़ मनहर
लग रहा था।
एक सपना जग रहा था
साँस पर तहजीब की,
गोद पर तरतीब की।
क्यारियाँ सुन्दर बनीं।
चमन में फैली घनी।
फूलों के पौधे वहाँ
लग रहे थे खुशनुमा।
बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी,
जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी,
चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास,
गेंदा, गुलदाऊदी, निवाड़ी, गन्धराज,
और कितने फूल, फ़व्वारे कई,
रंग अनेकों—सुर्ख, धानी, चम्पई,
आसमानी, सब्ज, फ़ीरोजी, सफ़ेद,
जर्द बादामी, बसन्ती, सभी भेद।
फलों के भी पेड़ थे,
आम, लीची, सन्तरे और फालसे।

चटकती कलियाँ, निकलती मृदुल गन्ध,
गले लगकर हवा चलती मन्द-मन्द
चहकते बुलबुल मचलती टहनियाँ,
बाग चिड़ियों का बना था आशियाँ।
साफ़ राहें, सरो दोनों ओर,
दूर तक फैले हुए कुछ छोर,
बीच में आरामगाह
दे रही थी बड़प्पन की थाह।
कहीं झरने, कहीं छोटी-सी पहाड़ी,
कहीं सुथरा चमन, नकली कहीं झाड़ी।

आया मौसिम, खिला फ़ारस का गुलाब,
बाग पर उसका पड़ा था रोबोदाब;
वहीं गन्दे में उगा देता हुआ बुत्ता,
पहाड़ी से उठे सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता—
"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रङ्गोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट !
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम;
हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर रखकर व' पीछे को भगा
औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर,
तबेले को टट्टू जैसे तोड़ कर,
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा
तभी साधारणों से तू रहा न्यारा।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

315

वरना क्या तेरी हस्ती है, पोच तू
काँटों ही से भरा है यह सोच तू
कली जो चटकी अभी
सूखकर काँटा हुई होती कभी।
रोज़ पड़ता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी।
चाहिए तुझको सदा मेहरुन्निसा
जो निकाले इत्र, रू, ऐसी दिशा
बहाकर ले चले लोगों को, नहीं कोई किनारा
जहाँ अपना नहीं कोई भी सहारा
ख्वाब में डूबा चमकता हो सितारा
पेट में डँड पेले हों चूहे, जबाँ पर लफ्ज़ प्यारा।

देख मुझको, मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे पर चढ़ा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं
क़लम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता
तू है नक़ली, मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक
तू रंगा और मैं धुला
पानी मैं, तू बुल्बुला
तूने दुनियाँ को बिगाड़ा
मैंने गिरते से उभाड़ा
तूने रोटी छीन ली जनखा बनाकर
एक की दी तीन मैंने गुन-सुनाकर !

काम मुझ ही से सधा है
शेर भी मुझसे गधा है।
चीन में मेरी नक़ल, छाता बना
छत्र भारत का वही, कैसा तना
सब जगह तू देख ले
आज का फिर रूप पैराशूट ले।
विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ।
काम दुनियाँ में पड़ा ज्यों, वक्र हूँ।
उलट ये, मैं ही जसोदा की मथानी
और भी लम्बी कहानी—
सामने ला, कर मुझे बेंड़ा
देख कैंड़ा
तीर से खींचा धनुष मैं राम का।
काम का—
पड़ा कन्धे पर हूँ हल बलराम का।
सुबह का सूरज हूँ मैं ही
चाँद मैं ही शाम का।
कलजुगी मैं ढाल
नाव का मैं तला नीचे और ऊपर पाल।
मैं ही डाँड़ी से लगा पल्ला
सारी दुनियाँ तोलती ग़ल्ला।
मुझसे मूँछें, मुझसे कल्ला
मेरे लल्लू, मेरे लल्ला
कहे रुपया या अधन्ना
हो बनारस या न्यवन्ना
रूप मेरा, मैं चमकता
गोला मेरा ही बमकता।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लगाता हूँ पार मैं ही
डुबाता मझधार मैं ही ।
डब्बे का मैं ही नमूना
पान मैं ही, मैं ही चूना ।
मैं कुकुरमुत्ता हूँ,
पर बेन्ज़ाइन (Benzoin) वैसे
बने दर्शनशास्त्र जैसे ।
ओम्फ़लस (Omphalos) और ब्रह्मावर्त
वैसे ही दुनियाँ के गोले और पर्त
जैसे सिकुड़न और साड़ी,
ज्यों सफ़ाई और माड़ी ।
कास्मोपालीटन् और मेट्रोपालीटन्
जैसे फ़्रायड् और लीटन् ।
फ़ेलसी और फ़लसफ़ा ।
जरूरत और हो रफ़ा ।
सरसता में फ़्राड्
केपीटल् में जैसे लेनिनग्राड
सच समझ जैसे रक़ीब
लेखकों में लण्ठ जैसे खुशनसीब ।

मैं डबल जब, बना डमरू
इकबग़ल, तब बना वीणा ।
मन्द्र होकर कभी निकला
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा ।
मैं पुरुष और मैं ही अबला ।
मैं मृदङ्ग और मैं ही तबला ।
चुन्ने खाँ के हाथ का मैं ही सितार ।

दिगम्बर का तानपूरा, हसीना का सुरबहार ।
मैं ही लायर, लीरिक मुझसे ही बने
संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन के जने
मंत्र ग़ज़लें, गीत । मुझसे ही हुए शैदा
जीते हैं, फिर मरते हैं, फिर होते हैं पैदा ।
वायलिन् मुझसे बजा
बेन्जो मुझसे बजा ।
घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल,
शङ्ख, तुरही, मजीरे, करताल,
कारनेट्, क्लेरीअनेट्, ड्रम, फ्लूट, गीटर,
बजानेवाले हसन खाँ, बुद्धू, पीटर,
मानते हैं सब मुझे ये बायें से,
जानते हैं दायें से ।
ताताधिन्ना चलती है जितनी तरह
देख, सब में जगी है मेरी निगाह ।
नाच में यह मेरा ही जीवन खुला
पैरों से मैं ही तुला ।
कत्थक हो या कथकली या बाल-डान्स,
क्लियोपेट्रा, कमल-भौंरा, कोई रोमान्स
बहेलिया हो, मोर हो, मणिपुरी, गरबा,
पैर, माथा, हाथ, गरदन, भौंहें मटका
नाच अफ्रीकन हो या यूरोपीयन,
सब में मेरी ही गढ़न ।
किसी भी तरह का हाव-भाव,
मेरा ही रहता है, सबमें ताव ।
मैंने बदले पैंतरे,
जहाँ भी शासक लड़े ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पर हैं प्रोलेटेरियन झगड़े जहाँ,
मियाँ-बीबी के क्या कहना है वहाँ।
नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं ब्याज डुचता,
नाच मेरा क्लाइमेक्स को पहुँचता।

नहीं मेरे हाड़, काँटे, काठ या,
नहीं मेरा बदन आठोगाँठ का।
रस-ही-रस मैं ही रहा
सफ़ेदी को जहन्नम रो कर रहा।
दुनियाँ में सबने मुझी से रस चुराया,
रस में मैं डूबा-उतराया।
मुझी में गोते लगाये वाल्मीकि-व्यास ने
मुझी से पोथे निकाले भास-कालिदास ने।
टुकुरु-टुकुरु देखा किये मेरे ही किनारे खड़े
हाफ़िज-रवीन्द्र जैसे विश्वकवि बड़े-बड़े।
कहीं का रोड़ा कहीं का पत्थर
टी० एस० एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने भी जिगर पर रखकर
हाथ, कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा।'
ज्यादा देखने को आँख दबाकर
शाम को किसी ने जैसे देखा तारा।
जैसे प्रोग्रेसीव का क़लम लेते ही
रोके नहीं रुकता जोश का पारा।
यहीं से यह कुल हुआ
जैसे अम्मा से बुआ।
मेरी सूरत के नमूने पीरामीड्
मेरा चेला था यूक्लीड्।

रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर,
जगन्नाथ, जितने मन्दिर सुन्दर
मैं ही सबका जनक
जेवर जैसे कनक।
हो कुतुबमीनार,
ताज, आगरा या फ़ोर्ट चुनार,
विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता
मस्जिद, बगदाद, जुम्मा, अलबत्ता,
सेन्ट पीटर्स गिरजा हो या घण्टाघर,
गुम्मदों में, गढ़न में मेरी मुहर।
एरियन हो, पर्शियन या गाथिक आर्च
पड़ती है मेरी ही टार्च।
पहले के हों, बीच के या आज के
चेहरे से पिद्दी के हों या बाज के।
चीन के, फ़ारस के या जापान के
अमेरिका के, रूस के, इटली के, इंगलिस्तान के।
ईंट के, पत्थर के हों या लकड़ी के
कहीं की भी मकड़ी के।
बुने जाले जैसे मकां कुल मेरे
छत्ते के हैं घेरे।
सर सभी का फाँसने वाला हूँ ट्रेप
टर्की टोपी, दुपलिया या किश्ती-केप।
और जितने, लगा जिनमें स्ट्रा या मेट,
देख, मेरी नक्ल है अँगरेज़ी हेट।
घूमता हूँ सर चढ़ा,
तू नहीं, मैं ही बड़ा।"

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

4.(आ) | कुकुरमुत्ता | व्याख्या भाग

कुकुरमुत्ता : 1

1. एक थे नवाब ------------------ नक़ली कहीं झाड़ी।

शब्दार्थ – बाड़ी = उद्यान। तहज़ीब = शिष्टता। तरतीब = व्यवस्था, ढंग। आशियाँ = घोंसला, घर। सरो = एक पेड़ विशेष का नाम। आरामगाह = विश्राम करने का स्थान। सुथरा = स्वच्छ।

प्रसंग – निराला के प्रसिद्ध व्यंग्य-काव्य 'कुकुरमुत्ता' से ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं। यह कविता भाव, विषय एवं भाषा की दृष्टि से स्वयं निराला की पूर्वलिखित छायावादी कविताओं से पूर्णतः भिन्न है। कहना न होगा कि साहित्य के क्षेत्र में इसकी रचना एक क्रान्तिकारी शुरुआत थी। उद्धृत अंश में कवि ने कविता का प्रारंभ करते हुए एक नवाब के उद्यान का वर्णन किया है –

व्याख्या – एक नवाब थे जो फूलों के बेहद शौकीन थे। उन्होंने फारस से गुलाब मंगाकर अपने विशाल उद्यान में लगवाये। गुलाब के साथ देसी पौधों को भी लगाया गया था तथा इनकी देखभाल के लिए कई माली एवं नौकरों को नियुक्त कर रखा था। उनके परिश्रम से नवाब साहब का उपवन फारस की राजधानी गजनवी के उद्यान के समान मनोहारी एवं सुन्दर प्रतीत होता था। नवाब साहब के उद्यान की सभ्यता के प्रसार एवं व्यवस्था के ढंग से मानो कोई सुन्दर स्वप्न साकार हो रहा था। विभिन्न पौधों की क्यारियों को करीने से बनाया गया था जो घनी होकर पूरे उपवन में फैल रही थीं। फूलों के पौधे तो और भी सुन्दर लग रहे थे। इनमें बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास, गेंदा, गुलदाऊदी, निवांड़ी, गंधराज तो थे ही, और भी अनेक प्रकार के पुष्प यत्र-तत्र खिले हुए थे। कई रंगों की फुहार वाले फव्वारे भी वहां सुशोभित हो रहे थे जिनमें लाल, धानी, चम्पई, आसमानी, हरा, फ़ीरोजी, श्वेत, पीला, बादामी, बसन्ती आदि विभिन्न प्रकार के रंग बिखर रहे थे। इतना ही नहीं, इस उद्यान में फलों के तरुवर भी थे जिनमें आम, लीची, सन्तरे और फालसे के पेड़ प्रमुख थे।

इस उद्यान में कलियाँ पुष्प रूप में विकसित होने से पूर्व चटखने की मधुर ध्वनि करती थीं तथा उनसे सब ओर सुकोमल गन्ध का प्रसार होता था। इस सुगन्ध को अपने साथ लेकर हवा मन्द गति से मदमस्त होकर बहती थी। झूमती हुई शाखाओं पर बुलबुल मधुर कलरव करती

थीं। यह सुन्दर उद्यान कई चिड़ियों का घर बन गया था। इस उद्यान में स्वच्छ आवागमन-पथ भी बनाये गये थे जिनके दोनों ओर सरो के पेड़ लगे हुए थे। यह उद्यान बेहद विशाल एवं विस्तृत था तथा दूर-दूर तक फैला हुआ था। इसके बीच में विश्राम करने के लिए स्थल भी विद्यमान था जो नवाब साहब के बड़प्पन को प्रकट कर रहा था। इस सौंदर्य को बढ़ाने के लिए कहीं छोटी-सी पहाड़ी भी बनाई गई थी जिनमें से झरने बह रहे थे। कहीं स्वच्छ पुष्पों वाला उपवन था तो कहीं पर कृत्रिम झाड़ियों को भी लगाया गया था।

विशेष – 1. कविता का प्रारंभ कथा-कथन शैली में हुआ है तथा अंश का विस्तार वस्तु-परिगणनात्मक शैली द्वारा किया गया है। वस्तु-परिगणना से कवि के ज्ञान का ही नहीं वरन् प्रकृति सम्बंधी उसके रुझान का भी परिचय मिलता है।

2. कुकुरमुत्ता व्यंग्यात्मक कविता है। इस अंश के द्वारा कवि ने व्यंग्यात्मक पृष्ठभूमि तैयार की है जिसका प्रसार अगले अंश में होता है।

3. नवाब के ऐश्वर्य-विलास का वर्णन इसमें किया गया है तथा व्यंग्य के तौर पर ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं –

एक सपना जग रहा था
साँस पर तहज़ीब की,
गोद पर तरतीब की।

4. यह पद सांकेतिक बिंब का उदाहरण भी है।

5. छायावादी कविता की भाषिक प्रकृति से भिन्न इस अंश में उर्दू व फारसी के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

6. दो-दो पंक्तियों में ध्वनियुक्त तुकान्त का प्रयोग किया गया है तथा कविता में मुक्त छन्द के प्रयोग से अभिनव सौष्ठव का समावेश हुआ है।

7. नवाब के बाग में विभिन्न पुष्पों, रंग-भरे फव्वारों तथा फलों के पेड़ों के वर्णन में चाक्षुष बिंब है।

8. 'चटकती कलियाँ ---- हवा चलती मन्द-मन्द' में छायावादी काव्यात्मकता उभरती है।

9. बेला, जुही और नरगिस पर कवि का प्रेम छायावादी काव्य में प्रकट हो चुका था, किन्तु इस यथार्थवादी कविता में भी वह इन्हें विस्मृत नहीं करता।

10. **अलंकार** – उल्लेख – पूरे बंध में

अनुप्रास – बड़ी बाड़ी; सांस पर तहज़ीब की, गोद पर तरतीब की;
कितने फूल, फव्वारे कई

मानवीकरण – गले लगकर हवा चलती मन्द-मन्द;
मचलती टहनियाँ

पुनरुक्ति – मन्द-मन्द।

2. आया मौसिम ------------------------------ लफ़्ज़ प्यारा।

शब्दार्थ – रोबोदाब = प्रभाव, धाक। बुत्ता = दम। कुकुरमुत्ता = यह एक किस्म का बिना फूल पत्तियों वाला पौधा है जो छतरी के आकार का होता है और वर्षा के दिनों में गीली लकड़ी पर प्रायः अपने आप कहीं भी उग जाता है। रंगोआब = रंग एवं चमक। अशिष्ट = असभ्य, बदतमीज़। केपीटलिस्ट = पूँजीपति। जानिब = समान, भांति। तबेला = पशुओं के रहने का

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

319

स्थान। न्यारा = अलग। पोच = कायर। मेहरुन्निसा = जहांगीर की पत्नी नूरजहां का एक अन्य नाम। ज़बाँ = वाणी। लफ़्ज़ = शब्द।

प्रसंग — उद्धृत अंश में कवि ने व्यंग्यात्मकता का प्रारंभ किया है वह कुकुरमुत्ता के माध्यम से गुलाब के आभिजात्य को ललकारना शुरु करता है —

व्याख्या — जब पुष्पों के खिलने का मौसम आया तो फारस से नवाब द्वारा मंगाया गया गुलाब विकसित हो गया। उसके अनुपम सौंदर्य का दबदबा पूरे बाग पर छा गया था। उसके समक्ष अन्य फूलों की आभा फीकी पड़ रही थी। उसी क्षण वहीं पास ही गन्दगी में उगा हुआ एक कुकुरमुत्ता धृष्टता से सिर उठाकर गुलाब को फटकारते हुए, ललकारते हुए कहने लगा — अरे गुलाब! सुन ले, तूने आज खुशबू भी पाई है, तुझमें रंगों की आभा है और सौंदर्य की चमक है किंतु यह सच्चाई विस्मृत करने की चेष्टा कभी मत कर कि ये गुण प्राप्त करने के लिए तुझ जैसे असभ्य ने खाद का रक्त शोषण किया है। यह अन्याय करने के बाद तू अब पूँजीपतियों की भांति अपने सौंदर्य पर गौरवान्वित हो रहा है, तुझे तो लाज आनी चाहिए। अपनी देखभाल के लिए तूने कितने गरीबों को अपना गुलाम बनाया, उन्हें माली बनाकर रखवायां, और अपने आराम, अपने रूप को बनाये रखने के लिए उन्हें सर्दी एवं गर्मी सहने पर विवश किया। अरे तू तो वह मुसीबत है कि जिसके भी हाथों में आ जाता है, वह स्त्रियों की भांति मैदान छोड़कर अत्यंत तीव्रता से भागता चला जाता है। तुझे पाने वाला उसी प्रकार दुःखी होकर भागता है जैसे अस्तबल की रस्सी तोड़कर घोड़ा भाग निकलता है। यहां कवि का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार अमीर व्यक्ति के दुर्व्यवहार से परेशान होकर गरीब आदमी अपनी आजीविका भी छोड़कर डरकर भाग जाता है, उसी प्रकार गुलाब में कांटे होने के कारण उसके रूप एवं गन्ध से आकर्षित व्यक्ति भी कांटों से भयभीत हो जाता है। चूँकि तू शहंशाहों, राजाओं तथा अमीर वर्ग के लोगों का प्रिय पुष्प रहा है इसीलिए तू अन्य पुष्पों को साधारण समझ उनसे अलग रहा है, विशिष्ट बना रहा है। किन्तु अगर तू इनका प्रिय न होता तो वास्तव में तेरी औकात ही क्या है, तेरा तो अस्तित्व भी संभव नहीं है क्योंकि तू आत्मनिर्भर न होने के कारण कायर है, निर्बल है। कांटों के अलावा तेरी पूँजी और है ही क्या, तूने कभी इस सत्य पर भी विचार किया है। अभी-अभी जो तेरी यह कली चटक कर विकसित होने लगी है, यह तो कभी की सूखकर तेरे कांटों में शामिल हो चुकी होती यदि इसको प्रतिदिन जल का पोषण नहीं मिलता। लेकिन तू यह बात नहीं समझेगा क्योंकि तेरे अन्दर अभिमान है स्वाभिमान नहीं, क्योंकि तेरी कलमें लगती हैं, स्वयं जड़भूत नहीं होता और इसीलिए तू सदैव बिना पितृकुल का रहा है। तेरे अंधे अहंकार का यह हाल है कि तुझे हर क्षण कोई मेहरुन्निसा चाहिए जो तेरे चारों ओर घूमे और तुझसे प्यार जताती हुई इत्र और रुहें प्राप्त करती रहे। अर्थात् तू सदैव विलासप्रिय लोगों के ऐश्वर्य और आराम का साधन ही रहा है। यह वास्तव में ऐसी दिशा है जिसने लोगों को पतन की लहरों में बहाया है तथा ऐसी लहरों के लिए कोई किनारा भी नहीं होता। ऐसी हालत में अपना भी कोई नहीं होता और न ही किसी का आश्रय ही मिल पाता है। ऐसे लोग इस स्थिति में पहुँच जाते हैं कि सुख एवं साधनों के सितारे केवल उनके स्वप्नों में ही रह जाते हैं लेकिन फिर भी वे लोग अपने ऐश्वर्य की ऊंची-ऊंची बातें करते रहते हैं, अपने झूठे आभिजात्य का ही प्रदर्शन करते रहते हैं चाहे उन्हें खाने को भी ठीक से नहीं मिलता और क्षुधातुर होने के कारण उनके पेट में चूहे कूद रहे होते हैं।

विशेष — 1. इस अंश से कवि का व्यंग्य प्रारंभ होता है। गुलाब के सौंदर्य और पूँजीपतियों

के आभिजात्य और ऐश्वर्य के पीछे खाद की रक्त-शोषण और गरीबों के हाड़-तोड़ परिश्रम की सच्चाई को खोलता है। इस प्रकार वह गुलाब के माध्यम से पूँजीपति वर्ग को फटकारता है, उनका कायरपन दिखलाता हैं।

2. कुछ लोगों ने इसे साम्यवादी विचारधारा से सम्बंधित माना है.किंतु वस्तुतः इस व्यंग्य के पीछे निराला जैसे मानवतावादी कवि के हृदय की करुणा है जो निर्धन तथा उपेक्षित वर्ग के लिए है; जो पहले भी उनके काव्य में बहती रही है।

3. कुकुरमुत्ता की भाषा को देखने से आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का कथन स्मरण हो आता है — 'भाषा के सम्बंध में पंवित्रतावादी दृष्टि निराला की नहीं है।' देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों के अनुकूल प्रयोग हैं। यहां भाषिक संरचना के दो रूप द्रष्टव्य हैं — फ़ारस के गुलाब का अंकन फारसी-उर्दू शब्दों के आभिजात्य में हुआ है और नगण्य कुकुरमुत्ता शब्दों के ठेठ प्रयोग से सजीव हो उठा है।

4. इसमें 'हरामी' जैसी गाली का प्रयोग भी मिलता है जो वास्तव में कलात्मक सुरुचि के उपयुक्त कदापि नहीं है किंतु अभी तक गुलाब को अशिष्ट, केपीटलिस्ट, पोच जैसे संयत शब्दों से फटकारने वाला कुकुरमुत्ता कब तक संयत रहता। वास्तव में यह शब्द सर्वहारा वर्ग की हीनग्रंथियुक्त आक्रोश का प्रतीक है।

5. 'अबे, सुन बे, गुलाब' में छायावादी मसृणता से पूर्णतः भिन्न भाषा नये तेवर के साथ मानो सीना तान के खड़ी हुई है।

6. इस अंश में मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया गया है — उठे-सर फेंक कर, खून चूसना, मैदान छोड़ना, पैर सिर पर रखना, वरना क्या तेरी हस्ती है, सूखकर काँटा होना, पेट में डँड पेले हों चूहे।

7. 'पेट में डँड पेले हों चूहे, ज़बाँ पर लफ़्ज़ प्यारा' — इस मुहावरे का प्रयोग कवि ने सोद्देश्य किया है। यह मानव-जीवन का यथार्थ है कि उसके पास चाहे कुछ भी न हो किंतु वह बातें ऊँची-ऊँची ही करता है।

8. कवि ने सामान्यजन-प्रचलित भाषा से उपमाओं को ग्रहण किया है जो नवीन हैं, अद्भुत हैं और सटीक भी।

9. अलंकार — मानवीकरण — पूरे अंश में
उपमा — औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर
दृष्टांत — तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर
वक्रोक्ति — वरना क्या तेरी हस्ती है।

3. देख मुझको, मैं बढ़ा —————— गोला मेरा ही बमकता।

शब्दार्थ — बालिश्त = उँगली भर। कौलिक = शाक्त धर्म का अनुयायी जो वामाचार द्वारा देवी दुर्गा की पूजा करता है। ज़नख़ा = नपुंसक। वक्र = टेढ़ा। बेंड़ा = तिरछा। कैंड़ा = नक्शा बनाने वाला उपकरण। अधन्ना = पुराना दो पैसे का सिक्का।

प्रसंग — गुलाब की वास्तविकता एवं उसके शोषक रूप को दिखाने के बाद कुकुरमुत्ता अपने विषय में बताना प्रारंभ करता है —

व्याख्या — अभी तू मुझे देखता रह क्योंकि अभी तो मेरा विकास और हो रहा है। मेरी ऊँचाई डेढ़ उंगली और भी बढ़ गई है। मैं स्वयं से उगा हूँ मुझे किसी ने उगाया नहीं है, न ही

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

किसी ने मुझे पालन पोसने की मेहनत की है। इस प्रकार मैं बिना दाने-पानी के पला हूँ। तेरी भांति मेरा कलम नहीं लगता अर्थात् टहनियाँ काट कर मुझे पैदा नहीं किया जा सकता। बल्कि मैं ऐसा अस्तित्व हूँ जो अपने आप उत्पन्न होता है तथा व्याप्त होता है। कुकुरमुत्ता गुलाब से तुलना करते हुए कहता है कि तू जड़हीन, परजीवी होने के कारण नकली है तथा मैं आत्मनिर्भर होने के कारण मौलिक हूँ, स्वरचित हूँ। इसी प्रकार तू निरीह बकरा है और मैं तुझे मारकर बलि चढ़ाने वाला तांत्रिक हूँ। तू रंगों से भरा हुआ है, तेरा असली रूप स्पष्ट नहीं है किंतु मैं श्वेत धुला हुआ हूँ, जो कुछ हूँ सबके सामने हूँ। मैं जल का विस्तार हूँ और तू मात्र बुलबुला है जिसका अस्तित्व क्षणिक होता है। तूने अपने रंग दिखाकर दुनिया को बिगाड़ा है, गलत पथ पर चलाया है और मैंने पतनोन्मुख लोगों को सही राह पर लगाया है। तूने लोगों को नपुंसक बनाकर उनकी जीविका भी बन्द करा दी तब मैंने परिश्रम के गुणों तथा उनके स्वाभिमान का गान कर उन्हें पुनः आजीविका पाने को प्रेरित किया।

अब कुकुरमुत्ता अपने विश्वव्यापी महत्त्व को प्रतिपादित करता है। वह कहता है कि दुनिया भर के काम उसी के कारण होते हैं और इसी कारण शेर जैसे शक्तिशाली जीव भी उसकी तुलना में गधे की भांति हीन हो जाते हैं। चीन में उसके आकार की ही नकल से छाते का आविष्कार हुआ और भारत में उसी आकार के छत्र का निर्माण हुआ जो राजा-महाराजाओं के सिरों पर तना रहता है। तू हर स्थान पर मेरा रूप देख सकता है। आधुनिक युग में आविष्कृत पैराशूट के रूप में मैं ही हूँ। विष्णु का सुदर्शन चक्र मैं ही हूँ जिसने जब भी दुनिया में आवश्यकता पड़ी, वक्र रूप में चालित हुआ और दुष्टों का नाश किया है। मुझे उलट के देख, तुझे मुझमें जसोदा की मथानी नज़र आयेगी। लेकिन मेरी कहानी इतनी ही नहीं है, आगे भी सुन। मुझे सामने लाकर तिरछा करके रख -- मुझमें तू नक्शा बनाने वाला उपकरण देखेगा। मैं ही वह धनुष हूँ जिसे राम ने बाण-संधान करते हुए खींचा था तथा असुरों का संहार करने के कारण मैं अत्यंत काम का और महत्त्वपूर्ण हूँ। इतना ही नहीं, मैं बलराम के कन्धे पर पड़ा हल भी हूँ जिससे किसान जमीन जोतने का काम भी लेते हैं। मेरा महत्त्व यह है कि सुबह को उगने एवं धरती को प्रकाशमान करने वाला सूर्य भी मैं ही हूँ तथा शाम को शीतलता प्रदान करने वाला चन्द्रमा भी मैं ही हूँ। मैं कलयुगी समस्याओं के लिए ढाल के समान हूँ। नाव के नीचे का तला और ऊपर का पाल, ये सब मेरे ही अस्तित्व के भिन्न-भिन्न रूप हैं। मैं ही तराजू से लगा हुआ पल्ला हूँ जिसमें सारी दुनिया वस्तुओं को तोलती है। मूछों के बांकेपन तथा कल्ले के टेढ़ेपन में भी मेरा वक्र रूप झलकता है। माताओं के दुलारे लल्लू और लल्ला भी मेरे ही कारण हैं। रुपया एवं अधन्ना तथा बंनारस एवं न्यवन्ना भी मेरे अस्तित्व के ही अंश हैं। हर वस्तु में मेरा रूप है; मैं ही हर स्थान पर चमकता हूँ और यहां तक कि धमाकेदार बम भी मेरे ही आकार की भांति बनाया जाता है।

विशेष -- 1. यहां पर कवि कुकुरमुत्ता को गंभीर संघर्षकर्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहता। इसलिए आत्मश्लाघायुक्त कथनों के द्वारा वह कुकुरमुत्ता को भी हास का उपादान बना देता है।

2. 'और अपने से उगा मैं ---- मेरा जीवन आप जगता' में कुकुरमुत्ता की आत्मनिर्भरता, श्रेष्ठता एवं स्वाभिमान मुखरित हुआ है।

3. तुलनात्मक विधि द्वारा कुकुरमुत्ते की श्रेष्ठता एवं गुलाब की निकृष्टता प्रतिपादित की गई है।

4. इस अंश में वह विश्व का भ्रमण करता हुआ प्रत्येक ऐतिहासिक-पौराणिक वस्तु में अपना ही आकार व्यक्त करता है। वस्तुतः यह कुकुरमुत्ता का अहंकार नहीं वरन् शेखचिल्लीपन है, बड़बोलापन है जो इस अंश में हास्य-रस की उत्पत्ति करता है।

5. तुकबंदी करते हुए हास्योत्पत्ति के लिए बिना अर्थगर्भ के शब्दों का भी प्रयोग कवि ने उन्मुक्तता से किया है, जैसे -- मेरे लल्लू, मेरे लल्ला।

6. 'शेर भी मुझसे गधा है' में लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग किया गया है।

7. कवि ने यहां रूपसाम्य के आधार पर लगभग प्रत्येक पंक्ति में त्वरित गति से उपमाओं को उभारा है।

8. **अलंकार** -- उल्लेख -- सम्पूर्ण बंध में
अन्त्यानुप्रास -- पूरे छन्द में
रूपक -- विष्णु का ---- देख कैंड़ा।

4. लगाता हूँ पार --------------- क्लाईमेक्स को पहुँचता।

शब्दार्थ -- फ्राड् = धोखा। केपीटल् = राजधानी। रकीब = दुश्मन। लण्ठ = निपट गंवार। खुशनसीब = भाग्यवान। शैदा = मस्त। गिरह = गाँठ। सूदख़ोर = सूद पर धन उधार देने वाला महाजन। क्लाईमेक्स = अंतिम दृश्य।

प्रसंग -- पूर्व प्रसंगों की भांति इसमें भी कवि ने कुकुरमुत्ता को सर्वव्यापी दिखाते हुए उसका एकालाप प्रस्तुत किया है --

व्याख्या -- गुलाब से एकतरफा कथन करता हुआ कुकुरमुत्ता अपना बड़प्पन प्रदर्शित करता है कि वह ही प्राणियों को संसार रूपी सागर से पार लगाता है तथा कभी बीच मंझधार में भी डुबा देने में सक्षम है। वह ही डब्बे का नमूना है अर्थात् उसी को देखकर डब्बे का आकार परिकल्पित हुआ है। वह ही पान है तथा वह ही उसमें लगने वाला चूना है। मैं स्वयं बनने वाला कुकुरमुत्ता हूँ -- जिस प्रकार बेंजाइन का दर्शनशास्त्र स्वयं ही बन गया, जिस प्रकार ओमफ़्लस तथा ब्रह्मावर्त अपने आप बन गये, ब्रह्माण्ड के गोले तथा उसकी पर्तें स्वयं बन गईं, जैसे साड़ी पर सिकुड़न अपने आप आ जाया करती है, जैसे कपड़े पर सफाई और मांड़ हुआ करती है। कास्मोपालीटन् और मेट्रोपालीटन् में भी मैं ही हूँ। जैसे फ्रायड् और लीटन् का अस्तित्व स्वयंमेव ही सर्वप्रसिद्ध हुआ है, वैसे ही मैं भी सर्वप्रसिद्ध हूँ। फेलसी और दर्शन की आवश्यकता एवं उसकी पूर्ति भी मुझ ही से है। सरसता या मीठी मीठी बातों से होने वाले धोखे में भी मैं ही हूँ तथा लेनिनग्राड जैसी राजधानी भी मेरे ही कारण है। जिस प्रकार दुश्मन का सदैव दुश्मन होना ही सत्य होता है उसी प्रकार मैं भी सत्य हूँ। जैसे लेखकों में गंवार लोग भी भाग्यवान होते हैं वैसे ही मैं भी भाग्यवान हूँ।

जब मुझे दोहरा किया गया तो मैं डमरू का आकार बन गया। एक ओर बगल में करके मुझसे ही वीणा बनी, जिससे कभी मन्द ध्वनि निकली तो कभी तार सप्तक की पतली ध्वनि निकली। वास्तव में मैं ही नर हूँ, मैं ही नारी हूँ। यही नहीं, मैं ही दक्षिण का मृदंग हूँ तो उत्तर का तबला भी हूँ। सितारवादक चुन्ने खाँ के हाथ का सितार मेरे ही रूप से निर्मित है, पंडित दिगम्बर का तानपूरा तथा सुन्दर गायिकाओं का सुरबहार भी मुझ ही से है। मैं ही लायर (अंग्रेजी वाद्य विशेष) हूँ तथा सभी भाषाओं (संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक, लेटिन) के गीतकार मुझसे ही बने हैं। मेरी ही मस्ती में मस्त होकर मंत्र, ग़ज़लें, गीत आदि पैदा हुए जो कभी प्रसिद्ध हुए,

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

कभी अनजान ही रह गये। वायलिन मेरी ही धुन पर बजा है; बेन्जो की शोभा मुझसे ही है। विभिन्न प्रकार के वाद्य जैसे घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल, शंख, तुरही, मजीरे, करताल, कारनेट्, क्लेरीअनेट्, ड्रम, फ्लूट, गीटर आदि तथा उनके वादक हसन खाँ, बुद्धू, पीटर आदि सभी मेरा बड़प्पन मानते हैं तथा मुझे हमेशा से जानते हैं। विभिन्न प्रकार के नृत्यों की ताताधिन्ना में मेरी ही गाँठ लगी हुई है अर्थात् भारतीय संस्कृति पूरी तरह से मुझसे जुड़ी हुई है। नृत्य में मेरा ही जीवन भरा हुआ है। पैरों की लय में मेरा ही संगीत है। कत्थक हो या कथकली, पश्चिम का बाल डांस हो या क्लियोपेट्रा अथवा कमल एवं भंवरे का प्रेम-प्रसंग हो, पक्षी फंसाने वाला बहेलिया हो, मोर का नाच हो, मणिपुरी नृत्य हो अथवा गरबा हो, पैर, कमर, हाथ, गरदन एवं भौंहों के संचालन में तथा किसी भी प्रकार के नृत्य चाहे वह अफ्रीकन हो या यूरोपियन, सब में मेरा ही सौष्ठव व्याप्त है। प्रत्येक शारीरिक एवं मानसिक हाव-भाव में मेरी ही प्रेरणा रही है। संसार में कहीं भी जब शासकों में युद्ध होता है, मैंने पैंतरे बदल कर निर्णय ही बदल दिया है। किंतु जहां कहीं भी शोषित वर्ग के संघर्ष-सम्बंधी झगड़े होते हैं, अथवा पति-पत्नियों की नोंक-झोंक होती है, उनके विषय में तो कहना ही क्या। जहां भी सूदखोर अपने ब्याज का तकाज़ा करता हुआ नाचता है अथवा दौड़ा फिरता है, वहीं समझो मेरा नृत्य अत्यंत तीव्र होकर अन्त को पहुँचने लगता है।

विशेष — 1. यहां पर कुकुरमुत्ता अप्रत्यक्ष रूप से हर वस्तु में श्रमिक वर्ग के छिपे हुए श्रम को व्यक्त करता है। वास्तव में दुनिया की हर निर्मित वस्तु में श्रमिकों का श्रम ही लगा है।

2. यहां पर भी वस्तु-परिगणन शैली का प्रयोग किया गया है जो कवि के विश्वव्यापी ज्ञान का भी परिचायक है। साथ ही संगीत सम्बंधी शब्दावली के प्रयोग से कवि के संगीत-प्रेम का भी ज्ञान होता है।

3. कहीं-कहीं पर इस अंश में कवि ने कुकुरमुत्ता के समक्ष हर वस्तु को रखकर हास्य भी उत्पन्न किया है। यहां व्यंग्य है उन साम्यवादियों पर जो निराला की कविता को साम्यवाद से जोड़ने की भूल कर बैठे हैं।

4. यहां पर गर्व संचारी भाव व्यक्त हुआ है।

5. शब्दों में भाषिक विविधता नये सौंदर्य को उभार रही है। अंग्रेजी का बहुल प्रयोग खटकता नहीं है। संज्ञाओं के अतिरिक्त भाषिक रवानगी में अंग्रेजी शब्दों का सहज प्रयोग हुआ है। सान्त्यानुप्रास प्रयुक्त हैं।

6. भाषा मुहावरेदार है, यथा — लेखकों में लण्ठ, पार लगाना, मंझधार डुबाना, गिरह लगना, पैंतरे बदलना आदि।

7. यहां अंत में अस्पष्ट बिंब रूपायित हुआ है क्योंकि एक प्रधान बिंब कोई नहीं है तथा अनेक लघु बिंबों में परस्पर सम्बद्धता भी नहीं है। अतः ये अपने आप में अपूर्ण हैं।

8. पूरे छन्द में उपमाओं की विविधता है।

9. अलंकार — अनुप्रास — फ़ेलसी और फ़लसफ़ा; डबल जब, बना डमरू
उल्लेख — कुकुरमुत्ते के विषय में।

5. नहीं मेरे हाड़ ------------------------ तू नहीं, मैं ही बड़ा।

शब्दार्थ — हाड़ = हड्डियाँ। जहन्नम = नरक। पोथे = ग्रन्थ। जिगर = हृदय। प्रोग्रेसीव = प्रगतिशील। कनक = स्वर्ण। ट्रेप = फन्दा।

प्रसंग — कुकुरमुत्ता की शेखियाँ अपने में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समेट लेती हैं। पिछले अंश में वह संगीत एवं नृत्य में अपनी व्यापकता को सिद्ध करता है और इस अंश में वह कवियों के ग्रन्थों तथा विश्व-प्रसिद्ध इमारतों में अपने अस्तित्व का महत्त्व सिद्ध करता है —

व्याख्या — कुकुरमुत्ता गुलाब को सम्बोधित करते हुए कहता है कि मेरे शरीर में अस्थि-मज्जा भी नहीं है, और न ही तेरी भांति काँटे या लकड़ी है। तेरे पौधे की भांति मेरे शरीर में गांठें भी नहीं हैं। मैं तो अपना अस्तित्व आप हूँ, इस कारण स्वयं-रससिद्ध होकर ब्रह्मानन्द की भांति चिररसमय हूँ। अपनी सफेदी अथवा उदासी को तो मैंने नरक ही भेज दिया है। चिररसमय होने के कारण इस संसार में सब वस्तुओं में मेरा ही रस बहा है और सभी वस्तुओं में मेरा ही सत् होने के कारण मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ। बाल्मिकि एवं व्यास जैसे महान् कवि-ऋषियों की मेधा ने भी मेरी ही सर्वव्यापी शक्ति से प्रेरणा ली। संस्कृत नाटककार भास एवं कालिदास ने भी मेरी ही रसधारा में डूब कर ग्रन्थ रचना की। हाफिज़ एवं रवीन्द्र जैसे महान् विश्वकवियों ने भी मेरी ही ओर आशा की दृष्टि से देखा था। लेकिन आजकल यह स्थिति है कि टी. एस. इलीयट जैसे विचारकों ने जहां-तहां से विचारों को एकत्र कर एक धारा का प्रवर्तन कर दिया और उनके अंधानुकरण करने वाले लोगों ने भी व्यर्थ की प्रशंसा कर-कर के उसे प्रसिद्ध कर दिया, मानो किसी तारे को अधिक देख पाने की इच्छा से कोई शाम को आंखें बन्द करके बैठा हो। यह तो वही हाल है कि तथाकथित प्रगतिशील लेखक के हाथ में जैसे ही कलम आये, उसका जोश थमने में न आये। इसी कारण मानो यह कोई परम्परा बन गई है कि अम्मा और बुआ सब बराबर हैं।

कुकुरमुत्ता फिर अपना बखान करते हुए कहता है कि मिस्र के सभी पीरामीड् मेरी ही आकृति के नमूने हैं। प्रसिद्ध गणितशास्त्री यूक्लीड् मेरा ही शिष्य था। रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर, जगन्नाथ आदि भारत के सभी प्रसिद्ध एवं सुन्दर मन्दिर मेरी ही उत्पत्ति हैं, मैं ही उनका यशरूपी स्वर्णाभूषण हूँ। विभिन्न प्रकार की इमारतों चाहे वह कुतुबमीनार हो, आगरा का ताजमहल हो या फ़ोर्ट चुनार हो; कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल हो, बगदाद की मस्जिद हो अथवा जुम्मा हो; सेन्ट पीटर्स का गिरजाघर हो या घण्टाघर हो — सभी के भवनों में, उनके गुम्बदों की बनावट में मेरी ही छाप विद्यमान है। विभिन्न प्रकार के आर्य, फारसी या गाथिक नस्लों के मनुष्यों के रूप पर मेरा ही प्रकाश पड़ता है। सभी मनुष्यों के रूपाकारों में मेरा ही स्वरूप समाया है चाहे वे आदिकालीन हों, चाहे मध्यकालीन अथवा आधुनिक काल के हों; चाहे वे चेहरे-मोहरे से पिद्दी जैसे हों या बाज़ की भांति विकराल आकृति वाले हों; चाहे वे चीन के निवासी हों, चाहे फारस या फिर जापान के रहने वाले हों और चाहे वे अमेरिका, रूस, इटली या इंगलिस्तान कहीं के भी क्यों न हों। सभी प्रकार के मकान चाहे वे ईंट के, पत्थर के या लकड़ी के बने क्यों न हों और चाहे वे मकड़ी के जाले के आकार के ही हों, उनके निर्माण पर मेरे छत्ते का प्रभाव ही पड़ा है। टर्की टोपी, दुपलिया या किश्ती के आकार वाली टोपी और सभी प्रकार की वस्तुएँ, जिनमें भूसा या जूट लगा है, का रूप ही धारण किये हुए मैं ऐसा फन्दा हूँ जो सभी के सिरों को फांसे हुए है। ध्यान से देख, अंग्रेजी टोपी भी मेरे ही आकार की नकल से बनी है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण मैं सबके सम्मान का पात्र हूँ और इसी कारण तू नहीं, मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ।

विशेष — 1. इस अंश में कुकुरमुत्ता ने स्वयं को ब्रह्म के समकक्ष मान लिया है। वस्तुतः यह छायावादी दार्शनिकता, ब्रह्म-माया सम्बंधी धारणाओं तथा रहस्यवाद की व्यर्थता पर स्वयं

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अपने विचारों पर कवि का व्यंग्य है। कवि कुकुरमुत्ता के माध्यम से जताना चाहता है कि प्रत्येक छोटा-बड़ा व्यक्ति आजकल मिथ्या अहंकार से भर गया है जो उसके भीतर की हीन ग्रंथि से उत्पन्न हुआ है।

2. कुकुरमुत्ता जैसे तुच्छ उपेक्षित पदार्थ को कवि अतिशय महत्व प्रदान करता है जो असंगत प्रतीत होता है। किंतु किसी भी शोषित व्यक्ति के मनोविज्ञान को समझें तो यह आत्मश्लाघा, यह अतिश्योक्तिपूर्ण महत्व उचित ही प्रतीत होता है।

3. आधुनिक कवियों द्वारा टी. एस. इलियट के अंधानुकरण पर भी कवि का चुभता हुआ व्यंग्य चूका नहीं है तथा उसके कृतित्व का महत्व 'कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर' कहकर निराला ने आंका है।

4. इतना ही नहीं, वे तत्कालीन प्रगतिशील संघ पर भी परोक्ष व्यंग्य करते हैं।

5. सामयिक वस्तुस्थितियों पर व्यंग्य करते हुए कवि पुनः कुकुरमुत्ता को बड़बोलेपन का अवसर देते हुए दुनिया की सभी इमारतों की गढ़न में भी उसी की छाप बताते हैं। ये बातें करता हुआ अंत में कुकुरमुत्ता अकड़ता हुआ तीक्ष्ण एवं तुलनात्मक शब्दों में स्वयं का महत्व सिद्ध कर ही देता है – 'तू नहीं, मैं ही बड़ा।'

6. सर्वत्र व्यंग्यात्मकता के साथ हास्य रस की उत्पत्ति हुई है।

7. अंधानुकरण, आज के नकली उत्साह, तथा कवियों की आधारहीनता पर कवि ने मार्मिक उपमायें संजोयी हैं।

8. वर्णनपरकता अधिक है। भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्द संयोजित है। 'कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर' मुहावरे का प्रयोग है।

9. अलंकार – अतिश्योक्ति – पूरे छन्द में
उपमा – ज्यादा देखने को –– जोश का पारा
वीप्सा – टुकुर-टुकुर, बड़े-बड़े
अनुप्रास – वाल्मिकि-व्यास, भास-कालिदास, टर्की टोपी।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

323

ब्रह्मराक्षस

शहर के उस ओर खँडहर की तरफ़
परित्यक्त सूनी बावड़ी
के भीतरी
ठंडे अँधेरे में
बसीं गहराइयाँ जल की···
सीढ़ियाँ डूबीं अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में···
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर
डालें खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औदुंबर।
व शाखों पर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

लटकते घुग्घुओं के घोंसले
परित्यक्त, भूरे, गोल।

विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गंध में बसकर
हवा में तैर
बनता है गहन संदेह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो कि
दिल में एक खटके-सी लगी रहती।

बावड़ी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक
बैठी है टगर
ले पुष्प-तारे-श्वेत।

उसके पास
लाल फूलों का लहकता झौंर—
मेरी वह कन्हेर…
वह बुलाती एक ख़तरे की तरफ़ जिस ओर
अँधियारा खुला मुँह बावड़ी का
शून्य अंबर ताकता है।

बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूँज की भी गूँज,
बड़बड़ाहट-शब्द पागल से।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने—
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
ख़ूब करते साफ़,
फिर भी मैल
फिर भी मैल!!

और…होंठों से
अनोखा स्त्रोत्र, कोई क्रुद्ध मंत्रोच्चार,
अथवा शुद्ध संस्कृत गालियों का ज्वार,
मस्तक की लकीरें
बुन रहीं
आलोचनाओं के चमकते तार!!
उस अखंड स्नान का पागल प्रवाह…
प्राण में संवेदना है स्याह!!

किंतु, गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु, जब
तल तक पहुँचते हैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुककर 'नमस्ते' कर दिया।
पथ भूलकर जब चाँदनी
की किरन टकराए
कहीं दीवार पर,
तब ब्रह्मराक्षस समझता है
वंदना की चाँदनी ने

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ज्ञान-गुरु माना उसे।

अति-प्रफुल्लित कंटकित तन-मन वही
करता रहा अनुभव कि नभ ने भी
विनत हो मान ली है श्रेष्ठता उसकी!!
और, तब दुगुने भयानक ओज से
पहचानवाला मन
सुमेरी-बैबिलोनी जन-कथाओं से
मधुर वैदिक ऋचाओं तक
व तब से आज तक के सूत्र
छंदस्, मंत्र, थियोरम,
सब प्रमेयों तक
कि मार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टॉएन्बी
कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गाँधी भी
सभी के सिद्ध-अंतों का
नया व्याख्यान करता वह
नहाता ब्रह्मराक्षस, श्याम
प्राक्तन बावड़ी की
उन घनी गहराइयों में शून्य।

...ये गरजती, गूँजती, आंदोलिता
गहराइयों से उठ रहीं ध्वनियाँ, अतः
उद्भ्रांत शब्दों के नए आवर्त में
हर शब्द निज प्रति-शब्द को भी काटता,
वह रूप अपने बिंब से ही जूझ
विकृताकार-कृति
है बन रहा
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ।

बावड़ी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक सुनते हैं
टगर के पुष्प-तारे श्वेत
वे ध्वनियाँ!
सुनते हैं करौंदी के सुकोमल फूल
सुनता है उन्हें प्राचीन औदुंबर
सुन रहा हूँ मैं वही
पागल प्रतीकों में कही जाती हुई
वह ट्रैजेडी
जो बावड़ी में अड़ गई।

x x x

खूब ऊँचा एक ज़ीना साँवला
उसकी अँधेरी सीढ़ियाँ...
वे एक आभ्यंतर निराले लोक की।
एक चढ़ना औ' उतरना;
पुनः चढ़ना औ' लुढ़कना,
मोच पैरों में
व छाती पर अनेकों घाव।
बुरे-अच्छे-बीच के संघर्ष
से भी उग्रतर
अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच का संगर
गहन किंचित् सफलता,
अति भव्य असफलता!!
...अतिरेकवादी पूर्णता
की ये व्यथाएँ बहुत प्यारी हैं...
ज्यामितिक संगति-गणित
की दृष्टि से कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक भान—
...अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अंतर्कथाएँ बहुत प्यारी हैं!!

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

रवि निकलता
लाल चिता की रुधिर-सरिता
प्रवाहित कर दिवालों पर;
उदित होता चंद्र
व्रण पर बाँध देता
श्वेत-धौली पट्टियाँ
उद्विग्न भालों पर।
सितारे आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव-बिंदुओं के सर्वतः
पसरे हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया,
और वह पसरा पड़ा है···
वक्ष-बाँहें खुली फैलीं
एक शोधक की।

व्यक्तित्व वह कोमल स्फटिक प्रासाद-सा,
प्रासाद में ज़ीना
व ज़ीने की अकेली सीढ़ियाँ
चढ़ना बहुत मुश्किल रहा।
वे भाव-संगत तर्क-संगत
कार्य सामंजस्य-योजित
समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ
हम छोड़ दें उसके लिए।
उस भाव-तर्क व कार्य सामंजस्य-योजन-
शोध में
सब पंडितों, सब चिंतकों के पास
वह गुरु प्राप्त करने के लिए
भटका!!

किंतु युग बदला व आया कीर्ति-व्यवसायी
···लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में से हृदय-मन,
और, धन-अभिभूत अंतःकरण में से
सत्य की झाईं
निरंतर चिलचिलाती थी।
आत्मचेतस् किंतु इस
व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन···
विश्वचेतस् बे-बनाव!!
महत्ता के चरण में था
विषादाकुल मन!
मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता!
वह उस महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग,
उस आंतरिकता का बताता मैं महत्त्व!!

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजेडी है नीच!!

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरंतर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ' मर गया···
वह सघन झाड़ी के कँटीले
तम-विवर में

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

मरे पक्षी-सा
बिदा ही हो गया
वह ज्योति अनजानी सदा को सो गई
यह क्यों हुआ!
क्यों यह हुआ!!
मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँचा सकूँ।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ब्रह्म राक्षस

कविता : भाव-बोध–स्वर्गीय मुक्ति बोध की प्रस्तुत लम्बी कविता एक प्रकार का मिथ कही जा सकती है। इसमें उन्होंने परम्परागत धारणाओं के सड़े-गले अन्तराल में से जीवन के जीवन्त तत्त्व बटोरने का साहसिक सफल प्रयास किया है। ब्रह्मराक्षस उस अनवरत प्रयास का प्रतीक लगता है जो सदियों के मटमैले कुहासों को धोकर जीवन को निखारने का प्रयासक है, पर अन्ध धारणाएं उसके प्रयासों को सफल नहीं होने देतीं। इस सन्दर्भ में खण्डहर, बावड़ी, उसकी पुरानी सीढ़ियाँ, पानी, अन्धेरा आदि सभी परम्परागत धारणाओं के प्रतीक और परिचायक हैं। ब्रह्मराक्षस एक प्रकार का हमारा अचेतन-पौराणिक मन का परिचायक है, जो जीवन-समाज की सचेतना के वृक्ष पर आज भी आरूढ़ है। वह एक शोधक भी है। तभी तो कवि अपने आपको 'ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य' कहकर उसकी अधूरी संवेदना और कार्यों को पूर्ण करने का व्रत लेना चाहता है :

"मैं ब्रह्म राक्षस का सजल उर-शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँचा सकूँ।"

व्याख्या

शहर के उस ओर खण्डहर..बात गहरी है। (३५)

शब्दार्थ–परित्यक्त=त्याग दी गई। गहरी=गम्भीर।

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियाँ कविवर मुक्तिबोध के काव्य-संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता के आरम्भ या भूमिका में से उद्धृत की गई हैं। इस मिथ-कविता में कवि ने ब्रह्मराक्षस और उसके सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं को अपने शोध का विषय बनाया है। वह ब्रह्मराक्षस को भी एक शोधक के रूप में मानकर चला है। प्रस्तुत पंक्तियों में ब्रह्मराक्षस की अवस्थिति सम्बन्ध धारणाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है :

व्याख्या–शहर के एक तरफ कुछ खण्डहर विद्यमान हैं। वहाँ लोगों के द्वारा त्याग दी गई अर्थात् किसी भी प्रकार के उपयोग में न लाई जाने वाली एक बावड़ी है। उस बावड़ी में गहरा जल है जो कि अपनी भीतरी गहराई के कारण अन्धियारा-सा, काला-सा प्रतीत होता है। उसमें पूर्णतया ठण्डक है–अर्थात् किसी भी प्रकार की हलचल की गर्माहट नहीं है। उस पुराने अर्थात् जाने कब से ठहरे-रुके हुए बावड़ी के पानी में अनेक सीढ़ियाँ भी हैं, जिनमें से कई पानी की गहराई में डूबी हुई हैं। ऐसा सब क्यों है ? क्या है ? एक रहस्यमयता सी वहाँ परिव्याप्त है। स्थिति कुछ इस प्रकार की है–या उस बात अथवा घटना जैसी है कि जिसका कुछ आधार तो स्पष्ट दीख न पड़ता हो, पर अहसास यह होता है कि उसकी पृष्ठभूमि में निश्चय ही कोई-न-कोई गम्भीर रहस्य अथवा आधार छिपा हुआ है।

भाव यह है कि वहाँ का सारा वातावरण अजीब-सी रहस्यमयता के पर्यावरणों से घिरा है। स्पष्ट कुछ न होने पर भी तह तक जाने का प्रयत्न करने से कुछ-कुछ रहस्यमयता का पर्यावरण हटने लगता है।

विशेष–आरम्भ से ही कविता-पाठकों की जिज्ञासा बढ़ा देने में कवि को विशेष सफलता मिली है।

'समझ में न आ सकता हो' पद द्वारा कवि का संकेत उन लोक-धारणाओं की ओर है, जब ऐसे स्थलों के सम्बन्ध में अक्सर स्वतः ही प्रचलित हो जाया करती हैं।

बावड़ी को घेर...खटकें सी लगी रहती। (३५)

शब्दार्थ–डालें=वृक्षों की शाखाएँ। औदुम्बर=एक वृक्ष का नाम। शाखों=डालियों। घुग्घुओं=एक प्रकार के पक्षियों। विगत=अतीत, भूतकाल। शत=सैकड़ों। गहन=गहरा, गम्भीर।

प्रसंग–बावड़ी के आस-पास के वातावरण, उसके साथ जुड़ी पाप-पुण्य की कहानियों और उन सबके प्रति अपने मन में जागृत सन्देह की बातों को व्यक्त करते हुए कवि कहता है :

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

329

व्याख्या–खण्डहर के पास स्थित बावड़ी को वृक्षों की अनेक प्रकार की उलझी डालियों ने पूरी तरह से घेर रखा है। एक ओर ओदुम्बर का वृक्ष जैसे मौन-भाव से खड़ा सब देख सुन रहा है। उसकी डालियों पर डालियों से कुछ अलग हुए-से घुग्घुओं के घोंसले लटक रहे हैं, जिससे कि वातावरण और भी रहस्यमय एवं डरावना-सा बन जाता है।

इस बावड़ी के साथ अतीत काल की अनेक पुण्यमयी कहानियाँ जुड़ी हैं, जिनकी गन्ध और अभ्यास आस-पास के फूले-खिले वृक्षों की कच्ची सुगन्धी के साथ मिला आज भी स्वतः ही होने लगता है। उन पुण्यमयी कहानियों की बातें हवा में तैरती हुई अनेक प्रकार के गहन सन्देह के भाव मन में जगा देती हैं। उस सबमें अतीत काल की कोई ऐसी श्रेष्ठता की कहानी जुड़ी हुई है कि जो दिल में आज भी एक धुकीधुकी-सी उत्पन्न कर देती है।

विशेष–'बावड़ी को घेर डालें खूब उलझी हैं' पंक्ति विशेष अर्थ की द्योतक है। वह यह कि इस बावड़ी के साथ जुड़ी कथाएँ स्वयं तो उलझावपूर्ण हैं ही, देखने-सुनने वालों को भी उलझन में डाल देती हैं।

खण्डहर और बावड़ी के साथ उसके रहस्यमय वातावरण को भी कवि ने विगत की श्रेष्ठता का परिचायक बताया है। साथ ही उसके सम्बन्ध में सन्देह का भाव भी व्यक्त किया, ताकि वास्तविकता की तह तक पहुँचा जा सके।

भाषा और शैली में स्वाभाविक सादगी और सहज प्रवाह विशेष दर्शनीय एवं उल्लेख्य हैं।

बावड़ी के इन मुँडेरों पर.......................................अम्बर ताकता है। (३५-३६)

शब्दार्थ–टगर=एक लता, जंगली बेल। लटकता=लहराता। झौंर=गुच्छा। शून्य अम्बर=सूना आकाश।

प्रसंग–श्री मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्म राक्षस' में से ली गयी इन पंक्तियों में कवि खण्डहर, बावड़ी और उसके आस-पास के वातावरण के गहरे इतिहास में, प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से ही झाँकने का प्रयास करते हुए कह रहा है :

व्याख्या–बावड़ी के आस-पास बने घाट के किनारों पर सुनहरी हरी, सुन्दर डाली रूपी कुहनियाँ टिका कर टगर नामक जंगली बेल जैसी अलसायी बैठी है। उस पर खिले श्वेत पुष्प तारों के समान झलमलाते हुए प्रतीत होते हैं।

उसके पास ही लाल फूलों के गुच्छों को लहराते हुए कन्हेर का झाड़ है। वह झाड़ मानों बावड़ी के उस ओर विद्यमान खतरे की तरफ संकेत कर रहा है कि जहाँ अन्धेरे में बावड़ी का मुख (भाग) खुला हुआ है और लगता है, जैसे सहायता के लिए सूने आकाश की तरफ निहार रहा है।

विशेष–कवि ने पुष्पों, लताओं और उनके रंगों के माध्यम से विषयानुकूल उचित प्रतीकों की योजना की है। परिणामस्वरूप सही बिम्ब उभर कर कविता के पाठक की अन्तःबाह्य चेतना को पूर्णतया छा लेता है। लाल फूलों को खतरे का निदेशक उचित ही कहा गया है।

बावड़ी की उस घनी गहराइयों.......................................फिर भी मैल !! (३६)

शब्दार्थ–शून्य=सूनी। पैठा=प्रविष्ट हुआ, घुसा बैठा। गहन अनुमानिता=गम्भीर अनुमान। मलिनता=मैल, गन्दगी।

प्रसंग–किसी भावी रहस्यमयता या घटना की सूचक परिस्थितियों एवं वातावरण का निर्माण करने के बाद, अब इन पंक्तियों में कवि अपने वस्तु-विषय को प्रतिष्ठापित कर रहा है। किम्वदन्तियों के आधार पर वह अनुमान प्रस्तुत कर रहा है कि जाने कब से इस बावड़ी के अन्धेरे भाग में एक ब्रह्म राक्षस जल में बैठा अपना तन-बदन धो रहा है। बावड़ी में स्वतः

ही जल की स्थिरता में हो उठने वाली छप-छप ध्वनि उसी की है। कवि कहता है :

व्याख्या–बावड़ी के उस ओर जहाँ घना अन्धेरा और गहरा पानी है, साथ ही वातावरण भी सूना-सूना है; वहाँ एक ब्रह्म राक्षस घुसकर बैठा हुआ है। तभी तो वहाँ भीतर से एक गहरी गूँज किसी पागल की बड़बड़ाहट के समान हमेशा सुनाई देती रहती है। इस सबके बारे में लोगों ने गम्भीर अनुमान लगाये हैं। वे अनुमान कुछ इस प्रकार के हैं कि अपने शरीर की मैल को दूर करने के लिए, अपने पर पड़ी पापों की छाया को मिटाने के लिए वह ब्रह्म राक्षस वहाँ, रात-दिन, प्रतिपल घिस-घिस कर अपने तन को धोता-नहाता रहता है। उसके हाथों के पंजे पानी को अपने मुँह, हाथ बाँह, पैर आदि पर लगातार उछालते रहते हैं, जिससे छप-छप की ध्वनि आती रहती है। फिर भी मैल जैसे उतर नहीं पाती। वह ज्यों की त्यों बनी रहती है।

विशेष–लगता है यहाँ ब्रह्म राक्षस परम्परागत व्यवस्थावादियों का प्रतीक बन गया है। उसका तन की मैल उतारने के लिए बावड़ी में नहाना–नदियों-बावड़ियों के साथ जुड़ी इस प्रकार की परम्पराओं, भावनाओं का परिचायक है। फिर भी कवि कहता है कि परम्परा का यह मैल आज भी ज्यों का त्यों है। आज भी इस प्रकार की व्यर्थ लकीरें ज्यों की त्यों पीटी जा रही है। मैल उतरने के स्थान पर बढ़ता ही जा रहा है।

और....होठों से.......................................संवेदना है स्याह !! (३६-३७)

शब्दार्थ–स्तोत्र=स्तुति-पाठ। मन्त्रोच्चार=मंत्रों का उच्चारण। ज्वार=बाढ़। मस्तक की लकीरें=मस्तक पर आ पड़ी सलवटें। संवेदना=अनुभूति। स्याह=काली।

प्रसंग–पुरम्पराओं का यह भदेस, विद्रूप मन में आलोचना का भाव जगा समस्त अनुभूतियों को काला या विद्रूप बना देता है–यह बात स्पष्ट करते हुए कवि कह रहा है :

व्याख्या–अपने तन की मैल को अनवरत साफ करता हुआ वह ब्रह्म राक्षस होंठों ही होंठों में कुछ बुदबुदाता भी जाता है। लगता है वह किसी अनोखे स्तोत्र का पाठ कर रहा है। या फिर क्रोध एवं आवेश में किन्हीं मन्त्रों का उच्चारण बुदबुदाहट के रूप में करता जा रहा है। अथवा उसके शुद्ध संस्कृतमय शब्दों में किन्हीं अबूझ गालियां की बाढ़ीली बौछार-सी आ गई है यह सब देख-सुनकर मस्तक पर स्वभावतः आलोचनात्मक सलवटें उभर आती हैं। उनमें अनेक प्रकार के प्रश्न कौंध-कौंध जाते हैं। उसके उस निरन्तर चल रहे स्नाह का प्रवाह लगता है प्राणों की समस्त संवेदनाओं पर कालिमा पोत रहा है। अर्थात् उससे संवेदना को कोई विशेष सम्बल न मिलकर अन्ध-विश्वासों को ही बढ़ावा-सा मिलता लगता है।

भाव यह है कि अनेक प्रकार की अन्ध मान्यताओं ने जुड़कर इस प्रकार के स्थलों के प्रति अनास्था के भावों को ही अधिकाधिक प्रश्रय दिया है।

विशेष–अनोखा स्तोत्र, क्रुद्ध मन्त्रोच्चार आदि शब्द जैसे अभिशाप के प्रतीक बनकर परम्पराओं के विद्रूप को व्यंजित करने वाले हैं। 'संवेदना है स्याह' यथार्थवादी चिन्तक की मनः-स्थिति का परिचायक है।

किन्तु, गहरी बावड़ी.......................................है श्रेष्टता उसकी !! (३७)

शब्दार्थ–रवि-रश्मि=सूर्य की किरण। तल तक=गहराई तक। बन्दना=आरती, स्तुति। प्रफुल्लित=विकसित, खिले हुए। कण्टकित=काँटों वाले। विनत हो=झुक कर।

प्रसंग–लोग इस प्रकार के स्थानों से जुड़ी चमत्कारपूर्ण कथाओं पर विश्वास कर इनके आगे झुकते हैं, तो लगता है कि जैसे सचमुच इनका व्यक्तित्व एवं अस्तित्व महनीय हो गया है। तब और भी दन्तकथाएँ अपने चमत्कारों के साथ इनसे जुड़ती जाया करती हैं। कवि कहता है :

व्याख्या–कभी-कभी जब गहरी बावड़ी के भीतर वाली दीवार पर सूर्य की कोई किरण

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

तिरछी होकर गिरती है, उसके प्रकाश परमाणु भीतर के अंधियारे को भी कुछ क्षणों के लिए आलोकित कर देते हैं, तब ब्रह्म राक्षस मान लेता है कि उस स्थान की महत्ता और पवित्रता के आगे झुककर मानों सूर्य भी इसे अपना नमस्कार अर्पित कर रहा है। अर्थात् परम्परावादी ब्राह्मण प्रकृति की सामान्य औपचारिक क्रिया-प्रक्रियाओं को भी विशिष्ट चमत्कार का रूप देकर लोगों की भड़की अन्ध भावनाओं से लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

कभी रात में यदि चाँदनी की कोई भूली-भटकी किरण इस बावड़ी की भीतरी दीवार से टकरा जाए, तब ब्रह्म राक्षस यह प्रचारित करने लगता है कि उसे अपना ज्ञान-दाता गुरु मान कर चाँदनी भी जैसे उसकी आरती उतारने के लिए धरती पर उतर आई है। यहाँ भी कवि यही स्पष्ट करना चाहता है कि सामान्य प्राकृतिक व्यापारों को भी परम्परावादी चमत्कार प्रचारित कर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

उसका काँटों से भरा पर क्षणिक रूप से प्रफुल्लित मन चाँद-सूर्य की किरणों के उपरोक्त नैसर्गिक व्यापारों को भी चमत्कार मानकर यह अनुभव करने लगता है कि जैसे उसके समक्ष झुककर आकाश की उच्चता ने भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की है।

कवि का भाव यह है कि सहज प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों को सामान्य रूप से न ग्रहण कर परम्परावादी उन्हें भी श्रेष्ठता का चमत्कार प्रमाणित-प्रचारित करते हैं, ताकि उनकी स्वार्थ सिद्धि हो सके। इस प्रकार परम्पराएँ और वही बाद में अन्धविश्वास बन जाती हैं।

विशेष–चमत्कारों की भ्रान्त धारणाएँ बनने की प्रक्रिया का कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

और, तब दुगुने भयानक......................................गहराइयों में शून्य। (३७-३८)

शब्दार्थ–वैदिक ऋचाओं=वेद मंत्रों। प्रमेयों=शास्त्रीय प्रमाणों। प्राक्तन-प्राचीनतम।

प्रसंग–पहचान वाले मन–अर्थात् समझदार यथार्थवादी लोग प्राचीनतम काल से लेकर आज तक के समस्त सूत्रों को जोड़कर, सत्य का अन्वेषण करने लगते हैं कि आखिर इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण कथाओं या किम्वदन्तियों का अभिप्राय क्या है। कवि कह रहा है :

व्याख्या–इस प्रकार की स्थितियों के उपस्थित हो जाने पर यथार्थ के सचेतक मन दुगुने उत्साह और जिज्ञासा-भाव से सुमेरी, बैबिलोनी जैसी आदिम सभ्यता-संस्कृतियों में प्रचलित जन-कथाओं से लेकर, मधुर वैदिक मंत्रों, छन्दस, थियोराम तक के आज तक के जितने भी सूत्र, प्रामाणिक शास्त्र, ग्रन्थ हैं, यहाँ तक कि आधुनिक चिन्तक कार्लमार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टॉएन्जी, हीडेग्गर, स्पेंग्लर, सार्त्र, गाँधी आदि सभी के अन्तों का विवेचन-विश्लेषण करने लगता है। इन सबकी दृष्टियों से समझदार मन उस प्राचीनतम बावड़ी में स्नान करने ब्रह्मराक्षस के बारे में नया व्याख्यान करने लगता हैं। अर्थात् प्रत्येक विचारक ने परंपराओं के बारे में अपनी-अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। प्राचीनता के गहर अर्थों में पैठ जीवन-तत्त्व खोजने की चेष्टाएँ की हैं। पर स्यात् कोई भी उनकी वास्तविक गहराई तक नहीं पहुँच पाया। कोई भी ब्रह्मराक्षस के तन की युग-युगों से धोई जा रही उस मैल का उत्तर नहीं पाया।

ये गरजती, गूँजती..बावड़ी में अड़ गई। (३८)

शब्दार्थ–आन्दोलिता=हलचल से पूर्ण। उद्भ्रान्त=भ्रमपूर्ण। आवर्त=भंवर, प्रतिशब्द=विरोधी शब्द। विकृताकार-कृति=भ्रष्ट आकार वाली रचना।

प्रसंग–इस प्रकार की बावड़ियों या संस्थाओं के साथ जो अनेक प्रकार की त्रासदीय चमत्कारपूर्ण बातें जुड़ गई हैं, उनके साथ अनेक प्रकार के विवाद भी प्रचलित हो गये हैं। युग-युगों से हम लोग इस प्रकार की त्रासदी को सुनते करते आ रहे हैं। इन विचारों को व्यक्त करता हुआ कवि कह रहा है :

व्याख्या–युग-युगों से इस प्रकार की ध्वनियाँ गरजकर, गूँजकर, हलचल मचाकर अन्तर्मन की गहराइयों से अनवरत उठती ही आ रही हैं। प्रत्येक व्यक्ति भ्रम भरे शब्दों से इन्हें व्याख्यायित करने का प्रयत्न कर अपने शब्दों से अन्यों के शब्दों को काटता, फिर अपने ही शब्दों के भंवर में उलझा जा रहा है। परिणामतः जो उसका सत्य स्वरूप है, वह अपने ही बिम्बों से जूझकर और भी विकृत-विद्रूप कृति-रूप में परिणत होता जा रहा है। इस प्रकार यहाँ ध्वनियों या स्वर-शब्दों का युद्ध अपनी ही प्रतिध्वनियों एवं प्रति शब्दों से अनवरत हो रहा है। जिससे कोई स्पष्ट मत-वाद प्रतिष्ठापित ही पाने में असमर्थ है।

बावड़ी के इन सुन्दर किनारों पर अपनी हरी डालियों रूपी कुहनियाँ टिकाए तारों जैसे सफेद फूलों वाले टगर के पौधे जाने कब से इन समस्त ध्वनियों को स्तब्धता से सुन रहे हैं। करौन्दों के सुकोमल फूल भी सुन रहे हैं और पुराना औदुम्बर का पेड़ भी स्तब्ध-सा सुन रहा है। कवि कहता है कि इस बावड़ी के साथ जुड़ी प्रतीकात्मक त्रासदी को भी मैं भी अनवरत सुन रहा हूँ।

भाव यह है कि सभी चमत्कारपूर्ण दन्तकथाएँ किसी न किसी सत्य का प्रतीक हुआ करती हैं। पर हम लोग उन्हें अपनी व्याख्याओं के शब्द-जाल में उलझा दिया करते हैं।

खूब ऊँचा एक जीना...................................अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी हैं। (३८-३९)

शब्दार्थ–जीना=सीढ़ी। आभ्यन्तर=भीतरी। संगर=युद्ध, संघर्ष। गहन=गहरी। किंचित्=थोड़ी। अतिरेकवादी=अतिवादी, बढ़ा-चढ़ाकर। कृत=रचे गए। तुष्टि=प्रसन्नता, तृप्ति।

प्रसंग–बावड़ी के सन्दर्भ में मानव-जीवन के विश्वासों और संघर्षों को प्रिय बताते हुए कवि कह रहा है–

व्याख्या–उस बावड़ी वाले खण्डहर में एक बहुत ऊँचा जीना है, जिसकी सीढ़ियाँ अत्यधिक अन्धेरी हैं। वे सीढ़ियाँ जैसे एक भीतरी निराले लोक की ओर ले जाने वाली हैं। उन पर एक सीढ़ी चढ़ना, फिर उतर आना। पुनः चढ़ने के प्रयास में लुढ़क जाना, परिणामस्वरूप पैरों में मोच और छाती पर अनेक घाव आ जाना अर्थात् सीढ़ियाँ उतार-चढ़ाव की प्रतीक हैं। उस पर चढ़ने के प्रयास में अर्थात् चढ़कर रहस्य पाने की इच्छा में कई बार व्यक्ति लुढ़ककर, घायल होकर रह जाया करता है। यों अच्छे-बुरे के संघर्ष से भी कहीं अधिक उग्र अच्छे एवं अधिक अच्छे का संघर्ष चल रहा है। बहुत गहरे में जाकर और कठिनता से ही कुछ सफलता मिल पाती है। पर इस संघर्ष में मिलने वाली असफलता सफलता से भी कहीं अधिक भव्य कही जा सकती है। अर्थात् मुख्य सफलता नहीं अनवरत संघर्ष है और वही वस्तुतः भव्य भी है। अतिवादी पूर्णता या सफलता की इच्छा से संयत असफलता की व्यथा अधिक प्रिय है। आज जो जीवन-मूल्यों के आधार ज्यामिति और गणित बन रहे हैं–अर्थात् मानव-मूल्यों का आधार नाप-तोल एवं अनेक पहिका जोड़ बन गया है। दूसरी ओर आत्मचेतना से संभूत जो सूक्ष्म मानदण्ड हैं–उन सबकी दृष्टियों से अतिवादी दृष्टि की पूर्णता को सन्तुष्ट कर पाना सरल नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो कथाएँ, जो मान और मूल्य मानव के अन्तर में बस गए हैं, वे उसे कहीं अधिक प्रिय हैं।

भाव यह है कि मानवीय आन्तरिकता की गहनता को ज्यामिति-शास्त्र एवं अंक-गणित के आँकड़ों या किसी भी प्रकार के आरोपित मानों-मूल्यों के मापदण्ड से नहीं नापा-जोखा जा सकता।

रवि निकलता..एक शोधक की। (३९)

शब्दार्थ–रुधिर-सरिता=खून की नदी। व्रण=घाव। धौली=उजली। उद्विग्न=बेचैन। भालों=मस्तकों। सर्वतः=सब जगह। वक्ष=सीना। शोधक=खोजी अनुसन्धाता।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

प्रसंग—मानवीय मूल्यों का शोधक देखता, खोजता और सोचता है; फिर भी वह किसी बात को पूर्ण गहराई तक नहीं नाप पाता। इन विचारों को व्यक्त करते हुए कवि कह रहा है :

व्याख्या—अपनी लाल रक्त-सी धारा-प्रवाह किरणें बरसाता सूर्य उगता है और यहाँ की दीवारों को भी जैसे रक्त-रंजित अर्थात् लाल-गुलाल कर देता है। इसके बाद सांझ ढल जाने के बाद जब चाँद उदय होता है, तो जैसे वह दिन और दीवारों के घावों पर अपनी उजली श्वेत चाँदनी की पट्टियाँ बाँध देता है। व्याकुल मस्तिष्क पर आकश में आछोर फैले सितारे अनगिनत दशमलवों के भी बिन्दुओं जैसे चारों ओर फैल जाते हैं। इस प्रकार गणितीय उलझाव वास्तव में घातक ही प्रमाणित होता है। शोधक वक्ष-बाँहें खोल एक प्रकार से विमूढ़-सा बनकर रह जाता है।

भाव यह है कि मानवीय मूल्यों को गणितीय आँकड़ों से नहीं नापा-जोखा जा सकता। ऐसा करने पर असफलता एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ता ही पल्ले पड़ती है।

व्यक्तित्व वह कोमल..भटका !! (४०)

शब्दार्थ—स्फटिक प्रासाद=संगमरमर का महल। सामंजस्य-योजित=समन्वित ढंग से, योजनापूर्ण ढंग से निर्धारित।

प्रसंग—'ब्रह्मराक्षस' कविता में मानव-मूल्यों की व्याख्या करते, प्राचीन बावड़ी खण्डहर और वातावरण आदि के माध्यम से कविवर मुक्तिबोध कह रहे हैं :

व्याख्या—उस खण्डहर का समूचा व्यक्तित्त्व संगमरमर के उज्ज्वल-कोमल प्रासाद-सा महत्त था। उसमें एक जीना और जीने में अनेकों सीढ़ियाँ, जिन पर चढ़ पाना बड़ा ही कठिन था। तात्पर्य यह है कि संगमरमर के भवन जैसे उज्ज्वल व्यक्तित्व या स्थान के भीतर भी अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ और क्रमशः तात्त्विक मान्यताएँ रहा करती हैं। जिन सबका पार पा सकना अत्यधिक कठिन हुआ करता है। अतः उन भाव-तर्क और गणित के हिसाब से योजित सीढ़ियों को हम यों ही छोड़ दें। पर मन उस सबमें सामंजस्य बिठाने के लिए इधर-उधर ज्ञान की ग्रसता का सहारा पाने के लिए निरन्तर भटकता ही रहा करता है।

किन्तु-युग बदला..ट्रेजडी है नीच !!

शब्दार्थ—धन-अभिभूत=धन से प्रभावित। झाईं=परछाईं। आत्मचेतस्=चिन्तक, शोधक। विषादाकुल=निराशा से पीड़ित।

प्रसंग—परम्परा या किसी भी मान्यता का महत्त्व वस्तुतः उसकी अवस्थितियों में जीकर ही अंकित किया जा सकता है, यह विचार व्यक्त करते हुए कवि कह रहा है :

व्याख्या—खण्डहर, बावड़ी और उसमें रहने वाले राक्षस का अपना अस्तित्त्व काल था, युग था। पर अब युग बदल गया है। अतः इन सबके साथ जुड़ी मान्यताओं का मान-मूल्य भी बदल गया है। अब तो धन के लाभ और कीर्ति की दृष्टि से ही प्रत्येक व्यवसाय या कार्य संपादित किया जाता है। धन ही हृदय और मन हो गया है। पर धन से अत्यधिक प्रभावित मन में भी सत्य की परछाईं कहीं-न-कहीं चिलचिलाती रहती है। इधर चिन्तक-शोधक के प्राणों में इस सब में अनमनी का भाव था और विश्व-शोधकों में किसी प्रकार का बनाव नहीं था। अतः समस्त प्रकार की महत्ताएँ मन की आकुलता और निराशा में परिणत होकर रह गईं। यदि मेरा मिलन उस सबसे उसी समय अर्थात् उनके वास्तविक अस्तित्व काल में हो पाता, तो उन परिस्थितियों में स्वयं जीकर मैं उसे अपना मूल्य और उसकी महत्ता से अवगत कराता। यह भी बताता कि हम जैसों के लिए उस सबका वास्तविक उपयोग क्या है ? उसमें जो आन्तरिकता थी, उसके महत्व का भी मैं उद्घाटन करके रख देता। पर वह सब तो जैसे अन्तःबाह्य रूपी

पाटों के बीच में ही पिसकर रह गया और इस प्रकार एक नीचतापूर्ण त्रासदी घट गई।

बावड़ी में वह स्वयं..पहुँचा सकूँ। (४१)

शब्दार्थ—कटीले=काँटेदार। तम-बिवर=अंधेरे का बिल। सजल-उर=तरल हृदय।

प्रसंग—वह खण्डहर की बावड़ी में रहने वाला ब्रह्मराक्षस अन्तःबाह्य मूल्यों-मानों के संघर्ष में ही चुक गया। पर कवि उसके अधूरे काम को पूर्ण करने की कामना व्यक्त करता हुआ कह रहा है :

व्याख्या—आज वह (ब्रह्मराक्षस) स्वयं बावड़ी के भीतर समाया मानो एक पगलाया प्रतीक बनकर कह रहा है कि वह अन्तःबाह्य जीवन के गणित की पहेलियों को किस प्रकार हल करता रहा और अन्त में अपना काम अधूरा ही छोड़ मर गया। जैसे किसी घनी झाड़ी के काँटों में उलझ कर कोई पक्षी मरकर विदा हो जाता है, उसी प्रकार वह प्रश्नों की उलझनों में उलझ कर समाप्त हो गया। एक अनजानी ज्योति हमेशा के लिए बुझ गई। कवि कहता है कि आखिर ऐसा क्यों कर हुआ ! आज मैं उस ब्रह्मराक्षस का तरल हृदय वाला शिष्य बनना चाहता हूँ। जिससे कि मैं उसके अधूरे कार्यों को, उसकी वेदना को किसी निश्चित निष्कर्ष का आयाम प्रदान कर सकूँ अर्थात् सम्पूर्णता दे सकूँ।

भाव यह है कि मानव-जीवन की अबूझ गुत्थियों को सुलझाते हुए जो अतीत बन चुके हैं, यथार्थ के धरातल पर उनके निष्कर्षों को लेकर ही हमें आगे बढ़ना है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

असाध्य वीणा

आ गये प्रियंवद ! केशकम्बली ! गुफा-गेह !
राजा ने आसन दिया। कहा :
"कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आप।
भरोसा है अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी !"

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े ! लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख उस को, हट गये।
सभा की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं
प्रियंवद के चेहरे पर।

"यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि-प्रान्तर से
—घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी—
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी-तरु से इसे गढ़ा था—
उस के कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
उस की करि-शुण्डों-सी डालें

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

333

हिम-वर्षा से पूरे वन-यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उस के वल्कल से कन्धे खुजलाने आते थे।
और—सुना है—जड़ उस की जा पहुँची थी पाताल-लोक,
उस की गन्ध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि
सोता था
उसी किरीटी-तरु से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा :
हठ-साधना यही थी उस साधक की—
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला ।"

राजा रुके
साँस लम्बी ले कर फिर बोले :
"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ्र-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा-स्वरसिद्ध गोद में लेगा।
तात ! प्रियंवद !
लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन-मात्र प्रतीक्षमाण।"

केशकम्बली गुफा-गेह ने खोला कम्बल
धरती पर चुपचाप बिछाया।

वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर, प्राण खींच,
कर के प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार।
धीरे बोला : "राजन् ! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ—
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।
वज्रकीर्ति !
प्राचीन किरीटी-तरु !
अभिमन्त्रित वीणा !
ध्यान-मात्र इन का तो गद्गद विह्वल कर देने वाला है।"

चुप हो गया प्रियंवद।
सभा भी मौन हो रही।

वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।
धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।
सभा चकित थी—अरे, प्रियंवद क्या सोता है ?
केशकम्बली अथवा हो कर पराभूत
झुक गया वाद्य पर ?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा—
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

334

कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन-भर की साधना रही ?
भूल गया था केशकम्बली राज-सभा को :
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिस में साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी-तरु
जिस की जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिस के कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिस के हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।

"ओ विशाल तरु !
शत-सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिस का नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुंजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मंगल-गान सुनाये,
साँझ-सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल की मोद-भरी क्रीड़ा-काकलि
डाली-डाली को कँपा गयी—
ओ दीर्घकाय !
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु, आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त रूप,
मैं तुझे सुनूँ,
देखूँ, ध्याऊँ
अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक् :
कहाँ साहस पाऊँ

छू सकूँ तुझे !
तेरी काया को छेद, बाँध कर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करें आघात
छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वयं न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रच गये !

"नहीं, नहीं !
वीणा यह मेरी गोद रही है, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ,
ओ तरु-तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय—
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

"गा तू !
यह वीणा रखी है : तेरा अंग—अपंग !
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस-विद्,
तू गा :
मेरे अँधियारे अन्तस् में आलोक जगा

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

स्मृति का
श्रुति का—
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !

"हाँ मुझे स्मरण है :
बदली—कौंध—पत्तियों पर वर्षा-बूँदों की पटपट।
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलराते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
कुहरे में छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फुरकन :
ओस-बूँद की ढरकर—इतनी कोमल, तरल,
कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी।
भरे शरद् के ताल, लहरियों की सरसर-ध्वनि।
कूँजों का क्रेंकार। काँद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख-युक्त सायक-सी हंस-बलाका।
चीड़-वनों में गन्ध-अन्ध उन्मद पतंग की जहाँ-तहाँ टकराहट
जल-प्रपात का प्लुत एकस्वर।
झिल्ली-दादुर, कोकिल-चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय-साँय।

"हाँ, मुझे स्मरण है :
दूर पहाड़ों-से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीले कगार का गिरना छप्-छड़ाप।

झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूट कर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले-से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे-धीरे रिसना।
हिम-तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाते चुपचाप।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूँज—
काँपती मन्द गूँज—अनुगूँज—साँस खोयी-सी,
धीरे-धीरे नीरव।

"मुझे स्मरण है :
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बँधे समय वन-पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें :
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूँक, हुक्का, चिचियाहट।
कमल-कुमुद-पत्रों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल-पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलाँगों की।
पन्थी के घोड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैसों के भारी खुर की।

"मुझे स्मरण है :
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूँद को
उस क्षण की सहसा चौंकी-सी सिहरन।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ असंख्य झूमती करती हैं गुंजार—

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।
और साँझ को
जब तारों की तरल कँपकँपी
स्पर्शहीन झरती है—
मानो नभ में तरल नयन ठिठकी
निःसंख्य सवत्सा युवती माताओं के आशीर्वाद—
उस सन्धि-निमिष की पुलकन लीयमान।

"मुझे स्मरण है :
और चित्र प्रत्येक
स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझ को।
सुनता हूँ मैं
पर हर स्वर-कम्पन लेता है मुझ को मुझ से सोख—
वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ।......
मुझे स्मरण है—
पर मुझ को मैं भूल गया हूँ :
सुनता हूँ मैं—
पर मैं मुझ से परे, शब्द में लीयमान।

"मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं !
ओ रे तरु ! ओ वन !
ओ स्वर-सँभार !
नाद-मय संसृति !
ओ रस-प्लावन !
मुझे क्षमा कर—भूल अकिंचनता को मेरी—
मुझे ओट दे—ढँक ले—छा ले—
ओ शरण्य !
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले !
आ, मुझे भुला,
तू उतर वीन के तारों में

अपने से गा
अपने को गा—
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छायातप, वृष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छन्दयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे !
तू गा, तू गा—
तू सन्निधि पा—तू खो
तू आ—तू हो—तू गा ! तू गा !"

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था—
काँपी थीं उँगलियाँ।
अलस अँगड़ाई ले कर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर-शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे
डाल रहा था जाल हेम-तारों का।

सहसा वीणा झनझना उठी—
संगीतकार की आँखों में ठण्डी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी—
रोमांच एक बिजली-सा सब के तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिस में सोता है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।

राजा ने अलग सुना :
"जय देवी यशःकाय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल-गीत,
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राज-मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल
सिरिस का।
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े-से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्म-भाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

रानी ने अलग सुना :
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी—
तुम्हारे ये मणि-माणिक, कण्ठहार, पट-वस्त्र,
मेखला-किंकिणि—
सब अन्धकार के कण हैं ये ! आलोक एक है
प्यार अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उस में छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास-भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

सब ने भी अलग-अलग संगीत सुना।
इस को
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का—

उस को
आतंक-मुक्ति का आश्वासन :
इस को
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक—
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुदबुद।
किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन—
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मण्डी की ठेलमठेल, गाहकों की
आस्पर्धा-भरी बोलियाँ,
चौथे को मन्दिर की ताल-युक्त घण्टा-ध्वनि।
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की
अविराम थपक।
बटिया पर चमरौधे की रुँधी चाप सातवें के लिए—
और आठवें को कुलिया की कटी मेंड़ से बहते जल की
छुल-छुल।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की—
उसे युद्ध का ढोल :
इसे संझा-गोधूली की लघु टुन-टुन—
उसे प्रलय का डमरू-नाद।
इस को जीवन की पहली अँगड़ाई
पर उसको महाजृम्भ विकराल काल !
सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे—
हो रहे वशंवद, स्तब्ध :
इयत्ता सब की अलग-अलग जागी,
संघीत हुई,
पा गयी विलय।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

वीणा फिर मूक हो गयी।

साधु ! साधु !!"

राजा सिंहासन से उतरे—
रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
जनता विह्वल कह उठी "धन्य !
हे स्वरजित् ! धन्य ! धन्य !"

संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक—मानो
गोदी में सोये शिशु को पालना डाल कर मुग्धा माँ
हट जाय, दीठ से दुलराती—
उठ खड़ा हुआ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला :
"श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में—
वीणा के माध्यम से अपने को मैं ने
सब-कुछ को सौंप दिया था—
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब-कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है ।"

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली। लेकर कम्बल
गेह-गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने-अपने काम लगे।
युग पलट गया।

प्रिय पाठक ! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

□

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अज्ञेय : असाध्य वीणा

प्रारूप

डा॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि अस्तित्ववादियों के यहाँ एक नकार का भाव है, जीवन के निषेध का भाव है। 'न कुछ' में ज़िन्दगी की अप्रीतिकर सत्ता बसी हुई है। चार्वाक दर्शन के अनुरूप अस्तित्ववाद का भी मानना है कि मौत हमारी ज़िन्दगी को निरर्थक बनाती है। इसी निरर्थकता के भाव से निःसृत हुई है 'न कुछ' की सत्ता जो हमें जीवन के अंधेरे गलियारे में ले जाती है और जहाँ से अकर्मण्यता का भाव जीवन में शुरू होता है।

इस दर्शन के खिलाफ अज्ञेय ने जीवन प्रियता की बात की। निराशा की कुहेलिका से ज़िन्दगी को बाहर खींचकर उन्होंने इसे आशा के धरातल पर स्थापित किया। वे कहते हैं कि मौत जीवन को अप्रासंगिक नहीं बनाती बल्कि उसे और अधिक सार्थक, सकर्मक एवं प्रासंगिक बनाती है। यह भाव 'आंगन के पार द्वार', (काव्य संग्रह) 'अपने-अपने अजनवी' (उपन्यास) तथा 'एक बूँद सहसा उछली' (यात्रा-संस्मरण) में समान रूप से पसरा हुआ है।

डा॰ चतुर्वेदी कहते हैं कि अस्तित्ववादियों के यहाँ जो 'न कुछ' का भाव है उससे डरा जा सकता है, सशंकित हुआ जा सकता है लेकिन अज्ञेय की 'सबकुछ' वाली अवधारणा को जीवन का 'सबकुछ' सौंपा जा सकता है। 'न कुछ' में नकार है तो 'सब कुछ' में स्वीकार का भाव है। 'न कुछ' में मेखला-किंकिणि का भाव है, जबकि 'सब कुछ' में एक आलोक है 'प्यार अनन्य का'। मतलब *सब कुछ की तथता* में एक ओर अतीत का निर्वाह है तो दूसरी ओर वर्तमान की विवेचना, तीसरी ओर विनम्रता का भाव है तो चौथी ओर अहंकार का विसर्जन, पाँचवी ओर गहरी साधना के माध्यम से आत्म संचयन का भाव है तो छठी ओर विना किसी प्रतिदान के अपने-आप को आत्मदानित करने का विराट चिन्तन। 'न कुछ' आत्मवादी है जबकि 'सब कुछ' सिरिस का फूल है जिसमें धर्म का भाव है, सृष्टि के विकास का गूढ़तम रहस्य है, लोकमंगल के भाव का एक स्फुरण है।

असाध्य वीणा व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया की सूत्रात्मक व्याख्या है। अज्ञेय की भाषा प्रेमचंद की तरह घटनाओं के ब्यौरे में नहीं जाती बल्कि शब्दों से ही काम चलाती है। अज्ञेय की भाषा सूत्रात्मक भाषा है। एक-एक वाक्य जीवन के एक-एक सूत्र हैं, दर्शन की झलक है। '*सन्धीत हुई पा गई विलग*' में एक तरफ अगर सांद्रण है तो दूसरी तरफ विमुक्ति का भाव भी। लगाव होते हुए भी विलगाव का जो भाव है, वह अज्ञेय का जीवन-दर्शन है जिसको *इत्यलम्* के बाद उनकी काव्यात्यक यात्रा में देखा जा सकता है। आसक्त रहते हुए भी अनासक्ति का भाव जाग्रत रहता है। ज़ाहिर है अनासक्त आसक्ति, सन्धीत और विलग से साम्य रखने वाला भाव है। 'तथता' में कई स्तर पर द्वंद्वों का संश्लेष है — अतीत एवं वर्तमान का, माता एवं शिशु का, लोक एवं परलोक का, भाव जगत एवं वस्तु जगत का, मौन एवं मुखरता का, समष्टि एवं व्यष्टि का, लोक एवं शिष्ट का, तत्सम् एवं तद्भव का तथा इतिहास एवं परंपरा का।

1. *'राजा ने अलग सुना :*
जय देवी यशः काय
वरमाला लिए
गाती थी मंगल-गीत,
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राजमुकुट सहसा हल्का हो आया था,
मानो हो फूल सिरिस का।
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े-से झर गए,
निखर आया था जीवन-कांचन।
धर्म-भाव से जिसे निछावर वह कर देगा।'

किसी कवि, चिन्तक या कलाकार का विकास शून्य में नहीं होता। वह कितना ही परंपरा भंजक, विद्रोही और प्रगतिशील क्यूँ न हो, किसी-न-किसी रूप में परंपरा से अवश्य ही जुड़ा रहता है। उसकी जीवन-पद्धति, उसका इतिहास एवं उसकी संस्कृति को वर्तमान परिस्थितियाँ अवश्य प्रभावित करती हैं। जहाँ एक ओर प्राचीन संस्कार उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं वहाँ

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

दूसरी ओर उसका परिवेश भी उसे ढालता रहता है। जो कवि जितना ही अधिक प्रतिभाशाली होगा और जिसकी चेतना जितनी अधिक जागरूक और तीव्र होगी वह उतना ही अधिक अपनी परंपरा और परिवेश से प्रभावित होगा।

आधुनिक साहित्य में मानवीय व्यक्तित्व और उसकी सर्जनात्मकता की सार्थक चिंतना अज्ञेय के कृतित्व में मिलती है।

प्रस्तुत व्याख्येय पंक्तियाँ 'आँगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह में संगृहीत कविता 'असाध्य-वीणा' से ली गई हैं। इस कविता में व्यक्तित्व-निर्माण के साथ-साथ मौन के सर्जनात्मक महत्त्व पर विशेष बल दिया गया है। वज्रकीर्ति द्वारा निर्मित वीणा जो असाध्य होकर राजमहल में पड़ी हुई थी, उसको केशकंबली ने अपने सर्जनात्मक व्यक्तित्व के माध्यम से जब झंकृत किया तो सबकी इयता अलग-अलग जागी, सभी अपने-अपने स्तर पर आनंदित हुए और अपनी-अपनी क्षमतानुसार ऊर्जा के उस रूप को सुना एवं भोगा।

प्रस्तुत पंक्तियों में राजा को क्या अनुभूति हुई, इस पर कवि की समीक्षात्मक दृष्टि बेहद प्रभावशाली है। उस स्वर को जब राजा ने सुना तो उसे लगा मानों प्रशंसा की देवी वरमाला लिये मंगलाचरण कर रही हो। राजा ने स्वर तो अनेक सुना था लेकिन यह सर्वथा नवीन एवं मौलिक था। दुंदुभी की आवाज से बिल्कुल अलग। वीणा जब असाध्य हो गई थी तो राजमुकुट बड़ा बोझिल-सा लगता था। प्रकारांतर से यह संसृति की सर्जना का दबाव है जो उस साम्राज्य के मुखिया पर था। जो त्राता होता है, वह शरण्य होता है, हर शरणागत की रक्षा करना उसका परम कर्तव्य होता है लेकिन प्रजा जब असाध्य हो जाये तो यह राजा के लिए कलंक की बात है, राजमुकुट के लिए भार का प्रतीक है। यही कारण है कि वीणा जैसे ही बजी, सर्जना के रहस्य, जैसे ही खुले राजमुकुट सहसा हल्का हो आया मानों सिरिस का फूल हो। 'मानो' शब्द में उत्प्रेक्षा अलंकार है। हालाँकि अज्ञेय को अलंकारों से कुछ लेना-देना नहीं। भाव के प्रवाह में कोई शब्द आ गए तो आ गए, उनके आने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं। अलबत्ता यह बात दीगर है कि अज्ञेय की भाषा भाव की अनुगामिनी होती है जो एक सीखी हुई तथा सधी हुई प्रक्रिया के माध्यम से कविता में गहरे स्तर पर उतरती चली जाती है।

यह हल्कापन आंतरिक स्तर पर है। ईर्ष्या, द्वेष, महत्त्वाकांक्षा, चाटुकारिता जितने भी मन के ऋणात्मक रागभाव हैं उस स्वर के आलोक के प्रवाह में या तो झड़ गए या फिर समाप्त हो गए। इस कारण भी राजा अपने-आप को स्वच्छंद एवं ताजगी से भरपूर पा रहे हैं। सोना जब आग से निकलकर बाहर आता है तो वह कुंदन बन जाता है। राजा को भी ऐसा लग रहा है कि उनका '*निखर आया था जीवन-कांचन*'। वीणा जब असाध्य थी तो राजा के मन में समष्टि के, लोक के तथा इस सृष्टि के प्रति जो भाव थे वे दुविधाग्रस्त थे। चाहते हुए भी व्यक्तित्व के विकास में एक अवरोध था। विकास के सोपानों में भी एक रूकावट थी। भला राजा कैसे अपने व्यक्तित्व को मुकम्मल साबित करते? कोई-न-कोई तो था जो प्रश्नवाचक दृष्टि से उन्हें देख रहा था। प्रजा की आँखों में प्रश्न ताजमुकुट के लिए काँटा बन जाता है लेकिन झंकार के स्वर ने राजा के तमाम अवसाद के पहलुओं को दूर कर दिया और अब राजा यह कहने के लिए स्वतंत्र हो गए, '*धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा*।'

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि राजमुकुट का हल्का होना, मन की कुवृत्तियों का पटाक्षेप होना, जीवन का कांचन की तरह निखर कर बाहर आना तथा धर्म-भाव से अपने जीवन को उत्सर्ग कर देना ; ये कुछ और नहीं बल्कि सर्जना के रहस्यात्मक सूत्र हैं जिसको अज्ञेय ने व्यक्तित्व-निर्माण के क्रम में बड़ी खूबसूरती के साथ अपनी सधी हुई दृष्टि से रखा है, परोसा है।

2. *'रानी ने अलग सुना :*
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी —
तुम्हारे ये मणि-माणक, कंठहार, पटवस्त्र,
मेखला-किंकिणि —
सब अंधकार के कण हैं ये। आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को
थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिपा कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।'

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ज़िन्दगी जब वर्तमान की ठोकी-ठठाई पटरी से उतरने लगती है तो अतीत का प्रिय सम्भाषण कितना क्षालित लगने लगता है, यह तो वही बता सकता है जिसकी दृष्टि कहीं स्थिर टिकती नहीं बल्कि जार-जार हो चुके वर्तमान के वसन से निकलकर कहीं दूर चली जाती है और थककर जब लौटती है तो पैबंद चस्पा कर लीपापोती करना अपना सामर्थ्य समझ बैठती है।

अज्ञेय की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह आदमी ईमानदार है अपने अतीत एवं आज के प्रति। लिखता है ऐसे मानो आत्मकथा लिख रहा हो। कोई लाग-लपेट, ताम-झाम नहीं। लिखता है तो इस आत्मविश्वास के साथ कि जो हुआ वही हुआ। ऐसा नहीं कि 'ऐसा होता' या 'ऐसा होना चाहिए था।'

इस बेलागपन में एक ताजा खुशबू है। सत्य अगर एक अभिसिक्त एवं अनूदित सत्य है तो उसका साक्षात्करण एवं उसके प्रति पूर्ण समर्पण काव्यमय होने की चरम अवस्था है। इस बिन्दु पर आकर कवि कवि नहीं रह जाता बल्कि सत्य का पर्याय बन जाता है। 'जो हुआ', 'जो हो रहा है' या 'जो होगा,' सबों को वह एक खास किस्म के चश्में से देखने लगता है जिसमें पूर्वाग्रह नहीं, वह भी नही, तथ्य, सत्य, घटनाएँ कुछ भी नहीं बल्कि सब का निचोड़। इसी निचोड़ के कारण असाध्य वीणा का मौन टूटा था और वह बज उठी थी। बजने के बाद सभी '*एकाकी पार तिरे*' थे। उन सबों में रानी भी थी।

प्रस्तुत व्याख्येय पंक्तियाँ 'आँगन के पार द्वार' में संकलित 'असाध्य वीणा' से उद्धृत हैं। वीणा का बजना नाद का, स्वरलहरी का, तथा संगीत का जीवन में पदार्पण होना है। यह एक ऊर्जा है जिसकी अगर पहचान न हो सकी तो ज़िन्दगी बेमानी हो जायेगी, अप्रासंगिक हो जायेगी और जीने के अंदाज खत्म हो जायेंगे। इस झंकार के पहले रानी का जीवन अंधकार की कुहेलिका में डूबा हुआ था। ब्रह्म के रहस्य को बग़ैर जाने कोई आदमी आखिर कितनी दूर तक इस जीवन में चल पाएगा ? वीणा का बजना ब्रह्म के मौन का टूटना है। उस महामौन का जिसकी संसृति का कोलाहल शरण्य बनकर सोता रहता है। उस स्वर ने अंधकार की कुहेलिका से निकालकर रानी को प्रकाश में लाया और कहा — "*तुम्हारे ये मणि माणक, कंठहार, पट वस्त्र मेखला किंकिणि — सब अंधकार के कण हैं ये।*" स्पष्ट है कि रानी ऐश्वर्य की दुनिया में इतनी डूबी हुई थी कि उसे आम जनता का ख्याल तक न था। रानी समाज की नायिका होती है। नायिका 'नी' धातु से बना है जिसका मतलब है आगे बढ़ना या कुछ दूर आगे ले चलना। उसमें 'ण्वलु' प्रत्यय जोड़ने से 'नायक' शब्द बनता है जिसमें फिर 'टाप' प्रत्यय जोड़ने से 'नायिका' शब्द का निर्माण होता है। तात्पर्य यह कि रानी किसी भी समाज की प्रथम महिला होती है जिसके कारण उसका कर्त्तव्य है कि वह ऐशोआराम की दुनिया में न रहे बल्कि समाज के हर क्रंदन के ऊपर उसमें एक कारूण्य का भाव हो। ज़ाहिर है, भौतिक संपदाओं की दुनिया में, मणि-मेखलाओं की दुनिया में, किंकिणि एवं कंठहार के संसार में वह खोई रहेगी तो फिर शेष जीवन का क्या होगा। यह बहुत सच है कि आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में अति भौतिकता के आवरण में हमारी मिटती हुई सांस्कृतिक पहचान को, मानवीय मूल्यों को तथा लोक-मंगल के भाव को अज्ञेय ने अंधेरे से ग्रस्त समझा। यही कारण है कि उस स्वर के बाद रानी को यह अहसास होता है — '*आलोक एक है/प्यार अनन्य।*'

वीणा के उस स्वर में मानवीय मूल्यों का जो एक आलोक है और उस आलोक में सबको समान भाव से प्रकाशित करने का जो दायित्व है, इस रहस्य का सूत्र रानी को समझ में आता है। किसी मकान में अगर कोई खिड़की खुली हो और उससे छनकर रौशनी आती हो तो हम कह सकते हैं कि यह पूरब दिशा से या पश्चिम दिशा से आ रही है, उत्तर दिशा से या दक्षिण दिशा से। लेकिन खुले आकाश में प्रकाश किधर से आता है, यह बताना संभव नहीं। इसी में आकाश का आकाशत्व है। ठीक उसी तरह रानी ने जो वीणा के स्वर सुने वह प्यार का एक आलोक है, वह अभीष्ट है, आत्मनिष्ठ है, एकांगी है, अनन्य है। इस प्यार में एकतानता एवं समर्पण का एक भाव है। आलोक के बाद 'एक' शब्द का आना इस बात का संकेत है कि इस जीवन में सत्य एक ही है, झूठ सबके अलग-अलग होते हैं।

अज्ञेय आधुनिक काल के एक ऐसे मँजे हुए कवि हैं जिनके यहाँ तथ्य और सत्य में बड़ा फ़र्क होता है। तथ्य एक शब्दों का जाल-मात्र है, एक घटना का नाम है लेकिन जब उस घटना का आदमी के जीवन में अनुभव के साथ साक्षात्कार होता है तो वह सत्य बन जाता है। तात्पर्य यह कि तथ्य

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

142 अनुभूति से एकाकार होने के बाद सत्य बन जाता है। इसी का परिणाम है कि रानी उस ऊर्जा-लहरी को समझती है। अब उसे ज्ञात होता है कि प्रकृति के तमाम उपादान उसी से निर्मित हैं, उसी से सृजित हैं, वही इस दुनिया को धरती है, भरती है, पूरित करती है। उसी में जीवन का रस-भार सांद्रित है, समाहित है। उसी मे आक्रोश है तो वात्सल्य भी। एक ओर पिता का संरक्षण है तो दूसरी ओर माँ का साया भी है जिसमें कोई बालक सो जाता है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो जिंदगी को निरस्त नहीं बल्कि आश्वस्त करती है। इसमें स्थगन नहीं बल्कि स्थापन का भाव है। यह तोड़ती नहीं बल्कि जोड़ती है। इसके साथ शंकालु नहीं हुआ जा सकता। यह इकहरी, एकांगी एवं अधूरी नहीं बल्कि पूर्ण, समांगी एवं मुकम्मल है। अज्ञेय मानते हैं, खासकर प्रयोगवाद की भूमिका में लिखते हुए कहते हैं कि संवेदना कभी भी खंडित नहीं होती है। वह हमेशा पूर्ण एवं मुकम्मल होती है। ठीक उसी तरह प्यार अनन्य है, अभिन्न है। वह जीवन की एक ऐसी नियामिका है जो '*सहज विश्वास-भरी*' है। इस झंकार के बाद रानी की इयता भी मानो जाग उठती है यह कहते हुए कि वह भी '*उस एक प्यार को साधेगी*'।

अज्ञेय इन पंक्तियों में कहना चाहते हैं कि परिवर्तन बाहर से नहीं बल्कि भीतर से होता है। लौकिक दुनिया के साथ-साथ एक अलौकिक सत्ता भी है जिसको बगैर जाने पहचाने हमारी जिंदगी में साधना के सूत्र कभी भी हासिल नहीं हो सकते। राजा ने आत्मोत्सर्ग की बात की थी तो रानी ने उस स्वर-लहरी को साधने की बात की है। प्रकारांतर से यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पंक्तियाँ वीणा के स्वर के माध्यम से सर्जना के उस रहस्य को खोलते हुए आती हैं जिसमें एक ओर अगर ऊर्जा की अक्षयस्विनी स्त्रोत बसती है तो दूसरी ओर जीवन की अंतिम सत्ता यानी ब्रह्म की विराट-लीला का भी अद्भुत खेल छिपा हुआ है। लौकिकता के ऊपर अलौकिकता का, वस्तु के ऊपर भाव का तथा व्यष्टि के ऊपर समष्टि का जो भाव इन पंक्तियों में समाहित है, समादृत है वह अज्ञेय की सधी हुई दृष्टि का परिणाम है।

3. *'श्रेय नहीं कुछ मेरा :*
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में —
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब-कुछ को सौंप दिया था।
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब-कुछ की तथता थी—
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय,
जो शब्दहीन
सबमें गाता है।'

सृजन और सृष्टि आत्मा और ईश्वर के मध्य तनाव से उत्पन्न हुआ, ऐसा अज्ञेय मानते हैं। हम ईश्वर की दुनिया में रहते हैं और अनेक बार इस बात को भूल भी जाते हैं। इसी प्रकार हमारी दुनिया में ईश्वर रहता है - सिर्फ उतनी ही देर जितनी देर तक हमें उसके अपने अंदर रहने का बोध होता है। इस प्रकार कवि की इस आंतरिक दुनिया में, जिसमें ईश्वर कभी-कभी रहता है और ईश्वर की इस दुनिया में जिसमें कवि हर समय रहता है, एक तनाव की सृष्टि होती है — *मेरी शक्ति उस तनाव में है। वास्तव में मेरी दुनिया ही उस तनाव में है क्योंकि उसी में से मैं सृष्टि करता हूँ।*

प्रस्तुत व्याख्येय पंक्तियाँ 'आँगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह की कविता 'असाध्य वीणा' से ली गई हैं। इन पंक्तियों में कविता के कई स्तर हैं, कई रंग हैं जिस तरह जीवन के कई रंग हैं, कई आयाम हैं। वीणा आखिर क्यों झंकृत हुई, इस रहस्य का उद्घाटन इन पंक्तियों में हुआ है। निर्माता कभी भी प्रतिदान की मुद्रा में नहीं होता। अपनी काव्यात्मक यात्रा के तीसरे पड़ाव पर अज्ञेय बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का जो रहस्य खोलते हैं उसकी सुंदर अभिव्यक्ति प्रस्तुत पंक्तियों में हुई है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ऊब, उकाई, कुंठा, भय, संत्रास के वातावरण में जो पाश्चात्य, अस्तित्ववादी दर्शन आया वहाँ जीवन में निषेध एवं नकार की एक भावना थी। ऐसे भावों से अज्ञेय ने पश्चिमी मृत्यु के आतंक को भारतीय जीवन-प्रियता और आस्था के सहारे अतिक्रमित करना चाहा है। सृजन के इस रहस्य की आत्मदान के रूप में व्याख्या अपनी गठन में निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' का स्मरण कराती है। दोनों कविताओं में शक्ति

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

343

और सृजन को अंतर एवं बाह्य की टकराहट में देखने का यत्न किया गया है। 'शक्ति पूजा' के अंत में है —'*होगी जय होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन। कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।*' और असाध्य वीणा को साधने वाला केशकंबली अंत में कहता है—'*श्रेय .....गाता है।*'

'अपने' और 'सब कुछ की तथता' का अद्वैत कहीं-न-कहीं निराला एवं अज्ञेय को गहरे स्तर पर जोड़ता है। आत्मदान के माध्यम से 'शक्ति-पूजा' के राम शक्ति-संधान करते हैं और आत्मदान के ही माध्यम से असाध्य वीणा का कलावंत वीणा को साधता है। यही 'शक्ति' और 'सृजन' के रहस्य का साक्षात्कार है।

अज्ञेय हिन्दी साहित्य के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में पहले आत्म-संचयन का भाव दिखता है फिर बाद में उसके प्रक्षेपण का। इस संचयन में कवि अपने-आप को बिल्कुल खुला छोड़ देता है ठीक ब्रह्मराक्षस के नायक की तरह '*मैं भटका किया सब गुरु चिंतकों के पास गुरूता पाने के लिए।*' बंद कमरे में प्रकाश का आगमन किसी खास दिशा से हो सकता है किन्तु खुले आकाश में प्रकाश कहाँ से आता है, यह नहीं बताया जा सकता। यही तो आकाश का आकाशत्व है। अज्ञेय किसी का इन्तजार नहीं करना चाहते '*किसकी बाट, भरोसा किनका*'।

परंपरा के दाय और अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के मिश्रित प्रयास से व्यक्तित्व के निर्माण के क्रम में अज्ञेय ने टी० एस० इलियट के आदर्श का निर्वाह किया है। शुरूआती दौर में किरीटी-तरू तरू तात था जबकि बाद में कलावंत के लिए वीणा मोद भरे बालक के रूप में या फिर वात्सल्य से अभिसिक्त शिशु के रूप में उपस्थित होती है। पहले जनक, फिर शिशु, फिर जनक यही सृष्टि का चक्र है। बाईबिल भी कहता है कि ईश्वर भी स्वेच्छाचारी नहीं। बहुत सारी चीजें भी उसके वश में नहीं। उन्माद से बचने के लिए उसके लिए भी सर्जना आवश्यक है।

ज़ाहिर है सृजन हमारे जीवन का नियामक तत्त्व है। औरों से वीणा नहीं बजी क्योंकि उन्होंने सिर्फ अपनी बात की थी जबकि केशकंबली ने वीणा के माध्यम से स्वयं को सौंप दिया था। उसे स्मरण नहीं रहा कि वीणा मैं हूँ या मैं वीणा। यह 'पर' का 'अपर' में विसर्जन है। तथा व्यष्टि का समष्टि में विलयन। नरेश मेहता की '*संशय की एक रात*' की तरह '*अब मैं निर्णय हूँ समाज का, अपना नहीं*।'

तरू-तात इस कविता में परंपरा का प्रतीक है। प्रश्न उठ सकता है कि आखिर उस परंपरागत वृक्ष से वीणा का निर्माण क्यों हुआ? जबाव है कि निर्माण के बीज हमेशा परंपरा की जड़ों में बसा करते हैं जो समय के प्रवाह में निरंतर विकसमान होते रहते हैं। हर काल में साध्य अलग होते हैं। स्पष्ट है कि उसे साधने के लिए साधन भी अलग-अलग होंगे। मुक्तिबोध को इसलिए त्रासद स्थिति से गुजरना पड़ता है क्योंकि बदलते समय में लक्ष्य तो बदल लिया लेकिन परंपरागत मूल्यों में परिवर्तन नहीं किया। केशकंबली के अलावे अन्य कलाकार इसलिए असफल हुए क्योंकि उनके साधन अवैज्ञानिक, अप्रासंगिक, अनुपयोगी थे। आखिर वीणा कैसे बजती? वीणा का बजना प्रकारांतर से सृजन के रहस्य का उद्घाटन है। इस रहस्य में अपने को उत्सर्ग कर देने का जो भाव है, वही समर्पण है जो विश्वास की नींव पर खड़ा होता है। विश्वास वर्षों की एकांतिक, एकनिष्ठ एवं सर्जनात्मक प्रक्रिया का दूसरा नाम है। 'सब कुछ की तथता' उसी आकाशत्व की अंतिम परिणति है। अज्ञेय का मानना है कि आदमी अकेले कुछ नहीं कर सकता ठीक उसी तरह कि सारे जगत में तुम व्याप्त नहीं सकते, भुजाएँ टूट जाएँगी, हम फड़फड़ा कर गिर जाएँगे। जो अपने भीतर है उसी ही यदि साधा जाए तो मंजिल करीब हो जाएगी। अपने भीतर को साधना महामौन और महाशून्य को परीक्षित करना है। इन दोनों शब्दों के पहले लगाए गए 'महा' विशेषण एक संकेत करता है कि प्रकृति में भी एक नियम है, क़ानून है, अनुशासन है। प्रकृति की चरम सत्ता अप्राप्य है, जब तक साधना अधूरी रहेगी। अधूरी साधना के बूते व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होगा और जबतक व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होगा वीणा क्यूँकर झंकृत होगी?

शक्ति अपने को दृढ़-प्रतिज्ञ बनाने का एक उपक्रम है। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम जैसे ही दृढ़-प्रतिज्ञ होते हैं दुर्गा साक्षात् उपस्थित हो जाती है। जाहिर है शक्ति कोई वाह्य-वस्तु नहीं, यह तो हमारे विचारों, मन की भावनाओं में बसती है क्योंकि 'कुरूक्षेत्र' में इसी बात की प्रतिध्वनि है कि मुख्य है '*कर्त्ता हृदय की भावना*'।

केशकंबली ने वीणा को साधने से पहले वीणा के तारों पर सोये हुए संगीत के छन्दों को साधना बेहतर समझा। सृजन के रहस्य को बाहर नहीं ढूँढ़ा, आंतरिक स्तर पर तलाश की। अज्ञेय का मानना है कि हर आदमी के

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

भीतर नाद स्वर है जो शायद अविभाज्य हो, अनाप्त हो, अद्रवित एवं अप्रमेय हो। हो सकता है कि शब्दहीन भी हो लेकिन वह है। ये पंक्तियाँ 'अहम् ब्रह्मास्मि' या बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेंट' की याद दिलाती है :

Man has been created in the face of God.

कबीर को भी यहाँ ढूँढ़ा जा सकता है '*कस्तूरी कुंडलिनी बसे*' के रूप में। स्पष्ट है कि रचनाकार ने बाहर दौड़ लगाने से बेहतर अंतर्मन की यात्रा की है। केशकंबली वीणा के तारों पर माथा टेककर पहले सन्नाटे के छन्दों को पहचानता है जो मौन रहकर भी न सिर्फ वीणा को झंकृत करता रहता है बल्कि पूरी संसृति में अनहद नाद की तरह परिव्याप्त रहता है।

यह झंकार समानरूप से सबों में पाया जाता है चाहे जड़ हो या चेतन। '*सब में गाता है*' में कामायनी की वह दार्शनिक उपपत्ति समायी हुई लगती है जब कामायनीकार कहता है '*समरस थे जड़ या चेतन*'

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि 'असाध्य वीणा' की प्रस्तुत पंक्तियाँ अज्ञेय की ताज़िंदगी की मिहनत का प्रतिफल हैं। यही रचनाकार की पूरी ज़िंदगी की कमाई है और बेहतरीन धरोहर है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्ववादी दर्शन खासकर पश्चिम, के देशों में जब आया तो उस में जीवन के प्रति एक नकार का भाव था। निरूद्देश्यता का भाव था। मौत हमारी जिन्दगी की सबसे नकारात्मक वस्तु हो चली थी और इसके आतंक के साये में हमारी जीवन-प्रियता खो गई थी। पूरब के चिन्तकों के लिए यह एक समस्या ही नहीं बल्कि एक चुनौती भी थी कि वे कुछ आगे बढ़कर इस दर्शन से बेहतर सोचें। परिणाम यह हुआ कि अगर वहाँ 'न कुछ' है तो हमारे यहाँ स्वीकार का भाव है। वहाँ मौत अप्रासंगिक, जीवन की निरर्थक क्रिया का दूसरा नाम है जबकि हमारे यहाँ प्रासंगिक और जीवन का वह तत्त्व या नियामिका है जो ज़िन्दगी को न सिर्फ सार्थक बनाती है बल्कि प्रासंगिक भी। अपनी इसी संवेदना को अज्ञेय ने 'आंगन के पार द्वार' (काव्य-संग्रह), 'अपने-अपने अजनबी' (उपन्यास) तथा 'एक बूँद सहसा उछली' (यात्रा-संस्मरण) में वाणी दी है। यही कारण है कि डा॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि पश्चिम के देशों में 'न कुछ' में भय की एक सत्ता है जबकि पूरब के देशों में 'सबकुछ' को सबकुछ सौंपने के क्रम में इस सृष्टि की जीवन-प्रियता है। 'न कुछ' से डरा जा सकता है जबकि 'सब कुछ' को अपना सबकुछ सौंपा जा सकता है। यही 'तथता' है जो कई स्तरों पर 'असाध्य वीणा' में सांद्रित एवं संघनित होकर निर्मित होती है। यह तथता है समन्वय है कई द्वन्द्वों का, समाहार है कई भावों का तथा सामंजस्य है कई रूपों का। इसी संवेदना को निराला और प्रसाद ने भी अपनी रचनाओं में रखा है जिसके क्रमिक विकास के रूप में अज्ञेय ने अपने स्तर पर उसे और समृद्ध किया है। यह समन्वय है मुक्ति एवं बंधन का, आत्मदान एवं प्रतिदान का, तरू तात एवं बालक-वीणा का, माँ एवं शिशु का, सर्जना एवं वर्जना का, शक्ति एवं सृजन का, तत्सम् एवं तद्भव का, अतीत एवं वर्तमान का, परंपरा एवं आधुनिकता का तथा इतिहास एवं संस्कृति का। इन्हीं समन्वय की जड़ों में वे कार्य-कारण संबंध है जिनके कारण वीणा झंकृत हुई, शब्द का सत्य से साक्षात्कार हुआ, तथ्य सत्य बना, सृष्टि का महामौन टूटा और आदमी व्यक्तित्व के निर्माण के क्रम में स्वयं को समृद्ध करता हुआ विकास के पथ पर आगे चल पड़ा।

4. *'सबने भी अलग-अलग संगीत सुना।*
इसको
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का-
उसको
आतंक मुक्ति का आश्वासन:
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक-
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद।
किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल फँसी मछली की तड़पन-
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल,
ग्राहकों की आस्पर्धा भरी बोलियाँ
चौथे को मंदिर की ताल-युक्त घंटा-ध्वनि

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

345

और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही
नौका पर लहरों की अविराम थपक।
बटिया पर चमरौंधे की रूँधी चाप सातवें के लिए-
और आठवें को कुलिया की कटी
मेड़ से बहते जल की छुल-छुल।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के धुँधरू की-
उसे युद्ध का ढोल:
इसे संझा गोधूली की लघु टुन-टुन-
उसे प्रलय का डमरू-नाद।
इसको जीवन की पहली अंगड़ाई
पर उसको महाजृम्भ विकराल काल!

सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे-
हो रहे वशंवद, स्तब्ध:
इयत्ता सब की अलग-अलग जागी,
संधीत हुई,
पा गयी विलय।
राजा सिंहासन से उतरे-
रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
जनता विह्वल कह उठी, "धन्य!
हे स्वरजित्! धन्य! धन्य!"

अज्ञेय प्रयोगवाद के एक मूर्धन्य कलाकार हैं। 'असाध्य वीणा' को साधने में उनकी पूरी जिंदगी लग गई. मानो वीणा की साधना अपने-आप को साधना था। वज्रकीर्ति ने तो वीणा का निर्माण किया था। यही उसकी पूरी ज़िन्दगी की कमाई थी। इधर वीणा निर्मित हुई और वह चल बसा। लेकिन यह भौतिकता का निर्माण था। यही कारण है कि उसका स्थूल शरीर इस दुनिया से मिट गया। अब उस भौतिक वीणा में स्वर कैसे उतरे, छंदों का आगमन कैसे हों, स्वर लहरियाँ कैसे अवतरित हों रचनाकार के सामने यह एक शाश्वत प्रश्न बन कर रह गया। ऐसा लगता है कि मानो जॉर्ज बर्नार्ड शॉ की रचना '*पिग्मेलियन*' में जब वास्तुकार ने एक संदर नारी-मूर्ति का निर्माण किया था तो उसने भी ग्रीक देवता पिग्मेलियन से उसमें जान फूँकने का अनुरोध किया था। जान फूँकना और वीणा का मुखरित होना एक ही बात है। उस देवता का यहाँ कलावंत के रूप अवतरण निश्चय ही एक प्रशंसनीय कदम है।

प्रस्तुत पंक्तियाँ 'आँगन के पार द्वार' काव्य संग्रह में संगृहीत कविता 'असाध्य वीणा' से ली गई हैं। जैसे ही वीणा बजी, सबों ने अपने-अपने स्तर पर संगीत सुना और सारे-के-सारे डूब गए उन छंदों के सागर में। अलग-अलग संगीत सुनना आदमी की अपनी-अपनी इयता का प्रतीक है। T.S. Eliot ने वैयक्तिक प्रतिभा की बात की है, मार्क्स ने क्षमता के अनुसार पद पाने की बात की है। ऐसा लगता है कि अज्ञेय ने Marx और Eliot को मिलाया हो। देखना यह होगा कि वहाँ उपस्थित सारे लोगों ने कैसे कैसे अपने आनंद को आयामित किया। कुछ को ऐसा लगा मानो वह प्रभु का कृपा-वाक्य हो। ऐसा वही सोच सकता है जिसने उस अंतिम सत्ता को प्राप्त करने के क्रम में अपने को उत्सर्ग कर देने की क्षमता हासिल कर ली हो।

'*आतंक-मुक्ति का आश्वासन*' कुछ लोगों का आस्वाद्य बना। यहाँ सवाल उठता है कैसा आतंक, कैसी मुक्ति। जवाब दिया जा सकता है कि आधुनिकता की अंधीदौड़ में बढ़ते हुए अमानवीय विज्ञान का आतंक है, यन्त्र का दबाव है। इसी खतरे को कामायनीकार ने समझा था। निराला ने भी कई जगहों पर बाहर भरने से बेहतर भीतर भरने की बात की है। कामायनी का सारस्वत प्रदेश उसी आंतरिक दुनिया का प्रतीक है, जहाँ वे प्रजातंत्र की नींव रखना चाहते हैं, कल-पुर्जों के साथ-साथ औद्योगिक शहर बसाना चाहते हैं। लेकिन प्रज्ञा की दुनिया में अनुभूति के पिछड़ने का अंदेशा बना हुआ है। ज्ञान के शहर में आकर हृदय का गाँव कहीं छूट गया था, इस खतरे का संकेत बड़ी खूबसूरती के साथ दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में किया। अज्ञेय ने तमाम कवियों से आगे निकलकर खतरे को दो स्तर पर समझा — एक यन्त्र का खतरा और दूसरा सर्वसत्तावादी सत्ता का खतरा। यह स्वर उसी खतरे से मुक्ति का आश्वासन था। किसी को तिजोरी में भरे सोने की खनक सुनाई पड़ी। यह पूँजीवादी सत्ता की भौतिकता का संकेत है। अज्ञेय वैसे तो आभिजात्य

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

संस्कारों के कवि हैं लेकिन उनके यहाँ तद्भवों की आत्मीयता देखते ही बनती है। *'बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद'* उसी आत्मीयता का प्रतीक है। बहू जब नई-नई घर में आती है तो उसके नुपूर की आवाज भी बड़ी सहमी-सी लगती है। यहाँ सहमना इस बात का संकेत है कि कहीं उसकी कोई गतिविधि किसी को आहत न कर दे। अतः वह हर काम साध-साध कर करना चाहती है। कुछ को ऐसी ही ध्वनि सुनाई पड़ी। किसी को शिशु की किलकारी तो किसी को जाल में फँसी मछली की तड़पन सुनाई पड़ी। नभ उन्मुक्ता का पयार्य है। खुले आकाश में उड़ती हुई चिड़ियों का चहकना उनकी प्रकृति है। कुछ लोगों ने ऐसा ही स्वर सुना। बाजार में ग्राहकों की, खरीदारों की, विक्रेताओं की एक प्रतियोगितात्मक बोलियाँ सुनाई पड़ती है, ऐसा ही कोलाहल कुछ लोगों ने महसूस किया। कुछ ने पाया कि यह मन्दिर की तालयुक्त घंट-ध्वनि है। *'लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें'* प्रकारांतर से प्रगतिवाद के उस मेहनतकश वर्ग का स्मरण कराती है जिसमें अगर संगीत है तो वह है मेहनत का, मशक्कत का, श्रम का। नदी किनारे लंगर को डालकर नौकाएँ स्थिर हो जाती हैं और लहरों का अविराम थपेड़ा लगता रहता है। ऐसी ही ध्वनियाँ छठे को सुनाई पड़ी। *'बटिया पर चमरौंधे की रूँधी चाप'* यह भी समाज के निचले तबके में बसने वाले लोक-संगीत का प्रतीक है जहाँ स्वतः स्फूर्त छंदों के स्वर मुखरित होते रहते हैं। *'आठवें की कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल-छुल'* में भी लोक-जीवन की एक सोंधी सुरभि बसी हुई है। 'गमक' गमन करने वाले को कहते हैं। नट जाति के लोग खानाबदोश होते हैं। उस जाति की महिलाओं की एड़ियों में बँधे हुए घुँघरूओं की जो आवाज है कुछ लोगों को ऐसी ही ध्वनि सुनाई पड़ी। युद्ध के ढोल में जो नाद है, जो जयघोष है, उसी से मिलता जुलता स्वर कुछ लोगों ने सुना जब वीणा झंकृत हुई। सूर ने ब्रज की भूमि में गोचारण के क्रम में गायों की चर्चा की है। साँझ के समय गोधूलि बेला में मवेशियों का अपने घर की ओर लौटना और लौटने के क्रम में उनके गले में बँधी घंटियों से टुन-टुन की आवाज वातावरण में प्रसंचरित होती है; ऐसी ही आवाज कुछ लोगों को सुनाई पड़ी। डमरू का संबंध शंकर से है। शंकर देवताओं में संहारक के रूप में प्रतिष्ठित है। डमरू की आवाज

प्रलयंकारी होती है। हालाँकि उस प्रलय का चित्रण प्रसाद ने 'कामायनी' में और पंत ने 'पल्लव' में किया है लेकिन सिर्फ एक वाक्य में श्रवण बिम्ब को चाक्षुष बिम्ब में जिस खुबसूरती के साथ अज्ञेय ने परिवर्तित किया है, वह निश्चय ही उनकी रचनात्मक प्रतिभा की बानगी है। कुछ लोगों ने वीणा के झंकार में प्रलय का संगीत सुना। वीणा बहुत ही कोमल, सुन्दर एवं स्निग्ध वाद्ययंत्र है। उसके तारों पर सोये हुए संगीत के मौन छंद जब जागे तो ऐसा लगा मानो किसी ने जीवन की पहली अँगड़ाई ली हो। अँगड़ाई लेना तन्द्रालस्य से निकलकर कार्यक्षेत्र में आने का दूसरा नाम है। यह जीवन की सकर्मक अनुभूति का सटीक उदाहरण है। कुछ लोगों को वीणा के स्वर में विकराल काल का अट्टहास सुनाई पड़ा। प्रकारांतर से वह किसी आतंक का प्रतीक है। संभव है, रचनाकार ने आधुनिकता के दबाव में जीवन कितना क्षालित हुआ, संस्कृति के नभ के सूर्य जब अस्ताचल की ओर जाने लगे तो एक अँधेरा-सा छाने लगा, अस्मिता खतरे में पड़ गई और भौतिकता के विकास हमारे सामने काल बनकर खड़े हो गए; हो सकता है, रचनाकार उसी ओर संकेत करना चाहता हो वरना वीणा की ध्वनि में काल का स्वर सुनाई पड़ना कहीं से भी प्रासंगिक नहीं लगता।

वीणा जब मुखर हुई तो स्वर तो एक ही निकला लेकिन रचनाकार का मानना है कि सबों ने अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार उसको भोगा, उसमें डूबें, उसमें तिरे, झिपे और फिर जागे। तात्पर्य यह कि हर आदमी की वैयक्तिक प्रतिभा अलग-अलग होती है। बचपन से लेकर अनुभव के इस पड़ाव तक एक ही परिवेश में रहता हुआ आदमी आखिर औरों से अलग क्यों हो जाता है? एक ही वस्तु की विवेचना में कुछ लोग क्यों भिन्न-भिन्न मतों के आग्रही हो जाते हैं। कहने का मतलब यह कि हर आदमी की अपनी निजी ज़िन्दगी होती है, उसकी स्वायत सत्ता होती है, उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। अगर यह प्रगतिवादी कविता होती तो सारे लोग अलग-अलग स्तर पर न डूबकर एक ही स्वर पर डूबते। एक ही वैचारिक प्रतिबद्धता की छोर पकड़कर कविता करना वहाँ सभी की नियति हो चली थी। अपने अंदर उठनेवाली स्फूर्त संवेदना वहाँ दफन हो जाती थी। इसी के खिलाफ प्रयोगवाद की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा कि हम जैसे ही दूसरी विचारधारा को अपनाते हैं, अपने अंदर की संवेदना को खत्म कर देते हैं। क्या किसी को देखकर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

347

हमारे अंदर संवेदना नहीं जाग सकती ? क्या हमारे अंदर वैयक्तिक भाव नहीं हो सकते ? यही कारण है कि अज्ञेय ने आदमी को प्रगतिवादी भीड़ से खींचकर प्रयोगवाद में स्थापित करने का प्रयास किया। उनके यहाँ हर आदमी की अपनी पहचान है, उसकी क़िस्मत है, उसका अलग व्यक्तित्व है। यहाँ तक कि वशंवद भी स्तब्ध हो गए जब वीणा झंकृत हुई। यह आदेशपाल भला उस स्वर की गहराई को क्या समझे लेकिन समझना और बात है जबकि आनंदित होना और बात है। समझने का संबंध विवेचना से है जो ज्ञान का पक्ष है जबकि आनंदित होना अनुभूति का एवं हृदय का पक्ष है। '*इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी*' के माध्यम से रचनाकार कहना चाहता है कि सभी की अगर अलग-अलग शक्तियाँ हैं तो सभी की अलग-अलग सीमाएँ भी हैं। इन्हीं शक्तियों और सीमाओं के बीच झुलते हुए लोगों के व्यक्तित्व में एक अजीब-सा स्फुरन हुआ जब वीणा झंकृत हुई। ऐसा लगा मानो वीणा के स्वर के साथ सबों की सन्धि हो गयी, सबों का सान्द्रण हो गया। यह अलग-अलग वैयक्तिकता का उस तरू-तात रूपी सामाजिकता में विसर्जन है लेकिन अज्ञेय की रचनात्मक दृष्टि देखिए कि उस सान्द्रण के बाद भी अनासक्ति का एक भाव है, '*पा गई विलय*'। अज्ञेय शुरूआती दौर में भले ही हताशा एवं विद्रोह के कवि रहे हों, लेकिन जैसे-जैसे दृष्टि प्रौढ़ होती गई, उनकी रचनाओं में निखार आता गया। अज्ञेय ने इस दर्शन को स्थापित किया है कि आसक्ति से मुक्ति नहीं मिलनेवाली। जीवन में किसी के प्रति सान्द्रित होना बहुत अच्छी बात है लेकिन उस विलय में भी अपनी स्वतंत्र सत्ता का ख्याल रहे, वह विलय अपने को समृद्ध करने के लिए हो न कि अपनी पहचान को मिटाने के लिए क्योंकि जैविक तौर पर एक आदमी दूसरे के समान हो ही नहीं सकता। फिर एक में दूसरे का खो जाना अपने-आप में ऐतिहासिक गलती है। हाँ, एक-दूसरे के साहचर्य के क्रम में दोनों का समृद्ध होना बेहद अच्छी चीज है। इसी को '*अनासक्त आसक्ति*' का भाव कहते हैं। मतलब आसक्त होते हुए भी अनासक्ति का भाव रहे। ठीक उसी तरह कि कुरुक्षेत्र का धर्मराज लिप्त होते हुए भी कहीं-न-कहीं निर्लिप्त था।

स्वरित होने के बाद वीणा फिर मूक हो गई। यह पंक्ति अपने-आप में एक सोच है, एक दर्शन है, एक जीवन है, एक प्रक्रिया है। रचनाकार ने कहना चाहा है कि सर्जना के क्षण लंबे नहीं होते या फिर एक जैसे नहीं होते। दूसरा व्यक्ति क्या, केशकंबली ही फिर से उस वीणा को बजाने का प्रयास करता तो संभव था कि वीणा का इस बार का स्वर पहले से कुछ अलग, इतर होता। दूसरी बात यह कि जब-जब केशकंबली जैसा व्यक्ति आयेगा, वीणा झंकृत होगी और जैसे ही वह वीणा को गोद से हटाकर अलग रख देगा, वह मूक हो जायेगी। तात्पर्य यह कि पुनः वीणा को बजाने के लिए हमें केशकंबली बनना होगा, कलावन्त की उस सर्जनात्मक ऊँचाई पर जाना होगा, अपने अंतर्मन को साधते हुए एक लंबी अंतर्यात्रा से गुजरना होगा और फिर तब कहीं जाकर वह वीणा बजेगी। सर्जना के क्षण बिल्कुल लघु होते हैं। बाद में तो उसका विस्तार होता है। 'शेखर' में भी वेदना की उस घनीभूत रात में देखे गए उस 'विजन' का ही परिणाम था कि उतनी महत्त्वपूर्ण रचना का निर्माण हुआ। उसी सर्जना के बिन्दु को पकड़ना, समझना और फिर कुछ देर तक उसके साथ जीना रचनाकार की सबसे बड़ी समस्या होती है। शाबाशी देते हुए राजा अपने सिंहासन से नीचे उतरे। इस 'साधु ! साधु !' में और 'राम की शक्ति-पूजा' के 'साधु-साधु' में गजब की समानता है। वहाँ शक्ति का संधान है तो यहाँ सर्जना की प्रक्रिया। गहरे स्तर पर दोनों एक ही हैं। इसलिए क्योंकि राम ने भी वह शक्ति आत्मदान के माध्यम से हासिल की थी और यहाँ भी केशकंबली ने वीणा के माध्यम से अपने को सौंपकर सर्जना के रहस्य को जाना। सर्जना समर्पण माँगती है जो सतत् साधना का प्रतिफल हुआ करती है और साधना विश्वास की नींव पर खरी उतरती है। अपने ऊपर विश्वास कर्म-पथ पर अग्रसर होने के लिए बहुत जरूरी है। यह विश्वास तभी हो सकता है जब 'पर और अपर' के बीच भेद न हो, 'मैं' और 'तू' एक हो जाएँ, शब्द और सत्य मिलकर एक सत्ता बन जाए। यह पूर्वाग्रह का विसर्जन है, अपने अहंकार का विलयन है और व्यष्टि एवं समष्टि के बीच तथा वैयक्तिकता और सामाजिकता के बीच जब कोई भेद न रह जाए तभी आदमी साधुता की पात्रता हासिल कर सकता है। इसी खुशी में रानी ने उस कलावंत को अपनी सतलड़ी माला अर्पित कर दी। जनता भाव-विभोर हो उठी और 'धन्य'धन्य' का स्वर चारों ओर से आने लगा। 'राम की शक्ति-पूजा' में राघव का हस्त थामते हुए देवी ने 'धन्य राम' कहा था। यहाँ जनता ने उस कलाकार के लिए '*धन्य स्वरजित !*' कहा। यह बहुत जायज है कि कोई भी सफलता तुरंत हासिल नहीं होती। उसके लिए अपने-आपको भूलना पड़ता

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

है। खुद को साधते हुए अपने आप को मिटाना पड़ता है। कोई भी आदमी 'धन्य' जैसा विशेषण बड़े ही कठिन तप के बाद, बहुत झंझावातों एवं थपेड़ों के बाद पाता है। अपने तीसरे काव्यात्मक पड़ाव पर अज्ञेय ने जिस संवेदना की बात की है कि बिना किसी आशा और उम्मीद के अपने-आप को देने में उत्सर्ग का जो भाव है और उसमें जो आनंद है उसकी तुलना किसी भौतिकता के तराजू पर नहीं की जा सकती। वह एक आत्मानंद है। जनता के मुख से निकला शब्द 'धन्य' जब केशकंबली के कानों में पड़ा होगा तो निश्चय ही उसे आनंद की जिस दुनिया की अनुभूति हुई होगी, उसे कोई भौतिक पदार्थ नहीं दे सकता। यह साधना और सफलता का आनंद है। व्यक्तित्व निर्माण के क्रम में हार रोज स्वयं को समृद्ध करने का आनंद है, निरंतर संस्कारवान होने का आनंद है।

❑❑❑

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

— [illegible]-वर्ष

हरिजन-गाथा

एक

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था !
महसूस करने लगीं वे
एक अनोखी बेचैनी
एक अपूर्व आकुलता
उनकी गर्भकुक्षियों के अन्दर
बार-बार उठने लगी टीसें
लगाने लगे दौड़ उनके भ्रूण
अन्दर ही अन्दर
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन-माताएँ अपने भ्रूणों के जनकों को
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था...

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं—
तेरह के तेरह अभागे—
अकिंचन मनुपुत्र
जिन्दा झोंक दिए गए हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा !
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था...

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
महज दस मील दूर पड़ता हो थाना
और दरोगा जी तक बार-बार
खबरें पहुँचा दी गई हों संभावित दुर्घटनाओं की

और, निरंतर कई दिनों तक
चलती रही हों तैयारियाँ सरेआम
(किरासिन के कनस्तर, मोटे-मोटे लक्कड़,
उपलों के ढेर, सूखी घास-फूस के पूले
जुटाये गये हों उल्लासपूर्वक)
और एक विराट चिताकुंड के लिए

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

158

खोदा गया हो गड्ढा हँस-हँसकर
और ऊँची जातियोंवाली वो समूची आबादी
आ गई हो होली वाले 'सुपर मांज' के मूड में
और, इस तरह जिन्दा झोंक दिए गए हों

तेरह के तेरह अभागे मनुपुत्र
सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों द्वारा
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था...
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था...

दो
चकित हुए दोनों वयस्क बुजुर्ग
ऐसा नवजातक
न तो देखा था, न सुना ही था आज तक !
पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर ?
रामजी के आसरे जी गया अगर
कौन सी माटी गोड़ेगा ?
कौन सा ढेला फोड़ेगा ?
मगह का यह बदनाम इलाका
जाने कैसा सलूक करेगा इस बालक से
पैदा हुआ है बेचारा—
भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के घर में
जीवन गुजारेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहाँ-तहाँ बनमानुस-जैसा
अधपेटा रहेगा अधनंगा डोलेगा
तोतला होगा कि साफ-साफ बोलेगा
जाने क्या करेगा
बहादुर होगा कि बेमौत मरेगा...
फिक्र की तलैया में खाने लगे गोते
वयस्क बुजुर्ग दोनों, एक ही बिरादरी के हरिजन
सोचने लगे बार-बार...
कैसे तो अनोखे हैं अभागे के हाथ-पैर
रामजी ही करेंगे इसकी खैर
हम कैसे जानेंगे, हम ठहरे हैवान
देखो तो कैसा मुलुर-मुलुर देख रहा शैतान !
सोचते रहे दोनों बार-बार...

हाल ही में घटित हुआ था वो विराट दुष्कांड...

झोंक दिये गये थे तेरह निरपराध हरिजन
सुसज्जित चिता में...

यह पैशाचिक नरमेध
पैदा कर गया है दहशत जन-जन के मन में
इन बूढ़ों की तो नींद ही उड़ गई है तब से !
बाकी नहीं बचे हैं पलकों के निशान
दिखते हैं दृगों के कोर ही कोर
देती है जब-तब पहरा पपोटों पर
सील-मुहर सूखी कीचड़ की

उनमें से एक बोला दूसरे से
बच्चे की हथेलियों के निशान
दिखलायेंगे गुरुजी से
वो जरूर कुछ न कुछ बतलायेंगे
इसकी किस्मत के बारे में
देखो तो ससुरे के कान हैं कैसे लम्बे
आँखें हैं छोटी पर कितनी तेज हैं
कैसी तेज रोशनी फूट रही है इनसे !
सिर हिलाकर और स्वर खींचकर
बुद्धू ने कहा—
हाँ जी खदेरन, गुरु जी ही देखेंगे इसको
बतायेंगे वही इस कलुए की किस्मत के बारे में
चलो, चलें, बुला लावें गुरु महाराज को...

पास खड़ी थी दस साला छोकरी
दद्दू के हाथों से ले लिया शिशु को
सँभलकर चली गई झोंपड़ी के अन्दर

अगले नहीं, उससे अगले रोज
पधारे गुरु महाराज
रैदासी कुटिया के अधेड़ संत गरीबदास
नकली वाली गंगा-जमनी दाढ़ी थी
लटक रहा था गले से
अँगूठानुमा जरा-सा टुकड़ा तुलसी काठ का
कद था नाटा, सूरत थी साँवली
कपार पर, बांई तरफ घोड़े के खुर का
निशान था
चेहरा था गोल-मटोल, आँखें थीं घुच्ची
बदन कठमस्त था...

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ऐसे आए अधेड़ संत गरीबदास प्यारे
चमर टोली में...

'अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटाएँगे धरती से
इसके साथी और संघाती
'यह उन सबका लीडर होगा
नाम छपेगा अखबारों में
बड़े-बड़े मिलने आएँगे
लद-लदकर मोटर-कारों में

'खान खोदने वाले सौ-सौ
मजदूरों के बीच पलेगा
युग की आँचों में फ़ौलादी
साँचे-सा यह वहीं ढलेगा

'इसे भेज दो झरिया-फरिया
माँ भी शिशु के साथ रहेगी
बतला देना, अपना असली
नाम-पता कुछ नहीं कहेगी

'आज भगाओ, अभी भगाओ
तुम लोगों को मोह न घेरे
होशियार, इस शिशु के पीछे
लगा रहे हैं गीदड़ फेरे

'बड़े-बड़े इन भूमिधरों को
यदि इसका कुछ पता चल गया
दीन-हीन छोटे लोगों को
समझो फिर दुर्भाग्य छल गया

'जनबल धनबल सभी जुटेगा
हथियारों की कमी न होगी
लेकिन अपने लेखे इसको
हर्ष न होगा, गमी न होगी

'सब के दुख में दुखी रहेगा
सबके सुख में सुख मानेगा
समझ-बूझकर ही समता का

असली मुद्दा पहचानेगा
'अरे देखना इसके डर से
थर-थर काँपेंगे हत्यारे
चोर-उचक्के-गुंडे-डाकू
सभी फिरेंगे मारे-मारे

'इसकी अपनी पार्टी होगी
इसका अपना ही दल होगा
अजी देखना, इसके लेखे
जंगल में ही मंगल होगा

'श्याम सलोना यह अछूत शिशु
हम सबका उद्धार करेगा
आज यही सम्पूर्ण क्रांति का
बेड़ा सचमुच पार करेगा

'हिंसा और अहिंसा दोनों
बहनें इसको प्यार करेंगी
इसके आगे आपस में वे
कभी नहीं तकरार करेंगी...'

इतना कहकर उस बाबा ने
दस-दस के छः नोट निकाले
बस, फिर, उसके होंठों पर थे
अपनी उँगलियों के ताले

फिर तो उस बाबा की आँखें
बार-बार गीली हो आईं
साफ सिलेटी हृदय-गगन में
जाने कैसी सुधियाँ छाईं

नव शिशु का सिर सूँघ रहा था
विह्वल होकर बार-बार वो
साँस खींचता था रह-रहकर
गुमसुम-सा था लगातार वो
पाँच महीने होने आए
हत्याकांड मचा था कैसा !
प्रबल वर्ग ने निम्न वर्ग पर

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

पहले नहीं किया था ऐसा !

देख रहा था नवजातक के
दाएँ कर की नरम हथेली
सोच रहा था—इस गरीब ने
सूक्ष्म-रूप में विपदा झेली

आड़ी-तिरछी रेखाओं में
हथियारों के ही निशान हैं
खुखरी है, बम है, असि भी है
गंडासा-भाला प्रधान हैं

दिल ने कहा—दलित माओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे वे, अन्तिम
विप्लव में सहभागी होंगे
दिल ने कहा—अरे यह बच्चा
सचमुच अवतारी वराह है
इसकी भावी लीलाओं का
सारी धरती चरागाह है

दिल ने कहा—अरे हम तो बस
पिटते आए, रोते आए !
बकरी के खुर जितना पानी
उसमें सौ-सौ गोते खाए !

दिल ने कहा—अरे यह बालक
निम्न वर्ग का नायक होगा
नई ऋचाओं का निर्माता
नये वेद का गायक होगा
होंगे इसके सौ सहयोद्धा
लाख-लाख जन अनुचर होंगे
होगा कर्म-वचन का पक्का
फ़ोटो इसके घर-घर होंगे

दिल ने कहा—अरे इस शिशु को
दुनिया-भर में कीर्ति मिलेगी
इस कलुए की तदबीरों से
शोषण की बुनियाद हिलेगी

दिल ने कहा—अभी जो भी शिशु
इस बस्ती में पैदा होंगे
सब के सब सूरमा बनेंगे
सब के सब ही शैदा होंगे

दस दिन वाले श्याम सलोने
शिशु मुख की यह छटा निराली
दिल ने कहा—भला क्या देखें
नजरें गीली पलकों वाली
थाम लिये विह्वल बाबा ने
अभिनव लघु मानव के मृदु पग
पाकर इनके परस जादुई
भूमि अकंटक होगी लगभग
बिजली की फूर्ती से बाबा
उठा वहाँ से, बाहर आया
वह था मानो पीछे-पीछे
आगे थी भास्वर शिशु-छाया

लौटा नहीं कुटी में बाबा
नदी किनारे निकल गया था
लेकिन इन दोनों को तो अब
लगता सब कुछ नया-नया था

तीन

'सुनते हो' बोला खदेरन
'बुद्धू भाई देर नहीं करनी है इसमें
चलो, कहीं, बच्चे को रख आवें...
बतला गये हैं अभी-अभी
गुरु महाराज,
बच्चे को माँ-सहित हटा देना है कहीं
फ़ौरन बुद्धू भाई !'...
बुद्धू ने अपना माथा हिलाया
खदेरन की बात पर
एक नहीं, तीन बार !
बोला मगर एक शब्द नहीं
व्याप रही थी गंभीरता चेहरे पर
था भी तो वही उम्र में बड़ा
(सत्तर से कम का तो भला क्या रहा होगा !)
'तो चलो !

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

353

उठो फौरन उठो !
शाम की गाड़ी से निकल चलेंगे
मालूम नहीं होगा किसी को...
लौटने में तीन-चार रोज तो लग ही जाएँगे...

'बुद्धू भाई तुम तो अपने घर जाओ
खाओ, पियो, आराम कर लो
रात में गाड़ी के अन्दर जागना ही तो पड़ेगा...
रास्ते के लिए थोड़ा चना-चबेना जुटा लेना
मैं इत्ते में करता हूँ तैयार
समझा-बुझाकर
सुखिया और उसकी सास को...'

बुद्धू ने पूछा, धरती टेककर
उठते-उठते—
'झरिया, गिरिडीह, बोकारो
कहाँ रखोगे छोकरे को ?
वहीं न ? जहाँ, अपनी बिरादरी के
कुली-मजूर होंगे सौ-पचास ?
चार-छै महीने बाद ही
कोई काम पकड़ लेगी सुखिया भी...'
और, फिर अपने आप से
धीमी आवाज में कहने लगा बुद्धू
छोकरे की बदनसीबी तो देखो
माँ के पेट में था तभी इसका बाप भी
झोंक दिया गया उसी आग में...
बेचारी सुखिया जैसे-तैसे पाल ही लेगी इसको
मैं तो इसे साल-साल देख आया करूँगा
जब तक है चलने-फिरने की ताकत चोले में...
तो क्या आगे भी इस कलुए के लिए
भेजते रहेंगे खर्ची गुरु महाराज ?...

बढ़ आया बुद्धू अपने छप्पर की तरफ
नाचते रहे लेकिन माथे के अन्दर
गुरु महाराज के मुँह से निकले हुए
हथियारों के नाम और आकार-प्रकार
खुखरी, भाला, गंडासा, बम, तलवार...
तलवार, बम, गंडासा, भाला, खुखरी...

[3-10-77 से 12-10-77]

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

अपूर्व विक्षोभ···
जिज्ञासा की बाल-सुलभ ताज़गी···
ठगे जाने की प्रायोगिक सिधाई···
प्रवंचितों के प्रति अथाह ममता···
क्या नहीं झलक रही
इन घुच्ची आँखों से?
हाय, हमें कोई बतलाए तो!
क्या नहीं है
इन घुच्ची आँखों में!

1984

बादल को घिरते देखा है

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादलों को घिरते देखा है।

तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशा काल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा - चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठनेवाले
निज के ही उन्मादक परिमल—
के पीछे धावित हो-होकर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परंतु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,

जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारु कानन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी में,
रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपटी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

1939

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

'व्याख्याखंड'

(क) बादल को घिरते देखा है

अमल धवल गिरि के — — — — — — — — — — — —हंसो को तिरते देखा है।

शब्दार्थ—अमल=शुद्ध, धवल=श्वेत, गिरि=पर्वत, तुहिन=ओस, तुग=ऊँचा, सलिल=जल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्य पंक्तियां 'बादल को घिरते देखा है' नामक कविता से उद्धृत है। इसके रचयिता प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि नागार्जुन है।

प्रसंग—सामाजिक यथार्थ नागार्जुन की कविताओं की प्रमुख विषय—वस्तु है। इसके साथ ही उन्होंने प्रकृति विषयक शुद्ध संवेदनात्मक कविताओं की रचना की है। प्रस्तुत छंद में हिमालय के बर्फीले प्रदेश में आसमान में घिरे बादलों की सुंदर छवि का वर्णन किया गया है। यह कविता सौन्दर्यबोध की दृष्टि से छायावादी भाव—समृद्धि का स्मरण दिला देती है, लेकिन तात्कालिकता, यथार्थनिष्ठा, तटस्थ रागात्मकताएँ इसकी विशेषताएं है, जो इस कविता को प्रगतिशील सौन्दर्यबोध से जोड़ती है।

व्याख्या—हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि उसने शुद्ध सफेद बर्फ से ढकी हुई चोटियों पर बादलों के घिरने का सुन्दर दृश्य देखा है। वहाँ स्थित मानसरोवर में सुनहले कमल हैं, उन पर छोटे—छोटे मोती के समान शीतल ओस की बूंदों को गिरते हुये कवि ने देखा है। अनुभव की सहजता व स्निग्धता की दृष्टि से दोनों ही दृश्य चित्र रोचक हैं। हिमालय के उन्नत भाल पर अनेक झील है उनके सांवले नीले जल में वर्षा काल के समय में घनी प्रदेश से आने वाले गर्मी के प्रभाव से क्षुब्ध हंसो को मीठे—खट्टे कमलनाल कोक खोजते एंव तैरते हुये देखा है।

'बादल' कविमन के आत्मबोध का प्रतीक है। इसका संबंध जीवनराग से है। प्राकृतिक समृद्धि हिमालय की समृद्धि का आधार है। एक प्रगतिशील कवि के रूप में कवि व्यंजित करता है कि हमें अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक समृद्धि को बचाये रखने के लिए जागरूक होना चाहिए इसलिये बादलों का घिरना अस्मिता—संकट भी हो सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत छंद में आदर्श यथार्थ का संयोग है। प्रकृति विषयक सौन्दर्य के आस्वाद में कवि परिमार्जित अभिरुचि का परिचय देता है।

टिप्पणी—

1. संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावलीयुक्त व परिमार्जित काव्य भाषा।
2. कोमल कान्त पदावली का प्रयोग।
3. उपमा अलंकार।
4. नव कोमल आलोक बिखरता, हिम संस्कृति पर भर अनुराग।
   सित सरोज पर क्रीड़ा करता, जैसे मधुमय पिंग पराग॥ (प्रसाद)
5. सुरपति के हमही हैं अनुचर, जगतप्राण के भी सहचर।
   मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवन धन (पंत)
6. रुखये काले—काले बादल, नील सिन्धु में खुले कमलदल
   हरित ज्योति, चपला अति चंचल सौरभ के, रस के
   अलि घिर आये घन पावस के। (निराला)
7. माधुर्य गुण का प्रयोग किया गया है।
8. 'बादल को घिरते देखा है', में प्रगतिशील यथार्थ की व्यंजना है।

ऋतु बसंत कासुप्रभात— — — — — — — — — — — — — — — अपने पर चिढ़ते।

सन्दर्भ—यथावत्।

प्रसंग—हिमालय प्राकृतिक सौन्दर्य व सांस्कृतिक विरासत दोनों दृष्टियों से रचनाकारों के लिये केन्द्रीय आकर्षण का प्रतीक रहा है। दर्शन, साहित्य, कला, संगीत, संस्कृति, साधना के विविध तत्व यहां की मिट्टी में घुले मिले हैं। रचनाकार उन संदर्भो से प्रेरणा प्राप्त करता है। नागार्जुन हिमालय यात्रा के शौकीन हैं। यहां का प्रवास उनके प्रगतिशील मन को शान्त संयमित व आश्वस्त करता है, इसलिये प्रकृति से उत्पन्न चेतना एक प्रीतिकर अनुभव है। प्रस्तुत छंद विषय—वस्तु, वर्णन—कौशल, काव्य—रूढ़ि, भाषा—सौन्दर्य सभी दृष्टियों से प्रभावोत्पादक है।

व्याख्या—कवि बसंत के मौसम की मनोरम सुबह का वर्णन करते हुये कहता है कि बसंत का प्रात: कालीन वातावरण था। हवा धीरे—धीरे चल रही थी। प्रात:कालीन सूर्य की कोमल किरणों का प्रकाश सर्वत्र फैल रहा था। स्वर्णिम शिखर अगल—बगल स्थित थे। चकवा व चकवी रात भर अलग—अलग रहने के लिये अभिशप्त व विवश रहते हैं। सवेरा होने पर उनकी करुण वेदना शांत हो गई है, दोनों मानसरोवर के किनारे शैवाल नामक घास की हरी—भरी शय्या संयोग सुख हेतु कलहरत् है। कवि प्रकृति के इन समस्त क्रिया व्यापारों को देखता रहा है, इस समय भी देख रहा है।

हिमालय की बर्फीली घाटियों में, सैकड़ों—हजारों फुट की ऊँचाई पर कवि कस्तूरी मृग को देखता है। वे अपनी अदृश्य नाभि से उत्पन्न होने वाली गंध के पीछे—पीछे दौड़ते हुये स्वयं पर क्षुब्ध होते हैं। कवि व्यंजना के माध्यम से आम समृद्धि की ओर संकेत करता है। बाहरी मानदंडों से जुड़ने पर मनुष्य को जीवन के रस गंध की प्राप्ति नही हो सकती।

टिप्पणी—

1. शुद्ध वर्णनात्मक साहित्यिक भाषा।
2. कोमलकान्त पदावली।
3. कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूंढै बन माहिं।
   ऐसे घट—घट राम हैं दुनिया देखें नाहिं॥

कहां गया धनपति— — — — — — — — — — — —गरज—गरज भिड़ते देखा है।

सन्दर्भ—यथावत्।

प्रसंग—हिमालय सांस्कृतिक दृष्टि से संम्पन्न प्रदेश है। साहित्यकारों को सृजन की प्रेरणा यहां से मिलती रही है, वर्तमान में वह चेतना नही दिखाई पड़ती, जिसका संबंध कालिदास जैसे कवि से था।

व्याख्या—हिमालय के समृद्ध सांस्कृतिक प्रदेश में कवि समृद्धि के प्रतीक देवता कुबेर को ढूंढता है, न ही वहां वह प्रसिद्ध अलकापुरी का अस्तित्व है, कालिदास ने जिसका रोचक वर्णन किया था स्वर्ग से निकलकर कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले शिव के जटाजूट में समाहित होने वाली गंगा कहां है? दूत के दायित्व का निर्वाह करने वाले बादलों का अस्तित्व आज यथार्थ में कहां है, संभव है कि वह शीतल फुहार को छोड़ता हुआ बरस कर शांत हो गया। अतीत विषयक वास्तविकता से न जुड़ पाने की स्थिति में कवि उस प्रसंग चर्चा को छोड़ देता है, हो सकता है वह सब कुछ कवि कल्पना मात्र हो। जिसका वर्तमान में अस्तित्व व प्रभाव न हो, उसे भूल जाना ही उचित है। कवि तो वर्तमान के धरातल पर जीवन के यथार्थ का चित्रण करता है। उन्होंने शीत ऋतु की कंपकंपाती ठंड में आकाश की सी ऊँचाई वाले कैलाश शिखर पर महामेघ को झंझावत से गरज—गरज कर टकराते देखा है।

टिप्पणी—

1. प्रगतिशील यथार्थ दृष्टि की व्यंजना।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

2. प्रतीकात्मक शैली।
3. मानवीकरण, अलंकार।
4. हृदयगत लयबद्धता द्रष्टव्य है।
5. कहां अब वह वंशीवट? कहां गये नटनागर श्याम?
चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहां आज वह वृन्दावन (निराला)

शत–शत निर्झर–निर्झरणी– — — — — — — — — — — वंशी पर फिरत।

सन्दर्भ–यथावत्।

प्रसंग–प्रस्तुत छंद में कवि द्वारा हिमालय प्रदेश की सांस्कृतिक समृद्धि का वर्णन किया गया है। यहां कवि ने लोक जीवन की सहजता व सरसता का अनुभव किया है। नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण में प्रगतिशील यथार्थ दृष्टि है। कवि का मंतव्य है कि अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु हमें सावधान रहना चाहिये।

व्याख्या–हिमालय क्षेत्र में सैकड़ो झरने प्रवाहित हो रहे है, देवदारु का जंगल गुंजायमान है। रक्तिम उज्जवल भोजपत्रों से छायी हुई कुटिया के भीतर कवि किन्नर–किन्नरियों को देखता है। उनके जीवन में सहजता है, उनका प्रकृति के अवयवों से आत्मीय लगाव है किन्नरियां अपने केशों को रंग–बिरंगे सुगंधित फूलों से सजाये रहती है। गले में इन्द्रनील की माला धारण किये रहती है, उनका गला शंख जैसा स्निग्ध है कानों में कमल पुष्प लटकता है, वेणी में लाल कमल सुशोभित रहता है, चांदी से निर्मित मणियुक्त कलात्मक पान पात्र द्राक्षासव से पूरित लाल चंदन की त्रिपी पर, कस्तूरी मृग के नरम बेदाग छाले पर किन्नर–किन्नरियां पालथी मारकर बैठे हैं तथा रुखी कोमल अंगुलियाँ वंशी का स्पर्श कर रही हैं।

टिप्पणी–

1. संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक हिन्दी।
2. कोमलकान्त पदावली।
3. माधुर्य गुण।
4. अनुप्रास व रुपक अलंकार।
5. प्रगतिशील सौन्दर्यबोध एवं लोकसंस्कृति के चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत छंद महत्वपूर्ण है।

(ख) अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक– — — — — — — — — — — — — — — — शिकस्त।

सन्दर्भ–प्रस्तुत छंद नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता 'अकाल और उसके बाद' से उद्धृत किया गया है। नागार्जुन एक समर्थ प्रगतिवादी कवि के रुप में मानवीय संवेदना के विविध पक्षों का चित्रण करते हैं।

प्रसंग–नागार्जुन की कविताओं की प्रमुख विषय–वस्तु है–सामाजिक यथार्थ। प्रस्तुत कविता में वह अकाल के समय में अभावग्रस्त निम्नवर्गीय जीवन का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आशा व निराशा मनःस्थिति का जीवंत दृश्य चित्र नागार्जुन के काव्य वैभव का सशक्त साक्ष्य है।

व्याख्या–अकाल के बाद घर में अन्न न रहने के स्थिति में कई दिनों तक भोजन नहीं बना। घर का पूरा वातावरण उदासीन बना रहा। कवि को ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे चूल्हे रो रहे हों। इसी प्रकार घर की औरतें आटा पीसते समय गीत गाती रहीं हैं, पर अन्न के अभाव में चक्की से आटा नहीं पीसा गया इसीलिए चक्की भी उदास या सूनी प्रतीत होती है। कानी कुतिया भी भोजन के न रहने की स्थिति में निरन्तर गृहस्वामी के समीप सोती रही। छिपकलियां घर की दीवारों पर कई दिनों तक चक्कर लगाती रही। उन्हें कोड़े–मकोड़ो का आहार नहीं मिला। इसी प्रकार चूहे भी आहार न मिलने से लाचार बने रहे। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है।

सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपता से जुड़ना तथा उसकी व्याख्या करना प्रगतिशील कवियों का मुख्य उद्देश्य रहा। नागार्जुन अपनी कविताओं में दलित चेतना, सामाजिक विसंगतियों तथा विविध रंगों का इतनी सूक्ष्मता एवं सम्पूर्णता से चित्रण करते हैं कि वह प्रगतिशील काव्यधारा सबसे आगे खड़े नजर आते हैं। प्रस्तुत कविता अत्यंत संक्षिप्त है परंतु इसकी भाव विचारधारा व उद्देश्य विषयक समादर शक्ति अत्यंत विलक्षण है।

टिप्पणी–

1. सरल व्यवहारिक काव्य भाषा।
2. वर्णनात्मक शैली।
3. मानवीकरण अलंकार।
4. बिम्बों तथा प्रतीकों के माध्यम से कवि अकाल की भयावहता को सम्पूर्णता के साथ पाठको के समक्ष उपस्थित कर देता है। चूल्हा–चक्की, कानी कुतिया, अकाल की गम्भीरता को क्रमशः बढ़ाते जाते हैं। चूल्हे का रोना एक लोकोक्ति है जो अत्यंत दरिद्रता एवं कुछ भी शेष न रहने का प्रतीक है।
5. "सम्वत् 1953 में पड़ा हिंद में महाअकाल
घर–घर फांके होने लगे दर–दर प्राणी फिरे बेहाल" (भारतेन्दु)

दाने आये घर के अंदर– — — — — — — — — — — कई दिनों के बाद

सन्दर्भ–यथावत्।

प्रसंग–निम्न मध्यवर्गीय जीवन सामान्य प्राकृतिक आपदा को भी नहीं झेल पाता। उसका अस्तित्व अन्न के कुछ टुकड़ो पर बना रहता है। अकाल के दिनों में उसकी पूरी जीवनचर्या ही अवरुद्ध हो जाती है। जब कई दिनों के बाद अन्न आता है तब पूरे घर की स्वाभाविक खुशियाँ लौट आती है। चहल–पहल होने लगती है। इस असमय स्थिति का अत्यंत रोचक वर्णन प्रस्तुत छंद के माध्यम से किया गया है।

व्याख्या–कई दिनों तक अभावग्रस्त दिनचर्या व्यतीत करने के बाद घर में अन्न लाया गया है। चूल्हें पर पुनः भोजन बन रहा है। आँगन के ऊपर धुंआ दिखाई दे रहा है। सभी के नेत्रों में खुशी की चमक है तथा कौआ भी कई दिनों के बाद अपने पंख को उत्साहपूर्वक खुजला रहा है।

टिप्पणी–

1. सरल व्यवहारिक काव्यभाषा।
2. वर्णनात्मक शैली।
3. प्रतीकात्मक व्यंजना।
4. प्रगतिशील यथार्थ दृष्टि।
5. मानव जीवन में आशा का केन्द्रीय प्रभाव है। 'प्रसाद' ने कहा है–

यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
सदय हृदय में अधिक अधीर।
व्याकुलता भी व्यक्त हो रही
आशा बनकर प्राण समीर।

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

(ग) हरिजन–गाथा

ऐसा तो कभी– – – – – – – – – – – – – – –सौ–सौ मनुपुत्रो द्वारा।

सन्दर्भ–प्रस्तुत काव्यांश 'हरिजन–गाथा' नामक लंबी जनवादी कविता से उद्धृत किया गया है। इसके रचयिता प्रतिनिधि प्रगतिवादी कवि बाबा नागार्जुन हैं।

प्रसंग–भारत की सामाजिक संरचना में सवर्ण–दलित विवाद एक स्थायी समस्या है। इस समस्याओं के केन्द्र में नागार्जुन 'हरिजन गाथा' नामक कविता की रचना करते हैं। कविता का रचनाकाल 1977 ई० है। उस वर्ष बिहार में भीषण नरसंहार के फलस्वरुप १३ हरिजन जिन्दा जला दिये गये। नागार्जुन की दृष्टि में ऐसा मर्मांतक, अमानवीय, निर्मम अत्याचार इससे पहले इस रूप में कभी घटित नहीं हुआ था।

व्याख्या–हरिजन नव संहार की करुण व्यथा का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि ऐसा पैशाचिक दुष्कृत्य पहले कभी घटित नहीं हुआ था। हरिजन स्त्रियां जो असमय विधवा बना दी गयी, वे भयातुर हो गयीं, सघन व्यग्रता से उनका पूरा अस्तित्व आंदोलित हो उठा। उस तनाव से उनकी कोख में पलने वाला भ्रूण रक्त संचार के माध्यम से तीव्र गति से प्रवाहित होने लगा। कवि घटना के त्रासद प्रभाव से पूरी तरह क्षुब्ध है और उसके चरमोत्कर्ष को व्यक्त करने के लिए 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था' पंक्ति की भी कई बार पुनरावृत्ति करता है। हरिजन माताओं की कोख में पलने वाले भ्रूणों के पिता अमानवीय अत्याचार के शिकार हुये। दुर्भाग्य व गरीबी के शिकार तेरह हरिजन जिन्दा जला दिये गये। कवि उन्हें अकिंचन मनु–पुत्र कहता है। एक ही संतति–परम्परा से विकसित मनु संतानें परस्पर घृणा–द्वेष की शिकार हैं। सवर्ण जाति के समृद्ध सौ लोगों ने इस दुष्कृत्य की कई दिनों तक लंबी तैयारी की। क्षेत्र का थाना मात्र दस मील दूर स्थित था और संभावित दुर्घटना के विषय में दरोगा को सूचित कर दिया गया था,पर समय रहते कोई कार्यवाही नहीं की गयी। घटना को अंजाम देने के लिये मिट्टी तेल के कनस्तर, मोटे–मोटे लक्कड़, उपलों के ढेर, घास–फूस को उत्साह से सराबोर हो कर इकट्ठा किया गया। अग्निदाह के लिये सवर्णो ने हंसते हुये बड़ा गड्ढा खोदा, वे सभी प्रसन्नता के आवेग में नरसंहार की होली खेल रहे थें। सौ–सौ भाग्यशाली मनुपुत्रों ने तेरह दुर्भाग्यशाली मनुपुत्रों को जिन्दा जला दिया। यह लोमहर्षक घटना मानवीय इतिहास की क्रूरतम घटना है।

टिप्पणी–

1. सरल, सुबोध काव्यभाषा 2. वर्णनात्मक शैली 3. जनवादी पक्षधरता स्पष्ट है।
4. युग–युग के अत्याचारों की आकृतियां जीवन के तल में;
घिर–घिर कर फलीभूत हुई, ज्यों रजनी के छाया छल में (रामेश्वर शुक्ल 'अंचल')

चकित हुए दोनों– – – – – – – – – – – – – – –सुसज्जित चिता में।

सन्दर्भ– यथावत।

प्रसंग– हरिजन गाथा 1977 में घटित 13 हरिजनों के जिन्दा जलाये जाने से संबधित आख्यान कविता है। इस घटना के पश्चात् हरिजनों की बस्ती में एक बालक ने जन्म लिया। कवि की दृष्टियों में इस बालक का जन्म एक असाधारण घटना है पर बस्ती के बुजुर्ग चिन्तित हो जाते है। उनकी चिन्ता का विषय है नवजात शिशु का भविष्य।

व्याख्या–नवजात शिशु अपने हाव–भाव में विलक्षण था ऐसा बालक न कभी देखा गया था, न सुना गया था। दस दिन पहले हरिजन बस्ती में इसने जन्म लिया है, यह सब कुछ देखकर बस्ती के बुजुर्ग आश्चर्य चकित हो जाते है। भविष्य में यह बच्चा क्या करेगा? यह प्रश्न बुजुर्गों को विचलित कर जाता है। ऐसे विषम वातावरण में बच्चे का अस्तित्व असुरक्षित है। यदि ईश्वर कृपा से यह जीवित भी रह जायेगा, तो यह भूमिहीन, भूमि के किस टुकड़े की जुटाई–मुड़ाई करेगा? किस खेत में जाकर ढेला फोड़ेगा? ऐसी साधनविहीनता इसके भविष्य के विषय में सशंकित करती है। यह नगर का बदनाम क्षेत्र इस बालक से न जाने कैसा बर्ताव करेगा। दुर्भाग्य का प्रतीक इस बालक ने भूमिहीन बंधुआ मजदूर के घर जन्म लिया है। ऐसा लगता है कि इसका जीवन हैवानों जैसा होगा, वनमानुष की भांति यह निरुद्देश्य भटकता रहेगा। अन्न व वस्त्र के अभाव में इधर–उधर घूमेगा। इसकी आवाज तोतली या स्पष्ट होगी, यह भी अज्ञात होगा। यह वीर होगा या कि इसकी असमय मृत्यु होगी। दोनों बुजुर्ग नवजात शिशु के विषय में बार–बार सोच रहे थे। इस अभागे के हाथ, पैर अत्यंत विचित्र है। ईश्वर ही इसका भला कर सकता है। हम इसका भविष्य कैसे जान सकते है हम तो हैवान हैं, उस बालक को देखते हुये वे बुजुर्ग कहते है कि इस शैतान को तो देखो कैसे एकटक यह घूर–घूरकर देख रहा है। सब कुछ कह सुन रहा। वे सोचने लगे कि निर्मम मानवीय नरसंहार घर में तेरह निर्दोष 13 हरिजन जिन्दा जला दिये गये।

टिप्पणी–

1. सहज सरल काव्यभाषा 2. वर्णनात्मक शैली 3. जनवादी पक्षधरता स्पष्ट है 4. नागार्जुन क्रांति–चेतना के कवि है
5. कौन जन्म लेता किस कुल में? आकस्मिक ही है यह बात, छोटे कुल पर किन्तु, यहां होते तब भी कितने आघात (दिनकर)

यह पैशाचिक नरमेध– – – – – – – – – – – – – –चमरटोली में।

सन्दर्भ–यथावत्।

प्रसंग–नागार्जुन की कविता सामाजिक यथार्थ से सम्बद्ध है। 'हरिजन गाथा' नामक कविता में उन्होंने जातीय समस्या के दुष्प्रभाव का मार्मिक आख्यान प्रस्तुत किया है।

व्याख्या–निर्मम नरसंहार हरिजन बस्ती के सभी लोगों के भयाक्रान्त कर गया है। बड़े–बूढे इस चिन्ता में रात भर जागते रहते हैं। घटना के दिन से लेकर निरन्तर व्यथित है। निरन्तर रोते रहने से उनकी पलके सूज गई है। आंखों से निकली हुई कीचड़ पपाटों के किनारे इस प्रकार से जमा हो गई है कि मानो वे सील मुहर हों। दोनों बुजुर्गों में से एक ने दूसरे से कहा कि इस बच्चे की हथेलियों की रेखा को गुरुजी से दिखलाया जायेगा। वे निश्चय ही इस बच्चे के भविष्य के संबंध में प्रामाणिक जानकारी देगें। देखो तो इसके कान कितने लंबे है, छोटी चमकती हुई आंख है, जो इसकी तेजस्विता को प्रकट कर रही हैं। सिर हिलाते हुये गहरी सांस लेकर बुद्धू ने खदेरन से कहा– 'गुरुजी तो इस बालक के प्रामाणिक भविष्य के विषय में बता सकते हैं। इसलिये चलो गुरु महाराज को बुला लायें। तीसरे दिन गुरु महाराज का आगमन हुआ। अधेड़ उम्र के संत गरीबदास रैदा सी कुटियों में रहते थे, उनकी दाढ़ी आधी पकी व आधी सफेद थी उनके गले में तुलसी की माला पड़ी हुई थी। वे नाटे कद के थे तथा उनका रंग सांवला था। मस्तक के दांयी ओर घोड़े के खुर का निशान था। चेहरा गोल–मटोल आंखे धुच्ची थी शरीर सुडौल था।

टिप्पणी–

1. सहज, सरल काव्यभाषा 2. वर्णनात्मक शैली 3. जनवादी पक्षधरता स्पष्ट है
4. नागार्जुन क्रांति चेतना के कवि है 5. पाशविक वेग की लहर लहू में, कब तक धूम मचायेगी,
कब तक मनुष्यता पशुता के आगे यों झुकती जायेगी? (दिनकर)

अरे भगाओ इस बालक को– – – – – – – – कभी नही तकरार करेगी।

संदर्भ–यथावत्।

प्रसंग–हरिजन टोले में जन्म लेने वाला बालक अद्वितीय था। उसके घर के बुजुर्गो ने रैदासी कुटिया में रहने वाले संत गरीबदास को बुलाया। गरीबदास का व्यक्तित्व कई दृष्टियों से प्रभावशाली था। वे बस्ती में पंहुचने के बाद बच्चे को देखकर कहते है–

व्याख्या–इस बालक को यहां से हटाओ, अन्यत्र कहीं ले जाओ। यह अत्यंत क्रांतिकारी होगा। इसके साथ रहने वाले मित्रगण पृथ्वी से अन्याय मिटाने का दायित्व निभायेंगें और यह उन

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

सबका नेतृत्व करेगा। इसका नाम समाचार पत्र में प्रकाशित होगा। मोटरों पर सवार होकर समाज के सभ्रांत लोग इससे मिलने आयेगें। खानों की खुदाई करने वाले मजदूरों के बीच इसका पालन—पोषण होगा। लोक जीवन की संघर्षों से तपकर उसका व्यक्तित्व दृढ़ होगा। इस बालक को झरिया भेज दो। इस बालक के साथ इसकी मां भी रहेगी तथा उसे समझा देना कि अपने वास्तविक नाम व पते के विषय में किसी से कुछ भी न कहेगी। अतिशीघ्र इस बालक को यहां से दूर ले जाओ। इसके बारे में तुम लोग मोहग्रस्त बनो। तुम्हें अत्यंत सावधान रहना होगा, कायर लोग इसके चक्कर काट रहे हैं। सामंती लोगों को इसके विषय में पता चल गया तो दलित वर्ग के हितों पर पुन: आक्रमण संभव है। यह बालक जनशक्ति व धन शक्ति से समृद्ध होगा यह हथियारों से लैस रहेगा। व्यक्तिगत स्तर पर सुख—दु:ख से मुक्त रहेगा। इसके अन्दर सच्ची मानवीय सहानुभूति होगी। सभी के दु:ख से दु:खी व सुख से सुखी होगा। समता की स्थापना इसके जीवन का वास्तविक मुद्दा होगा। इसके भय से हत्यारे कांपेगें। इस बालक की अपनी पार्टी व दल होगा। इसके प्रभाव से सुखद वातावरण की सृष्टि होगी। यह सांवला दलित बालक सबका उद्धार करेगा। इसके प्रयासों से सम्पूर्ण क्रांति घटेगी। हिंसा व हिंसा दोनों से इसका अनुराग होगा।

टिप्पणी—

1. सहज, सरल काव्यभाषा 2. वर्णनात्मक शैली 3. जनवादी पक्षधरता स्पष्ट है।

4. मूल मनुज को खोज निकालो, जाति, वर्ण, संस्कृति समाज से मूल व्यक्ति को फिर से पालो (पंत)

5. ऊंच—नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है, दया—धर्म जिसमें हो सबसे वही पूज्य प्राणी है। (दिनकर)

दिल ने कहा— — — — — — — — — — लगता सबकुछ नया—नया था।

संदर्भ—यथावत्।

प्रसंग—हरिजन बस्ती में नरसंहार के बाद एक नवजात शिशु ने जन्म लिया। बस्ती के दो बुजुर्ग उसके अस्तित्व के विषय में चिन्तित होते है। उन्होंने रैदासी बस्ती में रहने वाले संत गरीबदास को बुलाया। गरीबदास ने भविष्यवाणी की कि यह बालक भावी क्रांति का प्रतीक होगा।

व्याख्या—कवि के अनुसार, अन्त:करण से प्रतिध्वनि उत्पन्न हुयी, दलित माताओं के सभी बच्चे क्रांतिकारी होगें, वे अपनी वीरता में अग्निपुत्र कहलायेगें तथा निर्णायक संघर्ष के भागीदार बनेगें। यह बालक वास्तव में वराह का अवतार है, इसके शौर्यपूर्ण कार्यों के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी का क्षेत्र होगा। आज तक दलित वर्ग के लोगों का उत्पीड़न होता रहा, वे रोते कलपते रहे। सीमित साधनों में जीवन निर्वाह करते रहे, पर अब हृदय कहता है कि यह बालक दलित वर्ग का नायक होगा। नई ऋचाओं व नये वेद का निर्माण करेगा। इसके साथ सैकड़ों वीरों का साथ होगा तथा लाखों लोग इसका अनुकरण करेगें। उसूलों पर यह दृढ़ बना रहेगा। घर—घर इसके चित्र लगेगें। हृदय कहता है—इस बालक का यश पूरी दुनिया में फैलेगा। इसके दम से शोषण का अस्तित्व मिटेगा। इस बस्ती में जन्म लेने वाले सब बच्चे वीर व क्रांतिकारी होगें। दस दिन के सांवले सलोने बच्चे की अद्वितीय मुखाकृति देख हृदय ने कहा, आखिर क्या देखें? भावविह्वल बाबा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा नवीन लघु मनुष्य के कोमल पैरों के जादुई स्पर्श से भूमि प्राय: निष्कंटक होगी। इसके बाद विद्युत गति से बाबा वहां से उठे, बाहर आये। वह जैसे पीछे—पीछे चल रहे थे और आगे उस बालक की अस्तित्व की चमक चल रही थी। बाबा कुटी में नहीं लौटे। नदी किनारे निकल गये। बुद्धू व खदेरन को सारा वाकया आश्चर्यजनक लग रहा था।

टिप्पणी—

1. सहज, सुबोध, व्यवहारिक भाषा, 2. वर्णनात्मक शैली।

3. मार्क्सवादी दर्शन की अभिव्यक्ति, 4. सामाजिक न्याय से जुड़ी संवेदना की अभिव्यक्ति।

5. तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के, पाते हैं जग में प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक, वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहास में लीक। (दिनकर)

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com

For More Book Download Here - http://GKTrickHindi.com